

योग । स निमित्तभेदात्तन्निधा भिद्यते ॥ काययोगो वाग्योगो मनोयोग इति ॥ तद्यथा—वीर्यान्तराय-  
नयोपशमसद्भावे सति औत्तारिकादिसप्तविधकायवर्गणान्यतमालवनापेक्षया आत्मप्रदेशपरिस्पन्द-  
काययोग । शरीरनामकर्मोदयापादितवाग्वर्गणालम्बने सति वीर्यान्तरायमत्यन्तवावरणलक्ष्योपश-  
मापादिताभ्यन्तरवाग्लब्धिसान्निध्ये वाक्परिणामाभिमुखस्यात्मन प्रदेशपरिस्पन्दोवाग्योग ॥ अभ्यन्तर-  
वीर्यान्तरायनोहन्द्रियावरणलक्ष्योपशमालम्बकमनोलब्धिसान्निधानेवाह्यनिमित्तमनोवर्गणालम्बने च सति

योगः ॥ सः निमित्तप यदातुः प्रियाः विपक्षे ॥

काययोगः नान्यथा ॥ नान्यथा ॥ शक्तिस्तथा ॥

वीर्यान्तराय-न्यापशम-सद्भावे ॥ सति ॥ औत्तारिकादि

मत

वि-कायवर्गणा अन्यतम आलम्बन

अपेक्षया ॥ आत्म नदश-परिस्पन्दः ॥

राययोगः ॥

शरीरनामकर्म उदय आपादित-चान्यवर्गणा

मालव्यनदीसन्निधि-वीर्यान्तराय-मति अन्तरादि

आरण्य-न्यापशम-आपादित-अभ्यन्तर-नाक्

सन्निधि-नामिक्यः ॥ तद-परिणाम-अभियुक्तस्य ॥

आत्मनः ॥ प्रदेश-परिस्पन्दः ॥ वाग्योगः ॥

अभ्यन्तर-वीर्यान्तराय-नोहन्द्रिय-आवरण

उपोपशम आत्मक-मनोलब्धि-सम्पिपाने ॥

वाक्निमित्त-मनोवर्गणा-आलम्बनः ॥ यः सति ॥

= (सो) योग है ॥ वह (योग) कारणकी विशेषतासे तीन प्रकार में दे दिया गया है

= काययोग, वचनयोग, मनोयोग इस प्रकार हैं जैसे

= (आत्माके) वीर्यान्तरायकर्मके लोपोपशमकी विषयानता होनेपर औत्तारिकादि

= यात (औत्तारिक, औत्तारिकाभिध, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिध, आहारक, आहारकमिध, कार्यण)

= प्रकारकी कायवर्गणाओंमेंसे किसी एक (=अन्यतम) (कायवर्गणाके) अवलम्बनकी

= अपेक्षासे वा सम्बन्धकरि आत्माके प्रदेशोंका सकृप होना वा चलनेरूपहोना

= सो काययोग है यावार्थ कायके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चलने रूपहोना ॥

= शरीरनामा नामकर्मके उदयकरि कृत्यम हुरै (=आपादित) वचनवर्गणाके

= अवलम्बन होनेपर (और) वीर्यान्तरायका अर मतिज्ञानावरणका उपा भुक्तभ्रमरादि

= ज्ञानावरण कर्मका लोपोपशमकरि प्राप्त हुरै (=आपादित) अन्तरंग वचनके

= मोलनेकी शक्तिकी निकटता होते वचनरूप परिणामके समुत्प

= आत्माके प्रदेशोंका चलन चलन सो वचनयोग है यावार्थ-वचनके निमित्तसे

आत्मप्रदेशोंका सकृप होना सो वाग्योग है

= अभ्यन्तर वीर्यान्तराय कर्मके और नोहन्द्रियावरण (नामक ज्ञानावर्णकर्म) के

= लोपोपशमरूप मनोलब्धि के सामीप्य वा निकट होनेपर

= और (=व) वाक्कारण मनोवर्गणाके अवलम्बन होने पर (=सति)

मन परिणामाभिमुखस्यात्मन प्रदेशपरिस्पन्दो मनोयोग ॥ ज्येष्ठपि त्रिविधवर्णार्णपन्न सयोग-  
वेवलिन आत्मप्रदेशपरिस्पन्दो योगो वेदितव्य ॥  
आह अम्युपगत आहितत्रैविध्यक्रियो योग इति ॥ प्रकृत इदानीं निर्दिश्यता किलक्षण आसूव  
इत्युच्यते । योऽय योगशब्दाभिधेय ससारिण पुरुषस्य—

## ॥ स आसूवः ॥ २ ॥

मनः परिणाम-अभिमुखस्य आत्मनर्मप्रदेश-  
परिस्पन्दः मनोयोगः ।

ज्येष्ठः अविश्वस्योमकेवलिनः ।

त्रिविध-वर्णार्ण अपसम्भः ।

आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः योगः वेदितव्यः । आह

अम्युपगतः आहित त्रैविध्यक्रियो योग इति । प्रकृतः । मनोयोगः । आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः योगः वेदितव्यः । आह  
इदानीं निर्दिश्यता किलक्षणः आसूवः स्या वस्तु है वा आसूव किंलक्षण सति है ऐसे कहना तो है कि  
संसारिणः पुरुषस्य यद्वा अयम् योगशब्द-अभिधेयः । संसारी जीवों को यह योगशब्द फरि कवन किया गया (=अभिधेय) है

(१) स आसूव ॥ २ ॥

= स आसूव भवति ॥ २ ॥

= सो आसूव है अर्थात् पूर्वोक्त कायिक याचिक तथा मानसिक क्रिया ही आसूव है  
वा पूर्वोक्त योग ही आसूव है भावार्थ यह योग ही कर्मों के आगमनका द्वाररूप  
आसूव है । जिस प्रकार सरोवरमें जलआनेके द्वार ( मोरिया ) जल आनेके लिये कारण होते हैं वैसे ही  
आत्माके भी मनोवचनकायक योगोंके द्वारा शुभ अशुभ कर्म आते हैं सो उव कर्मोंके आनेमें योग कारण है  
इसलिये कारणमें कार्यकी संभावना करके योगको ही यहाँ पर आसूव कहा है ॥

(१) इस शब्दका पाठ और कार्य इदानीं आत्मयोगमें प्रकृता है (२) साक्षात्कृतः कथं शब्दः कार्य 'यह आधमन है' अर्थात् वह (याव) आधमन (कर्मका) है ।

यथा सरस्सलितानाहिद्वारं तदाऽसूवकारणत्वात् आसूव इत्याख्यायते तथा योगप्रणालिकया  
आत्मन कर्म आसूवताति योगआसूव इति व्यपदेशमर्हति॥ आह कर्म द्विविधं पुण्यं पापं चेति ।  
तस्य किमविशेषेण योग आसूवणहेतुराहोस्विदस्ति काश्चित्प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—

## ॥ शुभ पुण्यस्याशुभ पापस्य ॥ ३ ॥

यथाऽसूवन्म रित आ चरि-दारयः॥  
नद आसूव-दारणत्वात्॥ आसूवः॥ प्रति०  
आ-यावत्तत्तयाऽयोग नखावि कया॥  
यामनः॥ कर्म॥ आसूवति॥ इति० योगः॥ आसूवः॥  
इति० व्यपदेशः॥ अदिति॥  
आदाकर्म॥ द्विपदः॥ पुण्यः॥ पापः॥ वद इति = (यिज्य) प्रन करवा है कि कर्म पुन्य और (=च) पाप दो प्रकार है  
नान्यः॥ इति॥ अतिरेण, पागः॥ आसूवणहेतुः॥  
आरास्विदऽस्ति॥ अस्ति॥ अस्ति॥ अस्ति॥ इति०  
अम० उपपत्तेः॥

= जैसे सरोवर (=सरस्) के पानीके चारों ओरसे (=आ) बहने वा पहुँचनेका द्वार होता है  
= वर (दार) (जबके) आनेको भिन्न होनेस आसूव ऐसा  
= करा जाता है । जैसे (काय-वचन-मनो) योगरूपी नाबी वा द्वारकरि  
= आत्मको कर्म आता है ऐसे योग आसूव  
= रस (व्यचार करके) नामको पाता है । (यहाँ कारणमें कार्यका उपचार है) ।  
= (यिज्य) प्रन करवा है कि कर्म पुन्य और (=च) पाप दो प्रकार है  
= तिस (कर्म) के आवनका कारण क्या योग सामान्य है  
= अथवा कुछ भागविशेष है ऐसे (प्रन होने पर)  
= यहाँ (अशिमसूत्रों) करा जाता है कि

सूत्र-शुभ (१) पुण्यस्याशुभ पापस्य॥  
शुभार्थ शुभः॥ पागः॥ पुण्यस्यः॥ आसूवः॥  
शुभः॥ पागः॥ पापस्यः॥ आसूवः॥

= शुभयोग पापका आसूव है अर्थात् शुभयोग पुन्यके आसूवका कारण होता है और  
अशुभयोग पापके आसूवका कारण होता है ॥ यहाँ पर भी कारणमें कार्यकी  
समावना करके शुभयोगको पुन्यस्य आसूव करा है और अशुभयोगको पापस्य आसूव करा है  
यद्यपि शुभयोग और अशुभयोग पुन्य और पाप आसूवोंके यथासंख्य कारण हैं । भाषार्थ-शुभयोग

(१) दोताम्बर उक्तवाच मे यह सूत्र दो सूत्रों में विभाजित इस प्रकार है । शुभ पुण्यस्य ॥ ३ ॥ अशुभ पापस्य ॥ ४ ॥

एवमिषासी अस्मत्सहाय वकाख कृत पक्व्ये और विपत्त्यर्थं सरित सर्वावसिद्धि का शुभ्यः हिन्दी अनुवाद अध्याय ६ सूत्र ३  
क शुभयोग को वा अशुभ १ प्राणातिपातादत्तादानमर्थेयुनादिरशुभ काययोग । अनृतभाषण-  
परुयाससम्यवचनादिरशुभोवाग्योग । वधचिन्तनेष्व्यासूयादिरशुभो मनोयोग ॥ ततो विपरीत शुभ ॥  
कथं योगस्य शुभाशुभत्वं ॥ शुभपरिणाम—

से पुन्य आसूय (का आगमन) होतार और अशुभ योगसे पाप आसूय (का आगमन) होतार  
शुभपुनर्वात्—कः शुभयोगः कदा वा अशुभः ? शुभयोग क्या है अथवा अशुभ (योग) क्या है  
मात्र अविपात- 'अदस-आदान  
मैयुन आदिः' अशुभः काययोगः अनृतभाषण  
परस-असस्य-वचतादिः अशुभः काययोगः  
वधचिन्तन-रूप-असूया  
आदिः अशुभः मनोयोगः कदा  
विपरीतः शुभः  
कथं योगस्य शुभ-अशुभत्वं ॥ शुभ-परिणाम

(१) अदस-आदान, अदस-आदान का अर्थ हो सक है । अदस (अतिशय) न विवाही नहीं स्त्री, न  
वैधर्ष्य वस्तु (देको पञ्चवस्तुकोप पञ्च १५) इस पिकले अर्थमें अदस-आदान पञ्चवस्तुकोप है । अदस का अर्थ अदान दिया नहीं एसाही और अदस का  
अर्थ कुमारी, अविवाहिता भी लिखा है इस कारण से अदस-आदान ऐसा पक्व्ये है । यहाँ कायार्थ अर्थमें नहीं आया है कता: 'अदस-आदान'  
पक्व्ये किया है ।



एगमिवासी अग्न्यग्न्याय वहील कृत पदच्छेद और विपत्त्यर्थं संहित सप्तोर्थसिद्धिः शब्दशः हिन्दी अनुवाद अप्याय ६ सूत्र ३  
 निरुतो योग शुभ ॥ अशुभपरिणामनिवृत्तशुभ ॥ न पुन शुभाशुभकर्मकारणत्वेन ॥  
 यद्येयमुच्यते शुभयोग एव न स्यात् । शुभयोगस्यापि ज्ञानावरणादिवन्धहेतुत्वाभ्युपगमात् ॥  
 पुनार्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम् । तत्सद्वेद्यादि ॥

निरुतः १० योगः १० शुभः १० अशुभपरिणाम  
 निरुतः १० अशुभः १० न पुनः १० शुभ-अशुभ-कर्म  
 कारणत्वेन १० । यदि ० एवम् ० उत्पद्यते

पुनरागः १० एवम् ० न स्यात् १० शुभ-योगत्वं  
 अतिज्ञानावरणादि-न न तुल्य अभ्युपगम्यते १०

= निष्पन्न वा पूरा किया हुआ योग (सो) शुभ है ॥ बहुरि(व)अशुभ परिणामकरि  
 = निष्पन्न योग (सो) अशुभ (योग) है । बहुरि शुभ अशुभ कर्मके

= निष्पन्नतासे (शुभ अशुभ योग) नहीं है । यदि ऐसा कहा जाय अर्थात्  
 शुभ अशुभ कर्मके निविधपनासे शुभ अशुभ योग क्रमसे होते हैं तो

= शुभयोगही विपमान न हो (= स्यात् न) क्योंकि शुभयोगके

= भी ज्ञानावरणादि (पापकर्म)का बंधका कारणपना माना है अर्थात् शुभ

योगसे भी ज्ञानवरणादि पापकर्म कर्माका बन्ध होता है ताते यदि शुभ

अशुभ कर्मों के कारणपनासे शुभ अशुभ योग यथार्थस्य माने तो) पापका

कारण शुभ-अशुभ योग नहीं उठे

= (नो) आत्माको विविध करता है अथवा जिसकरि (आत्मा)विविध क्रियामाता है

= ऐसा पुन्य है सो साता वेदनीय आदिक (कर्म) है

(१) पुनरिति, आत्मानम् १० पूयते १० अनेन १० वा ०

इति ० पुण्यम् १० तद् १० (१ तद् १०) ० सदृश-आदि १० ॥

(१) "पू कर्मादि मयका गणका धातु है पू धातु और तदोस इसी गणके कोर धातुकोक अन्तस्वर का इत्स्व इडाका है सार्धधातुक (काक)  
 अन्तर्गते धातुकोक इत्स्वः ॥ ७ अन्त्याय ३ पाद २० सूत्र अन्त्यायायी कोर कर्मादि गणका विकल्प भा' धातु प्राप्य मि भि-ति इत्सादिके पूव ओका  
 आगा है इसलिये पु + भा + ति ० पुनामि । (२) पयत एव 'पू धातुका कर्मणि प्रयोग है 'ते' आगमे पक्का प्राप्य ए'को धातुमें ओङ्देशके पञ्चात् ङाङा  
 उगा है । (३) 'तद्' इकारात् मयसननिग सर्वनाम है अर्थ 'यह' ऐसा है इसका प्रयोग एक वचन अपुसकङिग ठङ्ग वा गत दोनों प्रकारसे बनाया है  
 इसलिये तद् कोर तद् (पुनर्येवक परधाम्) दोनोंही ठीक है । (४) एव शब्द अर्थात् 'सदृश' अपुसकङिग है । आठवां अध्याय (तत्सार्धधातुक)का आठवां  
 सूत्र 'पूयसपयते' है उसी दो वचन अथवा विभक्ति अपुसकङिगमे है । इस अध्यायपूरि सप्तोर्थसिद्धि कर्मिके कुछ ७७७ ने सङ्गोपाय रति देका बाक्य  
 बनाया है ॥

पदात्रिंशत्ति भाग्यसहाय बर्गोक्त कृत पदच्छन्द और विग्रहस्यैः सति सर्वसिद्धिः शुभस्य। इति अनुवाक अस्याय ६ सूत्र ३, ४

पाति रक्षति आत्मानं शुभादिति पापम् । असद्वेद्यादि ॥  
आह किमयमासुव सर्वससारिणा समानफलारम्भहेतुराहोस्वित्त्र श्रियदस्ति विशेष इत्यत्रोच्यते—  
॥ सकपायाकपाययोः साम्परायिकेर्थापथयोः ॥ ४ ॥

पातिरक्षति आत्मानं शुभादिति ॥ शुभादिति ॥  
इति अयमर्थः ॥ असद्वेद्य-आदि ॥ ॥ आह इति किम् ॥  
अयमर्थः ॥ आसुव सर्वससारिणामर्थ समान  
फल आरम्भहेतुः ॥ आहोस्वित्त्र अरिषत् ॥  
अस्ति विमोक्ष इति अत्र कच्यते ॥  
(२) सूत्रम्—सकपायाकपाययोः साम्परायिकेर्थापथयोः ॥ ४ ॥  
= सकपायाकपाययोः (आत्मनोः) साम्परायिकेर्थापथयोः (कर्मणोः) आसुव यथासख्यं भवत ॥  
सूत्रार्थः—सकपाय-अकपाययोः आत्मनोः  
साम्परायिक-र्थापथयोः कर्मणोः आसुव  
यथासख्यं भवत ॥  
= आत्माको शुभसे (दूर) रक्षता है वा आत्माको शुभसे रक्षा करता है (रक्षति=  
पाति) अर्थात् जो आत्मा को शुभ रूप नहीं होने देता है  
= देसा पाप है वह असला वेदनीय आदि है । (वह) भजन करता है क्या  
= यह आसुव समस्त ससारी (जीव) निकट तुल्य  
= कृष्णके आरम्भका कारण है कि (=आहोस्वित्त्र=अपवा) कुछ  
= विशेष है यहाँ (अग्निप सूत्रों) कहाआसुव है कि

(१) आहोस्वित्त्र (अपवा) = विरक्त्य सन्नेह मदन आलोक्य इच्छा (पदुपग्रहकोय पृष्ठ १५) आहोस्वित्त्र जो अपव्यो (आहो) और (स्वित्त्र) से मिलकर बनता है । आहो = मन्त्र-सन्नेह निरक्षण (पदुपग्रहकोय पृष्ठ १५) स्वित्त्र = स्वित्त्रसं या मिलने का कारणकोय नामार्थवर्गः २३, स्मृत्योक्त पृष्ठ ३ ।  
स्वित्त्र = मदन (पदुपग्रहकोय पृष्ठ १५) अर्थात् मित्र आहो और स्वित्त्र का वही अर्थ है जो आहोस्वित्त्र का मित्रकर होता है ४  
(२) देवानाम्बर गता विनाम्बर क्षीण आत्मावर्ते इत्येवम् आहो पाठ एकता है । कहीं कहीं ईर्ष्यापथयोः पाठ है ।  
यान्ति पाठ ओक है क्वचिद् ग्रन्थोपाधौ वा अस्यापथोः ४ । ४३ सूत्रसे (मित्रका निरक्षण पदके कारणसे है) य जो बोधरा करविषया गयाहै ४

पञ्चमिनी अग्न्यपमदाय वहील कृत पदच्छद और पिपत्त्यर्थं सहित सर्वापिदिफा शब्दशः हिन्दी अनुवाद अभ्यास ६ सूत्र ४

स्वामिभेदादासूत्रमेदं । स्वामिनी द्वौ ॥ सकपायोऽकपायश्चेति ॥ कपाय क्रोधादि । कपाय इव कपाय । क उपमार्थ ? यथा कपायो नैयग्रोधादि श्लेषहेतुस्तथा क्रोधादिरप्यात्मन कर्मश्लेषहेतु-  
त्वान् कपाय इव

कपाय सहित जीवकें संसारके कारण रूप कर्मका आसूत्र होता है । और कपाय रहित जीवकें स्थिति रहित (=इयापय)कर्मका आसूत्र होता है यावार्थ सकपाय जीवकें तो ऐसी स्थिति और अनुभाग पड़ते हैं जिन करि जीव दीर्घकाल संसारमें परिभूषण करते हैं । बहुवि अकपायीजीव(=वपशांतकपायी ग्यारहवां गुणस्थानबर्ती, चीलकपायी बारहवां गुणस्थानबर्ती, और सयोग केवली तेरवां गुणस्थानबर्ती, निष्क कर्मोंकी स्थिति और अनुभाग नहीं पड़ते हैं) एक समय मात्र आसूत्र आवे है । सो (स्थिति विना वा स्थिति रहित) विसर्ग समय ऋद्धाणा है अपवा निर्जरसेगता है ।

रतामि भेदाद्भासूत्रमेदं स्वामिनी द्वौ ॥  
=स्वामीके भेदसे आसूत्रविषय भेद है [सूत्रमें] स्वामी दो हैं अर्थात् आसूत्रके स्वामी दो हैं

सकपायः अकपायः ॥ नैयग्रोधादि ॥

=कपाय सहित और (=व) कपाय रहित (जीव) हैं ॥

कपायः अकपायः ॥ नैयग्रोधादि ॥

कर्म उपमा-अर्थः कपायः ॥ नैयग्रोधादि ॥

अथवा सकपायी (जीव) और अकपायी (जीव) हैं ॥

नैयग्रोधादि ॥

रतेषु हेतुः कपायः अकपायः ॥ नैयग्रोधादि ॥

कर्म-रतेषु हेतुत्वाद् ॥ कपायः ॥ नैयग्रोधादि ॥

=न्यग्रोष फल (=नैयग्रोष) (बड़ीकाफल-वृत्तफल-वरगदफल)

=वल्गादिभिर्बैरंगलङ्घनेना निमित्त है तैसे क्रोधादि यी, आत्माके

=कर्म रूप रंग लङ्घनेना हेतुतेनेसे कपाय सरीले कपाय कपाय ॥ नैयग्रोधादि ॥

कपाय इत्युच्यते ॥ सह कपायेण वर्तते इति सकपाय । न विद्यते कपायो यस्येत्यकपाय । सकपायश्चाकपायश्च सत्रपायाकपायौ तयो सकपायाकपाययो ॥ सम्पराय संसार तत्प्रयोजनं कर्म साम्परायिकम् । ईरणमौर्यायोगो गतिरित्यर्थ ।

कृपाय ॥ इति \* उच्यते ॥ सर कृपायेण ॥

एवमत्रातिरूपान्ननियतः<sup>१)</sup> कृपायभोग्यस्य<sup>२)</sup> नित्यः<sup>३)</sup> नही है वियमान कृपाय जिसके एसा

मक्रपायः ! सक्रपायः ! न ०  
=मक्रपायी है। पहरि ( न्व ) क्राय करि सहित है

मन्त्रायः । नमः सखाय मन्त्रपाययोः ।

सत्योः ॥ स- क्वाए अकृपाययो ॥

सम्परायिन्। ससारः। तद् प्रभोजनम् ॥

कर्मः । साम्यरायिकम् ॥॥

१० ईरण्म् १॥ गतिः १॥ ईयायोगः १॥ इति ॥ अर्थः १॥ = ईरण्म् है सो गति वा गमन है (ये) योगोक्त गमन है (ईया) ऐसा वास्तव्य है ।

(१) विदुषः परादिवादि

प्रत्यक्ष लक्षणरूप विदुः + य + त = विद्यायः बनाया । (२) ईश्वरीययोगो गतिरित्यर्थः ( = ईश्वर ईश्वरयोग गति इति शब्दः ) । इस वाक्य का ऊपर आ हमने अनुवाद दिया है उससे प्रगट है कि इस वाक्य के पाठ में कुछ गड़बड़ है । सर्वार्थसिद्धि अद्वैतकी दोनों धारणियों में उपर्युक्त एकसा पाठ है । हस्तलिखित वा प्रतियोग पृष्ठ १२७ और ७२ पर क्रमसे ईश्वरमोर्वाविषयो गतिरित्यर्थः ऐसा पाठ है तीसरी हस्तलिखित पत्राखीन प्रतियोग पृष्ठ ६८ पर ईश्वरमोर्वाया॥ गतिरित्यर्थः यह पाठ है ईश्वरीय योगमतिरित्यर्थः ( = ईश्वर ईश्वर योगमतिरित्यर्थः ) इन दोनों पाठों के मिल मेस बात होती है कि वाग उद्धृत प्रथमा विभक्ति लगाकर गति शब्दसं पृथक् कर दिया है । इसको तत्पार्थ राखवाति कहते "ईश्वरीय योगमतिरित्यर्थः" ऐस सुद्धी वाचनिक रूपसे दिया है जिसका वाक्यार्थ "ईश्वरमोर्वाया" ईश्वरमोर्वाया योगमतिरिति वाक्य । ऐसा दिया है ( इस तत्पार्थ राखवातिक के पाठ को हम ने मुद्रित कोर कई प्रतियोग हस्तलिखितसं मिलाकर लिखा है ऐसा ही पाठ सर्व पुस्तकों में है ) इसका दिया अनुवाद निम्नलिखित प्रसार है ।

गति प्रपत्ति ईश्वरीयः । भाष० १७५ ।

= गत्यस्य ईश्वरीयः । ( = गत्यस्य ईश्वरीयः )

— गमनं भगवत्प्राप्तं (अभयप्राप्तं) शरणं प्राप्तुं संपदं भाव्यं (अप्य) मयः (प्रपश्यन्करि)

— इत्यादि (गुण) बनता है। इत्यादि शब्दों से सा योगों की गति या योगों का समग्र ऐसे बनता है।

शुद्धं शुद्धयः प्रमत्तम् । अर्थात् शुद्धयः प्रमत्तम् । अर्थात् शुद्धयः प्रमत्तम् ।

= धागों की इसम बज्जन रूप किया प्रगति कायाऽ लोकोत्तरात् ।

सा! ईषन् • वगा • पण्य! । तद्गुण्यते ।

असाहयसाकराजाताम

तद्वारक कर्म ईर्यापथम् । साम्परायिक च ईर्यापथं च साम्परायिकेर्थापथे । तयो साम्परायिकेर्थापथयो ॥ यथासख्यमभिसम्बन्ध । सकपायस्यात्मनो मिथ्याहृष्ट्यादे साम्परायिकस्य कर्मण आसूत्रो भवति ॥ अकपायस्य उपशान्तकपायादे ईर्यापथस्य कर्मण आसूत्रो भवति ।

तद्वारकम् १॥ कर्म १॥ इत्यापथम् १॥

साम्परायिकम् १॥ यथासख्यम् १॥ च ॥ साम्परायिकेर्थापथम् १॥

तयो १॥ साम्परायिक ईर्यापथयो १॥

यथासख्यम् १॥ अभिसम्बन्ध १॥

सकपायस्य १॥ आत्मनः १॥ (१) मिथ्याहृष्ट आदे १॥

साम्परायिकस्य १॥ कर्मण १॥ आसूत्र १॥ भवति १॥

अकपायस्य १॥ उपशान्तकपाय आदे १॥

ईर्यापथस्य १॥ कर्मण १॥ आसूत्र १॥ भवति १॥

= तिस (योग की गति) द्वारा आने वाला (= द्वारक) कर्म है सो ईर्या पथ है

= अहुरि (= च) साम्परायिक और ईर्यापथ से साम्परायिकेर्थापथे (इंद्रमासमें) है

= तिसका (संबंध के अर्थ में) गृहीत विभक्ति दिवचन में साम्परायिकेर्थापथयो ऐसा वाक्य हुआ

= (साम्परायिक ईर्यापथका) अर्थार्थत्व (= परिच्छेद) पहिला दूसरे को दूसरा संबंध है

= कपायसरित आत्मा के विषयाहृष्टि आदि क्रमयमगुणस्त्वानसे दशमगुणस्थानत कानिके

= ससार के कारणरूप कर्मका आसूत्र होता है

= कपाय रहित (आत्मा) के उपशान्त कपाय आदिक के

= ईर्यापथ वा स्थिति रहित कर्मका आसूत्र होता है भावार्थ ऐसा है कि सकपाय

जीव के तो ऐसी स्थिति और अनुभाग पड़त है अिनकरि जीव

भावाप्य उक्त ईर्यापथ आसव उपशान्तकपायो को सकपायो स्वोपकृत्य को तिसकारका वह ईर्यापथका सब है ऐसा ही उसका नाम है ।

तु ० कर्म ईर्यापथ १॥ आत्मा १॥

अन्यथा विद्या तत्काल ही अहंता ही ५० ईर्या पथ है (देसा है ईर्यापथ)

गुणकृत्य १॥ विरह १॥ आसव १॥

सबको भीत में सहीय पत्थर के सदृश अर्थात् सबको अतिमि बिच्छाव तदुक्ति ही रहता है अर्थात् जैसे

अतिमि कर्म की वर्तना आती है व उसी समय अहंता आती है

एक बात धिरोच यह है कि अिन महाशयोनि सर्वाथसिद्धिपति और तत्तार्थ राक्षसार्थक मिलाकर अध्ययन किया हो गारमको ह्यात होगा कि एक

संबंध के रक्षिता ने गजपाद बनायी आ अकालकदम अहंता सब बहुत पक्षि प्रसिद्ध हुए हैं सबार्थ सिद्ध की दृष्टि को अतिमि कृत्य में तथा अतिमि

में अमर-अनेक स्थानों में प्रदृश किया है । अिन सगु है कि "योगा" विमलिकार में न हाकर "ईर्यामीया योगमति रित्यर्थ" ऐसा पाठ भोष्ट है ।

(१) एतौ वार की सुगो दुर्ग न्मार्थसिद्धिपति में अिष्टा कृष्ट आग्यरायिकस्य पाठ है परन्तु तीनहस्तलिखित ग्रन्थों में अिष्टा कृष्टपादे साधुप्राप्ते साधुप्राप्ति

विक्रम पाठ किया है अनेक अिष्टा कृष्टि गमप्राप्त के कदम साधुप्राप्ति के कदम साधुप्राप्ति का अतिमि १॥

# इन्द्रियकपायावृत्तिक्रियाःपंचचतुःपंचपंचविंशतिसङ्ख्याःपूर्वस्य भेदाः॥५॥

दीर्घकाल संसारमें परित्रयण करते हैं बहुत अधिकपायी जीव (वर्णित कपाय ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती, वीणाकपायी ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती, सयोग कृत्वा तीरहवां गुणस्थानवर्ती निके कर्मोकी स्थिति और अनुभाग नहीं पड़त है जिस समय आसूच आव इ सां स्थिति किन वा स्थितिरहित विसर्ग समय भट्ट जाते इ वा निर्जर होजाते हैं ॥

अथमये वा पहिले उपदेश किया हुआ (साम्प्रतिक) आसूचक भेद

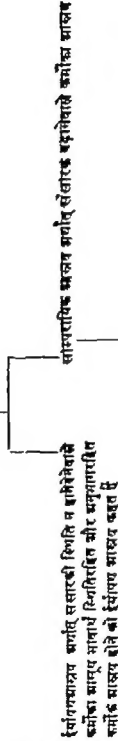
कहनके लिये (आचार्य उचर सूत्रमें) कहत हैं कि

(१) सूत्रम्—इन्द्रियकपायावृत्तिक्रिया पंच, चतु, पंच, पंचविंशतिसङ्ख्या पूर्वस्य भेदा ॥ ५ ॥

= इन्द्रिय-कपाय-अवृत्त-क्रिया पञ्च चतुर-पंच-पंचविंशतिसङ्ख्या पूर्वस्य साम्प्रतिकसूत्रस्य यथा-संख्यम् भेदा (भवन्ति)

(१) इदमन्तर आन्मायकी भाष्यानुसारिणी गन्धार्थे टीका (सिद्धसेनवृत्ति रचित) जिसमें बारह सहस्रसेवा अधिक श्लाक है इस सूत्रका यहो पाठ है आ हमारे यहाँ है परन्तु उन कथकों के "साम्प्रतिकसाम्प्रतिक" "अवृत्तकपायवृत्तिक्रिया पंचचतुःपञ्च, पञ्चविंशतिसङ्ख्या पूर्वस्य भेदा" ऐसा पाठ है । सब पाठोंका कार्य एक ही ॥

आश्रय



समयोग पुष्पके आश्रयका कारण है { अनुगम योग गणके आश्रयकी कारण है जिसके इन्द्रिय पूर्व, कपाय जिसका कपाय सातवें भूषणमें होगा } { धार, अमृत पूर्व और क्रिया पथीस ऐसे उभताकीस भेद हैं

तद्वारुं कर्म ईर्यापथम् । साम्परायिक च ईर्यापथ च साम्परायिकेयापथे । तयो साम्परायिकेयापथयो ॥ यथासख्यमभिसम्बन्ध । सकपायस्यात्मनो मिथ्यादृष्ट्यादे साम्परायिकस्य कर्मण आसूतो भवति ॥ अकपायस्य उपशान्तकपायादे ईर्यापथस्य कर्मण आसूतो भवति ।

नत्-गरुडम् १॥ कृप १॥ इया-नपथ १॥  
माग्नगिरि १॥ च १॥ ईर्यापथ १॥ च १॥ साम्परायिकपाप १॥ च १॥ साम्परायिकपाप १॥  
नपा १॥ साम्परायिक पापपाप १॥  
ययाम्पथ १॥ अपिमन् १॥  
मरुपायम् १॥ आत्मनः १॥ (१) मिथ्यादृष्ट आदे १॥  
साम्परायिकम् १॥ कर्मण १॥ आसू १॥ भवति १॥  
अकपायम् १॥ उपशान्त-कपाय आदे १॥  
ईर्यापथम् १॥ कर्मण १॥ आसू १॥ भवति १॥

नत्स (योग की गति) द्वारा जाने वाला (=द्वारक) कर्म है सो ईर्या पथ है  
=चक्रुरि(=च) साम्परायिक और ईर्यापथ है सो साम्परायिकेयापथे(दृष्टमात्मने) है  
=तिसका(सर्वकर्मपर्यन्त) विमर्शित(विचरनम्) साम्परायिकेयापथयो ये सा बाध्यदुःखा  
=(साम्परायिक ईर्यापथका) यथासम्पत् (=परिलेखो परिला दूसरे को दूसरा) सर्वय है  
=कपायसहित आत्मनो मिथ्यादृष्टि आदि कर्मपापगुणस्वान्तसे दृश्यगुणस्वान्ततकनिके  
=सत्सारक कारणक कर्मका आसूच होता है  
=कपाय ररित (आत्म्या) के उपशान्त कपाय आदिकके  
=ईर्यापथ वा स्थिति ररित कर्मका आसूच होता है भावार्थ ऐसा है कि सकपाय  
जीवके तो ऐसी स्थिति और अनुपाग पड़ते हैं किनकर जीव

आचार्य उक्त ईर्यापथ आसूच उपशान्तकपायो जो कृपाकी सन्धेयक(न) मुनिवोके जाता है (१) जिस प्रकारका वह ईर्यापथ आसूच है वैनाही उसका नाम है ।  
न १० कर्म ईर्यापथ १॥ आत्म्या १॥  
=ओर (=न) इस (ईर्या) का आ कर्म (कार्य) ईर्यापथ गरिखाम वा फलकि आयेदुये कर्मो की स्थिति ओर  
अनमाय विना लक्ष्य ही अङ्गजाती है सो ईर्या पथ है (कैसा है ईर्यापथ)  
=सखी ओत में सखीव पाथर के सदृश अर्थात् सखी जिनमें खिरका लक भिन्न ही रहता है मकार्य जैसे  
सखी ओत में पाथर भिन्न ही खिरका लक रहता है तैसा ईर्यापथ आसूचमें भिन्न कर्मो की स्थिति भरी होती है  
जितनी कर्मो की वगणा आनी है व उसी समय अङ्ग जाती है  
एक बाल निरुप यह है कि जिन महापुरुषों सखीव सिद्धि मिलि ओर तत्कार्य राजकारि क भिन्नाकर अथवा कि या हाउनको ज्ञात होना कि उक्त  
मनके रचविता न प-कपाय कर्माओ आ आदिक सब मङ्गल सब प्रसिद्धि दुष्ट हैं सर्वार्थ सिद्धि को यदि वो कारि क दुष्ट में तथा यत्किप  
में उपरान्त अङ्ग क स्थानों में ग्रहण किया है । इन एष्ट है कि "वागा" किमतिक्रय में लक्ष्य " ईर्यापथीय यागमति रित्यर्थ " येना पाठ अष्ट है ।  
(१) शानो वार की सुग नई वनार्थ सिद्धि युक्तियोमें भिक्षा दृष्ट नाशपायिकस्य पाठ है परन्तु सोनदस्त(विचिनप्रतिपत्ति) में भिक्षा दृष्टपादे साम्परायिक  
रिक्त एना पाठ है । तत्कार्य राजकारि क पृष्ठ मुद्रित १५ = में भिक्षा दृष्टपाथीनां सख्य साम्परायिकतां येसा पाठ है । हमने भिक्षा दृष्टपाथ साम्परायिक  
विचरप पाठ किया है क्योंकि किन्त्या दृष्टि गुणस्वान्त से सख्य साम्पराय एष्टय गुणस्वान्तक कपाय का अस्तित्व है ।

पञ्चवशातोर्यथा उच्यन्ते— चैत्यगुरुप्रवचनपूजादि-  
लक्षणा सम्यक्त्ववर्धिनी कृया सम्यक्त्वकृया । अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुका कर्म-  
प्रवृत्तिर्मिथ्यात्वकृया ॥ गमनागमनादिप्रवर्तन कायादिभि प्रयोगकृया । संयतस्य सत अविरति  
प्रत्याभिमुख्यं समादानकृया । ईर्यापथयनिमित्तेर्यापथकृया । ता एता पच कृया ॥ क्रोधावेशात्प्रा-  
दोषिकी कृया । प्रदुष्टस्य सतोऽभ्युद्यम

पंच अवर्तानि ॥ १ ॥ प्राणान्यपरोपण आदीनि ॥ १ ॥ वक्ष्यते  
पंचविंशतिक्रियाः ॥ उच्यते— चैत्य-गुरु-प्रवचन  
पूजादि-लक्षणाः ॥ सम्यक्त्ववर्धिनी ॥ कृयाः  
सम्यक्त्वकृयाः ॥ अन्यदेवता  
स्तवन आदिक्रियाः ॥ मिथ्यात्वहेतुकाः ॥ १ ॥ कर्मप्रवृत्तिः  
मिथ्यात्वकृयाः ॥ गमन आगमनादि प्रवर्तनः ॥ कायादिभिर्भू-  
प्रयोगकृयाः ॥ संयतस्य सतः  
अविरतिः ॥ प्रतिशब्दमिमुख्यम् ॥ समादानकृयाः ॥  
ईर्यापथयनिमित्त  
ईर्यापथकृयाः ॥ वा ॥ एताः ॥ पचः ॥ कृयाः ॥ ॥  
क्रोधावेशादौ  
मादोषिकीः ॥ कृयाः ॥ प्रदुष्टस्य सतः ॥  
अभ्युद्यमः ॥

—पञ्च अवर्तानि ॥ १ ॥ प्राणान्यपरोपण आदिक (सासर्वा आ-यायके प्रथम सूत्रमें कहेगे  
—पञ्चीत क्रियायें (नीचे, करी जाती हैं । देश (= चैत्य) गुरु शास्त्र वा भागमकी  
पूजादि लक्षणा सम्यक्त्वगमनके बतानेवाली क्रिया  
—सो सम्यक्त्व कृया है । (२) अय देवता वा कुदेव (कुगुरु कुभुव) का  
—स्तवनादिरूपमिथ्यात्वके कारणवाली क्रिया (= कर्म) में अभिवर्ति वा लगन (= प्रवृत्ति)  
—मो मिथ्यात्व कृया है । (३) कायाविकोंस गमनागमनादिरूप प्रवर्तना  
—सो प्रयोग कृया है (४) संयमी पुरुषका (= सतः) ॥  
—कर्तयमके सम्मुखपना वा सम्मुख होना सो समादान कृया है ॥  
—(५) गमनकर्मके निमित्तक कृया अर्थात् गमन करनेके लिये सो कृया  
—सो ईर्यापथ कृया है । वे इतनी पंच कृया है ॥  
—(६) क्रोपके वक्षसे (जो कृया) अर्थात् परको दोष लगानेकी प्रवृत्ति दुष्टस्वभावता  
—सो मादोषिकी कृया है । (७) दुष्टपावका (= सत ) अर्थात् दुष्टताका  
—उद्यम करना (जैसे कोरी इत्यादिका)

(१) 'मिथ्यात्वहेतुका प्रवृत्ति मिथ्यात्वकृया' यह पाठ श्रुतिप्रमाण से एक प्रतिशब्दकृत पाठ पर है। पाठ  
तत्पञ्चविंशतिक्रियाः है । प्रयोगादिभिर्भूत सतः वा इत्यादिकृत प्रवृत्तिमो मिथ्यात्वहेतुका कर्मप्रवृत्ति मिथ्यात्वकृया ऐसा पाठ है । दोनो  
पाठोंका मागार्थ एकसा है अथवाभ्युद्यमको 'मिथ्यात्व' की कारण प्रवृत्ति सो मिथ्यात्व कृया है ऐसा कर्ष कृया है इनमे विषयापाठ प्रत्यक्षकरक मिथ्यात्व  
के कारणवाली कृया (= कर्म) में अभिवर्ति वा लगन (= प्रवृत्ति) ऐसा अनुवाद किया है ।



पदानिवासी नगररूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विषयव्यवस्थित सवार्थसिद्धिका शक्यता: हिंदी अनुवाद अध्याय ६ सूत्र ५

अत्र इन्द्रियादीना पंचादिभिर्यथासख्यमभिसंबन्धो वेदितव्य ॥ इन्द्रियाणि पंच । चत्वार कथाया । पचावृतानि ।

पंचविंशतिक्रिया इति ॥ तत्र पंचेन्द्रियाणि स्पर्शनादीन्युक्तानि ॥ चत्वार कथाया कोधादयः ॥

सुवार्थ — इन्द्रिय-रूपाय-अवत-क्रियाः॥ पञ्च चतुर्  
पंच-पंचविंशति-संख्याः॥ पूर्वस्यः॥

सागपरायिक आत्मस्पर्शः॥ यथासंख्यम्० यथादाः॥ यथानिः॥

इन्द्रिय, कथाय, अवत, क्रिया, पंच-चार  
= पंच-पञ्चीस संख्यारूप अथवा गणनाबाले पहिले

= साम्यपरायिक आत्मवर्के यथासंख्य अर्थात् पहिलेको पहिला, दूसरेको दूसरा, तीसरेको तीसरा, चौथेको चौथा, येव होते हैं

यथार्थ इन्द्रिय (स्पर्शन-रसन-ग्राह्य-बुद्धि-स-भोग) पंच; कथाय (कोष मान-माया-लोम) चार; अवत (हिसा-अनुत वा विध्यायाण, सेय वा चोरी अवग्रह-परिव्रह) पंच; क्रिया (सम्यक्त्व-मिथ्यात्व वयोग-समाधान-वर्णपय; प्रादोषिकी, कायिकी, आचिकरणिकी, पारिवापिकी, ग्राणातिपातिकी; दशन स्पर्शन आत्ययिकी-समभ्यानुपातन-कनायोग; स्वरस्त-निर्मा-विदारख-आश्रयायादिकी, अनाकांक्ष; शारंग-पारिवाहिकी-याया विध्यादर्शन-अमत्याख्यान; पञ्चीस ये उनवाखीससाम्यपरायिक आत्मवर्के मेव हैं ।

पुनर्यनुवाद — अत्र० इन्द्रिय आदीनाम्॥ पंचाविभिर्भेदः  
यथासंख्यम्०

अभिसम्बन्धः॥ वदितव्यः॥ इन्द्रियाणि॥ पंच॥

यत्सारः॥ कथायाः॥

पंचमवृतानि॥

पंचविंशति-क्रियाः॥ इति० । तत्र० पंचवद्वयादि॥

स्पर्श-आदीनि॥ वक्तानि॥ यत्साररूपायाः शोषआदयः॥

= यहाँ (इस सूत्रमें इन्द्रियादिकोंके पंच आदि (सख्याओं)से

= यथासंख्य अर्थात् पहिलेकोपहिला, दूसरेकोदूसरा, तीसरेकोतीसरा, चौथेकोचौथा

= सम्बन्ध जानने चाहिये । इन्द्रिय (स्पर्शन-रसन-ग्राह्य-बुद्धि-भोग) पंच हैं

= चार (कोष-यान वा अर्कपर-माया वा रूपद, लोम) कथाय हैं

= पंच(हिसा-विध्यायाण-चोरी-मैयन परिग्रह अवत हैं)

= पञ्चीस(सम्यक्त्व-मिथ्यात्व इत्यादि) क्रिया हैं । तहाँ पंच इन्द्रिय

= स्पर्शीविक(अध्याय २ सूत्र १६में)वर्णन कीगई हैं । चारकथाय कोषआदिक हैं ॥

पञ्चवशात्तु कृया उच्यन्ते ॥ पञ्चवशात्तु कृया उच्यन्ते- चैत्यगुरुप्रवचनपूजादि-  
लक्षण सम्यक्त्वविधिनी कृया सम्यक्त्वकृया । अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुका कर्म-  
प्रवृत्तिर्मिथ्यात्वकृया ॥ गमनागमनादिप्रवर्तनं कार्यादिभि प्रयोगकृया । सैयतस्य सत अविरति  
प्रत्याभिमुख्यं समादानकृया । ईयापथनिमित्तेर्यापथकृया । ता एता पच कृया ॥ क्रोधावेशात्प्रा-  
दोषिकी कृया । प्रदुष्टस्य सतोऽभ्युद्यम

चैत्यगुरुप्रवचनपूजादि-  
लक्षण सम्यक्त्वकृया ॥ कृया हे- चैत्यगुरुप्रवचन  
प्रवृत्तिर्मिथ्यात्वकृया ॥ सम्यक्त्वकृया ॥ कृया ॥  
सम्यक्त्वकृया ॥ अन्यदेवता-  
स्तवनादिरूपमिथ्यात्वकृया ॥ कर्मप्रवृत्तिर्वा  
सो मिथ्यात्व कृया ॥ कर्मप्रवृत्तिर्वा  
सो प्रयोग कृया ॥ सैयतस्य सत  
अविरति ॥ सैयतस्य सत  
प्रत्याभिमुख्यं समादानकृया ॥ ईयापथनिमित्तेर्यापथकृया ॥ ता एता पच कृया ॥ क्रोधावेशात्प्रा-  
दोषिकी कृया । प्रदुष्टस्य सतोऽभ्युद्यम

(१) 'मिथ्यात्वहेतुका प्रवृत्ति मिथ्यात्वकृया' यह पाठ द्वितीय पत्रकाद सर्वार्थसिद्धि तथा एक पार्तिवस्तुनिमित्तक पत्र ५६ पर है यही पाठ  
तत्पराचर्यावर्तकर्म है । प्रथमापृष्टि की सर्वार्थसिद्धि तथा वा इत्युक्तिगत प्रतिनीति मिथ्यात्वहेतुका कर्मप्रवृत्ति मिथ्यात्वकृया' ऐसा पाठ है । दोनो  
पाठोंका आचार्य एकसा है अप्रकल्पणकी 'मिथ्यात्वकी कारण प्रवृत्ति को मिथ्यात्व' कृयाई पञ्चापार्थ कृयाई इत्ये पिकुलापाठ ग्रहणकरक 'मिथ्यात्व  
के कारणकृती कृया (० कर्म) से अनिच्छित वा जगत् (० प्रवृत्ति) ऐसा ग्रहणवाद किया है ।



अप्रमृष्टादृष्टभूमी कायादिनिक्षेपोऽनाभोगक्रिया । ता एता पचक्रिया ॥ यां परेण निर्वर्त्यौ क्रिया स्वयं करोति सा स्वहस्तक्रिया । पापादानादिप्रवृत्तिविशेषाभ्युन्नान निसर्गक्रिया । पराचरितसाव-  
द्यादिप्रकाशनं विदारणक्रिया । यथोक्तामाज्ञाभावश्रयकादि चारित्रमोहोदयाक्तर्तुमशन्नवतोऽन्य-  
थाप्ररूपादाज्ञाव्यापादिकी क्रिया । शाठ्यालस्याभ्यां प्रवचनोपदिष्टविधिकर्तव्यतानादरोऽनाकान्ति-  
क्रिया । ता एता पचक्रिया ॥ छेदनभेदनविशसनादिक्रियापरत्वमन्येन वा कियमाणे प्रहर्ष प्रारम्भक्रिया

अप्रमृष्ट-अदृष्टभूमी ॥ काय आदि निक्षेपः

अनाभोगक्रिया ॥ ताः ॥ एता ॥ पचक्रिया ॥

पाप ॥ परेण ॥ निर्वर्त्या ॥ क्रिया ॥ स्वयं करोति ॥ सा ॥

स्वहस्तक्रिया ॥ पाप आदानादि प्रवृत्ति-विशेष

अभ्युन्नान ॥ निसर्गक्रिया ॥ पर-आचरित

स-अवपादि प्रकाशनम् ॥ विदारणक्रिया ॥

चारित्र-मोहोदयाक्तर्तुः यथा-अवकाशः ॥ आज्ञा ॥

आदरपरा-कृत ॥ अशन्नवतोऽन्य ॥ अन्याः प्रकपणात् ॥

आज्ञाव्यापादिकी ॥ क्रिया ॥ शाठ्य आलस्याभ्याम् ॥

प्रवचन उपदिष्ट-विधि-कर्तव्यत्वा अनादर ॥

अनाकांक्षाक्रिया ॥ ताः ॥ एताः ॥ पचक्रिया ॥

छेदन भेदन-विशसनादि-क्रिया-परत्वम् ॥ अन्येन ॥ वा

क्रियमाणे ॥ प्रहर्षः ॥ प्रारम्भक्रिया ॥

=विनासोपीहुर्रवा आद्रीहुर्र (अमच्छ) और (विनासोस्वीहुर्र) = अदृष्ट/पृथिवीमें  
कायभाविक्रानिषेण अर्थात् रैठना, सोवना, खेदना, इत्यादि करना ॥

=सो अनाभोग क्रिया है । ते एती पच क्रिया है ।

= (१६) जो दूसरेकर करने योग्य क्रियाको आप करता है सो

= स्वहस्त क्रिया है । (१७) पापके श्रण्यादिक प्रवृत्तिके विशेषको

= भ्रष्टा जानना सो निसर्ग क्रिया है । (१८) अन्यका आचरण क्रियाहुआ

= आपसरित कार्यादिकका भगद करना सो विदारण क्रिया है ॥

= (१९) चारित्रमोहक उदयस (परमागममें) ज्योंकी त्यों कहीहुर्र आज्ञाके

= आचरयक आदिके करनेका (= कृतु) असमर्थ होनेवाला भिन्न प्रकारवर्णन करनेसे

= आज्ञाव्यापादिकी क्रिया है । (२०) कृत्य = शाठ्य/भ्रष्टवा = शाठ्य तथा आलस्यसे

= शास्त्रोक्त विधान अथवा रीतिकी कर्तव्यतामें अनादर (करना)

= सो अनाकांक्षा क्रिया है । ते येती पच क्रिया है ॥

छेदन भेदन धारण आविक क्रियामें तत्परपक्षा अथवा अन्यकरि

= कियहुयेमें आनन्द (मानना) सो प्रारम्भ क्रिया है ।

(१) सोम इत्यनिचित प्रमिवोका पाठ छेदकभवनवितसर्जनादि क्रिया पराव आवेककारकसे क्रियमाण प्रहर्ष प्रारम्भ क्रिया ऐसा पाठ है ता शार्पटवर्तिकमें वितसर्जनादिके स्थानमें 'वर्षसकात्' शब्द है ।

पञ्चानाम्नी ज्ञाङ्गपरमाहय यदीलहत पदध्वेद और विमतत्यर्थसहित सवार्थसिद्धिका शब्दार्थः द्विती अनुवाद आध्याय ६ सूत्र ५

परिग्रहविनाशार्थं पारिग्राहिकी क्रिया । ज्ञानदर्शनादिषु निकृतिर्वचन मायाक्रिया । अन्यमिथ्या-  
दर्शनक्रियाकरणकारणविष्ट प्रशंसदिभिर्दृढयति यथा साधु करोषीति सा मिथ्यादर्शनक्रिया । सयम  
घातिकर्मोदयप्रशादनिवृत्तिप्रत्याख्यानक्रिया ता एता पञ्चक्रिया ॥ (समुदिता पञ्चविंशतिक्रिया )  
एतानीन्द्रियादीनि कार्यकारणभेदाद्भेदमापद्यामानानि सम्पराधिकस्य कर्मण आसूवद्वाराणि भवन्ति

परिव्रतः सन्निवृत्तः भवति॥ पारिव्राट्क्री॥ क्रिया॥ ।

गान्धयन आदिषु॥ निहवि॥ वञ्चनम्॥

मायाप्रियाः॥ । अन्वयः॥ मिथ्यादृशन

प्रिया-रण-काण आदि नृ० ॥॥ प्रशंसाविधिः॥

इद्वन्ति वपाऽमाः॥ । कुरापिगिः॥

मिथ्याद्वयनक्षिणा !॥ । संययगति वर्ध-

उदयनवारः। अनिवारिः॥

अमत्याम्यानक्रियाः॥ । तान्॥ एताः॥ पञ्चक्रियाः॥

(समृदिताः॥ पञ्चपिण्डिक्रियाः॥) एतानि॥

एन्द्रिय मयदीनिः॥ कार्य-कारण प्रधानः। प्रत्यक्षः।

आप गमानानि!... साम्परायिकस्य। कर्मणाः॥।। साम्प

प्राणानि॥॥ भवति न

=(२५) परिग्रह की रक्षा के लिये (प्रवर्तना) से परिग्रह की क्रिया है।

=(२१) ज्ञान-दर्शन-आदिषु अर्थ (=निष्कृति) और उर्गा अर्थात् कण्डसे प्रवर्तना

=सा माया क्रिया है। (२४) अन्यको अर्थवि किसीको मिथ्यात्वके

कार्य करने करने में लीन हो (अभिप्रेत), पर्याप्त भावि करि

बद्ध करना है भंस त यक्षा (=साध) कृत्ता है सो (=आ)

==सिध्दा कर्तुं किया है। (२५) मगणने पाष षडनेने षडने

— ११ —

पुस्तक परीक्षा

—सो अभ्रत्यास्यान क्रिया है । त गनी पंज क्रिया है ॥

=(पुनर्लु मयुमगमिष ममीन रिमामे म्म्) । ते

—इसका तपस्यायापन प्रयास (प्रयास)। य

—शब्दवैकल्याय अवतृत्तक्रिया (—आवादान)क्राय कारणक संवर

— २२३ —  
आप्त शक्तिर ( = आप्रयमान ) साम्प्रदायिक कर्मके आश्रयके

वर्द्धारति ए अयाव यदा हा द्रव-रूपाय अप्रुत तो कारण हे मधुरि क्रिया हे वे

उने (शन्द्रय-रूपाय-अयुत) के निमिषसे होतो है एसखिये कार्य

पदानिपाली मगारूपसहाय बनीक कुल पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थविद्विष्टिका शब्दशः हिंदीअनुवाद अध्याय ६ सूत्र ५, ६  
 छात्राह योगत्रयस्य सर्वात्मिकार्यत्वात्सर्वेषां समाधिर्णां साधारणस्य ततो बन्धफलानुभवनग्रन्थविशेष इत्यत्रोच्यते ।  
 नेतदेवम् । यस्मात् सत्यपि प्रत्याशसम्भवे तेषां जीवपरिणामेभ्य अनन्तविकल्पेभ्यो विशेषोऽभ्यनुज्ञायते । कथमिति  
 चेदुच्यते—

॥ तीव्रमन्दज्ञातज्ञातभावनाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेष ॥ ६ ॥

मम ॥ आह ॥ योगत्रयस्य ॥ सर्व-आत्म -  
 कार्यत्वात् ॥ सर्वेषाम् ॥ सवारिणाम् ॥ साधारणस्य ॥ ततः ॥  
 बन्धफल-अनुभवनम् ॥ प्रतिअविशेषः ॥ इति ॥  
 अत्र ॥ उपपत्ते ॥ न ॥ एतद् ॥ एवम् ॥  
 यस्मात् ॥ सति ॥ अपि ॥ प्रति-  
 आत्मसम्भवे ॥ तेषाम् ॥ जीवपरिणामेभ्यः ॥  
 अनन्त-विकल्पेभ्यः ॥ विशयः ॥ अभ्यनुज्ञायत ॥ कथं इति चेत्

उच्यते ॥

सूत्रम्—तीव्रमन्दज्ञातज्ञातभावनाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥

= तीव्रभाव—मन्दभाव-ज्ञातभाव-अज्ञातभाव अधिकरण-वीर्यविशेषेभ्य तद् विशेष भवति ॥ ६ ॥

सूत्रार्थ—तीव्र भाव-

मन्द भाव-

ज्ञात भाव-

अज्ञात भाव-

अधिकरण-

= यहाँ मम करता है कि (मन बचन-काय) तीन यागस सब आत्मा के  
 कार्यत्वात् ॥ सर्वेषाम् ॥ सवारिणाम् ॥ साधारणस्य ॥ ततः ॥  
 बन्धफल-अनुभवनम् ॥ प्रतिअविशेषः ॥ इति ॥

= (उपपरमें) यहाँ कहा जाता है कि इस प्रकार यह नहीं है  
 न-संक्षिप्ते (मन-बचन काय के योग) प्रत्येक कीबके (साधारण)  
 = सम्भव होने पर भी ( = सत्यवि) तीन (तीनों) के जीवपरिणामके  
 अनन्त में होनेसे विशेष जाना जाता है । मम (- वेत्) ऐसा कैसे है  
 अर्थात् जीवकेपरिणामके में देह विभिन्नसे बचका फलके योगन में क्या  
 विशेषता है ऐसा मम होने पर

= (अग्रिम सूत्र में) कहा जाता है कि

= (अग्रिम सूत्र में) कहा जाता है कि

= तीव्र भाव ( = उत्कट परिणाम, उत्क्रपरिणाम, दृढरूप परिणाम )

= मन्दभाव ( = शिथिल परिणाम, अनुत्कट प रणाम )

= ज्ञातभाव ( = ज्ञानपूर्वक परिणाम, वा ज्ञानपूर्वक महसि )

= अज्ञातभाव ( = अज्ञानपूर्वक परिणाम वा अज्ञानपूर्वक महसि )

= अधिकरण ( = आधार आसरा अर्थात् जिसके आधार पुरुष का प्रयोजन हो )

१) ॥ प्रभाव मन्त्रा मन्त्रे नवा १ में तथामात्र गनु नारिलो तथया टीकार्थे मावदीर्घि करण, है । योग गाठ और मर्मे एक है ।

एतन्नितासा गणन्यमहाय वहीक कृत पदबद्धेय और विषयस्यर्थ सहित सर्वाथ सिद्धि ह्यधिक शब्दशः सिद्धी अनुवाद आध्याय ६ सूत्र ६  
 गत्याभ्यन्तरेदोरणवशादुद्विक्त परिणामस्तीव । तद्विपरीतो मन्द । अय प्राणो हन्तव्य इति ज्ञात्वा प्रवृत्तिज्ञो  
 त मेत्युन्मते । मदात्ममादाद्वाऽनवबुद्धे प्रवृत्तिज्ञातम् । अधिक्रियन्तेऽस्मिन्नर्थो हेतुधि करण द्रव्यमित्यर्थ ।

वीर्य-विग्रहः ।

तद्विपरीतः ।

= और वीर्य (सामर्थ्य, बल) [ इन छह ] के विशेषसे मा मेरसे

= पूर्वोक्त (= वद अर्थात् साम्प्रदायिक आसुबके जन गकीम भेदों) में विशेष  
 ( अर्थात् न्यूनाधिक कारतम्प ) है । ( जैसे कि लघु-लघुतर तथा बहुलतम

एसे ही तीव्र-तीव्रतर तथा सोबूगम विभाव ) मायार्थ जीव के जैसे २ उच्च परिणाम  
 की, शिबिन्न परिणामको, ज्ञानपूर्वक परिणामकी अज्ञानपूर्वक परिणामकी,  
 आचारकी और वीर्य ( इन छहों ) की न्यूनता और अधिकता होती है वैसे वैसे  
 ही साम्प्रदायिक आसुबके पूर्वोक्त जनगतीस भेदों में विशेष ॥ होती है ॥

इत्यनुवादे - १५-अभ्य-नरह-उदीरण-वशात् ।  
 गन्तुं । परिणाम । तं नृः ।

= उच्च वा उत्कृष्ट परिणाम सो तीव्रभाव है अर्थात् वाक् अभ्यन्तर  
 कारणसे बहुबुद्ध क्रोधादिक कषायोक्तिरी वीवता वा उग्रतारूप  
 परिणाम सो वीव भाव है ।

= नृस [ वीवभाव ] से विरुद्ध [ परिणाम ] सो मन्दभाव है अर्थात्  
 क्रोधादिक कषायों की शिथिलता से जो परिणाम हो सो मन्दभाव है ।

= नर जीव हत्या भाय ऐसा मानकर प्रवर्तना सो  
 = वाव [ भाव ] ऐसा कहा जाता है यावक वस्तु । के वश में होने] से  
 [ = पदाव ] वा अर्हकर से [ अदाव ]

[ वा ] असाधनताम [ असाधनता ] विना जानकर प्रवर्तना सो अज्ञात [ भाव ] है  
 = भाव र दिये गये हैं वा आश्रय किये गये हैं जिसमें प्रयोजन  
 नृ ॥ अविहरण है द्रव्य है ऐसा वातव्य है

२६ रिपरीतः । मन्दः ।

अमृ । माजो । इ वक् । इति ० ज्ञात्वा - प्रवृत्ति ।  
 ज्ञानम् । इति ० उत्पत्ते । मदात् ।

मयादात् । अनवरपुत्र + मनुजि । अज्ञातम् ।  
 अविज्ञाने अस्मिन् । अर्थाः ।  
 निवृत्तिपरिणामम् । द्रव्यम् । इति ० अर्थाः ।

द्रव्यस्य स्वशक्तिविशेषो बोधेयम् । भावशब्द प्रत्येक परिसमाप्यते-तीव्रभाव, मन्दभाव इत्यादि । एतेभ्यस्तस्यावयवस्य विशेषा भवन्ति कारणभेदाद्धि कार्यभेद इति ॥ अत्राह अधिकरणमित्युक्तं, तत्स्वरूपमनिर्ज्ञातमतस्तद्व्यतामिति । तत्र भेदप्रतिपादनद्वारेणाधिकरणस्वरूपनिर्ज्ञानार्थमाह—

## ॥ अधिकरण जीवाऽजीवा ॥ ७ ॥

द्रव्यस्य १॥ स्वशक्तिविशेषो बोधेयम् १॥ भावशब्दः १॥

मत्स्यकम् १॥ परिसमाप्यते १॥

तीव्रभावः १॥ मन्दभावः १॥ इत्यादिः १॥

एतेभ्यः १॥

तस्य १॥ भावस्वरूपविशेषः १॥ भवति १॥

कारण-भेदः १॥ कार्यभेदः १॥ मत्स्यकम् १॥  
अधिकरणम् १॥ प्रतिपत्तम् १॥ तत्स्वरूपम् १॥ अनिर्ज्ञातम् १॥

अतः १॥ तद्वै १॥ उच्यते १॥ इति १॥ तत्र १॥

भेदः प्रतिपादन-द्वारेण १॥ अधिकरण स्वरूप-  
निर्ज्ञान-अर्थम् १॥ आह १॥

(१) सूत्रम्—अधिकरण जीवाऽजीवा

सूत्रार्थः—भावस्वरूपः १॥ अधिकरणम् १॥ जीवाः १॥

अजीवाः १॥ भवन्ति १॥

=द्रव्यके निगुण्यक्ता विशेष सा बोधेय है; ( इस सूत्रमें ) भावशब्द  
=मत्स्यकं पृथक् ( तीव्र-मन्दभाव आशय ) का लुगाया जाता है ॥

( ७७ ) तीव्रभाव-मन्दभाव, आशयभाव होते हैं ।

=तत्र (तीव्रभाव-मन्दभाव आशयभाव-अज्ञातभाव अधिकरणतयावीच्यके विशेष) इति

तिस (साम्प्रदायिक) भास्यके भेद आशय है । अर्थात् इन दूहके अन्तरसे

साम्प्रदायिक भास्यका अन्तर है, ये जब जहाँ जैसे होते हैं वहाँ तैसा

=तैसा 'युनाधिकृतलिये हुये साम्प्रदायिक भास्य भी होता है ।

=कारणक भेदस ही कार्य भेद होता है । यहाँ ( शिष्य ) पूछता है कि

=अधिकरण कहा गया, उस (अधिकरण) का स्वरूप नहीं बताया गया है

=इसलिये (=अतः) वह (स्वरूप) कहा जाता चाहिये ॥ वहाँ (वस अधिकरणके)

=भेदक प्रतिपादन द्वाराकरि अधिकरणके स्वरूपके

=निर्णयके लिये ( आचार्य उचर सूत्रमें ) कहते हैं कि

= (भावस्वरूप ) अधिकरण जीव-अजीवा भवन्ति

=भास्यम आधार वा अधिकरण जीव द्रव्ये और

= अजीव द्रव्ये (दानों) हैं अर्थात् जीव द्रव्ये और अजीव द्रव्ये दोनोंके आधार  
आश्रय वा भास्यसे भास्य होता है अथवा जीवके आश्रयसे भास्य नहीं  
होता है । तथा अकेलेपुद्गलके आश्रयसे भी भास्य नहीं होता है जैसे पुरुष

बिना स्त्रीके गर्भ नहीं रहसकता है और स्त्री बिना पुरुष या गर्भ नहीं रह सकता है ।

(१) १ तात्पर्य नोर विगम्यर शनो आशयार्थमे इस सूत्र का पाठ और अर्थ एक है ॥





इचतश्चैकश. ॥ ८ ॥

आद्यः सम्भसमारम्भमध्यागकृत्कारिनिनुमतकषायविशेषो षस्त्रिंस्त्रिंश्चतुर्चेकश = आर्य (जोव अधिकरणं)  
साम्भ-समारम्भ धारम्भ योग-कृत-कारित अनुमान कषाय विशेष त्रि त्रि त्रि चतु च एकश भेदा भवन्ति ॥ ८ ॥

मन्त्रार्थं भाष्यम् । लीढं अधिकरणम् । सरम्भ-

समारम्भ-आरम्भ-विशेषः ॥ त्रि ०

पद्मयोग-विशेषः ॥ त्रिः ॥

एकशः \* कुव डारित-अनुमत

विशेषः ॥ त्रि ७ पु १० ७

काश्रि-मान-माया। काम क पाय-। वक्ष्यः।  
पवर ० ख ० मेहा । मष्टि ।

10

प्रथम ( = प्रादौभवः = आश ) जीव-अधिकरण, संरम्भ-

**वृत्सपारम्भ-आरम्भके विशेषण मेदकरि धीन और**

—(संरम्भ सपारम्भ मा (म) ए ६ ए ६ के काय -वनन -पनो योग के भेद हरि विनवीन

—(पूर्वोक्तनौवसे) एक एक कुं करित अनुवादना के

विशेषकर तल तल (वयुक्त सखाइसमेव) एक एक के

वर्कपमान भाया खाम कपाय क विशयक र  
-भार भार (ये सध गिलहर पक सौ बल) भे-भ (—)

मनन्वानुबन्धो क्रोध मान मापा लोप. अप्रत्ययाह्वान लोप. ॥१॥  
 न्यायान्तरात् तेषामनुबन्धो भद्रमा (—ब) हाव ॥ ॥२॥  
 भयात् ॥ ॥३॥

प्रा. लोमः सज्जन कष मन माया लोम से पूर्वोक्त प्रत्ये - सत्ताई

इति है। और यदि धन गनुंयो अपत्यरूपान मत्यालयान संविक्रान

संसाधन भंडा की कमी को पूरा करने के लिए संसाधनों का उपयोग करना आवश्यक है।

नौ को मन वचन कयक्य तौ नो मोने पले ने

और क्रोध मान माया-लोभ इन बार कपायोंसे ग्रन्थसे १-३-२२-३

नौ कपायके १६ भेदों से युण्डिगे नौ ४३२ मव जीवाधि करणने भवे

गरे यहाँ एकला पाठ है • धधर झों क निखरे बिजा म • से

यार यह अभय है किना थिराण अभय है मां अभयों का पकड़िया

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

(1) श्रद्धाभर आम्नाय के समापनशायीयधिगमसूत्रमें तथा नगर यहाँ पर

(र) द्वितीयां अयं तानि हं परन्तु त्रि-मयषा प्रिष्ट्वा अयं है तीन पार यह अयं

४.१३ अखिल-भारत गान्धी स्मरण दिवस

उत्तन्नक्षणा जीवाऽजीवा ॥ यत्र क्तन्नक्षणा पुर्ववचन क्रियम् । अधिहरणशोभानार्थे पुर्ववचनम् ॥

(१) जीवाऽजीवा अधिहरण इत्यय विशेषो ज्ञापयितव्य इत्यर्थ ॥ क पुनरसौ ? द्विसाद्यपकारणभाव इति ॥

स्यादेतन्मृत्पदार्थेयादित्वाज्ञोवाजीवा इति द्विवचन न्यायप्राप्तमिति ॥ तत्र—यर्थाणामधिकरणत्वात् येन केन चित्पदार्थेण विशिष्ट इत्यमधिकरणम् । न सामान्यमिति बहुवचन कृतम् ॥ जीवाऽजीवा अधिहरण कस्य ?

जीवाऽजीवा अधिहरणभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

प्रथमादः । — इक्षुलमणाः । श्रीरा - अनीया ॥ ॥

यदि न उक्तं सत्तया पुनरुपपन्नम् ॥ अथमपि ॥ अथमपि ॥  
अधिकारण-विशेष-जापन-अथमपि पुनरुपपन्नम् ॥ ॥  
नोद-अनीर-अधिकारणम् ॥ इति ॥ अथमपि विद्यापदम् ॥  
आपविषय इति ॥ अर्थः ॥ फलपुनरुपपन्नम् ॥ अथमपि ॥  
हिमा-आरि-उपकारणमात्रम् ॥ इति ॥ स्यात् ॥ एतदुक्तम् ॥  
यत्न पदार्थो ॥ दित्वा ॥ जीव-अनोपा ॥ इति ॥  
दि उपपन्नम् ॥ माय-मासम् ॥ इति ॥ अ ॥ तत्तु ॥ न ॥  
पराधारात् ॥ अधिकारणत्वात् ॥ यत्नः कर्तव्यम् ॥  
एवंपिण्डे विनिर्गम्यम् ॥ अथमपि ॥ अधिकारणम् ॥  
न ॥ मायामयम् ॥ इति ॥ यदुपपन्नम् ॥ इति ॥  
नोद-अनीर-अधिकारणम् ॥ इति ॥ मासवस्वम् ॥  
इति ॥ अर्थ-वगान् ॥ अपिसम्बन्ध-भूतवति ॥ ॥  
तत्र नील-अधिकारण-वेद-प्रतिपान-अथमपि ॥ अथमपि ॥

—यहणा स्वेकग रे लवण मिजडे ऐसे जोष अजीब रे ॥

(पम्)लो(मोत्र म्नीव क)ल्लण का गये हैं फिर द्धन किस हिसे है ॥

(उत्तर) प्रायश्चित्तगाम्ना विशेषेण भगवन्कं ख्ये पुनः कथनम् ॥

जोब-अजीब-अधिहरण है इस प्रकार यह मेद

कमलने लगे थे। मैंने कहा कि मैंने भी बहुत कुछ देखा है। वह मुझे बताया कि वह एक बहुत बड़ा शहर है। मैंने कहा कि मैंने भी बहुत कुछ देखा है। वह मुझे बताया कि वह एक बहुत बड़ा शहर है।

व्यवसायजानयोग्यहृत्पुत्रआनन्दायह। यदुरागं(मत्ता)प्रमाणात्मकसिद्धिः  
स्मृत्यर्थे समर्पणं यदिमीव मन्त्रीषमाधिकरण

वैदित्वात्मात्का उपपन्नयनात् । यादृ यः । मया पृषाद्भावः । न गतिमान् । न प्र-

॥ नीचमना न मूल प्रभुआके द्विवास मयाव्जान ब्रजनिवठा वस्तुआक शानस

= (१) मन्त्रमैश्वर्यवर्धनके स्थानमें दोषजनयुक्तिपुक्त (न्याय) प्राप्त है। (उत्तर) मोनशरी।

अपपरिचोक्तमधिकरूपनाहैअथात्भीवअनीवरूपथायमि

—पर्यायकरि यक्त वा मेदनात्ता अधिकरण (वा) द्रव्य है ।

नकि धर्मरूप है। ऐसे (स सभमें जीवाऽनीवा) वस्वचन किया है॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥

(२) जाय-मजाव-मापक-एवा आधार। नसकाइ (उपर) मातृवका ए

“(१) जीवाजीवाचिरम्य इत्यर्थ” प्रथमवृत्तिः पाठ है । द्वितीय मस्युणका पाठ “आवाजीवाचिरम्य इत्यर्थ” एसा है । वा इत्यवृत्तिस्तु प्रसिद्धा वा मी परो पाठ इ वगुणुअचिरम्य इत्यर्थे वाक्येन, स्वात्मन मयि कस्मै अचिरम्यमित्यय करिया है । एक शीमरी इत्यवृत्तिस्तु प्रसिद्धा जीवाजीवाचिरम्य मित्यर्थ पाठ इ । अथवा इत्यय क स्थान में इत्यर्थ पाठ है इन म्ब पाठों का एकमा ऊप है । हमने द्वितीय मस्युणका पाठ लिया है ।

एतानिवासी भगरूपसहाय बर्हील कुल पदच्छेद और निरस्तर्ष्य धरि न सर्वाथिभिर्द्विषका शब्दशः शिन्वो अनुवद अप्याय ६ सूत्र ८

एते चत्वारः सुजन्तास्त्र्यादिशब्दा यथाक्रममभिभवन्त्यन्ते—सम्प्रसारमागम्भारम्भस्त्रिय । योगास्त्रिय । कुन  
कातिनुमतास्त्रिय । व पायाश्चत्वार इति ॥ एतेषां गणनाभ्यावृत्ते इवा द्योत्यते ॥ एकश इति वोसां निदय । एकैकं  
न्यादीन् भेदान् नयेदित्यर्थः ॥

एते चत्वारः ॥ इति शब्दः ॥ सुव अन्ताः ॥

यय अप्यम्

अभिसम्बन्धयन्ते ।

संरम्भ-समारम्भ-आरम्भः ॥ अय ॥

यागाः ॥ अयः ॥

व-कारित-अनुपवा ॥ अयः ॥ इपाया ॥

चत्वारः ॥ इति ॥ एतयाम् ॥

गणना अभ्यावृत्तिः सुता ॥ द्योत्यते ।

१ वश ॥ इति ॥ वीप्सा-निर्देशः ॥

पदैवम् ॥ नि-यादोन ॥ भेदात् ॥ इति ॥ अर्थः ॥

न्ये चार वि वि वः बहुः (आदि) शब्द सुव् (न्स्) शब्दन्त है अर्थात्  
= (वि) अनुक्रमसे (संरम्भ समारम्भ-आरम्भः; काययोग वनयोग मनः  
योग, कुत-कारित-अनुपवा; क्रोचकपाय, मानव पाय; मायाकृपाय;

लोपी कपाय के साथ )

अज्ञाये जाते है अर्थात् संरम्भ समारम्भ आरम्भ क साथ प्रथम त्रिस  
सगाया जाता है, योग के साथ दूसरा त्रिस, कुव कारित-अनुपवा के  
साथ तीसरा त्रिस और कपाय के साथ चतुर्थ सगाया जाता है ॥  
हेत्वो विप्यली (२) पृष्ठ २१ ॥

= इय प्रकार ) संरम्भ-समारम्भ-आरम्भ मी न हुये । ( योग तीन हुए ।  
काय बचन यनो)

अर्थात् कारित-अनुपवा ना तीन हुए । ( क्रोच मान, माया-लोम ) कपाय  
= चार हुए । इन (संरम्भ-समारम्भ आरम्भ याग, कुन-कारित-अनुपवा,

और क्रोचकपाय, मानवपाय माया कपाय लोम कपायकी )

= निनीकी (गणना) दुहराना (= अम्, अष्टवि) सुव् (न्स्) मस्य करि  
प्रगट की गई है (अर्थात्)

= (इस सूत्रमें) एकश (शब्द) वारवार कहन (पनीप्सा) अर्थ (निर्देश) है ।

न्ये एकमपि तीन आदिक भेदोंको मासकरना ऐसा अभिप्राय वा तात्पर्य है ॥

प्राणव्यपदेशादिषु प्रमादवत् प्रयत्नावेश सरम्भ । साधनसमस्यासाकरण समारम्भ । प्रक्रम आरम्भ ।  
योगशु-दो ऽन्गन्यातार्थ । कृतवचन स्वातन्त्र्यप्रतिपत्त्यर्थम् । कारिताभिधान परप्रयोगापेक्षम् । अनुमतशब्द  
प्रयानस्य मानमपरिणामप्रदर्शनार्थ । अभिहितलक्षणा कृपाया ऋधादय । विशिष्यतेऽर्थान्तरादिति विशेषः ।  
म प्रत्यक्षमभिमतव्यवहारे-समामविशेष समारम्भविशेष इत्यादि ॥ आद्य जीवाधिकरण एतेर्विशेषेर्भिद्यत इति वाक्यशेष

दृश्यनुवाद - भागवितरापण आदिषु प्रमादवत् ॥

प्रग्न आरा ॥ सरम्भः ॥ साधन-

समस्यासाकरणम् ॥ समारम्भ ॥

नक्रम ॥ आरम्भ ॥

प्राणान् ॥ व्याख्यात-अर्थ ॥ कृतवचनम् ॥

प्रमाणम् ॥ प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ कारित-

प्रमाणम् ॥ पर-प्रयोग अपेक्षम् ॥ अनुमतशब्दः ॥

प्रयानस्य मानम परिणाम प्रदर्शनार्थः ॥

अभिहित लक्षणा ॥ कृपाया ऋधादय-आदय ॥

म प्रत्यक्षमभिमतव्यवहारे-इतिविशेषः ॥

म ॥ प्राणान् ॥ व्याख्यातस्वप्नवत् ॥ सरम्भविशेषः ॥

समारम्भविशेषः ॥ इत्यादिः ॥

प्राणम् ॥ मोन अधिकरणम् ॥ अर्थः ॥ विशिष्यते ॥ अभिमतः ॥

मिन्वाचपत्रम् ॥ ॥

विसादिक विपै प्रमादी भोवका

उभयपक्ष परित्याग अथवा उभयपक्ष भाव सो सरम्भ है । (विसादिकके) उपायमे

=अभ्यास करना वा सामित्री मित्रावना सो समारम्भ है ॥

=(विसादिकमें) बहुत चि वा प्रवर्तन करना वा लगना सो आरम्भ है ।

=योग वह शब्द है जिसका अर्थ (पूर्वमें) कह चुके हैं । कृतशब्द

=इस प्रवर्तनके लिये वा अन्तिम चि के लिये है अर्थात् स्वयं करै सो कृत है कारित

नाम (अभिधान) सरक सम्बन्धमें कराया जाय सो है ॥ अनुमत शब्द

=करन बोलै को मनोभाव करि भला जाननके अर्थमें है ।

=(परिले) कह चुके हैं वस्तु जिनके ऐसे कृपाय काय-मान-माया लोभ है

एक अर्थ (=अर्थ) अथ अर्थसमिस कार भिक्ष किया जाय ऐसा विशेष है

अर्थात् एक वस्तु का दूसरी वस्तु से जो भेद जलवावे वह विशेषशब्दका अर्थ है ॥

=वह (विशेषशब्द) प्रत्येकको लगाया जाता है (जैसे) सरम्भ विशेष,

=समारम्भ विशेष, आरम्भ विशेष, भोग विशेष, कृतविशेष,

कारितविशेष अनुगत विशेष, कृपाय विशेष ये हैं ।

=मयम जोन-अधिकरण इतने विशेषणों करि भदक्य किया गया है ॥

=एसा (विषयतः) वाक्य शेष है अर्थात् इस मयमें विशयैशब्द के पश्चात्

विषय शब्द और जाड़ लेना चाहिये वा और समझ लेना चाहिये ।

य वि ग नि स्य आ भारम्भक शय मे आते हैं छि जि बहोले 'म' और लेय मरयालोम हल्य आहल से बनत है । संख्यालोका अष्टिम न  
गिग दिया गता ८ ॥ ३ म न नमन्त्रपार छिन्न (अछि) दोवार छिन्न (चि) मोनकोर कर्तु + ग = कर्तु + ग (को) को मो म् अ स म कचित्क व्यवहार हो जो  
उपन गद हा रता ८ ॥ ३ म न नमन्त्रपार छिन्न (अछि) दोवार छिन्न (चि) मोनकोर कर्तु + ग = कर्तु + ग (को) को मो म् अ स म कचित्क व्यवहार हो जो

## आरम्भा अपि पदत्रिंशत् ।

- (१) ओषकृतकायसमारम्भ
- (५) ओषकारितकायसमारम्भ
- (६) ओषभ्रमुपतकायसमारम्भ
- (१६) ओषकृतवचनसमारम्भ
- (१७) ओषकारितवचनसमारम्भ
- (२१) ओषभ्रमुपतवचनसमारम्भ
- (२५) ओषकृतमनःसमारम्भ
- (२६) ओषकारितमनःसमारम्भ
- (३३) ओषभ्रमुपतमनःसमारम्भ
- आरम्भाः अपि षट्त्रिंशत् ।
- (१) ओषकृतकायआरम्भ
- (५) ओषकारितकायआरम्भ
- (६) ओषभ्रमुपतकायआरम्भ
- (१३) ओषकृतवचनआरम्भ
- (१७) ओषकारितवचनआरम्भ
- (२१) ओषभ्रमुपतवचनआरम्भ
- (२५) ओषकृतमनआरम्भ
- (२६) ओषकारितमनआरम्भ
- (३३) ओषभ्रमुपतमनआरम्भ

- (२) मानकृतकायसमारम्भ
- (६) मानकारितकायसमारम्भ
- (१०) मानभ्रमुपतकायसमारम्भ
- (१४) मानकृतवचनसमारम्भ
- (१८) मानकारितवचनसमारम्भ
- (२२) मानभ्रमुपतवचनसमारम्भ
- (२६) मानकृतमनःसमारम्भ
- (३०) मानकारितमनःसमारम्भ
- (३४) मानभ्रमुपतमनःसमारम्भ

- (२) मानकृतकायआरम्भ
- (६) मानकारितकायआरम्भ
- (१०) मानभ्रमुपतकायआरम्भ
- (१४) मानकृतवचनआरम्भ
- (१८) मानकारितवचनआरम्भ
- (२२) मानभ्रमुपतवचनआरम्भ
- (२६) मानकृतमनआरम्भ
- (३०) मानकारितमनआरम्भ
- (३४) मानभ्रमुपतमनआरम्भ

- (३) मायाकृतकायसमारम्भ
- (७) मायाकारितकायसमारम्भ
- (११) मायाभ्रमुपतकायसमारम्भ
- (१५) मायाकृतवचनसमारम्भ
- (१९) मायाकारितवचनसमारम्भ
- (२३) मायाभ्रमुपतवचनसमारम्भ
- (२७) मायाकृतमनःसमारम्भ
- (३१) मायाकारितमनःसमारम्भ
- (३५) मायाभ्रमुपतमनःसमारम्भ

—नारम्भ भी कृषीस हे अर्था—

- (३) मायाकृतकायआरम्भ
- (७) मायाकारितकायआरम्भ
- (११) मायाभ्रमुपतकायआरम्भ
- (१५) मायाकृतवचनआरम्भ
- (१९) मायाकारितवचनआरम्भ
- (२३) मायाभ्रमुपतवचनआरम्भ
- (२७) मायाकृतमनआरम्भ
- (३१) मायाकारितमनआरम्भ
- (३५) मायाभ्रमुपतमनआरम्भ

- (४) होमकृतकायसमारम्भ
- (८) होमकारितकायसमारम्भ
- (१२) होमभ्रमुपतकायसमारम्भ
- (१६) होमकृतवचनसमारम्भ
- (२०) होमकारितवचनसमारम्भ
- (२४) होमभ्रमुपतवचनसमारम्भ
- (२८) होमकृतमनःसमारम्भ
- (३२) होमकारितमनःसमारम्भ
- (३६) होमभ्रमुपतमनःसमारम्भ

- (४) होमकृतकायआरम्भ
- (८) होमकारितकायआरम्भ
- (१२) होमभ्रमुपतकायआरम्भ
- (१६) होमकृतवचनआरम्भ
- (२०) होमकारितवचनआरम्भ
- (२४) होमभ्रमुपतवचनआरम्भ
- (२८) होमकृतमनआरम्भ
- (३२) होमकारितमनआरम्भ
- (३६) होमभ्रमुपतमनआरम्भ







एते सपिण्डता जीवाधिकरणसवभेदा  
प्रत्यास्थानसञ्ज्वलनकपायभेदकृतान्तर्भेदसमुच्चयार्थः ॥ अष्टोत्तशतसंस्थाः सम्भवन्ति ॥ चण्डोऽनन्तानुबन्ध्यप्रत्यास्थान

एतद् सपिण्डताः जीवाधिकरण-आसन्नयेताः

अष्टोत्तर (१) शतसंस्थाः सम्भवन्ति । च-शब्दाः

अनन्तानुबन्धी-

अप्रत्यास्थान-

प्रत्यास्थान-

संज्ञक न-

कपाय भेदकृत-अन्तर्भेद-समुच्चय-अर्थः

इतने जीवाधिकरण आसन्नके भेद समुच्चित होकर

एक ही आठ गणनामें हो जाते हैं (इस सूत्रमें) च शब्द

अनन्तानुबन्धी (क्रोष-मान-याया-खोष) अर्थात् भिन्नसे अनन्त संसारका कारण

विप्यत्सत्त्वाव होता है

अप्रत्यास्थान (क्रोष मान-याया-खोष) अर्थात् जिसके उदयसे एकदेश त्यागरूप आसन्नके इतनी ही द्विवि-भाव न कर सकें (अर्थात्, द्विवि)।

प्रत्यास्थान (क्रोष, मान, याया, खोष) अर्थात् जिसके उदयसे समस्त महाप्रवृत्त रूप त्याग नहीं हो सके अथवा सकल संयम का ग्रहण न कर सकें

संज्ञक न- (क्रोष, मान, याया, खोष) अर्थात् जिसके उदय से संयमी हो रहे परंतु शुद्ध स्वभावों का सुखोपयोगस्वरूप हीन न हो सके

कपाय समन्वयके अन्तरंग म होके सप्रवृत्त के लिये हैं अर्थात् पूर्वोक्त संरम्भ सभारम्भ और आरम्भ के १०८ भेदों को अनन्तानुबन्धी, अप्रत्यास्थानावरण, प्रत्या

स्थानावरण और संज्ञकन कपायोंसे गुणा करनेसे जीवाधिकरणके चार सौ शतीस ४३२ भेद इस प्रकार हो जाते हैं कि

**कायसंरम्भके ४८ भेद ॥**

(१) अनन्तानुबन्धी-क्रोषकृतकायसंरम्भ

(२) संज्ञकनक्रोषकृत कायसंरम्भ

(३) अप्रत्यास्थानक्रोषकृतकायसंरम्भ

(४) अनन्तानुबन्धीपाणिकृतकायसंरम्भ

(५) प्रत्यास्थानक्रोषकृतकायसंरम्भ

(६) अप्रत्यास्थानपाणिकृतकायसंरम्भ

(१) सामाधिकारी आपमात्रा में एक ही आठ (१८) शती होते हैं सो उद्युक्त परस्त्री आठ (१०८) आरम्भ अभित पापके आश्रयोक्तो वृत्त काम के लिये अथवा एक एक ही आठ आठों को जोड़कर आप करने के लिये वेदोंके अधिग्राह्य हो जाते हैं ॥









पृथग्विवासी नगररूपसहाय वकीकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाथिभिर्द्विचका शब्दराः द्विती अनुवा ६ अथ्याय ६ सूत्र ८

- [३७] अनन्तानुबन्धीमानानुपतवचनसमार्थम् [३८] अप्रत्याख्यानपानानुपतवचनसमार्थम्  
[४०] संखनमानानुपतवचनसमार्थम् [४१] अनन्तानुबन्धीमायाअनुपतवचनसमार्थम्  
[४३] अप्रत्याख्यानमायाअनुपतवचनसमार्थम् [४४] संखनमायाअनुपतवचनसमार्थम्  
[४६] अप्रत्याख्यानकोपअनुपतवचनसमार्थम् [४७] प्रत्याख्यानकोपअनुपतवचनसमार्थम्

## ॥ मनसमारम्भके ४८ भेद ॥

- [१] अनन्तानुबन्धीकोपकृतमनसमार्थम् [२] अप्रत्याख्यानकोपकृतमनसमार्थम्  
[४] संखनकोपकृतमनसमार्थम् [५] अनन्तानुबन्धीमानकृतमनसमार्थम्  
[७] प्रत्याख्यानमानकृतमनसमार्थम् [८] संखनमानकृतमनसमार्थम्  
[१०] अप्रत्याख्यानमायाकृतमनसमार्थम् [११] प्रत्याख्यानमायाकृतमनसमार्थम्  
[१३] अनन्तानुबन्धीकोपकृतमनसमार्थम् [१४] अप्रत्याख्यानकोपकृतमनसमार्थम्  
[१६] संखनकोपकृतमनसमार्थम् [१७] अनन्तानुबन्धीकोपकारितमनसमार्थम्  
[१९] प्रत्याख्यानकोपकारितमनसमार्थम् [२०] संखनकोपकारितमनसमार्थम्  
[२२] अप्रत्याख्यानमानकारितमनसमार्थम् [२३] प्रत्याख्यानमानकारितमनसमार्थम्  
[२५] अनन्तानुबन्धीमायाकारितमनसमार्थम् [२६] अप्रत्याख्यानमायाकारितमनसमार्थम्  
[२८] संखनमायाकारितमनसमार्थम् [२९] अनन्तानुबन्धीकोपकारितमनसमार्थम्  
[३१] प्रत्याख्यानकोपकारितमनसमार्थम् [३२] संखनकोपकारितमनसमार्थम्  
[३४] अप्रत्याख्यानकोपअनुपतवचनसमार्थम् [३५] अनन्तानुबन्धीकोपअनुपतवचनसमार्थम्  
[३७] अनन्तानुबन्धीमानअनुपतवचनसमार्थम् [३८] प्रत्याख्यानमानअनुपतवचनसमार्थम्  
[४०] संखनमानअनुपतवचनसमार्थम् [४१] अप्रत्याख्यानमायाअनुपतवचनसमार्थम्

पयः निवासो जगद्वसनाय दक्षीणकृत एषधेय और निमत्तर्य सरित सर्षर्षिमिडि वृत्ति वा शब्दश रिन्दी अनुषाद अध्याय ६ मूत्र =

[३१] मत्यास्थानलोपकारितकायसमारम्भ  
[३४] अमत्यास्थानक्रोपअनुमतकायसमारम्भ  
[३७] अनन्धानुपन्नोमानअनुमतकायसमारम्भ  
[४०] सैकलानमानअनुमतकायसमारम्भ  
[४३] मत्यास्थानमायाभिनृतकायसमारम्भ  
[४६] अमत्यास्थानलोपअनुमतकायसमारम्भ

[३३] अनं तानुवचीक्रोधमनुमतकायसमारम्भ  
[३६] सञ्चलनक्रोधमनुमतकायसमारम्भ  
[३६] प्रत्यागण्यानमानमनुमतकायसमारम्भ  
[४२] अभत्याख्यानामायामनुमतकायसमारम्भ  
[४५] अनं तानुवचीक्रोधमनुमतकायसमारम्भ  
[४८] सञ्चलनक्रोधमनुमतकायसमारम्भ

॥ वचन समागम्य के अडतालिम (४८) मेदु ॥

[१] अनन्ताशुक्ल्योक्कोपकुठबनसमारंभ  
[४] संवत्स्रनक्रोषकुठबनसमारंभ  
[७] प्रत्यास्थानमानकुठबनसमारंभ  
[१०] अमत्वास्थानमायाकुठबनसमारंभ  
[१३] अनन्ताशुक्ल्योक्कोपकुठबनसमारंभ  
[१६] संवत्स्रनक्रोषकुठबनसमारंभ  
[१९] प्रत्यास्थानक्रोषकारितबनसमारंभ  
[२२] अमत्वास्थानमानकारितबनसमारंभ  
[२५] अनन्ताशुक्ल्योक्कोपकुठबनसमारंभ  
[२८] संवत्स्रनमानमाकारितबनसमारंभ  
[३१] प्रत्यास्थानक्रोषकारितबनसमारंभ

[२] अप्रत्याख्यानक्रोयकृतवचनसमारम्भ  
[३] अनन्तानुबन्धयोगानकृतवचनसमारम्भ  
[८] संक्षेपज्ञानमानकृतवचनसमारम्भ  
[११] भूतारण्यनभ्यासानकृतवचनसमारम्भ  
[१४] अमृत्याख्यानक्रोयकृतवचनसमारम्भ  
[१७] अनन्तानुबन्धक्रोयकारितवचनसमारम्भ  
[२०] संक्षेपज्ञानक्रोयकारितवचनसमारम्भ  
[२३] मृत्याख्यानमानकृतवचनसमारम्भ  
[२६] अप्रत्याख्यानमानकारितवचनसमारम्भ  
[२८] अनन्तानुबन्धीखोयकारितवचनसमारम्भ  
[३२] संक्षेपज्ञानकारितवचनसमारम्भ

[३] अत्वास्यानक्रोथकृत्वचनसमारंभ  
[४] अपत्यास्यानमानकृत्वचनसमारंभ  
[५] अनन्वानुवर्णीमायाकृतवचनसमारंभ  
[१२] सज्जन्तमायाकृतवचनसमारंभ  
[१५] प्रत्यारणाब्जोभकृतवचनसमारंभ

[१७] अनन्तानुवर्गधीक्रोधकारितवचनसमारम्भ  
[२०] सर्वपञ्चनक्रोधकारितवचनसमारम्भ  
[२३] प्रत्याख्याममानकर्तितवचनसमारम्भ  
[२९] अप्रत्यक्षान्नमायाकारितवचनसमारम्भ  
[२६] अनन्तानुवर्गधीक्रोधकारितवचनसमारम्भ  
[३२] सर्वपञ्चनक्रोधकारितवचनसमारम्भ

[illegible]





कश्चित्, अत एव अथ्यपुनरुक्तान्य गङ्गा पर्युक्तेष्व व्याकृतं यत्र कश्चनापि स्वमतेन सङ्गतिः स्वमपराधोपेक्षेभिः जगता

अनुक्रम-  
णिका

॥ २ ॥

| विषयाः                               | पृष्ठाणि | विषयाः                                  | पृष्ठाणि |
|--------------------------------------|----------|---|----------|
| २० इमकोपदेशः                         | १६       | ३३ विषयभाष्यविद्या शानोपपाः             | २६       |
| २१ क्वचनसिद्ध्यः कश्चित्प्रमाणकृतं च | १७       | ३४ कथोपनयः                              | २६       |
| २२ सप्तव्यवहारिकपरिचरितोपदेशः        | १८       | ३५ विदुषां सान्मार्गः                   | २७       |
| २३ सप्तवीमोगादुपाः                   | १९       | ३६ संयुक्तैः मगरकल्पना                  | २८       |
| २४ अपथ्यसेवनादोपाः                   | १९       | ३७ स्वस्य इमकोपनयः                      | २८       |
| २५ सप्तवीमोगादुपाः                   | २०       | ३८ जीवन् विवेकस्यागात्तुपेक्षा          | २०       |
| २६ अपथ्यसेवनादोपाः                   | २०       | ३९ इमककुर्वित्तोपनयः                    | २३       |
| २७ सप्तव्यवहारिका                    | २१       | ४० संसारिजीवस्य मनोरथभाषा               | २६       |
| २८ " " कारणाभाः कारणम्               | २२       | ४१ अर्थकामसम्पन्नतां पेक्षा सकल्पमालाभः | ४१       |
| २९ इमकस्य इमसंस्कृताः                | २३       | ४२ अर्थकामविकायाः                       | ४२       |
| ३० इमकनीरोपपा                        | २४       | ४३ अगाधिमयः                             | ४३       |
| ३१ सप्तवीमोपेक्षा                    | २५       | ४४ सितेश्वरस्य मुक्तिमनूपा              | ४३       |
| ३२ शलोदोपपा इत्यर्थं च               | २५       | ४५ मुक्ततां राजद्रोपमा                  | ४४       |

नियमाः

९७ भद्रस्य भद्रस्यादुष्कर०

९८ भद्रस्यागुणा

९९ वैराग्यम्

१०० वीक्षाऽऽदानं

१०१ यथायस्यपुण्यकृत्वं

१०२ दानादि रोगलाघवसा च

१०३ दानेच्छा

१०४ सिद्धान्तिमानः

१०५ दानोद्बोधना

१०६ दानोपायः

१०७ परोपकारे गुणाः

१०८ क्वाकृते प्रयोजन

१०९ क्वाचोक्तीकृतैः गुणप्राप्तिः

प्रशान्ति

९५

९६

९७

९८

९९

९९

१००

१०१

१०१

१०२

१०२

१०३

१०३

विषयाः

११० क्वाभयणे विवृतिः

द्वितीयः प्रस्तावः ।

१ मनुजगतैः मगरकस्यना

२ मनुजनगर्वाः वर्णनम्

३ कर्मणो राजस्वकस्यना

४ कर्मणो नाटकम्

५ काकपरिणतेः महादेवीस्त्वक०

६ काकपरिणसिद्धि चित्रसंसारनाटकं

७ मध्यपुरपापनामसुमतेर्जम्मा

८ जन्मोत्सवः नामकरणोत्सवश्च

९ कर्मकाकपरिणत्योः सर्वान् प्रसि ज्ञानकी-

जनक्या

१० मध्यपुरवभमिष्यप्रवाक्यामं

प्रशान्ति

१०४

१०५

१०६

१०६

१०७

१०८

१०९-११०

१११

११२

११३

११४

विषयाः

- ७१ सम्प्रदर्शनस्वरूपं
- ७२ सम्प्रदर्शनकामात् पीबल हृदया
- ७३ " " " सकल्पः
- ७४ द्विष्याः कुलिकस्याः
- ७५ सम्प्रदर्शनेति लोकपात्रोद्दामोद्भविवर्जः
- ७६ नोद्भविवर्जोद्भविवर्जः
- ७७ इत्यर्थं प्रति सूरस्य पदार्थं वर्णनं
- ७८ पीबं प्रति वर्णनस्यार्थं कटुवाक्यानि
- ७९ प्राप्तिसिद्धिर्वाच्यं कथनं नैव सुखसिद्धिः
- ८० सत्त्वविद्यासोऽपि मूर्च्छसि
- ८१ सत्त्वमूल्यं पुनस्मिन्वा
- ८२ वर्मस्य वनपेक्ष निर्वोद्भा०
- ८३ देशविरतिर्वाचनं संतोषस्य

पृष्ठानि

- ७३
- ७४
- ७५
- ७६
- ७७
- ७८
- ७९
- ८०
- ८०
- ८१-८२
- ८३-८४

विषयाः

- ८४ साहचर्यवर्तनं
- ८५ गुरोर्वर्णना
- ८६ भावयोग्यां साध्यासाध्यात्मविवारः
- ८७ देशविरतिर्वाच्यः
- ८८ पुनर्प्रेमोद्भाटः
- ८९ मूर्च्छया परिमहासौ प्रवृत्तिः
- ९० वीरस्य गुरोर्वर्णना
- ९१ प्रार्थना गुरोर्वर्णना
- ९२ सत्त्वविद्याः
- ९३ वपुर्वर्णना
- ९४ रागाविरतिः
- ९५ सत्त्वया सत्त्ववर्णना
- ९६ साध्यासाध्यात्मविवारः

पृष्ठानि

- ८५
- ८६
- ८७
- ८८
- ८८-८९
- ९०
- ९०
- ९१
- ९२
- ९३
- ९४
- ९४
- ९५

विषयाः

- ९ योषादेष्टात्प्रमावस्य परता
- १० त्वर्क्षेनचरितप्रकाशः राजसचिपे रागके  
सती राजा विषयमिच्छासो मन्त्री
- ११ महाभोगमन्त्रिणा
- १२ महाभोगासन
- १३ महाभोगप्रत्नानम्
- १४ त्वर्क्षेने मनीषिविचारः
- १५ बाळस्य त्वर्क्षेनापीनता
- १६ त्वर्क्षेनयोगशक्तिः
- १७ मनीषिणः साधधानता
- १८ हर्षोऽकुशलात्मजयाः
- १९ छुमसुन्दरीविचार
- २० त्वर्क्षेनप्रमाथः

प्रधानि

- १५८
- १५८
- १६०
- १६२
- १६२
- १६४
- १६५
- १६५
- १६६
- १६७
- १६७
- १६८

विषयाः

- २१ मध्यमबुद्धिपुत्र
- २२ कालविक्रमे मियुनदयकथा
- २३ भोगवृष्णा स्वरूपम्
- २४ अज्ञानजबोपस्वरूपम्
- २५ अनन्तत्रयोवक्षीकणः
- २६ कामक्षय्याऽऽरोहः
- २७ राक्षीवान्का
- २८ मन्तरुक्ता पीढा
- २९ मन्तरुक्त्स्यै निर्गतः
- ३० होमायोत्साहितो बाळः
- ३१ बाळमुक्तिः
- ३२ बाळवृत्तान्तः
- ३३ मध्यमबुद्धेर्पुणोत्साहः

प्रधानि

- १६८
- १७०
- १७४
- १७६
- १८१
- १८२
- १८३
- १८३
- १८५
- १८६
- १८७
- १८७
- १८९

प्राप्ति

प्राप्ति

विषयाः

प्राप्ति

११ सदागमस्युक्तिः

१२ सदागमानन्तस्य हेतुः

१३ सदानमसहिता

१४ सदानमपत्त्यै गमनं सहीयुगल

१५ अगृहीतसंक्राया बोधोपपत्तिः

१६ प्रज्ञाविज्ञानाद्यपि यम्यपुत्रः

१७ सत्सारिणीबालमा

१८ सत्सारिणीबालमा

१९ अम्यवहारमिति

२० मन्त्रितम्यवहारमिति

२१ भावरावाप्तिः

२२ दृष्टीवाच्यमिति

२३ विकलाद्यप्यपत्त्यै वासः

२४ पञ्चाक्षपञ्चम्याने वासः

२५ अनुप्यायुक्तपञ्चम्याने

२६ पुण्योपपत्तिः

२७ संकेतोद्देशः

दृष्टीयाः प्रस्तावः ।

१ अम्यवहारोत्पत्तिः

२ अम्यवहारोत्पत्तिः

३ वैधानरमेनीत्यागोपमः

४ अम्यवहारोत्पत्तिः

५ अम्यवहारोत्पत्तिः

६ अम्यवहारोत्पत्तिः

७ स्वर्णमयमेव मनीषिवाच्यमिति

८ स्वर्णमयमिति

१३५-१३६

१३७

१३८

१३९-१४०

१४१

१४२

१४३

१४४

१४५

१४६

१४७

१४८

१४९

विषयाः

- ९ बोधवेक्षाप्रभावस्य चरणा
- १० स्वर्सनचरितप्रकाशः राजसचित्ते रागके  
सटी रात्रा विषयामिच्छासो मणी
- ११ महाभोगमहिमा
- १२ महाभोगासन
- १३ महाभोगप्रस्थानम्
- १४ स्वर्सने मनीषिविचारः
- १५ बाळस्य स्वर्सनाधीनता
- १६ स्वर्सनबोगक्षतिः
- १७ मनीषिणः सावधानता
- १८ हर्षोऽकुसुमाढायाः
- १९ द्युमस्तुन्दरीविचारः
- २० स्वर्सनप्रभावः

प्रष्ठानि

- १५८
- १५८
- १६०
- १६२
- १६२
- १६४
- १६५
- १६५
- १६६
- १६७
- १६७
- १६८

विषयाः

- २१ मध्यमबुद्धिबुध
- २२ कालविलम्बे मियुनद्वयकथा
- २३ भोगवृष्णा स्वरूपम्
- २४ अज्ञानचरोपस्वरूपम्
- २५ अनङ्गत्रयोदशीक्षणः
- २६ कामसप्त्याऽऽरोहः
- २७ राक्षीबान्छा
- २८ व्यन्तरज्ज्वा पीडा
- २९ मदनकवत्स्यै निर्गतः
- ३० होमाद्योत्पादितो बाळः
- ३१ बाळमुक्तिः
- ३२ बाळवृषान्तः
- ३३ मध्यमपुष्टेर्भुजोत्पादः

प्रष्ठानि

- १६८
- १७०
- १७४
- १७६
- १८१
- १८२
- १८३
- १८३
- १८५
- १८६
- १८७
- १८७
- १८९

अमावरण इति—अमावरणानिमग्नं पञ्चैवाकारा भवन्ति, शेषेष्वभिप्रक्षेपेण कथमावर्तनादिषु चत्वार इति गायान्तरार्थः ११०१॥  
आचार्यस्तु 'अभिगतेषु पाठकृत्वा कोऽप्यवस्थाति, तस्य पञ्च—अणामागोऽसहस्रानां (महस्रानां) श्लोकपट्टानां ० सप्तम-  
हिविधियागार० संसेसु श्लोकपट्टानां ० पठति, निषिगतीषु अष्ट नव य आगारा इत्युक्तं, तत्पक्षे विगतीषु—सीरं दक्षिणपथीयं  
पथं सेह गुहो मधुं मज्ज मंस ओगाहिमग च, सस्य पञ्च सीराणि गावीणं महिशीणं अज्जाण पल्लिमाणं चट्ठीणं, चट्ठीणं दक्षि-  
णस्थि, पण्णीसं पतपि, ते दक्षिणा यिणा पठियच्चि, दक्षिणपथीयपताभि चत्वारि, सेहपि चत्वारि स्वर (सिह) अदसिहसुंम  
सरिसयाण, एसाभो विगतीभो, सेसाणि सेसाणि निषिगतीवो, सेसाणि पुण इति, दो विपदा—कट्ठीणिपुण्णं चत्तु-  
मार्दपिट्ठण य काणिता, दोणिण गुहा दयगुहो पिहगुहो य, मधूणि तिप्पि, मच्छिक्कं कोत्तिव्यं नामरं, योगाज्जाणि तिप्पि,  
उट्ठयर भट्ठयरं रदयर, अथया चमम मस सोणिव, एयाभो णव विगतीवो, ओगाहिमगं दसमं, ताविवाय अहिविवाय  
एग ओगाहिमेग चट्ठवरत्तं पद्यति सकेण पठित्वत्तिव्यं, सेसाणि अ ओगावाहीणं कप्पति, अति णज्जति अह एणेय चेष

१. श्रीमद्भैरव प्रादुरागतोऽसि प्रमादप्राप्तं तप्तं पद्म-मन्त्रागोचरं सदा महात्मा लोकपद्म-सर्वसत्ताधि देवेषु लोकपद्म-मनरो वासि निर्दिष्टोऽसौ ।  
 नर-ज-काम । तत्र विदुःशरो दृष्ट-भूतं दृष्टि जगतीयं पूतं तैकं गुह्यं मनु मया मातं अथादिभ्यं च तत्र पद्म श्रीराशि-पदां सद्भिर्लब्धं भक्तानां दृष्टकर्मणाऽप्रीत्यं  
 दृष्टीभ्यं दृष्टिं द्यावि नरनीलं पूतमात्रं ते दृष्टा भिन्ना ( न स दृष्टि ) दृष्टिजगतीयपुत्रादि अस्यानि तैकादि जगतीरि विजाकवीकुमुन्मसतर्धान्यां पूता भिन्नाय ।  
 रागादिभ्यं तैकानि निर्दिष्टवत् । तेषकादिभिः पुनर्मन्त्रिणं द्वे मन्त्रे-मन्त्रादिभ्यः दृष्टादिभिरेव च जगतीयत्वा द्वौ गुह्य-मन्त्रगुह्यं विष्णुगुह्यं, मन्त्रिणी द्वीभि-  
 र्मापुत्रं कौमुदिक नामां गुह्यकानि प्रीति-मन्त्रादौ ललाटवत् पञ्चरात्रं च जगता चर्म मातं ज्योतिषं पूता नर विदुःशरोः अथादिभ्यं दृष्टमं दृष्टिकाशान  
 दत्तव दृष्टकर्मणां नर जगत्पद्मं पञ्चरात्रं द्योत्य द्वितीयं तृतीयं च शोकादि च योगादिवर्गां कल्पान्ते वादि जगत्पद्मे ज्योतिषं दैवम् ।

[illegible]



पञ्चरत्नात्ता, आसुकारितं च पुनस्तथातं अणुरसया, तादेवस्य पञ्चमण्डिमिधं पाराविज्जति ओसई वा विज्जति, पर्यवतया  
 जाते वदेव विवेको, सर्वेव च पुरिमात्ते-पुरिमात्ते मयममहरद्वयकाठावधिप्रत्यास्थानं यथाते तत्र सप्त आकारा भवन्ति, इह  
 च इव सूत्रं-सुरे जगते इत्यादि, यदाकारा गतायाः, नवरं महत्तराकारः सप्तमः, असावपि सर्वोत्तरुण्यप्रत्यास्थाने साकारे  
 कृताधिकारे अत्रैव व्याख्यात इति न प्रत्यक्ष, एकाग्रने अष्टायेव, एकाग्रन नाम सङ्कुरुपविष्टपुताभाजनं नोन्नतं, सर्वत्र  
 द्यावाकाय भवन्ति, इह यदं सूत्रं-

‘पञ्चासणमिदमादि’ अणुरस्य अणाम्भोगेण सहसाकारेण सागारियागारेण आवटणपसारणेण शुक्लञ्च  
 द्वाणेण पारिदायविद्यागारेण महत्तरागारेण स्वयसमादिवसिपागारेण वीसिरति । ( सूत्र )

अणाम्भोगसहसाकारा सर्वेव, सागारियं अक्षसमुद्भिदस्य आगत जति वोळति पविच्छति, अह पिर तादेव सन्नायवा  
 पावोसि वद्वद अणुरस्य गच्छुणं समुद्भिदति, इत्यं पाद या सीसं या(भावंदज्ज)पसारस्य वा न भवति, अन्मुद्रापारिहो आय  
 रिओ पाद्रुणगा या आगदो अन्मुद्रवयं वस्य, एव समुद्भिदस्य पारिदायविद्या जति होज्ज कप्पति, महत्तरागारसमाधि तु

१ अणुरस्य अणाम्भोगेण सहसाकारेण सागारियागारेण आवटणपसारणेण शुक्लञ्च  
 द्वाणेण पारिदायविद्यागारेण महत्तरागारेण स्वयसमादिवसिपागारेण वीसिरति । ( सूत्र )  
 अणाम्भोगसहसाकारा सर्वेव, सागारियं अक्षसमुद्भिदस्य आगत जति वोळति पविच्छति, अह पिर तादेव सन्नायवा  
 पावोसि वद्वद अणुरस्य गच्छुणं समुद्भिदति, इत्यं पाद या सीसं या(भावंदज्ज)पसारस्य वा न भवति, अन्मुद्रापारिहो आय  
 रिओ पाद्रुणगा या आगदो अन्मुद्रवयं वस्य, एव समुद्भिदस्य पारिदायविद्या जति होज्ज कप्पति, महत्तरागारसमाधि तु

सहितं दृष्टवते, तत्र द्वावेवाकारौ, आकारौ हि नाम प्रत्याख्यानपथादहेतुः, इह च सूत्र 'सूरे जगत्प्रथमोकारसहितं पञ्च  
 कस्यह' इत्यादि सागारं व्याख्यातमेव, पद चेति पौरुष्या तु, इह च पौरुषी नाम-प्रत्याख्यानविशेषकस्यां पद आकारा  
 भवन्ति, इह चेदं सूत्रम्—

पौरुषि पञ्चकत्वाति, जगते सूरे चञ्चिद्वहसि आहार असण ४ अणत्प्रथमोणेण सहसाकारेण पञ्चप्र  
 कालेण विसामोहेण साधुवयणेणं सव्यसमाहिवसियगारेण वोसिरह ।

अनामोगतसहसाकारसंगतिः पूर्ववत्, पञ्चप्रकालादीनां सिद्ध स्वकर्म-पञ्चणगतौ विसा व रएण रेणुणा पञ्चएण वा  
 अणएण वा अंतरिते सूरेण दीप्तति, पौरुषी पुण्यासिकतु पारितो, पञ्चा गार्त साहे ठाहवव ण भग, अति भुजति हो  
 भग, एवं सवेहिव, विसामोहेण कस्सइ पुरिसत्स कम्मिवि सेसे विसामोहो भवति, सो पुरिसं पञ्चिमं विसं ज्ञाणति, एवं सो  
 विसामोहेण—अइठगार्दपि सूरे पदुं वत्सुरीयूतंति मण्णति णाते ठाति, साधुणो भर्णति—उपाहपौरुसी ठाव सो पञ्चिमितो,  
 पारित्ता मिणति अलो वा मिणह, सेणं से भुज्जवत्स कहितं ण पुरितवति, साहे ठाहवव, समायी प्पाम सेण व पौरुसी

१ पञ्चका विसो रत्तसा रेणुणा पञ्चतेव नाअमोण नाअमोणिते सूरे व वत्सवे पौरुसी पूर्वजिह्वा पारितवत् पञ्चाट् जार्त वरा कालार्तं च भव  
 वति सुद्धं जरा भग अर्धरत्नं विसामोहेण कस्सविव पुण्यज कटिज्जाति सेवे विसामोहो भवति च पूर्वपञ्चिमां भिन्नं ज्ञातमि पूर्व व विसामोहेण ज्ञातमिहवव  
 सूरे पदुं रासुर्वीयूतमिह मत्तवे ज्ञाते विहमि साधवो मण्णित—वत्सुरी पौरुसी ठावत् च पञ्चिमितः पारित्ता मिणति अलो वा मिणति  
 यज्जगत् कहितं च पुरितमिति जरा कालवत् । सायाधिर्मास तेन च पौरुसी

पञ्चकलाया, आमुक्कारितं च पुनस्त आतं अणस्तस पा, साहे तस्त पञ्चमणमिचिं पाराविच्चति ओसहं वा विच्चति, एत्थवरा  
पाते छहेव विवेगे, ससैव च पुरिमार्जे-पुरिमार्जे प्रथमपहरद्वयकाञ्चाविप्रत्यास्थानं गृह्यते तत्र सप्त आकारा भवन्ति, इह  
च इदं सूत्रं-‘सूरे सगगते’ इत्यादि, एकाकारा गतायाः, नवर महत्तराकारः सप्तमः, असायपि सर्वोत्तरुण्यप्रत्यास्थाने साकारे  
ह्वाधिकारे अश्रव व्याख्यात इति न प्रतन्यते, एकाक्षने अष्टाक्षे, एकाक्षन नाम सङ्कटुपविष्टपुताचाञ्चनेन भोजनं, तत्रा  
ष्टायाकारा भवन्ति, इह चेदं सूत्रं—

‘एकासर्णमिस्त्यादि’ अणत्थ अणान्नोणेण सहसाकारेण सागारियागारेण आवटणपसारणेण शुक्कञ्जु  
ट्ठणेण पारिहायणिपागारेण महत्तरागारेण सञ्चसमादिवत्तिपागारेण वीसिरति । ( सूत्र )

अणान्नोणसहसाकारा छहेव, सागारियं अन्नसमुद्दिहस्त आगतं अति पोतति पविच्छति, अह धिरं चाहे सक्कापवा  
पातोचि छट्ठं अणत्थ गंतूणं समुद्दिहति, इत्थं पार्दं वा सीसं वा ( पार्दं देज्ज ) पसारंज्ज वा ण भज्जति, अन्मुट्ठणारिहो आप  
रिओ पाट्टणगो वा आगतो अन्मुट्ठेत्तवं तस्स, एव समुद्दिहस्त पारिहायणिवा अति होज्ज कप्पति, महत्तरागारसमाधिं तु

१ प्रभाकणाया आमुक्कारि च पुनः आवपपपल वा तदा तस्मा प्रसमावादिमिचं पार्थतं भोजनं वा दीपये अन्नमये वृत्ते तदीय विवेका । अन्नामोप  
सहसाकारा तस्य सप्तमार्ज्योऽप्यसुरिहे आगता यद्भि ज्योतिरभ्यसि मदीयते अय विहरत्तरा अन्नामोपपपल इति तत्त्वात्तान्त्र १२-वा समुद्दिहत्ते इत्थं  
वाह वा सीसं वा आह्वयपद प्रसारपद वा च भवते, अन्मुत्तरावाहं आचार्यः प्रापूर्वको वाहआतोऽन्मुत्तरावर्धं तत्त, एवं समुद्दिहे पारिहायद्विधी वदि मयेव  
कस्यत महत्तराकारसमाधी तु तस्य ।

कासिय पाकिय वेय, सोदिय सीरिदं नहर । क्खिअमारारिअ वेय, परिसयमी पयइयब्बं ॥ १८९३ ॥

स्पष्टं—प्रत्यास्थानप्रवृत्तकाले विविचिता प्राप्तं पालितं वैय-गुनः पुनरुपयोगप्रतिआगरणेन रक्षितं स्तोभितं-गुर्वदिमदा नशोपभोजनासेवनेन वीरितं-पूर्णेऽपि कालावधौ क्खित्कालावस्थानेन कीर्तितं-भोजनपेठायाममुक मया प्रत्यास्थानं वद पूर्णमशुना भोस्य इत्युच्चारणेन आराधितं-सथेव एभिरेव प्रकारे सम्पूर्णनिष्ठा नीत यस्मादेवंभूतमेव वदाश्वासा लनादप्रमादाच्च महत्कर्मव्यकारणं वसमाह ईदस्मि प्रयतितव्यमिति एवंभूत एव प्रत्यास्थाने यदा कार्य इति गाथार्थः ॥ १८९३ ॥ साम्प्रतमनन्तरपारम्पर्येण तत्प्रत्यास्थानगुणानाह—

पक्कस्साणमि कए आसववारारु भुति पिहियार । आसववुच्छेएण तण्हावुच्छेअणं होइ ॥ १८९४ ॥  
तण्हावोच्छेएण य अउलोवसमो अये मणुस्साणं । अउलोवसमेण पुणो पक्कस्साण इवइ सुद्धं ॥ १८९५ ॥  
तसो अरिस्सवम्मो कम्मविचेरो तसो अपुब्बं हु । तसो केवलनाण तसो अ मुक्खो सपासुक्खो ॥ १८९६ ॥  
प्रत्यास्थाने कृते-सम्यगनिवृत्तौ कृतायां किम् !—आश्रयद्वाराणि भवन्ति पिहितानि-सद्विषयप्रतिषेधानि कर्मव्य-  
द्वाराणि भवन्ति स्थानितानि, तथावृत्तेः, आश्रयव्यवच्छेदेन च कर्मव्यवहारस्थानेन च सवरणेनेत्यर्थः, किं !—तद्वदपवच्छे-  
दने भवति-सद्विषययाभिजायनिवृत्तिर्भवतीति गाथार्थः ॥ १८९४ ॥ सद्व्यवच्छेदेन च तद्विषयाभिजायनिवृत्ता च  
अशुद्धः—अनन्यसदृशः उपपन्नो—मध्यस्थपरिणामो भवति मनुष्याणां-आयते पुरुषाणां, पुरुषप्रणीतः पुरुषप्रधानश्च धर्म  
इति स्व्यापनार्थं मनुष्यप्रवृत्ताम्, अन्यथा स्त्रीणामपि भवत्येव, अशुलोपक्षमेन पुनः—अनन्यसदृशमन्यस्यपरिणामेन पुनः

प्रत्याख्यानं—वक्तव्यं भवति—शुद्धं आपते निष्कलङ्कमिति गाथार्थः ॥ १५९५ ॥ एतः प्रत्याख्यानान्पुनराचारिष्यमीं  
 स्फुरतीति वाक्ययोगः, कर्मविवेका—कर्मनिर्भरा एताः—चारिष्यमात्, एतच्चेति द्विरावर्त्यते एतच्च—एताच्च कर्मविवेकात्  
 ‘अपूर्वमिति क्रमेणापूर्वकरणं भवति, एताः—अपूर्वकरणाभ्युपनिक्रमेण केवलज्ञानं, एतच्च—केवलज्ञानाद् सर्वोपपत्तिकर्मा-  
 न्भवेण मोक्षः सदासीत्या—अपवर्गो नित्यसुखो भवति, एवमिव प्रत्याख्यानं सकलकल्याणोपकारणं भवति एतेन कर्तव्य-  
 मिति गाथार्थः ॥ १५९६ ॥ इदं च प्रत्याख्यानं महोपाधेर्मेवाह द्वावसिद्धिं भवति आकारसमन्वितं वा यस्मिन् प्रत्यये  
 वा, अथ इदमभिधिसुताह—

नमुच्चारयोरिसीय गुरिमहेगासणेगठणे य । आपयित्त अमरुदे वरमे य अभिगगहे चिगई ॥ १६९७ ॥  
 दो एव सत्त अह सत्तद य एव एव पाणीमि । एव एव अह नव य पत्तेयं पिङ्गए नवय ॥ १६९८ ॥  
 दोबेव नमुच्चार आगारा एव पोरिसीय ए । सत्तेव य गुरिमहे एगासणगीमि अहेव ॥ १६९९ ॥  
 सत्तगठायसत्त ए अहेवायचित्तिमि आगारा । पंचेव अमरुदे उव्याणे वरिमि चत्तारि ॥ १७०० ॥  
 एव एवरो अभिगगहि निव्धीय अह नव य आगारा । अप्पारराण पंच ए इवन्ति सेसेरु चत्तारि ॥ १७०१ ॥

नमस्कार इत्युपलक्षणात् नमस्कारसहितं पौरुष्या गुरिमाह्वे एकाग्रत्वे एकस्थाने च आशान्ते अमकार्ये वरमे च अभिप्रपेह  
 चिह्नयो, किं !, यथासङ्गमेवे आकाराः, द्वौ एव च सप्त अष्टौ सप्तष्टौ पञ्च पदं पाने चतुः पञ्च अष्टौ सप्त प्रत्येकं पिङ्गको  
 सप्तक इति गाथाह्वयार्थः ॥ १५९७—१५९८ ॥ गाथार्थमाह—द्वावेव नमस्कारे आकारौ, इह च नमस्कारप्रदवाचनमस्कार

क्रासिय पालिय वेव, सोहििय नीरिय तहा । किहियमारहिअ वेव, एरिसयमी पयइपच्च ॥ १५९३ ॥

स्युष्टं-प्रत्याक्यानमहणफाले विधिना प्राप्तं पालितं वेव-पुनः पुनरुपयोगप्राप्तिआगरणेन रक्षितं स्तोमिदं-सुवार्दिप्रदानशेषभोजनासेवनेन तीरित-पूर्णेऽपि कालावधौ क्रिञ्चित्कालावस्थानेन कीर्तितं-भोजनवेलायाममुक्तं मया प्रत्यास्मात् सत् पूर्णमधुना भोस्य इत्थुच्चारणेन आराधितं-तथैव एभिरेव प्रकारे सम्पूर्णनिष्ठा नीत यस्मादध्वंभूतमेव तदाज्ञापालनादप्रमादाच्च महत्कर्मव्यकारण तस्माद् ईदृशि प्रयतितव्यमिति एवमूत एव प्रत्यास्थाने यत्नाः कार्य इति गाथार्थः ॥ १५९३ ॥ सान्प्रतमनन्तरपारम्पर्येण वत्प्रत्यास्थानगुणानाह-

पञ्चकस्त्राणानि कष्ट आसवदारारु भुति पिहियार । आसवबुच्छेएण तण्हाबुच्छेअणं होइ ॥ १५९४ ॥

तण्हाबोच्छेएण य अवलोचसमो अथे मणुस्साण । अवलोचसमेण पुणो पञ्चकस्त्राण इवइ सुद्ध ॥ १५९५ ॥

तसो वरिस्सअन्मो कम्मविषेगो तयो अणुद्धं हु । तसो केवलनाण तयो अ मुक्खो सपासुक्खो ॥ १५९६ ॥

प्रत्यास्थाने कृते-सन्ध्यानिवृत्तौ कृतायां क्रिद् १-आश्रयद्वाराणि भवन्ति पिहितानि-तद्विषयप्रतिबद्धानि कर्मवन्धद्वाराणि भवन्ति स्थानिगानि, तत्रापृथे, आश्रयव्यवच्छेदेन च कर्मवन्धद्वारस्पर्शनेन च सवरणनेत्यर्थः, किं १-तद्विषयवच्छेदने भवति-तद्विषययामिच्छापानिवृत्तिर्भवतीति गाथार्थः ॥ १५९४ ॥ सुद्व्यवच्छेदने च तद्विषयाभिजायनिवृत्त्या च अणुष्ट-भनन्यसदृशः तपश्चमो-मध्यस्थपरिणामो भवति मनुव्याणा-आयते पुरुषाणां, पुरुषप्रणीतः पुरुषप्रपानश्च धर्म इति स्थापनार्थं मनुव्यमहणम्, अन्यथा स्त्रीणामपि भवत्येव, अणुष्ठोपशमेन पुनः-भनन्यसदृशमध्यस्थपरिणामेन पुनः

प्रत्याख्यानं—अच्छरणं भवति—शुभं आपते निष्कलङ्कमिति गाथार्थः ॥ १५९५ ॥ ततः प्रत्याख्यानाच्छुद्धाकारिधर्मः स्फुरतीति वाक्यभोजः, कर्मविवेका—कर्मनिर्जरा ततः—आरिषधर्मात्, तत्रत्येति द्विरावर्त्यते तत्र—तस्माच्च कर्मविवेकात् 'अपूर्वमिति क्रमेणापूर्वकरण भवति, ततः—अपूर्वकरणाच्छेषिक्रमेण केवलज्ञानं, तत्र—केवलज्ञानात् भवोपमादिकर्म-भवेण मोक्षः सदासीक्या—अपवर्गो नित्यसुखो भवति, एवमिदं प्रत्याख्यानं सकलकृत्यानीककारणं अतो एवेन कर्तव्यमिति गाथार्थः ॥ १५९६ ॥ इदं च प्रत्याख्यानं महोपाधेर्मेदाद् द्वादशविधं भवति आकारसमन्वितं वा शुद्धते प्राप्त्यते वा, अत इदमभिधिक्षुराह—

मनुष्कारपोरिसीय पुरिमहेगासणेगठार्णे य । आपयिष अमरुटे चरमे य अभिगगहे विगर्हे ॥ १६९७ ॥

दो एव सप्त अह सप्तद्वय प पञ्च एव पाणिमि । अत्र पञ्च अष्ट नव य पत्नेय पित्रय नवय ॥ १६९८ ॥

दोदेव मनुष्कारे आगारा एव पोरिसीय च । सत्तेय य पुरिमहे एगासणर्गमि अट्टेच ॥ १६९९ ॥

सत्तेगठायसस च अट्टेवापयिषमि आगारा । पञ्चेव अमरुटे छप्पाणे चरिमि अत्तारि ॥ १७०० ॥

पञ्च अट्टरो अभिगगहि निष्वीय अष्ट नव य आगारा । अप्याचरण पञ्च च इवमि सेसेसु अत्तारि ॥ १७०१ ॥

नमस्कार इत्युपलक्षणात् नमस्कारसहिते पौकष्यां पुरिमाज्ञे पृक्काणने पृक्स्थाने च आख्यास्ये अमकार्ये चरमे च अभिमप्रहे विहृयो, किं ? यथासङ्गमेते आकाराः, द्वौ पदौ च सप्त अष्टौ सप्ताष्टौ पञ्च पदौ पाने अतुः पञ्च अष्टौ नव प्रत्येकं पिण्डको सप्तक इति गाथाद्वयार्थः ॥ १५९७-१५९८ ॥ आध्यात्मिक—द्वापेय नमस्कारे आकारौ, इह च नमस्कारप्रद्व्याप्तनमस्कार

कासिय पात्रिय वेध, सोदिय मीरियं तदा । किद्विभमाराहिअ वेध, परिसपमी पयइपव्व ॥ १५९३ ॥

सृष्टं—प्रत्यास्थानप्रवृत्तकाले विविधना प्राप्तं पात्रियं वेध—पुनः पुनरुपयोगप्रतिआगरणेन रक्षितं स्तोभितं—शुर्वादिप्रदानशेषभोजनसेवनेन वीरितं—पूर्वोऽपि कालावधौ किञ्चित्कालावस्थानेन कीर्तितं—भोजनवेलायाममुक मया प्रत्यास्थानं सत् पूर्णमनुना मोक्ष इत्युच्चारणेन आराधितं—तथैव एभिरेव प्रकारैः सम्पूर्णैर्निष्ठा नीतं यस्मादेवमूतमेव सदाज्ञापालनाद्यप्रमादाच्च महत्कर्मक्षयकारणं तस्माद् ईदृशि प्रयतितव्यमिति एवंमूत एव प्रत्यास्थाने यदा कार्य इति गाथार्थः ॥ १५९३ ॥ साम्प्रतमनन्तरपारम्पर्येण तत्प्रत्यास्थानगुणानाह—

पञ्चकस्साणमि कए आसव्वदाराइ हुति पिद्विपार । आसव्वुच्छेएण तण्हावुच्छेअण होइ ॥ १५९४ ॥

तण्हावोच्छेदेण य अजलोवसमो भवे मणुस्साणं । अजलोवसमेण पुणो पञ्चकस्साण इवइ सुद्धं ॥ १५९५ ॥

तस्मो अरिस्सचन्मो कम्मविबेगो तस्मो अणुब्बं तु । तस्मो केवलमाण तस्मो अ मुक्खो सयात्तुक्खो ॥ १५९६ ॥

प्रत्यास्थाने कृते—सन्मग्नियुक्तौ कृतायां किम् ?—आश्रयद्वाराणि भवन्ति पिहितानि—सदृश्वियप्रतिबद्धानि कर्मण्यद्वाराणि भवन्ति स्थगितानि, दध्वापृच्छेः, आश्रयव्ययच्छेदेन च कर्मण्यद्वारस्थानेन च ध्वरणेनेत्यर्थः, किं ?—सदृश्वियच्छेदेन भवति—सदृश्विययाभिधायनिवृत्तिर्मवतीति गाथार्थः ॥ १५९४ ॥ सदृश्वियच्छेदेन च तद्विषयाभिधायनिवृत्ता च अणुछः—अनन्यसदृशः ध्वशमो—सव्यस्परिणामो भवति मनुष्याणां—जायते पुरुषाणां, पुरुषप्रणीतः पुरुषप्रधानश्च धर्म इति स्थापनार्थं मनुष्यप्रवृत्तम्, अन्यथा स्त्रीणामपि भवत्येव, अणुलोपशमेन पुनः—अनन्यसदृशमन्यस्परिणामेन पुनः



‘अर्द्धं शुद्धं वाः पृथ्यते अर्द्धं प्रसवाय कल्प्यते’ इति, अपरिणताता अज्ञानं च न आपद्ये, एवं तु सामान्यविशेषभेदे-  
निरूपणायां सुखावसेय सुखभन्देय च भवति इति गाथार्थः ॥ १५९० ॥ तथा चाह—

असर्णं पाणना भेद, स्वाहम साहम तदा । एव परस्वियमी, सद्द्वितं जे सुह दोह ॥ १५९१ ॥

अद्यने पानकं भेद खादिमे स्वादिमे तथा, एवं प्रकृतिसे—सामान्यविशेषभावेनास्मादे, स्वावबोधाद् अज्ञातुं सुखं  
भवति, सुखन भन्दा प्रयस्यते, स्वत्वव्युत्पत्तिर्वा दीयते पास्यते च सुखमिति गाथार्थः ॥ १५९१ ॥ आह—मनसाऽन्यथा  
सम्भारिते प्रत्यास्थाने त्रिविधस्य प्रत्यास्थान करोमीति यागस्यथा चिनिर्गता चतुर्विधस्येति गुरुणाऽपि तथैव दत्तमत्र  
कः प्रमाणं !, इत्यत, द्विप्यस्य मनोगतो भाव इति, आह च—

अक्षरस्य निषिद्धि ए वज्रणमि जे खलु मनोगतो भावो । त खलु पञ्चकस्याणं न पमायां वज्रणञ्छ्रजणा ॥ १५९२ ॥

अन्यत्र निषिद्धिरे व्यञ्जने—विधियप्रत्यास्थानचिन्तायां चतुर्विध इत्येवमादौ निषिद्धिरे सुखे चः खलु मनोगतो भावः  
प्रत्याख्यातुः खलुष्टब्दो विद्यपणे अधिकतरसयमयोगकरणापहृतर्धेतसोऽन्यत्र निषिद्धिरे न तु तथाविधप्रमादात् यो मनो  
गतो भाव आद्यः सत् खलु प्रत्यास्थान प्रमाणं, अनेनापान्तरालगतसुखविषयान्तरप्रतिबेदमाह, आद्याया एव प्रवर्तक-  
त्वाद्, व्यपहारदर्शनस्य चाधिकृतत्वाद्, अतः न प्रमाण व्यञ्जनं—सञ्चिद्व्याधार्थयोर्वचनं, किमिति !, छलनाऽसौ व्यञ्ज-  
नमात्रं, तदन्वयाभापसद्भावादिति गाथार्थः ॥ १५९२ ॥ इदं च प्रत्यास्थानं प्रधाननिष्काराकारणमिति विधिवदनुया-  
यनीय, तथा चाह—

हेतुत्वेन तदेव स्वादयतीत्यर्थः । विधिष्वं निरुक्तं पाठात्, अत्रापि च रीति च अत्र इत्यादिप्रयोगदर्शनात्, साधुरेवायम  
 न्वय इति गाथार्यः ॥ १५८८ ॥ त्रकः पदार्थः, पदविग्रहस्तु समासभाष्यपदविषय इति नोक्ता । अशुना वाचनामाह—  
 सव्योऽपि आहारो अस्य सव्योऽपि बुद्धे पाणं । सव्योऽपि आहमसि य सव्योऽपि सारम होर् ॥ १५८९ ॥  
 यद्यनन्तरौदितपदार्थपेक्षया अश्वनादीनि ततः सर्वोऽपि आहारमधुर्विषोऽपीत्यर्थः अश्वन, सर्वोऽपि चोच्यते पान  
 सर्वोऽपि च आदिमं सर्व एव स्वादितं भवति, अन्यथा विशेषात्, तथाहि—यथैवाशनमोदनमण्डकादि भुषं क्षमयति तथैव  
 पानक द्राक्षाक्षीरपानादि आदिसमपि च फलादि स्वादिममपि साम्बूजगुणकलादि, यथा च पानं प्राणानामुपमं पर्वते  
 एवमश्वनादीन्यपि, तथा चत्वार्यपि से भान्ति चत्वार्यपि वा स्वादयन्ति आस्वाप्यन्ते वेति न कश्चिद् विशेषः, तस्मादधु  
 कमेव भेद इति गाथार्यः ॥ १५८९ ॥ इयं वाचना, प्रत्यक्षस्थाने तु यद्यपि पठदेव तथापि [ इत्यर्थत्त्वमासाद्यपि ] क्वचितो

नीतितः प्रयोक्तव्यं संयमोपकारकमस्ति एवं कल्पनायाः, अन्यथा दोषः, तथा आह—

अह अस्यामेव स्वर्वं पापम अविबज्जणमि सेसाणं । इयं य सेसविबेगो सेण विहसाणि चवरोऽपि ॥ १५९० ॥  
 यद्यश्वनमेव सर्वमाहारकारं गृह्यते ततः श्रेयापरिमोगोऽपि पानकादिवर्जने—तदकादिरित्यागे क्षयाणामाहारभेदानां  
 निवृत्तिर्न कृता भवतीति वाक्यशेषः, ततः का नो हानिरिति चेत् ? भवति श्रेयविशेषका—अस्ति च दोषाहारभेदपरित्यागाः,  
 म्यायोपपन्नत्वात्, प्रेक्षापूर्विकारितया त्यागपात्रं न्यायः, स चेद्दसम्भवति, तेन विभक्तानि चत्वार्यपि भक्षनादीनि, तदक  
 भावेऽपि तद्यदभेदपरित्यागे एतदुपपद्यते एवेति चेत्, सत्यमुपपद्यते दुरयस्यं तु भवति, तस्यैव देशस्य क्लृप्तस्यैव नेति

इत्यत्र सुदृढस्य अथवा इत्यर्थे भवति, तथा 'वा पाने' इत्यत्र पीयत इति पानमिति, 'वाह भवमे' इत्यत्र च वाह-  
 व्यादिमन्मलपातस्य स्थापय इति आदिमं भवति, एवं 'स्वद स्वर्द आसादने' इत्यत्र च स्थापय इति स्वादिमं कथ्यता  
 स्थापं स्थापं च, 'अन्वये'ति परिवर्तनार्थं यथा 'अन्यत्र प्रोणभीष्माभ्यां, सर्वे बोधाः पराङ्मुखा' इति, तथा आनोमनस-  
 भोगाः न आनोगोऽनाभोगाः, अत्यस्वपित्सृतिरित्यर्थः, तेन, अनाभोगं मुक्त्येत्यर्थः, तथा सहसाकरणं सहसाकार-जति  
 प्रवृत्तिर्योगादनिपर्वनमित्यर्थः, तेन तं मुक्त्या-मुत्सृज्यतीत्यर्थः । एव एवार्थः, एवविग्रहस्तु समस्तमाह्वयविवय इति क्वचि-  
 देव भवति न सर्वत्र, स च यथासम्भवं प्रदर्शित एव, चाकनाप्रत्ययस्थाने च निर्युक्तिकारः स्वयमेव दर्शयिष्यतीति सूत्र-  
 समुदायार्थः ॥ अधुना सूत्रसार्थिकनिर्मुक्त्येवमेव निकषयसाह—

अस्य पाणग धेय, साहसं साहस तदा । एतो आहारविही, चवधिवहो होह मायव्यो ॥ १५८७ ॥

आसु लुह समर्ह, अस्य पाणानुपगर्ह पाण । खे माह साहसमसि य, साएह गुणे तयो साह ॥ १५८८ ॥

अदानं-मण्डकौदनादि, पान धेय-द्राक्षापानादि, सादिमं-कलादि तथा स्वादिमं-गुहवाभूतपूयकलादि, एव आहार  
 विधिभुतिर्धियो भवति ज्ञातव्य इति गाथार्थः ॥ १५८७ ॥ साम्प्रत समप्रपरिभाषया आचार्यनिरूपणायाह—आशु-वीथं  
 धुर्धा-सुमुखा समप्रतीत्यदान, तथा प्राणानाम्-इन्द्रियादिकषणाना वपप्रह-उपकारे यद् वर्धत इति गन्मते सद् पानमिति,  
 स्वमिति-भाकाया वध मुखपियरमेव वसिन् मातीति आदिमं, स्वादयतिगुणान्-स्वादीन् संयमगुणान् वा यतस्ततः स्वादिमं,

सूरे खगाए णमोष्कारसहित पदबल्ल्याति बलविह्वलि आहार असर्ण पाणं साहमं साहमं, अण्णत्थ अण्णा  
मोर्गेणं सहसाकारेणं बोसिरामि ।

१ सुखं सुभासुपमा सुभासापकागतं निवेद्य । सुकराधिकसिद्धिर्दत्तात्तु सुखदेव प्रवर्धये ॥ १ ॥

इत्यत्र स्तुतयस्तत्र अस्यैव इत्यस्यैव भवति, तथा 'पा पाने' इत्यत्र पीयत इति पानमिति, 'आर मन्त्रे' इत्यत्र च इत्यदिमन्त्रप्रत्ययान्तस्य साधत इति कश्चिदं भवति, एवं 'स्वद स्वर्ग आस्वादने' इत्यत्र च स्वाद्यत इति स्वादिभं क्वचन साधं स्वाद्य च, 'जन्मने'ति चरिर्वर्तनार्थं यथा 'जन्मन् ज्ञोषामीष्याम्यां, सर्वे बोधा पराङ्मुखा' इति, तथा आम्नोमन्मन्मोना न जानोगोऽन्मोना, अस्मत्प्रवित्सृतिरित्यर्थः, तेन, अनामोर्ग मुक्त्येत्यर्थः, तथा सहाकार्यं सहसाकारं—अति प्रवृत्तयोगादनिपर्थनमित्यर्थः, तेन तं मुक्त्या—अुत्सृज्यतीत्यर्थः । एव पदार्थः, पदविग्रहस्तु समासभाक्प्रविवेच्य इति क्वचिदेष भवति न सर्वत्र, स च यथासम्भवं प्रदर्शित एव, आठनाप्रत्ययस्थाने च निरुक्तिकारः स्वयमेव दर्शयिष्यतीति सूत्र-समुदायार्थः ॥ अभुना सूत्रस्यार्थिकनिर्मुक्त्येवमेव निकययसाह—

अस्य पापना केच, स्वादमे सारम सदा । एसो आहारविही, जठविही होर वापयो ॥ १५८७ ॥  
आसु सुद समेह, अस्य पापाशुचगारे पाण । स्ते माह स्वादमति य, साधु गुणे तयो सारं ॥ १५८८ ॥

अदान—मण्डकोदनादि, पान चंप—द्राघापानादि, स्वादिभं—स्त्रादि तथा स्वादिभं—गुहताम्बूलपूष्कजादि, एव आहारविधिभर्तुर्दिषो भवति ज्ञातव्य इति गार्थार्थः ॥ १५८७ ॥ साम्प्रत समवपरिभाषया क्वाप्यार्थनिकम्पभावाद्—माशु—स्त्रीप्रधुषां—मुमुक्षा दमयतीत्यदान, तथा माणानाम्—इति द्रव्यादिकृष्णानां उपपन्ने—उपकारे षड् पर्वत इति गम्यते तत् पानमिति, स्वमिति—भाक्काय तस्य मुखादिपरमेव तस्मिन् प्राप्तीति स्वादिभं, स्वाद्ययतिगुणान्—रसादीन् संयमगुणान् वा चतस्रस्तः स्वादिभं,

दस एते सवे धातालीस दोसा णिषपविसिद्धा, एते कतारे दुर्निषादिसु ण भर्जाविति गाथार्थः ॥ २५० ॥ इदानीं भाषयु  
 त्तमाह—रागेण धा-अभिष्वङ्गसंश्लेषेण द्वेपेण धा-अभीतिष्ठश्लेषेण, परिणामेन च-इहलोकामाश्रयाश्लेषेण स्वभमादिना धा  
 षस्यमाणेन न दूषितं-न कष्टयितं यत् हु-यदेव सत् स्वस्वित्ति-तदेव सल्लुप्यभ्रस्यधधारणार्थयात् प्रत्याख्यानं भाषयि  
 युद्धं 'मुणेयव'ति ज्ञातव्यमिति गाथासमासार्थः ॥ अथयपरयो पुण-रागेण एस पूज्जद्वित्ति अहवि एयं करेमि  
 तो पुज्जिहामि एयं रागेण करेति, दोसण तद्वा करेमि जद्वा लोको ममहुत्तो पवति सेण एतस्स ण अद्वायति एयं दोसेण,  
 परिणामेण णो इहलोगद्वयाए णो परलोकाद्वयाए नो किञ्चिच्चसयज्जसद्वहेतु धा अण्णपाणययसोमेण सयणासणपरपदेतुं  
 धा, ओ एव करेति त भावसुद्धं ॥ २५१ ॥ एभिर्निरन्तरव्यावर्णितैः पद्विभिः स्थानैः भक्तानादिभिः प्रत्याख्यानं न दूषितं-न  
 कष्टयितं यत् हु-यदेव तत् शुद्ध ज्ञातव्यं । तत्प्रतिपक्षे-अभक्तानादी सति अशुद्धं हु-अशुद्धमवति गाथार्थः ॥ २५२ ॥  
 परिणामेन वा न नदूषितमित्युक्तं तत्र परिणामं प्रतिपादयन्माह—स्वभमात्-मानात्, कोधात्-मतीतात्, अनाभोगात्-यि  
 त्स्मृतैः अनापुच्छातः असन्ततोः (चातः) परिणामात् अशुद्धा अपायो वा निमित्तं यस्मादेव तस्मात् प्रत्याख्यानचित्ताया विद्वा

१ एस एते सर्वे द्विकर्तासिद्ध दोषा विषयं पठित्विद्धाः एते कस्यदादुर्निषादिसु न सम्बन्धे इति । २ अथयपरयोः युगा रागेर्भव पूजते इत्यहमपि पूर्व  
 क्तोभिः ततः पूजयित्वे पूर्व रागेण क्तोभिः द्वेपेयं तदा क्तोभिः जना कोको ममानयो एतस्मि तेनन धाद्वित्ति एव द्वेपेय परिक्रामय इहलोकाभावर न वाकोका  
 योय न कीर्तिवर्धयः प्राद्वेतिर्वा अत्रपावदस्यलोमेन दापनासदस्यद्वेतिर्वा न पूर्व क्तोभिः तत् भावसुद्ध ।

नू प्रमाणा निव्वपनव्वर्हनेनेति गाथार्थः ॥ २५६ ॥ धंमेणे एसो माणिज्जति अहंति पच्चक्खामि तौ माणिज्जामि, कोदहेण पडिच्चोवणाइ अवाटिअो जेच्छति जेमेतुं कोदहेण अक्खमच्छं करेति, अण्णभोगेण ण याणाति किं मम पच्चक्खणांति जिमिएण सभारितं भगतं पच्चक्खणाणं, अण्णपुच्छा णाम अण्णपुच्छाप वेव मुंजति मा वाटिज्जिह्वामि जहा तुमे अक्खमच्छो पच्चक्खादो चि, अहवा जेमेमि तौ भणिह्वामि वीसरिवति, 'असवति'चि जसिए एस्स किंचि ओसव वरं पच्चक्खातंति परिणामतोऽप्यु-  
 द्धोचि दारं । सो पुव्ववप्पिअो इहलोगअसक्किचिमादि, अहवा एसेव धंमादि अवाजति, अहं पच्चक्खामि, मा णिज्जुमी हामिचि, अहवा एए ण पच्चक्खाति । एवं ण कप्पति विट्ठु णाम ज्ञाणगो वस्स मुद्धं भवति सो अण्णपा प्प करेति अक्खहा, कम्मा<sup>१</sup>, ज्ञाणगो, चन्हा विट्ठु पमाणं, ज्ञाणवो सुहं परिहरतिचि अणितं होति, सो पमाणं, वस्स शुद्धं भयवीसर्यः । 'पच्चक्खणा सभरतं' मूळद्वारगाथाया प्रत्याख्यानमिति द्वारं व्याख्यातं । शेषाणि तु प्रत्याख्याज्यादीनि पच्च द्वाराणि नामनिष्पन्न निर्वेपान्तर्गताभ्यपि सूत्रानुगमोपरि व्याख्यास्यामः, किमिति<sup>२</sup>, अत्रोच्यते, येन प्रत्याख्यानं सूत्रानुगमेन परमार्थतः समाति

१ कम्मनेव माण्यते अहमपि प्रत्याख्यामि ततो मावसिप्ये, कोदहेण मथितोव्ववा विमंस्सितो वेच्छति विमिंतुं कोदवानज्जवं करोति अवावोयेव न जावति किं मम प्रत्याख्यामिमिदि विमिंतोव वसुद्धं मयं प्रत्याख्यावं अण्णपुच्छा नाम अवापुच्छीव सुवाजि मा वासिचि वज्ज अवाज्जकार्यः प्रत्याख्याव इति अथवा जेमादि ततो मथिप्यामि विस्सुवमिति असादिदि मास्सव किञ्चिदुं योच्छज वरं प्रत्याख्यानमिति पथिप्यमतोयमुद्ध इति द्वारं । ए पूर्ववर्त्तित एवकोव्वपा-  
 वीरिस्सव्वोहि, अथीव एव कम्मविरपाव इति अहं प्रत्याख्यामि मा विमिक्काविममिति अथीवे व प्रत्याख्याविज पूर्व व कम्मते विट्ठुवीस ज्ञावका वज्ज मुद्धं भवति कोज्जया न करोति अक्खाव, कस्मात्<sup>३</sup>, मावका, वक्काहिदुः प्रमाणं, ज्ञावकाः मुद्धं परिहरतीति अणितं भवति, ए प्रमाणं ।

दस एते सवे धातालीस दोसा निष्पद्यसिद्धा, एते क्वारे शुभिक्षादिषु ण भञ्जसिद्धि गार्थः ॥ २५० ॥ इदानीं भाषयु  
 द्यमाह—रागेण धा-अभिष्वङ्गलक्षणेन द्वेपेण धा-अभीतिरलक्षणेन, परिणामेन च-इहलोकाद्याशंसांलक्षणेन स्वप्नादिना पा  
 धस्यमाणेन न दूषित-न कलुषितं यत् तु-यदेव तत् स्वस्थिति-तदेव लल्लशब्दस्याधधारणार्थत्वात् प्रत्याख्यानं भाषयि  
 शुद्धं 'मुणेष्वंति'ति ज्ञातव्यमिति गार्थासमासार्थः ॥ अथयययो पुण-रागेण एव पूज्यदिति अर्धेति एव करमि  
 तो पुञ्जिहामि एव रागेण करेति, दोसेण तद्वा करमि जद्वा लोको ममदुखो पठति त्रेण एतस्व ण अद्वायति एव दोसेण,  
 परिणामेण णो इहलोकाद्वत्ताय णो परलोकाद्वत्ताय नो किञ्चित्सवयण्यसद्वहेषु धा अण्यपाणययलोमेण सयणासणययहेतुं  
 धा, ज्ञो एव करेति त भावसुद्धं ॥ २५१ ॥ एभिर्निरन्तरव्यावर्णितैः पद्भिः स्थानैः भक्षानादिभिः प्रत्याख्यानं न दूषितं-न  
 कलुषितं यत् तु-यदेव तत् शुद्ध ज्ञातव्यं । तत्प्रतिपक्षे-अभक्षानाद्यौ सति अशुद्धं तु-अशुद्धमयेति गार्थः ॥ २५२ ॥  
 परिणामेन वा न नदूषितमित्युक्तं तत्र परिणामं प्रतिपादयमाह—स्वभावात्-मानात्, क्रोधात्-प्रतीतात्, अनामोगात्-यि  
 स्मृतैः अनापृच्छातः असन्ततोः (चातः) परिणामात् अशुद्धः अपायो वा निमित्तं यस्मादेव तस्मात् प्रत्याख्यानविन्वाया विद्वा

१ दस एते सर्वे द्विक्रवारसिद्धा दोषा भिन्नं प्रतिपिद्धाः एते क्वारादुक्तिस्मादिषु न भजन्ते इति । २ अथयययोः युक्तं रागेण यदावते इत्यत्रयि एव  
 क्तोभिः एतैः पूज्यदित्ये पूर्वं रागेण क्तोति द्वेपेण तया क्तोति यथा क्रोद्धो ममावच्छो यत्सि तेन च धादिभूते एव द्वेपेण परिणामेन वेदलोभ्यत्वात् न चत्क्रोका  
 योय न कीर्तिवर्धनः स्याद्वेवोर्वा यज्जपाजप्यलोमेन रायणासनचक्रद्वेवोर्वा च पूर्वं क्तोति तत् भावस्तुत् ।



अनुभासह पुरुषपण अकस्तरपयवज्जोहिं परिसुद्ध । धंजलिचट्टो अभिसुद्धो त जाणणु भासणासुद्ध ॥ २४९ ॥ (भा०)  
 कतारे बुद्धिमक्खे आयके वा माहरे समुप्पत्ते । ज पाठियं म भगं त जाणणु पाळणासुद्धं ॥ २५० ॥ (भा०)  
 राणेण व दोसेण व परिणामेण व म वृत्तियं ज सु । त मल्लु पक्कस्साणं भावधिसुद्धं सुणेयव्वं ॥ २५१ ॥ (भा०)  
 एयहिं छहिं ठाणेहिं पक्कस्साणं न वृत्तियं ज सु । त सुद्धं मायव्वं तप्यहिं वक्खे असुद्धं सु ॥ २५२ ॥ (भा०)  
 धमा कोहा अणाभोगा अणापुच्छा असंतह । परिणामवो असुद्धो भवाव जन्हा विव पमाणं ॥ २५३ ॥ (भा०)  
 पक्कस्साणं समसं

कृतिकर्मणः—चन्दनकस्येत्यर्थः विद्युद्वि—निरवधकरणक्रिया प्रमुक्तं यः सः प्रत्याख्यानकाले अन्मूनासिरिकां विद्युद्वि  
 मनोवाक्कायगुणः सन् प्रत्याख्यातपरिणामत्वात् प्रत्याख्यानं ज्ञानीहि विनययो—विनयेन शुद्धमिति गावार्थः ॥ २४८ ॥  
 अनुनाडनुभाषणशुद्धं प्रतिपादयन्माह—कृतकृतिकर्मा प्रत्याख्यानं कुर्वन् अनुभाषते गुरुवचनं, समुत्तरेण वृत्त्येन मणसीत्यर्थः,  
 कथमनुभाषते?—मकरपदव्यञ्जनैः परिसुद्धं, अनेनानुभाषणायत्नमाह, धंजरं गुरु मणति बोद्धिरिति, इत्येति अप्यसि—बोद्धि  
 रानोचिति, संस गुरुमणित्वसरिसं भाणितव्यं । किंभूतः सन्<sup>१</sup>, कृतप्रज्ञस्त्रिभिर्मुक्तकज्ज्ञानीऽनुभाषणाशुद्धमिति गावार्थः  
 ॥ २४९ ॥ सामप्रतमनुपालनाशुद्धमाह—कान्तारं—अरण्ये बुद्धिर्बो—काष्ठयिज्यमे भासते वा—स्वरादी महति समुत्पत्ते सति  
 यद् पाठितं यत्र भग्नं तज्ज्ञानीऽनुपालनाशुद्धमिति । पूर्य धरममयोसा सोजस तप्पादपापवि दोसा सोजस पसप्पादोसा

<sup>१</sup> परं गुरुमनसि—मुखादवति अथमपि सन्निहितं गुरुपद्वाम इति श्लोके गुरुमनसि तदसं मणितव्यं । २ अन्मूनासिरिकां बोद्धव कस्यादवसा अति दोषाः  
 योव्या पुरुषादोषा

भूतैः प्रज्ञसा-प्रकपिता, कैः-तीर्थकरैः-श्रुतभाविभिः, सामह धर्म्ये, कथं-समासेन-सङ्गेपेणेति गायार्थः ॥ २४५ ॥  
 अभुना पश्वपिषत्पमुपदर्शयन्नाह-सा पुनः शुद्धिरेषं पश्वविधा, सद्यया श्रद्धानशुद्धिः ज्ञानशुद्धिश्च दिनयशुद्धिः अनुमान-  
 यणाशुद्धिश्चैव, तथाऽनुपाठनाविशुद्धिश्चैव भाष्यशुद्धिर्मयति पवी, पाठान्तरं वा 'सोहीसदहण' त्यादि, तत्र शुद्धिब्रह्मदो-  
 द्वारोपलक्षणार्थः, निर्युक्तिगाथा वेयमिति गायामासासायः ॥ २४८ ॥ अत्रयवार्थं तु भाष्यकार एव धर्म्यति, तत्राद्य  
 द्वारावयवार्थमतिपादनायाह-

पषक्स्त्राणं स्वप्नशुद्धेस्तिष्ठ जं जहि जया काले । त जो सदहृद नरो तं जाणसु सदहणसुद्ध ॥ २४६ ॥ (भा०)  
 पषक्स्त्राण जाणइ कल्पे जं जमि होइ कायक । नूतगुणे वस्तरगुणे त जाणसु जाणप्पासुद्ध ॥ २४७ ॥ (भा०)  
 प्रत्यास्थानं सर्वज्ञभाषितं-तीर्थकरप्रणीतमित्यर्थः 'य'दिति यत् सद्यर्विषयविधिसंन्यास्यतमं, सद्यर्विषयविधय च पश्वविधयं  
 साधुमूलगुणप्रत्यास्थानं पश्वविधयुत्तरगुणप्रत्यास्थानं द्वादशविधं भाषकप्रत्यास्थानं 'एष' जिनकल्पे चतुर्याम पश्वयामया  
 भाषकधर्मं वा 'यदा' सुमिधे बुमिधे या पूर्वाहे पराहे वा काल इति-धरमकाले तत् यः श्रद्धये नरा तत् तदभेदोपवा-  
 रात् तस्यैव तयापरिणतत्वाज्जानीहि श्रद्धानशुद्धमिति गायार्थः ॥ २४६ ॥ ज्ञानसुद्ध प्रतिपाद्यते, तत्र-प्रत्यास्थानं  
 जानाति-अयगच्छति कल्पे-जिनकस्यादौ यत् प्रत्यास्थानं यस्मिन् भवति कर्तव्यं मूलगुणोत्तरगुणविधय सज्जानीदि ज्ञान  
 शुद्धमिति गायार्थः ॥ २४७ ॥ दिनयशुद्धमुच्यते, तत्रेयं गायामा-

किइकम्मस्स विसोखी पउजई जो अहीणमहरित्ति । मणवपणकापशुत्तो त जाणसु धिणयओ सुद्ध ॥ २४८ ॥ (भा०)

वा सविभगभणसमोदयाण अथा पुराणि प्राणकुलाणि वा, अतरतो संमोदयाणवि वषदिसेज्ज ण दोसो,  
अह पाणागस्स सण्णाभूमिं वा गतेण सत्तहीभसादिगं वा दोज्ज साहे सापूर्णं अमुणस्य सत्तहिदिदि एव वषदिसेज्जा । वषदे  
सच्चि गदं । अद्दासमाही णाम दाणे वषदेसे अ अद्दासामत्थं, अति तरसि काणेसु वेदि, अह न तरति तो दयावेज्ज वा  
वषदिसेज्ज वा, अथा अथा सापूर्णं अप्पणो या समाधी तथा तथा पयतिव्व अद्दासमाधिदि वक्कसाणिप । अमुमेवार्थं  
मुपदस्येवद्वाद भाव्यकार—

सविनगअणसत्तमोदयाण देसेज्ज सहगकुलाह । अतरतो वा समोदयाण देज्जा जहस्समाही ॥ २४४ ॥ ( आ० )

गवार्था, पैयरमत्तंरत्तस्स अणसत्तमोदयस्सवि दातयं । साम्भवं मत्त्यास्थानशुद्धिः प्रविपाद्यते, तथा चाह माव्यकार—  
सोही पव्वप्त्ताणस्स छन्निवद्दा समणसमयकेकरिं । पव्वत्ता तित्थपरेरिं तमह जुज्ज समासेणं ॥ २४५ ॥ ( आ० )  
सा शुण सदद्दणा जाणणा य धिणयाणुमासणा वेव । अणुपाळणा विसोही मावविसोही भवे छट्ठा ॥ १६८६ ॥  
द्योपन शुद्धिः, सा मत्त्यास्थानस्य—मायानिकपित्तशब्दार्थस्य पद्विधा—यद्मज्जारा समणसमयकेसुभिः—साशुसिद्धान्तविद्

१ धीधेन्वोऽप्यसामोतिकेन्वो यथेतासि दानकुलासि आत्तकुलासि वा अमकुलस्य सांयोगिकेन्वोऽप्युपनिषेव दोसः अथ दानकुल संज्ञायुग्मं  
वा यथेन संपदीभकार्मिक वा भवेत् तथा आशुन्वोऽमुकस्य संपदीनेनमुपनिषेव यथेय इति गदं यथासत्तादित्यस्य द्वावे यथेसे च यथासाम्भवं यदि  
साम्भवेति आर्थाय द्वावेति अथ न साम्भवेति तथा द्वावेद्योपनिषेवा, यथा यथा आशुनामत्तमयो वा समाधिद्वारा तथा प्रवर्तितव्यं ननममाधीसि अकारात् ।  
२ नवान्तरमुपनिषेवसांयोगिकाणां वि दातव्य

लाभ इत्यत आह—न च विरतिपाठनाद् वैय्यावृत्य प्रधानवरमत्तः सत्यपि च लाभे किं तेनेति गाथार्थः ॥ १५८२ ॥  
 एव विनेयजनहिताय परमिमायभाषणं गुराह—न 'त्रिविधं करणकारणानुमतिर्भेदभिन्न 'त्रियिधेन' मनायाक्रुपाय  
 योगप्रयेण 'प्रत्याख्याति' प्रत्याख्ये प्रकान्तमपानावि अतोऽनन्तुपगतोपाखनमभ्योदकमते, यतश्चैयम् अन्यस्य दानम  
 सनादेरिति गम्यते, तेन हेतुहेतुन कारणं भुवि क्रियागोचरमन्यदानकरण सत्तुद्धस्य—आयासादिदोषरहितस्य तवः—  
 तस्माद् मुनेः—साधोः न भवति तद् भक्तहेतुः—प्रकान्तप्रत्याख्यानभक्तहेतुः, तयाऽनन्तुपगमाविति गाथार्थः ॥ १५८३ ॥ किंच—  
 स्वयमेव—आत्मनैवानुपालनीयं प्रत्याख्यानमुक्तं निर्मुक्तिकारेण, दानोपदेसौ च नेह प्रतिषिद्धौ, तन्नात्मनाऽऽनीय विवरण दान  
 दानभाक्कादिकुलाख्यानं दूपदेष्ट इति, यस्माद् एवं तस्माद् दद्यादुपदिष्टेष्टा, यथासमाधिना वा दयासामर्थ्येन 'अन्येभ्यो'  
 बाळादिभ्य इति गाथार्थः ॥ १५८४ ॥ अनुमेद्यार्थं स्पष्टयन्नाह 'कथं' इत्यादि, निगदसिद्धा, एतत् पुण सामायादी—सर्वे अभुं  
 खंतोपि साधूणां आणोसा असपाण देव्या, संतं धीरित्यं ण निगृहीतव अप्पणो, संतं धीरिए अण्णो णाऽऽणावेपमो, जया अण्णो  
 अमुगत्स आणेषु दिति, तन्मा अप्पणो संतं धीरिए बाधरियगिज्जाणवाकडुहपाहुणगादीण गच्छत्स पा सणायकुर्वेद्वो वा  
 असत्तणातपुहि वा छदिसपुण्णो आणोसा देज्ज वा दयावेज्ज वा परिषिएसु पा सत्सदीए वा दयावेज्ज, दाणेचि गत्तं, जयादिसेज्ज

१ अत्र पुनः सामाज्यारि—समसमुज्जामोऽपि साधून्मय आनीय भज्यमाने दद्यात् सद्दीर्घं न निगृहीतव आत्मनः सति दीर्घेभ्यो वाऽऽप्यारोदतवः यथाऽन्यो  
 द्युक्तेषु आनीय दद्यात् तस्मात् अस्यायः सति दीर्घे व्याकार्यत्वात्वाकडुहपाहुणकादिभ्यो गच्छत्स वा सद्गादीवकुर्वेद्वो वाऽऽप्यारोदतवः वा कतिवसेद्वं  
 आनीय दद्यात् द्यादेष्टा, पतिषिद्धेभ्यो वा सद्गात्तव वा द्यादेष्टे, द्यादिसिद्धि गत्तं, यथादिष्टेष्टा

वा सवितागमणासंमोदयाण कथा प्रस्तापि दाणकुञ्जाणि वा, अतरतो संमोदयाणपि उवादिसेज्ज प द्रोसो,  
 अह पायगास्त सण्णामूर्मिं वा गतेषु संज्जहीमयापिगं वा होज्ज ताहे साभूयं अमुगत्थ सत्तादिचि एवं उवादिसेज्जा । उवादे  
 ससि गतं । अहासमाही णाम दाणे उवादेसे अ उहासामत्थं, अति सरति आणेपुं वेति, अह न तरति तो दयासेज्ज वा  
 उवादिसेज्ज वा, अथा अथा साभूयं अप्पणो वा समानी तथा तथा पयवित्तव अहासमाधिचि वक्कणापिस । अमुमेवार्थ  
 मुपदर्शयन्नाह भाष्यकारः—

सवितागमणासंमोदयाण देसेज्ज सहगकुञ्जाह । अतरतो वा समोदयाण देज्जा जहसमाही ॥ २४४ ॥ ( भा० )

गवार्था, गेवरमतरंतस्त अण्णसंमोदयस्तथि दासवं । सान्तत मत्तास्थानशुद्धिः प्रतिपाद्यते, तथा चाह भाष्यकारः—  
 सोही पक्कत्तायास्त उठिक्का समयासमपक्केकहिं । पक्कत्ता तित्थयरेहिं तमह शुक्क समासेणं ॥ २४५ ॥ ( भा० )  
 सा शुण सद्धया जायाणा य विणयाणुमासणा वेव । अणुपाळणा विसोही भावविसोही भवे छट्टा ॥ २४६ ॥  
 घोषन शुद्धिः, सा मत्तास्थानस्त—माग्निकवितथाव्यार्थस्त पद्धविषा—पद्मकारा अभजसमपक्केमुमि—साशुचिज्जान्तविह

१ संक्षिप्तोक्तोऽन्यथांमोमिकेभ्यो यथैषानि दाणकुञ्जाणि आहकुञ्जाणि वा अहकुञ्जं घोषोपिकेभ्योऽमुपनिषेधं दोषः । अत्र शाक्यज्ज संज्ञानुसि  
 का एतेषु संज्ञाहीमयापिक्क वा भवेए कदा साहसुभोमुक्क संज्जहीमेवमुपदिसेए, उवादेए इति एवं कथाधयाविज्जान दाणे उवादेसे अ उहासामत्थं यदि  
 एवमेति आनीए ददासि अथ अ एवमेति कदा दाणसेदोपदिसेहा तथा एवा साभूयामामो वा समाविज्जया तथा प्रवठित्तवं दयासमासीति व्याक्यारतं ।  
 २ गवामागमणासंमोदयाणपि मुपदर्शय

छाम इत्यत आह—न च विरसिपाछनाद् वैष्णवस्य प्रधानतरमतः सत्यपि च छाभे किं तेनेति गाथार्थः ॥ १५८२ ॥  
एवं विनेयजनहिताय परामिमापमाशङ्क्य गुरुराह—न 'विविधं' करणकारणानुमतिभेदभिन्न 'विविधेन' मनान्नाक्रुकाय  
योगधयेण 'प्रत्याख्याति' प्रत्याचष्टे प्रक्रान्तभक्षणादि अतोऽनभ्युपगतोपात्मभक्षोदक्रमते, यत्तर्ध्वम् अन्यस्यै दानम  
क्षनादेरिति गम्यते, तेन हेतुश्रुतेन कारण भुजिक्रियागोचरमन्यदानकरण तच्छुद्धस्य—आदासादिदोषरहितस्य ततः—  
तस्मात् मुनेः—साधोः न भवति तद्भक्षहेतुः—प्रक्रान्तमस्याख्यानभक्षहेतुः, तथाऽनभ्युपगमादिति गाथार्थः ॥ १५८३ ॥ किंच—  
स्वयमेव—आत्मनैवानुपालनीयं प्रत्याख्यानमुक्त निरुक्तिकारेण, दानोपदेशौ च नेह प्रतिपिद्धां, तत्रात्मनाऽऽर्जनीय वितरण दान  
दानभाक्कादिकुलाख्यानतूपदेश इति, यस्माद् एवं तस्माद् दद्यापुषदिषेद्धा, यथासमाधिना वा यथासामर्थ्येन 'अन्येभ्यो'  
धाळादिभ्य इति गाथार्थः ॥ १५८४ ॥ अमुनेयार्थं स्पष्टयन्नाह 'कय' इत्यादि, निगदस्त्रिधा, 'एरय पुण सामायासी—सर्व भर्तुं  
जतोवि साधूणं आपोणा भक्षपाण देज्जा, संत वीरियं ण निगूढिवत्त अप्पणो, संते वीरिए अप्पणो पाऽऽप्पावेवपो, जया अप्पणो  
अमुगस्स आपोवु दित्ति, तन्हा अप्पणो संते वीरिए आयरियणिताणधाळजुहुपाहुणगादीण गच्छस्स मा संणायवु जेद्विं वा  
असप्पातएहिं वा छद्धिसपुण्णो आपोणा देज्ज मा दयावेज्ज मा परिसियसुं वा सस्सदीए मा दयावेज्ज, दाणेत्ति गतं, जयदिस्सज्ज

१ अथ पुनः सामान्यरी—स्वयममुजान्तेष्वे साधून्म आदीय मळयाने दद्यात् सहीर्षं च निगूढिवत्त आत्मनः, सवि वीर्येभ्यो नाऽऽप्पावेवत्तः यथाऽन्यो  
भ्युक्तस्य ज्ञानीव ददातु तस्मात् आत्मनः सति वीर्ये आचार्यमजावत्तान्नाक्रुकादिभ्यो पाप्याय वा सज्जातीवकुष्ठेभ्यो नामसज्जातीयेभ्यो वा छदिससंपुं  
क्षानीय दद्यात् द्यापेद्वा, परिसिदेभ्यो वा सज्जज्जा वा द्यापयेत्, द्यापमिति गतं, जयदिषेद्वा।

अणिप दसविहमेय पञ्चकक्षाण शुस्वयसेण । कयपञ्चकक्षाणविहिं इत्तो शुब्धं समासेण ॥ १५८० ॥

आह ऊह जीवघाप पञ्चकक्षा न कारय अथ । अणमपाज्जसणयणे धुव कारवणे य मणु दोसे ॥ १५८१ ॥

नो कयपञ्चकक्षाणो, भायरियार्हेण विज्ज असणार्हे । न य थिरर्हेयालणाओ वेयावब्बं पहाणयर ॥ १५८२ ॥

नो तिथिहतिथिहेण पञ्चकस्सह अक्षयणकारवण । सुद्धस्स सओ सुणिणो न होह तन्नमहेजस्सि ॥ १५८३ ॥

सयमेवणुपालणिय दाणुवयसो य नेह पविसिओ । ता विज्ज चवहसिज्ज व ऊहा समाहीह अओस्सि ॥ १५८४ ॥

कयपञ्चकक्षाणोऽपि य आयरियणिछाणपालुहण । विज्जासणार्ह सते छाभे कयवीरियायारो ॥ १५८५ ॥

अणिप दसविधमेव प्रत्याख्यान नुकयवेधेन, कृतं प्रत्याख्यानं येन स तथाविषलस्य विविक्त 'अत्ता' कव्वब्धे वस्ये 'समासेन' सर्वेयेणेति गाथार्थः ॥ १५८० ॥ प्रत्याख्यानानाधिकार एवाह परा, किमाह १-यथा जीवघाते-प्राणातिपाते प्रत्याख्याते सत्यर्था प्रत्याख्याता न कारयत्यन्यमिति-न कारयति जीवघातं अन्यप्राणित्तमिति, कुत्ता १-मङ्गमयात्-प्रत्याख्यानमङ्गमयादित्यर्थ, आपार्थः-अथयत् इत्यस्य नम्-ओपनादि तस्य दातम्-अस्यनदानं वस्मिन्नस्यनदाने, अस्मन्तद्यव्यः पा नाहुपलक्षणार्थ, सतर्कतदुक्तं भवति-कृतप्रत्याख्यानस्य सतः अन्यस्यै अथनादिदाने धुव कारणमिति-अथक्यं मुञ्चिन्धिया कारणं, अथनादिछाभे सति भोक्तुमिच्छिन्धियासहभावात्, सतः किमिति चेत्, ननु दोषः-प्रत्याख्यानमङ्गवोप इति गाथार्थः ॥ १५८१ ॥ अत्ता-नो कयपञ्चकक्षाणो भायरियार्हेण विज्ज असणार्हे पतव्येयमतः न कृतप्रत्याख्यानः पुमानाचार्यो दिव्य आदिद्यदाहुपाध्यायसपस्विर्गच्छकालानहृत्तादिपरिग्रहः दद्यात्, किम् १-अथनादि, स्वादेतद्-सद्वतो वैयाहस्य

भंगुद्विधं करोति, जाय ण भुयामि ताव न जेमिमिहि, जाय वा गीठि ण भुयामि, जाय परं ण पयिसामि, जाय सेओ ण  
णस्सति जाय वा एवतिया चस्सासा पाणियमच्चिवाए वा जाय एत्तिया धिनुणा चस्साधिधुणिगा वा, जाय एस दीयगो  
अल्लति ताव अहं ण भुंजामिहि, न केवलं भवे अणोसुवि अमिग्गसिसेसु संकेत भवति, एव ताव साययस्स,  
साधुस्सवि पुण्यं पच्चक्खाणे किं अपच्चक्खाणी अप्पह्वं ! तग्गं तेणवि कासव सङ्खेवमिति । व्याख्यात सङ्खेवद्वार, सारप्रवम  
ज्जाहारमतिपिपादयिपयाह—

अद्दा पच्चक्खाण ज त कालप्पमाणोएणं । पुरिमहुपोरिसीए सुद्धसमासदमासेहि ॥ १५७१ ॥

अद्दा—काले प्रत्याख्यानं यत् कालप्रमाणच्छेदेन भवति, पुरिमाद्धपोरयीभ्यां सुद्धसमासार्द्धमासंरिति गाथासहीयार्थः  
॥ १५७१ ॥ अवयवपरयो पुण अद्दा णाम काओ काओ अरस परिमाण त कालेणाववद्धं कालियपच्चक्खाण, संजया  
णमोक्कार पोरिसि पुरिमहुएकासणग अद्धमासमासं, चक्खन्वेन दोणिण दिवसा मासा वा जाय छम्मासिहि पच्चक्खाण, एवं  
अद्दापच्चक्खाणं । गतमद्दामप्रत्याख्यान, इदानीं उपसंहारमाह—[प्र० २१५००]

१ अद्दुद्विधं करोति पावव सुखमि तावव वेममि पावद्वा मीय्य व सुखमि पावद्वा यदं व मलिसामि वावद्वा स्वदो व नगरमं वावद्वा पृठावम  
वद्वासाः पानीयमधिकार्यो वा पाववेतावन्ताः शिशुका अवधयापधिन्वदो वा पाववेय दीयको अवकति तावदहं व सुभे प केवलं भवेअन्वेयवि अमिमह  
विशेषेण संकेतं भवति पूर्व तावत् भावकक साधोरेहि पूर्वं प्रत्याख्याने क्रियमप्रावधानी विवदुः ! तस्मात् वेनापि कर्तव्यं संकेतमिति । २ अवधवार्यः दुग्ध,  
अद्दा नाम अन्नः, काओ यस्त परिसारं तत् कालेनाववद्धं कालिक प्रत्याख्यात तावया—ममरकारसहितं पालयी पूर्वार्थेकावयवार्थमस्तमासामि अयावद्द ही दिवसा  
मासो वा पावत् पम्मासा इति प्रत्याख्यानं पृठद्वाप्रत्याख्यात



सर्वमयानं सर्वं वा पानकं सर्वखाद्यभोज्य—विषिषं खाद्यप्रकारं भोज्यप्रकारं च व्युत्पद्यति—परित्यज्यति सर्वभावेन—सर्व  
प्रकारेण अणितमेतदक्षिरवद्येव सीर्यकरगणपरिरिति गायासमासार्थः ॥ १५७७ ॥ विरिष्यरथो गुण ओ भोज्यप्रस्य सचरति  
यस्य योसिरति पाणगस्त्य अणोगविषस्त्य स्रवपाणमादियस्त्य साहमस्त्य भंवाहयस्त्य सादिमं अणोगविष मधुमादि एवं स्रव  
आय योसिरति एवं निरयसेसं । गवं निरवषेयद्वारम् , इदानीं सङ्केतद्वारयिक्तार्यप्रतिपादनायाह—  
अगुहमुद्रिगंठीपरसेजस्त्यासधियुगाजोहस्त्ये । अणियं सकेयमेवं धीरेहिं अणाननाणीहिं ॥ १५७८ ॥

अगुहस्य मुद्रिषेत्यादिद्वन्द्वः अगुहमुद्रिमन्यपुहस्वेदोपप्रासक्तिमुक्तयोतिष्कान् दान् चिह्नं कृत्वा यत् क्रियत प्रत्या-  
स्थानं तत् अणितम्—चक्र सङ्केतमेतत्, कैः १-भीरैः—अनन्तमानिभिरिति गायासमासार्थः ॥ १५७८ ॥ सर्वयवत्यो  
गुण कृतं नाम विषय, स्रव कृतेन सङ्केत, सचिह्नमित्यर्थः, 'साधू सावगो वा गुण्येवि पञ्चवस्त्राणो किञ्चि चिह्नं अग्निनिष्कृति,  
जाय एव सावायं पञ्च जिमेमिषि, ताणिमाणि चिह्नानि, अगुहमुद्रिगठिपरसेकसासधियुगादीवताणि, तस्य ताव सावगो  
पोरुसीपञ्चवस्त्राहो ताये छेत्तं गतो, परे वा विधो ण साव जेमेति, ताये ण किर स्रवति अपञ्चवस्त्रापास्त्य अचिह्नं, तदा

१ विद्यापायः गुणयो भोज्यस्य स्रवइत्यर्थं व्युत्पद्यति यादीयमदेकविधं अत्रापानीयादि खाद्यमाज्यादि स्रवमदेकविधं सज्यादि पृष्ठत् सर्वं वाप्युत्प-  
द्यते पृष्ठत् निरवसाय । २ अत्रवसायः गुण कृतं नाम चिह्नं साधुः सावको वा पूर्वमेवि प्रत्यास्थाने स्थितिचिह्नं अग्निपुह्यति वावदेवं सावदेवं च जेमासि तावी  
मासि चिह्नानि अगुहः मुद्रिमन्यपुहं कोरयिनुकप्रासाः चिह्नयो दीया, तत्र तावत् सावका योवशीयावसावतावत् तदा केवं तस्य पुहं वा चिह्नताः च तावत्  
अमिषि, तदा चिह्नं च सर्वदेव्यामावसावदेव अगुहं, तदा

लहति, पट्टिणीएण वा पट्टिसिद्ध होज्जा, शुद्धिभक्त्तं वा वट्ठं हिंसस्सयि ण लब्धमस्ति, धयया आणति अथा ण ओप्या  
मिच्चि ताये णिरागारं पच्चक्ख्वाति । न्याख्यातमनाकारदारम् , अनुना कृतपरिमाणद्वारमधिकृत्याह—

दस्सीहि च कवल्लेहि च घरेहिं भिक्ख्वाहिं अहव वड्ठेहिं । जो भत्तापरिघाय करोइ परिमाणकट्टमेय ॥ १५७६ ॥  
दत्तीभिर्वा कवल्लैर्वा गृहैर्भिक्षाभिरथवा द्रव्यैः—ओदनादिभिराहारायामितमनेर्यो भक्षपरित्यागं करोति 'परिमाणकट्टमव'—  
ति कृतपरिमाणमेवदिति गाथासमासार्थः ॥ १५७६ ॥ अर्थवत्पर्यो गुण दत्तीहिं अज्ज मए एगा दत्ती दो वा १-४-५  
दत्ती, किं वा दत्तीए परिमाणं, वड्ठगापि(सित्थगापि)एकस्मिं सुम्भमति एगा दत्ती, होयल्लियपि जत्तियाभो घारावो पप्फाहेति  
सावत्तियाभो ताको दत्तीओ, एव कवल्ले एकेण २ आव वत्तीस दोहि कणिया कवल्लेहिं, घरहिं एगादिपहिं २ ३ ४ ।  
भिक्ख्वाओ एगादियाओ २ ३ ४, दवं अमुगं ओवणे स्सज्जाविही वा आर्यपिळ या अमुगं वा कुत्तणं एयमादियिमा  
सा । गत्त कृतपरिणामद्वारं, अनुना निरवसेपद्वारावयवार्थं अभिधाणुकाम आह—  
सुख अस्सण सुख पाणग सुखलज्जसुज्जयिइ । वोसिरइ सुखभावेण एय भणिय निरपसेस ॥ १५७७ ॥

१ कम्मते मल्लगीजेन वा प्रविशित्वं गयेए दुर्मिषं वा वत्तंते हिंसमायेनापि न कम्मते अथवा जायति यथा न जीविष्यामीति एदा भित्ताकट्टं मल्ल  
कमाति । २ अथवावार्थः पुनर्द्विभिः अथ भया मुक्ता द्वाभौ वा १ २ ५ वत्तया किं वा वत्तेः परिचर्यं ? शिष्यकम्मयेक्यः शिष्यस्य एका दत्तिः दत्तीमरि  
यावतो वत्ताए मरुत्तोदयति दावत्तका वत्तयाः पूर्व कवल्ले एकेन वावए द्वाविज्जला द्वाय्यायुगा कवत्तान्वा गृहेरेकादिभिः भिक्षा एकादिक्काः २ ३ ४ द्वाभय  
सुक्कमोदयः जायकदिधिर्वा भावाभासक वा अमुक वा विदुक्क पुनमादि विधाया ।

विभाषा, अति धीमे दाधे धे णमोकाराद्या पोकसिद्धान्ता वा तेति विसञ्जेज्जा धे णवा पाएण्णा धे वा कसद्द विभाषा, एव गिलानकञ्जेसु भाणत्तरे वा कारणे जुलणणसंयकज्जाविधिभाषा, एवं धो भणपरिचानं करोति सागारकदमेवति । गत साकारद्वार, इदानीं निराकारद्वार व्याप्तिस्मासुराह—

निज्जापकारणमी मयहरणा नो करति आगार । कतारविन्निदुन्निमकसपाह् एयं निरागार ॥ १५७६ ॥

निश्चयेन याव—अपगतं कारणं—प्रयोजनं यस्मिन्नसौ निर्यातकारणत्वात्किन्त् साधौ महत्तरा—प्रदीपनविधेयास्तत्ककन-  
भाषासु दुर्धनस्याकारान् कार्याभावादित्यर्थः, कः—कान्तारवृत्तौ शुर्निश्चयायां च—शुर्निश्चमावे चेति भाषा, अत्र यत् किम्यते  
तदयभूत प्रत्याख्यान निराकारमिति भाषार्थः ॥ १५७५ ॥ भावत्यो पुण पिज्जाणकारणस्त तस्तवभा पस्सि एत्थ किञ्चि-  
यिचि दाह महत्तरगादि आगारे ण करोति, अणामोगसहसकारे करोज्ज, किं निमित्तं !, कदं वा अंगुलिं वा मुधे खुहेज्ज  
अणामोगेणं सहसा या, तेण दो आगारा कज्जति, त कदि होज्जा !, कतारे जया सिणपडिमादीसु, कतारेसु विची ण

१ दिव्याया यदि होकतदा ये नमस्कारसद्विधया धौहीया वा तेथो दिव्यमेवेत् वे न वा एतत्तदयो ये वाग्मसद्विज्जवधेयताया एयं तज्जकार्क्येण कज्जवराकिह  
वा कसरे जुलणणसंयकज्जाविधिभाषा एव धो भणपरिचानं करोति साकारकदमेवत् । २ साधार्यः शुचर्त्तिर्वाक्यत्वात् एव न वा यदि अत्र कपिदुष्टि  
तदा महत्तरादीनाकाराद् न करोति अणामोगसहसाकारो कुर्वात्, किमिति ! कदं वाग्मज्जि वा मुधे धिपेए अणामोगेन सहसा वा तेव इत्याकारो  
क्रियते, तत् न मयेव ! कज्जारे यथा कज्जपट्टादिषु, कज्जारेसु कृति न

ध्वजमसंघसर्पणेण जिणकप्येण य समं धोञ्छिण्णां, सदिह पुण काले आयरियएज्जांता धेरा सदा करोता आसदि । व्यास्यावं  
नियमिन्नतद्धार, सान्मत्तं साकारद्धारं ज्याचिरुयासुराह—

मयद्दरगागारेहिं अस्सत्थवि क्कारणमि जायमि । ओ भत्तपरिषाय करोह सागारकब्भेप ॥ १५७४ ॥

अयं च महानप च महान् अन्योरतिशयेन महान् महत्तरः, आक्रियन्त इत्याकाराः, प्रभूतैर्धविषाकारसत्तास्यापनार्थ  
बहुवचनमर्थो महत्तराकीरेहेतुभूतैरन्यत्र वा—अन्यस्मिन्नानामोगादौ कारणत्वादे सति भुज्जिकियां करिप्येडहमित्येय यो भक्त  
परित्यागं करोति सागारकृत्वमेवदिति गाथार्थः ॥ १५७४ ॥ अथवपर्यो पुण सह आगारेहिं सागारं, आगारा द्धारिं सुत्ताणुगमे  
अण्णिहिंति, तस्य महत्तरागारेहिं—महत्तरपयोपणेहिं, सेण अन्नसट्ठो पक्कस्सालो साथे आयरिपुहिं भण्णासि—अमुग गामं गंसव,  
तेण निवेइय जया नम अज्ज अन्नमसट्ठो, जति ताव समस्यो करेणु जाणु य, ण तरसि अण्णो भत्तद्वितो अन्नसट्ठिओ पा  
ओ तरसि सो पक्कणु, णरिथ अण्णो सत्स वा कज्जस्स असमस्यो साथे सत्स वेय अन्नसट्ठिवत्स गुक विसज्जयन्ति, परि  
सत्स तं जेमंतस्स अणामिळासत्स अन्नसट्ठिवसिभिज्जरा आ सा से भवति गुरुणिओएण, एवं सत्सूरत्तमेवि विणस्सति अयत्त,

१ प्रथमसंदर्भयेव विवककरोच च समं व्यवस्थितं तस्मिन् पुनः काले आचार्या विवकशिरायाः स्थितिराद्या कर्तव्य आसत् १६ अथवायां पुनः साकाराः  
साकारं आकारा अपरि सुत्ताणुगमे अस्मिन्नन्ते ताव महत्तराकीरे—महत्तरपयोपणे, तेनामज्जायाः प्रकाशकताः सदासत्तारैर्भवेत्—अमुग गामं गंसव्यं तेन विवेरितं  
यथा समानात्मकार्यः यदि तावत्समर्थः करोणु याणु च च एवमेति अन्वये मज्जासंदर्भमर्थो वा वाः एवमेति च ज्ञातुं, जातान्नसत्तायां वा कार्येण असमयः सदा  
तमेवात्मकार्यं गुरवो विवकमिदं ईदृजत्वं तं जेमंतोऽप्यधिकारसामान्यवर्धितं वा सा तावत् भवति गुरुविद्योमेव एवमुत्पादकामेभ्य विवद्भवति अस्मत्

विभाषा, अति भोधं ताथे अे णमोकारइया पोथसिइया वा सेसिं विसज्जेज्जा अे ण वा पारणइया अे वा असइ विभाषा,  
एव मिषाणकज्जेसु अण्णठरे पा कारणे कुल्लगणसंपकज्जादिविभाषा, एव अो भयपरिज्जागं करोति सागारकज्जेमेवति । नव  
साकारद्वार, इदानीं निराकारद्वार व्याधिरयासुराह—

निज्जायकारणमी मयइरगा नो करंति आगार । कतारविस्सिदुन्निमककयाइ एय निरागारं ॥ १६७६ ॥

निश्चयेन यातं—अपगतं कारण—प्रयोजनं यस्मिन्नस्त्रीं निर्यातकारणस्सस्मिन्, साधौ महजरा—अयोजनविषेपास्तत्फल-  
भाषास्तु दुर्धनत्वाकारान् कार्याभावादित्यर्थः, कः—कान्तारवृत्तौ दुर्मिषतायां च—दुर्भिक्षभावे वेति भावः, अत्र यत् क्रियते  
सद्वधूतं मत्वास्मान् निराकारमिति गाथार्थः ॥ १५७५ ॥ भावस्यो पुण निज्जायकारणस्तु सत्सत्तया गस्सि एत्थ किञ्चिदि  
विचिं ताहे महसरगादि आगारे ण करोति, अण्णभोगसहसकारे करेज्ज, किं निमित्तं !, कहु वा अंगुलिं वा मुथे छुइज्ज  
अण्णभोगेण सहसा या, सेण दो आगारा कज्जति, तं कहिं होज्जा !, कंतारे सया सिणपप्पिमावीसु, कंतारेसु विचिं ण

१ विभाषा यदि श्लोकस्यार्थे समस्तकारणसहितका शेषीया वा तेषां विषयत्वेन वे न वा पातक्यमयो वे वास्यसिद्धयविविधताः । एवं तत्त्वकार्येण अण्णठरिक्कत्  
वा कार्ये कुल्लगणसंपकज्जादिविभाषा, एव अो भयपरिज्जागं करोति साकारकज्जेमेव । २ गाथार्थः दुर्धनत्वाकारणस्तु सत्सत्तया गस्सि एत्थ किञ्चिदि  
सया महजरादीनामप्याह न कोसि अण्णभोगसहसकाराः । दुर्धनं किमिति ? कार्यं वागदुर्धनं वा मुथे छिपेत् अण्णभोगेण सहसा वा तेषां इत्यन्वयः ।  
इत्येते, तत् क भवेत् ? अण्णठरे यथा स्यात्तस्यापि न कस्यचित्पुं कस्यचित्पुं कस्यचित्पुं

पदमसप्ततणेण विणकथ्येण य समं वोच्छिण्णं, सन्नि पुण काले आयरियपज्जता धेरा तया करेता आसथि । व्याख्यातं नियमिन्नतद्वार, साम्भवं साकारद्वार व्याधिस्यामुदाह—

मयहरनागारेहिं अन्नत्पथि कारणमि जायमि । ओ मत्तपरिथाय करेह सागारकम्भमेय ॥ १५७४ ॥

अथ च महानय च महान् अन्तयोरविशयेन महान् महत्तरः, आक्षिपन्त इत्याकाराः, प्रभूतैर्वाधिपाकारसत्त्वास्त्वापनार्थं बहुवचनमतो महत्तराकीर्तहेतुभूतैरन्यत्र वा—अन्यस्मिन्नानामोगावौ कारणजाते सति शुद्धिक्रियां करिष्येऽहमित्येव यो भूय परित्यागं करोति सागारकृत्वमेवदिति गायार्थः ॥ १५७४ ॥ अथयत्तयो पुण सह आगारेहिं सागार, आगारा ववर्त्तिसुत्ताशुगम मणिगहिंति, सस्य महत्तरागारेहिं—महत्प्रययोगेणेहिं, तेण अभसद्धो पच्चक्खातो ताये आयरियहिं मण्णति—अमुग गामं गंवप, तेण निवेइय अया मम अज्ज अन्नमसद्धो, अति ताव समत्थो करेणु जाणु य, ण तरति अण्णो भसद्धितो अभसद्धिभो वा ओ तरति सो वच्चणु, णत्थि अण्णो तस्स वा कज्जस्स असमत्थो ताये तस्स वेव अभसद्धियस्स पुक् विसज्जयन्ति, एरि सस्स तं जेमत्तस्स अणमिकासस्स अमचद्धिसणिज्जरा सा सा से भवति गुरुणिभोएण, एवं चत्सूरत्तमेवि पिणस्सति अर्धत्त,

१ प्रथमसंहननेन विषयकत्वेन च समं अणविक्रमं दृष्टिपूर्वकं काले व्याख्यातं विषयकत्वेन अतिरिक्तत्वात् कुर्त्तव्य आसत् १५ अथयत्तयो पुनः सत्तात्पर्यं साकारं आकारावपरे सुत्ताशुगमे अविषयकत्वे ताव महत्तराकीर्त—महत्प्रययोगेणैव तेनान्यकार्यः प्रत्यासत्तया तदाऽऽचार्यैर्निरूप्यते—अमुकं प्राप्तं यत्प्राप्तं तेन निवेदितं यथा समानाधिकार्यः यदि तावत्समर्थो करोतु याणु च य समोति अण्णो अर्धत्तमकार्यो वा या समोति स वच्चणु, आसन्नवत्तव वा कार्यवत् असमत्तं तमेवामकार्येण गुरवो सिद्धवन्ति ईदृशज त जेगोऽप्यधिकारकत्वात्कार्यैर्निर्दिता वा सा ताव अर्धत्ति गुरदिद्येयेव एवमुत्तात्तराभावेऽपि निवेदयति अत्रान्यं

न त्व' अमुकं अमुके-अमुकविषये एवावत् पञ्चादि दृष्टेन-नीरुक्तेन गठनेन वा-अनीरुक्तेन कर्तव्यं यावदुच्युतासो  
 बावदाशुरिति गाथासमासार्थः ॥ १५७१ ॥ एतत् प्रत्याख्यानमुक्तवक्तुं नियमितं धीरशुक्लप्रभवं-वीर्यकरगणपरम-  
 रुषितं यद् दृक्छन्ति-प्रतिपद्यन्ते अनगारा-सापयः 'अनिभूताभाना' अनिदाना अप्रतिपन्नाः श्रेयादिष्विति गाथासमासार्थः  
 ॥ १५७२ ॥ इदं चाधिकृतप्रत्याख्यानं न सर्वकालमेव क्रियते, किं तर्हि?, चतुर्दशपूर्वविजिनकक्षिकेयु प्रथम एव वज्रक्र-  
 पभनाराघसंहनने, (अमुना पु) एतद् व्ययछिन्नमेव, आह-तदा पुनः किं सर्व एव स्थिरावयः कृतवन्तः आहो-विजिनकक्षिका  
 दय एवेति!, सच्यत, सर्व एव, यथा चाह-स्थिरा अपि तथा (धा) चतुर्दशपूर्व्यादिकाले, अपि सभ्यादन्ये च कृतवन्त इति गाथा  
 समासार्थः ॥ १५७३ ॥ भायरथो पुण नियतितं णाम नियमितं, अथा एतत् कायवं, अथवाऽऽच्छिन्नं यथा एतत् अवस्त कायवंति,  
 मासे २ अमुनाहि दिवसाहि चतुरथादि छद्वादि अहमादि एवतिथौ छद्मेण अहमेण वा, इहो साव करोति चेव, अति निजाणो  
 इयति सभावि करोति चेव, णवरि क्तासपरो, एव च पञ्चकक्षाणं पञ्चमसंपत्तणी अपादिवन्ता अपिस्तिता इत्येव न परत्वं  
 य, अधधारण मम असमरयरस अण्णो कादिति, एव सरीरए अप्यदिवन्ता अपिस्तिता कुर्वति, एवं पुण चोदसपुदीष्ट

१ आसार्थः पुनर्दिपञ्चस्रस्र वास द्विपमित यथाऽह कथम्य अन्त्याऽपि पुनः कथाऽन्त्यादयः कर्तव्यमिति मासे २ अमुदिपद् दिवसे चतुर्थदि वहादि अह  
 मादि पुनारह पञ्चवाहमस्र वा, इहवाहए क्तायेव यदि अन्त्याो भवति तथापि क्तायेव परं २५५५५५५५, एतत् प्रत्याख्यानं प्रथमसंहननविशेषोऽप्यतिपदा  
 अतिभिदाः, अह चापुन न, अथवाप्य मयासमर्पणान्तरः कर्तव्यति, पूर्व एतेरेत्यतिपदा अतिभिदाः पुनरिति एतत् पुनरनुदरेवपुर्दिपः

सार्यः ॥ १५६८ ॥ स इदानीं सप्तार्कम् प्रतिपद्यते तदधिक्रान्ते काल एतत् प्रत्याख्यानं—एषविधमतिप्रसन्नकरणादति  
 क्रान्त भवति श्राव्यमिति गाथासमासार्थः ॥ १५६९ ॥ भवत्यो पुन पञ्चोसवणाए तव तैर्हि श्वेप कारणाहि न कर,ह  
 जो वा न समरथो सवधासस्त गुरुवस्तिगिलाणकारणेहि सो अतिक्रते करोति, तथेय विमासा । व्याख्यातमतिक्रान्त  
 द्वार, अधुना कोटीसहितद्वारं विदुष्वधाह—प्रत्यापकक्ष-प्रारम्भकक्ष दिवसः प्रत्याख्यानस्य निष्ठापकक्ष-समाप्तिदिव  
 सस्य यत्र-प्रत्याख्यानं 'समिति' च मिलितः द्वावपि पर्यन्तौ तद् भण्यते कोटीसहितमिति गाथासमासार्थः ॥ १५७० ॥  
 सार्वत्र्यो पुन अस्य पञ्चकस्याणस्त कोणो कोणो य मिलति, कर्मा-गोसे आवस्तए अभसद्वो गहितो अहोरच अष्टिरुण  
 पञ्च पुनरवि अभसद्वं करोति, विधियस्त पठ्यणा पठमस्त निद्वयणा, एते दोडवि कोणा एगद्वा मिलिता, अद्वमादितु  
 दुहवो कोटिसहित सौ अरिमदिवसे तस्सवि एगा कोटी, एवं आयबिलनिधीसिमएगासणा एगद्वाणगाभिवि, अथवा इमो  
 अणो विही-अभसद्वं कते आयबिलेण पारित, पुनरवि अभसद्वं करोति आर्यबिल च, एष एगासणगादीदिवि संज्ञो गो क्ततयो,  
 निधीतिगादितु सवेसु सरिसेसु विसरिसेसु य । गतं कोटिसहितद्वारं, इदानीं नियमितद्वारं न्यसेण निकपयधाह—मास २

१ आचार्यः पुनः पञ्चपथां उपलब्धेय कार्येभ्यं करोति यो वा य समर्थं अथवासाह एतदपि विवक्तव्यकारणः सोमदिहान्ते करोति तथैव विमण्य ।  
 २ आचार्यः पुनर्द्वय प्रत्याख्यानक क्रमेण कोनस्य मिकताः कर्मा ? मातुषे आनदपकेडमप्यार्थो गृहीतः अहोरात्रं विस्तरा एतत् पुनरवि अभसद्वय करोति इदोद्वय  
 प्रत्यापना मयसक विद्यापना पुटी द्वावपि कोणी एका मिकिती अद्वमादितु दिवातः कोटीसहितं यमरादिद्वयः (य) तस्याप्येका कोटी एवमाचार्यमभ्यर्च्य  
 इतिचैकप्रसवैकप्रसवकारणवि अथवाउपपन्नो विधिः—असत्कार्यो कृत आचार्यान्तेव पारयति पुनरप्यभ्यर्च्य करोति आचार्यान्त च एवं एकासमाप्तिमिति  
 संयोगो करोत्यः निर्विक्रमादितु सर्वेसु सप्तयोसु विसरिसेसु च ।



च तप' अमुकं अमुके-अमुकविषये एवावत् यथादि दृष्टेन-चीरध्वेन गच्छनेन वा-अनीरध्वेन कर्तव्यं यावदुभ्यासो  
 यावदायुरिति गाथासमासार्थः ॥ १५७१ ॥ एतत् प्रत्यास्थानमुक्तस्वरूपं नियमिष्येत् धीरुणप्रज्ञसं-शीर्षकरागणधर-  
 रुषिर्तं यद् गृह्णन्ति-प्रतिपद्यन्ते अनगारा-साधवः 'अनिष्टात्मानः' अनिष्टाना अप्रतिषेद्धाः क्षेमाविधिंति गाथासमासार्थः  
 ॥ १५७२ ॥ इदं आधिकृतप्रत्यास्थान न सर्वकाष्ठमेव कियते, किं सति?, अर्गुर्धसपूर्विजिनकरिषेष्टु प्रथम एव वयस्क-  
 रभनाराचसहनने,(अभुना सु)एतद् व्ययछिन्नमेव, आह-यदा पुनः किं सर्व एव स्थिरादयः कृतवन्तः आहोन्निजजिनकरिषिका  
 दय एवेति?, इत्येतं, सर्व एव, यथा चाह-स्थिरा अपि तथा(दा) अर्गुर्धसपूर्वार्थिकां, अपि सदादन्त्ये च कृतवन्त इति गाथा  
 समासार्थः ॥ १५७३ ॥ भावतयो पुन निर्यटित गाम निवसित, अथा एतय कायव, अथवाऽऽच्छिन्नय अथा एतय अवत्सं कायवति,  
 मासे २ अमुनेहि दिवसाहि चतुरथावि छद्मावि अहमादि एवसिओ छद्मेण अहमेण वा, इहो साव करोति चेव, अति निजगो  
 हवति सधावि करोति चेव, एवमि प्रसासपरो, एत च पञ्चकसाणं पञ्चमसपवणी अथदिषदा अणिस्तिता इत्य व परत्य  
 य, अथधारणं मम असमरदरस अणो कादिति, एव सरीरए अणदिषदा अणिस्तिता कुर्वति, एतं पुन ओदसपुवीसु

१ आधावाः पुनर्निवसित वास द्विपमिष वापाऽत्र कचध्व अथवाऽऽच्छिन्न वापाऽत्रावद्व कर्तव्यमिति मासे २ अमुत्थिप् दिवसे चतुर्थदि यथादि अह  
 सादि एवावत् पावसाहमेव वा इहवावत् करोत्येव यदि यथावो अवसि सधावि करोत्येव परं यथासवत्, एतव ममाकलावं मयमसेवचक्षिओऽम्यतिवदा  
 अतिप्रिया अत्र अमुत्र च, अथवाप्यं ममासमयवाप्यः करिष्यमि, पूर्व घटीरेऽम्यतिवदा अतिप्रियाः कुर्वन्ति एतए पुनचपुर्वं कर्तुमितिः

सार्थः ॥ १५६८ ॥ स इदानीं तपःकर्म प्रतिपद्यते तदतिक्रान्ते काले एतत् प्रत्याख्यान-एयविषमतिक्तावकरणादति  
 क्रान्त भवति ज्ञातव्यमिति गाथासमासार्थः ॥ १५६९ ॥ भार्गवो पुण पञ्चोत्सवणाए तथ सेहिं ध्वेय कारणाहिं न करइ,  
 ओ वा न समर्थो स्वधासस्स गुरुधस्सिगिण्णकारणेहिं सो अतिकर्ते करेति, तथेय धिभासा । ध्यास्स्यातमतिक्रान्त  
 द्वार, अयुना कोटीसहितद्वार विषुण्वन्नाह—प्रस्थापकक्ष-प्रारम्भकक्ष द्वितसः प्रत्याख्यानस्य निष्ठापकक्ष-समाप्तिद्वि  
 सस्य यत्र-प्रत्याख्याने 'समिति' सि मिलतः द्वाधवि पर्यन्तौ तद् भण्यते कोटीसहितमिति गाथासमासार्थः ॥ १५७० ॥  
 भार्गवो पुण अत्य पक्कस्साणस्स कोणो कोणो य मिलति, कथं-गोसे आवस्सए अभत्तद्वो गहितो अद्वोरच अचिउरुण  
 पक्कञा पुणरवि अभत्तद्व करेति, वितियस्स पट्ठवणा पढमस्स निट्ठवणा, एते दोडवि कोणा एगद्धा मिलिवा, अट्ठमादिसु  
 हुइवो कोटिसहित ओ चरिमदिवसे तस्सवि एगा कोट्टी, एव आयविल्लनिधीवियएगासणा एगद्धाणगाभिपि, अधवा इमो  
 अण्णो विट्ठी-अभत्तद्व कर्तं आयंविणेण पारिठ, पुणरवि अभत्तद्व करेति आयविल्लं च, एव एगासणगादीद्विय सज्जो गो फातपो,  
 णिधीविगादिसु सबेसु सरिसेसु यिसरिसेसु य । गतं कोटिसहितद्वार, इदानीं नियन्त्रितद्वार न्यसेण निकपयन्नाह—भास २

१ भावार्थः पुनः पूर्वपक्षायां तदर्थेरेव कारयेत् करोति को वा न समथ तद्वत्साध एवमपि विनाशकारणैः सोऽतिक्रान्ते करोति तत्रैव विमथ ।  
 २ भावार्थः पुनर्ध्वज प्रस्थापनायस्य क्रमेणः कोणस्य मिलनः कथं ? प्रत्युते आद्यपक्षकस्याध्यायोऽपूरीतः अद्वोताय स्थित्वा एवाप्य पुनरपि अभ्यव्यस्य करोति द्वितीयस्य  
 प्रस्थापना प्रथमस्य निष्ठापना पूर्यो द्वाधवि कोट्यो एकत्र मिलितौ अट्ठमादिसु द्विधातः कोटीसहित यस्मादपि वसः (स) तत्कालेऽप्येक कोटी पुरमायाभाभे द्विदं  
 कृत्स्निकेकासेनेकस्मान्नकान्यपि भावनाप्रसन्नयो विधिः-अभ्यव्यस्यः इव आद्याभाभेन पारवति पुनरप्यभ्यव्यस्य करोति आद्याभाभे च एवं दृष्टव्यवर्तिभिरपि  
 संयोगः कथंस्या, निर्दिष्टमादिसु सर्वेषु सप्तोषु विधयोर्यु च ।

च तप' अमुकं अमुके-अमुकविषये एतावत् पञ्चादि इदेन-नीकत्वेन एकात्नेन वा-अनीकत्वेन कर्तव्यं वाचस्पत्यासौ  
 यावदायुरिति गाथासमासार्थः ॥ १५७१ ॥ एतत् प्रत्यास्थानमुक्तस्वर्गं नियमिष्ये<sup>१</sup> धीरपुरुषमञ्जयं-धीर्मर्कलगणपद-  
 रुपितं यद् एहन्ति-प्रतिपद्यन्ते अनगारा-साधवाः 'अनिमृतात्मानः' अनिधाना अप्रतिबद्धाः श्रेष्ठादिष्विति गाथासमासार्थः  
 ॥ १५७२ ॥ इत् आधिकृतप्रत्यास्थान न सर्वकाकमेव क्रियते, किं चर्हि<sup>२</sup>, चतुर्धसपूषिर्जिनकस्मिकेडु प्रथम एव यत्तत्तु  
 यमनाराधसंहनने,(अमुना तु) एतद् व्ययधिसमेय, आह-सदा पुनः किं सर्व एव स्थिरावयः कृतवन्तः आहोन्मिजिनकस्मिका  
 दय एवेति<sup>३</sup>, सच्यते, सर्व एव, सदा आह-स्थिरा अपि तथा(दा) चतुर्धसपूष्यादिकां, अपिसम्पदायन्ते च कृतवन्त इति गाथा-  
 समासार्थः ॥ १५७३ ॥ भाषत्यो पुण नियंतिव णाम भियमिषि, अथा एत्थ कायर्, अथवाऽच्छिष्य अथा एत्थ अवस्सं कायवति,  
 मासे २ अमुगेहि दिवसेहि चतुरथादि छद्वादि अहमादि एवतिथो छठ्ठेण अहमेण वा, इहो ताय करोति वेव, ज्ञाति मित्राणो  
 ह्यपि तथापि करोति वेव, णवरि क्कासधरो, एत च पञ्चकसाणं पद्धमसचवणी अपादिबद्धा अभिस्सिता इत्थ य परत्थ  
 य, अवधारण मम असमत्पत्त अण्णो काद्वि, एव सरीरए आप्पदिबद्धा अभिस्सिता जुवति, एतं पुण बोद्धसपुषीह

<sup>१</sup> आधाया युक्तानिदिष्टं आस भिवमिषं बलात् कृतव्य असमाभिन्तं अवाऽभावसं कर्तव्यमिति मासे २ अमुमिद् दिवसे अमुमीदि ज्ञादि अह  
 मादि पृथाए चतुर्धाहमेव वा छद्वाकाए क्कासेव, यदि एकावो अवति तथापि करोत्येव एतं उच्यते अथ एतच्च प्रत्यास्थानं ममसर्गव्यविषयोऽपिबद्धा  
 अभिस्सिता, अथ आप्प च अथकार्णं ममासमत्पत्ताः क्करीवति पूर्व सरीरेऽपिबद्धा अभिस्सिताः जुवति एतत् पुनर्बद्धं ज्ञापयिष्यामि

करणादनागतं ज्ञातव्यं भवतीति भाषार्थः ॥ १५६ ॥ ईमो पुण एस्य भावरथो—अणागतं पञ्चकस्साण, अथा अणागतं सर्वं करोज्जा, पज्जोसवणागहण एस्य धिक्किद कीरति, सबअहसो अट्ठमं जथा पज्जोसवणाए, तथा चातुम्भासिए छट्ठं पक्खिस्सए अरुभसट्ठं अणोसु य पद्दाणाणुज्जाणादिसु ठहिं ममं अंतराहयं होज्जा, गुरु—आयरिया वेंसिं कातवयं, ते किं ण करोति?, असद्द होज्जा, अथवा अण्णा काह् अणात्तिगा होज्जा कायविया गामतरादि सेहस्स या आणेयप सरीरयेपायदिया या, ताथे सो तययासं करोति गुरुवेयावच्च च ण सक्केति, जो अण्णो दोणहयि समत्थो सो करोसु, जो या अण्णो समत्थो तययासस्स सो करोति णसि य ण वा छभेज्जा न याणेज्ज या विधिं ताथे सो चेव पुव तययास कासुणं पच्छा सदियस मुंजेज्जा, तयसी णाम स्समभो तस्स कातव्यं होज्जा, किं तदा ण करोति?, सो सीर पयो पज्जोसवणा तस्सात्तिगा, असद्दुचे या सर्वं पाराचितो, ताथे सर्वं हिद्विहुं समत्थो ज्ञाणि अक्कमासे तस्य वच्चत, णसि य लह्वति सेस अथा गुरूणं विभासा, गेळण्ण—ज्ञाणति अथा साहिं

१ अयं पुनरत्र भाषार्थः—अनागतं प्रमादकार्यं यथाऽनागतं तथा कुर्यात् एतुं यथासद्व्यसनं विवृष्टं कियते सर्वद्वयव्यसनदमं कथा एतुं कथं तथा बहुलांकां पदं पाश्चिक्केऽप्युक्तार्थं कथयेयुः का क्वाणानुयायानादिषु तदा मत्तान्तराधिकं नक्षिप्यति गुराण—आचार्योऽथो कथं त्वं ते किं न कुर्यादिति? अत्रापि च वा ह्युः अथवा अन्त्या वा कथयिष्यसि? कथं व्या मदेव आमाभ्यन्तरागतप्रादिका दीर्घकल्पा वाऽऽनेतव्यं सरीरेवाह्वय वा तदा स इत्यसं करोति गुरुभवाह्वयं च न सज्जोति दोऽप्यो द्रव्योति समर्थः स करोतु अन्त्यो वा यः समर्थ इत्यवसाय स करोति नास्ति न वा करोत न आनीयाद्वा सिद्धिं तदा च यैश्वर्यात् पदं वा या वच्चाए तद् ( पदं ) विवसे सुभीत तयसी भाग अणकच्छा कथं त्वं मदेव किं तदा न करोति? स सीर प्रमा एतुं यथा वासादीना अहर्माद्युपादा सत्वं पारिवर्तनात् तथा सर्वं हिद्विह्व समर्थो नास्ति सतीये तत्र प्रवृत्तं नास्ति न कथयेत्तेषां यथा गुरूणां विभासा प्रमादकार्य—आचार्य इत्यादि कथा तत्र

दिवसे असद्र होति, विज्येण वा भासितं अमुगं दिवसं कीरहिति, अथवा सयं येव सो गंदरोगोदीहिं तेहिं दिवसेहिं असद्र भवतिचि, सेवधिभासा अथा गुरुस्मि, कारण कुलगणसंघे आयरियगच्छे वा तथेव विभासा, पच्छा सो अणगावक्राते काऊणं पच्छा सो ज्येमेज्जा पज्योसवणाविस्सु, सस्स आ किर निज्जरा पज्योसवणादीहिं तथेव सा अणगाते काडे भवति । गवमनागवदारम्, अणुनाडविकान्धद्वाराययथार्थप्रतिपादनायाह—

पज्योसवणाह तव जो ससु न करेह कारणज्जाए । गुरुवेयाथवेण तवस्सिनोलज्जाए वा ॥ १५६८ ॥

सो दाह तवोक्कम्म पडियज्जह त अहच्छिण्ण काळे । एय पवक्कसाणं अहकंत्तं होह मायक्क ॥ १५६९ ॥

पट्टवणाओ अ दिवसो पवक्कसाणस्स निट्टवणाओ अ । अहिंयं समित्ति शुभ्भित्ति त भज्जह कोदिसिदिं हु ॥ १५७० ॥

मासे २ अ तवो असुगो असुगो दिणसि एव्हवो । इट्ठेण मिठाणेण व कायक्को जाव कसासो ॥ १५७१ ॥

एय पवक्कसाण निपटिय पीरपुरिसपसत्त । ज निण्हणज्जणगारा अणिस्सि(न्नि)अप्पा अपडिक्कदा ॥ १५७२ ॥

वडवसुक्को जिणकप्पिप्पसु पवममि येव सवयणे । एयं विच्छिन्नं ससु वेरावि सया करेसी य ॥ १५७३ ॥

पर्युपणायां तयो यः ससु न करोति कारणजाते सति, सर्वेव दर्शयति गुरुवेयाधुर्येन उपस्विन्नानतया वेति गाथासमा

१ दिवसेऽसदिप्युर्भवति वैदेव वा माधिव अमुस्मिन् दिवसे अस्मिन्वते अन्त्या कायमेव स गच्छतोऽपिभिन्देयु दिवदेव अथदिप्युर्वासीति येनविभावा यथा गुरो कारणात् कुलमनासहेयु आचार्यो गच्छे वा तथैव विभावा यथाप्युऽन्त्यागतकाळे कृत्वा पज्जाए स ज्येमेव पर्युपधादिपु, तस्मा वा किर निदेता पर्युप-  
धादिभिन्देव साऽन्त्यागते काळे भवति ।

करणादनागतं ज्ञातव्यं भवतीति गाथार्थः ॥१५६॥ ईमो पुण एत्थ भावर्थो-अणानात पञ्चकखाण, अथा अणानातं सर्वं करोत्वा,  
 पज्जोसवणानाहणं एत्थ विचिद्धं कीरति, सवसहजो आहुमं अथा पज्जोसवणाए, तथा चातुम्मसिए छट्ठं पक्सिए अन्मसहं  
 अणोसु ए पहाणाणुज्जाणादिमुं एहिं भमं अंखरादयं होज्जा, गुरु-आयुरिया ऐसिं कातव्वं, ऐ किं ण करोमि, असह्र होज्जा,  
 अथवा अण्णा काइ आणसिगा होज्जा कायविया गामंतटादिं ऐहस्स वा आणेयए सरीरधेयावट्टिया या, तापे सो जएयासं  
 करोति गुरुवेयावह्वं च ण सकेति, ओ अणो दोणहवि समरथो सो करोतु, ओ वा अणो समरथो जययासस्स सो करोति  
 एत्थि ण वा छमेज्जा न पाणेज्ज वा विधिं तापे सो खेव पुब जयवासं काणूणं पच्छा तदियसं मुंजेज्जा, सवरीं णाम समओ  
 तस्स कातव्वं होज्जा, किं तदा ण करोति, सो तीर पखो पज्जोसवणा तस्सारिता, असहुंसे वा सर्वं पारायितो, तापे सय  
 हिंहेतुं समरथो आणि अक्यासे तस्स वज्जव, एत्थि ण छहति सेसं अथा गुरुणं विभासा, गेसण्णं-जाणाति अथा ताहि

१ अर्थं गुरुत्वं भवत्यर्थः-अथनातं मज्जाकखाण वजाअसगतं तदाः कुर्वीए एतुएयाएत्थसए विचिद्धं विवते सर्वदणम्ममदमं वजा एतुएयाए, तथा  
 वतुनीज्जा पढं पाणिक्केअमज्जदी, अन्नेयु वा कावातुवज्जाविदुं तदा ममात्तादिह मल्लिकविं गुराव-आचार्योसेषीं कर्तव्यं ऐ किं न कुर्वीमि ? अहमिज्जवा  
 वा एत्ता अकखा अक्या वा अविदुंएत्थमिः कर्तव्या अर्धेए दासमत्ताएयासगारिका सैककल काअलोतव्वं सरीरधेयावट्ट ए वा तदा ए जयवासं करोमि गुरुत्वादाए न  
 काओमि ओअज्जो हुनोरि समर्थः, स करोतु, अन्थो वा वाः समर्थे जयवासाव स करोमि पाणि न वा कोत न आनीवादा सिदिं तदा ए सैरोरवासे दुर्गे ज्जा  
 एवाए एह ( एव ) विवसे सुधीठ तपवीं नाम अणकएल कर्तव्य भवेए किं तदा न करोमि, स तीर माहा एतुएया जयवित्ता अहमिज्जुयादा स्स  
 पारितयाए एवा अर्थं दिविहव समर्थो वानि समीपे तज जहवुं, वाणि न कयते ऐपं वजा गुरुणं विभाया एवावत्थ-आचार्य वजा एव

मनाकारं, 'परिमाणकृत्'मिति दत्त्यादिकृत्परिमाणमिति भावना 'निरवशेष'मिति समप्राप्तनादिष्वप्य इति गाथार्थः ॥ १५६४ ॥ 'सङ्केतं व्यये चि केतं—चिद्व्ययमुष्ठादि सह केतेन सङ्केत सचिद्व्यमित्यर्थः, 'अत्रा य'चि काकास्या, अत्रा माधिस्य यौक्त्यादिकालमानमपीत्यर्थः, 'प्रत्यास्थानं तु दक्षविध' प्रत्यास्थानशब्दः सर्वप्रधानागतादौ सम्प्रप्यते, मुख्यत्वं स्वयकारार्थसाहृ व्ययद्विधोपन्यासाहृ दक्षविधमेव, इह कोपाधिमेवाह स्पष्ट एव भेद इति न पौनरुक्त्यमाशङ्कनीयमिति । आह—इदं प्रत्यास्थानं प्राणातिपातादिप्रत्यास्थानवत् किं तावत् स्वयमकरणादिभेदभिन्नमनुयाङ्कनीय आहोन्निद न्यथा !, अन्यधेत्साहृ—स्वयमेवानुयाङ्कनीय, न पुनरन्यकारणे अनुमयी वा निषेध इति, आह च—'दाष्टुवदेसे क्षय समाधि चि अत्याहारदाने यद्विप्रदानोपदेसे च 'यथा समाधिः' यथा समाधानमात्मनोऽप्यपीदृया प्रवर्तिष्यमिति वाक्य सप्तः, उक्तं च—'भौवितज्जिणवयणाणं ममसरद्वियाण णत्वि हृ चिसेसो । अप्याणमि परंमि य सो वज्जे पीडमुमज्जोवि ॥ १॥' अत्रि गाथार्थः ॥ १५६५ ॥ सारप्रवचनन्तरोपन्यस्तद्व्ययप्रत्यास्थानाद्यभेदावयवार्थमिति त्वत्प्रत्यास्थाना—

होदी पज्जोसयणा मम य तपा अतराहय हुज्जा । शुक्केयायवेणं तवत्तिनेज्जपाए वा ॥ १५६६ ॥

सो दाह तवोक्कम्म पड्विज्जे त अणानए काले । एयं पव्वसत्ताणं अणानए होइ नायव्व ॥ १५६७ ॥

अविच्यति पर्युपणा मम च तदा अन्तरायं भवेत्, केन हेतुनेत्यत आह—शुक्केयावृत्त्येन तपस्विगजानतया वेत्सुपक्ष क्षणमिदमिति गाथासमासार्थः ॥ १५६८ ॥ स इदानीं सप्तमकर्म प्रतिपद्येत सदानागतकाले तत्प्रत्यास्थानमेव न्मृतमनागत

स्वरगुणप्रत्याख्यानं, अनुना सर्वोच्चरगुणप्रत्याख्यानमुच्यते, तत्रैवं गाथा—‘पञ्चस्त्राणं’ गाथा । अथवा देशोच्चरगुणप्रत्याख्यानं  
 भावकाणामेव भवतीति तदधिकार एवोक्तं, सर्वोच्चरगुणप्रत्याख्यानं तु लेशतत्रभयसाधारणमपीत्यतस्तदभिधित्वयाऽऽह—

पञ्चस्त्राणं उत्तरगुणेषु सामणादय अणेगविह । नेण य इहय पगय गवि य इणमो दसविह तु ॥ १५३३ ॥

अणागपमइकन कोटियसहिअ निअटिअ खेय । सागारमणागार परिमाणकट निरवसेस ॥ १५३४ ॥

सक्रेय खेय अद्याय, पञ्चस्त्राण तु वसविह । सयमेवगुणालणिय, दानुवपसे अह समानी ॥ १५३५ ॥

व्याख्या—प्रत्याख्यानं प्रागुक्तविषयवद्भार्य, ‘उत्तरगुणेषु’ उत्तरगुणविषयं प्रकरणात् साधूनां तादृदिदमिति—अपणादि,  
 क्षपणप्रहणाच्चतुर्थीविपरिग्रहः, आविग्रहणाद्विचित्राभिग्रहपरिग्रहः, ‘अनेकविध’मित्यनेकप्रकार, प्रकारश्च वक्ष्यमाणस्त्वनान  
 कविधेन, चण्ण्वाडुकलक्षणेन च, ‘अन्ने’ति सामान्येनोत्तरगुणप्रत्याख्याननिरूपणाधिकारे, अपया चण्ण्वाडुस्यकारा  
 र्थत्वात् तेनैव, ‘अन्ने’ति सर्वोच्चरगुणप्रत्याख्यानप्रक्रमे प्रकृतम्—उपयोगोऽधिकार इति पर्यायस्तदपि चेद दसविधं तु—मूला  
 पेक्षया दशविधं दसप्रकारकमेवेति गायार्थः॥ १५३६॥ अनुना दशविधमेवोपन्यस्तसाह—‘अणागत’ गाथा, अनागतकरणा  
 दनागतं, पदुपणादावाचार्यादिवैसाष्ट्यकरणान्तरायसद्भावादारत एव सत्तत्पकरणमित्यर्थः, एवमतिक्रान्तकरणादिति  
 क्रान्तं, भावना प्रादुर्भव । ‘कोटिसहित’मिति कोटीभ्यां सहितं कोटिसहितं—मिथिवोभयप्रत्याख्यानकोटि, चतुर्थीदिकरण  
 मेधेत्सर्पः, ‘नियन्त्रित खेय’ नितरां यन्त्रित नियन्त्रितं प्रतिष्ठातृदिनादौ नानाद्यन्तरायभावेऽपि नियमात् कर्तव्यमिति  
 इदं, ‘साकार’ आकियन्त इत्याकाराः—प्रत्याख्यानपथादेवतथोऽन्नाभोगादयः सहाकारः साकार, तथाऽपिप्रमानाकार



न तद् दृष्टव्यं, किं तर्हि ?, सर्वानुष्कणपञ्चमिमिति मरणमेवाम्यो मरणास्तु तत्र मया मारणात्तिकी बह्वृ (पूर्वपदात्) इति ठक् ( पा० ४-४-६४ ) संलिङ्ग्यतेऽनया परीरकपायावीति संलक्षणा-तपोविशेषलक्षणा तस्या अपूर्ण-सेवन तत्साराधना-भक्षणकालस्य करणमित्यर्थः, चक्षुः समुच्चयार्थः । एष सामायारी-आसेवितगिहिरमणे किञ्च सावनेण पृच्छा निष्कस्यमित्यर्थः, एवं सायाधर्मो वज्रमितो होति, न सञ्चति साधे भक्षपञ्चलक्षणकाले संयारसनपणे होतवति विभासा । आह एकम्-‘अपश्चिमा मारणात्तिकी संलक्षणासोपणाऽऽराधना’ इति चाररहितं सम्भक् पाञ्चनीयेति याज्यशेषः, अयं के पुनरस्या भविष्यार इति तानुपवर्षयन्नाह-‘रमीष्ट समणोषासपूर्णं०’ अस्या-अनन्तरादि तसंलक्षणासेवनाराधनायाः क्षमणोपासकेनामी पञ्चाविचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तथा-इह लोकासंसाधयोगः, इह लोको-मनुष्य लोकास्त्रिधाशसा-अभिजापलस्याः प्रयोग इति समासः श्रेयी स्याममात्यो वेति, एवं ‘परलोकासंसाधयोगः’ परलोक-देवलोक, एष अवितासंसाधयोगः, अयिर्त-प्राणधारणं तन्नाभिजापप्रयोगः-यादि बहुकालं अवेद्यमिति, इयं च पञ्चमाह्यपुल्लकपाधनादिपूजार्थनात् बहुपरिवारदर्शनात्, लोकअपाधप्रयणाद्यैवं मन्वते-अवितामेव श्रेयः प्रत्याह्वया तन्मनस्यापि, यत्र एवविधा मनुष्येनेयं विमृशियिष्यत इति, ‘मरणासंसाधयोगः’ न कश्चित् प्रतिपन्नानन्तं नवेययति न सपर्ययाऽऽद्वियते नैव कश्चित् श्लाघते, सतत्त्वस्यैवविधिशिष्यपरिणामो जायते-यादि शीघ्रं क्रियेऽहमपुष्पकर्मति, ‘भोगासंसाध योगः’ अन्मान्तरे चक्रपर्वी स्यान् यासुदेवो महाभण्डलिकः शुभकपधानित्यादि । तत्रः श्रावकधर्मः, व्याख्यातं सप्तभेद देवो

१ अत्र सामाज्यारि-भासद्विदपुद्विचर्मैव शिष्य आश्रयेत् एवादिश्रमभयम् एवं श्रावकधर्मो भक्तपुण्यः न कर्मोति तदा भक्त्यन्तार्यावकाशे संस्कार भक्त्येव अधिकस्य विभाषा ।

क्रिया, सप्त निसर्गः—स्वभावः अधिगमस्तु यथायस्थितपदार्थपरिच्छेद इति, आह—मिथ्यात्रमोहनीयकर्मसंयोगप्रभादेतिदमयति  
 कथमुच्यते निसर्गेण येत्यादि १, लभ्यते, स एव क्षयोपद्रमादिनिसर्गाधिगमजन्यमिति न दोषः, चकं च—“कसरदेसं ददित्थं  
 च विभ्रमाह क्षणदयो पप्य । इयं मिच्छस्त अणुदये चवसमसम्म छमति जीयो ॥ १ ॥ जीयादीणमधिगमो मिच्छस्तसु  
 स्वयोयसमभावे । अधिगमसम्म जीयो पावेह विसुद्धपरिणामो ॥ २ ॥” इति, अत्र प्रसङ्गेन, इह भवोदयो बुद्ध्यभां सम्य-  
 क्त्वादिभावदृष्टावति विज्ञायोपलब्धजिनप्रयत्नसारेण आवर्केण नितरामप्रभादपरेणाविचारपरिहारयत्वा भवितव्यमि-  
 त्यस्यार्थस्योक्त्यैव विशेषव्यापनायानुक्तयोस्य चाभिधानायेदमाह प्रत्यकारः ‘पञ्चानि चारविसुद्धमित्यादि सूत्र, इदं च  
 सम्यक्त्वं प्राग्निकपितृशङ्कादिपञ्चाविचारविशुद्धमनुपालनीयमिति शेषः, तथा अणुप्रवृत्तगुणप्रवृत्तानि—प्राग्निकपितृत्वक-  
 पाणि दृढमतिचाररहितान्त्येवानुपालनीयानि, तथाऽभिप्रस्ता—कृतवोषभूतप्रदानादयः शुद्धा—भेदाद्यतिचाररहिता एवा  
 नुपालनीयाः, अन्ये च प्रतिभावो विशेषकरणयोगाः सम्यक्परिपालनीयाः, तत्र प्रसिमाः—पूर्वोक्ताः ‘दस्तणययसामाहय’  
 इत्यादिना प्रत्येन, आदिष्वदावित्यादिभावनापरिमहः, तथा अपाक्षिमा मारणान्तिकी सखेसनाजोषणाराधना चातिचार-  
 रहिता पालनीयेत्यध्याहारः, तत्रैव पक्षिमेवापक्षिमा मरणं—प्राणत्यागलक्षणं, इह यद्यपि प्रतिक्षणमाधीचीमरणमस्ति तथाऽपि

१ अत्रदेवदृष्टय च सिध्यापथि क्षणवत्तः प्राप्य । एव सिध्यात्तत्त्वसाधुदये जीवसमिकसम्यक्त्व कसते जीवः ॥ १ ॥ जीवादीनामाधिगमाः सिध्यादस-  
 क्षयोपलभभावे । अधिगमसम्यक्त्वं जीवः प्राप्नोति सिधुदयदिगामाः ॥ १ ॥

अहंकारविमुक्तं भगुण्यपगुणलब्धयार्हं च अभिगताह्य अन्नेऽपि पत्रिमाद्यथो विसेसकरणजोगा, अपचिन्मा मारण-  
 तिषा सत्तेहणाह्यसणारारहणया, इमीए समणोवासपण इमे पण०, तज्जाह्य-इहलोगाससप्यभोगे परलोगास-  
 सप्यभोगे लीविषयाससप्यभोगे मरणाससप्यभोगे कामयोगाससप्यभोगे ॥ १३ ॥ ( अर्थ )

अथ पुनः भ्रमणोपासकधर्मे पुनःशब्दोऽवधारणार्थः, अथैव न साध्यादिभ्रमणोपासकधर्मे, सम्यक्त्वाभावेनाणुप्रता-  
 एभावादिति, यत्प्यति च-‘एस्य पुण समणोवासगधम्मे मूलवरसु संमच्च’ इत्यादि, यच्चाणुप्रतानि प्रतिपादितस्वकपाणि लीणि  
 गुणप्रतानि वक्तव्येणान्येव ‘यापवकधिकानी’ति सङ्गृहीतानि पावज्जीवमपि भावनीयानि, यत्तारीति सङ्गा ‘सिक्का-  
 पदप्रतानी’ति शिक्षा-अभ्यासस्य पदानि-स्थानानि तान्येव प्रतानि शिक्षापदप्रतानि, ‘इत्तराणी’ति सत्र प्रतिदिवसानु-  
 ष्ठेये सामायिकदेशावकाशिके पुनः पुनरुच्चार्ये इति भावना, पीपयोपवासाविधिसंविभागी तु प्रतिनियतदिवसानुष्ठेयो न  
 प्रतिदिवसाचरणीयापिति । आह-अस्य भ्रमणोपासकधर्मस्य किं पुनर्मूलवस्त्विति !, सन्नोच्यते, सम्यक्त्वं, तथा आह  
 प्रत्यकार-‘एतस्स पुणो समणोवासग०’ अस्य पुनः भ्रमणोपासकधर्मस्य, पुनःशब्दोऽवधारणार्थः अस्मैव, शाक्यादि  
 भ्रमणोपासकधर्मे सम्यक्त्वाभावात् न मूलवरसु सम्यक्त्वं, यत्तत्त्वसिद्धणुप्रसादयो गुणासङ्गभावमावित्वेनेति वस्तु मूलमूढं  
 द्वारभूत च सङ्गवस्तु च मूलवस्तु, तथा चोक्तम्-“द्वारं मूलं प्रतिष्ठानमाधारो भावर्त्त निधिः । द्विपदकस्यास्य धर्मस्य, सम्यक्त्वं  
 परिकीर्त्तितम् ॥ १ ॥” सम्यक्त्वं-प्रत्यमादिष्वर्था, एक च-“प्रथमसंवेगनिर्वृत्तानुक्त्यास्तिक्रियाभिम्यक्तिक्रमणं सम्यक्त्वं” (उत्था०  
 भाष्ये अ० १ सू० २) इति, कथं पुनरिदं भवत्यत आह-‘तस्मिन्समोण०’तत्-वस्तुमूलं सम्यक्त्वं निसर्गेण वाऽधिगमेन वा भवतीति

हेतोसि विभासा । इदमपि च शिक्षापदप्रवर्तयित्वा रहितमनुपालनीयमिति, अत आह—अतिधिसविभागस्य—प्रागुक्त-  
पितृष्वर्थस्य समणोपासकनामी पद्यासिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तद्यथा—‘सच्चिदानन्देण’ सच्चिदेन्दु—श्रीग्रा-  
दिषु निक्षेपणमन्त्रादेरदानमुद्भवा मातृस्थानतः, एवं ‘सच्चिदानन्देण’ सच्चिदेन फलादिना पिधानं—स्थानमिति समासः,  
भावना प्रागुक्त, ‘कालातिक्रम’ इति कालस्यातिक्रमः कालातिक्रम इति वचितो यो भिक्षाकालः साधूनां समतिक्रमणानागत-  
वा मुक्तेऽतिक्रान्ते वा, तदा च किं तेन लब्धेनापि कालातिक्रान्तत्वात् तस्य, वक्तुं च—‘कालं दिव्यस्य पथेयणरस-  
अगृह्यो ण तीरते कावं । तस्सेव अकालपणामियस्स गेणहसया णरियि ॥ १ ॥’ ‘परव्यपदेश’ इत्यात्मव्यतिरक्तो योऽन्यः स  
परस्वस्य व्यपदेश इति समासः, साधोः पोषधोपवासपारम्पकादे भिक्षार्थे समुपस्थितस्य प्रकटमन्त्रादि पश्यतः भावक्रोडभिपत्ते-  
परकीयमिति, नास्माकीनमतो न दद्यामि, किञ्चिद्याचितो याडभिपत्ते—विद्यमान एवामुक्तस्य दमक्ति, तत्र गत्या मार्गयत्  
सूयमिति, ‘मात्सर्य’ इति याचितः कुप्यति सद्यपि न दद्याति, ‘परोक्षसिद्धमनस्य च भारसर्व’मिति, एतेन दायद् द्रमकेण याचितं  
दत्तं किमहं ततोऽप्यून इति मात्सर्याद् दद्याति, कथयकष्टपितृनेत्रे चित्तेन दत्तो भारसर्वमिति, व्याख्यातं सातिचार यत्तु  
शिक्षापदप्रवर्तं, अधुना इत्येव समणोपासकसर्वम् । आह—कानि पुनरनुप्रवृत्तादीनामित्यराणि यावत्कथिकानीति !, अन्वयते—  
इत्थं पुण समणोपासनाधर्मो पञ्चाणुज्यपादं तिष्ठि गुणव्ययाह आचकहिपाह, यत्सारि सिक्खलावयाह इत्थं  
रियाह, एयस्स पुणो समणोपासनाधम्मस्स मूलवत्तुं सम्मत्त, तज्झा—त निसग्गेण वा अभिगग्गेण वा पव-

अर्थपारविस्तुब्धं भणुष्यपणुणत्वायार्हं च अभिगताह्य भवेत्तच्चि पञ्चिमादयो विसेसकरणजोगा, भयपञ्चिमा मारण-  
 तिषा सुखेष्टणाक्षसणाराहणया, इमीष समणोपासपण इमे पञ्च०, तंजहा-इहलोगाससप्यभोगे परलोणास  
 सप्यभोगे लीविषयाससप्यभोगे मरणाससप्यभोगे कामयोगाससप्यभोगे ॥ १३ ॥ ( सूत्रं )

अत्र पुनः भ्रमणोपासकधर्मं पुनःशब्दोऽवधारणार्थः, अर्थेय न स्वाध्यादिभ्रमणोपासकधर्मं, सम्यक्त्वाभावेनाणुप्रता-  
 एभावादिति, यस्यति च-‘एतत् पुण समणोपासगधर्मे मूलधर्युं समस्तं’तिस्यादि, पञ्चाणुप्रतानि प्रतिपादितस्वकपाणि बीणि  
 गुणप्रतानि चकलधणान्येव ‘यापत्कपिकानी’ति सकृदृष्टीवानि पावज्जीवमपि भावनीयानि, चत्वारसीति सङ्ख्या ‘सिद्धा-  
 पदप्रतानी’ति सिद्धा-अभ्यासस्रस्य पदानि-स्थानानि तान्येव प्रतानि सिद्धापदप्रतानि, ‘इत्वरानी’ति तत्र प्रतिदिवसानु  
 धये सामाधिकदेशावकाशिके पुनः पुनरुच्चार्य इति भायना, यौषधोपवासाविधिसंविभागो तु प्रतिनियतदिवसानुधेयो न  
 प्रतिदिवसाचरणीयाविति । आह-अस्य भ्रमणोपासकधर्मस्य किं पुनर्मूलवस्तिविति !, भवोच्यते, सम्यक्त्वं, तथा चाह  
 मन्वकारः-‘यत्तस्य पुणो समणोपासग०’ अस्य पुनः भ्रमणोपासकधर्मस्य, पुनःशब्दोऽवधारणार्थः अस्त्वैव, शाक्यादि  
 धमणोपासकधर्मे सम्यक्त्वाभावात् न मूलयस्तु सम्यक्त्वं, यस्तस्यसिद्धपणुप्रतादयो गुणाकृद्भावमावित्वेनेति यस्तु मूलमूलं  
 द्वारभूत च सद्रूपस्तु च मूलयस्तु, तथा चोक्तम्-‘द्वारं मूलं प्रतिष्ठानमाधारो भावने निधिः । द्विपदकस्यास्य धर्मस्य, सम्यक्त्वं  
 पारिकीर्तितम्॥१॥’सम्यक्त्वं-प्रथमादिछवर्णं, सक च-‘प्रथमसंवेगनिर्वेदानुकम्पाकिञ्चयाभिव्यक्तिकवर्णं सम्यक्तव’ (धर्मा०  
 भाष्ये अ० १ सू० २)मिति, कथं पुनरिदं भवत्यत आह-‘लक्षितगणेण०’तत्-यस्तुमूलं सम्यक्त्वं निवर्तयेण याऽधिगमेन वा भवतीति

इति चेत् विभासा । इदमपि च शिक्षापदप्रत्ययविचाररहितमनुपादनीयमिति, अत आह—अविधिसविभागस्य—प्रागुक्तिरपितशब्दार्थस्य क्षमणोपासक्येनाभी पश्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तथाभा—‘सविचनिर्ज्ञेयण’ सविचेष्टु—ग्रीष्मादिषु निक्षेपणमन्त्रादेरदानबुद्ध्या मायस्थानतः, एष ‘सविचविधानं’ सविचेन फलादिना विधानं—स्थगनमिति समासः, भावना प्रागुचत्, ‘कालातिक्रम’ इति कालस्यातिक्रमः कालातिक्रम इति वचितो यो भिक्षाकालः साधूनां समस्तिक्रमपानागतवा भुङ्क्तेऽतिक्रान्ते वा, तथा च किं तेन कन्धेनापि कालातिक्रान्तत्वात् तस्य, वक्तुं च—‘काले दिव्णस्य पथेयणरस अभूयो ण तीरते कावं । तस्सेव अकालपणामियस्स गेण्हंतया णरिय ॥ १ ॥’ ‘परव्यपदेश’ इत्यात्मव्यतिरक्तो योऽन्यः स परस्वस्य व्यपदेश इति समासः, साधोः पोषणोपवासपारणकाले भिक्षार्थे समुपस्थितस्य प्रकटमन्त्रादि पश्यतः क्षायकोऽभिपद्यत परकीयमिदमिति, नास्माकीनमतो न दद्यामि, किञ्चिद्याचितो याऽभिपद्यते—विद्यमान एवामुक्तस्येदमस्ति, तत्र गत्वा मार्गपथयूयमिति, ‘मात्सर्य’ इति याचितः कुप्यति सद्यपि न दद्याति, ‘परोक्षविषमनस्य च मात्सर्यमिति, एतेन तावद् द्रमकेण याचितं न दत्तं किमहं ततोऽप्यून इति मात्सर्यार्हं दद्याति, कयायकद्वयितेनैव चित्तेन ददतो मात्सर्यमिति, इत्याख्याय सातिचार यत्तुर्थं शिक्षापदप्रत्ययं, अधुना इत्येष क्षमणोपासक्यमर्थः । आह—कानि पुनरुपपत्तादीनामित्यराणि यावत्कथिकानीति १, अत्रोच्यत—इत्थं पुण समणोपासगधम्मो पचाणुव्वयाइ त्तिथि गुणव्वयाइ आयकहिपाइ, यत्तारि सिक्खत्ताययाइ इत्थं रियाइ, एयस्स पुणो समणोपासगधम्मस्स भूलवत्तुं सम्मत्ता, तज्जाइ—त नित्तनगेण वा अभिगमणेण वा पथ

१ मविष्वादिनि निमात्र । २ कावे दृष्टस मदेण्कमात्रो न वाच्यते कर्तुम् । तर्कवाक्यदृष्टस मादृश न सतिष्ठ ॥ १ ॥

अण्णो भाण पट्ठेहेवेति, मा अंतराहयदोसा ठवित्तागदोसा ए मयिस्संति, सो एति पट्ठमाए पोकसीए निमंतोति  
 अस्ति णमोच्चारसादिवारादो सो नेमस्सति, अपय णत्थि ण नेमस्सति, सं वदित्थयं होति, अति एणं छगेज्जा तांसे नेमस्सति  
 सधिवत्साविज्जति, जो एा वत्थायाए पोरिसिए पारेति पारणइसो अण्णो एा वत्स विज्जति, पच्छा तेण साधयाण समगं  
 गम्मति, सधादगो पच्चति, एणो ण पट्ठति वेसिंतुं, साधू पुरभो सायगो मगगतो, एरं पोक्कण आसणेण उव्वणिसंतिज्जति,  
 ज्जति णिपिट्ठगा सो छट्ठयं, अप ण णियेसति वधावि विणयो पवत्तो, सांसे भवं पार्णं सयं वेव देति, अपवा माणं परेति  
 भज्जा देति, अपया ठिगीभो अएछति आय दिणं, साधूयि सायसेस इवं नेणइति, पच्छाक्रमपरेहाराण्हा, दापूण वंदिंतुं  
 विसज्जति, विसज्जसा अणुगएछति, पच्छा सयं मुंजति, जं ए वक्किर साधूण ण विण्यं सं सावरोण ए मोचवं, जति  
 पुण साधू णत्थि तांसे दसकाछयेताए विसालोणो कावयो, विसुद्धभावेण चित्तिवदं-जति साधुणो होता सो णित्थारितो

१ अण्णो भाणव मांतिक्कएति माअच्छताधिको दोसा भूइइ साधवागोएण ए वदि मयमातां पीडन्तां विमानवदे अस्ति कम्मस्सरादित्थय एउत्ते-  
 य ए मांति ए एउत्त एउत्तेवदं भवेइ एदि एवं एयेइ एदा एउत्त संतरवते सो बोधुणत्तपोइन्ना पारवति पारवताकम्मो वा एउत्ते दीपते एज्जावेर एण  
 एण सल एक्कए संघारको मज्जति एउत्ते ए वत्तं मेयिंतुं साधुः सुरता आसकाः पुत्तताः एतं अंतराअच्छवेव विसज्जयति वदि विसिटा जं माव विसिटा-  
 ठयांति विवदः मनुजो ( भवति ) एदा भक्क एां एा सयमेव वृद्धसि अपया भाज्यं पारवति यार्था वृद्धांति अपया विसय एव तिष्ठति एाएएव साधुएवि  
 साधराव इभ्य गृह्णाति एणमकर्मपरितराणायां ए एदा वसित्ता विसदंवेति विसज्जानुगएछति एसाए एवं एउत्ते एव वक्किर साधुणो ए एव ए एक्कावेक  
 भोचन्तं, वदि पुनः साधुमांति एदा इकावत्तवतायां विगाओका कर्तव्याः विमुदत्तावेर विज्जतिवदं-जति साधवोअविसिक्क एदा विसासितो-

संविभागोऽतिथिसंविभागः, संविभागप्रहणात् पश्चात्कर्मादिदोषपरिहारमाह, नामशब्दाः पूर्वपत्, 'न्यायागतानां'मिति  
 न्यायः द्विजक्षत्रियविदशूद्राणां स्वधृष्यनुष्ठानं स्वस्ववृत्तिश्च प्रसिद्धैव प्रापो लोकेर्ह्यां तेन तादृशा न्यायेनागतानां-श्रासानाम्,  
 अनेनान्यायागतानां प्रतिषेधमाह, कल्पनीयानामुद्गमादिवोषपरिषर्जितानामनेनाकल्पनीयानां निषेधमाह, अन्नपानादीनां  
 द्रव्याणाम्, आदिग्रहणाद् वक्ष्यमाधीपधमेपञ्चादिपरिग्रहः, अनेनापि हिरण्यादिव्यवच्छेदमाह, 'देशकालध्वजाशकार  
 क्रममुक्तं' तत्र नानामीहिकोद्वेककुणोष्मादिनिष्यसिमाय् देशाः सुनिश्चयुर्भिष्वादिः कालः विशुद्धाभिसत्परिणामः अन्ना  
 अन्त्युत्थानास्तनवानयन्दनानुप्रक्षणादिः सत्कारः पाकस्य वेयादिपरिपाठ्याः प्रदानं क्रमः, एभिर्देवादिभिर्मुक्त-समन्वितं,  
 अनेनापि विषयव्यवच्छेदमाह, 'पर्या' प्रधानया भक्त्येति, अनेन फलप्राप्तौ भक्तिफलमविसयमाह, आत्मानुग्रहदुर्भ्या  
 न पुनर्यत्पुनर्ग्रहदुर्भ्येति, तथाहि-आत्मपरानुग्रहपरा एव यतयः संयत्ता मूलगुणोत्तरगुणसम्पत्ता साधवस्त्वभ्यो दानमिति  
 सूत्राक्षरार्थः । परेष सामाज्यारी-साधनोप पोषधं पारितेण लियमा साधूणामदातुं ण पारेयय, अन्नदा पुण अनियमा-दातुं  
 वा पारेसि पारितो वा देशसि, तस्मा पुबं सापूर्णं दातुं पञ्चा पारेववं, कथं !, जाधे देवकालो ताधे अप्पणो सरीरस्स  
 विसूस्स काढं साधुपठिस्सयं गंतुं निमंसेति, भिक्खं गेणह्वसि, साधूण का पठिवत्ती !, साधे अण्णो पढढं अण्णो मुहणतपं

१ अन्न सामाज्यारी-साधनोप पोषधं पारितेण निजमाय साधुभ्योऽन्नदात्ता य पारितेयत्वं अन्नाया पुनरतिवत्तमाः अन्ना वा पारयति श्रातिपात्ता वा ददातीति  
 तस्मात् पूर्वं साधुभ्यो अन्ना पारितेयत्वं कथं ! अन्ना वेपथ्वमन्नदात्ताऽन्नायाः श्रातिरस्य भिक्षुणां अन्ना साधुपठिभ्यः अन्ना निमज्जवते भिक्षां पृच्छीतवत् साधूनां  
 का प्रतिपत्तिः १-अन्नाभ्यः पढढं अन्नां मुहणतवत्



भण्णो भाणं पट्टिलेहेति, मा अंतराहणपोसा ठवित्तादोसा ए मयिस्सति, सो ज्ञाति पट्टमाए पोठसीए सिमंवेति  
 अत्थि पामोक्कारसहिवाइतो सो गेम्माति, अपय णत्थि ण गेम्माति, तं वहित्थयं होति, ज्ञाति एण उगेज्जा तापे गेम्माति  
 संविक्कसाधिज्जाति, ओ पा उग्गपाटाए पोरिसिए पारेति पारणाइओ अण्णो वा सस्स दिज्जाति, पण्छा वेण सायणेण समं  
 गम्माति, सपाइगो पयति, एगो ण पट्टति पेसित्तु, साधू पुरयो सायगो मगावो, धरं पेठ्ठण आसणेण उवप्पिमातिज्जाति,  
 ज्ञाति णिपिठ्ठगा सो उट्ठय, अप ण णिपयसति उपायि यिणयो पवत्तो, तापे भत्तं पाणं उय वेव देति, अयवा भाणं धरेति  
 भज्जा दति, अयवा ठितीओ अउति जाय दिण्णं, साधूयि सायसेस दत्तं गेम्माति, पण्छाकम्मपरिहारपण्ण, दावूण वंदित्तुं  
 विसज्जाति, विसज्जसा अणुणयति, पण्डा सयं मुज्जाति, जं च किर साधूण ण दिण्णं तं सायणेण ए भोत्तं, ज्ञाति  
 पुण साधू पात्थि तापे दत्तकाउयेलाए दिसाउगेगो कावयो, यिसुद्धभावेण विवित्थयं—ज्ञाति साधूणो होता सो निस्सारीतो

१ अण्णो भाणं पट्टिलेहेति मा-अण्णोपिकेवा दावा भूइस्सत्ताएनायेवाज्ज स वप्पि प्रथमायां पौट्ठ्यां विस्मयवते ज्ञाति कम्मस्सज्जातिउत्तरा पृथगे-  
 स च कर्मात् न पृथुलं उद्गाहय भवत् दाई सव कणात् तदा पृथुलं संहरवते सो बोद्धव्यतयौक्य्यां पारयथि पारज्जाकम्मां वा ठीकं दीपते पज्जातेव साव-  
 दय सम गान्धन संवत्सरा दत्तार्ति पृथ्वे न वत्तंतं प्रविर्तुं साधुः सुरतः सावका पृथुलः पुर भीष्माऽऽम्येव विस्मयवथि दाई विविधा कट भाव विविधान्वि-  
 त्तयार्ति विवदः प्रपुच्छा ( भवति ) तदा मर्कं वाच वा उपयोग इत्यादि अथवा याज्यं पारयथि भावा इत्यादि अथवा निवृत्त पृथ विवति वाइएव साधूयि  
 सावराव द्रव्य पृथुनि वसाकम्पपरिहरणार्थं दावा एभिर्दावा विसर्जयति विवृतानुगायति एवाए एव मुने इव निवृत्त साधून्यो न इव न वत्सुवत्केन  
 भोक्तायं दाई पुन. साधूयार्ति तदा इषकाकटकादीं रिगावोकाः कथमाः यिसुद्धभावेन विवित्थयत्तं—यदि साधवोऽयमपिप्यत् तदा विवित्थये-

धम्मं ज्ञाणं ज्ञायति, अथा एते साधुगुणा अहं असमर्थो मंदभगो धारेण विभासा । इदमपि च शिक्षापदप्रवर्तितधारर  
 हितमनुपालनीयमित्यत आह—‘पोसघोपयासस्स समणो’<sup>१</sup> पोपघोपयासस्य निकपित्तव्यवहार्यस्य भ्रमणोपासकेनामी पयातिधारा  
 ज्ञातव्या न समाधारितव्या, सद्यथा—अप्रत्युपेक्षितबुध्प्रत्युपेक्षितव्यथासंस्कारा, इह संकीर्यते यः प्रतिपन्नपोपघोपयासन  
 दर्नकुशकम्बलीवज्जाविः स संस्कारः सद्यथा प्रतीता प्रत्युपेक्षण—गोचरापन्नस्य व्यथादेशस्युपा निरीक्षण न प्रत्युपेक्षणं अप्रत्यु  
 पेक्षणं बुद्धम्—वद्व्यान्तवैतसा प्रत्युपेक्षणं बुध्प्रत्युपेक्षणं सत्त्वभाप्रत्युपेक्षितबुध्प्रत्युपेक्षितो व्यथासंस्कारो चेति समासः, सद्यथ  
 वा संस्कारः सद्यथासंस्कारः, इत्येवमन्यभाधरगमनिका कार्येति, उपलक्षणं च सद्यथासंस्कारासुपयोगितः पीठ(कठ)कादरपि । एत  
 पुण सामायादी—कठपोसघो णो अप्पहिलेहिया सज्जं बुक्कति, सयारागं वा दुरुहं, पोसहसाळं वा सेवहं, दम्भवय पा सुप्प  
 धरयं वा भूमीप्प संयरति, काइयभूमिगो वा भागो पुणरपि पडिहेहति, अण्णधातिपारो, एवं पीठगादिसुपि विभासा ।  
 तथा अप्रमार्जितबुध्प्रमार्जितव्यथासंस्कारो, इह प्रमार्जन—शुद्ध्यादेरासेवनकाले वस्त्रोपान्तादिनेति, बुद्धम्—भविष्यता  
 प्रमार्जनं दोषं भावितमेव, एवं वस्त्रारप्रभ्रव्यपमूलावपि, वस्त्रारप्रभ्रवणं निष्ठभूतस्त्रेकमलाहुपवक्षण, क्षेत्र भावितमव । इथा  
 पोपधस्य सज्जबुद्ध—प्रवचनोक्तेन विधिना निष्पन्नयेन वैतसा अननुपालनम्—अनासेवनम् । एतर्धं भायना—कतपोसधा

<sup>१</sup> धर्मप्यामं व्यासति यथा साधुगुणानेवाह भन्नासयोऽसमर्थो धारिधुं विभासा । २ अथ बुद्धः सामायादी—कठपोसघो भागमिच्छिन्नं सद्यथासाहंन

संस्कारं वसोहसि पोपधसज्जं वा सेवते धर्मवत्तं वा सुद्वयं वा भूमीं संस्तुयाति क्यधिकीयुमिदं भागो वा बुद्धादि प्रक्षिपिष्यति अन्वयाभिधेयः  
 एव पीठकादिष्वपि विभासा । ३ अथ भावना इत्यपोपघो



धम्मं क्षाणं क्षायति, अथा एते साधुगुणा अहं असमर्थो मंदमगो धारेतुं विभासा । इदमपि  
 हितमनुपाळनीयमित्यत आह—‘पोसधोवयासस्स समणो’<sup>१</sup> पोपधोपयासस्य निकषित्वादर्थास्य अत्र  
 ज्ञातव्या न समाचरितव्याः, तथाया—अप्रत्युपेक्षितवुल्लस्युपेक्षितस्यव्यासंस्कारो, इह संस्तीर्यते  
 दर्मकुसकन्वलीषस्त्रादिः स संस्कारः शब्दा प्रसीता प्रत्युपेक्षण—गोचरापवादस्य शब्धादेश्चक्षुषा नि  
 पेक्षणां दुष्टम्—वद्वज्जान्स्वेतसा प्रत्युपेक्षणं बुल्लस्युपेक्षणं सतश्चाप्रत्युपेक्षितवुल्लस्युपेक्षितो वादया  
 या संस्कारः शब्दासंस्कारः, इत्येवमन्यनाक्षरगमनिका कार्येति, तपलक्षणं च शब्दासंस्काराद्युपयोगिनि  
 पुण सामायादी—कण्डपोसधो णो अप्पदिळेहिवा सज्जं पुकरति, संपारगं वा नुरुहह, पोसहसालं प  
 वरयं वा भूमीप संघरति, काइयभूमितो वा आगतो पुणरपि पदिळेहति, अण्णधातिवारो,  
 तथा अप्रमार्जितवुल्लममिक्षितस्यव्यासंस्कारो, इह प्रमार्जन—शब्दादेरात्सेयनकाले वखोपा  
 प्रमार्जनं दोषं भावितमेव, एव चक्षारप्रभयणभूमायपि, चक्षारप्रभयणं निष्ठयूतसेलमलादुप  
 पोपधस्य सम्यक्—प्रवचनोक्तेन विधिना निष्पकभ्येन चेतसा अननुपालनम्—अनासेवनम्

१ धर्मरक्षणं व्यासति, यथा साधुगुणनेताह मन्त्रसाधोभससर्धो धारयितुं विभासा । २ अथ दुःखं सामास्यार्थं  
 संस्कारकं धारोहति पोपधमाणां वा सेवते दर्मवत्ता वा सुदुर्लभा वा भूमी संस्पृशति कान्दिदीप्यमिव आगता प  
 एव पीठक्रादिष्वपि विभासा । ३ अत्र भाष्येना कृतपोपधो

अधिरक्षितो आहारे ताव सव देस वा पत्येति, विविचयिषसे पारणगस्स वा अप्यणो अद्याप आहसिं क्खेए, क्खेए वा इमे म वसि क्खे पणियं वट्ठइ, सरीरसक्कारे सरीर वट्ठेति, दाहियाव केसे वा रोमराई वा सिंगाराभिप्पायेण संठवेति, दाहे वा सरीर सिंघति, एवं सवाणि सरीरविभूसाकटणाणि(ण)परिहरति वंमचेरे, इहलोए परलोए वा भोगे पत्येति संघ-  
वेति वा, अथवा सइफरिसरसक्कगंधे वा अहिकसति, कइया वंमचेरपोसहो पूरिहिइ, जइणा मो वंमचेरेयीति, अन्नाकारे सावज्जाणि धावारंति कठमक्कव वा सिंतेइ, एवं पंक्कविचारसुखो जणुपाळेववोसि । उक्कं साविचारं तुटीयसिंघापदवतं, अनुना वणुर्यमुक्क्यते, तसइ सुजम—

अतिहिसयिभागो नाम नायानायाण कप्पणिज्जाण अन्नपाणार्इणं वृत्तार्णं देसकाकसदासक्कारकम  
सुअ पराए अत्तीए आयाणुनगइहुदीए सजयाण दाण, अनिहिसविभागस्स समणो० इमे पच्च० लज्जा-  
सवित्तनिक्खेवणया सविस्सपिण्णया कालइक्कमे परववएसे मक्कवरिया य १२ ॥ ( सूत्रं )

इह भोक्कनार्थं भोक्कनकाळोपस्याव्यतिथिरुक्क्यते, तज्जातार्थं निप्पादियाहारस्स एहिन्नतिना मुक्क्याः सापुरेवाविपिस्तस्य

१ अन्नादिव ताहारो ताव सव देस वा माववते पिटीवदिक्खते वाससत्तवः पारणगस्यो अहसिं क्खेति इह वेदमिदं वेति कथायामज्जत्य वट्ठेति  
दाहिसाहार कटिं वचवसि स्समुक्कमाइ वा रोमराई वा अह्यासिमिमायेव संक्कापवसि मित्थे वा कटिं सिंघति एवं सर्वाणि घटीरन्निमुक्ककारानि म  
परिहरति मक्कचरे देहर्काकइया पाकाइकाइ वा भोयाइ मार्चवते संक्कापवसि वा अथवा अइएसवत्तसकपमन्वात्तामीनकप्पति अद्या मक्कचर्दपोपकाः ए  
मिप्पयिं म्माइकाः सो मक्कचर्दपयि । अथवापारे आवायाइ व्यापारयिं इयमहुव वा विम्ववसि एवं पक्कासिंघाहोपेजुजमक्करीयः ।

धम्मं ज्ञाणं ज्ञायति, अथा एते साधुगुणा अहं असमर्थो भंदमर्थो धारतु विभासा । इदमपि च शिक्षापदप्रथमतिचाररहितमनुपासनीयमित्यत आह—‘पोसधोववाससस समणो’० पोषधोपवाससस्य निकपितशब्दार्थस्य क्षमणोपासकेनामी पद्यातिचाराज्ञातव्या न समाधिरित्यव्याः, तथा—अप्रत्युपेक्षितवृत्त्यसुपेक्षितसाध्यासंस्काराः, इह संक्षीर्यते यः प्रतिपक्षपोषधोपवासेन दर्मकुशकम्बलीयस्त्रादिः स संस्कारः शत्र्या प्रतीता प्रत्युपेक्षण—गोचरापक्षस्य शत्र्यादेः अथवा निरीक्षण न प्रत्युपेक्षणं अप्रत्युपेक्षणं वृष्टम्—वृद्धान्तचेतसा प्रत्युपेक्षणं वृद्धप्रत्युपेक्षणं सप्तधामप्रत्युपेक्षितवृत्त्यसुपेक्षितौ शत्र्यासंस्कारौ चेति समासः, शत्र्वयं वा संस्कारः शत्र्यासंस्कारः, इत्येवमन्यथाकरणमनिका कार्येति, उपलक्षणं च शत्र्यासंस्कारादुपयोगिनः पीठ(फळ)कादेरपि । एतथ पुण नामाधारी—कष्टपोसधो णो अण्वित्तेहिद्या सज्जं वुरुहति, संघारगं या वुरुहइ, पोसहसावं वा सेवइ, दम्भपरपं वा सुद्धं वरवं वा भूमीए संघरति, काइयभूमितो वा आगतो पुणरपि पस्सिहेइति, अण्णधातिवारो, एवं पीडगादिस्तुपि विभासा । तथा अममार्जितवृद्धमार्जितसंघासंस्कारो, इह प्रमार्जनं—शत्र्यादेरासेवनकाले वखोपान्तादिनेति, वृष्टम्—भविषिना प्रमार्जनं दोषं भावितमेव, एवं उच्चारप्रभवणमूमावपि, उच्चारप्रभवणं निष्ठश्रुतस्तेकमलापुपलक्षणं, दोष भावितमेव । तथा पोषधस्य सम्पद्—प्रयत्ननोकेन विधिना निष्पन्नमेव चेत्तसा अननुपालनम्—अनासेवनम् । एतथ भायता—क्रवपोसधो

१ धर्मेश्वरं ध्यायति, यथा साधुगुणानेताहं मन्दमानोऽसमर्थो धारयितुं विभासा । २ अथ गुणं साक्षात् धारी—कृत्योपेक्षो अत्रास्तिष्ठन् धारयातोर्हति संस्कारकं धारोहति पोषधसाध्यं वा सेवते दूर्वावका वा शुद्धवका वा यूपी चरद्वयादि काश्चिदीदृशित आगतो वा पुनरपि प्रक्षिप्यति अन्वयाऽर्थिवाः । एवं पीडकादिष्वपि विभासा । ३ अथ भायता कृत्यपोषधो

पोषयः प्रकाशयर्पोषया, अत्र चरणौय चर्ये 'अपो यदि' स्थसाधधिकारात् 'नक्षत्रचरयमन्त्रानुपसर्गात्' (पा० १-१-१००)  
 इति यत्, प्रकाशयर्पोषयाने, ययोक्तं—'प्रकाशयेदा प्रकाशये, प्रकाशयाने च साध्यतम् ।' प्रकाशये तत् चर्यं चेति समासा-  
 दयं पूर्वपत् । सथा अन्यापारपोषयः । देव्य पुण भावयो एत-आहारपोषयो बुधियो-देसे सव य, देसे अनुगा विगती  
 भायंषिष्ठ वा एवसिं या दे पा, सये चतुष्टिभेऽपि आहारो अहोरत्तं पञ्चकलातो, सरीरपोषयो णाशुषहृष्यवप्यनविडे-  
 वयानुष्कगपतवोद्वानं यथाभरणा ण च परिधानो य, सोयि देसे सये य, देसे अनुगा सरीरसकारं करोमि अनुगं न करोमिति,  
 सये अहोरत्तं, यंभचरपोषयो दस सव य, देसे दिवारत्तिं एवसिं दे पा वारत्ति, सये अहोरत्तिं नंनयारी भवति, अन्नावारं  
 पासयो बुधियो देसे सये य, दस अनुगं पापारं ण करोमि, सव सवत्तवावारं दससाहपरपरकमादीनो ण करोति, एतय जो  
 दसपोसय करोति सामादय करोति या ण या, जो सवपोसयं करोति सो भियमा क्यसामादितो, जति य करोति तो भियमा  
 यच्चिज्जति, त कट्टि, चेतिपपरे साधुपूछे या पारे वा पोसयसाज्जाय या वन्मुक्कमणिमुवप्यो पढंतो पोत्थनं वा वायवतो

१ अत्र दुर्बलाभायं पूर्य-आहारपोषयो द्विविधा-द्वयताः सर्वतल दस अनुग भिदुतिः आचमाम्भ वा एकको द्विती सवत्तवपुर्बेऽप्यहोरात्रोत्तमं  
 दसरात्राहोरात्राहः सावाहोर्बहवकविद्वयगपुष्याभयतम-द्वयतां कलाभयतां च परिभामात् सोयि देसे सये सवत्तव देवतोऽनुगं जतिरसकारं करोम्यनुगं  
 न करोमि सवत्तवोद्वानं प्रकाशयरोषया दसताः सर्वतल दसता द्विपा तावा वा पृक्तसो द्विती सर्वतोऽहोरत्तं प्रकाशयारी यवति अन्नावारं यरोषयो द्विविधो  
 दसतः सवत्तव दसताऽनुग दसपारं न करोमि सर्वतः सवत्तवपुष्यात्तद् दससाहपरपरकमादीकात् न करोति अत्र जो देवपोषयं करोति वामाभिक करोति वा  
 न वा य सवत्तव करोति स भियमा क्यसामादिकः यति न करोति तदा भियमाहोरात्रोत्तमं दस कट्टि देवपूछे साधुपूछे वा पूछे वा पोषयसाज्जाय वा  
 दसपुष्कमणिमुवप्यो पढंतः पुष्क वा वायवत्

त्यस्यै सख स्वयं गमनायोगाद् दृष्टिमाकारमस्यासन्नयतिनो मुक्तिपूर्वकं हृत्कृतिसत्तादिप्रवृत्तये । समयासितका । पोषयता  
 शब्दस्यानुयातान्-वधारणं सादृश्यं । परकीयमपणयिपरमनुपवस्यसायिहि, तथा कथागुणाः-अभिप्रेदीतदसाद् भक्षिः  
 मयोजनभावे शब्दमनुधारयत् एव परेषां समीपायनार्थं स्वयदीरकपदार्थं कथानुयातः, तथा भक्षिः पुत्रगणमपेक्षः अभिप्रेदीत  
 देयात् भक्षिः मयोजनभावे परेषां मयोपेनाय लेप्तादिवेषः पुत्रगणमपेक्ष इति भावना, देयापकाधिकमेव दर्शयति । अत्र  
 बहिर्गमनागमनाद्विषयापारकसिद्धः प्राणमुपमर्द इति, स च स्वयं कृतोऽप्येव वा कारित इति । कश्चिद् पठेति शेषः  
 प्रत्युक्त गुणः स्वयंगमने ईर्ष्यापययिषुष्ये परस्य गुरारिगुणत्वाद्दृष्टिरिति कृतं प्रसङ्गः ॥ न्यास्यात् साविभार्द द्वितीयं

प्रत्युक्त गुणः स्वयंगमने ईर्ष्यापययिषुष्ये परस्य गुरारिगुणत्वाद्दृष्टिरिति कृतं प्रसङ्गः ॥

शिक्षापदमत्वं, अनुना सुवीयगुप्यते, समेवं दृष्टम्-  
 पोसद्वोपयासे यवद्विषदे पल्लवे, मज्जा-आहारपोसदे सरिरसकारपोसदे धंसचेरपोसदे अन्धपारपोसदे,  
 पोसद्वोपयासस्स समणो० इमे पद्म०, मज्जा-आप्यल्लेहिपिपुप्यल्लेहिपिसिद्धास्यारप अपमज्जिपुप्यमज्जिप  
 पोसद्वोपयासस्स समणो० इमे पद्म०, मज्जा-आप्यल्लेहिपिपुप्यल्लेहिपिसिद्धास्यारप अपमज्जिपुप्यमज्जिप  
 सिद्धास्यारप अप्यल्लेहिपिपुप्यल्लेहिपिपुप्यल्लेहिपिसिद्धास्यारप अपमज्जिपुप्यमज्जिप

नुमीको पोसद्वोपयासस्स समं अणुपाल(ण)पा ॥ ११ ॥ ( दृष्टम् )

इह पोषयशब्दो रुज्या पर्युक्तं वर्तते, पर्वणि यादृश्यादितिभयः, पूरणात् पर्यं, धर्मोपपद्येदुत्पादित्यर्थः, येषमेव उपप  
 सन् पोषयोपयासा रियमादिशेषाभिप्रायी शब्दं पोषयोपयासा इति, अथ च पोषयोपयासासन्नयतिभयः प्रसङ्गः, एवमा-  
 रपोपयः आधारा मदीया इतिप्रसङ्गात्तिलिखे पोषय आहारपोषयः, आहारमिष भर्मपूरणं पर्येति भावः, एवं दादीतात्कार



पोषणः प्रकृत्यर्थपोषणः, अथ चरणीय चर्ये 'अथो यदि' त्यस्मादधिकारात् 'नयसदचरयमह्यानुयसर्गात्' (पा० १-१-१००)  
इति यत्, प्रकृत्यनुयानुष्ठानं, यथोक्तं—'प्रकृत्येवा प्रकृत्यस्यो, प्रकृत्यज्ञानं च यथाभवत् ।' प्रकृत्य च तत् चर्यं चेति सप्तमः  
शेष पूर्ववत् । तथा अन्यपापारपोषणः । इत्य पुन भावस्यो एत—आहारपोषणो बुधियो—देसे सब य, देसे अनुगा विगती  
आर्यपिठ या एकसिं या दो या, सबे चतुविधोऽपि आहारो अहोरत्नं पञ्चमस्याधो, सरीरपोषणो पञ्चानुबद्धपञ्चगव्यविधि-  
यणपुष्पांगपञ्चकोष्ठाण यत्पाभरणार्णं च परिष्कारो य, सोवि देसे सबे य, देसे अनुगा सरीरसङ्कारं करोमि अनुगा न करोमिति,  
सये अहोरत्नं, वंभचेरपोषणो देसे सबे य, देसे दियारत्तिं एकसिं दो या पारेसि, सब अहोरत्तिं वंभयारी भवति, अन्नाहारं  
पोषणो बुधियो देसे सबे य, देसे अनुगां पापारं ण करोमि, सबे सयसपावारे इतसगदयदपरकमादीभो ण करोति, एत्य ओ  
दसपोसय करोति सामादप करोति या ण या, ओ सयपोसयं करोति सो नियमा क्यसामादतो, जसि ण करोसि तो नियमा  
वधिज्जाति, स कदि !, चेति यपरे सापूसूते या परे या पोसयसाकाय या चम्पुकमणिसुवण्णो पदतो पोस्यगं या यापतो

१ अथ पुनर्मात्रार्थे पुरः—आहारपोषणो द्विविधः—देहका सर्वतश्च देहो अनुया विवृतिः आद्यामानक या एकलो विवर्तं सस्यजगुर्देहोऽन्यभारोऽन्योत्ताव  
नसावयत्तः, सरीरपोषणः आधोद्वन्द्ववर्तकवित्तेष्वनुपपन्नयथाभूतवर्तं आद्यामानार्थं च परीक्षायत्त कोमि देहका सर्वतश्च देहलोऽनुकं प्रतिगच्छकारं करोम्यनुक  
न करोमि सयतोऽहोरत्नं प्रकृत्यर्थपोषणो बुधयो सर्वतश्च देहलो भिया रात्रा या एकलो विवर्तं सयतोऽहोरत्नं चदवा । यदधि अन्त्यारपोषणो द्विविधो  
दसतः सवदस्य दयाताऽनुक व्यापारं च करोमि सर्वतः सकलव्यापारात् इत्येकदशपुद्गलसामादिकारं च करोमि अथ पो देहपोषणं करोमि सामासिकं करोमि वा  
न वा स सर्वपोषणं करोमि स निमात् इतसगमाधिकः यदि च करोमि तदा नियमाद्व्यपते तत् क ? कैपगुदे साजुसूते वा गुदे वा पोषयसाकायो वा  
अमुकमदिमुकसः पदत् पुच्छकं वा वावयत्

पोषधः ब्रह्मचर्यपोषधः, अत्र चरणीयं चर्यं 'अथो यदि'त्यस्मादधिकारात् 'गयमदचरयमब्धानुपसर्गात्' (पा० ४-१-१००) इति पठ्, ब्रह्म-कुशळानुष्ठानं, यथोक्तं-“ब्रह्म ज्ञानं च सांभृतम् ।” ब्रह्म च तत् चर्यं चेति समासा-  
 श्लेषे पूर्वपठ् । तथा अभ्यापारपोषधः । ऐत्य पुन भाष्यो एत-आहारपोषधो बुविषो-देसे सवे य, देसे व्यमुगा विगती  
 आर्यपिल या एक्सिं या दो या, सवे चतुविधोऽपि आहारो अहोरत्तं पञ्चकलातो, सरीरपोषधो व्याणुयहृषण्णगविडे-  
 धणपुष्कणं पतं पोलाज घट्याभरणं च परिचागो य, सोवि देसे सवे य, देसे अमुगं सरीरसकारं करोमि अमुगं न करोमिचि,  
 सवे अहोरत्तं, घंभचेरपोषधो देसे सवे य, देसे दिया रसिं एक्सिं दो या धारेचि, सवे अहोरत्तिं वंमयारी मयति, अवाधारे  
 पोसधो दुयिहो देसे सवे य, देसे अमुगं यायारं न करोमि, सवे सयलयाधारे हलसगडधरपरकमादीभो न करोति, एत्य जो  
 देसपोसधं करोति सामादयं करोति या न या, जो सयपोसधं करोति सो पियमा क्यसामादतो, जति न करोति तो पियमा  
 यं चिज्जति, तं कहिं !, चेतिययेर सापूमूले या घरे या पोसचसाठाए या उम्मुकमजिसुयण्णो पढंवे पोत्यगं या यायतो

१ अत्र पुनर्वाच्यं पुरा-आहारपोषधो द्विविधा-देवताः सर्वतन् देवो अमुगं निवृत्तिः आचामाकं वा एकको द्विबो सयलयाधारे उच्यते अहोरात्रे  
 प्रत्यावयातः सरीरपोषधः । आनोद्वर्षकवर्णकसितेष्वपुण्यपुण्यसागृह्णतां ब्रह्मचर्यानां च परिश्रमात्, सोऽपि देवता सर्वतन् देवतोऽमुकं करितत्कारं करोम्यमुकं  
 न करोमि सर्वतोऽहोरात्रं ब्रह्मचर्यपोषधो देवताः सर्वतन् देवतो मिया रात्री या एकको द्विबो सर्वतोऽहोरात्रं अवाधारी मयति अवाधारेपोषधो द्विविधो  
 देवताः सयलया देवानोऽमुकं व्यापारं न करोमि सर्वता सक्कलप्रापत्तं इकलकट्टपुण्यपुण्यसागृह्णतां ब्रह्मचर्यानां च परिश्रमात्, सोऽपि देवता सर्वतन् देवतोऽमुकं करितत्कारं करोमि वा  
 न वा यः सर्वतोऽहोरात्रं स भिमाग्नं इतसामाधिकः चरि न करोति तद्वत् भिमाग्नमभवते तत् ७ ? विमयदे तापुएते वा एदे वा पोषचसाकानो वा  
 उम्मुकमजिसुबलं पढन् पुनर्कं वा वाचपन्

त्यसौ तत्र स्वयं गमनायोगात् वृत्तिग्राकारप्रत्यासन्नवर्तिनो बुद्धिपूर्वकं क्षुत्कासितादिशब्दकरणेन समवासितकान् बोधयतः  
 शब्दस्यानुपातनम्—उच्चारणं तादृग्येन परकीयमवणवियरमनुपतत्यसाविति, सथा रूपानुपातः—अभिगृहीतदेशाद् वदिः  
 प्रयोजनभावे शब्दमनुच्चारयत एव परेषां समीपानयनार्थं स्वशरीररूपवर्जनं रूपानुपातः, तथा वदिः पुद्गलप्रक्षेपः अभिगृहीत  
 देशाद् वदिः प्रयोजनभावे परेषां प्रयोधनाय लेट्टादिक्षेपः पुद्गलप्रक्षेप इति भायना, देशावकाशिकमेतत्तर्धमभिगृह्यते मा भूद्  
 बहिर्गमनागमनादिभ्यापारजनितः प्राण्युपमर्द्द इति, स च स्वयं कृतोऽन्येन वा कारित इति न कश्चित् फले विक्षेपः  
 प्रत्युत गुणः स्वयंगमने ईर्ष्यायविशुद्धेः परस्य पुनरनिपुणत्वावशुद्धिरिति कृतं प्रसङ्गेन ॥ व्याख्यातं सातिचारं द्वितीय  
 सिद्धापदव्रतं, अधुना तृतीयमुच्यते, तत्रेदं सूत्रम्—

पोसहोववासो षडब्धिहे पद्मसे, तज्ज्ञा—आहारपोसहे सरीरसकारपोसहे यमचेरपोसहे अन्वावारपोसहे,  
 पोसहोववासस्त समणो० इमे पञ्च०, तज्ज्ञा—अप्यदिलेहियदुप्यदिलेहियसिञ्जासथारए अपमज्जियदुप्यमज्जिय  
 सिञ्जासंथारए अप्यदिलेहियदुप्यदिलेहियउचारपासयणमूमीओ अप्यमज्जियदुप्यमज्जियउचारपासयण  
 मूमीओ पोसहोववासस्त समं अणुपाल(ण)या ॥ ११ ॥ ( सूत्र )

इह पौपचशब्दो रुद्ध्या पर्वसु वर्तते, पर्वाणि चाटम्यादिसिथयः, पूरणात् पर्व, धर्मोपचयेदुत्थादित्थर्या, पौपचे उपच  
 सनं पौपचोपयासः नियमविशेषाभिधानं चैवं पौपचोपयास इति, अर्गं च पौपचोपयासश्चतुर्विधः प्रज्ञसः, तद्यथा—‘आहा  
 रपोपचः’ आहारः प्रतीतः तद्विषयस्तन्निमित्तं पौपच आहारपोपचः, आहारनिमित्तं धर्मपूरणं यवेति भायना, एये शरीरमकार

पोषयः ब्रह्मचर्यपोषयः, अत्र चरणीर्य चर्ये 'अथो यदि' स्वस्मादधिकारात् 'गदमदचरयमन्नानुपसर्गादि' (पा० ३-१-२००) इति यत्, ब्रह्म-कुसलानुष्ठानं, यथोक्तं-“ब्रह्म वेदा ब्रह्म तपो, ब्रह्म ज्ञानं च ब्राह्मव्रतम् ।” ब्रह्म च तत् चर्यं चेति समासाः शेषं पूर्णयत् । तथा अब्यापारपोषयः । परं पुण भावस्यो पस-आहारपोषयो बुविषो-देसे सब य, देसे अमुगा विगती आयंयिलं वा एकसिं वा दो या, सवे चतुविधोऽपि आहारो अहोरचं पच्यन्तातो, सरीरपोषयो ष्ठाणुषष्टुषण्णगविले-धणपुष्कणधतयोलाण यथाभरणा नं च परिष्ठागो य, सोयि देसे सवे य, देसे अमुगं सरीरसङ्कारं करेमि अमुगं न करेमिचि, सवे अहोरचं, धर्मचरपोषयो देसे सवे य, देसे दियारसिं एकसिं दो वा वारेचि, सवे अहोरचिं वंमयारी भवति, अवावारे पोमयो बुविहो देसे सवे य, देसे अमुगं यथारं न करेमि, सवे सयछवावारे हलसगडवरपरकमादीभो न करेति, एत्व जो दसपोसधं करेति सामाद्वयं करेति या न धा, जो सनपोसधं करेति सो गियमा क्यसामाद्वतो, अति न करेति तो गियमा धचिज्जति, तं कहिं !, चेतियधरे साधूमूढे या परे या पोसधसालाए वा तम्मुकमभिसुवण्णो पढतो पोस्वगं वा वायतो

१ अत्र पुनर्मांकार्यं पुनः-आहारपोषयो द्विविधा-देहातः सर्वतः इहे अमुगा विद्वतिः आत्मात्मक वा एकको द्विर्वा सप्तकण्ठोर्ध्वोऽन्वादातोभ्योरात्रं प्रत्यावपातः सरीरपोषयः धानोद्वर्चनरजस्विरेषवपुष्यगन्धसाम्-रूपाणां दद्यानरणाणां च परिष्ठागात् सोऽपि देहातः सर्वतः देहातोऽमुकं क्षीररज्ज्वां करोत्यमुकं न करोमि सर्वतोऽहोरात्रं ब्रह्मचर्यपोषयो देहातः सर्वतः देहातो दियारसिं दो वा एकको द्विर्वा सर्वतोऽहोरात्रं अष्टवारी भवति अन्वापारपोषयो द्विविधो देहातः सप्तकण्ठोर्ध्वोऽन्वादातोभ्योरात्रं प्रत्यावपातः सप्तकण्ठोर्ध्वोऽन्वादातोभ्योरात्रं देहातः सर्वतः देहातो दियारसिं दो वा एकको द्विर्वा सर्वतो देहातोऽमुकं करोति धानात्मिकं करोति वा न वा यः सर्वपोषयं करोति स भिमात् कुलसामाधिकः चरि न करोति तथा विषयाद्वन्धतो तत् न ? वैश्वयुहे साधुमूढे वा एहे वा पोषकसाक्षात् वा तम्मुकमभिसुवर्णः पढन् पुनर्मांकार्यं वा वाचयन्

वाग्बुध्प्रणिधानं कृतसामायिकस्यासम्बन्धनिष्ठुरसावयवाक्यप्रयोग इति, उक्तं च—“कृत्सामाश्च ओ पुष पुञ्दीप पेहितूण भासेज्जा । सइ णिरधज्जं धयणं अण्णह सामाइये ण भये ॥ २ ॥” कायबुध्प्रणिधानं कृतसामायिकस्याप्रत्युपेक्षितादिभूतलादौ करण रणादीनां देहावयवानामनिभृतस्थापनमिति, उक्तं च—“अणिरिक्षियापमज्जिय धंढिले ठणमादि सेयेन्तो । हिंसामायेयि ण सो कृत्सामाश्च ओ पमादाओ ॥ १ ॥” सामायिकस्य स्मृत्यकरणं—सामायिकस्य सम्बन्धिनी या स्मरणा स्मृति—उपयोगलक्षणा तस्या अकरणम्—अनासेवनमिति, एतदुक्तं भवति—प्रबलप्रमादवान् नैव स्मरत्यस्यां येषां मया यत्सामायिकं कर्तव्यं कृतं न कृतमिति वा, स्मृतिमूलं च मोक्षसाधनानुष्ठानमिति, उक्तं च—“अ सरइ पमादजुत्तो ओ सामाइये कदा तु कातवं । क्तमकव वा तस्स इ कयपि विफलं तयं णेयं ॥ १ ॥” सामायिकस्यानवस्थितस्य करणं अनवस्थितकरणं, अनवस्थितमन्त्रकालं या कर णानन्तरमेव त्यजति, यथाकथञ्चिद्बुधाऽनवस्थितं करोतीति, उक्तं च—“कातूण ठक्खणं चिय पारेति करोति या अपिच्छाप । अणवद्धियं सामाइये अणादरातो न तं सुद्धं ॥ १ ॥” उक्तं साविचारं प्रथमं शिक्षापदव्रतमधुना द्वितीयं प्रतिपादयन्नाह—  
 विसिन्वयगहियस्स विसापपरिमाणस्स पइविण परिमाणकरण वेसावगासिप, वेसावगासिपस्स समणो ० इमे पञ्च ०, तज्जहा—आणवणप्पओगे पेसवणप्पओगे सहाणुयाप रूवाणुयाप यहिया पुग्गलपयक्खेवे ॥ १ ॥ (सूत्र)

१ कृतसामायिका पूर्वं सुद्धपा श्रेय्य भाषेण । सदा विरुद्धं अवयवमभ्यासा सामायिक न भवेत् ॥ १ ॥ २ अनिश्चितपदसूत्रं त्यजित्वा स्थायिरी सेव-  
 मायः । शिक्षाभ्यादेभ्यो न स कृतसामायिका प्रमादवात् ॥ १ ॥ ३ न स्मरति प्रमादपुच्छो वा सायाधिष्ठं तु कदा कर्तव्यं । कृतमकव वा तल इ हुममपि  
 भिन्नं उक्तं णेयं ॥ १ ॥ २ कृत्वा तत्कालमेव पारवति करोति वा वटफला । अवस्थितं धाताधिकमगाइए न तय सुद्ध ॥ १ ॥

दिग्गन्तं प्राग् व्याख्यासमेयं तद्गृहीतस्य दिक्परिमाणस्य र्धिकांशलं यावच्छीवसंबत्सरचतुर्मासादिर्मेवस्य योज  
 नशतादिरूपस्यात् प्रत्यहं तावत्परिमाणस्य गन्तुमशकस्यात् प्रतिदिनं-प्रतिदिवसमित्येतच्च प्रहस्युर्चापुपलक्षणं प्रमाण-  
 करणं-दिवसादिगमनयोग्यदेशस्थापनं प्रतिदिनप्रमाणकरणं देशावकाशिकं, दिग्गन्तगृहीतदिकपरिमाणस्यैकदेश-अंशः  
 तस्मिन्तरकासा-गमनादिचेष्टास्थानं देशावकाशस्तेन निर्वृत्तं देशावकाशिकं, एतच्चाशुभतादिगृहीतवीथंतरकाशावधि  
 रतेरपि प्रतिदिनमतेपोपलक्षणमिति पूज्या वर्णयन्ति, अन्यथा तद्विषयसङ्गोपाभावात् भावे वा पृथक्शिक्षापदमावप्र  
 नन्नादित्यलं निस्तरेण । एतच्च य संप्रतिद्वैतं आयरिया पणाययेति, अथा संप्रत्यस्य पूर्वं से वारसद्योगाणि वित्तजो आसि,  
 पण्डा विज्जायादिपण ओम्भारेतेण जोपणे विद्विषिसमो से ठवितो, एवं सावभोवि विस्विषतागारे बहुवं अवरस्मियान,  
 पण्डा देमायगासिपण तपि ओम्भारेति । अथवा यिसदिहो-अगतेण एकाए अंगुलीए ठवितं, एवं विभासा । इदमपि  
 निनाप्रतमति पाररहितमनुपालनीयमित्यत आह-‘देसा० देशावकाशिकस्य-प्रागुनिकपितृशब्दार्थस्य अमणोपासकेनामी  
 पगासिचारा नातव्या न ममाचरितव्या, तद्यथा-‘आनयनप्रयोग’ इह विस्मिष्टे देशाचि(वि)के मूदेष्वाभिप्रोह परतः स्वयं  
 गमनायोगाद्यद्वयः सविस्तादिद्रव्यानपने प्रयुज्यते सम्येदाकप्रदानादिना त्वयेदमानेयमित्यानयनप्रयोगः, बलात्  
 विनियोग्यः प्रेप्यः तस्य प्रयोगः यथाऽभिगृहीतपरिविचारदेशव्यतिक्कमभयात् त्वयाऽवश्यमेव गत्वा मम गवाद्यानेयमिदं वा  
 तत्र कर्तव्यमित्येयभूतः प्रेप्यप्रयोगः । तथा नृभ्यानुपातः स्वगृहवृत्तिप्राकारकादिव्यवच्छिन्नमूदेष्वाभिप्रोहपि बहिः प्रयोजनो

अथ च नरंरहाज्जावकाशोः प्रहस्युर्चामि यथा दूरं तस्य सर्वस्य इत्यस्य कोजकादि निषेध आसीत् एकादिजावदिनाभ्यस्तारवता योजने तस्य ठवितिवचः  
 न-दिना, दूरं जावकोःदिदिनगच्छर बहुतराद्वान् एकाए देशावकाशिकेन तद्वत्परिमाणपठि । अथवा विषयवत्त्व-अवयवैककामाहुको ज्ञापितं एवं विभासा

धागुवुष्पणिधानं कृतसामायिकस्यासम्बन्धनिष्ठुरसावदावाक्प्रयोग इति, उक्तं च—“कृत्सामहो पुष धुद्धीए वेहितूण भासेज्जा । सइ णिरवज्जं धयणं अण्णइ सामाइयं ण भवे ॥ २ ॥” कायवुष्पणिधानं कृतसामायिकस्याप्रत्युपेक्षितादिभूतलादी करच रणादीनां देहावयवानामनिभूतस्यापनमिति, उक्तं च—“अणिरिक्खयापमज्जिय थंढिल्ले ठाणमादि सेयेन्तो । हिंसामावेयि ण सो कृत्सामहो पमादाओ ॥ १ ॥” सामायिकस्य स्मृत्यकरणं—सामायिकस्य सम्बन्धिनीया स्मृतिः—उपयोगलक्षणा तस्या अकरणम्—अनासेवनमिति, एतदुक्तं भवति—प्रबलप्रमादधानं नैव स्मरत्यस्यां वेलाया मया यत्सामायिकं कर्तव्यं कृतं न कृतमिति वा, स्मृतिमूलं च मोक्षसाधनानुष्ठानमिति, उक्तं च—“ण सरइ पमादजुसो जो सामइयं कदा तु कातवं । कृतमकतं वा तस्स दु कयपि विफलं तयं जेयं ॥ १ ॥” सामायिकस्यानवस्थितस्य करणं अनयस्थितकरणं, अनयस्थितमस्वफालं या कर णानन्तरमेव त्यजति, यथाकथञ्चिद्वृत्त्याऽनवस्थितं करोतीति, उक्तं च—“कातूण तक्खणं चिय पारेसि करेति या जधिप्पुआए । अणवद्वियं सामइयं अणादरातो न तं मुद्धं ॥ १ ॥” उक्तं साविचारं प्रथमं शिक्षापदव्रतमधुना द्वितीयं प्रतिपादयन्नाह—  
दिसिब्बयगहिपस्स विसापरिमाणत्स पइदिण परिमाणकरण वेसावगासिय, वेसावगासियस्स समणो० इमे पच्च०, तजहा—आणवणप्पओगे पेसवणप्पओगे सदाणुधाए रुवाणुधाए पहिया पुग्गलपक्खेवे ॥ १० ॥ (सूत्र)

१ कृतसामायिकः पूर्वं बुद्ध्या देक्ष्य मायेत । सदा विरतर्षं ब्रह्मसन्ध्या सामापिडं न भवेत् ॥ १ ॥ २ जतिरिहवायमुभ्य स्वपिण्डयद् स्यात्तादि सेव-  
मात्रः । हिंसाभ्यावेऽपि न स कृतसामायिकः प्रमादपुण्ये वा सामाधिकं तु कदा कर्तव्यं । कृतमकृतं वा तत्स इ हुनमपि  
विफलं तदप्यु जेयं ॥ १ ॥ ३ कृत्वा तत्क्षणमेव पारपति करोति वा बह्वक्षया । नववस्थित सामायिकमनादएत् न तत्स मुद्धय ॥ १ ॥

दिग्भ्रतं प्राग् व्याख्यातमेव तद्वृत्तीतस्य दिक्परिमाणस्य दीर्घकाख्यं चाध्वजीवसंस्तरचतुर्मासादिमेवस्य योज  
 नशसादिरूपस्थात् प्रत्यहं तापत्परिमाणस्य गन्तुमाशक्तत्वात् प्रसिदिर्न-प्रतिविवसमित्येतच्च प्रहरमुद्धर्त्तापुपलङ्घनं प्रमाण-  
 करणं-विद्यसादिगमनयोग्यदेवस्यापनं प्रसिदिनप्रमाणकरणं देशाधकाशिकं, दिग्भ्रतवृत्तीतविकूपरिमाणस्यैकदेशः-अंशः  
 तस्मिन्नायकाशः-गमनादिचेष्टास्थानं देशायकाशस्तेन निर्वृत्तं देशाधकाशिकं, एतच्चाणुप्रसादिवृत्तीतवीर्भतरकालाधचियि  
 रतेरनि प्रसिदिनसर्तूपोपलक्षणमिति पूर्या यर्णयन्ति, अन्यथा तद्विषयसङ्गेपाभावाद् भावे वा पुण्यसिद्धापवभावप्र  
 सन्नदित्यलं चिह्नेण । परं य सप्यदिद्वलं आयरिया पणवयति, अथा सप्यस्स पुवं से भारतस्योपजाति विसमो वासि,  
 पृच्छा यिज्यायादिपण ओसारैरेण ज्योणे विद्विविसमो से ठवितो, एवं सावओवि दिक्षिबतागारे बहुय अवरगित्याह,  
 पृच्छा देसायगासिपणं तपि ओसारेति । अथवा विसविद्वितो-अगतेण पृच्छा अंगुलीय ठवितं, एव विमासा । इदमपि  
 निश्चात्रतमतिचाररहितमनुपालनीयमित्यत आह-'देसा० देशाधकाशिकस्य-प्राग्निस्त्रपितशब्दार्थस्य अमणोपासकेनामी  
 पयातिचारा ज्ञातव्या न समाधिरितव्याः, तद्यथा-'आनयनप्रयोगः' । विविधे देशाधि(वि)के भूदेसाभिप्रेते परतः स्वयं  
 गमनायोगाद्यदन्यः सचिस्तादिब्रह्मानयने प्रयुज्यते सम्येदशकप्रदानादिना स्वयेवमानेयमित्यानयनप्रयोगः, वलात्  
 विनियोग्यः प्रेष्यः तस्य प्रयोगः यथाऽभिगृहीतपरविचारदेवस्यस्यसिद्धमभयात् स्वयाऽवश्यमेव गत्या मम गद्याणानेयमिदं वा  
 तत्र कर्तव्यमित्येवभूत प्रेष्यप्रयोगः । तथा शब्दानुपातः स्वगृहपुष्टिप्राकारकादिव्ययच्छिन्नभूदेसाभिप्रेतेऽपि बहिः प्रयोजनो

अत्र च सर्वेष्टान्तराचार्योः प्रयापयति यथा पूर्व तत्र सर्वत्र द्वावस्य बोधकाणि विषय जातीय पञ्चाद्विद्याविद्याभ्यसाधना बोधने एव दृष्टिविषयः  
 व्यापितः पूर्व आहकोवि विमताकारे बहुपरतन्त्राद् एवायं देशाधकाशिकेन तद्वत्परिचारकसिद्धिः । यत्रवा विषयव्याप्यः-अयदेवैककालादुक्तो ज्ञापितं पुवं विमासा



त्यत्र श्रमण इव शोक न तु श्रमण पवेति यथा समुद्र इव तटागः न तु समुद्र पवेत्यभिप्रायः । तयोपपातो विद्रोपकाः, साधुः सर्वार्थसिद्ध सत्यद्यत्ते आयकस्त्वच्युते परमोपपातेन अघन्येन तु द्वावपि सौधर्म एवेति, तथा शोक-“अधिराधित-  
 सामण्यस्तु साधुणो साधगस्तु न अहण्यो । सौधर्मे सवधातो भणिजो तेलोक्ष्यसीहि ॥ १ ॥” तथा स्थितिभेदिका, सापो  
 कुरुकृष्टा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि अघन्या तु पत्न्योपमपृथक्त्वमिति, आवकस्य कुरुकृष्टा द्वाविंशतिः सागरोपमाणि अघन्या  
 तु पश्योपममिति । तथा गतिभेदिका, व्यवहारतः साधुः पञ्चस्वपि गच्छति, तथा च कुरदोत्कृष्टौ नरकं गतौ पुणालि-  
 दृष्टान्तेनेति भूयते, आवकस्तु चतस्रु न सिद्धगतापिति, अन्ये च व्याचक्षते-साधुः सुरगतौ मोक्षे च, आवकस्तु पत  
 स्वप्नपि । तथा कपायाश्च विशेषकाः, साधुः कपायोदयमाश्रित्य सख्यवनापेक्षया चतुस्त्रिंशेककपायोदयपानकपायोऽपि भवति  
 छद्मस्यवीतरागादिः, आवकस्तु द्वादशकपायोदयवान् अष्टकपायोदयवान् भवति, यदा द्वादशकपायांस्तदाऽनन्तानुन्य  
 यर्जा गुह्यन्ते, एते चाधिरतस्य विज्ञेया इति, यदा त्वष्टकपायोदयवान् तदाऽनन्तानुबन्धिअप्रत्यास्थानकपायवर्जा इति,  
 एते च धिरताधिरतस्य । तथा वन्यश्च भेदकः, साधुर्मूलप्रकृत्यपेक्षया अष्टविधवन्धको वा सप्तविधवन्धको वा षड्विधवन्धको  
 वा एकविधवन्धको वा, उक्तं च-“सप्तविधवन्धगा इति पाणिनो आचवज्जगणं तु । तह सुदुमसपरागा छविद्वयंया विनि  
 दिष्टा ॥ १ ॥ मोहाद्यवज्जगणं पगहीण ते न वधगा भणिगा । उधसंतस्तीणमोहा केयछिणो एगविधयेया ॥ २ ॥ ते पुण

१ अधिराद्रभामकपस साधोः आवकश्चापि अघन्यतः । सौधर्मे सपपातो भवितुं छेदोपपद्विभिः ॥ १ ॥ सप्तविधवन्धका मरुति प्राप्तिव आधुर्वेजोनां तु ।  
 तथा सुदुमसपरागाः पक्षिपक्षका विनिर्दिष्टाः ॥ १ ॥ मोहाद्यवन्धोर्नामहरीनां ते तु वन्धका भविताः । उपसाव्यवहीणमोदी केवहित एकविधवन्धकाः ॥ २ ॥ ते पुण

पुंसमपठिठीयस्स बंधगा ण पुण संपदगस्स । सेहेसीपडिषण्णा अर्बणगा होति विण्णोवा ॥ ३ ॥” आरवकस्तु षट्ठविच  
 बग्घको वा ससन्निपबन्धको वा । तथा वेवनाकृतो भेदः, साधुरक्षानां सप्तानां चतसृणां वा प्रकृतीनां वेवकाः, आरवकस्तु  
 नियमादष्टानामिति । तथा प्रतिपत्तिकृतो विशेषः, साधुः पञ्च महाव्रतानि प्रतिपद्यते, आरवकस्त्वैकमुग्रवं द्वे त्रीणि चत्वारि  
 पञ्च वा, अथवा साधुः सकृद् सामायिक प्रतिपद्य सर्वकालं धारयति, आरवकस्तु पुनः २ प्रतिपद्यत इति । तत्राऽस्ति  
 क्रमो विनोपकः, साधोरेकव्रतातिक्रमे पञ्चव्रतातिक्रमे, आरवकस्य पुनरेकस्मैव, पाठास्तरं वा, किं च-इतरञ्च सर्वस्वबन्धं न  
 प्रयुक्ते, ना भूदेस्यितरेतरप्यभाय इति, आह च-“सामादर्यमि न कय” ‘सर्वति भाणिज्जं’ गाहा, सर्वमित्थमिच्छाय-सर्व  
 सायद्यं योग परित्यज्जानीत्यभिप्राय विरतिः तत्सु यस्य ‘सर्वो’ निरपन्नेषा नास्ति, अनुमतेर्नित्यप्रवृत्तत्वाविति भावना, स  
 पर्यभूतः सर्वविरतिवादी ‘बुक्कइ’सि च्चययति देवविरतिं सर्वविरतिं च प्रत्यक्षसूपाबादित्वादित्थमिप्रायः । पर्याप्तं प्रसङ्गेन  
 प्रकृत्य यस्तुमः । इदमपि च शिक्षापदव्रतमतिचाररहितमनुपाकनीयमित्यत आह-“सामादर्यस्स समणो” [गाहा], सामा-  
 यिकस्य धम्मणोपासकेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्या न समाचारितव्याः, उच्यथा-मनोबुध्यगिघान, प्रमिद्याने-अबोला दुष्टे  
 प्रणिधानं बुध्यगिघानं मनसो बुध्यगिघानं मनोबुध्यगिघानं, कृतसामायिकस्य गृहसत्केतिकर्षेय्यतासुकृतबुद्धतपरिविन्त  
 नमिति, उक्तं च-“सामादर्यति (गु)कानुं धरचिन्तं ओ तु-चितये सहो । अइवसइमुवगतो निररथयं तस्स सामादर्यं ॥ १ ॥

१ द्विचमवधिमिकञ्च वाचका न पुनः सापताधिकस्य । सेहेसीप्रतिपद्या अरवणका अपठि विण्णोवा ॥ ३ ॥ २ सामादिकं(द) इत्या पुरणितां ( कर्णे )  
 पस्तु विन्नेयेपमादः । आपकागार्जुणगतो निरयेकं तस्य मामादिकम् ॥ १ ॥

पंडितकमति, पञ्चा आलोपसा यंदति आयरियादी अधारासिगिया, पुणोयि गुरु वंदेसा पंडितेहिता निविद्धो  
 पुच्छति पठति वा, एवं चेति यादृपसुधि, जदा सगिरे पोसघसाछाप या आवासए वा तथ गवरि गमणं गरिय, जो  
 इहीपत्तो(सो) सविहीए पति, सेण जणस्स चञ्छाहोवि आविता यसाधुणो सुपुरिसपरिगहेण, जति सो कयसामाइटो पति  
 ताधे आसहस्थिमादिणा जणेण य अधिकरणं वट्टति, ताधे न करेति, कयसामाइएण य पादेहि आगंखं, तेणं न करेति,  
 आगतो साधुसमीवे करेति, जति सो सावओ तो न कोइ चहेति, अह अहामहओ ता पूता कता होतुसि भण(ण)सि,  
 ताधे पुबरइतं आसनं कीरति, आयरिया चड्ढिसा य अञ्छति, तस्य चहुतमणुडेते दोसा विभासितया, पच्छा सो इही  
 पत्तो सामाइय करेइ अणेण विधिणा-करेसि भन्ते ! सामाइय सावज्जं ओग पच्चक्खामि बुयिधं तिविधेण आय नियमं पज्जु  
 वासामिसि, एव सामाइयं काउ पडिक्कंओ वंदेसा पुञ्छति, सो य किर सामाइय करेतो मउढं अयणेति कुंडछाणि गाममुदं

१ प्रतिजामति पञ्चाए आलोप्य बन्धते आवासादीन् दध्यागधिकं, पुवरपि गुरु वंदेसा प्रतिक्किय विविधः पुञ्छति पठति वा, एवं चेति यादृपसुधि  
 दौषघसाख्याय वा आवासके वा तदा कवरं एमणं वासि ए कक्किमासः ए चरंखपयंअमाति तेन जणस्सोखाहः अपि च सावय आरताग मुपुदरपरिगहेण वरि  
 ए कुटसमागधिक आयाति तदाअहस्साविना जमेन वाधिकरं वरति ततो न करोति कुटसामागियेन च पाएव्यामागणज्जं तेन न करोति आगतो साधु  
 समीये करोति पति स आसहस्थिमादिणा जणेण य अधिकरणं वट्टति, ताधे न करेति, कयसामाइएण य पादेहि आगंखं, तेणं न करेति,  
 इति तत्रोपिहवपुचिहति च दोसा विभासितया पञ्चाए स कदिप्राप्तः सामाधिकं करोसनेन विधिणा-करोसि भन्ते ! सामाधिकं सावज्जं ओग पच्चक्खामि  
 विविधं विविधेण वाचविपमं पजुपासे इति एवं सामाधिकं कृत्वा प्रतिजान्ते वन्धुएण पुञ्छति, स किर सामाधिकं कुदंइ मुदं अयनवति पुञ्छते गाममुदं

पुष्कतबोळपाचारगमादी बोसिरति। एसा बिधी सामाग्रयस्स। आह—सावधयोगपरिवर्जनादिरूपत्वात् सामायिकत्वं कृतसा  
मायिकः श्रावको वस्तुतः सापुरेण, स कस्माद् इत्यरे सर्वसावधयोगप्रत्याख्यानमेव न ह्येतति त्रिविधं त्रिविधेनेति?, अपोष्यते,  
सामान्येन सर्वसावधयोगप्रत्याख्यानस्यागारिणोऽसम्भयाधारभेदप्यनुमतेरव्ययचिच्छत्वात्, कनकादिषु वाऽऽश्मीवपरिग्रहाद  
निवृत्तेः, अग्न्यया ह्यमायिकोत्तरकाष्ठमपि त्वग्रहणप्रसङ्गात्, साधुभावकयोश्च प्रपणेन मेवामिधानात्। तथा चाह प्रम्यकार—

सिक्कणा दुविधा गाहा, उयवातडिती गती कसाया य। वधता वेवेन्ता पडिवज्जाइक्कमे पण ॥ १ ॥

इह निज्ञाकृतः साधुश्रावकयोर्महान् विक्षेपः, सा च शिखा द्विधा—आसेयनाशिखा ग्रहणशिखा च, आसेयना—मल्लये-  
छणादिक्रियारूपा, शिखा—अभ्यासः, तत्रासेयनाशिखामपिकृत्य सम्पूर्णमिय चक्रवालसामाचारी सदा पाठयति साधुः,  
श्रावकस्तु न तत्कालमपि सम्पूर्णमपरिज्ञानादसम्भयाच्च, ग्रहणशिखां दुरविकृत्य साधुः सूत्रतोऽर्थतश्च अपन्येनाष्टौ  
प्रवचनमातर इत्तद्वृष्टतस्तु यिन्दुसारपर्यन्त गृह्यतीति, आचकस्तु सूत्रतोऽर्थतश्च अपन्येनाष्टौ प्रवचनमातर इत्तद्वृष्टतस्तु  
पट्वीयनिरूपां यापदुमपतोऽर्थतस्तु पिण्डेपणां यायत्, ननु तामपि सूत्रतो निरवशेषामर्थत इति। सूत्रप्रामाण्याच्च विक्षेपा,  
तथा षोडशम्—“सामाग्रयं मि तु कते समणो इय सायमो इयइ अम्हा। एतेण कारणेणं बहुसो साकाइयं कुम्हा ॥ १ ॥” इति,  
नायागुरं प्राग् व्याख्यातमेव, तेऽसस्तु व्याख्यायते—सामायिके प्रागुनिकपित्तशब्दार्थे, तुम्होऽवधारणार्थः, सामायिक-  
एव कृते न नैवकाष्ठं ध्रमण इय—सागुरिय श्रावको भवति यस्मात्, एतेन कारणेन बहुशब्द—अनेकशः सामायिकं कुर्यादि

पंडितमति, पच्छा आलोपसा धंदति आयरियादी अचारातिणिया, पुणोवि गुरुं धंदेत्ता पडिडेहिता णिण्हो पुच्छति पडति वा, एवं वेतियाइयसुवि, जवा सगिहे पोसधसालाप वा आवासए वा तस्य गवरि गमणं णरिय, ओ इहीपत्तो(सो) सविहीए एति, तेण जणस्स सच्छाहोवि आदिता य साधुणो सुपुरिसपरिगहेणं, जति सो कयसामाहतो एति ताधे आसहस्यमादिणा जणेण य अधिकरणं वट्टति, ताधे ण करेति, कयसामाइएण य पावेहि आगतवं, तेण ण करेति, आगतो साधुसमीधे करेति, जति सो सावओ तो ण कोइ चहेति, अह अहामइओ ता पूता कता होतुचि भण(ण्ण)ति, ताधे पुवरइतं आसणं कीरति, आयरिया चट्टिता य अज्झंति, तस्य चट्टतमण्डुते दोसा विमासितवा, पच्छा सो इहो पत्तो सामाइय करेइ अणेण विधिणा-करेमि भन्ते। सामाइयं सावज्जं ओग पच्चक्खामि बुविधं तिधिधेण जाय नियमं पज्जु वासामिति, एवं सामाइयं काटं पडिक्कतो धंदेत्ता पुच्छति, सो य किर सामाइय करेतो मउढ अवणेति कुंडलाणि गाममुइं

१ प्रतिष्ठापनमति पञ्चाए आलोप्य बन्धते आचारार्थीइ पपाताकि, पुत्तापि गुरुं वदित्वा मतिक्किय विविधं पुच्छति पडति वा एव वेत्तारिपपि वहा मण्डे यौवचसाकार्या वा आवासके वा तथा गवरं गमनं नाति, न अदिभासाः स सर्वद्वर्पाऽप्यति तेव जनकोप्याहा अपि न सावज्जं आत्ताः मुदुदपरमैप्रदेव, वरि स कुतसामाधिक आवाति तथाअहस्सादिना जणेण अधिकरणं वरंते ततो न करोति कुतसामाधिकेव न पावाम्भावापण्ड्यं तेव न करोति जमता साउ समीये करोति, वरि स आबक्कया न कोअपि बन्धुपिडति अप नयामइक्कयाऽऽप्यतो मवत्तिवति यक्कते तथा पूर्वत्तमासनं डिक्कते आचारार्थोविजाति इति तत्रोपिउत्तमुपिडति न दोषा विभासितवताः पञ्चाए स अदिपपासः सामाधिकं करोमि न इति भवत्य। सामाधिकं सावतं वोपं प्रत्यस्यमि विविधं त्रिभिरेव पावन्निबनं एतुपाके इति एवं सामाधिकं कुत्ता मतिक्कन्तो वदित्वा पुच्छति स किं सामाधिकं कुदंइ मुदं अयक्कति कुदते वाममुदो

पुष्पकतबोलपायारगमादी बोधिरिति । एता विधी सामाद्वयस्स । आह—सावधयोगपरिषर्जनाविरूपत्वात् सामाधिक्यं कृतसा  
मायिकः श्रावको वस्तुतः साधुरेष, स कस्माद् इत्यरं सर्वसावधयोगप्रत्याख्यानमेव न करोति त्रिविधं त्रिविधेनेति?, अत्रोच्यते,  
सामान्येन सर्वसावधयोगप्रत्याख्यानस्यागारिणोऽसम्भवादादरस्मैष्वनुमतेरव्यवच्छिन्नत्वात्, कनकादिषु चाऽऽश्मीयपरिग्रहात्  
निवृत्तेः, अन्यथा सामायिकोत्तरकालमपि सवग्रहणप्रसङ्गात्, साधुभायकयोश्च प्रपञ्चेन मेवाभिधानात् । तथा बाह्मप्रत्यकारा-

सिक्त्वा दुविधा गाहा, उववातठिती गती कसाया य । ययता वेदेन्ता पडिवज्जाइक्खे पंष ॥ १ ॥

इह शिक्षाकृतः साधुश्रावकयोर्महान् विशेषः, सा च शिक्षा—आसेवनाशिक्षा ग्रहणशिक्षा च, आसेवना—प्रत्युपे  
क्षणादिक्रियारूपा, शिक्षा—अन्यासा, तत्रासेवनाशिक्षामधिकृत्य सम्पूर्णमिव चक्रवालसामाचारी सदा पालयति साधु,  
श्रावकस्तु न तत्कालमपि सम्पूर्णमपरिश्रानावसम्भवाच्च, ग्रहणशिक्षां पुनरधिकृत्य साधुः सूत्रतोऽर्थतश्च अवन्येनादौ  
प्रवचनमातरं वत्कृतस्तु विन्दुसारपर्यन्तं गृह्णीति, श्रावकस्तु सूत्रतोऽर्थतश्च अवन्येनादौ प्रवचनमातरं वत्कृतस्तु  
पञ्जीयनिकायां यापदुमयतोऽर्थतस्तु पिण्डेपणां यावत्, नतु तामपि सूत्रतो निरवक्षेपामर्थत इति । सूत्रप्रामाण्याच्च विज्ञेयः,  
तथा चोक्तम्—“सामाद्वयंमि ॥ कते समणो इय सावओ इयइ जम्हा । एतेण कारणेणं बहुसो साबाइयं कुम्मा ॥ १ ॥” इति,  
गाथासूत्रं प्राग् व्याख्यातमेव, तेनतस्तु व्याख्यायते—सामायिके प्राणनिकपित्तशब्दार्थे, पुष्पकतोऽत्रधारणार्थः, सामायिक-  
एव कृते न दोषकाठं धमण इव—साधुरिय श्रावको भवति यस्मात्, एतेन कारणेन बहुशा—अनेकसः सामायिकं कुर्वन्ति

पंडितमति, पण्डा आलोपत्ता धंदति आयरियापी अचारातिगिया, पुणोयि गुरुं योदत्ता पंडितेहिता जियिदो  
 पुण्डति पडति ना, एवं चेतियाइपसुधि, अदा सगिधे पोसधसालाप वा आवासप वा तस्य णवरि गमण णरिय, जो  
 इहीपचो(सो) सविहीप पति, तेण खणस्स उण्छाहोवि आदिता यसाधुणो सुपुरिसपरिगहेण, जति सो कयसामाइतो एति  
 ताधे आसइत्थिमादिणा जणेण य अधिकरणं वड्ढति, ताधे ण करोति, कयसामाइएण य पादेहिं भागतप, तेणं ण करोति,  
 आगतो साधुसमीवे करोति, जति सो सावमो तो ण कोइ उड्ढति, अइ अहामइओ ता पूठा फटा होवुसि भण(ण)ति,  
 ताधे पुवरइतं आसनं कीरति, आयरिया उड्ढिता य अण्छति, तस्य उड्ढतमणुहेते दोसा विमासित्वा, पण्डा सो इही  
 पचो सामाइय करेइ अणेण विधिणा-करेमि भन्ते! सामाइयं सावज्जं जोग पण्डकत्वमि दुविधं सियिधेण जाव नियमं पसु  
 वासानिमिति, एवं सामाइयं काचं पंडिकंतो धंदित्ता पुण्डति, सो य किर सामाइयं करंतो मवठ अवणेति कुंडलांमि पाममुदं

१ मतिक्कामति पण्डात् जाकोअ वन्तते आचार्यादीन् पञ्चासिकं, पुनरपि शुभं वदिता प्रतिक्कित्व निविद्य दृष्टति वड्ढति वा एव वेत्तादिष्वपि वदा म्पदे  
 पौषधत्ताकावां वा जावासके वा तथा ववरं गमनं वाति य अदिमासः स सर्वद्वर्षाऽप्यति तेन ज्ञकोत्साहः अपि न साध्य भारताः मुमुक्षुर्गमदेन वरि  
 स इतसामाधिक आवाति तदाअयइत्तादिना जणेन आधिकरवं वर्तते ततो न करोति इतसामाधिकेन न पादाभ्यामात्तव्य तेन न करोति भागि। सपु  
 समीये करोति यदि स आबकइदा न कोअपि अमुपिअति अय ज्ञान्मपुअइदाअतो यड्ढति भणवते तथा पूर्वचित्तमाहवं किवते आचार्याओतिवतापि  
 इमि तत्रोपिअमुपिअति न दोषा विभापितव्याः पण्डात् स अदिमासः सामाधिकं कोल्लेन विधिवा-करोमि भण्ण! सामाधिकं सावचं बोमं ममाइवमि  
 द्विभिचं विधिदेन पावदियमं पपुपाचे इति एवं सतामाधिकं इत्ता प्रतिअम्यो वन्तिरता पुण्डति स किं सामाधिकं कुर्बेय मुदं अयवपति कुण्डते काममुदो

सावर्ण्य कथं कायवर्ति !, इह सावर्ण्यो बुविषो-श्रुतीपक्षो अणिद्विपक्षो य, ओ सो अणिद्विपक्षो सो वेतिवपरे साधुस  
मीये वा परे या पोसपसासाप वा जत्य वा विसमति अञ्जते या निबाधारी समत्य करोति तस्य, बन्धु ताणेसु विषमा  
कायव-वेतियपरे साधुमूले पोपयसासाप घरे आयासगं करोतीति, तस्य अति साधुसगासे करोति तस्य का विपी !,  
अति परं परमये नरिय जतियि य केणइ समं यियादो यस्तिय अति कस्सइ ण घरेइ मा सेण मञ्जवियच्छियं कञ्जिहिति,  
अति य घारणगं दक्ष्ण न गेणहति मा गिञ्जिहिति, अति पावार ण पावारोति, ताचे घरे नेव सामाधिकं कातुणं  
घयति, पचसमिमो तिगुप्पो ईरियाचयजुचे अहा साह भासाप सावजं परिहरतो पसणाप कहुं ठेहुं वा पञ्जिहेहिं  
पमञ्जेसु, एव आदाने निक्खेयणे, लेखसिपाणे ण विगिचति, विगिचतो वा पञ्जिहेहिं य पमञ्जति य, अत्य चिहति  
तस्यवि गुत्तिणिरोध करोति । एताप विपीय गत्ता सिवियेण गमिसु साधुणो पञ्छा सामाइयं करोति, 'करोमि मन्ते !  
सामाइय सायजं ओगं पद्यक्खामि तुयिं तिक्कियेणं आय साधू पञ्चुयासामिति कातुण, पञ्छा ईरियावहियाप

! अतरेकेन कये कसंभवमिति ? इह आगको विविधः-अदिप्रसोम्यदिप्रसव वा सोम्यदिप्रसवः स कैसपुदे साधुसमीये वा गृहे वा  
दीपयसासापको वा बन्ध वा विज्जाम्भति तिहति वा निगर्वापाग खर्वव करोमि तत्र कातुणं स्यातेसु विचमाए कर्षव-कैसपुदे साधुपुदे दीपयसासापको गृहे वा-  
उज्जरपकं दुर्बलिति तत्र वीरि साधुसकमो करोति तत्र को विविधः !-यदि परं परपचं जति बदि य केवापि साधं विबाधो वाति बदि कस्येविच कासपयि सा  
तेनाकर्षेयिकं भूतिरि यदि कापमर्ष इहा न गृहेन मा नीयेयेति बदि क्कापारं न करोति तदागृह एव सामाधिकं इवरावजति पञ्जसमितविगुह ईर्षादुपपुच्छे  
पया साधुः भासापों सावर्णं परिहरइ पसणापों ठेहुं काहुं वा प्रतिकिकय प्रमुज्ज इवमाहागे विधेये सेव्यसिद्धमे व झयति झयइ वा प्रतिकिचति य प्रमादि  
य, यत्र मिहनि तत्रापि गुक्तिभित्तं करोति घृतेन विचिना गत्ता विविधेन कत्वा साधू पञ्चा सामाधिकं करोति-करोमि मन्ते ! सामाधिकं सावर्णं वेतं  
प्रत्यापयामि त्रिविधं त्रिविधं पावप् साधू पञ्चुयासे इतिठत्वा, पञ्चाप येर्षापयिषी



तृतीयाणुव्रतं, व्याख्यातानि गुणव्रतानि, अधुना शिक्षापदव्रतानि वक्ष्यन्ते, तानि च वृथारि भवन्ति, तद्यथा-सामायिकं देसावकाशिकं पौषधोपवासः अतिथिसेविभागश्चेति, तत्राद्यशिक्षापदव्रतप्रतिपादनायाह—

सामाहम् नाम सावज्जजोगपरिवज्जनं निरवज्जजोगपरिवसेधण च । सिक्खवा बुविहा गाहा उययापठिई गई कसाया य । पंचता वेयसा पडिक्खआइक्खमे पंच ॥ १ ॥ सामाहमि उ कए समणो इय सायओ हवइ जम्हा । एएण कारणेण बहुसो सामाहय कुज्जा ॥ २ ॥ सव्वति भाणिज्जं विरई म्वलु जस्स सन्निवया नत्थि । सो सव्वविइवाई बुक्खइ देस च सव्व च ॥ ३ ॥ सामाहयस्स समणो ० इमे पच्च ०, तज्जहा-मणहुप्पणिहाणे घइ बुप्पणिहाणे कायदुप्पणिहाणे सामाहयस्स तइअकरणपा सामाहयस्स अणयट्ठिपस्स करणपा ० ॥ ( मूत्रम् ) ॥

समो-रागद्वेषवियुक्तो यः सर्वमूलान्यात्मघट पश्यति, आयो क्षामः प्राप्तिरिति पर्यायाः, समस्यायः समायाः, समो हि प्रतिक्षणमपूर्वैर्ज्ञानवर्धनचरणपर्यायैर्निष्ठमसुखहेतुभिरबाहुतचित्तामणिकल्पदुभोपमैर्युज्यते, स एव समायः प्रयोजनमस्य क्रियानुष्ठानस्येति सामायिकं समाय एव सामायिकं, नामसब्बोऽब्बङ्कारार्थः, अवच-गर्हित पापं, सहावधेन सावधः योगो-व्यापारः कायिकादिस्तस्य परिवर्जन-परित्यागः कालायधिनेति गम्यते, तत्र मा भूत् सावद्ययोगपरिवर्जनमाधमपा पठ्यापारासेवनशून्यमित्यत आह-निरवद्ययोगप्रतिसेवन चेति, अत्र सावद्ययोगपरिवर्जनयस्त्रिरवद्ययोगप्रतिसेवनेऽप्यहर्निशं यदाः कार्य इति दर्शनार्थं चक्षब्दः परिवर्जनप्रतिसेवनक्रियाद्वयस्य दुस्त्यकश्चतोद्भावनार्थः । एतद्य पुन सामाचारी-सामाहय

सावर्ण्य कथं कायबन्ति !, इह सावर्ण्यो दुविधो-इहीपत्तो अणिद्धिपत्तो य, ओ सो अणिद्धिपत्तो सो वेतिवपरे साधुस मीपे वा घरे वा पोसधसालाय वा अरय वा विसमति अण्ठते वा निवाधारो सबस्य करेति तथ, वरसु ठापेसु विपसा कायब-वेतियघरे साधुमूले पोपधसालाय घरे आवासगं करेत्तोत्ति, तस्य अवि साधुसगासे करेति तथ का विधी !, जति परं परमये नरिध जतिवि य केणइ समं यियादो नत्ति अति कससइ य घरेइ मा तेण अण्ठबियछियं कज्जिहिति, जति य घारणगं दद्वण न गेणइति मा णिज्जिहिति, जति वावारं ण वावारेति, ताचे घरे वेव सामायिकं कातूणं यच्चति, पचसमिओ त्तिगुच्छो इरियावययुसे जहा साह मासाय सावज्जं परिहरंतो एससाय कंठं ठेहं वा पठिठेइते पमज्जेनु, एय आदाणे जिक्खेयणे, लेछसिपाणे ण विगिबति, विगिबंतो वा पठिठेइति य पमज्जति य, अरय चिद्धति तथयि गुत्तिणिरोध करेति । एताए विधीए गत्ता तिविधेण णमिणु साधुणो पक्का सामाइयं करेति, 'करेमि मन्ते !' मामाइय सायज्जं ओग पच्चयत्समि दुयिधं तिविधेणं जाय साधू पञ्जुवासामिच्चि कातूणं, पक्का इरियावहियाए

। भावयेन कथं कर्तव्यमिति ! इह सावर्ण्यो द्विविधो-अरियासोअरियासन्, यः सोअरियासः स वैसगुहे साधुसमीपे वा गृहे वा दौचपसाकायां वा यत्र वा विभ्राम्यति सिद्धति या विधायिणाः सर्वत्र करोति तत्र अणुं स्वायेसु विवसाए कर्तव्यं-वैसगुहे साधुमूले पोपधसालाय गृहे वा २-अरयकं कुर्वेदिति तत्र यी साधुसकरो करोति तत्र को विधिः !-यदि परं परयवे वाति यदि य केनापि सार्वं विवादो वाति यदि इहीविध आरब्धमि मा तेनाकर्तविकं मूर्तिरि यदि वापमर्णं इणु न गृहोय मा बीयेयेति यदि व्यापारं न करोति तदा गृह एव सामायिकं कृत्वा ब्रह्मति पञ्चतमित्तिगुत्त ईषीसुपजुच्छे यथा साधुः आपायां सावर्ण्यं परिहरन् पूज्यायां छेहं कण्ठं वा प्रतिकिन्वन् प्रयुज्य एवमादाये विद्येये सेय्यसिद्धान्ते न ब्रह्मति स्ववन् वा यतिकिन्वति न प्रमादं न, यत्र भिद्धति तत्रापि गुत्तिमिरोध करोति पठेन विधिना गत्वा विविधेण नत्वा साधून् पक्का सामायिकं करोति-अरोमि मन्ते ! सामायिकं सावर्ण्यं बोधं प्रत्यापयामि द्विविधं त्रिविधं वाचन् साधून् पसुणात्ते इतिहत्वा पक्का येनोपयिकी

ध्यानाचरितः समासाः, अप्रशस्तं ध्यान अपध्यानं, इह देवदत्तश्चावककोट्टुणकसाधुमभूतयो शापकं, 'प्रमादाचरितः' प्रमादेनाचरित इति विग्रहः, प्रमादस्तु मद्यादिः पञ्चाधा, तथा चोक्तम्—“मर्जं विसयकसाया यिकथा णिहा य पंचमी भणिया अनर्थदण्डत्वं चास्योक्तशब्दार्थद्वारेण स्वबुद्ध्या भावनीय, 'हिंसाप्रदान' इह हिंसाहेतुत्वादायुभानलविपादयो हिंसोप्यत, कारणे कार्योपचारात्, तेषां प्रदानमन्यस्मै क्रोधाभिभूतायानभिभूताय वा न कस्यते, प्रदाने त्यनर्थदण्ड इति, 'पापकर्मोपदेश' पातयति नरकादाविति पापं तत्प्रधानं कर्म पापकर्म तस्योपदेश इति समासाः, यथा—कृष्यादि कुरुत, तथा चोक्त—“छित्तोणि कस्य गोणे दमेघ इच्छादि सावगजणस्स । गो कप्पति उचविसिं आणियजिणवयणसारस्स ॥ १ ॥” इदमतिचाररहितमनुपालनीयमित्यसौऽस्यैवातिचाराभिचित्तयाऽऽह—‘अण्डदहे’त्यादि, अनर्थदण्डविरमणस्य धमणोपासकनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तद्यथा—कन्यर्प—कामः तदेतुर्विदिहो पाकुप्रयोगः कन्यर्प उच्यते, रागोद्रेकात् प्रज्ञासमिधो मोहोदीपको नमेति भावः । इह सामाचारी—सायगस्स अट्टहासो न कप्पति, जति गान इति एवं सो ईसिं चैव विहस्सितगति । कौकुब्ब्यं—कुत्सितसंकोचनादिक्रियायुक्तः कुचः कुकुचः तद्भावः कौकुब्ब्यं—अनेकप्रकारा मुन नयनोष्ठकरधरणम्बूषिकारपूर्विका परिहासादिजनिका भाण्टादीनामिव धिक्कम्यनप्रियेत्यर्थः । ऐस्य सामायारी—चारित गाणि भासितु ण कप्पति जारिसेहिं लोगस्स हासो वप्पजति, एवं गतीए ठाणेण वा ठावितुन्ति । मोसरयं—धाट्यमायमसत्या

१ क्षेत्राणि कुप पा दुमप इमादि आकचजदक । न कस्यते उपदेहं दातवित्तवचनसार ॥ १ ॥ २ आकचमादहासो न कप्पते यदि नाम इति लक्षणे इति उपदेव विहस्सितव्यमिति । ३ अत्र सामाचारी—तादृशि मापितुं न कस्यते वारोकोकल इत्यमुल्लेखे एवं गत्या स्थानेन वा स्थानुमिति

सम्बन्धप्रसापित्स्वमुच्यते, मूरेण वा अरिमाणेति, जया कुमाराम्बेणं सो चारमम्बो विसञ्चितो, रण्णा निवेदितं, ताप  
जीविकाप विधि दिण्णा, अण्णता रुहेण मारितो कुमाराम्बो । संयुक्ताधिकरणं—अधिक्रियते नरकादिष्वनेनेत्यधिकरणं—  
घात्यूवृपकशिखापुत्रकगोपूमयम्बकादि संयुक्तं—अर्थक्रियाकरणयोग्यं संयुक्तं च तदधिकरणं चेति समासाः । ऐत्य समा-  
चारी—साधनेण सञ्चुत्ताणि चैव सगदादीनि न घरेतुवाणि, एवं वासीपरसुमादिविमासा । 'वपमोगपरिमोगातिरेक' इति उप  
भोगपरिमोगशब्दाद्यो निरूपित एव तदतिरेकः । ऐत्यवि सामायारी—उपभोगातिरिक्तं अदि तेहामलए बहुए गेण्हसि ततो  
यहुगा ण्हायगा यच्चति तस्स छोटियाए, अण्हविण्हायगा ण्हारयति, एत्य पूतरगाभाचकायवधो, एवं पुष्कतद्योलमादिवि  
भासा, एवं ण यद्धति, का विधी सावगस्स तवभोगे ण्हाणे !, घरे ण्हायव णरिय ताचे तेहामलएहिं सीसं पंसिच्चा सबे  
साठेत्तूणं ताहे तद्गगार्तसे निविट्ठो अबल्लिहि ण्हाति, एव जेसु य पुष्केसु पुष्कंठुपुत्ताणि ताणि परिहरति । उक्तं सात्तिचारं

१ मुत्तेव वागीरमानवति, यथा कुमाराम्बेव स चारमतो विसुट्टः रामो निवेदित तथा जीविकाया वृत्तिर्वा कम्पदा स्वेव मारिता कुमाराम्बः ।  
२ अत्र सामाचारो भावकेत्य संयुक्तमि शब्दग्रहीति न पापीकाभि एवं कापीपक्षीद्विभिमाद्यः । ३ अत्रापि सायराचारी—उपभोगातिरिक्तं बन्धि तेकात्सक्यवीति  
बहुनि गृह्णाति ततो बहवः पावकारका अत्रमित-तल कोत्तेन अम्बेज्जापका अपि कान्ति अत्र पुत्तरकायक्यवधया एवं पुष्पतद्दुकाद्विभिमाया एवं न  
बर्हेते को विधिः भावकत्वेपमोगे छाते ?—युद्धे सातव्य नास्ति तदा तेकाम्बकेः सीसं द्रुप तत्पेभि सातवित्ता तपत्तदाकादीनां तदे विवेकमाल्लिभिः  
छाति, एवं येपु पुत्तेपु पुत्तदुम्पगच्छाभि परिहरति ।

ध्यानाचरितः समासः, अग्रशस्त्रं ध्यानं अपच्यानं, इह देवदत्तआयककोक्कुणकसाधुप्रभृतयो ज्ञापकं, 'प्रमादाचरितः' प्रमा-  
देनाचरित इति विग्रहः, प्रमादस्तु मथादिः पञ्चधा, तथा चोक्तम्—“मज्झं विसयकसाया वियया णिहा य पचमी भणिया'  
अनर्थदण्डत्यं चास्योक्ताभ्यादर्थद्वारेण स्वबुद्ध्या भावनीय, 'हिंसाप्रदानं' इह हिंसाहेतुत्यादायुधानल्लयिपादयो हिंसोप्यते,  
कारणे कार्योपचारात्, तेषां प्रदानमन्यस्मै क्रीडाभिभूतायानभिभूताय या न कल्पते, प्रदाने त्यनर्थदण्ड इति, 'पापकर्मो  
पदेशः' पातयति नरकादाविति पापं तत्प्रधानं कर्म पापकर्म तस्योपदेश इति समासः, यथा-कृष्यादि कुरुत, तथा  
चोक्तं—“छिच्छाणि कस्य गोणे दमेघ इच्छादि सायगज्जणस्स । णो कप्पति उद्यधिसितं आणियज्जियययणसारस्स ॥ १ ॥”  
इदमतिचाररहितमनुपालनीयमित्यतोऽस्यैवातिचाराभिधित्वयाऽऽह—‘अण्डदण्डे'त्यादि, अनर्थदण्डविरमणस्य ध्रमणोपासके-  
नामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तद्यथा-कन्दर्पः-कामः तद्धेतुयिंशिष्टो याफूपयोगः कन्दर्प उच्यते,  
रागोद्रेकात् प्रज्ञासमिधो मोहोदीपको नमति भायः । इह सामाचारी-सावगस्स अट्टट्टहासो न कल्पति, जति णाम हसि  
यत्तं तो ईसिं चैव विहसितवन्ति । कौकुच्यं-कुत्तितसंकोचनानि क्रियायुक्तः कुचः फुकुचः तद्भायः कौकुच्यं-अने रूपकारा मुत्त  
नयनोष्ठकरचरणचूविकारपूर्विका परिहासाविज्जानिका भाण्हादीनामिध विहम्यनमियेत्थं । ऐत्थ सामायारी-ज्जारिस  
गाणि भासितुं ण कप्पति ज्जारिसेहिं छोगस्स हासो उच्यज्जति, पर्यं गतीए ठाणेण या ठासितुन्ति । मीत्तयं-घाट्टप्रायमसत्त्या

१ जेज्जाणि कुर प या इत्तम इत्तादि आनकज्जमत्त । न कल्पते उपयेहुं ज्जातज्जिमवचनसारत्त ॥ १ ॥ २ भावकत्वाट्टट्टहासो न कवरते यदि नाम इमित्तव  
तहि ईपयेव विहसितव्यमिति । ३ अत्र सामाचारी-ज्जारिणि भासितुं न कल्पते पाट्टीकोकत्त हाण्डमुत्तघाते पूव गत्ता स्थानेव वा स्थानुमिति

सम्बन्धप्रसापित्वमुच्यते, मुहेन वा अरिमाणेति, अथा कुमारसङ्घर्षो विसञ्जितो, रज्जा निवेदिते, ताप  
 श्रीविकाप यिसि दिण्णा, अण्णसा रुद्धेण मारितो कुमारामब्धो । संयुक्ताचिकरणं—ग्रधिक्रियते नरकाविष्वनेनेत्यचिकरणं—  
 यास्तूदूपलशितापुत्रकगोपूमयग्रकादि संयुक्तं—अर्थक्रियाकरणयोग्यं संयुक्तं च तदचिकरणं वेति समासः । प्लव समा  
 चारी—सायणेण सजुत्ताणि वेय सगढादीनि न परेतथानि, एव वासीपरसुमादिविभासा । 'सपमोगपरिमोगतिरेक' इति उप  
 भोगपरिमोगशब्दाद्यो निरूपित एव तदतिरेकः । प्लवयि सामायारी—उयमोगातिरिचं अदि तेक्षामखण्ड बहुप गेज्जुति ततो  
 पडुगा ण्हायगा यद्यति तस्स छोलियाप, अण्हविण्हायगा ण्हायंति, प्लव पुररगमाचकायवधो, एवं पुष्कतंबोलसादिवि  
 भासा, एवं ण दट्ठति, का विधी सायगस्स उयमोगे ण्हाणे । परे ण्हायण णत्थि तावे तेक्षामखण्डिं सीसं धंसिचा सबे  
 माडेनूण तादे तडागार्त्तठे निविद्धो भंजलिद्धि ण्हाति, एव जेसु य पुष्केसु पुष्ककुण्डुताणि ताणि परिहरति । तर्कं साठिचारे

१ मुनेन तागैरिमानवति यथा कुमारसङ्घर्षेन च चारयरो विसृष्टः तयो विवेचितं तथा श्रीविक्रिया इतिर्द्वया जल्पदा इहेन मारिका कुमारामाका ।  
 २ अत्र सामाचारी आचरेण संयुक्तानि अक्यादीनि न चारणीयानि एवं वासीपलीदिविभासा । ३ अत्रापि सामाचारी—उयमोगातिरिचं अदि तेक्षामकादीनि  
 दट्ठति ततो वरपः आनकरका वरमिन्-तल कोल्लेन जम्मेउवावका अपि जालि जप पुराकण्डकापवया एवं पुष्पतीदुकादिविभासा एवं न  
 बर्त्तने को विधिः आबकस्सोपमोसे याने ।—गुहे खातव्यं नाति तथा तेक्षामकरो वीच पडुगा तर्थाणि काल्यक्खि तलकाढाकादीनां तदे विकेप्पाअक्रिया  
 चाति एवं वेत्त पुण्णेषु पुण्णकुम्भकानि परिहरति ।

ध्यानाचरितः समासा, अग्रशस्त्रं ध्यानं अपरधानं, इह दयदसखायककोट्कुणकसाधुप्रभृतयो ज्ञापकं, 'प्रमादाचरितः' प्रमा-  
 देनाचरित इति धिप्रदः, प्रमादस्तु मद्यादिपञ्चधा, तथा चोक्तम्--"मज्जं विसयकसाया यिकया णिहा य पंचमी भणिमा"  
 अनर्थदण्डत्वं व्यास्योक्तशब्दार्थद्वारेण स्वयुष्म्या आयनीय, 'हिंसाप्रदानं' इह हिंसाहेतुसावायुधानलाविपादयो हिंसोप्यते,  
 कारणे कार्योपचारात्, तेया प्रदानमन्यस्मै क्रोधाभिभूतायानभिभूताय वा न कस्यते, प्रदाने त्वनर्थदण्ड इति, 'पापकर्मो  
 पदेशः' पातयति नरकादाविति पापं तत्प्रधानं कर्म पापकर्म तस्योपदेश इति समासा, यथा-कृप्यादि कुण्ठ, तथा  
 चोक्तम्--"छित्ताणि कस्य गोले दमेघ इवादि सायगज्जसस । गो कप्पति वयदिसिदं आपियखिणययणसारस्व ॥ १ ॥"  
 इदमविचाररहितमनुपालनीयमित्यतोऽस्येवाविचाराभिधित्वयाऽऽह--'अण्डबहे'त्यादि, अनर्थदण्डविरमणस्य भ्रमणोपासके-  
 नामी पञ्चाविचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तस्या-कन्दर्पः-कामः तदेतुर्विधिदो वाक्ययोगः कन्दर्ग उप्यते,  
 रागोद्रेकात् प्रज्ञासमिधो मोहोदीपको नमति मायः । इह सामाधारी-सायगस्त अदृष्टहासो न कप्पति, जति गाम इति  
 यत्वं तो ईसिं नैव विहसितवन्ति । कौकुब्जं-कुत्सितसंकोचनादिक्रियायुक्तः कुचः कुकुचः तदुभायः कौकुब्जं-प्रनेरुप्रकारा मुल-  
 नयनोष्ठकरचरणभ्रूयधिकारपूर्यिका परिहासाविजनिका माण्डादीनामिष विरम्यनमित्येत्यर्थः । ऐतय सामायारी-ठारिस  
 गाणि भासितुं न कप्पति आरिसेहिं लोगस्त हासो वप्यजति, एवं गतीप उणेण वा ठातितुन्ति । मौल्यं-धाष्ट्रमायमसत्या

१ सोमणि कुप गा इमप इत्यादि आशङ्क्यकः । न कस्यते उपपेहं दासविजयणसारस्व ॥ १ ॥ २ आशङ्क्याहहासो य कस्यते यदि गाम इतिगण-  
 ताहि ऐपेदेव विहसितव्यमिति । ३ लज्ज सासाचरि-यादीनि आशिणं न कस्यते पादवीर्कोकल हासमुपपद्यते एवं वासा क्वादेव वा क्वापुसिदि

सम्बद्धप्रलापित्वमुच्यते, मुहेण वा अरिमाणेति, जघा कुमारासन्धेणं सो चारमद्वयो विसञ्जितो, रण्णा णिवेदितं, ताए जीविकाप विप्पि दिण्णा, अण्णसा रुहेण मारितो कुमारासन्धो । संयुक्ताधिकरणं—अभिप्रियते नरकादिष्वनेनेत्यधिकरणे—धास्तुद्वयतशिलापुत्रकगोधूमयम्बकादि संयुक्तं—अर्थक्रियाकरणयोग्यं संयुक्तं च तदधिकरणं चेति समासा । ऐत्य समा-वारी—साधनेण सजुत्ताणि वेय सगहादीनि न घरेतत्ताणि, एव वासीपरसुमादिविमासा । ‘सपभोगपरिमोगातिरेक’ इति उपभोगपरिभोगशब्दाद्यो निरूपित एय तदतिरेकः । ऐत्ययि सामायारी—उपभोगातिरिक्तं अवि तेष्वामलप बहुए गेण्हसि तसो बहुगा ण्हायगा पचंति तस्स खोलियाप, अण्हविण्हायगा ण्हायंति, एत्य पूतरगाआचकायवचो, एवं पुष्कतंबोळमादिविमासा, एवं ण पट्टति, का विपी सागस्स उयभोगे ण्हाणे ।, परे ण्हायव गत्थि ताचे तेष्वामलपहिं सीसं वंसिस्ता सवे साटेनूणं ताहे तढागाईवेढे निनिद्धो भंजलिहि ण्हाति, एय जेसु य पुष्केसु पुष्ककुंयुत्ताणि ताणि परिहरति । चकं सातिचारं

१ मुनेव वारीमाजपति यया कुमारासन्धेन स चारमद्वो विपुहः राज्ञो निवेदितं यया वीविकवा वृचिरंवा जल्पहा इवेव मारिता कुमाप्रमाका । २ अत्र सामाचारी आदिकेय संयुक्ताणि सङ्गधीति न चारमदीति एवं वासीपचोदिविमासा । ३ अत्रावि सामाचारी—अप्यद्योपातिरिक्तं अवि तेष्वामलपदीति बहुभि गृह्यति ततो बहुयः धानचकारका यत्रगित्त-तस्य कोसवेव अन्येऽन्नायका अपि कान्ति यत्र पूतरकपचकायवचः, एवं पुष्पतादृकादिविमासा एवं न वर्तते को विधि- धानकस्योपभोगे ध्याने ।—गृहे ध्यातव्यं नास्ति तथा तेष्वामलकेः धीव दृष्ट्वा सर्वमपि ज्ञातवित्वा तत्तत्तद्वाक्यमीचो तरे विवेकज्ञानमिति ध्याति, एवं येन मुनेन पुण्यकुम्पयन्नाति परिहरति ।



पञ्चा रुक्से छिदिनु मुखेण जीयति, एवं पणिगादि पडिसिखा हयंति, साहीकर्म-सागहीयत्तेण जीयति, तस्य यंपयपमाई दोसा, भाहीकर्म-सएण भदोवक्खरेण भाइएण यहइ, परायगं ण कप्पति, अण्णेसिं या सगहं घलहे य न देति, एयमादी कातु ण कप्पति, फोटिकर्म-उदस्सेणं हलेण या मूमीफोडणं, दंतवाणिज्जं-पुर्विं नेय पुठिदाणं मुहं देति संते देजा यसि, पञ्चा पुठिदा हत्थी घातेंति, अचिरा सो घाणियओ पडिइत्तिकहुं, एवं धीम्मरगणं संस्समुह देति, एयमादी ण कप्पति, पुघाणीतं किणति, लक्खवाणिज्जेऽवि एते नेव दोसा-तस्य किमिया होति, रसयाणिज्जं-कडाउत्तणं सुरादि तस्य पाणे घट्ट दोसा मारणअक्कोसवघादी सम्हा ण कप्पति, विसवाणिज्जं-विसयिक्खयो से ण कप्पति, तेण यहूण जीयाणं विरायणा, केस वाणिज्ज-दासीओ गहाय अणत्थ विक्किणति जत्थ अयंति, एत्थयि अणेगे दोसा परयससादयो, अंतपीछणकम्म-सेणिये अंत सच्छुजन्तं चक्कादि तं पि ण कप्पते, गिहछणकम्म-यदेवं गोणादि ण कप्पति, दयगिदायणासाकम्म-यणदयं देति

१ पञ्चावुक्कान् छिरवा मूस्सेन बीचति एवं पणयापाः प्रतिपिद्धा भवन्ति साकटिकर्म-साकटिकरयेन जीयति तत्र दण्डवपादिका दोषा भाहीकर्म-स्वकीयेन नागदोपस्करेण नागकेन बहति परकीय न कप्पते जत्थेम्बो वा सक्कं बहीवरौ न न इति एवमादि कर्तुं न कप्पते एकोटिकर्म-गुदकेन इडेन वा मूमिस्सेटनं दण्डवाप्पिअं-पूर्वमेव पुस्सिम्मेम्बो मूस्सं वदति एवमाह दयातेति, पञ्चात् पुठिदा इत्थितो वातवग्गि अचिरात् स वदिइ आवाण्णीति इत्था एवं धीवरानां कट्टुमूस्स वदति एवमादि न कप्पते एवमादि आहावाप्पिअयेऽपि एत एव दोषात्तत्र इमओ भवन्ति एवमादिअं-बीका कर्त्तुं सुरादि तत्र पाणे बहवो दोषाः मारणज्जेसवघादयसमाज कप्पते विपवाप्पिअं विपसिअकत्त न कप्पते तेन बहूना जीवानां विरायणा देजाया पियम्-दासीपूहीणाअप्यत्र विद्दीणाति यमार्थेणि अत्राप्येके दोषाः एवमादिअं विपवाप्पिअं विपसिअकत्त न कप्पते तेन बहूना जीवानां विरायणा देजाया विठोण्णकर्म-वर्धयितु गवादीन् न कप्पते, दवाप्पिअपवताकर्म न नदुवं इति

उत्तरकल्पणनिमित्त अथा उत्तरायहे पच्छा दहे तरुणं सणं उद्धेति, तरथ सत्ताणं सप्तसहस्राण वप्पो, सरदहस्रकागपरिसो सणताकम्मं—सरदहस्रकागादीणि सोसति पच्छा यायिअंति, एवं ण कप्पति, असदीपोसणताकम्मं—असदीपो पोसेति अथा गोहविसए जोणीपोसगा दासीण भाहिं मेण्हेति, प्रदर्शनं चेतवू बहुसायधानां कर्मणां एवंजातीयानां, न पुनः परिगण-  
नमिति भायार्थः । उक्तं साविचारे द्वितीयं गुणव्रतं, साम्प्रतं तृतीयमाह—

अणल्लवदे नउडियोहे पक्षसे, तजहा-अवज्जाणायरिए पमत्तायरिए हिंसप्यपाने पावकम्मोवएसे, अण  
तयदुदयेरमणस्स समणीया० इमे पच्च० तजहा-रुवण्ये कुहुइए मोहरिए संसुत्ताहिरणे सबमोगपरिमो-  
गाइरगे ८ ॥ (सुअम)

अनर्थदण्ड-गन्धार्थः, अर्थः-प्रयोजनं, गृहस्यस्य क्षेत्रयास्तुपनधारीरपरिजनाविविधये तदर्थं आरम्भो-मृतोपमर्होऽर्थदण्डः, दण्डो निग्रहो यातना विनाश इति पर्यायाः, अर्थेन-प्रयोजनेन दण्डोऽर्थदण्डः स चैव मृतविविधः उपमर्हनसङ्गो दण्डः क्षेत्रादिप्रयोजनमपेक्षमाणोऽर्थदण्ड उच्यते, तद्विपरीतोऽनर्थदण्डः-प्रयोजननिरपेक्षः, अनर्थः अप्रयोजनमनुपयोगो निष्कारणतेति पर्यायाः, विनीय कारणेन भूतानि दण्डयति सः, तथा कुठारेण प्रादुस्वल्स्वल्वादिषु प्रादुरिति कुरुडामपिपीठिकादीन् व्यापादयति कृतसङ्कल्पः, न च सद्व्यापादने किञ्चिदतिशयोपकारि प्रयोजने येन विना गाहस्व्ये प्रतिपाठयितु न शक्यते, सोऽयमनर्थदण्डः चतुर्विधः प्रशस्तः, तद्यथा-‘अपध्यानाचरित’ इति अपध्यानेनाघरितः अप-

[illegible]

इमे च अण्यो भोग्यतो परिहरति—असणे अर्णतकाय अष्टगमूलगादि मत्तं च, पाणे मंसरसमज्जादि, स्वादिमे उदुपरका उद्वरवदपिप्पलपिण्डुमादि, स्वादिमं मधुमादि, अचिचं च आहारयेवं, जदा किर ण होज्ज अचिचो तो वत्सगणेण भत्तं पञ्चकस्तावितवं ण तरति ताचे अवयाएण सचिचं अर्णतकायबहुवीयगयज्जं, कम्मतोऽवि अकम्मा ण तरति जीयितुं तापे अर्णतसावज्जाणि परिहरिज्जति । इवमपि चातिचाररहितमनुपालनीयमित्यवस्तस्येयातिचारानभिहितसुराह—‘भोग्यगतो समणोचासएण’ भोजनतो यद्गतमुक्क तदाथित्य अमणोपासकेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्या न समाधरितव्याः, तद्यथा—‘सचिचाहारः’ सचिचं वेतना सज्जनमुपयोगोपधानमिति पर्यायाः, सचिचश्चासौ आहारश्चेति समासः, सचिचो वा आहारो यस्य सचिचमाहारयति इति वा मूलकन्दलीकन्दकार्द्रकादिसाधारणप्रत्येकतरुशरीराणि सचिचानि सचिचं वृथिव्याद्या हारयतीति भावना । तथा सचिचप्रतिवद्भाहारो यथा वृक्षे प्रतिवद्धो गुन्द्यादि पक्कफलानि या । तथा अपक्वौपधमस्यत्यमिह प्रतीचं, सचिचसंमिआहार इति वा पाठान्तरं, सचिचेन समिअ आहारः सचिचसमिआहारः, यथायदि पुण्यादि वा संमिअं, तथा दुग्धमनौपधिमस्यता दुग्धकाः—अस्विआ इत्यर्थः तद्वृभस्यता, तथा तुच्छौपधिमस्यता तुच्छा हि असारा मुद्गफलीप्रभृतयः, अत्र हि महती विराचना अस्या च तुष्टिः, यद्धिभिरप्यैहिकोऽप्यपायः सम्भाव्यते । एतय

१ इदं व्याख्येयं भोजनता परिहरति—अष्टगमेऽनन्तकार्त्तं आर्द्रकमूलकादि मात्तं च, पाणे मांसरसमज्जादि स्वादे उदुपरकाकोपुदावदपिप्लवङ्गादि मज्जादि अचिचं कामहर्षेणं यदा किर ण होज्ज अचिचो तो वत्सगणेण भत्तं पञ्चकस्तावितवं ण तरति ताचे अवयाएण सचिचं अर्णतकायबहुवीयगयज्जं, कम्मतोऽवि अकम्मा ण तरति जीयितुं तापे अर्णतसावज्जाणि परिहरिज्जति । इवमपि

सिंहासायकोदाहरणं-लोचरकञ्चुगो सिंगातो खाति, राया गिगच्छति, मज्झणे पडिगतो, तथाहि खाति, रण्णा कोदण्णे पोहं फाळावितं केत्तियाओ लइताओ होज्जति, जवरि केणो जमं किंन्वि जारिय, एवं मोजन इति गठं । अणुना कर्मतो यत् अठमुकं तदप्यतिचाररदितमनुपाठनीयं इत्यतोऽस्याविचारनमिधिसुराह—

कम्मभो न समणोया० इथाइं पधरस कम्मावाणाइ छा०, तज्जाह-इगालकम्मे वणकम्मे साडीकम्मे भाडीकम्मे कोडीकम्मे, वतथाणिजे लप्पलवाणिजे रसवाणिजे केसवाणिजे विसवाणिजे, जंतपीलणकम्मे निहण्णकम्मे दयगिगदायणया सरवहतलायसोसणया असइपोसणया ७ ॥ ( धृष ७ ) ॥

कर्मतो यत् प्रतमुक्तं नमिति पाक्यालङ्कारे तदाश्रित्य धमणोपासकेनामूनि-प्रस्तुतानि पञ्चदशेति सङ्ख्या कर्मादानानी तगगायपजीरनोपायामायेऽपि तेषामुक्तदशानायरणीयाविकर्महेतुत्वावादानानि कर्मादानानि ज्ञातव्यानि न समाचरितव्यानि । तदप्येत्यादि पूर्वपदं, अद्धारकर्म-अद्धारकरणविक्रयक्रिया, एवं धनपण्डभाटकस्फोटना दन्तलाकारसुविषे केरायणिगप य यंत्रपीठननिर्माणनदयदापनसरोद्वादिपरिगोपणासखीपोपणास्वपि द्रष्टव्यमित्यवधार्यः । भाषार्थं स्वय-“इगाडकम्मं”ति, इगाडा निदहितु विक्किणति, तस्य छणं कायाणं यधो तं न कप्पति, वणकम्मं-सो यणं किप्पति,

१ सिंहासायकोदाहरणं-लोचरकञ्चुगो सिंगातो खाति, राया गिगच्छति, मज्झणे पडिगतो, तथाहि खाति, रण्णा कोदण्णे पोहं फाळावितं केत्तियाओ लइताओ होज्जति, जवरि केणो जमं किंन्वि जारिय, एवं मोजन इति गठं । अणुना कर्मतो यत् अठमुकं तदप्यतिचाररदितमनुपाठनीयं इत्यतोऽस्याविचारनमिधिसुराह—

ईमं च अण्यं भोयणतो परिहरति—असणे अणंतकार्यं अण्णमूलमादि मस च, पाणे मसरसमज्जादि, स्वादिमे उदुपरका  
 उंवरयदपिप्पळपिंछुमादि, सादिमं मयुमादि, अचिचं च आहारेयध, जदा किर ण होज्ज अचिचोतो वस्सगणेण भत्तं  
 पच्चक्खातिवर्त्तण तरति तापे अवयापण सच्चित्त अणंतकायबहुधीयगयज्जं, कम्मतोऽपि अकम्मा ण तरति जीधितु तापे  
 अर्द्धतसायज्जाणि परिहरिज्जसि । इवमपि चातिचाररहितमनुपालनीयमित्यतस्सस्यैयातिचारानभिधिसुराह—‘भोयणतो  
 समणोवासपूर्ण’ भोजनतो पब्रसमुक्क तदाभित्त्य अमणोपासकेनामी पच्चातिचारा ज्ञातव्या न समाधरितव्या, तद्यथा—  
 ‘सच्चिचाहारः’ सच्चिचं चेतना सज्ज्ञानमुपयोगोपधानमिति पर्यायाः, सच्चिचच्चासौ आहारश्चेति समासः, सच्चिचो वा आहारो  
 यस्य सच्चिचमाहारयति इति वा मूलकम्बलीकन्दकार्कदिसाधारणप्रत्येकतृत्तरीराणि सच्चिचानि सच्चिचं पृथिव्याद्या  
 हारयतीति भावना । तथा सच्चिचप्रतिबद्धाहारो यथा वृक्षे प्रतिबद्धो गुन्दादि पक्कफलानि या । तथा अपक्वोपमसृणत्वमि-  
 दप्रतीतं, सच्चिचसमिआहार इति वा पाठान्तरं, सच्चिचत्वेन संमिश्र आहारः सच्चिचसंमिआहारः, पण्ययादि पुण्यादि  
 वा संमिश्रं, तथा पुण्यकौपचिमसृणता पुण्यकाः—अस्विक्का इत्यर्थः तद्वृत्तमसृणता, तथा तुच्छीयचिमसृणता तुच्छा  
 हि असारा मुदूगफलीप्रभृतयः, अत्र हि महती विराधना अस्या च तुष्टिः, यद्धिमिरप्येहि कोऽप्यपायः सम्माभ्यते । एतय

१ इदं नाम्पद भोजनतः परिहरति—अण्णमेअमस्तकाय आण्णिकमुक्कमादि मोत्तं च, पाणे मोत्तसमज्जादि चापे उदुपरकाकोमुत्तवत्तपिप्पळसादि स्वापे  
 मज्जादि अचिच पाहर्त्तवर्त्तं, जदा किञ्च न मयेव अचिच शरद्धर्त्तवर्त्तं न सज्ज्ञोति तदुत्तपपापेन सच्चिचं अमरतकायबहुधीयगयज्जं कम्मतोऽप्य  
 कम्मो न सज्ज्ञोति जीधितुं तदाअमस्तकायचाणि परिहरिपन्ते । ३ अत्र

सिंगासायकोदाहरणं—सेतुदण्डगो सिंगातो साति, राया निमाच्छति, मण्णणे पडिगतो, तथाहि सायति, रण्णा कोत्तण्णो पोहं फालावितं केसिपाओ लइठाओ होज्जति, णवरि केणो मलं किञ्चि णरिथि, एव मोचन इति गतं । मधुना कर्मतो यत् प्रवृत्तमुक्तं तदप्यविचाररहितमनुपालनीय इत्यतोऽस्यासिधारनभिधिसुराह—

कम्मओ ण समणोधा० इमाई पन्नरस कम्मावाणाइ जा०, तज्जाइ-इगालकम्मो वणकम्मो साडीकम्मो भाडीकम्मो फोडीकम्मो, वतवाणिज्जे लयस्सवाणिज्जे केसवाणिज्जे विसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मो निहउणकम्मो दयनिगदयणया सरदइतलायसोसणया असईपोसणया ७ ॥ ( सूत्र ) ॥

कर्मतो यद् प्रवृत्तमुक्तं णमिति वाक्यालङ्कारे तदास्मिन् श्रमणोपासकेनामूनि-प्रस्तुतानि पञ्चदशेति सङ्ख्या कर्मादानानीत्यसायद्यजीयनोपायाभावेऽपि तेषामुत्कटज्ञानावरणीयादिकर्महेतुत्यादावानानि कर्मादानानि ज्ञातव्यानि न समाचरितव्यानि । तद्यथेत्यादि पूर्ववत्, अङ्गारकर्म-अङ्गारकरणविक्रयक्रिया, एवं पनयकटभाटकस्फोटना इन्तलाकारसविष्य-केवाणिग्य च यंत्रपीटननिर्घोष्ठनदयदापनसरोद्वादिरित्योपणासतीपोपणास्वर्यः । मावार्थस्त्वयं—'इगालकम्म'ति, इंगाला निवृद्धि तु यिकिणति, तस्य छण्हे कायाणं यधो तं न कप्पति, वणकम्मो-ओ वणं कियति,

१ सिग्गसासाइक इण्डररनं छेत्राकका छिग्गहाः सादति राजा निर्येउति मप्पाहे प्रसिगताः तथाहि सावति रण्णा कोत्तुकेओवरं पाठितं किम्बला कासिणा मवेमुनीनि मयरं केमा, मप्परिकम्मवि गाति । २ अङ्गारकर्मोति-अङ्गारात् निर्दोष विक्रीणाति तत्र एवमां कायाणां यथरुतम् कल्पते वणकर्मो वो वनं कियति

ईदं च अण्णं भोयणतो परिहरति—असणे अणंसकायं जल्लगमूलगादि मसं च, पाणे मंसरसमज्जादि, स्यादिमे उदुपरका  
 संवरयवपिप्पलपिळुमादि, सादिमं मधुमादि, अचिचं च आहारेयण, अदा किर ण होज्ज अचिचो तो वत्सगणेण भसं  
 पञ्चक्खातिवर्षं ण तरति ताथे अयथापण सचिचं जणतकायवहुवीयगयज्जं, कम्मतोऽपि अकम्मा ण तरति जीघितु ताथे  
 अज्जतसायज्जाणि परिहरिज्जति । इदमपि चातिचाररहितमनुपालनीयमित्यतस्सस्यैयातिचारानभिधिसुराह—‘भोयणतो  
 समणोवासएण’ भोजनतो एव्वरमुक्क तदाश्रित्य अमणोपासकेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्या न समाचरितव्या, सयया—  
 ‘सचिचसाहार’ सचिचं वेतना सज्जनमुपयोगोपधानमिति पर्याया, सचिचस्सासौ आहारखेति समासः, सचिचो या आहारो  
 यस्य सचिचसाहारयति इति वा मूलकन्दलीकन्दकार्ककादिसाधारणप्रत्येकतरुशरीराणि सचिचानि सचिचं पृथिव्याद्या  
 शारयतीति भावना । तथा सचिचप्रतिवज्राहारो यया वृक्षे प्रविषदो गुन्द्यादि पक्कफलानि या । तथा अपक्रीपयमक्षणत्यमि  
 द्प्रतीतं, सचिचसंमिश्राहार इति वा पाठान्तर, सचिचेन संमिश्र आहारः सचिचसंमिश्राहारः, पणयादि पुष्पादि  
 वा संमिश्रं, तथा दुग्पक्रीपयिमक्षणता दुग्पका—अस्मिन्ना इत्यर्थः तद्वृमक्षणता, तथा तुच्छीपयिमक्षणता तुच्छा  
 हि असारा मुदुगफलीप्रभृतयः, अत्र हि महती विराचना अस्या च तुष्टिः, घञ्मिभिरप्यैहिकोऽव्यपायः सम्भाव्यते । एतय

१ इदं चान्यए भोजनतः परिहरति—असणेअणंसकायं जल्लगमूलगादि मसं च, पाणे मांसरसमज्जादि खाद्ये उदुपरकाकोमुदरवटिपिणकतलादि ज्वाये  
 मज्जाणि अचित्त वाहरसंघं, यदा किञ्च न भवेत् अचित्त जल्लगेण भसं प्रत्याकषाणवर्षं न शब्देति तद्वाऽऽवयायेव सचिचं अवत्तकायवहुवीयगयज्जं, कम्मतोऽपि  
 कम्मो न ज्ञातेति जीघितुं तदाअज्जतसायज्जाणि परिहरिज्जन्ते । १ अथ

ने गतं, अण्णोवि ण विसज्जित्तो, अण्णाय क्वेवि गतो होज्ज ञं विमुमरियत्तेत्तगतेण उच्चं तं ण गेहेज्जति ।  
[ मं० २१००० ] उक्तं साविचारं प्रथमं गुणव्रतं अपुना द्वितीयमुच्यते, तत्रैवं सूत्रं—

उचभोगपरिभोगवणं दुविहे पत्तरो तज्जहा—भोअणओ कम्मओ ञ । भोअणओ समणोवा० इमे पत्त०—  
सचिसाहारे सचिसापडिबद्धाहारे अप्पउत्तिओसहि मय्खणया सुच्छओसहि म० दुप्पउत्तिओसहि मय्खणया ७ ॥  
उपमुग्गयत्त इत्थुपभोगा, उपशब्दः सकृदर्थे यत्तं, सकृद्भोग उपभोग—अशनपानादि, अयवाऽन्तर्भोगः उपभोगा—  
आहारादि, उपाब्धोऽत्रान्तर्भवनः, परिमुग्गयत्त इति परिभोगः, परिसब्दोऽत्रावृत्तौ यत्तं, पुनः पुनर्भोगः वज्जावेः परिभोग  
इति, अथवा यद्भिर्भोगः परिभोग एवमेव यसनावज्जावेः, अत्र परिशब्दो यद्द्विर्यावक इति, एतद्विषयं व्रतं—उपभोगपरिभोग-  
व्रतं, एतत् त्रीर्णकरगणपरैर्द्विविधप्रज्ञप्तं, तद्यथेयुदाहरणोपन्यासार्यः, भोजनतः कर्मतश्च, तत्र भोजनतः व्रतसर्गेण निरवद्याहार  
भोजिना भयितव्यं, कर्मतोऽपि प्रायो निरययकर्मनुष्ठानतुकेनेत्युदाहरणः । इह चेयं सामाचार्यी—‘भोयेणतो सावगो वत्सग्गेण  
फामुग आहार आहारेज्जा, तस्सासति अफामुगमपि सचित्तवज्जां, तरस असत्ती अणत्तकायवधुवीयगणि परिहरितवाणि,

१ न गणनं अण्णोऽपि न विमत्रेयीणं अण्णकया क्वेवि गतो मयेण वद्विस्सुत्तये न गतेय उच्चं तच्च पुत्थीपाद इति । २ भोअणका आहव अण-  
नेण माणुअण्णयाआहारेण, तस्मिन्नकमि अण्णकमपि छविचवत्तं, तस्मिन्नसति अण्णककायवधुवीयकमपि परिहरितवमि,



क्षेत्रवृद्धिः [ इति ]—एकतो योजनशतपरिमाणमभिगृहीतमन्यतो दश योजनानि गृहीतानि तस्यां दिशि समुपस्र कार्यं योजनशतमध्यावपनीयान्यानि दश योजनानि सत्रैव स्वबुद्ध्या प्रक्षिपति, सर्वद्वयत्येकत इत्यर्थः, स्मृतेर्ध्वंशः—अन्तर्धानं स्मृत्यन्तर्धानं किं मया परिगृहीत कया मर्यादया प्रतमित्येवमननुसरणमित्यर्थः, स्मृतिमूल नियमानुष्ठान, तद्ब्रम्हदो तु नियमत एव नियमब्रम्ह इत्यतिचारः । ऐतथ य सामाचारी—गृहं जं पमाणं गहित तस्स उयरिं पवतसिहरे रुक्खे या मफ्फडो पक्खी वा सावयस्स वत्थं आभरण वा गेण्हितु पमाणातिरेक उवरि भूमि ववेज्जा, तस्य से ण कप्पति गतुं, जाये तु पढित अप्पणेण वा आणितं ताधे कप्पति, इवं पुण अट्ठावयहेमकुट्टसम्मेषुपतिट्ठज्जे तच्चिसफूडअंजणगमंदरादिसु पवतेसु भवेज्जा, एवं अचेवि कूखियादिसु विभासा, तिरिय ज पमाण गहित त विविधेणवि करणेण गातिकमित्तप, लेत्तबुद्धो सावणेण ण कायबा, कथं ? सो पुवेण भंड गहाय गतो जाव तं परिमाणं ततो परेण भंडं भग्गतिच्चिकातुं अयरेण जाणि जोयणाणि पुबविसाप संधुभति, पसा लेत्तबुद्धी सेणकप्पति कातुं, सिय अति घोळीणो होज्जा णियप्पियं, विरसारिते य

१ अथ च सामाज्यारी ऊर्ध्वं यत् प्रमाणं गृहीतं तत्तोपि पर्वतसिखरे ब्रूये वा सर्वदा पक्षी वा आचकस्व वक्ष्यमाणं वा गृहीत्वा प्रमाणाभिरोक्तमुत्तरे भूमि भवेत् तत्र तल न कल्पते गन्तुं, यदा ॥ पक्षिणं कश्येव वा ज्ञानीतं तदा कल्पते इदं युवाद्यापदेमनुष्ठसंमेतमुमठिद्योऽवस्थविषयम् अथ कश्चन रात्रिषु पर्वतेषु भवेत् पुषमबोडिषि क्षुणिकामिषु विभाषा तिर्षणं यत् प्रमाणं गृहीतं तदा विमियेनापि कश्येव उच्यतितत्त्वस्य क्षेत्रद्वयि प्रादयेन न कर्तव्या इदं ? स पूर्वज्ञां माणं गतो यावत्प्रमाणं ततः परतो आनन्दमर्षतीति क्वाऽप्यरत्नां वाणि योजनानि ( तानि ) पूर्वज्ञां निशि क्षिपति पृषा भेदं बुद्धितल न कल्पते कर्तुं, व्यापयतिप्राप्तो भवेत् निवर्तितत्वं विस्तृते च

अं भक्तं, अण्णोवि ण विसज्जित्तो, अण्णाय कोवि गतो होज्ज अं विसुमारिबल्लोणगेण छञ्जं से ण गेण्हेज्जसि।  
[प्र० २१०००] रक्त सातिचारं प्रथमं गुणमसं अधुना द्वितीयमुच्यते, तत्रयं सूत्रं—

उचमोगपरिमोगवणं बुद्धिहे पन्नसे तंजहा—भोजणमो कम्ममो अ । भोजणमो समयोवा० इमे पञ्च०—  
सगिणाहारे सगिणपडिबद्धाहारे अप्पउत्तिओसहिमक्खणया तुच्छोसहिम० दुप्पउत्तिओसहिमक्खणया ७ ॥  
उपमुग्यत इणुपमोगा, उपसब्बः सकृदयं वरुत्ते, सकृद्वोग उपमोगा—अशनपानादि, अथवाउत्तमोगा उपमोगा—  
माहारादि, उपगच्छेद्वान्तर्यधनं, परिमुग्यत इति परिमोगा, परिगच्छेद्वान्तर्यधनं वरुत्ते, पुनः पुनर्मोगा वरुत्ते परिमोग  
इति, अथवा वहिर्मोगा परिमोग एवमेव पत्तनासङ्गारादेः, अत्र परिमुग्यो वहिर्वाचक इति, एतद्विषयं मत्तं—इयमोगपरिमोग-  
मत्तं, एतत् तीर्थरुणपरिद्विविधं मत्तस, तद्यथेयुदाहरणोपम्यासार्थं, भोजनतः कर्मतश्च, तत्र भोजनतः कर्मणेन निरवद्याहार  
भोजिना भवितव्य, कर्मतोऽपि प्रायो निरययकर्मनानुष्ठानयुकेनेत्यवधार्यः । इदं चेयं सामाचारी—‘भोयेणतो साधगो वत्सुगेण  
फामुग आहार आहारेज्जा, तस्मासति अफामुगमयि सविचयज्जं, तस्स असती अण्णसकायवद्वीयगणि परिहरित्तवप्पि,

१ न गन्धमं अण्णोवि न निगन्धोपा, अण्णसकाय वोटसि गतो जयेद परिस्सवसेधे न गतेन कम्म तच्च पुद्दीपाए इति । २ भोजनतः आहार कर्म-  
तेन प्राप्नुय्माऽपमाहारे, तस्मिन्नन्तरि अफामुगमयि सविचयज्जं, तद्विचयसि अण्णसकायवद्वीयगणि परिहरित्तवप्पि,

रेतणाणि सावगस्त विच्छिन्नियाणि तेण परिगृहपरिमाणाहरित्वातिक्तं न गहियाणि, सावगेण जेच्छित, सो पुरतो ।  
 इद चातिचाररहितमनुपालनीयं, तथा चाह—‘इच्छापरिमाणस्त समणोयासएण०’ इच्छापरिमाणस्य भ्रमणोपासकेनामी  
 पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तद्यथेति पूर्ववत्, क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रमः तत्र दृश्योत्पत्तिभूमिः क्षेत्रं, तद्य  
 सेतुकेषुमेवाद् द्विभेदः, तत्र सेतुक्षेत्रं अरण्यद्विसेक्यं, केतुक्षेत्रं पुनराकाक्षपतितोदकनिष्पाद्यं, चास्तु-अगारं तदपि त्रिधिपं  
 स्वातमुत्पतं स्वातोच्छ्रितं च, तत्र स्वातं-भूमिगृहकादि लक्ष्यत-प्रासादादि, स्वातोच्छ्रितं-भूमिगृहस्योपरि प्रासादः, एतेषां  
 क्षेत्रवास्तूनां प्रमाणातिक्रमः, प्रत्याख्यानकालगृहीतप्रमाणोलङ्घनमित्यर्थः । तथा हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रमस्तत्र हिरण्य-  
 रजतमचटितं घटितं वा अनेकप्रकार द्रव्यादिः, सुवर्णं प्रतीतमेव तदपि घटितापटितं, एतद्ब्रह्मणाद्येन्द्रनीलमरुत्वाद्युप  
 लभ्यः, अक्षरगमनिका पूर्ववदेव, तथा धनधान्यप्रमाणातिक्रमः, तत्र घन-गुडशर्करादि, गोमहिष्यजायिकाकरभतुरगा-  
 द्यन्ये, धान्यं-श्रीहिकोद्वयमुद्गमापत्तिगोधूमयवादि, अक्षरगमनिका प्राग्यदेव, तथा द्विपदचतुष्यदप्रमाणातिक्रमः,  
 तत्र द्विपदादीनि-दासीमयूरहंसादीनि, चतुष्यदानी-हरत्सम्बमहिष्यादीनि, अक्षरगमनिका पूर्ववदेव, तथा कुण्डप्रमाणा  
 तिक्रमः, तत्र कुण्डं-आसनशयनभण्डकरोटकलोद्वाद्युपस्करजातमुच्यते, एतद्ब्रह्मणाद्य बलकन्दलपरिग्रहः, अक्षरगम  
 निका पूर्ववदेव, तान् क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रमादीन् समाचरन्ति चरति पञ्चमाणुप्रतमिति । एतद्य य दोषा जीयपातादि  
 भणितव्या । चर्कं सातिचारं पञ्चमाणुप्रतम् इत्युक्तान्यनुप्रवृत्तानि, साम्प्रतमेतेषामेधानुप्रवृत्तानां परिपालनाय भायनाभूतानि

१ राजाणि आचकाच विच्छेदं नीतानि, तेव परिगृहपरिमाणाहरित्वातीतिक्तानीतिक्तावा न पुरीतानि आचकेन नेहं स पुरीतः १ अत्र य दोषा जीयपातादयो मविप्रका

गुणप्रदानविधीयन्ते-द्यानि पुनर्दीपि भवन्ति, तद्यथा-दिग्ब्रतं उपभोगपरिमाण अनर्थदण्डपरिवर्जनमिति, तद्यथा-  
 गुणप्रतत्त्वकपाभिधित्तयाऽऽह-

विसिष्यति विधिरे पक्षे-उद्धृदिसिष्य अथोदिसिष्य तिरियविसिष्य, विसिष्यस्य समणोऽइमे पक्षः तज्ज्ञा-  
 उद्धृदिसिष्यमाणाऽइमे अथोदिसिष्यमाणाऽइमे तिरियविसिष्यमाणाऽइमे स्त्रियुद्धी सइअतरदा ६ ॥ ( सूत्रं )  
 दिशो दानेऽप्यन्तराः शास्त्रे वर्णिताः, तत्र सूर्योपलक्षिता पूर्वा शेपाश्च पूर्वदिशिणादिक्रमवदनुक्रमेण ब्रह्म्याः, तत्र दिशा-  
 मन्त्र्य दिशु या प्रतमतापरसु पूर्वोदियिमागेषु मया गमनाद्यनुष्ठेयं न परत इत्येवमूतं दिग्ब्रतं, एतच्चौपताः त्रिविधं प्रकृतं  
 तीर्थेकरगणपरे, तद्यथेयुदाहरणोपन्यामार्थः, ऊर्ध्वोदिग् ऊर्ध्वं दिग् तत्सम्बन्धि तस्या या प्रतं ऊर्ध्वं दिग्ब्रत, यथावती दिग्ब्रतं  
 पर्यतापारोदजादयगाहनीया न परत इत्येवमूतं इति भाषना, अथो दिग् अथोदिक् तत्सम्बन्धि तस्यां या प्रत अथोदिग्  
 मन्त्र-अर्धोदिग्ब्रतम्, एतायती दिग्प इत्रकृपाद्यतरणादयगाहनीया न परत इत्येवमूतमिति इदं, त्रिविधं विसिष्यं  
 दिग्-युग्मोदिक्रमानामां सम्बन्धि तासु या प्रत तिर्यग्ब्रत, एतायती दिग् पूर्वणावगाहनीया यथावती वक्षिणेनेत्यादि,  
 न परत इत्येवमूतमिति भाषार्थः । अस्मिन् सत्यवगृहीतक्षेत्राद् यक्षिः स्याद्वज्रमप्राणयोगोचरो दण्डः परित्यक्तो भवतीति  
 गुणः । इदमभिचाररहितमनुपादनीयमतोऽस्तेषां विचारानभिधित्सुराह-‘विसिष्यस्य समणोऽ’ दिग्ब्रतस्य चक्ररूपत्व  
 मन्त्रोपासनेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तद्यथा-उद्धृदिक्रममाणातिक्रमाः यावत्प्रमाणं परिगृहीतं  
 नम्यातिष्ठन्नमित्यर्थः, एवमन्यत्रापि भाषना कार्यो, अथोदिक्रममाणातिक्रमाः, तिर्यग्दिक्प्रमाणातिक्रमाः, क्षेत्रस्य वृद्धिः

रंतणाणि सावगस्स विक्खिणियाणि सेण परिग्गहपरिमाणान्हरिस्ताइत्तिकारं न गधियाणि, सायगेण नेरिष्ठत्त, सो पूइतो ।  
 इइ च्वातिचाररहिस्समनुपालनीयं, तथा चाह-‘इच्छापरिमाणस्स समणोवासपण०’ इच्छापरिमाणस्य श्रमणोपासकेनामी  
 पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, सद्यथेति पूर्ववत्, क्षेत्रयास्तुप्रमाणातिक्रमः तत्र क्षत्योत्पत्तिभूमिः क्षेत्रं, सद्य  
 सेतुकेतुमेवदाइ द्विमेदं, तत्र सेतुक्षेत्रं अरधद्वादिवेक्यं, केतुक्षेत्रं पुनराकाशपचितोदकनिष्पाद्यं, वास्तु-अगारं तदपि त्रियिपं  
 स्वातमुत्तुवं स्वातोच्छ्रितं च, सत्र स्वात-भूमिगृहकादि उच्छ्रितं-प्रासादादि, स्वातोच्छ्रित-भूमिगृहस्योपरि प्रासादः, एतेषां  
 क्षेत्रवास्तूनां प्रमाणातिक्रमः, प्रत्याख्यानकाष्ठगृहीतप्रमाणोऽहन्नमित्यर्थः । तथा हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रमस्तत्र हिरण्यं-  
 रजसमघटित घटित वा अनेकप्रकारं द्रव्यादिः, सुवर्णं प्रतीतमेव तदपि घटिताघटितं, एतद्द्रव्यहणाद्ये द्रवीकृतमरकताद्युप  
 लब्धम्, अक्षरगमनिका पूर्ववदेव, तथा धनधाम्यप्रमाणातिक्रमः, तत्र धन-गुह्यार्करादि, गोमहिष्यज्यायिकाकरभतुरगा  
 द्यन्ये, धान्यं-व्रीहिकोद्रयमुद्रगमापतिलगोष्मयवादि, अक्षरगमनिका प्रागुपदेय, तथा द्विपदचतुष्वदप्रमाणातिप्रमः,  
 तत्र द्विपदादीनि-दासीमयूरहंसादीनि, चतुष्पदादि-हस्त्यश्वमहिष्यादीनि, अक्षरगमनिका पूर्ववदेव, तथा कुप्यप्रमाणा  
 तिक्रमः, तत्र कुप्यं-आसनशयनभण्डककरोटकलोहाद्युपस्करजातमुच्यते, एतद्द्रव्यहणाद्य दलकन्यतपरिमहः, अक्षरगम  
 निका पूर्ववदेव, तान् क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रमादीन् समाचरन्प्रतिचरति पञ्चमाणुव्रतमिति । ऐतद्य य दोसा जौपपातादि  
 भणितव्या । उक्तं सातिचारं पञ्चमाणुव्रतम् इत्युक्तान्यणुव्रतानि, साम्प्रतमेतेषामेयाणुव्रतानां परिपालनाय भावनाभूतानि

१ राजाभि आइकल्ल सिद्धेनुं बीणादि, तेण वरीमइपयगानातिरिच्छानीसिद्धणा भग्गुहीणाभि भावकेण नेहं सद्यजिहः २ अत्र च दोषा जौपपादादयो भवितव्याः

गुणप्रताम्यभिधीयन्ते-एानि पुनर्भाणि भवन्ति, तद्यथा-दिग्भ्रतं तपमोगपरिमाणं अनर्थवण्डपरिवर्जनमिति, तत्राद्य-  
गुणप्रतस्वकमाभिधित्सयाऽऽह-

दिसिखण तिविहे पक्ष्मे-उद्धदिसिखण अहोदिसिखण तिरियदिसिखण, दिसिखयस्स समणो० इमे पक्ष० तज्जाहा-  
उद्धदिसिपमाणाइक्खमे अहोदिसिपमाणाइक्खमे तिरियदिसिपमाणाइक्खमे त्विरियुद्धी सइअतरदा ६ ॥ ( सूत्र )  
विद्यो ह्यनेकप्रकाराः सास्त्रे यणिताः, तत्र सूर्योपलक्षिता पूर्वा मेषाद्य पूर्वदक्षिणादिक्कास्तदनुक्रमेण द्रष्टव्याः, तत्र विज्ञा-  
सबन्धि दिशु या प्रतमेतावत्सु पूर्वोदिविभागेषु मया गमनाद्यनुष्ठेयं न परत इत्येवभूतं दिग्भ्रतं, एतच्चौषधः त्रिविधं प्रज्ञतं  
तीर्थकरगणधरैः, तद्यथेयुदाहरणोपन्यासार्थाः ऊर्ध्वोदिग् ऊर्ध्वं दिग् तत्सम्बन्धि तस्यां वा प्रतं ऊर्ध्वं दिग्भ्रतं, एतावती विगूढं  
पर्यताद्यारोहणादयगाहनीया न परत इत्येवभूतं इति भावना, अधो दिग् अपोविक् तत्सम्बन्धि तस्यां वा प्रत अधोदिग्  
प्रतं-अर्धाग्निदग्भ्रतम्, एतावती दिग्घ इन्द्रकूपाद्यतरेणावगाहनीया न परत इत्येवभूतमिति हृदयं, तिर्यक् दिसिखर्यग्  
दिदाः-पूर्वोदिकास्तासां सम्बन्धि तासु वा प्रतं तिर्यग्भ्रतं, एतावती विग् पूर्वणावगाहनीया एतावती दक्षिणेनेत्यादि,  
न परत इत्येवभूतमिति भावार्थः । अस्मिन् सत्ययगृहीतवेध्रावु बहिः स्वायत्तज्जमप्राणितोषरो दण्डः परित्यक्तो भवतीति  
गुणः । इदमतिचाररहितमनुपालनीयप्रतोऽह्येयातिचारानभिधित्सुराह-‘दिसिखयस्स समणो०’ विगप्रतस्य वक्तव्यस्य  
अमणोपासकेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाधरितव्याः, तद्यथा-ऊर्ध्वोदिकप्रमाणातिक्रमः यावत्प्रमाणं परिगृहीतं  
तस्यातिउद्धनमित्यर्थः, पयमन्यत्रापि भावना कार्यो, अधोदिकप्रमाणातिक्रमः, तिर्यग्दिकप्रमाणातिक्रमः, शेषस्य वृद्धिः

परशब्देनोच्यते तस्य कन्याफलस्मिताया स्नेहवन्धेन वा विद्याहकरणमिति, अथि य-उत्सर्गो गियगावद्याणवि घरणसंस्तरणं  
 ण करेति किमंग पुण अण्णेसिं ? जो वा अस्मियाण आगारं करेइ, तस्मिया कप्पति, सेसा ण कप्पति, ण यद्वति महती  
 दारिया दिज्जन् गोवणे वा संबो छुपेज्जेति भणित । काम्यन्त इति कामाः-सब्बरुगगन्धा भुज्यन्त इति भोगा-रसरसाः,  
 कामभोगेणु तीव्राभिलाषः, तीव्राभिलापो नाम तदध्यवसायित्यं, तस्माद्येवं करोति-समाधरतोऽपि योपि मुलोपस्य कर्णकक्षा  
 न्तरेष्वतुस्तया प्रक्षिप्य छिन्नं मृत इव आस्ते निबल्लो महतीं वेलाभिसि, दन्धनलोत्पन्नक्रादिभिर्या मदनमुतेज्यति,  
 वाञ्छीकरणानि चोपयुक्ते, योपिदवाच्यदेवं वा मृवुनाति । एतानीत्वरपरिगृहीतगमनादीनि समाचरन्नातिचरति चतुर्याणु  
 व्रतमिति । ऐत्य य आदिक्षा दो अतियारा सदारसुष्ठस्स भवति णो परदारविरज्जगत्स, सेसा पुण दोण्हयि भवन्ति, दोसा  
 पुण इच्चरियपरिगृहितागमणे चिदियण सद्धिं धेरं दोज्ज मारेज्ज ताळेज्ज वा इत्यादयः, एवं सेसेसुवि भाणियवा । उक्क माति  
 चार चतुर्थानुव्रतं । अपुना पञ्चमं प्रतिपाद्यते, तत्रेवं सूत्रम्—

अपरिस्मियपरिगह् समणो० इच्छापरिमाण उवसंपन्नइ, से परिगहे इविहे पन्नसे, तज्जहा-सचित्तपरिगहे  
 अचित्तपरिगहे य, इच्छापरिमाणस्त समणोवा० इमे पव०-यणधम्मपमाणाइक्कमे ग्विसवरयुपमाणाइक्कमे  
 हिरस्ससुवस्सपमाणाइक्कमे पुपयच्चउप्पयपमाणाइक्कमे कुवियपमाणाइक्कमे ५ ॥ ( सू० )

१ अथि च इत्सर्गो निजकापस्यानामपि वरवसेवर्त्तं न करोति किं पुनरन्येषां ? नो वा बावतामाक्करं करोति तावत्तः कस्यन्ते तेच न कस्यन्ते न  
 पुनरन्ते महतीं दारिकां ददाणु गोवणे वा पण्डः क्षिपतिविति भणितं । २ जात्र जावौ द्वापतिचारी स्वदारसंजुल्ल भवता न परदारविरज्जं कल्ल दायाः पुनर्दोरादि  
 मचन्ति दोयाः पुनरित्तरपरिगृहीतागमने द्वितीयेन सार्धं धेरं भवेत्त मारयेत् ताडयेद्वा, एवं सेपेप्पयि भणितवत्ताः

‘अपरिमितपरिगणं समनोबासतो पञ्चस्यस्यति’ परिग्रहणं परिग्रहः अपरिमितः-अपरिमाणः तं समनोपासकः प्रत्याख्याति, सचिन्तादेः अपरिमाणात् परिग्रहात् विरमतीति भावना, इच्छायाः परिमाणं २ तदुपसम्पद्यते, सचिन्तादिगोचरे उपापरिमाणं करोतीत्यर्थः । स च परिग्रहो द्विविधाः प्रशस्तः, सद्येत्येतत् प्राग्वत्, सह चित्तेन सचिन्तं-द्विपदचतुष्पदादि तदेव परिग्रहः अचिन्तं-रसयस्त्रकुप्यादि तदेव चाचिन्तपरिग्रहः । ऐतद्य य पञ्चमअणुवते अणियत्तस्स दोसे नियत्तस्स य गुणे, तत्तयोदाहरणम्-उद्भवेदो कुसीमूळियं छत्तु विण्हो नंदो सावगो पूरतो मंढागारवती ठवितो, अहवावि वाणिजी रत्तणाणि विक्खिण्णति पुच्चाए मरंती, सदेण भणिता-पत्तिअपरिक्खओ णरिय, अण्यस्स जीताणि, ताए मण्णति-अं ओणं नं देहि, सो पराप देइ, सुभक्ते तीए भचारो आगतो, पुच्छति-रत्तणाणि कहिं !, मण्णति-विक्खियाणि मय, कहं !, सा मण्ण-गोहुममंइयाए एक्कए विदं अमुगरम पाणियगस्स, सो पाणियगो सेण मणिओ-रयणा अय्येह पूरं वा मोहं देहि, गो नेरएइ, तमो रण्णो मूलं गतो परित्से अग्ये यट्टमाणे एतस्स पत्तेण पत्तिं विण्णो, सो विणासितो, पढम पुण ताणि

१ अत्र च पञ्चमातुदने अतिवृत्तयेने निवृत्तयेने गुणाः तत्रोपाहारवं-कोमलम्-इतीत्युक्तिर्न कदापि विवका इत्यादि आहवा-इति अणिग्गारो रत्ताणि विक्खिणाणि गुणा विवकाया आदेव अण्यते-ईयत्तरीअको वासि अण्णए पाहं जीताणि एवा अण्वते-अप्योस्व नदी न इत्ये एताणि भूमिअे तन्ना अणोऽगका इत्ताणि-रयणाणि अण्ण कहं ? सा मण्णति-योदुल्लेखितिकर्येकं इवममुकस्मै वरिद-स च विक्खिदेव अणिग्ग-रयणापर्यव गूनी वा मूलं इदि स वेरएति ततो गतो मूलं गता-ईत्योअं इतमावे पुठसीतेवेकएणं स विवसितः इतने गुणानि



परसन्देनोच्यते तस्य कन्याफलछिप्तया स्नेहयन्धेन वा विधातृकरणमिति, अथि य-उरसगो गियगायद्याणयि यरणसंयरणे  
 ण करेति किमंग पुण अणोसिं ? , जो वा अत्तियाण आगारं करेइ, तत्तिया कप्पति, सेसा ण कप्पंति, ण पट्टति महती  
 दारिया दिज्जत गोघणे वा सद्धो सुपेज्जेति भणित । काम्यन्त इति कामा-स्य्यरुपगग्घा भुग्ग्यन्त इति भोगा-रसरपदाः,  
 कामभोगेषु तीव्राभिलाषः, तीव्राभिलाषो नाम तदध्यवसायिखं, तस्माच्चेदं करोति-समासगतोऽपि योपि मुलोपस्य कर्णकक्षा  
 न्तरेष्वदसतया प्रक्षिप्य लिङ्ग मृत इव आस्ते निखलो महती वेला मिति, दन्तनखोरपलपन्नकादिभिर्या मदनमुधेजयति,  
 वाजीकरणानि चोपयुक्ते, योपिदवाच्यदेशं वा मृषुनाति । एतानीत्वरपरिगृहीतगमनादीनि समाचरन्ति चरति चतुर्याणु  
 व्रतमिति । ऐत्य य आविस्त्रा दो अत्तियारा सदारसंतुहस्स भवंति जो परदारविवज्जगस्स, सेसा पुण दोणह्वि भवन्ति, दोसा  
 पुण इत्तरियपरिगहितागमणे विदियण सद्धि वेरं होज्ज मारेज्ज तालेज्ज या इत्यादयः, एयं सेसेसुवि भाणियया । उकं साति

पुण इत्तरियपरिगहितागमणे विदियण सद्धि वेरं होज्ज मारेज्ज तालेज्ज या इत्यादयः, एयं सेसेसुवि भाणियया । उकं साति  
 चारं चतुर्याणुव्रतं । अधुना पञ्चमं प्रतिपाद्यते, तत्रेद सूत्रम्—  
 अपरिभियपरिगहं समणो० इच्छापपरिमाण उवसंपज्जइ, से परिगहे इविहे पज्जस्ते, तज्जहा-सयिसपरिगहे  
 अविस्सपरिगहे य, इच्छापपरिमाणस्स समणोवा० इमे पव०-घणधसपमाणाइक्कमे विस्सवत्तपुपमाणाइक्कमे  
 हिरअसुवअपमाणाइक्कमे पुपयवत्तपपयपमाणाइक्कमे कुवियपमाणाइक्कमे ५ ॥ ( सू० )

अथि न इत्तरि निजकपक्कानामपि वरवत्संवर्यं न करोति किं पुनरन्वेणं ? यो वा बाणतानास्मरं करोति तावन्ता इज्जन्ते सेसा न कप्पन्ते न  
 पुग्गवन्ते महती दारिको इदादु योपने वा वण्डः क्षिपयिस्सति भणितुं । २ जज्ज बायी द्वावत्तिचायी लव्वात्तसुहस्स भवताः न परदारविचित्रं कल्ल तोषा पुनरुपोत्ति  
 भवन्ति तोषाः पुनरित्तरपरिगृहीतागमने द्वितीयेन सार्धं वेरं भवेत्त मात्तवेत्त तावदेव्वा पूर्वं होवेत्तपि भणितव्याः ।

देवेस्त गुञ्जानि ।, तेहि मणितं-अग्ने वाउभावे एगंवरं मेधुणं पञ्चकल्याणं, अण्णदा अग्गहाणं किहवि संजोगो जातो, ठं च  
 विचरीयं समावदिदं, जदियसं पगस्त बंभचेरपोसधो तदियसं विइयस्स पारणं, पर्बं बम्भ परंगलाणि केव कुमारगाणि,  
 धिज्जातितो संभुद्धो । एते इहउप गुणा, परउप पयाणपुरिष्ठ येयेसे पहाणावो अण्णरावो मधुयसे पचाणाओ माणु-  
 सीतो यिउला य पंचउकस्सणा भोगा वियसंपयोगा य आसणसिद्धिगमणं चेति । इदं वातिचाररहितमनुपाळनीयं, तथा  
 बाह-‘सदारसतीसस्म’ इत्यादि, स्वदारसम्भोपस्य धम्मणोपासकेनामी पञ्चातिचारा इतब्भ्याः न समाचरितव्यास्तथाया-  
 इतरपरिगृहीतागमने अपरिगृहीतागमन अनङ्गकीडा परियाहकरणं काममोगतीन्नामिहाप, तत्रेत्तरकाळपरिगृहीता  
 काळगदखोपादिरपरिगृहीता, भादिप्रदानेन कियन्तमपि काळं विवसमासादिकं स्वयमीकूलेत्यर्था, तत्त्वा गमनम्-  
 मभिगमो मेगुनासेयना इतरपरिगृहीतागमनं, अपरिगृहीताया गमनं अपरिगृहीतागमनं, अपरिगृहीता नाम देव्या अम्य  
 मरुगृहीतमाटी गुहाङ्गना याज्जापेति, अनङ्गानि च-कुचकसोक्खदनादीनि तेषु कीडनमनङ्गकीडा, अववाज्जको मोहो-  
 दपोद्भूतः वीमो मेगुनाध्ययसायास्यः कामो भण्यते तन तस्मिन् वा कीडा कुतकृत्यत्थापि स्वकिंनेन आहार्यः काठ-  
 फटगुलकमृच्छिकाचर्मादिपटितप्रजननैर्योषिदयाध्यप्रदेशासेयनमित्यर्था, परियाहकरणमिदीह स्वापस्वव्यतिरिक्तमपत्यं

१ ऐक्यमपि इत्यो ! ताम्बा मभिर्भ-आचार्या वास्वे एकाकरीतं मेधुन प्रज्ञाकवार्तं अण्णदाउपेतो क्वमपि संभोयो जातः एव विचरितमपस्विद  
 वारिने एवम् अण्णरावोसधो वारिने इतीवम् पारणकमेवमावां गृहणायैव कुमागो विज्जातीका संभुद्धः । एते देवकीकिम् गुणाः परलोके  
 एवमुक्तं इत्ये इत्याना अर्यावो अनुजये कवादा धातुजो भिगुकाः पञ्चउकना भोगाः विवसंपयोगावातावद्विद्विगमनं च ।

५५ चेहिं मिसेहिं गहिताणि दट्टंति, तेसिं पुवसंठितीप संजोगो कतो, अण्णदा सो दारगो ताप गणियाप पुपमाताप सह उगो,  
 सा से भगिणी घम्म सोतु पवइता, ओहीणाणमुप्पणं, गणियाघर गता, तेण गणियाप पुत्तो जातो, अज्जा गहाय परियंदाइ,  
 कहं?, पुत्तोडसि मे भच्छिज्जओडसि मे दारगा वेवरोडसि मे भायासि मे, ओ तुम्ह पिता सो मग्ग पिया पती य ससुरो य भाता  
 य मे, ज्जा तुम्ह माया सा मे माया भावज्जाइया सवस्सिणी सासू य, एवं नाऊण दोसे वज्जेयप। एते इहलोप दोसा परलोप  
 पुण णपुंसगसविक्रवियविययोगादिदोसा भवन्ति, गियत्तस्स इहलोप परलोप य गुणा, इहलोप कच्छे कुलपुत्तगणि सङ्गणि  
 आणदपूरे, एगो य विजातिओ दरिदो, सो दूळेसरे उवयासेण वरं मग्गति, कोवे (र)। चाउवेज्जभत्तस्स मोछं देहि, ज्जा पुण्णं  
 करेसि, तेण द्वाणमंतरेण भणितं—कच्छे सावगाणि कुलपुत्ताणि भज्जपत्तियाणि, पयाण भत्त करेहि, ते महक्कं इोहिंसि,  
 दोष्णि दारा भणितो गतो कच्छं, दिण्णं द्वाणं साययाणं भत्त वक्खिणं च, भणति—साइप किं तुम्हं तपघरणा जेण तुम्हं

१ प्राहोर्मिमेदुहं नरीते, तयो पूर्वसंविज्ञा संयोगः कृताः अन्वयाः स दारकृता गच्छया पूर्वमात्रा सह कृताः सा तत्त्व ममिवी धर्मं दुया न्न  
 विज्ञा न्नचविज्ञानमुत्पन्नं गच्छिगृह गता तेष गच्छिकर्ता पुत्रो जाताः, जार्वा गृहिणा इतिवति (गृहापवति) कथं? पुत्रोऽसि मे भ्रातृभ्योऽसि मे दाता।  
 वेवाऽसि मे भ्राताऽसि मे पत्न्य पिता स मम पिता पतिः बहुरो भ्राता च मे या तव माता सा मे माता भ्रातृजाया भ्रातृ सखी च एवं ज्ञात्वा रोषाद्  
 नर्तयितव्यं। एते इहलोके दोषाः परलोके पुनर्नपुंसकविकल्पविधियनोगादुचो दोषा भवन्ति विदुषलेहलोके परलोके च गुणा, इहलोके करते कुलपुत्री  
 आदौ आनन्वपुरे पृथग् विद्वज्जातीयो परित्रः स त्वुज्जेवरं (व्यन्तरं) उपवासेदात्तव वरं मार्गवति—कुवेर! चानुवेषमत्तस्स मूल्यं वेदि दत्ताः पुत्रं करोमि  
 तेन व्यन्तरेण कथितं—कच्छे आनन्वो कुलपुत्री मार्वापती, पलाभ्यां मत्तं वेदि तव महत्कळ भविष्यति, विनंविता गताः कच्छं, एवं धर्मं सावकाशं मत्तं  
 वदित्वा च भवति—कथनं किं तुमकोत्पन्नत्वं येन पुत्रा

देवंस्स पुञ्जाणि १, तेहिं मणितं-अग्ने वाउभावे पंगसरं मेपुणं पञ्चकसार्य, अण्णदा अम्हाणं किहवि संबोगो ज्जातो, विवरीयं समायविदियं, अदियसं पगस्स पंगसरं पंगसपोसधो तदियसं विदियस्स पारणं, पर्थ अम्ह पंगसताणि चेय कुमारग धिज्जातितो सयुद्धो । पत्ते इहलोप गुणा, परलोप पधाणपुरिसत्त देयत्ते पद्धान्तो अञ्जराओ मणुयत्ते पधाणाओ म सीतो यिवत्ता य पंचसक्खणा भोगा वियसंपयोगा य आसण्णसिद्धिगमणं चेति । इदं वातिचाररहितमनुपाख्णीय, तय चाह-‘सदारसंतोसस्स’ इत्यादि, स्वदारसन्तोपस्य भमणोपासकेनामी पद्धातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्यास्तथा- इत्थरपरिगृहीतागमनं अपरिगृहीतागमन अनङ्गकीडा परविवाहकरणं काममोगतीप्तामिहाय’, तत्रेत्तरकाउपरिगृहीता कालचन्दोपादितपरिगृहीता, भाटिप्रदानेन वियम्समपि काउ वियसमासादिकं स्वयङ्गीकृतैत्यर्थः, तस्या गमनम्- अभिगमो मैपुनासेयना इत्थरपरिगृहीतागमनं, अपरिगृहीताया गमनं अपरिगृहीतागमनं, अपरिगृहीता नाम वेण्या अभ्य- सरकगृहीतमाटी कुताङ्गना वाऽआपेत्ति, अनङ्गानि च-कुचकसोरुयदनादीनि तेषु क्खीउनमनङ्गकीडा, अयवाङ्गान्णो मोहो- दयोद्भूतः तीप्पो मैपुनाध्ययसायास्यः कामो भण्यते तेन तस्मिन् वा क्खीडा । कृतकृत्यस्यापि स्वच्छिन्नेन आहार्यः काउ फलपुस्तकमृत्तिकाधर्मादिघटितप्रजननैर्योपिदयाध्यप्रदेशासेयनमित्यर्थः, परविवाहकरणमितीह स्वापत्यव्यतिरिक्तमपत्य

१ देवतासि इत्यौ ? ताभ्यां मणितं-आकाश्यां वाक्ये पृक्काभ्योरित मैपुनं प्रसाकचार्तं धन्यपदाऽप्यनोः कप्पमपि संबोगो ज्ञातः तच्च विपरीततापत्तिर्न  
 पदिक्खे पृक्तस्य अङ्गचर्यपोषणा तदिक्खे द्वितीयात् पालकमेवमावां गृहणतावेव कुमातो विगवापीयः संपुङ्गः । इत्ते देवकीकिमा गुणा, परक्खेके  
 प्रधाकपुद्गलं इहावे प्रधाता अरमात्तो मयुज्जन्ने प्रधाता मानुष्यो विपुळाअ पञ्चकङ्कणा भोगाः वियसंपयोगावाउतासिद्धिगमनं च ।

पेसेहिं मिसेहिं गहिताणि षट्ति, तेसिं पुबसंविषीए सओगो क्तो, अण्णदा सो दारगो ताए गणियाए पुयमाताए सह उगो, सा से भगिणी घम्म सोतु पबइता, ओहीणाणमुप्पणं, गणियाघर गता, तेण गणियाए पुत्तो जातो, अज्जा गहाय परियंदाइ, कहं! पुत्तोडसि मे भत्तिज्जओडसि मे दारगा देवरोडसि मे भायासि मे, ओ तुग्ग पिता सो मग्ग पिता पती य ससुरो य भाता य मे, जा तुग्ग माया सा मे माया भावज्जाइया सवसिणी सावू य, एय नारुण दोसे घजेययं। एते इहओए दोसा परलोए पुण णपुसगसविक्यपिययिप्पयोगादिदोसा भवन्ति, गियत्तस्स इहओए परलोए य गुणा, इहओए कच्छे कुलपुत्तगानि सद्धानि आणदपूरे, एगो य चिज्जातिओ दरिदो, सो बूछेसरे चवयासेण यरं भगति, कोवे (र)। चाउपेज्जभत्तस्स मोहं देहि, जा पुण्णं करेसि, तेण घाणमंतरेण भणितं—कच्छे साधगानि कुलपुत्तानि भज्जपत्तियाणि, एयाण भत्तं करेहि, ते महक्कळं होदिहि, दोण्णि धारा भणितो गतो कच्छं, विण्णं दानं साधयाण भत्त दक्खिणं च, भणति—साहच किं तुग्गं तपघरण जेण तुग्गे

१ प्रसीमिन्निर्पुष्टिं कर्त्तुं, तद्योगं पूर्वसंस्क्रिता संयोगः कृता, जल्पदा स दारक्यता गविकृता पूर्वमात्रा सहा कृताः सा तत्त्व मणिनी घर्षं पुण्या मत्र  
स्त्रिता अवधिज्जायमुत्पन्न गविकामुहं पठा, तेन गविकर्त्तव्यं पुत्रो जाताः जायते पुहीता वीरवसि (गतापवसि) कर्त्तुं ? पुत्रोऽसि मे दारक !  
वेवाऽसि मे आताऽसि मे यच्छव पिता स मम पिता पठि। अशुरो भ्राता च मे या तव माता सा मे माता आरुजाया अद्वा सपत्नी च पूर्व माता दोषाद  
वर्जयितव्य । एते इहलोकके दोषाः परलोके पुनर्न दुःसम्भविकृतमवधियोगादवो दोषा मवसि। मिदृशसेहलोकके परलोके च पुण्या इहलोकके कर्त्तुं कृत्तुणी  
मादौ भावनवपुरे एकत्र विराजातीवो हरिः, स स्पृहेचरं (व्यम्बरं) इषवासेवाराप्य बरं मार्गेवसि-कुचेर ! चापुबोधयच्छस मूलं देहि कता पुत्रं करोमि  
तेन व्यस्तरेण कथितं-कच्छे आबको कृत्तुणी भावपती, पूताम्यां मर्षं देहि तव महत्कृत्तु भविष्यति शिर्षभितो गतः कर्त्तुं, इत्वं इत्वं जायमानो मर्षं  
वक्षिणी च मज्जति-कथयते किं पुत्रवोस्तपज्जनं योगं पुत्रां

पुण्या, सेढो जेच्छति, महिषा अजिच्छं जातुं तुळिणाका अच्छति, कातो तुम्हो आणीता !, ताप सिद्धं, तेण मणितं-अम्हो  
 बेव तुम्हो पुत्ता, इयरेसिं सिद्धं मोइया पयइता, पते अणित्तानं दोसा । धियि-पूतापयि समं वसेखा, अघा गुविणीए मज्जाए  
 विसागमणं, पेसितं जया स पूता जासा, सोइयि सा घयहरसि जाय जोषणं पसा, अण्णा (अण्ण) णगरे दिण्णा सो ण याणहि  
 तइयि ण याणति, यसे यासारसे गतो सणगरं, पूतागमणं, दइणं विडियाणि, नियसु ताप मारितो अप्पा, इयरोइयि  
 पयवितो । तसिय-जोडीए सम चेढो अच्छति, तस्स सा माता हिइसि, छुण्हा से जियगयसि जो साइए पति, सा तस्स  
 माता देयखुळितेहिं पुत्तेहिं गच्छती विद्धा, तेहिं परिमुत्ता, मातापुत्ताणं पोसाणि परियसित्ताणि, तीय मज्जावि-महि  
 छाए कीम ते इयसि पोसं गइसि !, हा पाय ! किं ते कतं !, सो गहो पबइतो । चतुर्थ-अमलाणि गणियाए वजिसत्ताणि,

! मुग्गिणाः स इहो जेच्छति मदेका अमिणं जाया तुलीका सिद्धि कुतो पूवमाणीताः ? तपोक्क, तेव मणितं-अवसेव पुज्जाके पुत्ता । इहोरेणे  
 सिद्धं, मोडिनाः प्रमज्जिताः, पुत्तेअविह्वलानां दोसा । द्वितीय-पुट्टिआअरि समं वसेए वया पडिण्णो मापोवो विजयमवं मेसितं वया ते बुद्धिगा कत्ता  
 नोअरि ताक्क एवहरति वावटीअं प्रासा अग्गाअरमिण्णं गगरे वया स व जावति पसा वसेति स प्रमाणएअरि वसिअगरे मा याणं विनेअविति वपात्तं  
 भियता, तथ तथा पुट्टिआ समं मेवोणो जाता तथापि न जावति वृत्ते वपात्ताये यताः खगारं बुद्धिआगमनं वृत्ता विकसित्ती भिरुल तथा मारित  
 जामा इल्लोअरि प्रमज्जिताः । तृतीय-जोइया सम चेटीअइति तस्स सा माता दिण्णते एवया तज्जा निजकेति न कववति पत्ति सा एव माता देवकुलि-  
 नेअरिगण्णमी एव ते पडिमुत्ता मागुगुत्तापोवेये परावृत्ते, तथा वण्णते-अहेलायाः कर्म एवोवसित्तं वरं गृहीतं ? हा पाय ! किं त्वया कृतं ? स वया  
 प्रमज्जिता । चतुर्थ-अमलं गविउवोमिणं,

ओरात्विधपरदारगमणे चेत्त्रिधयपरदारगमणे, सदारसतोसस्स समणोवा० इमे पण०, तंजहा-अपरिगदि  
धागमणे इत्तरिधपरिगद्वियागमणे अणंगकीवा परवीवाहकरणे कामभोगनिष्ठाभिहासे ४ ॥ ( सू० )

आत्मव्यतिरिक्तो योऽन्यः स परस्तस्य दाराः-कलत्रं परदारास्तस्मिन् (विधु)गमनं परदारगमनं, गमनमासेवनरूपतया  
द्रष्टव्यं, अमणोपासकः प्रत्याख्यातीति पूर्ववत्, स्वकीया दाराः-स्वकलत्रमित्यर्थः, तेन (तैः) तस्मिन् (विधु) वा संवोपः स्वदार  
सन्वोपः तं वा प्रतिपद्यते, इयमत्र भावना-परदारगमनप्रत्याख्याता यास्वेष परसम्बद्धः प्रवर्तते, स्वदारसन्नुष्टस्यैकानेकस्वदार  
व्यतिरिक्तान्यः सर्वाभ्य एवेति, सेशब्दः पूर्ववत्, तच्च परदारगमनं द्विविधं प्रशंसं, तद्यथेति पूर्ववत्, औदारिकपरदारगमनं-  
ख्यादिपरदारगमनं वैक्रियपरदारगमनं-देवान्नागमनं, तथा देवस्यै अणुपते सामण्येण अणियसस्स दोसा-मातरमपि  
गच्छेज्जा, दवाहरणं-गिरिणगरे तिष्ठा वयंसियाओ, ताओ वज्जेतं गताओ, चोरेहिं गहिताओ, जेतुं पारसफूठे पिक्की  
तातो, साण पुत्ता बहरगा घरेसु चगिअयता, तेवि मिआ आता, मातास्सियेहेण वाणिज्जेण गत्वा पारसउत्तं, ताओ च गणिआओ  
सहवेसियावत्ति भाहिं देति, तेवि संपत्तीए सयाहि सयाहि गया, एगो सावगो, साहि यऽप्यणीयाहि मातमिस्सियाहिं समं

१ ऋग्वेदश्रुमते सामान्येनाभिद्वयञ्च योपा मातहमपि गच्छेत् उदाहरणं-गिरिबगरे तिष्ठो वयस्यताः ता उज्ज्वलं गताओतेरीता, मीगा पारमइले  
विन्दीताः, तासो पुयाः छुल्लञ्च घुवेसु चसिहणाः तेजपि मिआमि आताः, मातुखेहेव वाणिज्जेण गताः पारसफूठं ताव गमिआः सवेपीवा इति भाटी इति  
तेजपि सवितम्भवता स्वकीयायाः २ ( माणु पावे ) गताः पुणः आबद्धा ताविआलीनामिमार्गमिआमि। सम-

धेयसिद्धिस्तथा व्यवहारगर्हिषादि ण वेति, ण य तेसिं आयोगणानेषु ठाति । इत्वं चातिचाररहितमनुपालनीयं, तथा चार  
 'पुच्छगे त्यादि स्पूलकादद्यादानधिरमणस्य भ्रमणोपासकेनामी पञ्चातीचारा ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा-सेना  
 इत्वं, सेनाः-घोरास्त्रीराहत्वं-आनीसं किञ्चित् कुक्कुमादि देशाभ्यन्तरात् सेनाहत्वं तत् समर्थमिति ओमाह गृहसोडतिचाराः,  
 तस्कराः-घोरास्तेषां प्रयोगः-हरणक्रियायां प्रेरणमभ्यन्तुज्ञा सस्करप्रयोगः, तान् प्रमुञ्चे-हरत मयमिति, विकञ्चतृपयोर्षव  
 राग्ये तस्यास्तिक्रमः-असिखड्गन विरञ्चराग्यातिक्रमः, न हि वाभ्यां सत्र तदाडतिक्रमोऽनुज्ञातः, 'कूटतुलाकूटमानं' तुला  
 प्रतीता मानं-कुडवादि, कूटल्यं-न्यूनाधिक्य, न्यूनया द्यतोऽधिकया गृहसोडतिचाराः, तेन-अधिकृतेन प्रतिक्रमकं-  
 सङ्गं तत्प्रतिक्रमकं तस्य विधिधमयहरणं व्यवहारः-प्रत्येपस्तत्प्रतिक्रमको व्यवहारः, यद्यत्र प्रदत्ते ग्रीष्मादि पृष्ठाविपु  
 पलङ्गीयसादि तस्य प्रसृप इत्यापत्, तत्प्रतिक्रमकेण या वसादिना व्यवहरणं तत्प्रतिक्रमकव्यवहारः, पृतानि समाचर  
 त्रतिचरति तृतीयाणुप्रतमिति । दोसो पुन तेणाहङ्गहिते रागायि हृजेज्जा, समी वा पञ्चभिन्नापेज्जा ततो वडेज्ज वा  
 मारेज्ज या इत्यादयाः, दोषा अपि वक्तव्याः । तर्कं सातिचारं तृतीयाणुप्रतं, इदानीं चतुर्थमुपदर्शयन्नाह-  
 परद्वारगमण समणो० पञ्चकस्माति सवारसतोस वा पडियज्जइ, से य परवारगमणे बुविह पन्नसे, मज्झइ-

१ प्रतिगतं तदा व्यवहारकरीकादि न इदानीं न च तेषामायोगल्लोपेण विवृतिः । २ दोषाः पुनः तेषां हृजे पृष्टे रागाभिरुह्यात्, समी वा प्रज  
 भिन्नाभोवात् ततो इत्येव मात्वेद्वा,



व्याख्या—अदत्तादानं द्विविधं—स्थूल सूक्ष्मं च, सत्र परिस्पूलविषयं चौर्यारोपणहेतुत्वेन प्रतिपिब्रमिति, पुष्टाध्यप सायपूर्वकं स्थूलं, विपरीतमिसरत्, स्थूलमेव स्थूलकं स्थूलकं च सत् अदत्तादानं चेति समासः, तच्छ्रमणोपासकः प्रत्या स्यातीति पूर्ववत्, सेशब्दः मागधदेशीप्रसिद्धो निपातस्तच्छब्दार्थः, सद्यादत्तादानं द्विविधं प्रसृतं—तीर्थकरणधरीद्वि प्रकारं प्रकपितमित्यर्थः, तद्यथेति पूर्ववत्, सह चित्तेन सचित्तं—द्विपदादिलक्षण वस्तु तस्य क्षेत्रादौ सुन्यस्तुन्यस्तविस्मृतस्य स्वामिनाऽदत्तस्य चौर्यदुःखाऽऽदानं सचित्तादत्तादानं, आदानमिति ग्रहणं, अचित्तं—यस्त्रकनकरदावि तस्यापि क्षेत्रादौ सुन्यस्त दुन्यस्तविस्मृतस्य स्वामिनाऽदत्तस्य चौर्यदुःखाऽऽदानमचित्तादत्तादानमिति, अदत्तादाने के दोषाः!, अकञ्जते या के गुणा!, एतत् इमं चैवोदाहरणम्—अथा एगा गोष्ठी, सायगोऽवि ताए गोष्ठीए, एगस्य य पगरणं चट्टति, जणे गते गोढोहाएहि परं पेछित, येरीए एकेको मोरपुत्तपापसु पट्टतीए अकितो, पभाए रण्णो निधेदिसं, राया भणसि—रुध ते जाणियवा!, थेरी भणति—एते पादेसु अंकिता, णगरसमागमे दिट्ठा, दो तिण्णि चचारि सवा गोष्ठी गहिता, एगो सायगो भणति—ण इरामि ण लंछितो य, तेहिंवि मणित—ण एस हरति मुको, इतरे सासिता, अविय साययेण गोहिं ण पधिमितय, ज किंविधि पयोयेणेण

! अक्रियमाने वा के गुणा? ! अकैदमेवोदाहरणं—अथैक गोष्ठी आबकोऽपि तस्मां गोष्ठ्यां एकए च प्रकरव वरंते जने गते गोष्ठीमेवैहं भुजितं स्वधिरैकैको सपूरपुत्तपापैः प्रतिदृग्भाऽद्विताः प्रभाते राज्ञो विवेक्षित राजा भणति—अयं ते शातम्भाः!, स्वधिरा भवति—एते पादेऽद्विताः, नपागमागमे इहा दूो वयः सर्वा गोष्ठी गृहीता एकः आबको भणति—य मुज्जाभि न च काभिय्यः तैरपि अचित्तं—एव मुज्जावि मुक्का इतरे सासिताः अयि च आबकण गोष्ठ्यां न प्रदेष्टव्यं एव केवापि प्रयोक्तेनेण

ध्वंसिषति ता ध्वजारगर्हिषादि न वेति, न य तेसिं आयोगठाणेसु ठाति । इदं चातिचाररहितमनुपालनीयं, तथा चार  
 'मूलगे त्यादि स्थूलकादसादानधिरमणस्य भ्रमणोपासकेनामी पञ्चातीचारा ज्ञातव्याः, न समाचारितव्याः, तथा-स्तेना-  
 हर्षे, स्तेनाः-चौरास्तेराहर्षे-आनीतं किञ्चित् कुङ्कुमादि वेशान्तरात् स्तेनाहर्षे तत् समर्पमिति ओमाद् गृह्णोऽतिचारः,  
 तरकराः-चौरास्तेषां प्रयोग-हरणक्रियायां प्रेरणमभ्यनुशा तस्करप्रयोगः, तान् प्रयुक्ते-हरत यूयमिति, धिक्कनूपयोर्व्य  
 राग्य तस्यातिक्रमा-भविष्यन् पितृदाराग्यातिक्रमः, न हि ताभ्यां तत्र तयाऽतिक्रमोऽनुज्ञातः, 'कूटबुद्धाकूटमानं' बुद्धा  
 प्रतीता मानं-कुडवादि, कूटस्य-न्यूनाधिक्य, न्यूना द्रवतोऽधिकया गृह्णोऽतिचारः, तेन-अधिकृतेन प्रतिक्रमकं-  
 सङ्गं तत्प्रतिक्रमकं तस्य विधिधमपहरणं व्ययहारः-ग्रहेपस्तत्प्रतिक्रमको व्ययहारः, यच्च घटते ग्रीष्मादि पृथादिषु  
 पञ्जरीयसादि तस्य प्रक्षेप इतियायत्, तत्प्रतिक्रमकेण वा धसादिना व्यवहरणं तत्प्रतिक्रमकव्ययहारः, एतानि समाचार  
 प्रतिचरति तृतीयाणुप्रवमिति । दोषां पुन तेणाहङ्गहिरे रायावि हणेज्जा, सामी वा पञ्चमिजाणेज्जा ततो वरेज्ज वा  
 मारेज्ज वा इत्यादयः, तेषा अपि यकव्याः । तर्कं सातिचारं तृतीयाणुप्रवत्, इदानीं चतुर्थमुपवर्षयन्नाह-

परदारगमण समणो० पञ्चथस्वाति सवारसतोस वा पञ्चिज्जह, से य परवारगमणे दुक्किहे पमत्ते, तंज्जाहा-

१ नितिपि तदा व्यवहारस्मीप्यादि न इति न च तेनामायोगस्थानेषु विव्रिति । २ दोषाः पुनः स्तेनाहर्षे गृहीते रागागवि इत्याद, सामी वा प्रम  
 भिज्जाचोषात् नतो इण्देत्त मावेद्वा,

— प्रमायावधेरमणे । इदं चासिचाररहितमनुपात्नीयम्, तथा चाह—‘युल्लगल’—

**अध्यास्य—शास्त्राचारः पञ्चातिचाराः शातब्धाः उपरिज्ञया**

[illegible]

स्यामिनाडदत्तस्य नीयपुट्याऽऽद्याः रायिरावतापनं आषाढि  
असवृमृतं लिख्यत इति

पुन्यस्त्रायिस्मृतस्य स्वार्मिनाऽदृष्टस्य चौर्यपुण्याऽऽवागमनितावसावागमि

पृथक् इमे वयं वाहरणम्—अथा एषा गोष्ठी ताव गोष्ठीप

प्राज्ञैर्नृणां प्रवृत्तये नृणां प्राज्ञैः प्रवृत्तये नृणां प्राज्ञैः

मणीत-एव पादसु अकिता, णगरसमागमादहो, दी सिण्णि वत्तारि सपा गोठी गदिता एतो सापणे  
लंछितो य नेपिषि मणिनं-या प्रस हवि मन्त्रो एते सम्यक् सम्यक्

छाछवा य, वाहाव माणव—॥ पुस हराव मुका, इतर सासता, आवय साययण गोठिण पयितिय न भिसेण

१ अद्विजसामे वा के गुणाः ? अक्षरेमेवोपाहारम्-वर्णिका गोपी आशुकोऽपि तस्मां गोडयां एकत्र च प्रकटनं वर्तते न च गते गोडः

सुप्रसिद्धो मयूरपुत्रपदः प्रतिपद्यमानः । प्रभाते राज्ञे निवेदितं, राज्ञा अण्डति-उर्ध्वं ते ज्ञातव्याः । त्वदिता धनति-दत्ते वादेपक्षिणा

रहा- दौ प्रपः सर्वो वोढी पुरीला पृष्ठः आदको भणसि-न मुज्जासि न न काञ्चित्तः तेरपि भणितं-मीप मुज्जासि मुक्क इतरे गारिकाग जणि न

गोष्ठ्या न प्रवेष्टव्यं अप् केनापि प्रबोद्धमेव

केल्पद्वयतणेण पविससति, ताणं तद्वियसं पगतं, कल्पद्विजो य मग्गसि, तीए य वदितवर्ग लज्जगादि, ताचे गियगपत्तिं वाहेति, अण्णातच्चज्जाए ताचे पुणरवि गंतुं महता रिद्धीए आगतो सयणाण समं मिळितो, परोवदेसेण वयस्साण सब कचेति, ताए अप्पा मारितो। मोसुवतेसे परिपायगो मणुस्सं भणसि—किं क्खिस्ससि?, अह ते अदि रुच्चति भिसण्णो वेव दवं पिढयायमि, जाहि किराढयं उच्छिण्णो मग्गाहि, पच्छा काट्टुदेसेहिं मग्गेज्जासि, जाचे य वातलो जणदाणगहणेण ताचे भणिज्जासि, सो तथेय भणति, जाचे विसपयसि ताचे ममं सक्किल वदिसेज्जसि, एवं करणे उ हारितो जितो(न)व्वावितो य, कूढदेहकरणे भइरपी अण्णे य उदाहरणा। उक्तं सात्विचारं द्वितीयाणुप्रलं, अभुना सुदीयं प्रसिपावयमाह—

धूलगजदत्तादाणं समणो०, से अदिभ्रादाणे इविहे पन्नसे, तजहा-सच्चिस्तावत्तादाणे अविस्तावत्ता-  
दाणे अ । धूलादत्तादाणयेरमणस्त समणोयासएण इमे पंच अइयारा जाणियग्घा, तजहा-तेनाइहे तच्छरप-  
ओगे यिन्द्ररत्नाइफमणे कूडतुलकूडमाणे तप्पठिरूषगवयहारे ३ ॥

[illegible]

ये पससितो, पवमादिया गुणा मुसावादेवरमणे । इद चातिचाररहितमनुपालनीयम्, तथा चाह—'पूङ्गमुसायादेवरम  
णस्स' ब्याख्या—स्यूलकमृपाधादधिरमणस्य अमणोपासकेनामी पष्ठातिचाराः ज्ञातव्याः शपरिज्ञया न समाचरि  
तव्याः, तद्यथेति पूर्ववत्, सहसा-अनालोष्य अन्यास्थानं अभिशंसनम्-असदध्यारोपणं, तद्यथा-  
चौरस्त्वं पारदारिको धेस्यादि, रङ्गः-एकान्तस्तत्र भवं रहस्यं तेन तस्मिन् वा अन्यास्थानं रहस्याभ्याख्यानं, एतदुक्तं  
भवति-एकान्ते मन्त्रयमाणान् धक्कि-पते हीदं भेदं च राजापकारित्वादि मन्त्रयन्ति, स्वदारे मन्त्रभेदः स्वदारमन्त्रभेद-  
स्वदारमन्त्र[भेद]प्रकाशनं स्वफलत्रयविशेषविशिष्टावस्थामभितान्यक्यनमित्यर्थः, कूटम्-असद्वृत्तं लिख्यत इति उक्तः  
तस्य करण-क्रिया कूटलेखाक्रिया-कूटलेखकरणं अन्यमुद्राक्षरविम्वस्वरूपलेखकरणमित्यर्थः, एतानि समाचरन्ततिचरति  
द्वितीयाणुव्रतमिति, तत्रापायाः प्रदर्शयन्ते, 'सहस्रडम्भवखाणं खलपुरितो सुणेज्जा सो वा इतरो वा मारिज्जेज्जा या, एवं गुणो,  
धेसिस्सि मएण अप्पाणे तं वा विरोधेज्जा, एवं रहस्सम्भवखाणेऽपि, सदारमंतभेदे ओ अप्पणो मज्जाप सद्धिं ज्ञानि रहस्से  
बोद्धितानि ताणि अण्णेसिं पगासेति पच्छा सा उज्जिता अप्पाणं परं वा मारेज्जा, तस्य सदाहरणम्-मपुरायाणिगो दिसीय  
त्ताय गतो, मज्जा सो आधे ण पति ताचे वारसमे धरिते अण्णेण समे पढिता, सो भागतो, रत्ति अन्नापयेमेण

इतीति प्रयेवान्तरं  
१ च प्रसंसितः पवमादिका गुणा मृपावाधिरमणे । २ सहसाऽऽव्यक्तवान् खलपुरणः शृङ्गुवात् स वेतरो वा मारेयेत् एव गुणः इतीति प्रयेवान्तरं  
तं वा विराधयेत् एवं रडोऽऽव्यक्तपात्रेऽपि स्वदारमन्त्रभेदे च भारगवो मायेवा समं वापि रहसि उच्यते तावन्त्येव प्रकृतचरति यथा सः कश्चिन्नाऽऽव्यक्त  
परं वा मारेयेत् तत्रोदाहरणं-मपुरावाधिर विरपात्राये गतः मात्री तल्ल वदा भावति वदा इगपरो कर्त्तव्येव समं स्थिता त भागतः तत्रो भागतवेव

कल्पद्वयत्वेण पविसति, ताणं सद्विषयं पगतं, कल्पद्विभो य मगति, सीप य बहिरुत्तरं लज्जगादि, ताचे विषयपतिं  
याहेति, अण्णातथजाए ताचे पुणरयि गंतुं माहता रिद्धीए आगतो सयणाण समं मिळितो, परोवदेसेण वयस्साण सबं कर्चेति,  
ताए अप्पा मारितो । मोसुवतेसे परिपायगो मणुस्सं भणति-किं फिळिस्ससि !, माहं ते अदि रुद्धति मिसण्णो सेव दवं  
यिट्ठयायेमि, जादि किरादयं उच्छिण्णो मग्गाहि, पच्छा कासुदेसेहिं मग्गेज्जासि, जाचे य वाचलो अण्णाणगहणेण ताचे  
मणिज्जासि, सो तथेय भणति, जाचे विसंयदति साचे ममं सर्विल उदिसेअसि, एवं करणे उ हारितो जितो(न)एवाविटो  
य, कूडलेहकरणे भइरधी अण्णे य उदाहरणा । उकं सासिचारं द्वितीयाणुवतं, अणुना तृतीयं प्रतिपादयमाह—

धूलगजदरादाण समणो, से अविभावाणे बुविहे पन्नसे, तज्जहा-सधिस्तादस्तादाणे अविस्तावता-  
दाणे अ । धूलादरादाणयेरमणत्स समणोयासणं इमे पंच भइपारा जाणियच्चा, तज्जहा-तैनाइहे तत्तरप  
ओगे विन्दुरज्जाइफमणे कूडतुलकृद्धमाणे तण्डिलवगववहारे ॥

१ कर्पद्विकल्पेन प्रविशति तपोव्रतवितो प्रवृत्तं कर्पद्विकल्प मार्गयति, तस्मात्त बहूनीवं वाचयति, तदा विवक्षयति वाहति अज्जलचर्चवा तदा  
तुकादि गत्वा भइया अज्जा भागता अज्जेन समं मिळति, परोपदेशेण वयस्साणं कथयति सर्वं तवाअज्जा मारितः । युतोपदेशे पवित्रावधे मणुस्सं भणति-  
किं क्कामवन्ति !, माहं ते यदि रोपने निवज्ज बुव इच्छयुपार्जयायि याहि किरादक ( इच्छयुपार्ज ) उचयतक मार्गव, एवाय अज्जेदेसे मार्गसे वदा व ज्जाज्जो  
उत्तरानमइत्थन तए मग्गे, त तदेव भणति वदा निर्वचयति तदा मां ताधिअणुसुरिसिंति एवं अज्जेअणि पयस्सितो जितो व दासितक, कूडलेहकरणे  
मणिप्यो अण्ण चोदाहरणादि

ने होजा अण्णा जीयिता ताचे रुपदो ज्ञ सय उक्त्सिष्यति वसारेति या भारं पयं यद्वाविज्यति, यद्वाज्जानं अथा सामायिया ओवि भारातो ऊणओ कीरति, हलसगदेसुधि येलाप मुयति, आसहधीसुयि पस विही, भक्षपाणयोच्छेदो ण कस्मइ कातधो, त्रिषधुद्धो मा मरेज्ज, तथेव अणद्धाप दोसा परिहरेज्जा, सावेक्खो पुण रोगणिमित्तं या घायाए या भणेज्जा-अज्ज ते ण देमिप्पि, संतिणिमिप्पं वा उवघासं कारावेज्जा, सयस्ययि अतणा अथा थूळगपणातियातस्स अतिचारो ण भयति तथा पयवित्तं, निरवेक्खवंधादिसु य ओगोययातादिया दोसा भाणियया । उर्फं सातिचारं प्रथमाणुव्रतं, अधुना द्वितीयमुच्यते, तत्रेदं सूत्र—

यूलगमुसावाय समणोवासओ पक्खस्वाइ, से य मुसावाए पचयिहे पन्नसे, तज्जहा—कट्ठासीप गयालीण मोमालिए नासायहारे कूडसक्खिज्जे । थूलगमुसावायवेरमणस्स समणोवासगण इमे पच०, तज्जहा—सइस्स वमक्खाणे रहस्सवमक्खाणे सदारमतमेए मोमुवपसे कूडछेइकरणे २ ॥

अस्य व्याख्या—मृपायादो हि द्विविधाः—स्थूलः सूक्ष्मश्च, तत्र परिस्थूलयस्थुविपयोऽतिबुद्धयिष्यासमुद्भवः स्थूलो, विपरीत

१ न भवेदस्या जीविक्य तदा विपयो न स्वप्नुमिष्यति उचारयति वा भारं एवं वाक्यते अक्षिबर्दाना यथा व्याभारिकादसि मातादृक् पिबते इत्युच्यते ज्वरि वेकापो मुञ्चति अथहस्मादित्यप्येष एव विधिः सक्तपावज्जच्छेदो न कत्यापि कर्तव्यः तीममुग्गा घृत तदैवावर्चाद पोषाव (उक्ताए) परिहरेत्, सापेक्षः पुनः रोगनिमित्तं वा वाया वा भणेए—अथ तुल्यं न इदामीति, साविमिमित्तं पोषणासं कारयेत्, तर्क्याणि कतवा यथा स्थूळयान्निमावगतापिणारो न भवति तथा प्रवर्तितव्यं निरयेकवर्णादिषु च ओकोपधातादयो दोषा भवितव्याः ।

स्त्वितरा, तत्र स्पूल एव स्पूलका २ आसी मुपायादयेति समासा, तं अमणोपासकः प्रत्यास्थातीति पूर्ववत्, स च मुपावादः पञ्चविधा प्रज्ञासः—यथाप्रकारः प्रकृपितस्तीर्थकरणार्थैः, तद्यथेष्टुदाहरणोपन्यासार्थः, कन्याविषयमनृतं अमिश्रकन्यकमेव भिक्षकन्यको यकि विपर्ययो या, एवं गयानृत अन्यधीराभेय गां यदुधीरा यकि विपर्ययो वा, एवं भूम्यनृतं परसत्कामेवात्म-सरक्षां यकि, व्ययदारे या निगुकोऽनाभयबुध्ययदारेत्येव कत्यकिवृ भागाद्यभिभूतो वकि—प्रत्येयसामवतीति, न्यस्यते—निवि-प्यत इति—यासाः—कन्यकाद्यर्पणे तस्यापहरण न्यासापहारः, अदत्तावानक्यत्वादस्य कर्तृ मुपावादत्वमिति !, उच्यते, अपल-पतो मुपायाद इति, कूटसाहित्यं वत्कोषमात्सर्याद्यभिभूतः प्रमाणीकृतः सन् कूटं वकि, अविषवाद्यनृतत्वाच्चैवान्तर्भावो-वेदितव्यः । मुमायादे क दोषा ! अकञ्जति या के गुणा !, तथा दोसा कण्णगं चेव अकण्णगं मणंते भोगंतरायदोसा पनुद्धा मा आसपातं करेज्ज कारवेज या, एव सेसेसुयि भाणियवा । नासावदारे य पुरोहितोवाहरणम्—सो अथा जमोकारे, गुणे उदाहरणं—कौकणगसायगो मणुस्सेण मणितो, घोडप प्यासंते आहणादिचि, तेण आहतो मतो य करणं णीतो, पुच्छितो-को से सम्मत्ती !, घोडगसामिण्ण भणिय, पवस्स पुत्तो मे सक्खी, तेण दारपण मणितं—सञ्चमेतम्वित, तुद्धा पुत्तिवो सो, लोणेण

१ मुपायादे क दोषा ! अकिपमायं या के गुणा ! वाच दोषा कन्यकादोषाकन्यकं मयति भोगान्तरायदोषाः तद्विषयं वाचक्यत्वात् कुर्वन्त्यत्वेदा-पूर्वं दोषेभ्यो भवितव्यम् । मयामापदारे च पुरोहितोवाहरणं—स यथा जमस्कारे, गुणे उदाहरणं—कौकणगसायको मणुस्सेण मणितः—घोडकं वक्त्रवन्तं वाचयि-मि सेवादतो मृतञ्च कर्त्तव्यं भीषाः तुद्धा कन्यव माधी ! घोडकसायिकेन मणितं—कुलञ्च पुत्तो मे सक्खी तेन दारकेन मणितं—सञ्चमेतम्विति तुद्धा-  
( सगणा ) पुत्तिवो न लोकेन



सेमुणाला चप्पलपत्तमोपसोभिता, सा य मगरगाहेहिं दुरवगाहा, ण य ताणि चप्पलादीणि कोइ चघिणिउं समरथो, जो य  
 वज्झो रण्णा आदिस्सति सो बुद्धति-एसो पुक्खरिणीतो पवमानि आणेहिस्ति, ताथे खेमो उद्वेज्जनमोअपु णं अरहंताणं  
 मणिनु अदिह निराधराधी तो मे देयता साणेज्झं देसु, सागारं भसं पच्चक्खायितुं ओगाढो, देयदासाणेग्गहेणं मगरपुद्दी  
 ठितो धइणि चप्पलपत्तमानि मेणिहनुस्सिण्णो, रण्णा हरिसितेण स्वामितो उवगूढो य, पच्चिक्खणिगहं कातूण भणितो-हिं  
 ते वर देमि ? , तेण निरुंममाणेणवि पवज्जा चरिता पवइतो, एते गुणा पाणातिपासवेरमणे ! इदं चातिचाररहितमनुपाड  
 नीयं, तथा चाह-‘धूलगे’त्यादि, स्थूलकप्पाणातिपासविरमणस्य विरतेरित्यर्थः श्रमणोपासकेनामी पयातिचाराः ‘जाणियणा’  
 सपरिज्ञया न समाचरितव्याः-न समाचरणीयाः, तद्यथेस्युदाहरणोपन्यासार्थः, तत्र बन्धनं वधः-संयमनं रज्जुदमिनकादि-  
 मिह्ननं वधः ताडनं कसादिभिः छविः-शरीरं तस्य छेदः-पाटनं करपत्रादिभिः भरणं भारः अतीय भरणं अतिभारः-  
 प्रभूतस्य पूगफलादेः स्कन्धपृथ्वादिप्वारोपणमित्यर्थ, भक्त-अश्वनमोदनादि पानं-वेयमुदकादि तस्य व व्ययशुद्धे-निरो  
 धोऽदानमित्यर्थः, एतान् समाचरन्नतिचरति प्रथमाणुव्रत, तदन्वायं तस्य विधिः-

१ समुज्जाका इत्युक्तपत्रोपसोभिता सा च मकरमाहं दुरवगाहा न च ताम्बुलपत्रदीपि कोऽप्युचोर्तु समको वन्न कल्पते राज्ञाऽन्तरहते स इत्यन्ते-इवा-  
 पुष्करिणीतः पद्मान्धानयेति तथा खेम इत्याय बल्लोऽप्यु न्दोऽज्यो भणित्वा वयमं निराधरावसाया मत्तं देवता साक्षित्वं इरागु साकारं भक्तप्रत्याख्यादावगाहा-  
 देवतासाक्षिप्येव मकरपृष्ठिस्थितो बहुस्तुलकपद्माभि गुहील्लोचीर्भः राज्ञा इदमेव कामितः उपगृह्यन् प्रक्षिप्यन्निग्रहं कृत्वा भक्तिना-दि ते वर इरासि !, तेन  
 निरुचयमायेनापि मकरमा वीर्जो ममक्षिता, एते गुणाः प्राण्यादिपातविरमणे ।

वैष्णवो बुविचो-दुप्यदाणे बहुप्यदाणे न, अद्याय अणद्याय य, अणद्याय न बहुति बंधेयु, अद्याय बुविचो-निरवेक्को  
 सायेक्को य, निरवेक्को येचले घणितं जं बंधति, सायेक्को जं दामयंठियो जं व सकेति पळीयणादिस्तु मुचिंतुं छिदितु  
 या सेण ससरपासपण बंधेतर्प, परं ताव बहुप्यदाणे, दुपदाणंवि दासो वा दासी वा बोरो वा पुणो वा न पळतगादि अति  
 बगसति तो सायेक्काणि बंधितपाणि रक्खितपाणि य जपा अग्निभयादिसु ण विणस्सति, ताणि स्मि दुपदाणुप्यदाणि  
 सायनेण गेयिहसपाणि ज्ञानि अयद्वाणि चैय अरुंति, यदो तथा बंध, वधो नाम साळणा, अणद्याय निरवेक्को निदयं  
 तातेति, सायेक्को पुण पुणमेय भीतपरिसेण होतर्प, मा इणजं कारिज्जा, अति करेज्ज सतो मम्मं मोणूणं ताचे लताय  
 दोरेण या पक्कं दो तिणिण दारे तातेति, छविछेदो अणद्याय तथैव निरवेक्को इत्यपादकज्जणज्जइं निदयत्ताय छिदति,  
 सायेक्को मंडे वा अरयं वा छिदेज्ज या बहेज्ज या, अतिमारो ण आरोयेतवो, पुवं येव जा वाहुण्णाय जीविया सा मोत्तवा,

१ वन्वो द्विविचो-द्विपराभा बहुप्यदाणां च अर्थावाच्योद च अर्थाव बंधेते बंधु, अर्थाव द्विविचो-निरवेक्कोत्तराद्यम् अत्रेको पञ्चिकं पञ्चिकं  
 कां भावेको वरायमग्निना बद्ध समोति प्रीत्यनकारियु कोचयिंतुं छेपुं वा तेन संसालाद्धकेव बद्धं पुवं तावत् बहुप्यदाणां द्विपराभासि वन्वो वा  
 दाम्नी वा चारो वा पुनो वा नान्दपारिर्वदि वन्वोत्तरादि सायेक्काणि बद्धेत्तामि रक्खितपाणि च वदायपिपयादियु न विनल्लमि ते विज्ज द्विपराब्द-  
 त्तद्वि आबद्धेव इतिपत्ता ये वया बहु निद्विभ, पयोऽति लयेव, वयो नाम तावत् अर्थाव निरवेको निर्देवं तावत्ति सायेकः पुनः पूर्वमेव सीलनंदा  
 मदिनत्तं एव वार्थं पुनं यदि पुनत्तं ततो मयं सुल्लग लता लता इत्येकेण वा पृक्तो द्विपिपीताम् तावत्ति छविछेदोमर्थाव तथैव वित्तेको इत्यपादक-  
 र्थवार्तावत्ति निर्देवता इतिमि, भावेयो गणं वा अद्याय छिदताया इदेव अतिमारो आरोयिहज्जः पूर्वमेव वा वाहुवेवानीतिपत्ता वा मोत्तवा

समुणाला सप्पलपटमोपसोमिता, सा य मगरगाहेहिं दुरवगाहा, ण य ताणि सप्पलादीणि कोइ वच्चिणिउं समरयो, ओ य वग्गो रण्णा आदिस्सति सो बुद्धसि-पत्तो पुक्खरिणीतो पवमानि आणेहिं, ताये खेमो उट्टेऊण नमोअपु णं अरहताणं भणिनु अदिह निरावराधी तो मे देवता साणेम्मं वेतु, सागारं मत्तं पक्खखायितु ओगाढो, देवदासाण्णेम्मणं मगरपुट्ठी ठितो बहूणि सप्पलपटमानि गेणिहसुप्पिणो, रण्णा हरिसितेण स्वामितो उवगूढो य, पडिपक्खणिगइ कातूण भणितो-किं ते वरं देमि !, तेण गिरुंभमाणेणयि पक्खा चरिता पवइतो, एते गुणा पाणातिपातवेरमणे । इदं चातिचाररहितमनुपाल नीय, तथा चाह-‘धूढगे’त्यादि, स्पूळकपाणातिपातविरमणस्य विरतेरित्यर्थं अमणोपासकेनामी पञ्चातिचाराः ‘जाणियया’ अपरिज्ञया न समाचरितव्याः-न समाचरणीयाः, तद्यथेत्युदाहरणोपम्यासार्थः, सत्र वरुचनं घ-घः-संयमनं रज्जुदामिनकादि मिहिननं घघः ताडन कसादिभिः छविः-द्वारीं तस्य छेदः-पाटनं करपत्रादिभिः भरणं भारः अतीव भरणं अतिभारः-प्रभूतस्य पूगफलादयः स्कन्धपृष्ठादिप्वारोपणमित्यर्थः, भक्त-अशनमोदनावि पानं-पेयमुदकादि तस्य च व्यपस्पृशः-नितो घोडदानमित्यर्थः, एतान् समाचरन्नातिचरति प्रथमाणुव्रतं, तदत्रायं तस्य विधिः-

१. अणुणाका अलकपटोपसोमिता सा य मकरगार्हिदुरवगाहा न च ताम्बुलपादीनि कोऽप्युच्येनुं समरयोः पक्ख वज्यो राज्ञाभ्यंशिरवते त इच्छते-इत्यतः पुष्करिणीतः पञ्चाम्बुलवेषेति तदा होम अत्राय वगोभ्यस्तु कर्तव्यो मणित्वा एवार्हं मिरपराधकादा मर्हं देवता साक्षिण्यं इत्यतः अष्टमलालवाचावगाहाः, देवतासाक्षिण्येव मकरवृद्धिरित्यतो बहून्मुलकपटानि गृहीत्वोत्पीर्णः, राज्ञा हुटेव क्षामितः उपगृह्य प्रतिपक्षमिमां हुत्वा भक्तिः-किं ते वरं ददामि ? तेन विरुच्यमानेनानि प्रवज्या पीर्णां प्रवक्षितः एते गुणाः प्राप्त्वातिपातविरमणे ।

देवयो दुविधो-दुप्यदानं बहुप्यदानं च, अन्नाप अणद्वाप य, अणद्वाप न वदति बंधेत्, अन्नाप दुविधो-निरवेक्लो  
 सायेक्लो य, निरवेक्लो णेच्छं धणितं अं बंधति, सायेक्लो अं दामगणितो अं य सकेति पत्नीवणगादिषु मुंभितुं तिष्ठितुं  
 वा तेण संसरपासपण बंधेत्तर्प, एवं ताव क्षतुप्यदानं, दुपदानंपि दासो वा दासी वा चोरो वा पुषो वा ण पढेत्तादि अति  
 यगमति तो सायेक्लाणि बंधितपाणि रक्खितपाणि य अथा अग्निमयादिषु ण विणस्सति, ताणि किर पुपवक्षतुप्यदानि  
 सायणेण नेण्हितपाणि जाणि अवयानि वेय अरुंति, यद्दो तथा वेय, वचो नाम साखजा, अयद्वाप निरवेक्लो सिद्धं  
 साहेति, सायेक्लो पुण पुपमेय भीतपरिसेण होत्तर्प, मा इणणं कारिद्वा, असि करेअ सतो मम्मं मोण्णं ताप्ते छत्ताप  
 दोरण पा पक्कं दो तिणिण पादे साहेति, छविउदेो अणद्वाप तथेय निरवेक्लो हस्यपादकण्णणकण्णं सिद्धत्ताप छिदति,  
 सायेक्लो गंधं वा अरुयं या टिंयेअ या इहेअ या, अतिमारो ण आरोवेत्तवो, पुवं वेय आ वाहुणाप जीविवा सा मोत्तवा,

१ वचो द्विविधो-द्विपदानं क्षतुप्यदानं च अर्कोवाक्योप न वदति वहुं कर्त्तव्यं द्विविधो-निरवेक्लोपेक्ष्य निरवेक्लो वक्षिज्जं वक्षति  
 वाहं, तावको वरासप्रभिको वक्षः सगतिं प्रदीपयन्नापि नो वक्षिन्ते तेन वा तेन संसर्गपासकेन वक्ष्यं पुवं तावत् क्षतुप्यदानं द्विपकम्मापि दासो वा  
 दासी वा चोरो वा पुषो वा गणितानिर्विदि कल्पते तदा सायेकानि वक्ष्यन्ति रक्षितम्यानि च कर्त्ताग्निमयापि न विगमन्ति, ते किर द्विपक-  
 दावा वावकव प्रीतिपा देवदत्ता एव तिष्ठन्ति कथोऽत्र तथैव वयो नाम तावयं कर्त्तव्यं निरवेक्लो निर्वच तावदति, सायेकः पुनः पूर्वमेव भीतपरिसे  
 प्रक्षिप्यं मा जानं कुर्वं यदि कुत्रापि तातो मर्मं सुत्तया तदा कतवा इवाकेअ वा पृक्तो द्विविधोपेक्ष्य तावदति अविच्छेदोऽन्वर्त्तव्यं तैव वित्तेको इत्तावद-  
 र्त्तवानिदमि निर्वचनपा टिमति, नानेधो गणं वा अरया टिमगादा ददेइअ अदिमारो नारोपयितव्यः पूर्वमेव वा वाहनेवातीतिक्रम सा मोत्तवा

अ, तत्थ समणोवासओ सक्कप्पओ जावज्जीवाए पक्खत्वाइ, नो आरमओ, यूलगपाणाइवाययेरमणस्स समणोवासएण इमे पक्खअइयारा जाणियब्बा, संजहा-थये यहे उविच्छेए अइभारे भस्सपाणवुच्छेण । (सूत्र)॥

अस्य व्याख्या-स्यूलाः-द्वीन्निद्रयादयः, स्थूलतयं चेतोर्पा सफललौकिकजीवत्वप्रसिद्धेः, एतदपेक्षयैकेन्द्रियाः (गो) सूक्ष्मापि मेना(न) जीवत्वसिद्धेरिति, सूला एव स्थूलकाक्षेपां प्राणाः-इन्द्रियादयः तेषामतिपातः स्थूलप्राणातिपातः तं श्रमणोपासकः आ वक् इत्यर्थः प्रत्याख्याति, तस्माद् विरमत इति भावना । स च प्राणातिपातो हिविधा प्रज्ञाः, तीर्थकरणधरीद्विविधा प्रकृति इत्यर्थः प्रत्याख्याति, तस्माद् विरमत इति भावना । स च प्राणातिपातो हिविधा प्रज्ञाः, तीर्थकरणधरीद्विविधा प्रकृति इत्यर्थः, 'तद्यथे'त्युदाहरणोपन्यासार्थः, सङ्कल्पजआरम्भज, सङ्कस्याज्जातः सङ्कस्पजः, मनसा सङ्कन्माद् द्वीन्द्रियादिप्राणिनः मासास्थिचर्मनखवालदन्तार्थं व्यापादयतो भवति, आरम्भाज्जातः आरम्भजः, तत्रारम्भो-हलदन्तालननस्तत्(लयन) प्रकारस्तस्मिन् सङ्गचन्दनकपिपीलिकाधान्यगृहकारकाविसङ्गहनपरितापापद्राघलक्षण इति, तत्र श्रमणोपासकः सद्गन्तव्यो ध्यायज्जीवयापि प्रत्याख्याति, न तु यावज्जीवयैव नियमत इति, 'नारम्भज'मिति, तस्यावश्यतयाऽऽरम्भसद्भावादिति, आह-एवं सङ्कस्पतः किमिति सूक्ष्मप्राणातिपातमपि न प्रत्याख्याति, सच्यते, एकेन्द्रिया हि प्रायो बुप्परिहाराः सन्नपासिनां सङ्कल्प्यैव सच्चित्तपृथ्व्यादिपरिभोगात्, तस्य प्राणातिपाते कज्जमाणे के दोसा, अकज्जते के गुणा, तस्य दोसे उदाहरणं कौकणगो, तस्स भज्जा मया, पुत्तो य से जत्थि, तस्स धारगस्स दाइयभएण दारियं ण उभति, ताधे सो अन्नतप्पेण रमंते

३ तब प्राजासिपाते कियमासे के दोषा ? अक्रियमासे व  
दायादभयेन शरिका व प्रभते तथा सोऽन्वयनेन समानो

विधिपति । गुणे उवाहरणं सप्तवदितो । चिद्विद्यं वज्रेणीय दारगो, माछवेहि हरितो सावगहारगो, सूतेण कीतो, सो भेष भवितो-  
 छावने कसासेहि, तेण मुक्का, पुणो भणिओ मारेहिस्सि, सो गेच्छति, पच्छा पिट्टेसुमारओ, सो पिट्ठिज्जंतो कूवति, पच्छा रण्णा  
 सुतो, सद्धानूण पुच्छित्तो, तांघे साहति, रण्णावि भणिओ गेच्छति, तांघे हस्विणा तासितो तथावि गेच्छति, पच्छा रण्णा  
 सोसरवत्तो उदितो, अण्णसा येरा समोसहा, सेसि अंतिय यवत्तो । सखियं गुणे उवाहरणं-पाळित्तपुत्ते नगरे विषयसु  
 राया, तेमो से अमरओ चउविपाए पुब्बीए सपण्णो समणोयासगो सावगगुणसंपण्णो, सो पुण रण्णो हिउत्तिफाणं अण्णेसि  
 दउभइभोइयानं अप्पित्तो, तस्स यिणासण्णिमिसं लेमसंतिए पुरिसे दाणमाणेहिं सक्खरिति, रण्णो अभिमरए पवंबंति,  
 गहिता य भणत्ति इम्ममाणा-अग्गे तेमसंगता तेण खेव लेमेण निवत्ता, लेमो गहितो मणत्ति-अहं सबसत्तायं लेमे  
 करेमि किं पुण रण्णो सरीररससि !, तथापि यज्झो आणत्तो, रण्णो य असोगययियाव(ए) भगगाहा पुक्कलरिणीसंछण्णपचमि

१ निव्वत्ति । गुणे उवाहरणं सप्तवदितो विनिर्गं, उज्जविचा दातवो माळवेहेइवा सावकदारकः, सूतेण कीता स तेण भवित-अवक्काम्माव तेण मुक्का  
 पुचवेहिस्सि-आवत्ति य नेरुत्ति पक्कान्निहविमुमादयाः स विहयमावः कूवति वत्ताए रया सुतः सक्खिक्का इहा उहा क्ववत्ति रयाग्गि यवितो  
 नेरुत्ति नरा इमिजा कामिगज्जावि नेरुत्ति पक्कान्ना गीयरकः स्वापितः क्ववत्ता करिस्ताः समवत्तासोपमस्मिन्ने प्रवदितः । पुत्तीवमुदाहरणं गुणे-  
 राग्गिन्नुत्ते नगरे विपाए रागा लेमज्जन्व भयत्तल्लमुदिवत्ता पुज्जा संपवः क्ववत्तोपासकः सावकगुणसंपवः स पुणा राग्गे विउ इत्तिक्का-अग्गेसो एवमरमोकि-  
 वामामदिवः नन्व विभावाविमिसे लेमपाळाए पुद्धानू पावसाध्यामावा सक्कापन्ति ताज्जोअधियाक्कए ममुज्जन्ति दूरितान्न भवन्ति इत्थमावा-अग्गे  
 लेमपक्का नन्व लेमय म्मुत्ताः अमो गृहीतो भवत्ति अहं सर्वमावागो लेम करोमि किं पुणा रण्णा क्खीरसेवित ! तथापि यज्ज भवत्ताः राग्गिज्जालोक्क  
 विवापाक्काया पुग्गिन्नी म्मुत्तन्नाग्गि-

अ, तस्य समणोवासओ सकप्पओ जावज्जीघाए पक्खसाइ, नो आरमओ, पूलगपाणाइयापेयेरमणस्स समणोवासएण इमे पच्च अइयारा जाणियब्बा, तज्जहा-यये वहे छविच्छेए अइमारे भस्सपाणबुच्छेए १। (सूत्रं)॥

अस्य व्याख्या-स्पूलाः-द्वीन्द्रियादयः, स्पूलत्वं चेतोर्पां सकललौकिकजीवत्वप्रसिद्धेः, एतदपेक्षयैकेन्द्रियाः (णो) सूस्मापिग मेना(न)जीवत्वसिद्धेरिति, स्पूला एव स्पूलकास्तेषां प्राणाः-इन्द्रियादयः तेषामतिपातः स्पूलप्राणातिपातः तं भ्रमणोपासकः आधक इत्यर्थः। प्रत्याख्याति, तस्माद् विरमत इति भावना । स च प्राणातिपातो द्विविधा मज्झसः, तीर्पकरगणपर्यद्विविधा प्रकृपित इत्यर्थः, 'तद्यथे' सुदाहरणोपन्यासार्यः, सङ्कल्पस्वप्नारम्भजस्य, सङ्कन्त्याज्जाताः सङ्कल्पजः, मनसः सङ्कन्त्याद् द्वीन्द्रियादिप्राणिनः मांसास्थिचर्मनखबालदन्ताद्यर्थं व्यापादयतो भवति, आरम्भाज्जातः आरम्भजः, तत्रारम्भो-हलवन्तालुलननस्तत्(उपयन) प्रकारस्तस्मिन् शङ्खचन्दनकपिपीलिकाधान्यगृहकारकादिसङ्कटनपरितापापद्रावलक्षणा इति, तत्र भ्रमणोपासकः सङ्कल्पतो यावज्जीवयापि प्रत्याख्याति, न तु यावज्जीवयेव नियमत इति, 'नारम्भज'मिति, तस्यावश्यतयाऽऽरम्भसद्भावादिति, आह-एवं सङ्कल्पतः किमिति सूक्ष्मप्राणातिपातमपि न प्रत्याख्याति १, उच्यते, एकेन्द्रिया हि प्रायो दुष्मरिहाराः सन्नयसिनां सङ्कल्प्यैव सचिसपृच्छ्यादिपरिमोगाद्, तस्य प्राणातिपाते कज्जमाणे के दोसा १ अकज्जेते के गुणा १, तस्य दोसे उदाहरणं कौकल्लगो, तस्स भज्जा भया, पुत्तो य से अत्थि, तस्स दारगस्स दाइयमएण दारिय ण लमति, ताये सो अल्लक्खेण रमंतो

१ तत्र प्राणातिपाते क्रियमाने के दोषाः १ अक्रियमाणे च के गुणाः १ तत्र दोसे उदाहरणं कौकल्लगः तत्र भावो पुला पुबज्ज तल्ल जति, तस्य दारगल्ल

दायाइमयेण दारिकां न लमते तदा सोऽप्यल्लक्खेण रममाणो

विधिंति । गुणे वदाहरणं सत्त्ववर्धितो । विधिर्यं सुखेणीय दारगो, माखेर्वि हरितो सावगवारगो, सुखेन कीतो, सो तेन भगितो-  
 सायने कसासेहि, तेन मुखा, पुणो भजितो मारेद्विहि, सो जेष्ठति, पच्छा पिष्टेजुमारयो, सो पिष्टिजंतो कुवति, पच्छा रण्णा  
 मुतो, सदायेतूया पुच्छितो, साधे साहति, रण्णावि भगितो जेष्ठति, ताचे इत्यिणा सासितो तथावि जेष्ठति, पच्छा रण्णा  
 सीसरवलो उयितो, अण्णता येरा समोसहा, सेसि अंतिय पवइतो । तसिचं गुणे वदाहरणं-पावडिपुचे नगरे जियसत्  
 राया, सेमो से अमद्यो चवपिपाय पुखीप सपण्णो समणोयासगो सावगगुणसंपण्णो, सो पुण रण्णो द्विदत्तिकाचं जण्णेसिं  
 ददभटमोइयानं अप्पितो, तस्स यिणासणणिमिचं खेमसंतिप पुरिसे दाणमाणेहि सक्करिंति, रण्णो अभिमरय पवंजति,  
 गहिता य भणति दम्ममाणा-अग्गे खेमसंगता तेण येव खेमेण जित्ता, सेमो गहिता भणति-अहं सबसत्ताणं खेमं  
 करेमि किं पुण रण्णो सरिररसत्ति !, तथायि पग्गो आणत्तो, रण्णो य असोयचवियाव(ए) अगाहा पुक्खलरिणीसंछयूणपसमि-

१ विधयि । गुणे उपदाहरणं सत्त्ववर्धितं । द्वितीयं सुखेणीयं दारगो माखेर्वि हरितो सावगवारगो सुखेन कीतो । सो तेन भगितो-  
 सायने कसासेहि । सो मुखा, पुणो भजितो मारेद्विहि । सो जेष्ठति । पच्छा पिष्टेजुमारयो । सो पिष्टिजंतो कुवति । पच्छा रण्णा  
 मुतो । सदायेतूया पुच्छितो । साधे साहति । रण्णावि भगितो जेष्ठति । ताचे इत्यिणा सासितो तथावि जेष्ठति । पच्छा रण्णा  
 सीसरवलो उयितो । अण्णता येरा समोसहा । सेसि अंतिय पवइतो । तसिचं गुणे वदाहरणं-पावडिपुचे नगरे जियसत्  
 राया । सेमो से अमद्यो चवपिपाय पुखीप सपण्णो समणोयासगो सावगगुणसंपण्णो । सो पुण रण्णो द्विदत्तिकाचं जण्णेसिं  
 ददभटमोइयानं अप्पितो । तस्स यिणासणणिमिचं खेमसंतिप पुरिसे दाणमाणेहि सक्करिंति । रण्णो अभिमरय पवंजति,  
 गहिता य भणति दम्ममाणा-अग्गे खेमसंगता तेण येव खेमेण जित्ता । सेमो गहिता भणति-अहं सबसत्ताणं खेमं  
 करेमि किं पुण रण्णो सरिररसत्ति !, तथायि पग्गो आणत्तो, रण्णो य असोयचवियाव(ए) अगाहा पुक्खलरिणीसंछयूणपसमि-



दारिया विद्धा चोरोस्ति गह्विया, परिणीया य, अण्णया य घग्गुक्केण रमंति, रायानिठ तेण पोत्तेण याहेति, इयरा पोत्ता  
 देति, सा चित्ठगा, रण्णा सरिय, मुक्का य पपइया, पर्यं पित्तुगुंछाफळे । परपापंढानां-सर्वज्ञप्रणीतपापण्डव्यतिरिक्तानां  
 प्रशंसा प्रशंसनं प्रशसा स्तुतिरित्यर्थः । परपापण्डानामोघतल्लीणि शतानि त्रिपञ्चाधिकानि भवन्ति, यत उप्पम्-  
 “असीयसयं फिरियाण अकिरियधार्येण होइ चुलसीसी । अण्णाणिय सत्तही येणइयाण च घच्चीच्च ॥ १ ॥ गाहा”, इयमपि  
 गाथा विनेयजनानुग्रहार्थं ग्रन्थान्तरप्रतिषेद्धाऽपि लेशतो व्याख्यायते-“असियसयं फिरियाण”ति अदीरयुत्तरं शतं क्रिया-  
 यादिना, तत्र न कर्त्तारं विना क्रिया सम्भवति सामात्मसमयायिनीं पवन्ति ये तच्छीळाश्च से क्रियायादिना, ते पुनरा-  
 त्माद्यस्तित्वप्रतिपत्तिष्वङ्गाः अनेनोपायेनाशीत्यधिकशतसङ्ख्या विज्ञेयाः, जीवाजीयाश्च य-“घसंथरनिर्जरापुण्यापुण्यमोक्षा-  
 स्यान् नय पदार्थान् विरचय्य परिपाइया जीयपदार्थस्याधः स्वरमेवादुपन्यसनीयां, तयोरधो नित्यानित्यभेदा, तयो-  
 रप्यधः कालेश्वरात्मनियतिस्वमायभेदाः पञ्च न्यसनीयाः, पुनश्चेतयं विकल्पाः कर्त्तव्याः-अस्ति जीयः स्वतो नित्यः कालत-  
 इत्येको विकल्पः, विकल्पार्थश्चाय-विद्यते स्वस्वयमात्मा स्वेन रूपेण नित्यश्च काउताः, काउतादिनाः, उक्तेनैवाभिज्ञापेन  
 द्वितीयो विकल्पः ईश्वरवादिनः, तृतीयो विकल्प आत्मवादिनः ‘पुरुष एवेदं सर्वं’मित्यादि, नियतियादिनश्चतुर्थो विकल्पः,  
 पञ्चमविकल्पः स्वभाववादिनः, एव स्वत इत्यत्यजता लब्धाः पञ्च विकल्पा, परत इत्यनेनापि पञ्चैव लभ्यन्ते, नित्यत्या

१ शारिका इडा चौर इति गृहीता परिणीता च अण्णया य गाह्वीइया रमन्ते राशकलं पोत्तेन गाह्वन्ति इतत्ता येतं इदस्ति सा शिकमा राडा एतं  
 सुप्प च मज्झिमा पउत्त विइज्जुगुप्साफळं ।

परित्यागेन चैते दश विकल्पाः एवमनित्यत्वेनापि यद्येव, एकत्र विंशतिर्जीवपदार्थेन लब्धाः, अजीवादिष्वप्यष्टस्वेवमेव  
प्रतिपदं विंशतिर्यिकस्यानामतो विंशतिर्यगुणा द्युतमशीत्युपरं क्रियाधादिनामिति । 'अक्रियमाणं च भवति कुत-  
सीति' इति अक्रियायादिनां च भवति चतुरशीतिर्मेदा इति, न हि कस्यचिदप्रत्यक्षस्य पदार्थस्य क्रिया समस्ति, तदुभाव  
एवाप्यस्तिरभायादित्येवं यादिनोऽक्रियायादिनः, तथा चाद्वये--"लणिकाः सर्वसंस्काराः, अस्थितानां कुतः क्रिया ? ।  
भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव बोध्यते ॥ १ ॥" इत्यादि, एते चारमादिनास्तिस्वप्रतिपत्तिरूपेण अमुनोपायेन चतुर-  
शीतिर्द्रष्टव्याः, एतेषां हि पुण्यापुण्ययजितपदार्थसप्तकन्यासस्तथैव जीवस्याचः स्वपरविकल्पमेवद्वयोपभ्यासः, असत्त्वा-  
दात्मनो नित्यानित्यभेदो न स्तः, कालादीनां तु पयानां पक्षी यदृच्छा त्यस्यते, एवाद्रिकल्पमेवाभिलाषः,--नास्ति जीवा-  
म्यतः कालत इत्येको नित्यः, एवमीश्वरादिभिरपि यदृच्छावसानैः, सर्वे च पञ्च विकल्पाः, तथा नास्ति जीवः परतः कालत  
इति त्रयेय विकल्पाः, एतन्ना द्वादश, एवमजीवादिष्वपि पदसु प्रतिपद द्वादश विकल्पाः एकत्र, सप्त द्वादशगुणाश्चतुर-  
शीतिर्यिकत्वा नास्तिकानामिति । 'अण्णागिय सच्चिद्वि'सि अज्ञानिकानां सप्तपष्टिर्मेदा इति, तत्र कुत्सितं ज्ञानमज्ञानं  
तदेवमस्तीति अज्ञानिकाः, नन्वेवं लघुयात् प्रक्रमस्य प्राक् षड्ग्रीहिणा सवितत्त्वं ततश्चाज्ञाना इति स्वात्, नैव दोषः,  
ज्ञानान्तरमेवाज्ञान मिथ्यादर्शनसहचारित्यात्, तस्यैव जातिशब्दस्यापि गौरवस्वरूपमिथ्यावियदज्ञानिकत्वमिति, अथवा  
अज्ञानेन चरन्ति तत्प्रयोजना या अज्ञानिका -असचित्य कुतर्भेदस्यादिप्रतिपत्तिरुच्यताः, अमुनोपायेन सप्तपष्टि-  
र्द्रष्टव्याः, तत्र जीवादिनयपदार्थान् पूर्वपदं व्ययस्याप्य पर्यगते चोत्पत्तिमुपन्यस्याथः सप्त सदादयः उपन्यसनीयाः,

दारिया विद्वा चोरोसि गहिया, परिणीया य, अणया य वगुकेण रमति, रायानित तेण पोचेण याहेति, इयरा पोच  
 देति, सा घिलगा, रणा सरिय, मुका य पवइया, पर्यं विवदुगुलाफलं । परपापहानां-सर्वज्ञप्रणीतपापण्डव्यतिरिक्तानां  
 प्रशंसा प्रशंसनं प्रशसा स्तुतिरित्यर्थः । परपापण्डानामोपसखीणि शतानि त्रिपद्यधिकानि भयन्ति, यत वरुन्-  
 “असीयसय किरियाणं अकिरिययार्हण होइ बुलसीती । अण्णाणिय ससही येणइयाणं च यसीस ॥ १ ॥ गाहा”, इयमपि  
 गाथा विनेयजनानुग्रहार्थं ग्रन्थान्तरप्रतिपद्याऽपि लेशतो व्याख्यायते-‘असियसयं किरियाण’ति अशीरयुत्तरं शत क्रिया-  
 द्वादिनां, सत्र न कर्त्तारं विना क्रिया सम्भवति तामात्मसमायिनीं वदन्ति ये तच्छीलाश्च ते क्रियायादिनाः, ते पुनरा  
 रमाद्यस्तित्वप्रतिपक्षिणः अनेनोपायेनाशीत्यधिकशतसङ्ख्या विज्ञेयाः, जीवाजीवाश्रयवन्धसंघरनिर्जरापुण्यापुण्यमोहा  
 स्यान् नव पदार्थान् विरचय्य परिपाद्या जीवपदार्थस्याघः स्वपरमेदाबुपन्यसनीयां, तयोरधो नित्यानित्यभेदा, तयो  
 रप्यधः कालेश्वरात्मनियतिस्वभायभेदाः पञ्च न्यसनीयाः, पुनश्चेर्यं विकल्पाः कर्त्तव्याः-अस्ति जीवः स्वतो नित्यः कालत  
 इत्येको विकल्पः, विकल्पार्थस्याय-विद्यते सत्त्वयमारमा स्येन रूपेण नित्यश्च कालतः, कालयादिनाः, चक्रेनैवाभिलापेन  
 द्वितीयो विकल्पः ईश्वरयादिनाः, तृतीयो विकल्प आत्मयादिनाः ‘पुरुष पदेवं सर्वं मित्यादि, नियतियादिनद्युयो विरुत्पा,  
 पञ्चमविकल्पः स्वभावयादिनाः, एव स्वत इत्यत्यजता लब्धाः पञ्च विकल्पाः, परत इत्यनेनापि पद्येय उच्यन्ते, नित्यत्वा

१ दारिका इडा चोर इति गृहीता परिणीता च अन्वया च बाह्यग्रीववा रमन्ते राक्षसं पोतेन बाहवन्ति, इत्यादि शेतं इति सा विरुत्पा राजा एव

फेलाउं किञ्चा रायगिहे गणियाए पोष्टे सबबसा, गळमगला चेर अरइ अणेति, गळमपाडणेहि य न पडइ, आया समाणी  
 उजिसया, सा गधेण तं पणं पासेसि, सेणिओ य तेण पपसेण निगण्ठइ सामिणो वंगो, सो लंघायारो तीए गंधं न  
 सहइ, रण्णा पुच्छियं—किमेयंति, कहियं वारियाए गधो, गंतूण दिठा, भणसि—एसेव पडमपुच्छति, गमो सेणिओ, पुण  
 दिठ्ठपुच्छंते कहिते भणइ राया—फहिं एसा पच्चणुभविससइ सुहं दुक्खं या !, सामी भणइ—एएण काळेण वेदियं, सा तव  
 वेध भज्जा भयिस्सति अगमहिंसी, अहं संयच्छराणि आव तुमं रममाणस्स पुट्ठीए हंसोवणीलीं काही तं आणिआसि,  
 यदित्ता गओ, सो य अचहरिओ गंधो, दुल्लपुत्तएण साहरिया, संवद्धिया ज्जोवणया आया, कोमुइवारे अम्मयाए समं  
 आगया, अभओ सेणिओ (य)पच्छण्णा कोमुइवारं पेच्छंति, तीए वारियाए अगफासेण अज्झोववण्णो णाममुहं दसियाए तीए  
 घंपति, अमयस्स कहियं—णाममुहा वारिया, मगाहि, तेण मणुस्सा दारेहि ठविया, एकेक माणुस्सं पडोएव नीमिअइ, सा

१ काळं कृत्वा शत्रुगृहे लक्ष्मिपुत्राया उदरे शयना, दर्भगैवाराति अवबति गर्भपातवैरपि च न पतति आता सन्नुत्पिङ्गला सा पद्मेव ठाव न वासपति  
 धेन्निहल हेन प्रदत्तेन निगण्ठनि न्यासिभो पद्मनाथ स स्कन्धापास्तसा गर्भं न सहते राजा दृष्टे-उन्मेषविति ! कथित इरिकावा यन्त्र- यत्ना द्वा  
 मत्स्यि-पदैव सपमगृहेति गता भेम्बिकः पूर्वोदिरे नृणांते कथिते अयति राजा-किंया प्रमदुसविष्यति सुपुं दुलं वा ? ज्ञानी सवति-पुतेव कासेव  
 बदिन सा नदैव भाषां भविष्यति ज्ञानमहिषी ज्ञानं भवताम् पापघ्न रममाणस्य दृष्टो हंसोर्दी करिष्यति तां ज्ञानीयाः वनिष्या गावा स आपदो यन्त्रः ।  
 पुठपुनरेन मंहता संतुष्टा च वीरवत्या जाता कौमुदीरासेरेज्जया सममागता जमकाः अधिपत्य प्रच्छदी कौमुदीरासरं मेकेते वला इरिकावा ज्ञानसर्वे  
 बापुनरुभो नाममुनी एवता इसायां ज्ञानि जमकाय कथित-ज्ञानमुद्रा इरिका मार्गच तेन मनुष्या इरि ज्ञानिवाः पदैमे मनुष्याः प्रकोल विष्मयवते, सा

पंभाए धिप्यिहितित्ति, सो य भसंतो त धिआसाहयं पेच्छइ, तेण पुच्छिओ मणति-विज्जं साहेमि, चोरो मणति-केण दिण्णा !,  
 सो मणति-सावणेण, चोरेण भणियं-इस ववं गिणहाहि, विज्जं देहि, सो सद्धो वित्तिगिच्छति-सिज्जेज्जा न यस्ति, तेण  
 दिण्णा, चोरो चित्तेइ-सावणो कीट्टियाएवि पार्यं नेच्छइ, सद्यमेयं, सो साहितमारद्धो, सिद्धा, इयरो सद्धो गहिओ, तेण  
 आगासगएण लोओ भेसिओ साहे सो मुळो, सद्धावं दोवि जाया, एवं नियिसिगिच्छेण होययं, अथया विद्वज्जुगुप्सा, विद्वाम्  
 -साधवः विदितससारस्वभावाः परित्यक्तसमस्तसङ्गाः तेषा जुगुप्सा-निन्द्या, तथाहि-तेउड्धानात्, प्रत्वेदज्जउक्किममलत्थात्  
 दुर्गन्धिबपुपो भवन्ति तान् तिस्सहि-को दोएः स्यात् यदि प्रासुकेन पारिणाउद्धालन कुर्वीरन् भगवन्तः !, इयमपि न कार्या,  
 देहस्यैव परमार्थतोऽशुचित्वात्, एतथं तदाहरणं-एको सद्धो पञ्चसे वसति, तस्स धूयावियाहे कइयि साहयो आगया, सा  
 पिठणा, मणिया-पुत्तग ! पठिउहेहि साहुणो, सा मंढियपसाहिया पठिउमेति, साद्वण जल्लगंद्धो तीप भगयाओ, चित्तेइ-  
 जहो अणवज्जो महारगेहिं धम्मो वेसिओ जइ फासुएण ज्हाएज्जा !, को दोसो होज्जा !, सा तस्स ठाणस्स अणाखोइयपडिफता

१ प्रयातै पुरीप्पतै इति स च आगम्यन् तं विपासायकं प्रेक्षते तेष पृष्ठो मज्जति-विपां सापएयि चोरो मज्जति-केव इच्च ! स मज्जति-आगरेकेन  
 जीरेण सप्पिठे-इदं प्रम्यं गृहाण विज्जां देहि स आद्धो विविचिस्सति सिज्जेज्ज वेति तेण इत्था चोरेविज्जवति-आवका इतिट्ठाका मणि पापं नेच्छति  
 सन्नमेतए य साधयितुमारब्धः सिद्धा इत्था आद्धो पुरीत्ताः तेषाकाणतेन लोको जायिताः वत्ता स सुद्धः अट्टावन्ती हावयि वाठी इव निर्विभिज्जितेन  
 मज्जितव्धे । २ अद्धोदाहरणं एकः आद्धा प्रज्जान्ते वसति तन्न दुदियुधियाहे कयमपि सावका आगताः सा पित्ता मज्जिता-पुच्छिदे ! प्रदिक्कअव सापूर मा  
 मणित्तमसाधिता प्रसिद्धमपयति साधूदो जल्लगणवत्तपाउमाताः चित्तवति-जहो भगवयो महारकेवमो वेसिता यदि प्रासुकेन धावाए को दोसो अवेए ! ता  
 तन्न स्वावसावाकोचितप्रतिष्ठात्ता

कालं किञ्चा रायनिहे गणियाप पोहे उययणा, गळमगसा खेव अरई जणेति, गळमपाठणेहि य न पठइ, छाया समाणी उजिसया, सा गयेण सं पण दासेति, सेणिओ व सेण पयसेण निगण्ठइ सामिणो वदगो, सो संघावारो तीए गंध न सहइ, रण्णा पुच्छिय-किमेयंति, कहियं दारियाप गधो, गंतूण दिक्का, भणत्ति-पसेव पढमपुच्छति, गओ सेणिओ, पुढु दिठपुच्छंते कहिते भणइ राया-फहिं पसा पद्यणुमविसइ सुई तुफलं वा !, सामी भणइ-पयण क्खंतेण वेदिचं, सा वव वेव मज्जा मयिस्सति अत्तामहिसी, अढ संवच्छराणि जाव तुक्कं रममाणस्स पुठीए ईसोवडीली काही तं जाणिज्जासि, यदित्ता गभो, सो य अवहरिओ गंधो, कुउपुच्छण साहरिया, संवद्धिया जोषणस्सा जाया, कोमुइवारे अम्मवाए समे जागया, अभओ सेणिओ (य)पच्छण्णा कोमुइयारं पेच्छंति, तीए दारियाप अगफासेण अग्होवयणो जायमुई दसियाए हीए वंचति, अभयस्स कहियं-णाममुइ दारिया, मगाहि, तेण मणुस्सा दारेहि ठविया, एकेकं माणुस्सं पडोपचं नीगिज्जाइ, सा

[illegible]

लेहसालाओ आगया दो पुचा पियसि, एगो चितेति-एयाओ, मच्छियाओ सकाए सस्सयगुलो वाठ जाओ, मओ य, चिहओ  
 चितेह-न मम माया मच्छिया येह जीओ, एते दोसा । काह्णं काह्ण-सुगताविप्रणीतदर्शनेनु प्राहोडमिठाप इत्यर्थः,  
 तथा चोक्तं-‘कंला असमदंसणगाहो’सा पुनर्हिमेदा-देसकाह्णा सर्वकाह्णा च, देशकर्त्तृकदेसवियया, एकमेव सीगतं  
 दर्शनं काह्णति, चित्तजयोऽत्र प्रतिपादितोऽयमेव च प्रधानो मुक्तिहेतुरित्यतो घटमानकमिव न दूरापेतमिति, सर्वकाह्णा  
 तु सर्वदर्शनान्यवकाह्णति, अहिसादिप्रतिपादनपराणि सर्वाण्येव कपिलकणभस्त्राद्यादादिमतानीह लोके च नात्यन्तहेतु  
 प्रसिपादनपराण्यतः श्रोमनान्येवेति, अयैवहिकामुष्मिकफलानि काह्णति, प्रतिपिद्या चैयमर्हच्चिरतः प्रतिपिद्यानुष्ठानादेनां  
 कुर्वतः सन्यक्स्वाविचारो भवति, तस्मादेकान्तिकमव्यावायमपवर्गं विहायान्यत्र काह्णा न कार्येति, एतयोदाहरणं, राया  
 कुमारामन्नो य आसेणावहिया अठविं पत्रिद्या, बुहापररक्षा वणफलाणि स्वार्यति, पठिनियसाण राया चितेह, लडुयपूयजग  
 मादीणि सबाणि स्वामि, आगया दोवि जणा, रण्णा स्यारा भणिया-अं लोए पयर तं सय सवे रेचेहसि, उवहवियं च रन्नो,  
 सो राया पेच्छणयदिहंतं करेह, कण्पडिया बलिपहिं धादिज्जह, एवं मिहस्स अवगासो होहितिचि कणकुंडगमडगादीणिदि

१ लेहसालावा आगती द्वी पुसी विषतः एकस्मिन्वसति-पूता मच्छिया, सहजा तस्स वगुलो बापुओते सुतन्न द्वितीवीकित्तपसि-न मळं माग  
 मच्छिका वपाए बीक्षितः एते दोसा । २ अयोदाहरण राजा कुमारामादन्नाचेबापइतावदर्थी मच्छिहो सुभापरिगतौ बवक्कानि पाएलः प्रतिनिवृत्तौ राज्ञा  
 चित्तपसि-कडुकापूपादीभि सर्वाणि कावमि, आगती ज्ञावपि जन्नो राजा पूजा ममिताः-बहोके प्रचरति तत् सर्वं सर्वे एतवतेति इत्थानिचं च राजे  
 स राजा पेच्छणकरहान्तं करोति कार्यिका बलिभिर्यज्यन्ते एव मिहसावकासो मच्छिपीति कणकुण्डगमडकादीन्वपि

लब्धवानि, तेहि सुखेण मग्गो, अमग्गेण यमणधिरयणाणि कयाणि, सो मामागी भोगाण आओ, इयरो विण्हो । भित्तिस्स  
 मत्तिविअमा, गुत्तयागमोपपप्पेडप्यर्थे फलं प्रति सम्मोहो, किमस्य महत्तत्त्वपङ्कषायासस्य सिक्ताकणकवज्जनादेरायसो मम  
 फलसम्पद् भविष्यति किं वा नेति, उभयपथेह क्रियाः फलवत्यो निष्फलाश्च इत्यन्ते कुरीयजानां, न चेयं शङ्कातो न भिद्यते  
 इत्याशङ्कनीयं, अट्टा हि सकलासकलपदार्थभाक्स्येन द्रव्यगुणविषया इयं तु क्रियाविषयेव, तत्त्वतस्तु सर्वं पदे प्रायो  
 मिध्यात्ममोहनीयोदयतो भयन्तो जीयपरिणामयिशेषाः सम्यक्स्यसिचारा उच्यन्ते, न सूस्मेष्टिकाञ्च क्वयेति, इयमपि  
 न कार्यो, यतः सर्वज्ञोऽकुरुशालानुष्ठानाद् भयत्येय फलप्राप्तिरिति, अत्र चौरौदाहरणं—साबगो नवीसरवरगमण दिवगघाणं(तं)  
 दयसंपरिमेण मिसस्स पुण्डणं पिजाए दाणं साहणं मसाणे चवप्पायं सिक्कां, देहा ईगाळा खापरो प सुळो, अहसयं दारा  
 परिजयिस्ता पाओ सिक्कगस्म छिजाए एयं पिसिओ तए प चउत्थे प छिण्णे आगासेणं वच्चति, तेण विज्जा गहिआ,  
 किण्हएउइत्तिरिस्तिं साहेइ मसाणे, चोरो य नगरारकित्तएहिं परिरुममाणो तत्थेव असियओ, ताहे वेहेउं सुवाणे ठिया

१ नारिणादि, तैः दूतेन पृष्टाः अमाग्गेव वमन्निरेवदादि कृत्वादि स भोगानामायागी आत्मा इत्येतो विवक्षः । २ चौरौदाहरणं आचक्षते कवीश्वराना-  
 मयं ईश्वरमन्त्रेण विष्णुगच्छा विज्जन्त्य गृह्णा विद्याया इयं साधन इममाने अनुप्पायं सिक्कमवच्छन्नु अट्टाया आदित्तय कम्म । अहसयं दाराद् परित्यज्य  
 दाए-पिह्वहन्ने उट्ठने वद द्वितीयाः तृतीये अनुये च छिन्ने आचक्षतेन दग्धते तेन विद्या गृहीता कृत्वाचतुर्दशीतरी आचक्षति इममाने चौरव वागाएउइके  
 दावमावगच्छादिगच्छन्तु वेहयिक्का इममान (ने) स्थिता



लेहसालाओ आगया दो पुचा पियसि, एगो चिंतेति-पयाओ, मच्छियाओ संकाए तस्स वगुलो याव जाओ, मओ य, पिइओ  
 चिंतेइ-न मम माया मच्छिया येइ जीओ, एते दोसा । काह्णं काह्णा-सुगताविप्रणीतदर्शनेपु भाहोडभिलाप इत्यर्थः,  
 तया चोर्क-कंसा अससदसणगाहोसा पुनर्निभेदा-देसकाह्णा सर्वकाह्णा च, वेशकाह्णे रुदेसविपया, एकमेव सीगतं  
 दर्शनं काह्णति, चित्तजयोडअ प्रतिपावितोऽयमेव च प्रधानो मुक्किहेसुरित्यतो घटमानकमिदं न दूरापेतमिति, सर्वकाह्णा  
 तु सर्वदर्शनान्यवकाह्णति, अहिंसादिप्रतिपादनपराणि सर्वाण्येव कपिलकणमखापादादिमतानीह लोकं च नात्यन्तद्वन्द्व  
 प्रतिपादनपराण्यतः शोभनान्येवेति, अयं वै हि कामुष्मिकफलानि काह्णति, प्रतिपिआ चयमर्हं श्रितः प्रसिपिआनुष्ठानादेनो  
 कुर्वतः सम्यक्स्वादिचारो भवति, तस्मादेकान्तिकमव्याबाधमपवर्गं विहायान्यत्र काह्णा न कार्येति, ऐत्योदाहरणं, राया  
 कुम्मारामच्चो य आसेणावहिया अठविं पत्रिहा, चुहापरआ घणफलाणि स्यायेति, पठिनियसाण राया चित्तेइ, उइयपूयउग  
 मादीणि सखाणि स्खामि, आगया दोवि जणा, रणा स्यारा भणिया-अं ओए पयरइ तं सय सये र्चेहसि, उवइयियं च रत्तो,  
 सेो राया पेच्छणयदिइंत करेइ, कल्पइया वलिपहिं चाडिज्जाइ, एवं मिहस्स भवगासो होहितिचि कणकुडगमडगादीणिपि

१ छेवसाकाया आगती द्वी पुत्री पिबतः एकस्मिन्ववति-पूचा मच्छिकाः इहवा तस्य वस्युलो वासुमंतो ब्रुतअ द्वितीवस्मिन्ववति-व मणं मावा  
 मच्छिका दयाए बीषिता एते दोसाः । २ आओवाहरनं राजा कुम्मारमात्साजावेनापइतावटवीं प्रसिधो सुयत्परिगतो बबडकानि आइता, प्रसिभित्तरो राजा  
 चित्तवपति-अहुकापुपादीभि सर्वांभि खावामि, आगतो इरावसि जमी राजा सूदा भणिया-वहोके प्रचरति एए सर्वं सर्वं राखतेति इययागिं व राजे  
 स राजा मेइयकरएण्णं करोति, कर्पटिका वळिभिर्वाज्यान्ते एवं मिहस्सावकातो मज्झिपलीसि कणकुडगमडगादीन्ववति

ज्ञानमविज्ञाना इत्यर्थः, येः सम्यक्प्रत्यक्षमस्ति चरति, ज्ञातव्याः अपरिचिता न समाचरितव्याः, नासेव्या इति भावार्थः । 'तद्यथा'-  
 तद्यथाहरणप्रदर्शनार्थः, शङ्का काहा विचिकित्सा परपापण्डप्रशंसा परपापण्डसंस्तव्यसेति, तत्र शङ्कान् शङ्का, भगवदर्थ-  
 प्रणीतेषु पदार्थेषु धर्मोक्तिकायादिप्यस्यम्भगहनेषु मतिदौर्बल्यात् सम्यगनवधार्यमाणेषु संशय इत्यर्थः, किमेवं स्यात् नैव  
 भिमिति, संशयकरणं शङ्का, सा पुनर्दिग्भेदा-देवशङ्का सर्वशङ्का च, देशशङ्का देशविषया, यथा किमयमात्माऽसङ्ख्यप्रदे-  
 नात्मकः स्वाद्य निष्प्रदेशो निरययवा स्यादिति, सर्वशङ्का पुनः सकलास्तिकायज्वाल एव किमेवं नैवं स्यादिति ।  
 मिथ्यादर्शनं च त्रिविधम्-अभिगृहीतानभिगृहीतसंशयभेदात्, तत्र संशयो मिथ्यात्यमेय, यदाह-"पयमकक्षरं च पक्षं को  
 न रोषइ मुक्तनिदिष्टं । सेस रोयतोयि ह मिच्छदिद्वी मुनेययो ॥ १ ॥" तथा-"सूत्रोक्त्येकस्याप्यवरोचनावसरस्य भवति नरा ।  
 मिथ्यावृष्टिः सूत्रं हि नः प्रमाणं जिनाज्ञा च (निनाभिहितं) ॥ १ ॥ एकस्मिन्पथ्ये सन्दिग्धे प्रत्ययोऽर्थेति हि नष्टा । मिथ्यास्त्वदर्शन  
 तत्त्वपादिहेतुर्भयगतीनाम् ॥ २ ॥" तस्मात् मुमुक्षुणा व्यगतरुद्धेन सता जितबन्धनं सत्त्वमेव सामन्यतः प्रतिपत्तव्यं, संशया-  
 त्यदमपि मत्स्ये, सपञ्चाभिहितरात्, तदन्यपदार्थधत्, मतिदौर्बल्यादिदोषानु कात्सर्त्येन सकलपदार्थस्वमावावधारणमशक्यं  
 छान्दसेन, यदाह-"न हि नामानामोगच्छस्यस्येह कस्यचिन्नास्ति । ज्ञानाधरणीय हि ज्ञानावरेण प्रकृति कर्म ॥ १ ॥"  
 इह बोधाहरण-चो भक्तं फेदं सो यिजरमति, जहा सो पेज्जायओ, पेज्जाय मासा जे परिभज्जमाणा ते छुवा, अंधगारए

१ परमपदे भिक्तं वा न रोचयति गृगमिर्गिद्व्य । दावं रोचयपि मिथ्यावृष्टिर्नास्ति ॥ १ ॥ २ पा शङ्का करोति स विवस्वति बवा स पेजापत्ती, पेजावा  
 मासा दे परिभज्जमाणा ये तिस्राः अम्यकारे

अण्णया तस्स पोद्दसरणी जाया, सो वीथरेहि वेदिओ तेहिं अणुकंपाप, सो महारगणं नमोकारं करोतो काळगओ देवो वेमाणिओ जावो, ओहिणा तच्चणियसरीरं पेच्छइ, ताहे समूसणेण हत्थेण परिवेसेति, सहण ओहायणा, आयरियाण आगमणं, कहणं च, तेहिं मणियं—जाह अगइत्थं गिण्हइण मणह—नमो अरहताणंति, खुगस गुग्गगा २, तहिं गट्ठण मणिओ सबुद्धो वंदिसा लोगस कहइ—अहा नत्थि एत्थ धम्मो तग्गहा परिहरेजा ॥

अन्नाह—इह पुनः को दोषः स्यात् येनेत्थ सेवामसानादिप्रतिषेध इति १, उच्यते, तेषा तदुभक्तानां च मिथ्यात्यस्यीरकरणं, चर्मबुद्ध्या ददतः सम्यक्सत्वलाञ्छना, तथा आरम्भादिदोषश्च, करुणागोचरं पुनरापन्नानामनुकम्पया दद्यादपि, यदुक्तं—“सेवेहिं पि खिणेहिं बुज्जयज्जियरागदोसमोहेहिं । सत्ताणुकंपणद्धा दाण न कहिं चि पडिसिद्धं ॥ १ ॥” तथा च भगवन्तस्तीर्थं कुरा अपि त्रिमुयनैकनाथाः प्रविश्रजिपवः साधत्सरिकमनुकम्पया प्रयच्छन्त्येव दानमित्यलं विस्तरेण । प्रकृतमुच्यते—‘संमत्तस्स समणोवासएण’मित्यादि सूत्र, अस्य व्याख्या ‘सम्यक्सत्वं’ प्रागुक्तपितृत्वस्वरूपस्य भ्रमणोपासकेन—धायकेण ‘पूते’ यक्ष्यमाणलक्षणाः अयवाऽमी ये प्रक्रान्ताः पवेति सङ्गभाषाचकः अतिचारा मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोदयादात्मनोऽनुभाः परि

यक्ष्यमाणलक्षणाः अयवाऽमी ये प्रक्रान्ताः पवेति सङ्गभाषाचकः अतिचारा मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोदयादात्मनोऽनुभाः परि यक्ष्यमाणलक्षणाः अयवाऽमी ये प्रक्रान्ताः पवेति सङ्गभाषाचकः अतिचारा मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोदयादात्मनोऽनुभाः परि

१ अन्वयादा तत्तातीसारो जातः । स वीथरेहिंतिपटीनुकम्पया स महारगेम्भो वमस्कारं कुर्वन् काळगतो देवो वैमात्रिके जातः । अत्र विना तच्चमिकाति प्रेक्षत तदा समूपपत्तेन हत्थेन परिवेषयति आवाधायामपक्राज्जया आचाराणांमागमनं कर्तनं च तैर्विहितं—आवाग्रहत्वं गृहीत्या मन्त्र—मनोर्गन्तव इति उपपन्नं गुहाक ! २ तैर्गत्वा मन्त्रिणः संवृद्धो वंदित्वा कोकाव कथयति—अथा वारस्वज्ज धर्मोकासात्परिहरेय ॥ २ ॥ सर्वेति त्रिनेत्रितुर्नरतामोपमोहे । तारागुग्गमाभे दारवं न कुत्रापि मतिपिच्छम् ॥ १ ॥

णामचित्तेना इत्यर्थः, यैः सम्यक्प्रत्ययमतिपरति, ज्ञातव्याः न सप्ताचरितव्याः, नासेष्या इति भावार्थः । 'तद्यथे'-  
 त्युदाहरणप्रदर्शनार्थः, ज्ञात्वा काह्वा विचिकित्सा परपापण्यप्रवर्गसा परपापण्यसंस्तवश्चेति, तत्र सङ्कनं सङ्का, भगवद्वर्त-  
 मणीवेतु पदार्थेषु धर्मास्त्रिकायावित्यत्यन्तगहनेषु मतिदोर्वस्यात् सम्यगनयधार्यमाणेषु संस्रय इत्यर्थः, किमेवं स्यात् नैव  
 मिति, संशयकरणं दादा, सा पुनर्हिमेदा-येनगङ्गा सूर्यसङ्का च, वेदसङ्का देशविषया, यया किमयमात्माऽष्टद्वयेयप्रदे  
 गारमरुः स्वादय निष्प्रदेद्यो निरयययः स्यादिति, सूर्यसङ्का पुनः सकलास्तिकावजात एव किमेवं नैवं स्यादिति ।  
 मिथ्यादर्शनं च त्रिपिपम्-अभिगृहीतानभिगृहीतसंशयमेवात्, तत्र संशयो मिथ्यात्वमेव, यदाह-"पयमकलरं च एवञ्च औ  
 न रोपद् सुत्तनिदिष्टं । सेनं रोयतोयि नु मिच्छविही मुनेययो ॥ १ ॥" तथा-"सूत्रोक्तत्वेकस्याप्यरोचनावसरस्य भवति नराः ।  
 मिथ्यादृष्टिः यूयं हि नाप्रमाणं जिनाज्ञा च (जिनाभिहितं) ॥ १ ॥ एकस्मिन्नप्यर्थे सन्निवर्धे प्रत्ययोऽर्हति हि नष्टः । मिथ्यात्ववर्धनं  
 तत्तत्पादिहेतुर्भयगतीनाम् ॥ २ ॥" तस्मात् मुमुक्षुणा व्यपगतगङ्गेन सता चित्तवचनं सत्यमेव सामान्यतः प्रतिपत्तव्यं, संशया-  
 स्तरमपि गत्ये, सपणाभिहितरागात्, तदन्यपदार्थपत्, मतिदोर्वस्याविदोषासु कारसेन सकलपदार्थस्वभावावधारयामस्यक्यं  
 तन्मस्येन, यदाह-"७ हि नामानामोग्गणस्यत्वेद कस्यचिन्नास्ति । ज्ञानापरणीयं हि ज्ञानावरणप्रकृति कर्म ॥ १ ॥"  
 इदं नोदाहरणं-जो मरु फेरु मो यिणरमति, जहा सो येज्जायओ, येज्जाय मासा ओ परिमज्जमाणा ते छुहा, अंयगारए

१ एतमस्मिन् चैव वा न लेगगति गृह्यमिति । तेन लेणपप्रति विप्यादृष्टिर्ज्ञोतव्यः ॥ १ ॥ २ पाः यदाह कतोति स भिगममति जहा स वेपयादी वेपयादी  
 दाता ये वी नुत्तवम-नरे दिग्गाः अन्यकारे

घायाइ चिंतिअइ-तरय थूलगमुसावायं थूलगअवत्तावाण पच्चक्खाति दुयिह तिविहेणं १ थूलगमुसावाय दुयिहं तिविहेण  
अदसादाणं पुण दुविह दुविहेण २ एवं पुपकमेण छब्बगा नायणा, एय मेहुणपरिगहेसु पत्तय पत्तयं छ २, सपयि मिलिया  
अद्वारस, एते मुसावायं पढमघरगममुचमाणेण लद्धा १८, एवं धीयादिघरेसुयि पत्तेग २ ॥ १॥

[illegible]

१०  
 २०  
 ३०  
 ४०  
 ५०  
 ६०  
 ७०  
 ८०  
 ९०  
 १००  
 ११०  
 १२०  
 १३०  
 १४०  
 १५०  
 १६०  
 १७०  
 १८०  
 १९०  
 २००  
 २१०  
 २२०  
 २३०  
 २४०  
 २५०  
 २६०  
 २७०  
 २८०  
 २९०  
 ३००  
 ३१०  
 ३२०  
 ३३०  
 ३४०  
 ३५०  
 ३६०  
 ३७०  
 ३८०  
 ३९०  
 ४००  
 ४१०  
 ४२०  
 ४३०  
 ४४०  
 ४५०  
 ४६०  
 ४७०  
 ४८०  
 ४९०  
 ५००  
 ५१०  
 ५२०  
 ५३०  
 ५४०  
 ५५०  
 ५६०  
 ५७०  
 ५८०  
 ५९०  
 ६००  
 ६१०  
 ६२०  
 ६३०  
 ६४०  
 ६५०  
 ६६०  
 ६७०  
 ६८०  
 ६९०  
 ७००  
 ७१०  
 ७२०  
 ७३०  
 ७४०  
 ७५०  
 ७६०  
 ७७०  
 ७८०  
 ७९०  
 ८००  
 ८१०  
 ८२०  
 ८३०  
 ८४०  
 ८५०  
 ८६०  
 ८७०  
 ८८०  
 ८९०  
 ९००  
 ९१०  
 ९२०  
 ९३०  
 ९४०  
 ९५०  
 ९६०  
 ९७०  
 ९८०  
 ९९०  
 १०००

इयानिं सत्भावसावओ, सावओ साइ पुच्छइ, तेहिं कहिये, ताहे दिण्णा पूया, सो सावओ जुयनें घरें करेइ, अण्णया  
 तस्स मायापियरो भवें भिक्कुपुगाण करेसि, ताई भणसि-अज्ज एकसिं वच्चाहि, सो गओ, भिक्खुएहिं विज्जाए मंठिकण  
 फलें दिण्णे, ताए पाणमंतीए अहिंदिओ घरें गओ त साययधूय भणइ-भिक्खुगाणं भवं देसो, सा नेच्छइ, वासाणि  
 सयणो य आरद्धो सज्जेठं, सायिया आयरियाण गंतुं करेसि, तेहिं ओगपडिभेओ दिण्णो, सो से पाप्पिएण दिण्णो, सा  
 घाणमंतरी नहा, साभावियो जाओ पुच्छइ कहं वचि ?, कहिए पडिसेहेति, अण्णे भणति-सीए सयणमिंजाए  
 यमायिओ, सो तो सामायिओ जाओ, भणइ-अग्मापिठछेण मणा विर्यच्चित्ति, तं किर फासुगं साहुणं दिण्णं,  
 परिमा केत्तिया आयरिया होहिंति तम्हा परिहरेजा। पिचीकंतारेणं देजा, सोरद्धो सहओ उज्जेणिं वच्चाइ पुक्काळे लब्धिणि-  
 पडिं सम, तस्स परययणं, एणीणं भिक्कुपुएहिं भण्णइ-अम्हएहिं पहाहि परययणं तो पुग्गवि दिब्धिहिंति, तेण पडिवण्णं,

१ इरावी नगरघारका, कावका गाएइ दुण्णति ठेग कथितं तथा इरा सा कावकाः पुक्कगुहं करोति कावका लज्ज मातापितरौ यत्तं विद्वुक्कणं  
 दुण्णः नो भन्ता अटीका भागए, स गठा भिण्णुकीदियवा मज्झिमा फलें दुवं तत्ता व्यन्तबोद्धिद्वितो पुहं पत्ता हां कावकुडिठरें लब्धि-विद्वुकेस्सो  
 यत्त एइ ग नेप्पति, इगगा अटनज्ज भाएएः सज्जितुं आत्रिकाऽऽपावीइ पत्ता कयवति ठेग गोगमदियेदो इरा स तल्ले पावीयेव इरा सा व्यन्तरी  
 वटा स्वाभाविको जगग दुप्पणि-कयं वेणि ? उचिते मतिरेपति अग्ये यणित-सवा मद्दवोद्वेग वमितः स तत्ता सानामिओ वत्तो यत्तति-मातापितृ  
 प्पान्न मनाइ रिगटिइ इति लीकज्ज यागुकें सादुग्गो दुलं ईदसाः कियन्त कावावी मज्झिमा लज्जाए पडिहरेइ। इतिअन्तारेण इयाए सीराइ कावक  
 इज्जिणी यत्तणि पुक्काने लब्धिद्विकेऽ सम, तन् पण्यद्वं धीनं भिण्णुकीदियवते-अपानीवं बहु पण्यद्वं लहिं पुग्गमसि दीपते इति तेव मतिपदं

सकेणाहओ पच्छा ठिओ, एवं रायाभोगेण वेंतो नाइकमति, केसिया परारिसया होहिति अ पपइस्सति, तग्ग न  
 दायवो । गणाभोगेण घरुणो रइसुसले निवत्तो, एय कोडवि सावगो गणाभोगेण भसं दधाविआ दिसेयि सो  
 नाइचरइ धम्मं, वलाभोगेयि एमेव, देवयाभोगेण जइए एगो गिहत्थो सावओ जाओ, तेण याणमंतराणि पिरपरि  
 चियाणि उज्झियाणि, एगा तस्य चाणमंतरी पओसमावण्णा, गावीरक्खगो पुत्तो तीए याणमंतरीए गायीहिं सम अयइरिओ,  
 ताहे वइण्णा साहइ तज्जंती-किं मम वण्णसि न वत्ति !, सावगो मणइ, नवरि मा मम धम्मविराइणा भयतु, सा मणइ-  
 मम अब्बेहि, सो मणइ-जिणपडिमाणं अवसाणे ठाहि, आमं ठामि, तेण उयिया, ताहे दारगो गायीओ आणीयाओ,  
 एरिसा केसिया होहिति तग्ग न दायवं, दवाविज्जंतो जातिचरसि । गुरुनिग्गहेण भिक्षुदवासगपुत्तो सायग धूपं मगति,  
 ताणि न वेत्ति, सो कवढसइणणेण साधू सेवेति, तरस मावओ उवगयं, पच्छा साहेइ-एएण कारणेण पुदिं दुक्खेमि,

१ छठेआइए पन्नाइ स्थिता पूर्व रात्राभियोगेव ववइ जातिक्कमति किंचत्त पुताइत्तो भविष्यन्ति ये प्राक्किप्पन्ति तस्माच्च दातव्यः । यथाभित्ति  
 वरुणो रचसुराणे निपुणः पूर्व कोडपि आबको गणाभियोगेन मच्छ दाप्पते इइपि स जातिचरसि वव । वकाभियोगोऽप्येवमेव । इवताभित्तेव ववमे  
 गुरुत्वा आबको जाताः तेन ज्वन्तराभिरपरिचिता वकिताः पूजा तत्र इवन्तरी प्रोक्तामापन्ना गोरइका पुण्डव इवन्तवां गोमि मममपइत्त,  
 तदाऽज्जीवीणो कययसि तर्जवन्दी-कि मासुक्कसि य वेत्ति ! आबको भवति-ववरं मा मे धर्मविराधना मूलं सा भवति-मायवइ स ज्वन्ति-विज्जन्तिमानो  
 पावें तिष्ठ ओ तिष्ठामि तेन स्वापिता एवको गाबज वदणीताः ईदृशाः क्रियन्तो भविष्यन्ति तस्माच्च दातव्यं दाप्यमावो जातिचरति । गुरु भिप्रदेव भिचुराम  
 कपुजः आबकं दुहितरं वाचते य तौ वृत्तः स कपुजवाइतया साधूइ सेवते तज्ज मावेवोपगलं पन्नाइ कववति-पुदेव क्वरेव पूर्वमागतोऽस्मि

इदानीं सद्यमावसावओ, सावओ साह पुच्छइ, तेहि कहिये, पाहे विण्णा पूया, सो सावओ सुयगं परं करेइ, तस्स मायापियरो भवं भिक्षुदुगाण करेति, ताइ भर्णति-अज एकसिं वच्चाहि, सो गयो, भिक्षुसुयहिं विजाए मंठिअण फउं दिण्णो, ताए पाणमंठीरए अहिद्धिओ परं गओ तं साययपूय भणइ-भिक्षुगणं मत्तं वेसो, सा नेच्छइ, वासाभि सयणो य आरओ सजेवं, सायिया आयरियाण गंतुं कहेति, तेहिं ओगपठिभेओ दिण्णो, सो से पाणिएण दिण्णो, सा पाणमसरी नद्धा, सामाविओ जाओ पुच्छइ कहं यत्ति !, कष्टिए पठिसेहेति, अण्णे भर्म्मसि-सीए मयणमिंजाए यमायिओ, सो तो सामाविओ जाओ, भणइ-अम्मपिटउंसेण मणा पिक्खित्ठसि, तं किं फाहुगं सद्धयं दिण्णं, परिभा केसिया आयरिया होइति तम्हा परिहरेज्जा । विचीकंत्तारेणं देज्जा, सोरओ सहओ उज्जेणिं वच्चाइ पुक्काळे तद्धाणिं-एहिं ममं, तस्स पत्थयण, एीणं भिक्षुपुयहिं भण्णइ-अम्महयहिं यद्दाहि पत्थयणं सो तुम्हावि विज्झिहिंति, तेण परिवर्णणं,

१ इदानीं मन्नावसावका आरका साधूइ दुप्पठि है। कथितं तथा वचा दुवित्ता स भाषका दृक्कगूर कोति अन्वयादस्य असावित्ता अउं भिक्षुकाव दुग्गः। तौ वज्जः अट्टकत्ता धागाए न गताः, भिक्षुकिंकिपाका मज्झपिका कउं इत्तं तथा अज्जत्तवोद्विद्धिओ एहं एत्तत्तं तौ अज्जत्तवुद्वित्तरं वक्कति-भिक्षुकेम्मो अउं एहं, ना नेच्छति इममा मन्नावका आरव्वाः सज्जपिणु मात्तिकाऽऽवावीइ गत्वा कववति है। योग्यपठिभेवो वचा स तस्यै पादीवेण इत्तः सा अक्कपरी नद्धा व्यामावित्ठो ममा दुप्पठि-कयं येमि। कथिते पठिकेवति अन्त्ये अक्कपि-तया मग्गदीवेव वमित्ता स तत्ता स्वायामिओ ज्जओ क्वत्ति-मत्तापिणु-एवेव मग्गाइ निर्गम्य इति, तत्तिह मग्गुव साधुओ वत्तं इत्ताः किंमत्त आचवो अविप्पन्ति तस्मात् परिहरेत्। इतिअज्जत्तारेव वच्चाइ दीराह। आरक तद्धाविनी वज्जि दुक्काळे तद्धाविनीं मयं, मग्ग कववत्त एीणं, भिक्षुकेमववते-अक्कपरीवं वह कववत्त एहिं तुम्हावि वीवते इति तेव प्रवित्तं



संकेणाहमो पच्छा ठिओ, एव रायाभिभोगेण देतो नारक्षमति, केतिया एयारिसया होहिंति च पयश्सति, तम्हा न दायपो । गणाभिभोगेण वरुणो रहसुसले निउसो एव कोडवि सायगो गणाभिभोगेण भत्त दयायिआ दिंतोरि सो नाइधरइ धम्म, वट्ठाभिभोगोवि एमेव देवयाभिभोगेण जहा एगो गिहत्थो सायभो जाओ, तेण घाणमताराणि पिरपरि खियाणि उग्गिस्सयाणि, एया तत्थ घाणमतरी पओसमावज्जा, गाधीरयउगो दुस्रो तीण घाणमंतरीए गावीहिंसमं अयइरिओ, ताहे चइण्णा साहइ तज्जती-किं मम व'स्ससि न वसि !, सावगो भणइ, नवरि मा मम यन्मचिराह'ण भयु, सा भणइ-मम ज्ञेहि, सो भणइ-खिणपदिमाण अवसाने ठाहि, आस ठामि, तेण ठयिया ताहे दारगो गावीओ आणीयाओ, एरिसा केत्थिया होहिंति तम्हा न दायप, दवाविज्जतो णातिचरति । गुरुनिगहेण भिरुपुउयासगुसो सायगं भूयं मगति, ताणि न देति, सो कयइसहुत्तणेण साधू सेवेति, तस्स भायओ चवगय, पच्छा साहइ-एएण कारणेण पुदिं पुओमि,

१ साके-आह'ण पञ्चाइ स्थितः दुर्न राजानिबोधयेव २१इ गापिअमपि किबन्त एणारयो मरिरबडिउ दे ममअिस्सविण तज्ज'ण सुण'ण । ल'णमिअलोव बरतो एयमुणाले निपुणः दुर्न कोमपि जायको यत्तामिदोयेव षण्ण दाय्ते इरइवि स गापिअरि ष'ण । ब'णमिबोसोअयेवदेव । देवणाअिबोदेव वयओ पुरहत्तः सायको जाल' तेव ज्यन्त'साअिररिथिता अस्सिवा' दुव'ण तज्ज'ण मदमरी इमेवमाएआ गोरइअ पुयल'वा इरत्ताव' दोमिः तज्ज'वरइ'ण साराअणीनो कयवति तज्ज'अग्गी-किं मायुमससि व वेति ! भायको मज्जति-वरं मा ने धर्ममिताएवा भूय' ता भयपि-आमअइ अ अ'पि-अिरर'पिअ'ण । पायं तिइ ओ ठिअमि तेव ख'पिता यारको गावअ तदुणीजः ईट्ठाः कियत्तो मअिअदिउ तज्ज'ण दायं एणवमावो बापिअरि । दुव' मियदेव अिभुएण कपुणः भायक दुर्दिगं पावते व तो वृषः स कपटभाअ'वण साधून् सेवते तस्स मायेवोरणतं एअ'इ कयवपि-पूतेव कायेव एवेद'णोअमि

इवाणिं सद्यमावसावओ, सावओ साह पुच्छइ, तेहिं कहियं, ताहे दिण्णा पूया, सो सावओ जुयगं घरं करेइ, भणया  
तस्स मायापियरो भवे भिक्खुगाण करेति, ताई अणति-अज्ज एवसिं ववाहि, सो गओ, भिक्खुएहिं विज्जाए मंरिऊण  
फळं दिण्णं, साए याणमंवीरए अहिद्धिओ घरं गओ तं सावयपूय भणइ-भिक्खुगाणं भवे देओ, सा नेच्छइ, वासाणि  
सयणो य आरओ सज्जेवं, सायिया आयरियाण गंतुं कहेति, तेहिं ओगपडिमेओ दिण्णो, सो से पाणिएण दिण्णो, सा  
याणमंतरी नहा, साभायिओ जाओ पुच्छइ कहं वसि !, कहिए पडिसेहेति, अणो भणति-नीए मयणमिंजाए  
यमायिओ, सो तो सामायिओ जाओ, भणइ-अम्मायित्ठेण मया विवंचित्ठेति, तं किर फासुगं साहणं दिण्णं,  
एरिसा केसिया आयरिया होहिंति तन्हा परिहरेजा । विच्छीकंवारेण देजा, सोरओ सहओ ज्जेणिं ववाइ पुक्कले तवणि-  
एहिं समं, तस्स परययणं, सीणं भिक्खुएहिं भणइ-अग्रइएहिं ववाहि परययणं सो तुण्हावि विज्जिहिंति, तेण पडिक्कणं,

१ इदानीं सज्जामावकाः आचकाः साधूश्च दृष्टव्यं तैः कथितं तथा तथा पुरिता स आचकाः दृक्कणूहं करोति अन्धारा एव सात्तापितरौ अर्धं भिक्षुकपदं  
कुरुतः तौ भयताः-अर्तकता आगच्छ, स गता भिक्षुकेर्मवशा मद्यविका फलं दत्तं तथा व्यवसायविक्रितो गृहं पला तौ आचकद्वित्रारं मचडि-मिद्धुकेम्बो  
अर्धं इहा सा नेच्छति, इत्याः स्वप्नमन्न आरब्धा सज्जदितु, आदिक्काऽऽधापांश्च गत्वा कवचति तैः योगप्रतिधेदो वृत्ता स तस्मै पापीयेव वृत्ता सा व्यवसारी  
नरा व्याभाविको जाता दृष्टव्यः-कथं वेति ? कथिते प्रतियेयति अग्रे भगवन्ति-तथा मयवकीजेव वसिताः स तदा ज्ञानामिमे जाओ मचडि-मातापितृ  
पुत्रेव मताश्च निरग्न इति तस्मिन् प्रामुखं साजुग्घो वृत्तं, ईदृशाः किपल आचारानां मयिप्यन्ति तज्जाए परिहरेत् । इति काण्ठोरेव वयात् सौराहः आचक  
इत्यपिभी प्रमत्ति दृक्कले वचनिकेऽ सम तदा पचपइव धीमं भिक्षुकेर्मवते-अस्मदीयं बह पचइव तर्हि तुम्हमपि दीपते इति तेव प्रतिपन्न

संकेणाहओ पच्छा ठिओ, एवं रायाभियोगेण देतो नाश्कमति, केसिया पयारिसया होहिंति जे पयइरसति, तग्हा न  
 दायधो । गणाभियोगेण वरुणो रश्मसले निवसो, एध कोडवि सावगो गणाभियोगेण भल दयायिआ दिवोयि सो  
 नाइधरइ धम्मं, बलाभियोगोवि एमेय, देवयाभियोगेण अहा एगो गिहल्यो सावओ जाओ, तेण पाणभंतराणि चिरपरि  
 चियाणि वज्झियाणि, एगा तत्थ पाणभंतरी पओसमावण्णा, गावीरक्खगो पुसो वीए पाणभंतरीए गायीहिं सम अयहरिओ,  
 ताहे चइण्णा साहइ तज्जंती—किं मम उण्णसि न वत्ति !, सावगो भणइ, नवरि मा मम धम्मविराहणा भयतु, सा भणइ—  
 मम अच्छेहि, सो भणइ—जिणपडिमाण अघसाणे ठाहि, आम ठामि, तेण उधिया, ताहे दारगो गायीओ आणीयाओ,  
 एरिसा केसिया होहिंति तग्हा न वायबं, द्वाविज्जंतो नातिवरति । गुरुनिगहेण भिक्खुववासगपुसो सावगं पूयं सगति,  
 ताणि न देति, सो कववइसहुत्तणेण साधू सेवेति, तस्स भावओ उवगयं, पच्छा साहेइ—एएण कारणेण पुणं दुक्कोमि,

: सकेणाहता पद्माए स्थिता पूर्व राजाभियोगेण एवए नासिकाकामति कियन्त एतादृशो अभिष्वमित वे प्रसविष्यन्ति तस्याश्च शततपः । नव्याभिवर्गो  
 वरुणो रश्मसले भिपुकाः पूर्व कोडवि भावको गणाभियोगेन भवं दान्ते इवइपि स नातिवरति धम । बलाभियोगोऽप्यवसेव । देवताभिवर्गमेव यथमे  
 गुरुणा भावको बाज्या तेन व्यन्तराभिरपिस्थिता वज्झिताः एक्य तत्र इवसरी प्रवेवमापन्ना गोरक्षका पुत्रमुवा इवन्तवो वोभिः समसवहन  
 तदाज्जतीर्णा कववति तज्जंन्ती—किं मासुय्यसि व वेति ! भावको अमति—ववरे मा मे धर्मविपायता मूए छा अयति—मासवव स प्रवति—त्रिमवतिमात्र ।  
 पारब्बे तिष्ठ, धो विहामि तेन स्थापिता वारको गावज्ज वज्जनीताः इदृशाः कियन्तो अभिष्वन्ति तस्याश्च शततप्यं दान्त्वमात्रो नातिवरति । पुत्र भिमइज भिपुराज  
 कपुपा भावकं इविवरं पावते व तो इयः स कपटभाइतवा साधूए सेवते तस्य साधैवोपगतं पद्माए कववति—पुतेन कारमेव पूर्वयागतो—मि

तं संवत्सरो गो आवाति, कस्मिन् गो नावाति, ताहे से सो गेरुओ पओसमावण्णो छिद्दणि भग्गति, षण्णया रावाए निमं-  
 तिओ पारणए नेच्छति, बहुसो २ राया निमंसेइ ताहे भणइ-अइ नवरं मम कस्मिओ यरिवेसेइ तो नवरं जेमेमि,  
 राया भणइ-एवं करेमि, राया समणूसो कस्मियस्स घरं गओ, कस्मिओ भणइ-संदिसइ, राया भणति-गेरुयस्स परिवेसेइ,  
 कस्मिओ भणति-न पइइ अगं, सुगइ विसययासिन्ति करेमि, विसेइ-अइ पवइओ होतो न एवं भवंतं, पच्छा जेण परि-  
 वेसियं, सो परिवेसेज्जतो अंगुलिं चाउेति, किइ ते !, पच्छा कस्मिओ सेण निवेएण पवइओ नेगमसइत्सपरिवारो  
 मुणिमुपयसमीये, धारसंगानि पढिओ, धारस यरिसानि परियाओ, सोहम्मे कव्ये सखो ज्ञाओ, सो परिवारयओ सेणा  
 भिभ्रोणेण आभिभोगिओ परायणो आमो, पेच्छिय सख पछाओ गइठ सखो विलगो, दो सीसालि कयाप्मि, सखवि-  
 दो जाया, एवं आयइयाणि सीसानि यिउपति तापतियाणि सखो विउपति सक्कयाणि, ताहे नासिउमारजो,

१ नं गवरंसेइ आदिपसे कर्त्तिको आदिबले तथा वसे त गैरिअ प्रदेयमाएअन्विदावि मार्यपति अन्वए रावा निमंतिता पारबके नेच्छति  
 बहुयो १ रावा निमंजपति तदा भणति-गदि परं कर्त्तिकः मां परिवेयपति तर्हि नवरं जेमेमि रावा भणति-एवं करोमि रावा समज्जए एवं गता  
 कर्त्तिको भन्मणि-सीसि रावा भन्मणि-गैरिअं परिवेय, कर्त्तिको भणति-न वरंतिअमां पुप्पदिपपपसीति करोमि किमवति-अदि मज्झिमोस्सनिज्जं  
 अययमस्सिन्त पवइनेम वरिवेसिन् त परिवेयमायोगुठुठि जाठपति कवं तव ! पवइए कर्त्तिकस्तेव निवेदेव पवइतो वैपमसइअपरिवारो मुणिसुज्ज  
 गर्म्मिने इगरगाआदि वदिताः इगएण वरंति एवांवाः सौयर्थे कव्ये ताओ जाता, स यरिवइ तेजाभिवेदेययिवेसिअ येरावलो जाता इहा व छळं एवा  
 दिता गुरीणा ताओ भिन्मया हे सीनें कुने राओ अणि द्वी जातो एवं यायन्ति सीसोमि भिउपति तापतिः ताककयावि भिउर्बति सखः तथा बंधुमारज्जका

रुद्रविष्णुसुगतादीनि अन्यतीर्थिकपरिगृहीतानि वा (अर्हत) नैस्थानि-अर्हतप्रतिमालक्षणानि यथा भौतपरिगृहीतानि धीरभ  
 द्रमहाकालादीनि वन्धितुं वा नमस्कर्तुं वा, तत्र धन्द्वर्तन-अभिवादनं, नमस्करण-प्रणामपूर्यक प्रसन्नस्थितिभिर्गुणोत्कीर्त्तनं, को  
 दोषः स्यात् ? अन्येषां तद्भक्ताना मिथ्यास्वाधिसिरीकरणादिरिति, तथा पूर्व-आदौ अनाउत्पन्न सता अन्यतीर्थिकला  
 नेवाछसुं वा संलघु वा, तत्र सकृत् सम्भाषणमालपन पौनःपुन्येन संलपनं, को दोषः स्यात् ? ते हि तत्सतरायोगोत्कृत्याः  
 खत्वासनादिक्रियाया नियुक्ता भवन्ति, तत्प्रत्ययः कर्मबन्धः, तथा तेन वा प्रणयेन गृहागमनं कुर्युः, अथ च आयकृत्य  
 स्वजनपरिजनोऽट्टहीतसमयसारस्त्रैः सह सम्बन्ध यायादित्यादि, प्रथमालप्तेन त्यसम्भ्रमं लोकापयादभयात् कीदृशस्त्य  
 मित्यादि वाच्यमिति, तथा तेषामन्यतीर्थिकानां अघर्तन-धृतपूर्णादि पानं-प्राश्नापानादि खादिम-अपुष्पफलादि स्वादिग  
 -कक्कोलवङ्गादि दातुं वा अनुप्रदातुं वा न कल्पत इति, तत्र सकृद् दानं पुनः पुनरनुप्रदानमिति, किं सर्वथैव न कल्पत  
 इति ? न, अन्यथा राजाभियोगेनेति-राजाभियोगं मुक्त्वा बलाभियोगं मुक्त्वा देवताभियोगं मुक्त्वा गुरुनिग्रहेण-  
 गुरुनिग्रहं मुक्त्वा वृत्तिकान्तार मुक्त्वा, एतद्वृत्तं भवति-राजाभियोगादिना दददपि न धर्ममतिक्रामति ।

इह चोदाहरणानि, 'कहं रायाभियोगेण देवतो णातिचरति घम्मे ?', तत्रोदाहरणम्-वृत्तिणागरे नयरे त्रिपसन्नू राया,  
 कश्चिज्जो सेही नेगमसहस्सपणमासणिओ सावगवण्णो, एवं कालो वच्चइ, तस्य य परिवायगो मासंभासेण तमइ,

१ कर्म राजाभियोगेन दददपि चरति भर्तं वृत्तिनागरे नगरे विततइ राजा कश्चिज्जो सेही नेगमसहस्सपणमासणिओ सावगवण्णो एवं कालो

वचति, तत्र च परिजावको मासेमासेन छपवति

त संबलोगो आहति, कसिओ नाहति, ताहे से सो नेरुओ पओसमावणो छिदाणि मणति, मणया राबाए निर्म-  
 तिओ पारणए नेन्ठति, बहुसो २ राया निर्मतेइ ताहे मणइ-जइ नयरं मम कसिओ परिवेसेइ तो नवरं जेमेसि,  
 राया मणइ-एयं करेमि, राया समणूसोकसियस्स घरं गओ, कसिओ मणइ-संविस्सइ, राया मणति-जेरुयस्स परिवेसेहि,  
 कसिओ मणति-न सइइ अम्हं, तुम्ह विसययासिचि करेमि, विंतेइ-जइ पबइओ होओ न एवं मवंतं, पक्का जेण परि  
 वेसियं, सो परिवेसेज्जंतो अंगुलिं चाळेसि, किइ से !, पक्का कसिओ तेण निदेयण पबइओ नेगमसइस्सपरिचारो  
 मुणिसुययसमीये, धारसगणि पहिओ, धारस परिसाणि परियाओ, सोहम्मे कव्ये सको जाओ, सो परिबायओ तेणा  
 भिभ्रणेण आमिओनिओ परायणो जाओ, वेस्ठिय सक्कं पसाओ गहिउ सको विवगो, दो सीसाणि कयाणि, सक्कवि  
 दो जाया, एवं जापइयाणि सीसाणि यिठपसि ताधतियाणि सको विववति सक्कयाणि, ताहे नासिउमारओ,

१ नं मरुओफ नाद्रियेठे कार्तिओ नाद्रियेठे दरा ठसे त मीरिअ प्रदेपमापइअडिअसि मायंपसि सम्बरा राका निमवित्तः पसमवे नेच्छति  
 बहुसो २ राका निमववति तदा मयणि-पणि परं कार्तिठः मां परिवेषयति ताहिं नवरं जेमासि राका मणति-एवं करोमि राका समनुज्जः कर्त्तव्यं गृहं तत्ता  
 कार्तिओ मयणि मीरिअ राका मयणि-मीरिअं परिवेषय कार्तिओ मयति-न वरुतेउज्जालं, जुप्पइइवववतीति करोमि किमवति-अदि प्रवित्तोऽन्वविज्जं  
 नेगममरिप्पवइ वज्जादेव परिवेसिन् त परिवेपमागोऽनुत्तिं वाळपति कवं ठव ! पक्का कर्त्तव्यस्तेण निर्देव पबइओ नेगमसइअपरिचारो मुणिसुवठ  
 मयंने दारणायाणि पणिः दारणा वरुमि वर्यावः मौपमं कये सको जाठ, त परिबाइ तेवामिओवाधिवीसिठ देरावओ जाठः दइा व कवं पका-  
 यित्तं गृणिअ गको निळमः दे सीनें हुने रायी अदि दो जाठो एवं पावमि धीरपसि विजुवति तावमिअ सक्कयाणि विजुवति सक्कः तदा बंधुमारव्वा

छम्भंगा, एते य धूलगमेहुणपढमघरगममुचमाणेण लब्धा, विवियादिसुवि पचेयं छ २, मेळिया छसीसं, एते प  
चादाणपढमघरममुचमाणेण लब्धा, विवियादिसुवि घरेसु पचेय २ छसीसं २, मेळिया दो सया सोळसुसरा,  
यायपढमघरगममुचमाणेण लब्धा, विवियादिसुवि पचेयं दो दो सया सोळसुसरा, सवेधि मिलिया पुवाउस  
एए य मूलाओ आरम्भ सवेधि दो सहस्ता पचसया बाणजया, दुवालससया छणजया ३, मिलिया छसहस्ता  
असीया, ततय यदुक्क प्राक् 'चरसंजोगाण पुण चरसंजिसयाणऽसीयाणि' छि, इयाणि पंचगधारणिआ, ततय धूलग  
धूलगमुसावार्य धूलगादसादाण धूलगमेहुण धूलगपरिगाह च पच्चक्खाइ सुविहंसिचिहेण १ पाणातिवायावि २ ३ ४

The first of these is the fact that the majority of the population of the United States is now living in urban areas. This is a result of the process of urbanization, which has been going on since the beginning of the industrial revolution. The second factor is the fact that the majority of the population of the United States is now living in the middle class. This is a result of the process of social mobility, which has been going on since the beginning of the industrial revolution. The third factor is the fact that the majority of the population of the United States is now living in the middle class. This is a result of the process of social mobility, which has been going on since the beginning of the industrial revolution.

नाथा आबिताडयेनेत्यविदितमानुषशक्तिर्क, प्रकृते प्रस्तुभा, एत्र यस्मात् आयक्यर्मेत्य तावत् मूढं क्षम्यपत्य तस्मात् एवगते मेव दिपिमभिधानुक्तम आह—

तत्तत्र समनोबासओ पुण्यामेव मिच्छताओ पटिक्कमइ, समत्त सुवसपत्ताइ, नो से कप्पइ अन्नप्पमिं  
अन्नउत्तिपण या अन्नउत्तिपअवेयपाणि या अन्नउत्तिपपरिगगिपाणि अरिइतथेइयाणि वा वंविताप वा नमं  
सिराण या पुड्ढिय अणात्तराण आलुधिसाप या संलुधिसाप वा तेसिं असणं वा पाणं वा लाइम वा  
साइम वा दाउ या अनुत्पयाउ या, नन्नत्थ रायाभिओगेणं गणाभिओगेण पलाभिओगेण वंययाभिओगेणं  
पुरुनिग्गोहेणं यिसीकंतारेणं, से य समत्ते पत्तत्थसमत्तमोइणिथक्कम्माणुवेयणोवसमत्तपससुत्थे पत्तमत्तवे  
गाइन्निगे सुंइ आगपरिणामे पत्तरो, सम्मत्तात्त समणोयासण इमे पंच अइयारा जाणियन्वा न समाय  
रियन्वा, तजाइ-मक्का कम्मा यित्तिगिन्ना परपासइपत्ता परपासइसणवे (सुत्तम्) ॥

अम्ब व्याख्या—श्रमणानामुपासकाः श्रमणोपासकाः श्रापक इत्यर्थः, श्रमणोपासकाः 'पूर्वमेव' आदायेव श्रमणोपासको भवन् मित्यागात्—तस्याप्यश्रानरूपात् प्रतिक्रामसि—निषर्त्तते, न सन्निवृत्तिमाश्रमत्रामिम्रेतं, किं तर्हि !, तच्चिवृत्तिद्वारेण मम्यस्त—तस्याप्यश्रानरूपं उप—गामीष्येन प्रसिपद्यते, सद्यस्तथमुपसम्पन्नस्य सतः न 'से' तस्य 'कस्यते' युग्यते 'अद्यममृति' मम्यस्तप्रविविषिकाद्यादारम्य, किं न कस्यते !—प्रन्यतीर्थिकान्—घरकपरिमाजकभिर्भुमौसादीन् अन्यतीर्थिकदेवतानि—



छम्भंगा, एते य बूलगमेहुणपढमघरगममुंभमाणेण छद्दा, वितियाविसुवि पचेयं छ २, मेळिया छत्तीसं, एते य बूलगार  
त्तादाणपढमघरममुंभमाणेण छद्दा, वितियाविसुवि घरेसु पचेय २ छत्तीसं २, मेळिया दो सया सोलसुत्तरा, एते बूलगमुसा  
वायपढमघरगममुंभमाणेण छद्दा, वितियाविसुवि पचेय दो दो सया सोलसुत्तरा, सवेवि मेळिया पुवाउस सया छणउया,  
एए य मूलाओ आरम्भ सवेवि दो सहस्सा पचसया वाणउया, दुयाउससया छणउया १, मिळिया छसहस्सा वचारि सया  
असीया, सतत्त यदुक्कं प्राक्क 'वत्तसंजोगाण पुण वत्तसंजिसयाणडसीयाणि'त्ति, इयानि पंचगचारणिया, सत्य बूलगपाणाइयायं  
बूलगमुसावायं बूलगादत्तादाणं बूलगमेहुणं बूलगपरिग्गह च पच्चक्ख्वाइ बुविहंविधिहेण १ पाणातिवायाति २ १ बूलगपरि  
ग्गहं बुविहं दुविहेण २ एयं पुवक्कमेण छम्भंगा, एए बूलगमेहुणपढमघरगममुंभमाणेण छद्दा, बीयाइसुवि पचेयं २ छ ७,  
मेळिया छत्तीसं, एते य बूलगादत्तादाणपढमघरगममुंभमाणेण छद्दा, बीयाविसुवि पचेयं २ छत्तीसं २, मिळिया दो सया  
सोलसुत्तरा, एए य बूलगमुसावायपढमघरगममुंभमाणेण छद्दा, वितियाविसुवि पचेयं २ दो सया सोलसुत्तरा २, मेळिया  
पुवाउस सया छणउया, एए य बूलगपाणातिवायपढमघरगममुंभमाणेण छद्दा, वितियाविसुवि पचेयं २ दुयाउस सया  
छणउया, सवेवि मेळिया सत्तसहस्सा सत्तसया छावुत्तरा, तत्तत्त यदुक्कं प्राक्क 'सत्तवरीसयाइं छसत्तराइं तु पंचसजोए'  
एतद् भावितं, 'वत्तरगुणमधिरयमेळियाण जाणाहि सवग्गं'ति वत्तरगुणगाही एगो चेव भेओ, अधिरयसम्मदिद्दी चित्तिओ,  
एएहिं मेळियाण सवेसिं पुवमणिआण भेयाण जाणाहि सवग्गं इमं आतं, परुयणं पडुण तं पुण इमं-सोउस भेवेत्यादि

गाथा आबिताड्यं बेल्यभिहितमानुषजिकं, प्रकृतं प्रस्तुतां, एतन् यस्मात् आयक्यपरमस्य साधत् मूलं सम्यक्त्वं तस्मात् संप्रगृह्य  
मेव विधिमभिधानुकाम आह—

तत्पथ समणोवासरजो पुरुषाद्यमेव भिच्छराजो पदिकमह, समस्तं ववसंयज्जह, नो से कप्पइ अज्जप्पमिई  
अज्जउत्तिगण वा अज्जउत्तिपअदेयपाणि वा अज्जउत्तिपपरिगहियाणि अरिहतचेइयाणि वा ववित्तए वा नमं  
सित्तण वा पुट्ठिय अणात्तापूण आलयित्तण वा सलवित्तए वा तेसिं भसणं वा पाण धा ल्हाइम वा  
साइम वा दाउ वा अणुप्पयाउ वा, नत्तए रायाभिजोगेण गणाभिजोगेण बलाभिजोगेण देवयाभिजोगेण  
शुरुनिगगैणं विस्तीकृतारें, से य समसे पत्तपत्तमरा मोइणियकम्माणुवेयणोवत्तमत्तयत्तमुत्थे पत्तमत्तदे  
गाइत्तिगे सुंइ आगपरिणामे पत्तरो, सम्मत्तम्म समणोपासणं इमे पंच अइपारा जाणियव्वा न समाय  
रिगच्चा, तजावा-सका कणा यित्तिगिच्छा परपासइत्तंसा परपासइत्तयवे ( सूत्रम् ) ॥

मरु व्याख्या—धम्मणानामुपामका धम्मणोपासकः आयक इत्यर्थः, धम्मणोपासकः 'पूर्वमेव' आदावेव धम्मणोपासको  
भरन् मिथ्यारागतु-तस्यापार्थक्यज्ञानरूपात् प्रतिक्रामति-नियच्छेते, न तन्निवृत्तिभाजमत्राभिप्रेतं, किं सति !, तद्विवृत्तिद्वारेण  
गम्पस्सरे-तस्यापार्थक्यज्ञानरूपं उप-गामीष्येन प्रक्षिप्यते, सम्यक्पथमुपसम्पदस्य सतः न 'से' तस्य 'कस्यते' युस्यते 'अद्यप्रमृति'  
मम्पस्सरप्रतिगति काठादारम्य, किं न कस्यते !-अन्यतीर्थिकान्-चरकपरिप्राजकभिमुमौतादीन् अम्यतीर्थिकदेवतानि-

एते य यूलगदसादाणपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, वितियादिसुवि पत्तेयं दुयात्तस २, सवेडवि मेलिया पायसरि, एते य  
 यूलगमुसावायपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, वितियादिसु पत्तेयं वायत्तरि २, सवेपि मेलिया वत्तारि सया वत्तीसा, एय  
 यूलगमुसावाओ तिगसंओएण यूलगदसादाणेण सह चारिओ इयाणि यूलगमेहुणेण सह चारिज्ज, तस्य यूलगमुसायायं  
 यूलगमेहुणं यूलगपरिगह च पच्चकुत्ताति दुविहत्तिविहेण १ यूलगमुसावायं यूलगमेहुणं २ १ यूलगपरिगहं पुण दुविहदुविहेण  
 २ एव पुवक्कमेण छब्भंगा, एए यूलगमेहुणपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, वितियादिसुवि पत्तेयं २ छ २ इयंति, सवेडवि मेलि  
 या छत्तीसं, एते य यूलगमुसावापढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, वितियादिसुवि पत्तेयं छत्तीसं २ इयंति, सवेडवि मेलिया दो स  
 या सोलसुत्तरा, चारिओ तिगसंओएण यूलगमुसावाओ, इयाणि यूलगदसादाणादि वितिज्ज, तस्य यूलगदसादाण मेहुणे  
 परिगह च पच्चकुत्ताइ दुविहत्तिविहेण १ यूलगदसादाणं यूलगमेहुणं २ १ यूलगपरिगहं पुण दुविहदुविहेण २, एय पुपक्कमेण  
 छब्भंगा, एते य यूलगमेहुणपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, वितियादिसुवि पत्तेयं छ २, सवेडवि मेलिया छत्तीसं, एते य यूलगदसा  
 दाणपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, वितियाइसु पत्तेयं छत्तीसं २, सवेडवि मेलिया दो सया सोलसुत्तरा, एते य मूलाओ आरम्भ  
 सवेडवि अठयाला छ सया वत्तीसा अठसया सोलसुत्तरा दो सया, एए सवेडवि मेलिया  
 इगवीससयाइ सहाइ मंगाणं भवसि, ततच्च यपुक्कं प्राग् तिगसजोगाण दसण्ह भंगसया एकवीसई सहा' तदेतद् भायित, इयाणि  
 चत्तचारणिया, तस्य यूलगपाणाइवायं यूलगमुसावायं यूलगमेहुण च पच्चकुत्ताति दुविहत्तिविहेण १ पूल  
 गपाणातिवायाइ २-३ यूलगमेहुणं पुण दुविहदुविहेण २, एवं पुवक्कमेण छब्भंगा, यूलगपरिगहेणवि छ, एपपि मेलिया

पुष्पाञ्जलि, एते च पूजगपाक्षादाणपढमपरगममुच्यमाणेण छद्वा, वित्तियादिसुवि पत्तये पुष्पाञ्जलि २, सवेवि मेळिया वाव  
 सति, एते च पूजगमुसाबाबपढमपरगममुच्यमाणेण छद्वा, वित्तियादिसुवि पत्तये वावसति २, सवेवि मेळिया वचति सवा  
 बत्तीसा, एते य पूजगपाणातिथायपढमपरगममुच्यमाणेण छद्वा, वित्तियादिसुवि पत्तये वचति २ सवा बत्तीसा, सवेवि  
 मेळिया दो सहस्सा पंच सया बाणवया, इयाणि अण्णो विगप्पो-पूजगपाणाइवायं पूजगमुसाबायं पूजगमेहुणं पूजग  
 रिगाहं च पढमकृत्ताति दुविहं दुविहेण २, एवं पुण्णमेण छद्मगा, एते च पूजगमेहुणपढमपरगममुच्यमाणेण छद्वा, वित्ति-  
 यादिसु पत्तये २ छ छ सवे मेळिया छत्तीसं, एते च पूजगमुसाबायपढमपरगममुच्यमाणेण छद्वा, वित्तियादिसुवि पत्तये छत्तीसं  
 २, सवेवि मेळिया दो सया सोलसुत्तरा, एव पूजगपाणाइवायपढमपरगममुच्यमाणेण छद्वा, वित्तियादिसुवि पत्तये २ दो  
 सया सोलसुत्तरा, सवेवि मेळिया पुष्पाञ्जलि सया छद्मवया, इयाणि अण्णो विगप्पो-पूजगपाणाइवायं पूजगमेहुणं पूजग  
 पूजगमेहुण पूजगपरिगाहं च पढमकृत्ताति दुविहंतिविहेण १, पूजगपाणातिवातं पूजगादक्षादाणं पूजगमेहुणं २ १ पूजग  
 रिगाहं च पुण दुविहदुविहेण २, एवं पुण्णमेण छद्मगा, एते य पूजगमेहुणस्स पढमपरगममुच्यमाणेण छद्वा, वित्तियादिसुवि  
 छ २, मेळिया छत्तीसं, एते य पूजगादक्षादाणपढमपरगममुच्यमाणेण छद्वा, वित्तियादिसुवि पत्तये छत्तीसं २, सवेवि मेळिया  
 दो सया सोलसुत्तरा, एते य पूजगपाणाइवायपढमपरगममुच्यमाणेण छद्वा, वित्तियादिसुवि पत्तये दो दो सया सोलसुत्तरा,  
 मवेवि मेळिया पुष्पाञ्जलि सया छद्मवया, इयाणि अण्णो विगप्पो-पूजगमुसाबायं पूजगादक्षादाणं पूजगमेहुणं पूजगपरि  
 गाहं च पढमकृत्ताति दुविहंतिविहेण १ पूजगमुसाबायाति २ १ पूजगपरिगाहं पुण दुविहदुविहेण २, एवं पुण्णमेण

पते य धूलगादसादाणपढमघरगममुंचमाणेण लब्धा, वितियादिसुवि पसेयं दुवालस २, सवेडवि मेळिया पायत्तरि, पते य  
 धूलगमुसावायपढमघरगममुंचमाणेण लब्धा, वितियादिसु पसेयं वायत्तरि २, सवेवि मेळिया चत्तारि सया यत्तीसा, पय  
 धूलगमुसावाओ सिगसंजोएण धूलगादसादाणेण सह चारिओ इयाणि धूलगमेहुणेण सह चारिओ, तय धूलगमुसावायं  
 धूलगमेहुणं धूलगपरिगाहं च पच्छक्काति दुविहंसिविहेण १ धूलगमुसावायं धूलगमेहुणं २ १ धूलगपरिगाह पुण दुविहंसुविहेण  
 २ एवं पुवक्कमेण छब्भंगा, एए धूलगमेहुणपढमघरगममुंचमाणेण लब्धा, वितियादिसुवि पसेयं २ छ २ हयंति, सवेडवि मेळि-  
 या छत्तीसं, पते य धूलगमुसावापढमघरगममुंचमाणेण लब्धा, वितियादिसुवि पसेयं छत्तीसं २ हयंति, सवेडवि मेळिया दो स  
 या सोलसुत्तरा, चारिओ सिगसंजोएण धूलगमुसावाओ, इयाणि धूलगादसादाणादि वितिओ, तय धूलगादसादाणं मेहुण  
 परिगाहं च पच्छक्काइ दुविहंसिविहेण १ धूलगादसादाणं धूलगमेहुणं २ १ धूलगपरिगाहं पुण दुविहंसुविहेण २, एवं पुवक्कमेण  
 छब्भंगा, एते य धूलगमेहुणपढमघरगममुंचमाणेण लब्धा, वितियादिसुवि पसेयं छ २, सवेडवि मेळिया छत्तीसं, पते य धूलगादसा  
 दाणपढमघरगममुंचमाणेण लब्धा, वितियादिसु पसेयं छत्तीसं २, सवेडवि मेळिया दो सया सोलसुत्तरा, एते य मूलाओ आरब्भ  
 सवेडवि मूलाओ छ सया मूलीसा चत्तसया सोलसुत्तरा दो सया य मूलीसा चत्तसया सोलसुत्तरा दो सया, एए सवेडवि मेळिया  
 इगवीससयाइं सदाइं भगणं भवंति, तसय यदुक्क प्राग् सिगसंजोएण दसण भंगसया एक्कवीसइं सदा' तदेतद् भायितं, इयाणि  
 चत्तचत्तारणिया, तय धूलगपाणाइवायं धूलगमुसावायं धूलगमेहुणं च पच्छक्काति दुविहंसिविहेण १ धूल  
 गपाणातिवायाइ २ १ धूलगमेहुणं पुण दुविहंसुविहेण २, एवं पुवक्कमेण छब्भंगा, धूलगपरिगाहेणयि छ, एएयि मेळिया

अङ्गारस, एते य पूळगमुसावापदपदमपरकममुंचमाणेण लब्धा, एवं वीयाविसुवि पचेयं २ अङ्गारस २ हवन्ति, सवेवि मेळिया अहु-  
 तरे सवे, एव य पूळगपाणाइवायपदमपरकममुंचमाणेण लब्धा, एवं वीयाइसुवि पचेयं २ अहुत्तरं २ सयं हवन्ति, एव य सवेवि  
 मिळिया छ सयाणि अठयालाणि, एवं पूळगपाणातिवाओ तिगसंजोएण पूळगमुसावापण सह चारिओ, एवं मयत्तादाणेण  
 सह चारिज्जति, तस्य पूळगपाणाइवायं पूळगादत्तादानं पूळगमेहुणं च पच्चकुलाइ बुविइतिविहेण १ पूळगपाणाइवायं  
 पूळगादत्तादानं २ १ पूळगमेहुणं पुण बुविइ बुविहेण २ एव पुवकमेण छळमंगा, एवं पूळगपरिगहेणवि छ मेळिया  
 बुयालस, एते य अदत्तादानपदमपरगममुंचमाणेण लब्धा, एवं वीयाइसुवि पचेयं १ बुयालस २, सवेवि मेळिया वावचरि  
 हवन्ति, एते य पाणाइवायपदमपरकममुंचमाणेण लब्धा, एते वितियाइसुवि पचेयं वावचरि २, सवेडवि मिळिया चारि  
 सया चत्तोसा हवन्ति, एवं पूळगपाणाइवाओ तिगसंजोमेण पूळगादत्तादाणेण सह चारिओ, इयाणिं पूळमेहुणेण परिग-  
 हेण सह चारिज्जइ, तस्य पूळगपाणाइवाय पूळगमेहुणं पूळगपरिगहं २ १ पाणातिवायं मेहुणं २ २ परिगहं बुविइं बुवि  
 हेण २ एवं पुवकमेण छळमंगा, एव य पूळगमेहुणपदमपरगममुंचमाणेण लब्धा, वितियाविसुवि पचेयं २ छ छ, सवेडपि मेळिया  
 उच्छीस, एते य पूळगपाणातिवायपदमपरगममुंचमाणेण लब्धा, वितियाविसु पचेयं २ छचीसं, सवेवि मेळिया सोलसुत्तरा वो स  
 या। एवं पूळगपाणातिवाओ तिगसंजोएण मेहुणेण सह चारिओ, चारिओ य तिगसंजोएण पाणातिवाओ, इयाणिं मुसावाओ  
 धितिज्जइ, तस्य पूळगमुसावायं पूळगादत्तादानं पूळगमेहुणं च पच्चकुलाति बुविइं तिविहेण १ पूळगमुसावायं पूळगा  
 दत्तादानं २ १ पूळगमेहुण पुण बुविइ बुविहेण २ एवं पुवकमेण छळमंगा, एवं पूळगपरिगहेणवि छ, मेळिया बुयालस,

वायाइ चित्तिज्झइ-तस्य थूलगमुसावायं थूलगअदत्तादाण पच्चक्खाति दुयिहं तिविहेणं १ थूलगमुसावाय दुयिहं तिविहेण  
 अदत्तादाणं पुण दुयिहं दुयिहेण २ एवं पुबक्केण छब्भगा नायया, एव मेहुणपरिगहेसु पचेय पचेय छ २, सययि मिलिया  
 अट्टारस, एते मुसावायं पढमपरगममुचमानेण लद्धा १८, एवं भीयादिघरेसुयि पचेय २ अट्टारस २ भयन्ति, एए  
 सबेवि मेळिया अट्टुत्तरं सयति, चारिओ थूलगमुसावाओ, इयानिं थूलगादत्तादाणादि चित्तिज्झति, तस्य थूलगादत्तादाणं  
 थूलगमेहुणं वा पच्चक्खाति दुयिहं तिविहेण १, थूलगअदत्तादाणं २ ३ थूलगमेहुणं पुण दुयिहं दुयिहेण २-२ एवं पुबक्केण  
 छब्भगा नायया, एवं थूलगपरिगहेणवि छमंगा, मेळिया वारस, एए य थूलगअदत्तादाणं पढमपरममुचमानेण लद्धा, एवं  
 वितियाइसुवि पचेय छ २ इवति, एते सबेवि मेळिया वायत्तरि इवति, चारित थूलगादत्तादाणं, इयानिं थूलगमे  
 थुणादि चित्तिज्झति, तस्य थूलगमेहुण थूलगपरिगाइ च पच्चक्खाति दुयिधं तिविधेण १ थूलगमेथुणं थूलगपरिगाइ  
 पुण दुयिधं दुयिधेण २ एव पुबक्केण छब्भंगा, एते थूलगमेथुणपढमपरममुचमानेण लद्धा, एवं धीयादिसुवि पचेयं २  
 छ २ इवति, सबेवि मेळिया छत्तीसं, एते य मूलाओ आरम्भ सबेवि चोत्ताळसयं अट्टुत्तरसयं वायत्तरिं छत्तीस मेळिता  
 तिण्णि सत्ताणि सट्ठाणि इवति, ततस्स यपुक्कं प्राक् 'दुगसज्जोणाण दसण्ह तिसि सट्ठा सत्ता होति'सि तदेवदू भायित,  
 इयानिं तिगचारणीयाए थूलगपाणातिवात थूलगमुसावाय थूलगादत्तादाण पच्चक्खाति दुयिध तिविधेण १ थूलग  
 पाणातिवात थूलगमुसावाद २ ३ थूलगादत्तादाणं पुण दुयिधं दुयिधेण २ थूलगपाणातिवायं थूलगमुसावाय २ ३  
 थूलगादत्तादाण पुण दुयिहं पगविहेण ३ एवं पुबक्केण छब्भगा, एवं मेहुणपरिगाइसुयि पचेयं २ छ २, सयेवि मेळिया

अद्धारस, एते य धूलगमुसावापपढमपरकमनुचमाणेण छद्दा, एवं नीयादिदुवि पत्तेयं २ अद्धारस २ इयंति, सवेवि मेळिया अद्-  
 चरं सवं, एवं च धूलगपाणाइवायपढमपरमनुचमाणेण छद्दा, एवं धीयाइसुवि पत्तेयं २ अद्धारस २ सयं इयंति, एए य सवेवि  
 मेळिया छ सयाणि अढयाळाणि, एवं धूलगपाणासियाओ तिगसंजोएण धूलगमुसावापण सह चारिओ, एवं अदचादाणेण  
 सह चारिज्जि, तस्य धूलगपाणाइवायं धूलगादत्तादाणं धूलगमेहुणं च पच्चकुल्लाह दुविहतिविहेण १ धूलगपाणाइवायं  
 धूलगादत्तादाणं २ १ धूलगमेहुणं पुण दुयिह दुयिहेण २ एवं पुवक्कमेण छम्भगा, एवं धूलगपरिगहेणवि छ मेळिया  
 दुयाळस, एते य अदत्तादाणपढमपरगमनुचमाणेण छद्दा, एवं धीयाइसुवि पत्तेयं २ दुवाळस २, सवेवि मेळिया वावचरि  
 इयंति, एते य पाणाइवायपढमपरमनुचमाणेण छद्दा, एते विठियाइसुवि पत्तेयं वावचरि २, सवेज्जि मिळिया वचरि  
 सया वत्तीत्ता इयंति, एवं धूलगपाणाइयाओ तिगसंजोणेण धूलगादत्तादाणेण सह चारिओ, इयाणि धूलगमेहुणेण परिग-  
 हेण सह चारिज्जि, तस्य धूलगपाणाइवायं धूलगमेहुणं धूलगपरिगहं २ १ पाणासियायं मेहुणं २ ३ परिगहं दुविहं दुवि  
 हेण २ एवं पुवक्कमेण छम्भगा, एए च धूलगमेहुणपढमपरगमनुचमाणेण छद्दा, विठियादिदुवि पत्तेयं २ छ छ, सवेज्जि मेळिया  
 उत्तीस, एते य धूलगपाणातियायपढमपरगमनुचमाणेण छद्दा, विठियानिसु पत्तेयं २ उत्तीसं, सवेवि मेळिया सोळसुचरा दो स  
 या। एवं धूलगपाणासियाओ तिगसंजोएण मेहुणेण सह चारिओ, चारिओ य तिगसंजोएण पाणासियाओ, इयाणि मुसावाओ  
 धितिज्जि, तस्य धूलगमुसावायं धूलगादत्तादाणं धूलगमेहुणं च पच्चकुल्लाहि दुविहं तिधिहेण १ धूलगमुसावायं धूलगा  
 दत्तादाण २ १ धूलगमेहुण पुण दुयिहं दुयिहेण २ एवं पुवक्कमेण छम्भगा, एवं धूलगपरिगहेणवि छ, मेळिया पुवाळस,



सय ॥ ६ ॥ अहं बभूव्यप चैव पञ्च पञ्चगादिसंज्ञोगदुवारेण पभूयतरा मेवा निवसिर्ज्जसि, सत्रेयमेकादिसंयोगपरिमाणमवर्द्धनपराऽ-  
न्यकर्तृन्नी गाथा ॥

पचण्हमणुयथाण इकानुगतिगचत्तक्कपणएहिं । पचगवसदसपणइक्को य संजोग कायख्या ॥ १ ॥  
एतीए थक्खानं—पंचण्हमणुयथाणं पुत्तमणियाणं 'एक्कगदुगसिगचत्तक्कपणएहिं' चित्तिज्जमाणाण 'पंचगदसदसपणगए  
क्को य संज्ञोग जातवा' एक्केण चित्तिज्जमाणाणं पंच संज्ञोगा, कहं १, पचसु घरएसु एगेण पंचेव भवन्ति, दुगेण चित्तिज्ज  
माणाणं दस चेव, कहं १, पठमबीयघरेण एक्को १ पठमततियघरेण २ पठमचत्तयघरेण ३ पठमपंचमघरेण ४ चित्तियततिय  
घरेण ५ बीयचत्तयघरेण ६ बीयपंचमघरेण सप्तमो ७ तत्तियचत्तयघरेण ८ तत्तियपंचमघरेण ९ चत्तयपंचमघरेण १० ॥  
तिगेण चित्तिज्जमाणाणं दस चेव, कहं १, पठमवियततियघरेण एक्को १ पठमचित्तियचत्तयघरेण २ पठमचित्तियपंचमघरेण  
३ पठमतर्इयचत्तयघरेण ४ पठमततियपंचमघरेण ५ पठमचत्तयपंचमघरेण ६ चित्तियततियचत्तयघरेण ७ चित्तियततिय  
पंचमघरेण ८ चित्तियचत्तयपंचमघरेण ९ तत्तियचत्तयपंचमघरेण १० । चत्तक्केण चित्तिज्जमाणाणं पंच इयति, कहं १, पठमधि  
त्तियततियचत्तयघरेण एक्को पठमचित्तियततियपंचमघरेण २ पठमचित्तियचत्तयपंचमघरेण ३ पठमततियचत्तयपंचमघरेण  
४ चित्तियततियचत्तयपंचमघरेण ५, पंचगेण चित्तिज्जमाणाण एगो चेव भवसिप्पिगाथार्यः ॥ १ ॥ एत्थ य एक्केण य  
जे पच संज्ञोगा दुगेण जे दस इत्यादि, एएसिं चारणीयापत्रोगेण आगयफुलगाहाओ तिज्जि—

वयमिक्कासजोगाण भुति पंचण्ह तीसई भगा । दुगसंज्ञोगाण वसण्ह तिमि सट्ठा सया भुति ॥ १ ॥

संजोगाण वसण्ण मंगसयं इक्खीसरे सद्दा । चरसंजोगाण पुणो चरसद्विसयाणिऽसीयाणि ॥ २ ॥  
 ससुत्तरि सपाइ उअससरां च पच संजोए । उत्तरयुण भविरयमेलिपाण जाणाहि सम्भग्ग ॥ ३ ॥  
 सोलस नेव सइत्ता अट्टसया नेव होति अट्टहिया । एसो उवासगाण वयगइणविही समासेणं ॥ ४ ॥ (प्र०)  
 व्याख्या—एतावत्तत्रोऽप्ययकृताः सोपयोगा इत्युपम्यस्ताः, एतासि भाषणाविही इमा—सत्र तावदिय स्वापना,

| प्रा० नृ० | अ० मी० | प०  |
|-----------|--------|-----|
| २।३       | २।३    | २।३ |
| २।२       | २।२    | २।२ |
| २।१       | २।१    | २।१ |
| २।३       | २।३    | २।३ |
| २।२       | २।२    | २।२ |
| २।१       | २।१    | २।१ |

बूलगपाणातिपासं पच्चकुत्ताइ बुविहं तिविहेण १ बुविहं बुविहेणं २ बुविहं एक्खविहेणं ३ एग-  
 पिहं तियिहेणं ४ एगविहं बुविहेण ५ एगविहं एगविहेण ६ एवं बूलगमुसावायअवचाइणा  
 मेहुणपरिग्गहेसु, एक्केके छम्भेदा, एए सपेयि मिलिया सीसं हव्वसिंति, सवच्च ववुक्कं प्राक् 'वय  
 एक्कगसजोगाण होती पच्चण्ह सीसई भंग'सि तच्च भावितं, इयाणि दुगचारणिआ—बूलगपाणाइ  
 यायं बूलगमुसापायं पच्चकुत्तासि बुविहंतिविहेण १ बूलगपाणाइवायं बुविहंतिविहेण बूलगमुसा  
 पाय पुण बुविहं बुविहेण २ बूलगपाणाइवाय २ १ बूलगमुसावायं पुण बुविहं एगविहेण ३  
 बूलगपाणाइवाय ३ १ बूलगमुसावायं पुण एगविहंतिविहेण ४ बूलगपाणाइवायं २ १ बूलगमु-

सापायं पुण एगविहं बुविहेण ५ बूलगपाणातिपाय २ १ बूलगमुसावायं पुण एगविहंएगविहेण ६, एवं बूलगअवचावा  
 गमेहुणपरिग्गहेसु एक्केके छम्भेगा, सपेयि मिलिया चउपीसं, एए य बूलगपाणाइवाय पढमभरगममुच्चमाणेण उच्चा, एवं विवि  
 यादिपरएमु पसेयं चउपीस हव्वसिंति, एए य सपेयि मिलिया चोयासं सयं, चालिओ बूलगपाणाइवाओ, इयाणि बूलगमुसा-

સય ॥ ૧ ॥ અહ્યા અનુલ્લપ ચેવ પશુષ પક્ષગાદિસંજોગદુષારેણ પમ્યતરા મેઘા નિર્વસિઞ્ચંતિ, તત્રેયમેકાદિસંજોગપરિમાખમશ્વસનપરા-  
ન્યકર્તૃકી ગાથા ॥

પચળહમણુવયાણ ઇક્ષગદુગતિગચ્ચત્કપણપર્હિ । પચગવસદસપણફક્કો ય સજોગ કાયબ્વા ॥ ૧ ॥  
પતીપ વક્ત્સાણં-પંચળહમણુવયાણં પુવમણિયાણં 'પક્ષગધુગસિગચ્ચત્કપણપર્હિ' ચિતિજ્ઞમાણાણં 'પંચગદસદસપણગ  
ક્કો ય સંજોગ ણાતથા' એક્કેણ ચિતિજ્ઞમાણાણં પંચ સંજોગા, કહં !, પચસુ ઘરપસુ એગેણ પંચેવ મવન્તિ, દુગણ ચિતિજ્ઞ  
માણાણં દસ ચેવ, કહં !, પઢમવીયધરેણ એકો ૧ પઢમતતિયધરેણ ૨ પઢમચત્થધરેણ ૩ પઢમપંચમધરેણ ૪ વિતિયતતિય  
ધરેણ ૫ વીયચત્થધરેણ ૬ વીયપંચમધરેણ સત્તમો ૭ તતિયચત્થધરેણ ૮ તતિયપચમધરેણ ૯ ચત્થપંચમધરેણ ૧૦ ॥  
તિગેણ ચિતિજ્ઞમાણાણં દસ ચેવ, કહં !, પઢમવિયતતિયધરેણ એકો ૧ પઢમચિતિયચત્થધરેણ ૨ પઢમચિતિયપંચમધરેણ  
૩ પઢમસર્થચત્થધરેણ ૪ પઢમતતિયપંચમધરેણ ૫ પઢમચત્થધરેણ ૬ વિતિયતતિયચત્થધરેણ ૭ વિતિયતતિય  
પચમધરેણ ૮ વિતિયચ્ચત્થધરેણ ૯ તતિયચત્થધરેણ ૧૦ । ચત્કેણ ચિતિજ્ઞમાણાણં પંચ હવંતિ, કહં !, પઢમપિ  
તિયતતિયચ્ચત્થધરેણ એકો પઢમચિતિયતતિયપંચમધરેણ ૨ પઢમચિતિયચત્થધરેણ ૩ પઢમતતિયચત્થધરેણ ૪ પચમધરેણ  
૫ ચિતિયતતિયચ્ચત્થધરેણ ૬, પંચગેણ ચિતિજ્ઞમાણાણ પગો ચેવ મયતિચિગાથાર્થઃ ॥ ૧ ॥ એથ ય પક્કોગ ય  
જે પચ સજોગા દુગેણ જે દસ ઇત્યાદિ, પર્યસિં ધારણીયાપમોગેણ આગયફળગાહાજો સિળિ—

વયમિક્કગસજોગાણ હુતિ પંચળહ તીસરૂ મંગા । દુગસજોગાણ વસળહ તિભિ સદ્દા સયા મુતિ ॥ ૧ ॥

मर्जेनं बायाए काएण च', एते सत्त भंगा करणेनं, एवं कारणेणवि एए वेव सत्त भंगा १४, एवं अणुमोयणेणवि सत्त  
 भंगा २१, अहवा न करेइ न कारवेइ मणसा १ अहवा न करेइ न कारवेइ वयसा, २ अहवा न करेइ न कारवेइ काएण  
 सा ३ अहवा न करेइ न कारवेइ मणसाययसा ५ अहवा न करेइ न कारवेइ मणसा कायेणं ५ अहवा न करेइ न कारवेइ वयसा काय-  
 सत्त भंगा ७, एय काराएणाणुमोयणेहियि सत्त भंगा ७, एते करणकारावणेहिं सत्त भंगा ७ एवं करणाणुमोयणेहिवि  
 भंगाणं एगूणपण्णास विगप्पा भयन्ति, एतय इमो एगूणपञ्चासइमो विगप्पो-पाणाठिकायं न करेइ न कारवेइ करेतेवि  
 अन्नं न समणुजाणइ मणेणं यायाए काएणंति, एस अंतिमविगप्पो पढिमापठिवत्तस्स समणोवासगत्तस्स तिविविहिविहेणं  
 भवतीति, एय ताप भतीतकाळे पढिकर्मत्तस्स एगूणपण्णा भयन्ति, एवं एउपणेवि काळे संवरेत्तस्स एगूणपण्णा भवन्ति, एवं  
 अणागएवि काळे पद्याकृतायत्तरम एगूणपण्णासा भवन्ति, एवमेवा एगूणपण्णासा विणि सीयाळं सावयसयं भवति-

सीयाळं भंगसयं जस्स विसोदीहं दोति तवत्तं । सो एतु पञ्चकूलाणे कुसळो सेसा अकुसळा उ ॥ १ ॥ एवं पुन पंढरि अणुवरहि  
 गुन्निव सत्तसयाणि पञ्चसीसाणि साग्गयं भवन्ति,--सीयाळं भंगसयं विहिपयइसाणभेक्परियाणं । भोगपियक्कवपियकाउत्तिपयं गुणेवग  
 ॥ २ ॥ सीयाळं भंगसय पञ्चकूलाणि जस्स उवत्तं । सो एतु पञ्चकूलाणे कुसळो सेसा अकुसळा य ॥ ३ ॥ सीयाळं भंगसयं गिरि-  
 पयक्क्याभेक्परिमात्तं । उं य निहिणा इयेणं भावेयम्भं पयणेणं ॥ ४ ॥ विणि तिया विणि दुवा विभिक्किवा य हुंसि चोणेसुं । सिदुइ  
 सिदुइ चिदुपुगं चेव करजाई ॥ ५ ॥ एये तळ्मइ एगो सेसेसु एएसु सिय सिय सियति । चो नव तिव दो नवगा तिसुमिय सीयाळं भंग

णः सप्तमः, इह च सम्पूर्णसम्पूर्णोत्तरगुणमेवमनाहत्य सामान्येनैकएव भेदो विधक्षितः, 'अधिरयभो'सि भयि  
 रतस्त्रैवाष्टम इति अधिरतसम्यग्गृह्णितिरिति गायार्थः ॥ १५५९ ॥ इत्यमेते अष्टौ भेदाः प्रदर्शिताः, एत एव विभग्यमाना  
 द्वात्रिंशद् भवन्ति, कथमित्यत आह—'पणग'सि पञ्चानुव्रतानि समुदितान्येव गृह्णाति कश्चित्, तत्रोक्तक्षणाः पञ्च भेदा  
 भवन्ति, 'चतुर्ल' च'सि तथाऽनुव्रतचतुष्टय गृह्णात्यपरस्त्रापि पदेय, 'तिग'न्ति एयमनुव्रतत्रय गृह्णात्यन्यस्तत्रापि पदेय,  
 'तुगं' च'सि इत्थमनुव्रतद्वय गृह्णाति, तत्रापि पदेव, 'एक' व'सि तथाऽन्य एकमेयानुव्रतं गृह्णाति, तत्रापि पद्वय, 'गिण्दइ  
 वयाइ'सि इत्थमनेकधा गृह्णाति व्रतानि, विचित्रत्वात् भावकचर्मस्य, एवमेते पञ्च पद्वकास्त्रिंशद् भवन्ति, प्रतिपन्नोत्तर  
 गुणेन सौकत्रिंशत्, तथा चाह—'अहवावि (य) उत्तरगुणे'सि अथवोत्तरगुणान्—गुणप्रसादिलक्षणान् गृह्णाति, समुदितान्यप्य  
 गृह्णाति, केवलसम्यग्दर्शनिना सह द्वात्रिंशद् भवन्ति, तथा चाह—'अहवावि न गिण्दही किंचि'सि अथवा न गृह्णाति  
 तानप्युत्तरगुणानिति, केवल सम्यग्गृह्णितरेवेति गायार्थः ॥ १५६० ॥ इह पुनर्मूलगुणोत्तरगुणानामाधारः सम्यक्त्वं दर्शयते  
 तथा चाह—'निस्तकियनिकलिय'गाहा, शङ्कादित्स्वरूपमुदाहरणद्वारेणोपरिष्टाद् वक्ष्यामः 'धीरवचने' महाधीर्यपञ्चमानस्यामि-  
 प्रवचने 'एते' अनन्तरोक्ता द्वात्रिंशदुपासकाः—आवका भणिताः—वक्ता इति गायार्थः ॥ १५६१ ॥ एत चेव वक्ताविविधा  
 करणसियजोगतियकालतिपणं विसेसेज्जमाणा सीयाल समणोधासगसंभं भवति, कइ ? पाणाइयायं न करोति मणेणं, अधया  
 पाणातिपात न करेइ यायाए, अइया पाणातिपात न करेइ काएणं इ, अथवा पाणातिपातं न करोति मणजं यायाए य, अधया  
 पाणातिपातं न करेति मणेण काएण य, अथवा पाणातिपातं न करेति यायाए काएण य इ, अथवा पाणातिपातं न करोति

मर्जेनं वाचाप काएण वं, एते सत्त भंगा करणेनं, एवं कारवणेणवि एए वेव सत्त भंगा १४, एवं अणुमोयणेणवि सत्त भंगा २१, अहवा न करेइ न कारवेइ मणसा १ अहवा न करेइ न कारवाइ वयसा, २ अहवा न करेइ न कारवेइ मणसा ५ अहवा न करेइ न कारवेइ मणसा कायेणं ५ अहवा न करेइ न कारवेइ वयसा काय- सत्त भंगा ७, एय कारायणानुमोयणेहिवि सत्त भंगा ७, एते करणकारावणेहिं सत्त भंगा ७ एवं करणानुमोयणेहिवि भंगाणं एगूणपण्णासं विगप्पा भवन्ति, एय इमो एगूणपन्नासइमो विगप्पो-याणातिवाचं न करेइ न कारवेइ सत्त सत्त अत्रं न समशुजाणइ मणेणं यायाए काएणति, एय अंतिमविगप्पो पडिमापडिवच्चत्त समणोवासगत्तस विविहंतिविहणे भवतीति, एय ताय अतीतफाळे पडिफर्मंतत्त एगूणपण्णा भवन्ति, एवं पडुपण्णेवि फाळे सवरेतत्त एगूणपण्णा भवन्ति, एवं अणागएवि फाळे पचकूयायसरम एगूणपन्नासा भवन्ति, एवमेवा एगूणपण्णासा तिण्णि सीयाळं सावकसवं भवति—

सीयानं भंगसवं जत्त पिरोदीएँ हेति उवउदं । सो एतु पचकूलाणे कुत्तओ सेसा अकुत्तओ न ॥ १ ॥ एवं पुव पंचहिं अणुअएहि गुणिवं छत्तसपावि पचसीसावि सावयाणं भवन्ति,—सीयाळं भंगसवं गिहियचकूलाणमेवपरिमाणं । योगतियकरणविककाउत्तिपुवं गुणेषमं ॥ २ ॥ सीयाळं भंगसय पचकूलाणवि जत्त उवउदं । सो सत्त पचकूलाणे कुत्तओ सेसा अकुत्तओ य ॥ ३ ॥ सीयाळं भंगसवं गिहियचकूलाणमेवपरिमाणं । तं य निहिणा इमेणं मावेयम्वं पपरेणं ॥ ४ ॥ तिथि तिवा विज्जि दुया विविचिक्का य हुंति योगेसु । सिदुइवं विदुइवं विदुणं येव इरणाई ॥ ५ ॥ पदमे लम्भइ एगो सेसेसु पपमु तिय तिय विपति । यो भव तिप हो नवणा विपति य नीणा

व्याख्या—तन्नाम्नुपेतसम्यक्त्यः प्रतिपक्षानुव्रतोऽपि प्रसिद्धिस्तं यतिभ्यः सकाशात् साधूनाभगारिणो च सामाधारी  
 शृणोतीति श्रायक इति, उक्तं च—“यो ब्राम्ह्युपेतसम्यक्त्वो, यतिभ्यः प्रत्यहं कथाम् । शृणोति धर्मसन्ध्यामसौ श्रायक  
 सच्यते ॥ १ ॥” आश्रयकाणां धर्मः २ तस्य विधिस्त वक्ष्ये—अभिधास्ये, किंभूतं ?—‘धीर्युरुपप्रज्ञः’ महासत्यमहायुधि  
 तीर्थकरगणधरप्रकृतिमित्यर्थः, ये चरित्या सुविहिता गृहिणोऽपि सुखान्यैहिकामुष्मिकाणि प्राप्तुमन्तीति गायार्थः ॥ १५५॥  
 तत्र—‘सामिगहा य निरमिगहा य’ गाहा, अमिगृह्यन्त इत्यभिग्रहाः—प्रतिज्ञाविशेषा सह अभिग्रहैर्धत्तन्त इति सामिग्रहाः,  
 ते पुनरनेकमेवा भवन्ति, तथाहि—दर्शनपूर्वकं देशमूलगुणोत्तरगुणेषु सर्वेष्वेकस्मिन् (स्मिन्) या भवन्त्येव तेषामभिग्रहः,  
 निर्गता—अपेसा अभिग्रहा येभ्यस्ते निरभिग्रहा, ते च केषलसम्यग्दर्शनिन एव, यथा कृष्णसत्यकिश्रेणिनादर,  
 इत्थं ओधेन—सामान्येन आवका द्विधा भवन्ति, ते पुनर्द्विधा अपि विमथ्यमाना अभिग्रहप्रहणविशेषेण निरुप्यमाणा  
 अद्विधा भवन्ति ज्ञातव्या इति गायार्थः ॥ १५५७॥ तत्र यथाऽद्विधा भवन्ति तथोपदर्शयन्नाह—‘दुषिहतिविहण’ गाहा, इदं  
 योऽसौ कञ्चनाभिग्रहं गृह्णाति स द्वेव—‘द्विविध’मिति कृतकारितं ‘त्रिविधेने’ति मनसा धाचा कायेनेति, एतदुक्तं भवति—स्पृष्ट  
 प्राणासिपातं न करोत्यात्मना न कारयत्यन्यैर्मनसा वक्षसा कायेनेति प्रथमः, अस्यानुमतिरतिप्रतिपिद्धा, अपत्यादिपरिग्रह  
 सद्रूभावात्, तद्व्यापृतिकरणे च तस्यानुमतिप्रसङ्गात्, इतरथा परिग्रहापरिग्रहयोरविशेषेण प्रमज्जिताप्रजितयोरभे  
 दापसेरिति भावना, अत्राह—ननु भगवत्यामागमे त्रिविधं त्रिविधेनेत्यपि प्रस्थाप्यमानमुक्तमगारिणः, तच्च सुतोषस्यादन  
 वक्ष्यमेव, तद्विह कस्मात्तोक्तं निर्युक्तिकारेणेति ?, वक्ष्यते, तस्य विशेषविषयत्वात्, तथाहि—किञ्च यः प्रविज्जिउरेय प्रतिमां

प्रतिपद्यते पुत्रादिसम्प्रतिपादनाय स एव त्रिविधं त्रिविधेनेति करोति, तथा विशेष्यं वा किञ्चिद् वस्तु स्वयम्भूरमणम-  
 त्त्वाधिकं तथा स्पृष्टप्राणातिपादाधिकं चेत्त्यादि, न तु सकलसावयवव्यापारविरमणमधिकृत्येति, ननु च नियुक्तिकारेण  
 स्पृष्टप्राणातिपादादावपि त्रिविधं त्रिविधेनेति नोक्तो विकल्पः, 'धीरवयवर्णमि एव वतीस सावया मभिया' इति वचनाद  
 न्यया पुनरधिकाः स्युरिति !, अत्रोच्यते, सत्यमेतत्, किं तु बाहुस्यपक्षमेवाङ्गीकृत्य तिर्युक्तिकारेणाभ्यधाति, यत् पुना  
 कचिदवयवस्यापि दोषे कदाचिदवयव समाचर्यते न सुषु समाचार्यनुपाति तत्तोरुक्तं, बाहुस्येन तु द्विविधं त्रिविधेनेत्यादिभिरेव  
 न इभिविक्तल्यैः सर्वस्यागारिणः सर्वमेव प्रत्याख्यानं भवतीति न कश्चिद् दोष इत्यलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुतम्, 'दुविहं  
 त्रिविधेन चित्तियमो होति'सि 'द्विविध' मिति स्पृष्टप्राणातिपादं न करोति न कारयति 'द्विविधेने'ति मनसा वाचा,  
 यद्वा मनसा कायेन, यद्वा वाचा कायेन, इह च प्रधानोपसर्जनभावविषयया भाषार्थोऽवसेयः, तत्र यदा मनसा वाचा  
 न करोति न कारयति तदा मनसेयाभिसन्निपरहित एव वाचापि हिंसकमनुवसेय कायेनैव दुर्बेष्टितादिना करोत्यसङ्गि  
 यत्, यदा तु मनसा कायेन च न करोति न कारयति तदा मनसाभिसन्निपरहित एव कायेन च दुर्बेष्टितादि परिहरणं  
 प्रनाभोगाद्वाचैव हिंसकं प्रते, यदा तु वाचा कायेन च न करोति न कारयति तदा मनसेयामिसन्निपरहितं करो  
 तीति, अनुमतिस्तु त्रिभिरपि मर्यत्रेयास्तीति भायना, एवं शेषयिकत्वा अपि मावनीया इति, 'दुविहं एगविहेण'ति  
 द्विविधमेकत्रिधेन, 'एकविहं चय त्रिविहेण'ति एकविधं चैव त्रिविधेनेति भाषार्थः ॥ १५५८ ॥ 'एगविहं दुविहेण'ति  
 एकविधं द्विविधेन 'एकविहेण छट्ठमो होइ' एकविधमेकविधेन षष्ठो भवति भेदः, 'छट्ठगुण सचमओ'ति प्रतिपक्षोचरगु



व्याख्या—तत्राम्युपेतसम्यक्स्यः प्रतिपन्नाणुप्रतोऽपि प्रतिविषयं यसिभ्यः सकाशात् साधूनामगारिणा च सामाचारी  
 शृणोतीति श्रावक इति, उक्तं च—“यो ब्राम्युपेतसम्यक्स्यो, यसिभ्यः प्रत्यहं कथाम् । शृणोति धर्मसम्प्रदायमसौ श्रावक  
 उच्यते ॥ १ ॥” श्रावकाणां धर्मः २ तस्य विधित्त वक्ष्ये—अभिधास्ये, किंमूर्तं ?—“धीरपुरुषप्रज्ञस” महासत्यमहाबुद्धि  
 तीर्थकरगणधरप्रकपितमित्यर्थः, यं चरित्वा सुविहिता गृहिणोऽपि सुखान्यैहिकामुष्मिकाणि प्राप्नुयन्तीति गाथार्थः ॥ १५५॥  
 तत्र—‘सामिगहा य निरभिगहा य’ गाहा, अभिगृह्णन्स इत्यभिग्रहाः—प्रतिज्ञाविशेषाः सह अभिग्रहैर्वर्तन्त इति सामिग्रहाः,  
 ते पुनरनेकमेवा भवन्ति, तथाहि—दर्शनपूर्वक देशमूलगुणोत्तरगुणेषु सर्वेव्येकस्मिन् (स्मिन्) वा भवन्त्येव तपामभिग्रहाः,  
 निर्गता—अपेता अभिग्रहा येभ्यस्ते निरभिग्रहाः, ते च केवलसम्यग्दर्शनिन एव, यथा कृष्णसत्यकिश्रेणिकावय,  
 इत्थ ओषेन—सामान्येन आवका द्विधा भवन्ति, ते पुनर्द्विविधा अपि विभज्यमाना अभिग्रहप्रहणविशेषेण निरुप्यमाणा  
 अष्टविधा भवन्ति ज्ञातव्या इति गाथार्थः ॥ १५५॥ तत्र यथाऽष्टविधा भवन्ति तथोपदर्शयन्नाह—‘बुद्धिहतिविशेषेण’ गाहा, इह  
 योऽसौ कञ्चनाभिग्रहं गृह्णाति स द्वेष—‘द्विविध’मिति कृतकारितं ‘त्रिविधेने’ति मनसा याचा कायेनेति, एतदुक्तं भवति—स्पृष्ट  
 प्राणातिपातं न करोत्यात्मना न कारयत्यन्यैर्मनसा वचसा कायेनेति प्रथमः, अस्यानुमतिरप्रतिपिद्धा, अपत्यादिपरिग्रह  
 सद्भावात्, तद्व्यापृतिकरणे च तस्यानुमतिप्रसङ्गात्, इतरथा परिग्रहापरिग्रहयोरविशेषेण प्रवक्षितामप्रजितयोरभे  
 दापत्तेरिति भावना, अत्राह—ननु भगवत्प्राप्त्यागमे द्विविधं त्रिविधेनेत्यपि प्रत्याख्यानमुक्तमगारिणः, इष्टा श्रुतोक्त्यादन  
 वद्यमेव, तदिह कस्मात्तत्रोक्तं निर्युक्तिकारेणेति ?, उच्यते, तस्य विशेषविषयत्वात्, तथाहि—किञ्च यः प्रविशतिपुरेय प्रतिमां

प्रतिपद्यते पुत्रादिसम्भविपाठनाथ स एव त्रिविधं त्रिविधेनेति करोति, तथा विशेष्यं वा किञ्चिद् वस्तु स्वयम्भूरमणम-  
 रत्नाविकं तथा स्मृत्प्रमाणविपाठादिकं नेत्यादि, न तु सकलसामान्यव्यापारविरमणमधिकृत्येति, ननु च त्रिर्युक्तिकारण  
 स्मृत्प्रमाणविपाठादावपि त्रिविधं त्रिविधेनेति नोक्तो विकल्पः, 'वीरवयर्णमि एव वसीसं सावया भूमिया' इति वचनाद  
 म्यथा पुनरपि काः स्युरिति १, अत्रोच्यते, सत्यमेतत्, किंतु बाहुस्यपक्षमेवाङ्गीकृत्य त्रिर्युक्तिकारेणाम्बवायि, यत् पुनः  
 कश्चिदयस्याधिशेषे कदाचिदेव समाचर्यते न सुष्ठु समाचार्यनुपति सन्नोक्तं, बाहुस्येन तु त्रिविधं त्रिविधेनेत्यादिविरव  
 पइभिर्यिकृत्यैः सर्वस्यागारिणः सर्वमेव प्रत्याख्यानं भवतीति न किञ्चिद् दोष इत्यलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुतः, 'बुविहं  
 त्रिविधेण चित्तियजो होति' चि 'द्विविध' मिति स्मृत्प्रमाणविपाठं न करोति न कारयति 'द्विविधेने'ति मनसा वाचा,  
 यद्वा मनसा कायेन, यद्वा पाचा कायेन, इह च प्रधानोपसर्जनभावविवक्षया भाषार्थोऽवसेयः, तत्र यदा मनसा वाचा  
 न करोति न कारयति तदा मनसैवाभिसन्धिपरिहित एव वाचापि हिंसकमनुवमेव कायेनैव बुद्धेष्टिवादिना करोत्यसङ्गि  
 यत्, यदा तु मनसा कायेन च न करोति न कारयति तथा मनसाभिसन्धिपरिहित एव कायेन च बुद्धेष्टिवादि परिहरयेव  
 अनाभोगाद्वाचैव हिंसकं भूते, यदा तु वाचा कायेन च न करोति न कारयति तथा मनसैवाभिसन्धिभिर्युक्त्य करो-  
 तीति, अनुमतिस्तु त्रिभिरपि सर्वत्रेयास्तीति भायना, एवं शेषविकस्या अपि भावनीया इति, 'बुविहं पृगविहेण'ति  
 द्वित्रिघमेकविधेन, 'एकविहं चेष त्रिविहेण'ति एकविध चैव त्रिविधेनेति गार्थः ॥ १५५८ ॥ 'पृगविहं बुविहेण'ति  
 एकविध द्विविधेन 'एकविधेण एतद्विधेन पद्यो भवति भेदा', 'उत्तरगुण सत्तमओ'पि प्रतिपन्नोच्यते

व्याख्या—तत्राम्युपेतसम्यक्त्वः प्रतिपन्नानुव्रतोऽपि प्रतियोग्यसंयतिम्यः सकाशात् साधुनामगारिणा च सामाधारी  
 शृणोतीति आवक इति, उक्तं च—“यो ह्यम्युपेतसम्यक्स्थो, यतिभ्याः प्रत्यहं कथाम् । शृणोति धर्मसम्बन्धमसौ श्रायक  
 उच्यते ॥ १ ॥” आवकाणां धर्मः २ तस्य विधिस्तं वक्ष्ये—अभिधास्ये, किं भूत ?—‘धीरपुठपप्रज्ञ’ महासत्त्वमहासुप्ति  
 तीर्थकरणचरकपितमित्यर्थः, यं चरिष्या सुविहिता गृहिणोऽपि सुखान्यैहिकामुष्मिकाणि प्राप्नुयन्तीति गायार्थः ॥ १५-१६ ॥  
 तत्र—‘सामिगहा य निरमिगहा य’ गाहा, अभिगृह्यन्त इत्यभिग्रहाः—प्रतिज्ञाविशेषा सह अभिग्रहैर्धर्षयन्त इति सामिग्रहाः,  
 ते पुनरनेकमेवा भवन्ति, तथाहि—धर्षनपूर्वकं वेश्मलगुणोत्तरगुणेषु सर्वेज्जैकस्मिन् (स्तिन्) वा भवन्त्येव तेरामभिग्रहाः,  
 निर्गता—अपेता अभिग्रहा येभ्यस्ते निरमिग्रहा, ते च केवलसम्यग्दर्शनेन एव, यथा कृष्णसत्यकिश्रेणिकारवग,  
 इत्थं ओर्धेन—सामान्येन आवका द्विधा भवन्ति, ते पुनर्द्विविधा अपि विभज्यमाना अभिग्रहप्रहणविशेषेण निरुप्यमाणा  
 अष्टविधा भवन्ति ज्ञातव्या इति गायार्थः ॥ १५-५७ ॥ तत्र यथाऽष्टविधा भवन्ति तथोपदर्शयन्नाह—‘दुयिहतिविहेण’ गाहा, इदं  
 योऽसौ कच्छनाभिग्रह गृह्णाति स ओष—‘द्विविध’मिति कृतकारितं ‘त्रिविधेने’ति मनसा वाचा कायेनेति, एतदुक्तं भवति—स्पृष्ट  
 प्राणासिपात न करोत्यात्मना न कारयत्यन्यैर्मनसा वक्षसा कायेनेति प्रथमः, अस्यानुमतिरप्रतिपिन्ना, अपत्यादिपरिग्रह  
 सहभावात्, तदुभ्यापृत्तिकरणे च तस्यानुमतिप्रसङ्गात्, इतरथा परिग्रहापरिग्रहयोरविशेषेण प्रमज्जिताप्रमज्जितयोरभे  
 दापचेरिति भावना, अत्राह—ननु भगवत्प्राप्त्यागमे त्रिविधं त्रिविधेनेत्यपि प्रत्याख्यानमुक्तमगारिणः, तच्च मुतोक्तत्वादन  
 वक्ष्यमेव, तदिह कस्माद्वोक्तं निर्युक्तिकारेणेति ?, उच्यते, तस्य विशेषविषयत्वात्, तथाहि—किञ्च यः प्रमिप्रक्षिपुरेय प्रतिमां

पादः, तथा 'शोकम्'—“एवेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, चक्षुःश्रोत्रासनिग्यासमथान्यदायुः । प्राणा दक्षैते मगवन्निरुद्धा, एषां  
 विबोधीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥” तेषां यथाः प्राणबधो [न] जीववधस्तस्मिन्, मृषा दहनं मृषावादस्तस्मिन्, असहभिचान  
 इत्यर्थः, ‘अदर्श’ति उपलक्षणस्याददशादाने परवस्थाहरण इत्यर्थः, ‘मेढुण’ति मेढुने मग्नसंवेदने यदुक्तं भवति, ‘परि  
 ग्राहे चेष ति परिग्रहे चेष, परेषु विषयभूतेषु धमणानां—साधूनां मुक्तगुणाः त्रिविधत्रिविधेन योगव्यकरणत्रयेण नेतव्याः—  
 १ करंतं पि अणो पाणुजाणेति, ‘त्रिविहं’ति मरणेन यावाप कृत्यं, एवमन्यत्रापि बोधनीयमिति गायार्थः ॥ २४३ ॥ इत्वं  
 तायदुपदर्शितं सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानं, अधुना देशमूलगुणप्रत्याख्यानानुसरः, तच्च आचक्षणां भवतीति कृत्वा विनेयानु  
 प्रदाय तद्वर्मेयिधिमैयोद्यतः प्रतिपियादयिपुराह—

मायपधम्मस्तयिहिं दुच्छामी धीरपुरिसपन्नसं । जं चरिऊण सुविहिया गिहिणोपि सुहाइ पावति ॥ १५५६ ॥  
 साभिग्गहाय निरमिग्गहाय ओहेण सायया द्रुयिहा । ते पुण धिमम्वमाणा अट्टविहा णुंति नायब्बा ॥ १५५७ ॥  
 द्रुयिहत्तिविटेण पदमो द्रुविह द्रुयिहेण वीयओ होइ । द्रुविह एगविहेण एगविह चैव तिविहेणं ॥ १५५८ ॥  
 एगविह द्रुयिहेण इक्किफियिहेण एट्टओ होइ । उत्तरगुण सत्तमओ अविरयओ चैव मट्टमओ ॥ १५५९ ॥  
 पणए चउणं च मिगं द्रुग च एग च गिणहइ ययाइ । अहयाडयि उत्तरगुणे अहयाडयि न गिणहइ किंवि ॥ १५६० ॥  
 निस्समकिपनिप्पगिय निहिगतिगिच्छा अमूदठ्ठिटीय । धीरययणंमि एए यत्तीसं सायया मणिया ॥ १५६१ ॥

नोऽस्तु'त्ति श्रुतप्रत्याख्यानं नोऽस्तुतप्रत्याख्यानं च 'सुर्यं बुद्धा पुषमेव नोऽपुव' श्रुतप्रत्याख्यानमपि द्विधा भवति-पूर्वश्रुतप्रत्या  
 ख्यानं नोऽपूर्वश्रुतप्रत्याख्यानं च, 'पुषस्य नवमपुर्व' पूर्वश्रुतप्रत्याख्यानं नयमं पूर्वं, 'नोऽपुषस्य इमं चव' नोऽपूर्वश्रुतप्रत्या  
 ख्यानमिदमेव-प्रत्याख्यानार्थाध्ययनमित्येतच्चोपलक्षणमन्यथातुरप्रत्याख्यानमहाप्रत्याख्यानादि पूर्वपाद्यमिति गायार्थः  
 ॥ २४१ ॥ अधुना नोऽस्तुतप्रत्याख्यानप्रतिपादनायाह-'नोऽपुषस्य पञ्चक्वर्ण' गाहा 'नोऽपुषस्य पञ्चक्वर्ण'ति श्रुतप्रत्याख्यानं न  
 भवतीति नोऽस्तुतप्रत्याख्यानं, 'मूलगुणे चैव चत्तरगुणे य' मूलगुणांश्चाधिकृत्योत्तरगुणाश्च, मूलभूता गुणाः २ ॥ एव  
 प्राणातिपातादिनिवृत्तिरूपत्वात् प्रत्याख्यानं वर्त्तते, चत्तरभूता गुणाः २ त एवाशुद्धपिण्डनिवृत्तिरूपत्वात् प्रत्या  
 ख्यानं तद्विषयं वा अनागतारि वा दशविषयमुत्तरगुणप्रत्याख्यानं, 'सर्वं देवं'ति मूलगुणप्रत्याख्यानं द्विधा-सर्वं  
 मूलगुणप्रत्याख्यानं देवमूलगुणप्रत्याख्यानं च, सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानं पञ्च महाव्रतानि, देवमूलगुणप्रत्याख्यानं  
 पञ्चाशुव्रतानि, इदं चोपलक्षणं वर्त्तते यत् चत्तरगुणप्रत्याख्यानमपि द्विधेय-सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानं देवोत्तरगुण  
 प्रत्याख्यानं च, तत्र सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानं दशविषयमनागतमसिक्कान्तमित्याशुपरिष्टाद् वक्ष्यामः, देवोत्तरगुणप्रत्या  
 ख्यानं सप्तविधं-त्रीणि गुणव्रतानि चत्वारि शिक्षाव्रतानि, एतान्यप्यूर्ध्वं वक्ष्यामः, पुनरुत्तरगुणप्रत्याख्यानमोषतो  
 द्विविधं-'इत्तरियमावकहिय च' तत्रैत्थरं-साधूनां किञ्चिदभिग्रहादिः आचक्राणां तु चत्वारि शिक्षाव्रतानि, याप  
 त्कथिकं तु नियन्त्रितं, यत् कान्तारपुर्भिक्षादिष्वपि न भज्यते, आचक्राणां तु त्रीणि गुणव्रतानीति गायार्थः  
 ॥ २४२ ॥ साम्प्रतं स्वरूपतः सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानमुपदर्शयन्नाह-'पाणियहधुसावाण' गाहा, प्राणा-इन्द्रि

अन्तं विज्वलि, तत्प साह्र अचूरेण बोद्धेता निमसिषा, तेहिं भवै गहिबं, मंसं नेच्छेति, सा य रायचूया मणइ-किं तुम्हं  
न ताव कसिबमासो पूरइ?, ते भणतिआबजीबाय कसिबसि, किं बा कह या, ताहे ते सम्मकां कहति, मंसबोसे ब परि  
कहति, पण्ठा संयुद्धा पवतिषा, पर्यं सीसे दयपच्चक्खार्ण, पण्ठा भावपच्चक्खार्ण ज्वातं, अमुना अवित्सापत्त्याख्यानं  
प्रतिपाद्यते, तत्रेद गाथार्थं, अवित्सापत्त्याख्याने 'बंभणसमणा अदिच्छ'ति हे आक्षाय हे भमण अविस्सेसि-न मे दातुमिच्छा,  
न तु नास्ति यद् भयसा याचितं, तत्तथादिदमेव यस्तुतः प्रतिपेक्षास्मिकेति प्रत्याख्यानमिति गम्यार्थः ॥ २३९ ॥ अमुना  
प्रतिपेधप्रत्याख्यानध्यायिख्यासयेद गाथायकलमाह-'अमुग विज्जउ मज्ज'गाहा व्याख्या-अमुक बृताविदीयतां महां,  
इतरस्साह-नास्ति मे तदिदं, न तु दातु नेच्छा, एव इत्यमृतो भवति प्रतिपेधः, भयमपि वस्तुतः प्रत्याख्यानमेव, प्रति  
पेध एव प्रत्याख्यानं २ । ॥ २४० ॥ इदानीं भावप्रत्याख्यानं प्रतिपाद्यते, तत्रेदं गाथार्थं 'संसपयाज थ गाहा पच्चक्खा  
गरस भायमि' दोषपदानामागमनोआगमादीनां साक्षादिदानुक्तानां प्रत्याख्यानस्य सम्बन्धिनं गाथा कायेति योगवाक्य  
नेनै, इह गाथा प्रतिषेच्यते, निश्चितिरित्यर्थः, 'गायू प्रविष्टाडिप्पस्योर्पेन्ये चे'ति धातुवचनात्, 'भावमि'ति द्वारपरा  
मर्गा, भावप्रत्याख्यान इति । तदेतद्वर्णयिमाह-'तं दुयिहं सुतणोसुय'गाहा, 'तद्' माथप्रत्याख्यानं द्विविधं-द्विप्रकारं 'सुत

१ अन्तं दीयते तत्र मायबोचूरे स्थितिमन्त्रो निमसिषा तैर्भनं गृहीतं मांसं नेच्छन्ति सा य रायचूयिता क्वसि-किं तुम्हं न ताव  
कसिबमासो पूरइ?, ते प्रमदिन-यावजीवं कसिब इति किं बा कहं बा?, तथा ते धर्मकमां क्वसन्ति मांसवोपेण परिक्खवन्ति वज्जत् संयुद्धा पवतिषा  
एवं तन्ना दृग्गजगावधानं वज्जत् आपज्जयाण्यनं ज्ञातं

मूलगुणावि यदुविहा समणाण खेव साधयाणं च । ते पुण विमल्लमाणा पंचविहा भुति नायब्बा ॥ १ ॥ ( प्र० )  
पाणिबहुमुसावाए अदस्सेहुणपरिगहे खेव । समणाणं मूलगुणा त्रिविहितिचिहेण नायब्बा ॥ २४३ ॥ ( भा० )

व्याख्या—नामप्रत्याख्यानं स्थापनाप्रत्याख्यानं 'द्वयिप'सि द्रव्यप्रत्याख्यानं, 'अदिच्छ'सि दातुमिच्छा विस्ता न  
विस्ता अदिस्ता सैव प्रत्याख्यानमविस्ताप्रत्याख्यानं 'पश्चिसेहे'सि प्रतिषेधप्रत्याख्यानं, 'एयं भाये'सि एयं भायप्रत्याख्यानं  
च, 'एए खल्लु छम्मेया पच्चक्खाणमि नायव'सि गाथाबलं निगदसिद्धमयं गाथासमुदायार्थः । अययवार्थं तु यथायसरे यस्यामः,  
तत्र नामस्यापने गतार्थे ॥ २१८ ॥ अपुना द्रव्यप्रत्याख्यानप्रतिपादनायाह—'द्वबनिमित्तं' गाथाशकलम्, अस्य व्याख्या-द्रव्य  
निमित्तं प्रत्याख्यानं वस्त्रादिद्रव्यार्थमित्यर्थः, यथा केषाञ्चित् साम्प्रतक्षपकाणां, तथा द्रव्ये प्रत्याख्यानं यथा भूम्यादौ व्यय  
स्थितः करोति, तथा द्रव्यभूतः—अनुपयुक्तः सन् यः करोति सव्यभीष्टफलरहितत्वात् द्रव्यप्रत्याख्यानमुच्यते, तुल्यदातृ  
द्रव्यस्य द्रव्यभाजां द्रव्येण द्रव्यैर्द्रव्येस्थिति, धुण्णस्वायं मार्गः, 'तत्थ रायसुय'सि अत्र कथानकं—एगस्स रण्णो पूया अण्णस्स  
रण्णो दिण्णा, सो य सत्तो, तादे सा पिठणा आणिया, घम्मं पुत्त ! करोहि सि भणिया, सा पासणीणं दाण वेति, अण्णया  
कस्सिओ घम्ममासोसि मंसं न खामिसि पच्चक्खाय, तत्थ पारणए अणेगाणि सत्तसदस्साणि मंसरथाए तयणीयाणि, तादे

पुत्तस राओ दुहिणाज्जस्यै रादे वणा स च दण्डा तदा सा पित्राणीता धर्म पुत्तिके ! कुर्विति मयिता सा पारसिद्धमो दानं इति अन्वयः  
१ एकस्य राज्ञो दुहिणाज्जस्यै रादे वणा स च दण्डा तदा सा पित्राणीता धर्म पुत्तिके ! कुर्विति मयिता सा पारसिद्धमो दानं इति अन्वयः  
कस्सिओ घम्ममास इति मंसं न खामिसि पच्चक्खाय तत्र पारसिद्धमेका सत्तसदस्सा ( पत्तयो ) मांसायमुपनीताः तदा

भवेत् दिव्यति तत्त्वं साह्यं अचूरेण बोद्धेता निर्मतिबा, तेहिं अत्तं गहिये, यंसं नेच्छति, सा च रायपूया मणाइ-किं पुनरं  
 न ताव कस्वियमासो पूरइ, ते भर्णतिअप्यब्बीबाण-कस्वित्ति, किं बा कह वा, ताहे ते धम्मकाइं कहोसि, मंसवोसे य परि  
 कहोसि, पच्छा संयुद्धा पवतिया, पवे सीसे दपपच्छत्ताणो, पच्छा भावपच्छत्ताणं जातं, अपुना अदित्ताप्रत्याख्यानं  
 प्रतियाद्यते, तत्रेदं गाथार्थं, अदित्ताप्रत्याख्याने 'वन्धनसमणा यद्विच्छ'ति हे ब्राह्मण हे भ्रमण अदित्सेति-न मे दातुमिच्छा,  
 न तु नास्ति यद् भवता याचिषं, तत्तच्छादिरसिध वस्तुतः प्रतिगोचारिमिकेति प्रत्याख्यानमिति गाथार्थः ॥ २३९ ॥ अपुना  
 प्रतिपेधप्रत्याख्यानव्याप्तिरुयासयेद गाथाशक्यमाह- 'अमुगं विज्जउ मज्झ' गाथा व्याख्या-अमुकं पृथादि दीयतां मज्झं,  
 इतरत्सगाह-नास्ति मे तद्विदि, न तु दातुं नेच्छा, एष इत्यभूतो भवति प्रतिपेधः, अयमपि वस्तुतः प्रत्याख्यानमेव, प्रति-  
 पेध एव प्रत्याख्यानं २ । ॥ २४० ॥ इदानीं मायप्रत्याख्यानं प्रतिपाद्यते, तत्रेदं गाथार्थं 'सेसपयाण य गाहा पच्छत्ता  
 णरम भायमि' शेषपदानामागमनोआगमादीनां साक्षादिदानुष्कानां प्रत्याख्यानस्य सम्बन्धिनो गाथा कार्येति योगवाक्य  
 नेपी, इह गाथा प्रतिसोच्यते, निश्चितिरित्यर्थः, 'गायु प्रतिएतिप्पस्योर्धन्ये वे'ति दातुवचनात्, 'मावमि'ति द्वारपरा  
 मर्णा, मायप्रत्याख्यान इति । तत्रेदं दर्शयिमाह- 'तं पुयिहं सुतणोसुय' गाथा, 'तद्' मायप्रत्याख्यानं द्विविधं-द्विप्रकारं 'सुत

१ अत्र दीयते अत्र मायशोभते स्वभिमानतो निवर्धिताः कैर्मनं पृथीकं मांसं नेच्छति सा च रायपूया मणाइ-किं पुनरं न ताव  
 कस्वियमासो पूरइ, मे भर्णति-यागब्बीनं कस्विक इति, किं बा कह वा १, तदा ते धर्मकयां भवन्ति मांसदोषांश्च परिकल्पयति एकाह संयुद्धा प्रवर्तिता  
 एवं नगा इत्यवगच्छानं एकाह मायप्रत्याख्यानं जात



मूलगुणावि यदुविहा समणार्णं चेव सावयाण च । ते पुण विमज्जमाणा पंचविहा भुति नायम्वा ॥ १ ॥ ( प्र० )  
पाणिवहसुसावाप अदसमेदुणपरिगारे चेव । समणार्णं मूलगुणा तिविहंतिविहेण नायम्वा ॥ २४३ ॥ ( भा० )

व्याख्या—नामप्रत्याख्यानं स्थापनाप्रत्याख्यानं 'द्विप'सि द्रव्यप्रत्याख्यानं, 'अदिच्छ'सि दातुमिच्छा दित्ता न दित्ता अदित्ता सैव प्रत्याख्यानमदित्ताप्रत्याख्यानं 'पडिसेहे'सि प्रतिषेधप्रत्याख्यानं, 'एयं भाये'सि एयं भायप्रत्याख्यानं च, 'एए खल्लु छब्भेया पच्चक्खणंमिनायव'सि गायावल निगवस्सिद्धमयं गाथासमुदायार्थं । अयययार्थं तु ययायसरे यस्यामः, तत्र नामस्थापने गतार्थे ॥ २३८ ॥ अपुना द्रव्यप्रत्याख्यानप्रतिपादनायाह—'द्वनिमिच' गाथाशकलम्, अस्य व्याख्या—द्रव्य निमिचं प्रत्याख्यानं वस्त्राविद्रव्यार्थमित्यर्थः, यथा केषाञ्चित् साम्प्रतक्षपकाणां, तथा द्रव्ये प्रत्याख्यानं यथा भूम्यादौ इय्य स्थितः करोति, तथा द्रव्यभूतः—अनुपयुक्तः सन् यः करोति तदव्यभीष्टफलरहितत्वात् द्रव्यप्रत्याख्यानमुच्यते, तुमुच्चाद् द्रव्यस्य द्रव्याणां द्रव्येण द्रव्यैर्द्रव्येच्छिति, क्षुण्णस्वायं मार्गः, 'तत्थ रापसुय'सि अत्र कथानकं—एगस्स रण्णो पूवां अण्णस्म रण्णो दिण्णा, सो य मओ, ताहे सा पिण्णा आणिया, धम्म पुत्त ! करेहि सि भणिया, सा पासणीणं दाण देति, भणया कप्पिओ धम्ममासोसि मंसं न हामिस्सि पच्चक्खाय, तत्थ पारणए अणेगाणि सत्तसहस्साणि मंसत्थाप उपणीयाणि, ताहे

१ एकल रम्भो दुविहाग्गम्भे रागे वणा स च सुल्ल, तदा सा पित्राणीता धर्मं पुत्तिके ! दुर्विति अस्मिता सा पाचिग्गम्भो दाहे इदमिति प्रत्ययः  
व्यतिष्ठो धर्मेमास इति मांसं च पापसीति प्रकटवार्त्तं तत्र पारणकेडेग्गः तत्तसहस्रता ( पणवो ) मांसार्थमुपणीताः तदा



॥ अथ प्रत्याख्यानाध्ययन ॥

व्याख्यातं कायोत्सर्गाध्ययनं, अथुना प्रत्याख्यानाध्ययनमारभ्यते, अस्य वायमभिसम्बन्धः—अनन्तराध्ययने स्खलनविशेषतोऽपराधव्रणविशेषसम्बन्धे निन्दामात्रेणाशुच्यस्यौघतः प्रायश्चित्तभेदेनापराधव्रणचिकित्सोक्ता, इह तु गुणपारणा प्रतिपाद्यते, भूयोऽपि मूलगुणोत्तरगुणधारणा कार्येति, सा च मूलगुणोत्तरगुणप्रत्याख्यानरूपेति तदद्य निरूप्यते, यद्वा कायोत्सर्गाध्ययने कायोत्सर्गकरणद्वारेण प्रागुपात्तकर्मक्षयः प्रतिपादितः, यथोक्तः—‘अह करगमो नियतई’त्यादि, ‘कावत्सर्गो जह सुद्वित्यस्ते’त्यादि, इह तु प्रत्याख्यानकरणतः कर्मक्षयोपशमक्षयञ्च फलं प्रतिपाद्यते, यस्यते च—‘इहोह यपरलोहय बुविह फलं होह पचत्ताणस्स । इहोह पचत्ताणस्स । इहोह पचत्ताणमाह परलोह ॥ १ ॥ पचत्ताणमिणं सेयिऊण भावेण क्षिणवरुहिहं । पत्ता अणंतजीवा सासयसोक्खं छुं मोक्खं ॥ २ ॥’ इत्यादि, अथवा सामायिके चारित्रमुपयनिंतं, चतुर्विंशतित्वेऽर्हतां गुणस्तुतिः, सा च दर्शनज्ञानरूपा, एवमिदं त्रितयमुक्तं, अस्य च वितयासेयनमैहिकामुष्मिकापायपरिजिहीर्षुणा गुरोर्निवेदनीय, तच्च वन्दनपूर्वकमित्यतस्तस्मिन्निर्दिष्टं, निवेद्य च भूयः शुभेभ्येय त्वातेनु प्रतीपं क्रमणमासेवनीयमिति तदपि निरूपितं, तथाऽप्यशुद्धस्य सतोऽपराधव्रणस्य चिकित्सा आलोचनदिना कायोत्सर्गपर्ययज्ञानप्रायश्चित्तभेदज्ञानान्तराध्ययन सत्ता, इह तु तथाप्यशुद्धस्य प्रत्याख्यानतो भवतीति तन्निरूप्यते, एवमनेकरूपेण सम्बन्धेनायातस्य प्रत्याख्यानाध्ययनस्य अन्तर्धान्युयोगद्वाराणि सप्रपञ्चं वक्तव्यानि, सत्र नामनिष्पत्ते निक्षेपे प्रत्याख्यानाध्ययनमिति प्रत्याख्यानमध्ययनं च, तत्र प्रत्याख्यानमधिकृत्य द्वारगायामाह निर्युक्तिकारः—

पञ्चम्यान् पञ्चम्यान् पञ्चम्यान् पञ्चम्यान् पञ्चम्यान् पञ्चम्यान् पञ्चम्यान् पञ्चम्यान् पञ्चम्यान् पञ्चम्यान्  
 अस्या व्याख्या—‘स्या प्रकथने’ इत्यस्य प्रत्याहपूर्वत्वं स्युहन्तस्य प्रत्याख्यानं भवति, तत्र प्रत्याख्यायते—निर्भिभ्यते  
 डनेन मनोवाक्यायक्रियाजातेन क्त्रिद्विनिष्टमिति प्रत्याख्यानं क्रियाक्रियावतोः कथयिदमेवात् प्रत्याख्यानक्रियैव प्रत्या  
 ख्यानं प्रत्याख्यायतेऽस्मिन् सति या प्रत्याख्यानं “कृत्यस्युदो बहुल”मिति (पा० ३-३-१२) वचसादन्वयाऽप्यदोषः  
 प्रति आख्यानं प्रत्याख्यानमित्यादौ, तथा प्रत्याख्यातीति प्रत्याख्याता—गुरुर्विनेयश्च, तथा प्रत्याख्यायत इति प्रत्या-  
 ख्येय—प्रत्याख्यानगोचरं यस्तु, वगृह्यस्वयाणामपि तुल्यकथनोन्मायनार्थ, मानुपूर्व्या—परिपाठ्या कथनीयमिति वाक्य-  
 नेषः, तथा परिपट्टं वक्तव्या, किंभूतायाः परिपट्टः कथनीयमिति, तथा कथनविधिश्च—कथनप्रकारश्च वक्तव्या, तथा  
 कृतं वैदिकामुष्मिकभेदं कथनीयं, आवायेते पट्ट भेदा इति गाथासमासार्थः। व्यासार्थं तु वयाऽवसरं भाष्यकार एव  
 पश्यति, तत्राद्यायपचक्ष्यामार्थप्रतिपिपादयिष्याह—  
 नामन्तयणादयिण भद्रन्त पट्टिसेहमेव भावे य। एण सलु णन्मेया पञ्चक्खणाणि नायक्खा ॥ २३८ ॥ (मा०)  
 इत्यनिमिषा वन्ये दप्यभूओ ग तस्य रायसुआ। आण्णायपचक्ष्याण थमणसमणान(अ) इच्छन्ति ॥ २३९ ॥ (मा०)  
 अमुग दिअउ मगम नत्थि मम त तु दोइ पट्टिसेहो। सेसपयाण यगाहा पचक्खणाणस्स मावमि ॥ २४० ॥ (मा०)  
 मं दुयिइ सुअनोमुअ सुग दूहा पुस्यमेय नोपुन्य नधमपुण्ण नोपुण्यसुयं इम वेव ॥ २४१ ॥ (मा०)  
 नोमुअपपयणाणं मूलगुणे ण उसारगुणे य। मूले सस्य वेस इत्तरियं आवकहिय च ॥ २४२ ॥ (मा०)

तन्मा उ निम्नमेण मृणिणा लवलयसुप्तसारेण ।

कावस्सगो सगो कम्मस्सयद्वाय कायम्बो ॥ १५५४ ॥ कावस्सगनिष्कुत्ती समप्ता ( ग्रन्थाम् २५३० )

व्याख्या—यथा 'करगतो' चि करपत्रं निकृन्तति—छिनत्ति विदारयति वारु—काष्ठ, किं कुर्वन् ?—आगच्छन् पुनश्च  
ब्रजभित्तिर्यथा, 'इय' एवं कृन्तन्ति सुविहिताः—साधवाः कायोत्सर्गेण हेतुभूतेन कर्माणि—ज्ञानावरणादीनि, तयाऽस्यत्राप्युक्तं  
“सुधरेण भवे गुप्तो, गुप्तीए संजमुत्तमे । संजमामो तवो होइ, तवामो होइ निज्जरा ॥ १ ॥ निज्जराएऽसुभं कम्मं, सिज्जिई  
कमसो सया । आवस्सग(गेण) सुत्तस्स, कावस्सगो विसेसमो ॥ २ ॥” इत्यादि, अयं गाथार्थः ॥ २३ अ अत्राह—किमिदमिदमित्यत  
आह 'कावस्सगो' गाहा व्याख्या—कायोत्सर्गे सुस्थितस्य सत्ता यथा भग्यन्ते अज्ञोपाङ्गानि 'इय' एवं चित्तनिरोधेन 'मिम्बन्ति'  
विदारयन्ति मुनिवराः—साधवाः अष्टविध—अष्टप्रकारं कर्मसङ्घातं—ज्ञानावरणीयादिलक्षणमिति गाथार्थः ॥ १५५१ ॥ आह—  
यदि कायोत्सर्गे सुस्थितस्य भग्यन्ते अज्ञोपाङ्गानि तदा हृष्टापकारत्वादेवात्मनेनेति !, अत्रोच्यते, सौम्य ! मैवं—'अत्रे इमं'  
गाहा व्याख्या—अन्यद्विदं शरीरं निजकर्मोपात्तमालम्बमात्रमभ्यस्तम्, अन्वोषीवोऽस्याधिष्ठाता शब्दतः स्वकृतकर्मफलो  
पमोक्षा य इदं त्यजत्येष, एवं कृतदुःखिः सन् दुःखपरिक्षेपकरं छिन्धि ममत्वं शरीरात्, किं च—यद्यनेनाप्यसारेण कश्चिदर्थः  
सम्पद्यते पारलौकिकस्ततः सुतरां यथाः कार्य इति गाथार्थः ॥ १५५२ ॥ किं चैवं विभावनीयम्—'जावइया' गाहा व्याख्या—याय

१ सुधरेण भवेऽसौ गुप्ता संकमोचमो भवेत् । संपमाचपो भवति तपसो भवति निर्मता ॥ १ ॥ निर्भवाऽऽमुदं कमे धीरते इमता मृग । जाव-

इत्येव मुक्तस्य कायोत्सर्गे विरोधकः ॥ १ ॥

अत्रैकस्मिन्प्रणीतचर्मणः किञ्चनपदः परीक्षासागमचातुर्यपक्षः युक्तानि कारीरमाजसानि संसारे-तिर्यग्गतनारका-  
 मन्त्रजगन्मनुजचक्रणे बाहि मन्वाऽनुमूलानि ततः-देव्यो दुर्विषहृतराण्यमृतोऽप्यकृतपुण्यानां नरकेषु-सीमन्तकादिषु अनुप-  
 माभि-दयमारुहितानि दुस्तानि, दुर्विषहृत्वमेतेषां श्लेषगतिस्मृत्युल्लापेष्वेति गाथार्थः ॥ १५५१ ॥ पतञ्जलं 'तन्मा'  
 गाथा, तस्मात् तु निर्ममेन-ममत्वरहितेन मुनिना-साधुना, किमुतेम-दयलवपसूत्रसारेण-विज्ञातसूत्रपरमार्थेनेत्यर्थः,  
 किं ?-कायोत्सर्गः-उक्तस्वरूपाः शमा-शुभाभ्यवसायप्रबलाः कर्मव्यार्थं ननु स्वर्गादिनिमित्तं कर्तव्य इति गाथार्थः ॥ १५५२ ॥  
 उक्तोऽनुममा, नद्या पूर्ववत् ॥ शिष्यदिवायां कायोत्सर्गोध्ययने समाप्तम् ।

कायोत्सर्गवियरणं कृत्वा यदवाप्तमिदं मया पुण्यम् । तेन बहु सर्वसत्त्वाः पञ्चविधं कायमुक्तन्तु ॥ १ ॥

॥ इत्याचार्यश्रीहरिमप्रकृतायां शिष्यदिवाक्यायामावश्यकवृत्तौ कायोत्सर्गोध्ययने समाप्तं ॥

तम्हा उ निम्ममेण सुणिणा उवल्लक्खसुससारेण ।

कावस्सग्गो सग्गो कम्मस्सयद्वाय कायब्बो ॥ १५५४ ॥ कावस्सग्गनिष्खुत्ती समत्ता ( ग्रन्थाम् २५३१ )  
 व्याख्या—यथा 'करगतो'ति करपत्रं निकृन्तति—छिनत्ति विदारयति वारु—काष्ठं, किं कुर्वन् ?—आगच्छन् पुनश्च  
 प्रज्जित्यर्थः, 'इय' एवं कृन्तयिष्येति—साधका कायोत्सर्गेण हेतुमतेन कर्माणि—ज्ञानावरणादीनि, तथाऽप्यत्राप्युक्तं  
 "संवेरेण भवे गुत्तो, गुत्तीए संजमुत्तमे । संजमाओ तवो होइ, तवाओ होइ निज्जरा ॥ १ ॥ निजराएऽशुभ कम्मं, लिज्जरे  
 कम्मसो सया । आवस्सग्ग(णेण)शुत्तस्स, कावस्सग्गो विसेसओ ॥ २ ॥" इत्यादि, अयं गाथार्थः ॥ २३७ ॥ अत्राह—किमिदमियमित्यत  
 आह 'कावस्सग्गे' गाहा व्याख्या—कायोत्सर्गे सुस्थितस्य सत्ता यथा भग्यन्ते अङ्गोपाङ्गानि 'इय' एवं चित्तनिरोधेन 'भिन्दिमि'ति  
 विदारयन्ति मुनिवरा—साधका अष्टविध—अष्टप्रकारं कर्मसङ्घातं—ज्ञानावरणीयादिलक्षणमिति गाथार्थः ॥ १५५१ ॥ आह—  
 यदि कायोत्सर्गे सुस्थितस्य भग्यन्ते अङ्गोपाङ्गानि ततश्च हृष्टापकारत्वादेवालमनेनेति !, अत्रोच्यते, सौम्य ! मैवं—'अप्रे इमे'  
 गाहा व्याख्या—अन्यदिव सरीरं निज्जकम्मोपासमाखयमात्रमाशब्दम्, अन्यो धीवोऽस्याधिष्ठाता शाश्वतः स्वकृतकर्मफलो  
 पभोक्ता य इदं त्यजत्येष, एवं कृतशुद्धिः सन् दुःखपरिक्षेपकरं छिन्दि ममत्वं शरीरात्, किं च—यद्यनेनाप्यसारेण कश्चिदर्थः  
 सम्पद्यते पारलौकिकस्ततः सुतरां यथाः कार्य इति गाथार्थः ॥ १५५२ ॥ किं चैवं विभावनीयम्—'जावइया' गाहा व्याख्या—याय

१ संवेरेण भवेइत्तो गुह्या संपमोचमो भवेए । संजमाओ भवति तपसो भवति विवर्ता ॥ १ ॥ विवर्तकमुच्यं इयं धीवते इयता सरा । काव-  
 ल्लक्खेण पुच्छक कायोत्सर्गे विसेपता ॥ २ ॥

लक्षणजहलसत्तावपणा कावत्सगो ठिठा, सुदसणस्सवि अट्ठलंकाणि कीरेतुप्पि कंचे बसी काहितो, सुवाणबक्खेण  
 पुच्छदामं कवो, मुक्को रत्ता पूइवो, ताथे मित्तवतीप पारिय । तथा 'सोवास'सि सोवासो राया, अहा नमोकारे, 'समाययमे'सि  
 कोइ विराहियसामण्णो खगो समुप्पण्णो, बहाप मारेसि साह, पहाविपा, तेण विट्ठा भागमो, इयरवि कावत्सगणे  
 ठिया, न पइवइ, पण्ण स पक्षुण उवसंतो । एतदेहिकं फळ, 'सिद्धी सगो य परलोप'सिद्धि-मोक्षः स्वर्गो-देवलोकाः  
 बहव्वात् बक्खसित्वादि च परलोके फळमिति गायार्थः ॥ १५५० ॥ आह-सिद्धिः सफलकर्मव्यादेवाप्यते, 'कूत्सकर्म-  
 क्षयान्मोक्षा' इति वचनात्, स कर्म कायोत्सर्गफलमिति !, उच्यते, कर्मव्यत्येव कायोत्सर्गफलत्वात्, परम्पराकारणत्वेव  
 जह करगमो निक्कितइ दानं इतो पुणोयि वयतो । इम कतति सुविहिया कावत्सगणे कम्माइ ॥ २३७ ॥ (भा०)  
 कावत्सगणे जह सुट्ठिगस्स भज्जति अगमंगाइ । इप मियंति सुविहिया अट्ठविह कम्मसंथाप ॥ १५५१ ॥  
 अत्र इम सरीर असो जीयुसि गय कपपुन्नी । बुक्खपरिकिलेसकरं ठिंद ममत्त सरीरामो ॥ १५५२ ॥  
 आयइया फिर बुगल्हा ससारे जे मए समणुभूया । इसो बुध्विसइतरा नरएसु अणोवमा बुक्खत्ता ॥ १५५३ ॥

१ लक्षणजहलसत्तावपणा (अवपणा) कावत्सगो ठिठा मुदसणस्सवि अट्ठलंकाणि कीरेतुप्पि कंचे बसी काहितो, सुवाणबक्खेण  
 पुच्छदामं कवो, मुक्को रत्ता पूइवो, ताथे मित्तवतीप पारिया । तथा 'सोवास'सि सोवासो राया, अहा नमोकारे, 'समाययमे'सि  
 कोइ विराहियसामण्णो खगो समुप्पण्णो, बहाप मारेसि साह, पहाविपा, तेण विट्ठा भागमो, इयरवि कावत्सगणे  
 ठिया, न पइवइ, पण्ण स पक्षुण उवसंतो । एतदेहिकं फळ, 'सिद्धी सगो य परलोप'सिद्धि-मोक्षः स्वर्गो-देवलोकाः  
 बहव्वात् बक्खसित्वादि च परलोके फळमिति गायार्थः ॥ १५५० ॥ आह-सिद्धिः सफलकर्मव्यादेवाप्यते, 'कूत्सकर्म-  
 क्षयान्मोक्षा' इति वचनात्, स कर्म कायोत्सर्गफलमिति !, उच्यते, कर्मव्यत्येव कायोत्सर्गफलत्वात्, परम्पराकारणत्वेव  
 जह करगमो निक्कितइ दानं इतो पुणोयि वयतो । इम कतति सुविहिया कावत्सगणे कम्माइ ॥ २३७ ॥ (भा०)  
 कावत्सगणे जह सुट्ठिगस्स भज्जति अगमंगाइ । इप मियंति सुविहिया अट्ठविह कम्मसंथाप ॥ १५५१ ॥  
 अत्र इम सरीर असो जीयुसि गय कपपुन्नी । बुक्खपरिकिलेसकरं ठिंद ममत्त सरीरामो ॥ १५५२ ॥  
 आयइया फिर बुगल्हा ससारे जे मए समणुभूया । इसो बुध्विसइतरा नरएसु अणोवमा बुक्खत्ता ॥ १५५३ ॥



दाराणि धंभेमि, तत्रो आलभो (अहण्णो) सु नागरेसु आगासथा भणिस्सामि—आए परपुरिसो मणेणायि न चित्तिओ सा इरिधया  
 चालणीए पाणिय छोदुणं गंतूण तिष्णि घारे छटेवं वग्घाणाणि भविस्सति, तत्रो तुमं विण्णासिठ सेसनागरिपिहिं पाहिं  
 पच्छा जाएआसि, तत्रो वग्घादेहिसि, तत्रो फिद्धिही वड्डाहो, पसंसं च पायिहिसि, तदेव कयं पसस च पप्पा, एयं ताप  
 इहलोइय कावस्सगफळं, असे भणति—आणारसीए सुमहाए कावस्सगो कओ, एउगग्घुप्पसी भाणियया। राया 'उदिओ  
 दए' ति, उदितोदयस्स रण्णो भज्जा (धम्म) लाभागयं पियरोहियस्स उवसगए य समणजायं, कहाणगं जहा नमोकारे। 'सेट्ठि-  
 भज्जा य' ति कएाप सुदंसणो सेट्ठिपुत्तो, सो सावणो अट्ठमिचारइसीसु चच्चरे उवासगपडिमं पडियज्जइ, सो महादे  
 वीए पत्थिज्जमाणो गिच्छइ, अणया वोसट्ठकाओ देवपडिमस्ति कस्ये चेठीए यट्ठिठ अतेउर अत्तिणीओ, देवीए निरुयं  
 धेवि कए नेच्छइ, पट्टाए कोलाहलो कओ, रण्णा यज्जो आणसो, निज्जमाणे भज्जाए से निचयतीए सायियाए सुते,

१ इतरामि स्वगिप्पामि उतोइद्विठिमापयेपु नागरेसु आकाजत्ता अविप्पामि—ववा परपुरो मतसउपि न चित्तिता सा ही वासिन्नासुरं किरवा  
 गात्ता त्रीण्ण उट्टकति उट्टकामि अविप्पमि उतसव परीहय सेयभागी सव वडि। पज्जापावा उत उव्वाम्भविप्पति उता रसेट्ठिपुत्तुता ज्वंलो च  
 प्राप्पमि तवैव इउ, प्रससां च प्रसा पउत्तावैद्वैकिक्के कापोत्तागंफळं जम्मे यज्जि—आतावलां सुवज्जवा कपोत्तगं इउता। पउत्तावोत्तविर्धित्तत्ता। राजा  
 उदितोदय इति उदितोदयस्स राजा भावो यमीकामागत अन्तःपुररुदं आनयपुत्तगं वृत्ति कवाजळं कथा जगरज्जरे। अंठिमावां वेमि जग्गवां मुरयंवा अठ्ठिगुवः  
 स आबक्केप्पमीचतुदंसोकारे उपासकमसिमां पठिपपत्ते स महादेव्या प्राबंदमाणो वेप्पति अज्जवा पुरसुहज्जपो देवप्रतिमेति येज्जा इत्तेदेवित्ता अन्तःपुर  
 मावीठा, देव्या विरंन्धे इत्तेअपि वेप्पति, प्रविज्जया कोसाहका इउता, ताहा वप्प ज्ञाउता। वीवमाणो जार्जवा तत्त मिज्जवत्ता पारिकवा मुता।

लक्षणान्तरकस्तासकल्या कावत्सगणे ठिता, सुवत्सगणस्त्वपि अहर्लक्षणि कीरंयुति स्तुते असी वाहिनी, सत्तापञ्चकलेय  
 पुष्करान्ते कतो, मुक्तो रत्ना पूरतो, ताथे मित्रवहीण परिण । तथा 'सोदास' चि सोदासो राबा, एवा नमोकारे, 'समावर्मणे' चि  
 कीद विरादियसामण्यो लग्गो समुण्यणो, वट्ठाप मारेति साहु, पहाविया, तेण विद्वा व्यागो, इयरवि कावत्सगणे  
 ठिया, न पहावइ, पण्ठा सं यद्दुण उवसंतो । एतदेहिक् फडं, 'सिद्धी सुगो य परलोप' सिद्धिः—मोक्षः स्वर्गो—देवलोकाः  
 ब्रह्मादात् सकयत्तित्वादि च परलोके फलमिति गायार्यः ॥ १५५० ॥ आह—सिद्धिः सकलकर्मसंपादेवाप्यते, 'कृतकर्म  
 क्षयान्मोक्ष' इति पचनात्, स कर्म कायोत्सर्गफलमिति !, उच्यते, कर्मक्षयस्यैव कायोत्सर्गफलात्, परमराकारणस्यैव  
 वियद्वितत्वात्, कायोत्सर्गफलस्यमेव कर्मक्षयस्य कर्म !, यत आह 'माव्यकारः—  
 जह करगमो निरुक्ताइ दां इतो पुणोवि वयतो । इअ कतति सुविहिता कावत्सगणे कम्माइ ॥ १३७ ॥ (भा०)  
 कावत्सगणे जह सुद्धियस्स भज्जति अगमंगाइ । इय भिवंति सुविहिता अहविहं कम्मसचायं ॥ १५५१ ॥  
 अअ इम सरीर अघो जीयुसि नय कययुद्धी । दुपस्सपरिकित्तेसकरं छिंद ममत्त सरीराभो ॥ १५५२ ॥  
 जायइया फिर दुग्गन्वा ससारे जे मए समणुभूपा । इत्तो दुग्घिसइतरा नरएसु भणोवमा दुक्खा ॥ १५५३ ॥

१ गन्धावचक्षणं आहवन्नाच (अपवन्ना) कावोय्यगे स्थिता सुवत्सगणत्वात् कण्ठा भवन्ति एवमेति । प्रकृतः सत्तापञ्चकलेय पुष्करासीकृता मुक्तो  
 रत्ना परिश्रुतः तदा मित्रवन्ता वारिणः । सोदासो राबा नमोकारे एवा नमोकारे एवा नमोकारे एवा नमोकारे एवा नमोकारे एवा नमोकारे  
 धारवति माएर, मापचः प्रवर्तित्वा, तेन एवा भागता, इतरेति कावोय्यगे स्थिता, न प्रवर्तति । एवावचक्षुःपराकारः

त्सर्गो ययोक्कफलो भवति तस्येति गायार्थः ॥ १५४८ ॥ तथा—‘निविहाणुषसगार्णं’ गाहा, त्रिविधानां—त्रिप्रकाराणां दिव्यानां—अथगतरादिकृतानां मानुषाणां—स्तेष्ठादिकृतानां तैरभ्यानां—सिंहादिकृतानां सम्यक्—मध्यस्थभावेन अतिसहनायां सत्यां कायोत्सर्गो भवति शुद्धः—अविपरीत इत्यर्थः । तत्सर्गोपसर्गसहिष्णोः कायोत्सर्गो भवतीति गायार्थः ॥ १५४९ ॥ द्वारं । साम्प्रतं फलद्वारमभिधीयते, तच्च फलमिहलोकपरलोकापेक्षया द्विधा भवति, तथा चाह प्रत्यकार—‘इहलोगमि’ गाहा व्याख्या—इहलोके यत् कायोत्सर्गफलं तत्र सुभद्रोदाहरणं—कथं ? धंसंरपुर नगरं, तस्य जियसपुराया, जिणदत्तो सेढी संजय सहस्रो, तस्स सुमहा दारिया धुया, अतीवक्यस्सिणी ओरालियसरीरा साविगा य, सो तं असाहंमियाण न देइ, तस्य नियसहेणं चपाओ वाणिज्जागएण दिहा, तीए क्वलोमेण कवडसहस्रो जाओ, धम्मं सुणेइ, जिणसाह पूजेइ, अण्णया भायो समुप्पण्णो, आयरियाणं आलोपइ, तेहिंवि अणुसासिओ, जिणदत्तेण से भाव नाऊण धूया दिण्णा, वित्ते विवाहो, केहिंरकाउत्सवि सो तं गहाय वंप गओ, नर्णदसासुमाइयाओ तयण्णियसहिगाओ त त्सिंसति, तमो जुयगं धरं कयं,

१ बसन्तपुरं नगरं, तत्र जितमरू राजा जिनदत्तः सेढी खंयतमाइ, तस्स सुभद्रा वाणिज्यं दुविलाओइ केलिओ इतरातरैरा वाटिका च स ताम साधार्मिकाय च ददाति, तच्चमिकमादैन चम्पातो वाजिसमातेन इहा, तस्सा क्वलोमेण क्वटमाइओ अठा धर्मं धुणोति त्रिभसापूइ इववति अण्णया माका समुत्पका आचारोओ क्वपपति तैरपणुशिहा जिणदत्तेन तस्स भावं माहा धुविला इता इतो विवाहः, किंरचित्तेन क्वटेन सोमवि ठां गृहीता चम्पो गता, चमन्चम्पादिंकाउचमिकमाकाओ निम्पन्ति, तताः इवमपुइ इव

तल्लबाणेने समज्या समजणीओ व पाळगनिमिचमागण्ठसि, तळणिगसहिबा मर्षति, एसा संजवाणे बटं रचसि, मत्तारो  
 से न पत्तिवइसि, अण्णया कोई वण्णक्याइगुणगनिष्फणो तरुणभिक्षू पासगनिमिचं गळो, तस्स य वातहुये  
 अस्सिम्मि कणग पबिई, सुमहाए सं जीहाए छिहिकण अयणीयं, तस्स निळाडे तिळओ संकंठो, तेण्वि वक्खित्तपित्तय  
 ण आणिओ, सो नीसरति ताव तळणिगसहिगाहिं अथक्कागयस्स मत्तारस्स स रंसिओ, पेण्ड इमं धीसत्थरमियसंकंतं मत्ताए  
 सगतं तित्तगंसि, तेण्वि विसियं-किमिदमेवंपि होज्जा, अइया वल्लवतो विसया अणेगमवम्मरयणा व किच्च होइसि, मंद  
 नेहो जामो, सुमहाए कहयि पियिओ एस बुचंतो, वित्तिव व जाए-यावणीओ एस वड्डाहो कइं केवित ( हेमि ) सि,  
 पययणदेयमभिसंपारिज्ज रयणीए कावत्सगं ठिया, अहासंनिहिया क्काइ देवया तीए सीससमावारं माळज आगया,  
 भणियं च सीए-किं ते पियं करेमिस्सि, तीए भणियं-उड्डाई केदेहि, पेचयाए भणियं-केदेमि, पण्णसे इमाए नयरीए

१ तत्तादेके ज्ञानभाः अयत्तव ज्ञानोपनिमिचमागण्ठसि, तळमिचकाळो मवन्ति-एसा संघेसु छं रवेसि, मत्तं तळा व मत्तेरीसि, जल्पया कोअी  
 वरं क्कत्ताएण्णपुच्छरुमधिगुः ज्ञानोपनिमिचं गळा, तल्ल व वापुदुव रजोअेव प्रविं, सुप्पया वविइउपोठिक्कापवीत्तं, तल्ल क्कत्तरे विक्का संज्जत्ता  
 मेवमि रत्तामिस्सिदेव न ज्ञाता स मिसमरति छावपचमिक्काहीविअण्णहाण्याद मत्तं स इत्तिता। एवेइ म्मिक्काएमचंअत्तं यावोणा संघं म्मिक्कमिस्सि  
 मेवमि विमिर्न-किमिदमेवमि मवेइ, जयया वल्लवतो विपवा जनेअमयाण्णज्जमेवति किं न यत्तेरीसि मज्जुहो ज्ञाता सुप्पया क्वममि ज्ञत्त एव  
 वृत्तात्ता, विजिजे ज्ञानया-जावकमिड पुंउ उड्डाहाः कयं रवेइयामीति ? मक्कववेवतामविचंवाणं रत्तं क्कत्ताएण्णो विज्जा एवमिस्सिदेवता कविपेक्का  
 नत्ता। जीअण्णजाचारं उणाअण्ण म्मिर्नं च तया-किं ते पियं करेमीति, तळा मविर्न-उड्डाई रवेइय वेवतता मविर्न-रवेइयमि ज्ञत्तुदेवता क्वममि

स्वर्गो यथोक्तफलो भवति तस्येति गाथार्थः ॥ १५४८ ॥ तथा—‘तिविहाणुयसग्गाणं’ गाथा, त्रिविधानां—त्रिप्रकाराणां  
 दिव्यानां—व्यगतरादिकृतानां मानुषाणां—म्लेच्छादिकृतानां तैरब्धानां—सिंहादिकृतानां सम्यक्—मध्यस्थभावेन अतिसहनायां  
 सत्यां कायोत्सर्गो भवति शुद्धः—अविपरीत इत्यर्थः । ततश्चोत्सर्गसहिष्णोः कायोत्सर्गो भवतीति गाथार्थः ॥ १५४९ ॥ द्वारं ।  
 साम्प्रतं फलद्वारमभिधीयते, तच्च फलमिहलोकरलोकापेक्षया द्विधा भवति, तथा चाह ग्रन्थकारः—‘इहलोगमि’ गाथा  
 व्याख्या—इहलोके यत् कायोत्सर्गफलं तत्र सुमग्नोदाहरणं—कथं, यत्सर्वपुरं नगरं, तस्य अयस्सज्जुराया, अणिदत्तो सेट्ठी संजय  
 सहजो, तस्स सुमहा दारिया धुया, अतीवस्वस्तिणी ओरालियसरीरा साविगा य, सो तं असाहमियानं न देइ, तच्च  
 नियसहुणं धंपाओ धाणिज्जागण्ण दिहा, तीणं स्वलोमेण कयइसहुओ जाओ, धम्म सुणेइ, अणिसाहू पूजेइ, अण्णया भायो  
 समुप्पण्णो, आयरियाण आलोपइ, तेद्वि वि अणुसासिमो, अणिदत्तेण से भायं नाक्कण धूया दिण्णा, विचो यियाहो,  
 केळिरकालस्सवि सो तं गहाय चंप गमो, नर्णवसासुमाइयाओ तवण्णियसहिगाओ स स्सिंसति, तमो जुयण प्रं कयं,

१ वसन्तपुरं नगरं, तत्र अतिसहू राजा विजयवर्धनः सेट्ठी संजयकादरः, तस्स सुमहा दारिका बुद्धिवाञ्छीव स्वस्ति इतरसरीरा आदिहा च त एव  
 साधारिकाच न ददाति तच्चमिककादेव चण्णतो दारिण्यातेन इहा तस्मा कलकदेवेन कयइसादो जाताः धर्मं शुणोति इतिताइइ इज्जति अण्णया  
 भावः समुत्पन्नः आचार्यानां कथयति तैरप्यबुद्धिः विजयवेण तस्म भावे ज्ञाता बुद्धिः इणं इणो विवाहः विचरिरेव कालेन सोऽपि वा पुरीणा  
 चर्मा गता, वनन्दचम्पादिकासकमिकभाज्जतां सिन्दुमि, तताः पुयग्गुई इतं,

स्वरत्नमहपरं च, तत्र 'नाभि'सि नाभीओ हेहो चोत्तपहो कायओ, करवलेसि सामण्णेणं हेहा पछेवकरवळे 'जाव कोप्परे'सि सोडविय कोप्परेहिं धरेयबो, पबंभूतेन कायोत्तर्गः कार्यो, वस्सारिय य-कावत्सगो पारिय नमोकारेण अवसाये पुरं दायवेसि गाथार्थः ॥ १५४७ ॥ गते प्रासङ्गिकं, साम्पतं कसेसि द्वारं व्याख्यायते, तत्रोक्तोपरहिणोडपि वस्यानं कायोत्तर्गो ययोक्तको भवति तमुपदर्शयन्नाह—

वासिचंदनकप्पो जो मरणे जीविय य समसण्णो । वेहे प अपवियदो कावत्सगो हवइ तत्स ॥ १५४८ ॥  
तिविदाणुवसगगण दिक्खाण माणुसाण तिरियाण । सम्ममहियासगाए कावत्सगो हवइ सुदो ॥ १५४९ ॥

‘वासीचंदनकप्पो’गाहा कथास्या—शरीचन्दनकथा—ठपकार्यपकारिणोर्मन्वस्था, उक्तं च—“ओ चंदणेण बाहुं भाळिपइ यासिणा य तच्छेइ । संयुणइ जो य निंदइ महदिविणो तस्य सममावा ॥ १ ॥” अनेन परं प्रति माभ्यस्वयमुक्तं भवति, तथा मरणे—प्राणत्यागलक्षणे जीयिते च—प्राणसंपारणलक्षणे चक्षव्याविहलोकादौ च समसङ्गः तुल्यमुच्चिरि त्ययो, अनेन चारमान प्रति माध्यस्थ्यमुक्तं भवति, तथा देहे च—शरीरे चाप्रतिपन्नः चक्षव्यावुपकरणादौ च, कायो

१ नाभिओउचक्का चोत्तपइहा कर्त्तव्यः, कावत्सेसि सामाण्येन अपक्काणं पक्कमकरवळा बाचए कूरंताप्पो—सेसि च कूरंताप्पो चारवित्थ्या, तापाने च—कपोत्तर्गे पारिने कमरकारेणावयाने तुविदीवत्तवा । २ चक्षव्येन बाहुमाकिम्यदि थाक्का वा उक्कवदि । उक्कवदि वो वा विम्वदि महर्क्कवत्तवा ॥ १ ॥

‘पुष्प ठति य गुरुणो’ गाहा प्रकटार्थो ॥ १५४४ ॥ ‘ध्वरंगुल’सि चत्तारि अंगुलाणि पायाणं अंतर करेयां, मुहपोत्ति ‘रञ्जुप’सि दाह्रिणहत्थेण मुहपोत्ति या घेतवा, सञ्जहत्थे रयहरणं कायां, एतेण विहिणा ‘योसहस्रदेहो’सि पूर्वयत्, काउस्सर्गं करिजाहिस्ति गार्थार्थो ॥ १५४५ ॥ गतं विधिद्वारम्, अधुना दोपावसर, तत्रेवं गाथाद्वयं—‘योहणे’त्यादि—

आसुध विसमपाय गायं ताविषु ठाह उस्सगो । कण्ठ कउस्सगो उयन्व सारपवणसंगेण ॥ १ ॥ सभे वा कुट्टे वा अवठमिण ठाह काउसर्गं तु । माले य उचमंगं अवठमिय ठाह उस्सर्गं ॥ २ ॥ सबरी वसणविरहिवा करेहि सागारियं नह उवेह । ठाकण गुम्फदेसं करेहि सो कुण्ठ उस्सग ॥ ३ ॥ अवणामिउचमंगो काउस्सर्गं जहा कुल्लवहुन्व । नियलियणोविष वसणे वित्थारिय जहव मेळविठं ॥ ४ ॥ अक्क वोल्लपट्टं अविषीए नामिमढक्कसुवरि । विट्ठा य जणुमिणं चिट्ठई उंजुउरुस्सर्गं ॥ ५ ॥ उच्छाईकण य जणे चोल्लगपट्टेण ठाह उस्सर्गं । रंसाहरवत्तणद्धा जहवा अक्काणवोसेणं ॥ ६ ॥ मेल्लिपु पण्हियाओ चळ्ळे वित्थारिकण बाहिरओ । ठाउस्सर्गं एसो बाहिरठ्ठी मुणेयम्भो ॥ ७ ॥ मंगुठे मेळविठं वित्थारिय पण्हियाओ बाहिं तु । ठाउस्सर्गं एसो मणिओ भग्गिमठ्ठदिप्पि ॥ ८ ॥ कप्पं वा पट्टं वा पाह्मिठं संजह्व उस्सर्गं । ठाह य सन्निभं व जहा रयहरणं अमाओ काठं ॥ ९ ॥ मागेह तहा विट्ठि चळविठो बायसुव्व उस्सगो । छप्पइमाण मण्णे कुण्ठई अ पट्टं कविट्ठं व ॥ १० ॥ सीसं पंकपमाणो जक्कसाइहुव्व कुण्ठ उस्सग । मूयव्व हुणहुणतो तहेव छिञ्चतमाईसु ॥ ११ ॥ भंगुळिममुहाजोवि य चाल्लो तहय कुण्ठ उस्सर्गं । अक्कावगगणज्झा सठवणरं व भोगाणं ॥ १२ ॥ काउस्सर्गमि ठिओ मुरा जह पुट्टुदेह अव्वरं । मणुपेट्ठो सट्ट पानरुन्व चालेह भोठुठे ॥ १३ ॥ एए काउस्सर्गं कुणमाणेण विनुहेण बोळा ठ । सम्भ परिहरियम्भा जिणपट्टिकुट्टिपिक्कणं ॥ १४ ॥

‘नाभीकरयत्तकुप्पर उस्सारे पारियंमि पुर’सि निर्युकिगाथाशकलं लेघतोऽधुट्टकायोऽरसर्गायस्यानप्रदर्शनपरं विष्य

સ્વર્ણમહાપરં ન, તથા 'નાભિ'સિ નામીઓ હેઠો 'ચોટપદો કાયબો, કરચલેસિ સામળેનં દેહા પડંબકરબલે 'જાવ કોપ્પરે'સિ સોડબિય કોપ્પરેરેહિં ધરેયબો, ઇર્બંમૂટેન કાયોત્સર્ગઃ કાર્યઃ, વસ્તારિય ધ-કાવસ્સગો પારિય મમોક્કરેન જવસાને પુરં દાયબેસિ ગાયાર્પઃ ॥ ૧૫૪૭ ॥ ગતં પ્રાસન્નિકં, સામ્પ્રતં કસ્યેતિ દ્વારં વ્યાસ્યાયતે, તન્નોક્કવોપરશિથોડપિ ઘસ્યાયે કાયોરસર્ગો યયોક્કફલો મયસિ સમુપવર્સ્યમાહ—

વાસીચંદનકપ્પો જો મરવો જીવિપ ધ સમસળ્લો । વેહે ય અપહિવદો કાવસ્સગો હ્વશ તત્સ ॥ ૧૫૪૮ ॥  
તિવિહાણુવસગાણ વિન્વાણં માણુસાણ તિરિયાણ । સમ્મમહિયાસણપ કાવસ્સગો હ્વશ સુદો ॥ ૧૫૪૯ ॥  
ફલોગમિ સુનદા રાયા હ્વઓવ સિદ્ધિમજ્ઞા ય । સોવાસત્ત્વગ્ગમ્મણ સિદ્ધી સળ્લો ધ પરલોપ ॥ ૧૫૫૦ ॥

'વાસીચંદનકપ્પો'ગાહા ઇયાસ્યા—વાસીચત્ત્વનકસ્યઃ—રૂપકાર્પકારિણોર્મધ્યસ્થઃ, લુકં ન—'ઓ ચંદનેણ બાદં આલિપ્પદ વાસિણા ધ તરુણે । સંપુણ્ણ જો ધ તિવશ મશરિસિણો તત્ત્વ સમભાષા ॥ ૧ ॥' અનેત પરં પ્રતિ માખ્યસ્વમુક મયતિ, તથા મરણે—પ્રાણત્યાગલક્ષણે જીવિતે ન—પ્રાણસંધારણલક્ષણે નશ્વાદિહોક્કવો ન સમસન્નઃ તુલ્યપુચ્ચિરિ ત્યર્થઃ, મનેન ચારમાનં પ્રતિ માખ્યરથ્યમુકં મયતિ, તથા વેહે ન—શરીરે વાપ્રતિપન્નઃ નશ્વન્વાતુપકરણાદૌ ન, કાયો

૧ નાભિનોઝહકાર ચોટપદકઃ કર્તવ્યઃ, કરતેસિ સામાન્યેન અપભ્રાત પ્રકમ્બકારણઃ વાણ્ય શરીરત્મા-સોમ્પિ ન શરીરત્મા વારિષિત્ત્વા, ત્પારિતે ન-અવ્યોમર્ગે શરીરે નમરઅરોમાહસાને પુચ્ચિર્વગ્ધા । ૨ નશ્વરનેન વાતુપાતિપ્પિતિ પાલા યા રાજકવિ । હંત્યેતિ નો ના તિનુત્તિ મહર્નજકાઃ નવમાકા ૩ ૧ ૩



रामित्यर्थः, कस्य ?-कूटयाहिनी-यतीवर्दस्य, तस्य च दोषद्वयमित्याह-‘अतिभारेण भजति तुत्तवधापि य मराळो’  
 सि अतिभारेण भज्यते यतो विपमयाहिन एवासिमारो भवति, तुत्तयधातैश्च विपमबाहोऽय पीड्यते, तुत्तगो-पाङ्गणो  
 मराळो-गलिरिति गार्थार्थः ॥ २३६ ॥ साम्प्रतं दाष्टीम्बिकयोजनां कुर्यन्नाह-‘एमेव बलसमगो’गाहा व्याख्या-इयमग्य  
 कर्तुंकी सोपयोगा च व्याख्यायते, ‘एमेव’भरालवलीवर्धयत् बलसमग्रः सन्(यो)न करोति मायया करणेन संग्रह-साम  
 ध्यानरूपं कायोत्सर्गं स मूढः मायाप्रत्ययं कर्म प्राप्नोति नियमत एव, तथा कायोत्सर्गश्चिं च निष्कलं प्राप्तोति, तथाहि-  
 निर्मायस्यापेक्षारहितस्य स्वसक्त्यनुरूपं च कुर्वत एव सर्वमनुष्ठानं सफलं भवतीति गार्थार्थः ॥ अपुना मायायतो  
 दोषानुपवर्धयन्नाह-‘मायाए उत्सर्ग’गाहा, मायया कायोत्सर्गं शेषं च तपः-अनश्नादि अकुर्यतः ‘सहिष्णोः’समर्थस्य  
 कश्च तस्मादन्योऽनुमविष्यति ? किं-स्वकर्म[वि]क्षेपमनिर्जितं, शेषता चास्य सम्यक्स्वप्नायोत्कृष्टकर्मपिष्येति, उक्तं च-  
 ‘सिचण्णं पगढीणं अर्धिमतरजो उ कोढीकोढीय । काञ्ज सागराणं अह लहइ चत्थहमण्ययरं ॥ १ ॥’ अन्ये पठन्ति-  
 ‘एमेवय उत्सर्ग’ति, न चायमतिशोभनः पाठ इति गार्थार्थः ॥ १५४० ॥ यस्यैवमतः-‘निष्कलं सविसेसं’गाहा, ‘निष्कलं’-  
 मित्यशब्दं ‘सविक्षेप’मिति समकलादन्यस्मात् सकाशात्, न चाहमहमिकया, किं तु वयोऽनुरूप, स्याणुरियोर्बुद्धौ  
 निष्कम्पः समश्चक्षुमिन्द्रः कायोत्सर्गं तु तिष्ठेत्, तुम्हाद्यादन्यच्च भिक्षाटनायेर्धभूतमेवानुविष्ठत(ष्ठेत्) इति गार्थार्थः ॥ १५४१ ॥  
 इदानीं वयो बलं चाधिकृत्य कायोत्सर्गकरणविधिमभिधत्ते-

तकणो बलपं तकणो अ बुद्धलो घेरओ बलसमिदो । घेरो अबलो बजसुधि भंगेसु जडाबल ठाई ॥ १५४२ ॥  
 तरुणो बलवान् १ तरुणश्च युर्वलः २ स्वविरो बलसमृद्धः ३ स्वविरो युर्वलः ४ बहुर्व्यपि मङ्गकेषु यथाबलं तिष्ठति  
 बलानुरूपमित्यर्थः, न त्वभिमानतः, कथमनेनापि बृद्धेन पुंस्य इत्यल्लयतापि स्वातन्त्र्यम्, उत्तरश्रीसमाधानगञ्जाना  
 दावधिकरणसम्भवादिति गायार्थः ॥ १५४२ ॥ गतं समसङ्गमशब्दार्, साम्प्रतं सठद्वारसंस्तरस्त्रयेयं गीया—

कायोत्सर्गकरणयेताया मायया प्रबलयति-निर्द्रा गच्छति, प्रतिपृच्छति सूत्रमर्थं वा, कष्टकं अपनयति, 'वियार'सि  
 पुरीयोत्सर्गाय गच्छति, 'वासयणे'सि कायिकां व्युत्सृजति, 'घम्मे'सि धर्मं कथयति, 'निकृत्वा' मायया स्नानत्वं  
 वा करोति कृतं भवत्येतद्-भनुष्ठानमिति गायार्थः ॥ १५४३ ॥ गतं सठद्वारम्, अमुना विधिद्वारमाख्यायते,  
 ठत्रेयं गाया—

तुन्नं ठनि य तुकणो गुरुणा उस्तारियमि पोरंति । ठापति सविसेसं तरुणा च अनूणविरिया च ॥ १५४४ ॥  
 नउरगुन्नु मुहपसी उज्जुग दुग्गपहत्थ रपहरण । वोसट्ठवसदेहो कावस्सग्ग करिज्जाहि ॥ १५४५ ॥  
 गोहगग्गाइ गंथे कुंइ माले अ सपरि षहु निपत्ते । सनुसर धण उद्वी संजय ललिजे यो बायसकबिडे ॥ १५४६ ॥  
 मीसुअप्पिग मंडं अगुलिममुहा य पाक्णी पेहा । नारीकरयलकुप्पर वस्तारिय पारियमि पुई ॥ १५४७ ॥

रामित्यर्थः, कस्य ?-कूटवाहिनो-बलीवर्दस्य, तस्य च दोषद्वयमित्याह-‘अतिभारेण भजति तुत्तयेथापहि य मरालो’  
 सि अतिभारेण भज्यते यतो विपमवाहिन एवातिभारो भवति, तुत्तयेथापहि विपमवाहोऽय पीड्यते, मुचगो-यात्रगो  
 मरालो-गलिरिति गायार्थः ॥ २१६ ॥ साम्प्रत दाष्टान्तिकयोञ्जनां कुर्वन्नाह-‘एमेव बलसमगो’गाहा व्याख्या-इयमस्य  
 कर्तुंकी सोपयोगा च व्याख्यायते, ‘एमेव’मरालबलीवर्दवत् बलसमगः सन्(यो)न करोति मायया करणेन संभवद्-साम-  
 ध्यानुकूपं कायोत्सर्गं स मूढः मायाप्रत्ययं कर्म प्राप्नोति नियमत एव, तथा कायोरसर्गह्लेशं च निष्कलं प्राप्नोति, तथाहि-  
 निर्मायस्यापेक्षारहितस्य स्वप्नकल्पानुकूपं च कुर्वत एव सर्वमनुष्ठानं सफलं भवतीति गायार्थः ॥ अयुना मायायतो  
 दोषानुपवर्धयन्नाह-‘मायाय वत्सर्ग’गाहा, मायया कायोत्सर्गं शेष च तथा-अनशनादि अकुर्यतः ‘सहिष्णोः’समर्थस्य  
 कश्च तस्मादन्योऽनुमविष्यति !, किं-स्वकर्म[यि]विपमनिर्ब्रितं, येषता चास्य सम्यक्स्वप्राप्त्योत्कृष्टकर्मपिष्येति, तत्र च-  
 ‘सुखेण पगङ्गीणं अर्चिमतर्जो च कोटीकोटीय । काञ्च सागराणं अह तदह चरणहमणयरं ॥ १ ॥’ अन्ये पठन्ति-  
 ‘एमेवय वत्सर्ग’ति, न चायमतिशोभनः पाठ इति गायार्थः ॥ १५४० ॥ यतश्चैवमत-‘निकूट सविसेसं’गाहा, ‘निकूट’-  
 मित्यशठ ‘सविशेष’मिति समबलादन्यस्मात् सकागात्, न चाहमहमिकया, किं तु वयोऽनुकूप, स्यानुयोर्यदुद्देशो  
 निष्कम्पः समशशुभिन्नाः कायोत्सर्गं तु तिष्ठेत्, तुल्यत्वादप्यत्र भिषाटनाद्येवभूतमेवानुतिष्ठत्(ष्ठेत्) इति गायार्थः ॥ १५४१ ॥  
 इदानीं वयो बल चाधिकृत्य कायोत्सर्गकरणविधिमभिषष्टे-

१ सप्तमीं प्रहृषीतामभ्यन्तरे ॥ कोटीकोट्याः । कृष्णा सागरोपमानी यदि कर्मते चागुनीमभ्यन्तरे ( तर्हि कर्मते ) ॥ १ ॥

पापसमा कसासा कालपमाणेण भुति जायब्बा । एय कालपमाणं उस्सग्गेणं तु नायब्बं ॥ १५३९ ॥  
 'पावसमा वस्सासा काल' गाहा व्याख्या—नवर पादः—श्लोकपादः ॥ १५३९ ॥ व्याख्याता गमनेत्यादिद्वारागाथा,  
 मधुनाऽऽघट्टद्वारागाथागतमथठद्वारं व्याख्यायते, इह विज्ञानयता ध्यात्वरहितेनात्महितमिदिकृत्वा स्वव्यापेक्षया कार्य-  
 स्सर्गः कार्यः, अन्यथाकरणेऽनेकदोषप्रसङ्गः, तथा चाह भाष्यकारः—

जो बहु तीसइयरिसो सस्तरियरिसेण पारणाइसमो । विसमे व कूडवाही निग्गिवाणेहु से जेहे ॥ १३६ ॥ (मा०)  
 सममूमेवि अइमरो उज्जाणे किमुअ कूडवादिस्स ? । अइमारेणं मज्झइ तुत्तपथापहि अ मरालो ॥ १३७ ॥ (मा०)  
 गमेव पलसमगो न कुणइ मायाइ मम्ममुत्सगं । मायावडिअं कम्मं पावइ उस्सग्गकेसं ॥ १ ॥ (प्र०)  
 मायाणं उत्सग्ग सेसं च तये अकुव्यओ सदुणो । को अलो अणुइोही सक्कम्मसेसं अणिज्जरियं ? ॥ १५४० ॥  
 निक्कं सयिसेसं घयाणुरूपं पलाणुरूपं च । म्वाणुव्व उक्कवेइो काउत्सगं तु ठाव्वा ॥ १५४१ ॥

व्याख्या—यः कश्चित् साधुः, लघुदग्धो विनोपणार्थः, त्रिदशवर्षाः सन् लघुसंख्यायुः वलवानातङ्करहितश्च सप्तविंश-  
 गान्येन पृथेन साधुना पारणाइसमो—कायोत्सर्गप्रारम्भपरिसमाप्त्या तुल्य इत्यर्थः । विषम इव—चट्टकादाविव कूटवाही बली-  
 पइ इय निर्यिज्ञान पयासो 'अठ' जेहे, स्वहितपरिज्ञानशून्यत्वात्, तथा चाल्महितमेव सम्यक्कायोत्सर्गकरणं स्वकर्म  
 क्षयकृतस्यादिति गार्थार्थः ॥ १३५ ॥ अपुना एटान्तमेव विवृण्वथाह—'सममूमेवि अइमरो' गाहा व्याख्या—सममूमा  
 पयि अतिभरयिपमवाहियात् 'उज्जाणे किमुत कूडवादिस्स' ऊर्ध्वं यानमस्मिन्निष्ठुधानम्—उदकं तस्मिन्नुधाने किमुत ? , सुत

गोयैरचरियाप सुयस्वधपरियट्टणे अट्ट चेव, केसिंचि परियट्टणे पचवीस, तथा चाह—‘सुयस्वधपरियट्टणं मंगलरथं (उज्जोय)  
 काचस्सगं काळण कीरइ’ति गाथार्थः ॥ १५३४ ॥ अत्राह चोदकः—‘सुज्जइ अकालपटियाइ’ गाथा, युज्यत—संगच्छते पटते  
 अकालपठितादिषु कारणेषु ससु अकालपठितमाविशब्दात् काले न पठितमित्यादि, दुसु च प्रसीच्छितादि—बुद्धयिधिना  
 प्रतीच्छितं आदिशब्दात् श्रुतहीलनादिपरिग्रहः, ‘समणुणसमुदेसे’ति समनुशासमुदेसयोः, समनुशायां च समुदेसे च कायो  
 त्सर्गस्य करणं युज्यत एवेति योगः, अतिचारसम्भवादिति गाथार्थः ॥ १५३५ ॥ यत् पुनरुद्दिश्यमानाः श्रुतमनतिप्रभन्ता अपि  
 निर्विपयत्वादपराधमप्राप्ता अपि ‘कुणह वस्सगं’ति कुरुत कायोत्सर्ग एषः अकृतोऽपि दोषः कायोत्सर्गशेषः परियुह्यते  
 किं मुधा भवन्त !, न चेत् परियुह्य(ते) न कर्त्तव्यः तदुद्देशकायोत्सर्ग इति गाथाभिप्रायः ॥ १५३६ ॥ अत्राहाचार्यः—‘पायुग्पाई  
 कीरइ’ गाहा निगदस्तिद्धा ॥ १५३७ ॥ ‘सुमिणदंसणे राठ’ति द्वारं व्याख्यानयन्नाह—‘पाणयहमुसायाए’ गाहा, सुमिणं नि पाण  
 यहमुसावाए अदत्तमेहुणपरिगोहे चेष आसेविए समाने सयमेगं तु अणूणं वस्सासाणं भविज्जाहि, मेहुणे दिद्विपिप्परिया  
 सियाए सय इत्थीविप्परियासयाए अहसयंति ॥ वरुं च—‘दिद्वीविप्परियासे सय मेहुन्मि धीविपरियासे । पयहारेणह  
 सय अणमिस्सगस्स साहुस्स ॥ १ ॥’ गाथार्थः ॥ १५३८ ॥ ‘णावाणतिसतार’ति द्वारत्रयं व्याचिख्यासुराह—‘नापाए उत्तरिउं  
 यहगाई’ गाहा, गाथेयमन्यकर्तुं की सोपयोगा च निगदस्तिद्धा, इदानीमुच्चासमानप्रतिपादनायाह—

१ गोचरचर्चायां श्रुतस्वधपरिग्रहोऽत्र केचनपि पदवर्त्तने पञ्चविंशतिः, श्रुतस्वधपरिग्रहं मङ्गलार्थं कायोत्सर्गं कृत्वा द्रियते । २ तस्मै मानवपुत्र-  
 बादात्तमेहुणपरिग्रहेऽप्यासेविदेयु ससु सतमेकमहणमुच्चासमानं भवेए, मेहुणे दद्विपिर्वासे इतं धीविपिर्वासेऽहसयमिति ।

पापसमा कृतास्ता कालपमाणेण भुति प्रापन्वा । एष कालपमाणं उस्सग्गेण तु नायब्बं ॥ १५३९ ॥  
 'पापसमा वरसासा काल' गाहा व्याख्या—नवर पादः—श्लोकपादः ॥ १५३९ ॥ व्याख्याता गमनेत्यादिवागवा,  
 अपुनाऽऽद्यद्वारागाथागतमश्वठद्वारे व्याख्यायते, इह विज्ञानपत्ता पाठपरहितेनात्मवित्तमिति ह्रस्वा स्ववकापेक्षया कार्य  
 स्वर्गः कार्यः, अभ्ययाकरणेऽनेकदोषप्रसङ्गः, तथा चाह भाष्यकारः—  
 जो न्वलु तीसइवरित्तो ससरिवरित्सेण पारणाइसमो । वित्तमे व कूटवाही निरुवमाणे तु से जणे ॥ १५४० ॥ (मा०)

सममूमेवि अइमरो उज्जाने किमुअ कूटवाहिस्स ? । अइभारेणं मज्झइ तुत्तयथापहि अ मराजो ॥ १५४१ ॥ (मा०)  
 गमेव चलसमगो न कुणइ मायाइ मम्ममुत्तगं । मायावडिअं कम्मं पावइ उस्सग्गेकेसं व ॥ १ ॥ (प्र०)  
 मायाण उस्सगं सेसं य तयं अकुप्यजो सहुणो । को अज्जो अणुइही सक्कम्मसेसं अणिज्जरियं ? ॥ १५४२ ॥  
 निक्कं सवित्सेसं यपाणुरूपं पलाणुरूपं च । त्वाणुरूपं उक्खयेहो काउत्तगं तु ठाइज्जा ॥ १५४३ ॥  
 व्याख्या—यः कथित् साधुः, लघुद्वन्द्वो विमोपगार्थः, त्रिशद्वयः सन् लघुसंख्याद् वलवानाठकुरहितञ्च सप्तवित्से-

णान्येन पृथेन साधुना पारणाइसमो—कायोत्सर्गप्रारम्भपरिसमाप्ता तुल्य इत्यर्थः । वियम इव—उर्ध्वकावाविष कूटवाही बली-  
 यर्ध इय निर्धिज्ञान पयासो 'अट' अट्टे, स्वहितपरिज्ञानानुन्यात्वात्, तथा चाल्महितमेव सम्यक्कायोत्सर्गकरणं स्वकर्म  
 क्षयपठत्यादिति गार्थः ॥ १५४५ ॥ अपुना दृष्टान्तमेव विवृण्वथाह—'सममूमेवि अइमरो' गाहा व्याख्या—सममूमा  
 यपि अतिभरयिमयाहित्यात् 'उज्जाने किमुअ कूटवाहिस्स' उर्ध्वं यानमस्मिन्नियुधानम्—उर्ध्वकं तस्मिन्नुधाने किमुत ? , सुत

जुञ्जइ अकालपरियाइएसु वुहु अ पडिच्छियार्हसु । समणुअसमुदेसे काउस्सगस्स करणे तु ॥ १५३६ ॥  
 ज पुण उदिसमाणा अणइंक्ष्तायि कुणइ उस्सग । एस अकओयि दोसो परिधिप्पइ किं सुहा भते ! ? ॥ १५३७ ॥  
 पायुग्घार्ह कीरइ उस्सगो मगलसि उदेसो । अणुयवियमगलाणं मा बुद्ध कर्हिहि ने विग्घं ॥ १५३७ ॥  
 पाणवइसुसाधाए अदस्समेणुणपरिग्गहे चेव । सयमेग तु अणूण ऊसासाणं इयिआहि ॥ १५३८ ॥  
 नावा(ए) उस्सरिउं धइमार्ह तइ नई च एमेव । सतारेण चलेण व गतु पणवीस ऊसासा ॥ १ ॥ ( प्र० )

भैमणं भिक्षादिनिमित्तमन्यप्रामादौ, आगमनं तस्यो वेव, इत्य इरियायहिय पडिक्कमिऊण पंचवीसुत्तासो कावस्सगो कायवो ॥ १५३६ ॥ तथा चामुमेवावयवं विवृण्वन्नाह भाव्यकारः—‘मचे पाणे सयणासणे’ गाहा, मत्तपाणनिमित्तमन्नगामा दिगया जइ न साय वेडेसि ता इरियावहियं पडिक्कमिऊण अच्छंति । आगयावि पुणोडवि पडिक्कमंति, एवं सयणासणनि मिच्चपि, सयणं—संधारणो वसही वा, आसण—पीठगादि, ‘अरहंतसमणसेज्जासु’सि चेइपरं गया पडिक्कमिऊणं अच्छंति, एवं समणसेज्जंभि—साहुवसतिमित्यर्थः, ‘उच्चारपासवणे’सि उच्चारे वोसिरिए पासयणे य जतियि इत्यमेत्तं गया

१ गमनं भिक्षादिनिमित्तमन्यप्रामादौ आगमनं तस्य पंचाशेषांपिचिकीं प्रतिष्कम्प्य पञ्चादिपाणुपुग्घाहाः कावोत्तरां कथंक्वा भण्डपात्रमिषिपमश्चप्रामादि गता पदि तावच्च वेडेसि तदेपांपिचिकीं प्रतिष्कम्प्य तिष्ठन्ति आगता अपि पुवरपि प्रतिष्काप्यन्ति एवं सयणासणमपि शवनं संस्कारको वत्तपिचो अयमे वेदीयादि नईच्छमणसव्यासि’सि वील्लगुहं गताः प्रतिष्कम्प्य तिष्ठन्ति, एवं अमण्यसव्यासिबि ति साहुवसतो उच्चारपासवण’इति उच्चारं धुत्तुगय प्रकरनं च पचपि इत्थमायं गता—





जुञ्जइ अकालपरियाइएसु बुद्धु अ परिच्छिण्याईसु । समणुअसमुद्देसे काउस्सगस्स करण ॥ १५३६ ॥  
ज पुण उदिसमाणा अणइकंतावि कुणह उस्सग । एस अकओवि दोसो परिधिप्पइ किं मुहा भते ! ॥ १५३७ ॥  
पाधुग्घाई कीरइ उस्सगो भगलति उदेसो । अणुवधियमगलाणं मा बुद्ध कर्हिंवि ने विग्घं ॥ १५३७ ॥  
पाणवइसुसावाए अदस्समेणुणपरिग्घे चेव । सयमेग तु अणूणं कसासाणं इयिआहि ॥ १५३८ ॥  
नावा(ए) वस्सरिठं वहमाई तइ नई च एमेव । सतारेण चलेण च गतु पणवीस कसासा ॥ १ ॥ ( प्र० )

भेमणं भिक्षादिनिमित्तमन्यग्रामादौ, आगमनं तत्तो चेव, इत्थ इरियावहियं पडिक्कमिऊण पंचवीसुत्तासो कावस्सगो  
कायनो ॥ १५३६ ॥ तथा वामुमेधावयवं विवृण्वत्ताह भाव्यकार - 'भत्ते पाणे सयणासणे' गाहा, मत्तपाणनिमित्तममगमा  
दिगया अइ न ताव वेलेति ता इरियावहियं पडिक्कमिऊण अच्छंति । आगयावि पुणोडवि पडिक्कमंति, एयं सयणासणनि  
मित्तंवि, सयणं-संधारणो वसही वा, आसणं-पीढगादि, 'अरहंतसमणसेज्जासु'त्ति चेइपरं गया पडिक्कमिऊणं अच्छंति,  
एवं समणसेज्जंमि-साहुवसतिमित्यर्थः, 'उच्चारपासवणे'त्ति उच्चारं योसिरिए पासवणे य जसियि हत्यमेसं गया

१ गमनं निष्ठाविभिन्नमन्यग्रामादौ आगमनं तत एवात्रेवापिबिद्धं प्रतिबन्ध पडाविसणुप्पासः कावोत्तंगः कर्तव्यः मत्तपाणनिमित्तममगमादि  
गता वधि तावच वेलेति तदेवापिबिद्धं प्रतिबन्ध तिष्ठति आगता अपि पुनरपि प्रतिक्राम्यति एवै सवणासणनिमित्तमपि तत्तनं संट्यारको वसतिवो आगमं  
वीर्यादि भवेण्णमणपाज्वालि'ति कैलपुई गताः प्रतिक्रम्य तिष्ठति एवै अमणसवणास्ति ति एाहुवसतो 'उच्चारपासवण'इति उच्चारं मुत्तरय मज्जने च  
पचपि इत्थमात्रं गता-

इति राश्य पञ्चमस्य ऋतुमासे या तदेव वरिसे य । पयसु द्रुति नियया वृत्तसंगा अनिधया सेसा ॥ १५२२ ॥  
 साय सधं गोसज्जु तिक्तेन सया इवंति पञ्चमि । पंच य ऋतुमासे भद्रसहस्सं च वारिसप ॥ १५३० ॥  
 वारि दो नृबालस बीस जत्ता य द्रुति उज्जोमा । वेसिय राश्य पञ्चमस्य ऋतुमासे अ वरिसे य ॥ १५३१ ॥  
 पणबीसमद्रतेरस सिलोग पञ्चमसि च योद्धव्या । सयमेग पणवीस ये वावला य वारिसिप ॥ १५३२ ॥  
 निगदसिद्धा, नयरं नेपा-गमनादिविषया इति, साम्प्रतं नियतक्रयोरसर्गणामोघत वृत्तसमानं प्रतिपादयन्नाह—  
 'साय सि साये-प्रयोगः सद्य दानमुच्छासानां भवति, चतुर्भिर्गुणैरुत्तरि, मावित एवायमर्थः प्राक्, 'गोसज्ज'ति प्रत्यु-  
 पयाद्यष्टसत्रोद्योतकरद्वयं भवति, शेषं प्रकटार्थमिति गायार्थः ॥ १५३० ॥ वृत्तसमानं चोपरिष्टाद् वस्यामा 'पावसमा  
 वस्यामा' इत्यादिना । मागप्रतं देयसिकादिपूयोतकरमानमभिधिसुराह—'वचारि'सिगाहा मावितार्थ ॥ १५३१ ॥ यजुना  
 श्लोकमानमुपदर्शयन्नाह—'पणवीस'विगाहा निगदसिद्धेय, नयरं चतुर्भिर्गुणैः श्लोका परिगृह्यते ॥ १५३२ ॥ इत्युक्ता  
 नियतक्रयोरमार्गपृथक्ता, इदानीमनियतक्रयोरमार्गपृथक्तायसरः, तत्रेयं गाथा—  
 गमनागमनविहारे सुते या सुमिणदसणे राजो । नावानइसतारे इरियावहियापञ्चमणं ॥ १५३३ ॥  
 प्रसो पाणे सयणासणे य अरिहतसमणसिञ्चासु । उषारे पासयणे पणवीसं द्रुति वत्सासा ॥ २३४ ॥ वारम् (मा०)  
 त्रियभात्पात्रो गमनं अग्रथ उ सुरणेरिसिनिमित्तं । होइ विहारो इत्थयि पणवीस द्रुति कत्तासा ॥ १ ॥ (प्र०)  
 उरेमममुरेमे मसायीमं अणुप्रयणियाण । अहेव य कत्तासा पठयण पञ्चमणमाई ॥ १५३४ ॥

वैश्वेय राक्षस पञ्चिज्याय अत्रमासे या तद्देव हरिसे य । एषु वृत्ति नियया वस्तुना अनिजया सेसा ॥ १५२९ ॥  
 साय सयं गोसद्वृत्तिवेद्य सया इति एकवृत्ति । पञ्च य जात्रमासे अट्टसद्वृत्ति न वारिसय ॥ १५३० ॥  
 अत्रारि दो इषाद्यस बीस अत्राय वृत्ति वृत्तिभा । वसिष्य राक्षस पञ्चिज्या जात्रमासे अ हरिसे य ॥ १५३१ ॥  
 पणवीसमद्वतरस सिलोग पञ्चसरि न दोद्वया । सयमेव पणवीस वे वाचया य वारिसिप ॥ १५३२ ॥  
 निगदक्षिद्राः, नयरं दोषा-गमनादिविषया इति, सान्प्रव नियवक्रयोत्सर्गाणामोषव वक्ष्यात्मानं प्रतिपादयद्वाह-  
 'साय वि साय-मदोषः सत्र दावमुञ्चात्मानं मयति, वगुर्भिरुपोवकैरिति, माविष एकापमर्कः प्राक्, 'गोसद्वृत्ति प्रत्यु-  
 पयाद्यवद्वृत्तिवोवकद्वय मयति, दोषं प्रकटार्थमिति गाथार्थः ॥ १५३० ॥ वक्ष्यात्मानं वोपरिद्राह वक्ष्यात्मानं 'पापवमा-  
 दस्यासा' इत्यादिना । सान्प्रव दैवविकल्पपूषोवकरमानमभिधित्सुराह-'अत्रारि'सिगाहा माविषार्थः ॥ १५३१ ॥ अनुना-  
 भ्योक्तमानमुपदर्शयद्वाह-'पणवीस'विगाहा निगदक्षिद्रैव, नयरं वगुर्भिरुञ्चासैः श्लोकः परिगृह्यते ॥ १५३२ ॥ इत्युक्त्वा  
 नियवक्रयोत्सर्गपञ्चमया, इदानीमनियवक्रयोत्सर्गपञ्चमयायसरा, वद्वेवं गाथा-  
 गमनागमनपिद्वाते सुखं या सुमिषादसयं रावो । नाथानइसगरे इतिपावद्विपापविक्रमणं ॥ १५३३ ॥  
 अत्रं पाण सयणासयं य अरिहृतसमयसिमासु । उद्यारे वासयणे पणवीसं वृत्ति वस्तुसा ॥ १५३४ ॥ वारम् (मा०)  
 नियमाद्यभागे गमन अत्राय उ सुखयोरिसिसिनिमित्तं । दोह विदारो इत्यपि पणवीस वृत्ति कस्तासा ॥ १ ॥ (म०)  
 उरससमुदसं सत्कार्यस अशुभयनिपाय । अद्वेय य कस्तासा पदवण पविक्कमणमार्ग ॥ १५३५ ॥

धरेति, एष णमपिगप्यो, अन्नाचार्यो भणति-मत्तएण वंशमि अहंमि वेसंति, अण्णो भणंति-अहमपि वंशमिमिधि,  
सओ जप्पमं गुरुणं नियेदंति चउरयत्तामणासुत्तेणं, उच्चेदं-

इच्छामि त्वमासमणो ! उच्चट्टिओमि हुब्भणहं संतिय अहं कप्यं वा मत्त वा पडिग्गह वा कवल वा  
पायपुच्छण वा (रपहरणं वा) अकस्सर वा पय वा भाहं वा सिलोगवा (सिलोगवदं वा) भड वा हेउ वा पसिण  
वा वागरण वा हुब्भेहिं (सम्मं) चियत्तेण दिण मय अविणएण पडिच्छिय तत्स मिच्छामि हुब्भ (सूत्रम्)  
निगदसिद्धं, आचरिआ भणंति-‘आयदियसंतिचं’ति य अहंकारवज्जणत्थं, किं ममात्रेति, सओ जं विणइया तमणु-

निगदसिद्धं, आचरिआ भणंति-‘आयदियसंतिचं’ति य अहंकारवज्जणत्थं, किं ममात्रेति, सओ जं विणइया तमणु-

सद्धिं पणु मज्जति पंप्पमत्तामणासुत्तेण, उच्चेदं-  
इच्छामि त्वमासमणो ! कयाह व मे कितिकम्माहं आचारमंतरे विणयमंतरे सेहिओ सेहाविओ सगहिओ  
उच्चगहिओ सारिओ चारिओ चोइओ पडिचोइओ अकस्सुहिओउहं सुब्भणहं तवतेयसिरिय इमाओ वातुरंत

संसारकंताराओ साहहु निटयरित्तामिस्सिक्कु सिरसा मणसा मत्तएण वन्दामि (सूत्रं)  
संसारकंताराओ साहहु निटयरित्तामिस्सिक्कु सिरसा मणसा मत्तएण वन्दामि (सूत्रं)

निगदसिद्धं, संगहिओ-णाणापीहिं सारिओ-हिप्पवचसिओ चारिओ भदियाओ निवसिओ चोइओ-सखण्णाए पडिचोइओ-

‘अतोसि एव वचसो शिक्खरा ! मक्कथेव वण्णेममपि तेयमिमि वण्णे भणमि-अहमपि वण्णजामिहि ठव जामातं एएओ मिदेवमि वणुपंका-  
मज्जासुत्तेज आचार्यो भणमि-आचारकंतामिमिहि वाहइरावर्द्धवार्धं ठवो वद विवावितायामणुवाकिं वहु मज्जन्ते एयमज्जामज्जासुत्तेज वणुपीठ-आचार्यमिहि।  
सारिओ-‘दिते मवर्द्धिता’ चारिओ-‘मीठाव’ शिक्खरित्ता’ चोहिता’ रत्ताजामायां ममिचोहिता’



करोति, एत एवविगप्यो, अत्राचार्यो भणति-मत्प्रपण वदामि अहंपि वेत्ति, अण्णे भणंति-अहमपि पदार्थेभिधि,  
तत्रो अप्यगं गुरुणं निवेदयति चतस्रस्तान्मणसुत्थेणं, तच्चैव—

इच्छामि स्वमासमणो ! वदन्तिओमि सुन्मणइ सीतिय अहा कप्यं वा वत्त वा पडिगद वा कपल वा  
पायगुच्छण वा (रयहरणं वा) अक्खर वा पय वा गह वा सिलोणवा (सिलोणक वा) अह वा हेव वा पसिण  
वा वागरण वा तुन्नेहिं (सम्म) चियत्थेण विण मए अविणएण पडिच्छिय मत्स मिच्छामि हुक्क (सुधम्)  
निगवसिद्धं, आयरिआ भणति-‘आयरियसंविदंति य अहंकारवज्जणत्थं, किं ममानेति, तत्रो जं विणइया तमणु  
सहिं धट्ट मन्नाति पंचमस्तान्मणसुत्थेण, तच्चैव—

इच्छामि स्वमासमणो ! कयाइ य मे कित्तिकम्महाइं आयारमत्तरे विणयमत्तरे सेहिओ सेहाविओ सगाहिओ  
ववगाहिओ सारिओ वारिओ वोइओ पडिचोइओ अन्नुहिओइह सुन्मणइ मवत्तयसिरीए इनाओ चातुरत  
संसारकंताराओ साइहु नित्थरिस्सामिन्निकहुं सिरसा मणसा मत्प्रपण वन्दामि (सुध)

निगवसिद्ध, संगहिओ-णान्णादीहिं सारिओ-हिए पवसिओ वारिओ अहिवाओ निवसिओ वोइओ-सच्छणए पडिचोइओ-

१ करोति एव भवमो निवस्यः । मत्प्रपण वदन्त्येवमपि वेदामि अहं मत्प्रपण वदन्त्येवमपि वदन्त्यापीति तत्र आत्मानं एवमो निवेदयति चतस्रस्तान्मणसुत्थेणं तच्चैव—  
मत्प्रपण वदन्त्येवमपि वदन्त्यापीति तत्र आत्मानं एवमो निवेदयति चतस्रस्तान्मणसुत्थेणं तच्चैव—  
सारिओ-हिरे भवसिद्धः वारिओ-इतिहाए निवसिद्धः वोइओ-स्वच्छणए पडिचोइओ-

भुजो २ अक्षरये षष्ठीविधि, पञ्चा वापरिको भण्ड-निरुपायपाण'ति  
 वयणादेति ब्रह्मसेसमयं गाथार्थः ॥ १५२६ ॥ एवं सेसगावि साद्वर्णं कामा  
 छारे सप्तपदं वक्ष्यते त्रिषुं वा, पञ्चा देवसिप पट्टिक्कंति, केर भण्ति-साम-  
 सुस्सगाद्वयं, सेसदेवपाप य वस्सगां करोति, पट्टिक्कंसाणं गुरुसु धीविपसु पट्टिमा  
 इमं पि अंजलिमदलियगाद्वया समसीए नमोअरं करोति, पञ्चा सेसगावि भण्ति, पे  
 योक्की भुईओ भण्ति अस्स अचियाओ एति, एसा पक्खियपट्टिक्कमणाविही मूळटीका  
 भायरणागुसारेण भण्ति-देवसिप पट्टिक्कंते खामिए य समो पढसं गुरु वेव वट्टिछा पक्खियं  
 वओ ववपिअति, एय सेसगावि अद्वाराणिपा खामेजा वयपिअति, पञ्चा धीविचा भण्ति-देवसिपं पट्टिक्कंते पक्खियं

१ भुजः भुजवस्सगुवस्सगियेअ, पञ्चावाओ भण्ति-निरुपायपाणं यवतेति गुरुसमिति एतादि वववदीति वववदीति ॥ एवं सेसगावि साद्वर्णं  
 कामाद्वयं वक्ष्यते त्रिषुं वा, पञ्चा देवसिप पट्टिक्कंति, केर भण्ति-साम-सुस्सगाद्वयं, सेसदेवपाप य वस्सगां करोति, पट्टिक्कंसाणं गुरुसु धीविपसु पट्टिमा  
 इमं पि अंजलिमदलियगाद्वया समसीए नमोअरं करोति, पञ्चा सेसगावि भण्ति, पे योक्की भुईओ भण्ति अस्स अचियाओ एति, एसा पक्खियपट्टिक्कमणाविही मूळटीका  
 भायरणागुसारेण भण्ति-देवसिप पट्टिक्कंते खामिए य समो पढसं गुरु वेव वट्टिछा पक्खियं वओ ववपिअति, एय सेसगावि अद्वाराणिपा खामेजा वयपिअति, पञ्चा धीविचा भण्ति-देवसिपं पट्टिक्कंते पक्खियं

करोति, एष णवविगप्यो, अत्राचार्यो भणति-मत्पण पदामि अहंपि वेसति, अण्णे भणंति-अहमपि पदायेमिति, तत्रो अप्पग गुरुणं नियेदंति चत्तरथसामणसुत्तेण, तच्चेद-—

इच्छामि खमास्समणो ! सवद्विओमि सुभण्ह संमिय अह्मा कप्पं वा धरथ वा पडिग्गह् वा कप्पल वा पायपुच्छण वा (रयहरण वा) अक्खर वा पय वा गाह् वा सिलोगवा (सिलोगद्ध वा) अह्म वा हेउ वा पसिण वा वागरण वा सुब्भेहि (सम्मं) धियस्सेण विण्ण मए अविणएण पडिच्छिय तस्स भिच्छामि हुक्कह (सूधम्) निगदसिद्धं, आयरिका भणंति-‘आयरियसंतिव’ति य अहंकारयज्जणरथं, किं ममात्रेति, तत्रो जं विणइया तनयु सद्धिं धरु मन्नंति पंचमखामणसुत्तेण, तच्चेद-—

इच्छामि खमास्समणो ! कयाह् व मे कितिकम्मार्हं आचारमत्तरे विणयमत्तरे सेहिओ सेहविओ संगहिओ उवगाहिओ सारिओ वारिओ चोइओ पडिचोइओ अक्खुद्धिओऽहं सुभण्ह तवत्तेयसिरीए इमाओ चातुरत्त ससारकंनाराओ साह्हु नित्थरिस्सामिस्सिकहु सिरसा नणसा मत्तपएण धन्दामि (सूध )

निगदसिद्धं, संगहिओ-णणावीहिं सारिओ-हिए पवसिओ वारिओ भादियाओ निवसिओ चोइओ-स्सलणाए पडिचोइओ-

१ करोति एष णवविगप्यो । मत्पण पदामि अहंपि वेसति, अण्णे भणंति-अहमपि पदायेमिति । तत्रो अप्पग गुरुणं नियेदंति चत्तरथसामणसुत्तेण । तच्चेद-— इच्छामि खमास्समणो ! सवद्विओमि सुभण्ह संमिय अह्मा कप्पं वा धरथ वा पडिग्गह् वा कप्पल वा पायपुच्छण वा (रयहरण वा) अक्खर वा पय वा गाह् वा सिलोगवा (सिलोगद्ध वा) अह्म वा हेउ वा पसिण वा वागरण वा सुब्भेहि (सम्मं) धियस्सेण विण्ण मए अविणएण पडिच्छिय तस्स भिच्छामि हुक्कह (सूधम्) निगदसिद्धं, आयरिका भणंति-‘आयरियसंतिव’ति य अहंकारयज्जणरथं, किं ममात्रेति, तत्रो जं विणइया तनयु सद्धिं धरु मन्नंति पंचमखामणसुत्तेण, तच्चेद-— इच्छामि खमास्समणो ! कयाह् व मे कितिकम्मार्हं आचारमत्तरे विणयमत्तरे सेहिओ सेहविओ संगहिओ उवगाहिओ सारिओ वारिओ चोइओ पडिचोइओ अक्खुद्धिओऽहं सुभण्ह तवत्तेयसिरीए इमाओ चातुरत्त ससारकंनाराओ साह्हु नित्थरिस्सामिस्सिकहु सिरसा नणसा मत्तपएण धन्दामि (सूध )



शुभो न भवत्येव च वदितव्यं, पृच्छा व्यापतिभ्यो भगवद्-भिराचारणपातणोति निराचारणपातणो होहति, शुभ्योति, पृच्छां  
वदन्नाहति भक्तसेवसमं गाथायः ॥ १५२६ ॥ एवं सेवपाणि साधनं कामनावर्धनं करोति, भव विनासो नाशायो वा  
वाहे सत्तण्ड पृच्छां दिवह वा, पृच्छा देवसिधं पदिक्रमंति, केन भवति-साधनार्ण, भवे भवति-कामनावर्ध, भव्यो भवे  
पृच्छागावर्ध, सेवदेवपाय य सत्तगो करोति, पदिक्रमार्ण शुभ्यु धीपिपु वदुभागीभ्यो लिपिप शुभ्यो व्यापतिरा भवति,  
इमपि भवतिमद्वलियताहरथा समधीप नमोकारं करोति, पृच्छा सेवपाणि भवति, वदिवसं नति सुवर्गोरिची नति भवत्य  
पोकसी शुभ्यो भवति अस्त अतिपायो पति, एवा पदिक्रमपदिक्रमपाविही मूलदीकाकारेण भवति, भव्यो शुभ  
आयराणाशुचारेण भवति-देवसिप पदिक्रमे स्वासिप य सभ्यो पदमं शुभ येव उडिवा पदिक्रमं लाभति अहाराद्विपाय  
सभ्यो वदयिषति, एवं सेवगायि अहाराद्विपाय स्वाभेवा वदयिषति, पृच्छा धीपिपा भवति-देवसिधं पदिक्रमं पदिक्रमं

१. मुद्राः मुद्रादवस्थासुरस्यापि, यथाशास्त्रार्थं अवधिष्ठ-भिक्षाकारणायां मन्त्रेति गुरुप्राप्तिरिति पुराणि तत्त्ववाचीति भाष्येति॥ एवं विवेक्यमसि साधुर्वा  
 भास्यभाष्यमन्त्रक मुद्रंतिष्ठ तत्त्व विवेक्यो व्यवहारो वा तत्त्वा व्याख्यां यथापार्थं यथापार्थं वा यथादेशिकं यद्विज्ञानमिति वेदेषु अवधिष्ठ-साधनमेव, यन्मन्त्रे  
 यन्मन्त्रादि तन्मन्त्रादेशोऽपार्थिकं तत्त्ववादावधारणमेवमुक्तं मुद्रंतिष्ठ, भक्षिकामन्त्रासु गुरुसु यद्विष्टेय (५) सर्वव्यापिनिष्ठः। सुदीर्घादयो मन्त्राणि हस्तमसि यथादि-  
 मुद्रादिगताः। यथापार्थं यथापार्थं मुद्रंतिष्ठ यथापार्थं भावि भाविष्ठ यद्विष्टेय (५) सर्वव्यापिनिष्ठः। सुदीर्घादयो मन्त्राणि हस्तमसि यथादि-  
 यथापार्थं यथापार्थं मुद्रंतिष्ठ यथापार्थं भावि भाविष्ठ यद्विष्टेय (५) सर्वव्यापिनिष्ठः। सुदीर्घादयो मन्त्राणि हस्तमसि यथादि-  
 यथापार्थं यथापार्थं मुद्रंतिष्ठ यथापार्थं भावि भाविष्ठ यद्विष्टेय (५) सर्वव्यापिनिष्ठः। सुदीर्घादयो मन्त्राणि हस्तमसि यथादि-

भणिय होति, एव अहण्येण सिणिण चळोसेणं सबे खामिज्झंति, पच्छा नुक उद्धेऊणं अहाराइणियाए चळ्ळुहिभो धेय खामति,  
इयरेवि अहाराइणियाए सबेयि भवणतत्तमंगा भणति—वेवसियं पडिक्कंतं पक्खियं खामेभो पण्णारसण्हं दिवसाणमित्थादि,  
एवं सेसगावि अहाराइणियाए खामेति, पच्छा धंदिचा भणति—वेवसियं पडिक्कंतं पक्खियं पडिक्कमाधेह, तभो नुक नुरु-  
संदिहो वा पक्खियपडिक्कमयं कहुति, सेसगा अहासत्तिं कावस्सगादिसंठिया धम्ममहाणोवगया सुणंति, कहुिए सुसुसर  
गुणेहिं जं खंदिचं तस्स पायच्छियनिमिषं तिणिण कसाससयाणि कावसरगं करेति, धारसवज्जोयकरत्ति भणिय होति,  
पारिए चज्जोयकरे सुइं कहुति, पच्छा सवविह्वा सुइणंतगं पविठेहिवा ववंसि पच्छा रायाण पूसमाणवा भतिक्कंतं मंगलज्जे  
कज्जे बहुमज्झंति, समुपरक्कमेण भत्तंदिचनियवत्तस्स सोमणो कावो गओ अण्णोऽवि एवं धव चवडिभो, एवं पन्निनए  
चिणओवयारं खामेति चित्थिखामणासुत्तेणं, तव्हेदं—

१ काम्मन्ते एवाए शुक्कसाय बज्जाराधिकमूर्ध्निस्सिठ एव कामवति, इतरेइसि वज्जाराधिकं कर्दंअवववोचमाइ। मज्झिमे—ईवसिक्कं प्रतिक्कम्वं एधिक्क  
कमवममा एवइससु विवसेसु, एवं सेया भवि वज्जाराधिकं कामवति एवाए वडिक्कत्ता मज्झिमे—ईवसिक्कं प्रतिक्कम्वं एधिक्कं प्रतिक्कम्वं एवो सुएइए  
विहो वा पाधिकमपडिक्कम्वं कयसति सेया वज्जाराधिकं कामोअग्गीधिसिस्सिता वर्मव्यावोपयथा। सुम्वति कविदे मूक्कोचएउयेयु एव कविदं वल मावलिच  
मिमिदं श्रीपुअ्वाअवगानि कापोसयं कुदीसि इाएओओठकरासिठि मभिसं मवति पासिते वयोठकरे एउति कयवसिठ एवइएपडिवा सुज्जामवक्कं प्रतिक्किव  
वन्वरे, एवाए एवाए गुप्पमाअवा अविअन्ते माइठिके कर्दं बहुमज्झन्ते—अमुपराकमवोवाअविहवसिइवक्कल सोमया कावो एत। एवसेवज्जोअदि इए  
स्सिठः, एवं पाधिकमिववोपचारं कामवति विदीपवाममासुत्तेण

इच्छामि अथासम्भो ! पिय न मे न मे इच्छाण सुहार्ण अप्पार्पकाणं अमरगणोणाणं सुसीढाण सुप्पयाणं सापरिपवज्जसापाण णाणेण वसणेण हरित्तेण तवसा अप्पायं मावेमाणाणं बहुसुमेण मे दिवसो पोसवो पक्खो वतिक्खो, अण्णो य मे कच्छाणेण पज्जुवहिक्खो सिरसा मणसा मत्थएण वयामि ( सूअम् )  
निगदसिद्धं, आपरिमा मणसि-साम्महिं समं जमेव मणिमसि, तवो चेइपवदावणं सापुवदावणं न निवेदिं  
कामा भण्णिहं—

इच्छामि त्वमासम्भो ! पुट्ठिं चेइपाइ यदित्ता अमसिस्ता सुच्चं पायमूले विहरमाणेण मे केइ बहुदेव  
सिपा साहुणो दिहा सम(मा)णा पा वसमात्ता वा गामाणुणाम पुइज्जमाणा वा, राइणिपा संजुक्कंति ओत्तरा-  
इणिपा वदति अज्जा वदति अग्निपाओ वदंति सावपा वदंति साविपाओ वदंति अइपि नित्सङ्को निक्क-  
साओ ( निक्कट ) सिरसा मणसा मत्थएण पदामि ॥ अइमसि वदावेमि चेइपाइ ( सूअम् )

निगदसिद्धं, नयरं समणो-सुहवासी पसमाणो-णयपिगप्पविहारी, सुहवासी संघावळपरिदीपो णव विमारे जेतं काकव  
पिहरति, नयपिगप्पविहारी पुण ववमद्ध अह मासा मासकप्पेण विहरति, एए अह विगप्पा, वासावातं एणीमि जेव तत्थे

१ अज्जाणं असीमं-सागुमिः समं वदवदं मसिहमिह, अहमावदं न अणुक्कदं न सिरेरिपुअमा अण्णिह-वतं अक्खो-सुहवासा केअमणे  
( ववदं )—अवमिकमसिहमा, इहवासा जीणीअवदवावको वव विमारा जेतं इज्जा विहरति अज्जमसिहमा पुण अणुक्कदं माअइ माअमणे  
पिहरति, एए ७ विमाराः अवावमवदसिहमा इत्येव

साभाह्यपुपयं पट्टिक्ममिति, सर्वो ध्वणापुष्य सामेति, ध्वणं काकर्णं समो सामाह्यपुष्यं कावस्सग करोति, तस्य  
 ध्वयंति-क्मि य निवसा ध्वयं गुरुहि, तो तारिसयं त्वं पवज्जामो, आरिसेण तस्स हाणि न भवति, समो ध्वित्वि-  
 षमासासामण करोमो, न सक्केमो, एगधियसेण कर्णं, तद्वि न सक्केमो, एव आव पव मासा, समो चत्तारि तमो विवि  
 यथो दोमि, एवो एवो सर्वो जज्जमास चत्तयं आयधिलं एगद्राणयं पुरिमहुं निविगाइयं, नमोकारसदिय वति, त्वं च-  
 'वरिसे किं सवं कापं'ति, यरिसे कावस्सगो छम्मासमेगूण ( दिणादि ) हाणी आव पोरिसि नमो धा, एवं अं समरयां कावं  
 सगासदमाया धिवाए करोति, पच्चा धदिवा गुरुसक्कयं पवज्जमिति, संवे यं नमोकारइत्तगा समो वट्टति बोसियेति य,  
 निसीयति यं, एवं पोरिसिमादिसु विमासा, समो सिठ्ठणं गुरं अहा पुं, नमरमपसद्वनं दति अहा धरकोइतादी सचा  
 न वट्टति, सर्वो देवे धवति, समो पपुंवेळं संदिसावति, ततो रयंहरणं पट्टिउहति, ततो तवधिं संदिसावति पट्टिउहति य,

१ सामाधिकपूरकं मतिक्काम्यमिह ततो भवत्तकपूरकं समयमिह वत्तवं कृत्वा ततः सामाधिकपूरकं कावोत्सवं गुरुमिह तत्र विज्जवन्ति-क्मि  
 पुक्काव वयं गुरुमिहः तवत्तकवत्त ततः मपयामहे वाइयेव तव हाणिं मवमिह तवविज्जवन्ति-क्ममासवत्तव गुरुमो । च कुरुमा पुरकवत्तवोमो । तवमिह च  
 कुरुमा, एव वावए पव मासा तवत्तवत्त तवत्तवीए ततो होतव एवं ततोइमगतं चत्तयेमज्जमार्जाममं पक्कत्तवत्तं पवमं मिहिट्टिकं नमत्कारवत्तं देमि  
 वरसे कावोत्तयो पवमासा पक्कदिवादिवाविवाए वीरवी नमत्कारवत्तं वा एवं वए समयं कपुं तवत्तवत्तवा इदि गुरुमिह पच्चा धदिवा गुरुसमिह  
 मसिपयत्ते, सर्वं च नमत्कारवत्तं पात्ताः समकमुपिहमिह जुत्तवन्ति मिहिट्टिकं च एवं वीरव्यादिय विवावा तवमिहः पुरीयेया एवं नमत्कारवत्तं  
 वरमिह पवा गुरुकोक्कियावाः सत्ता जेविहमिह ततो देवत्तं वत्तवं ततो वट्टिके संदिसमिह ततो रयंहरणं मतिक्कामिह तव वापि संदिसमिह मतिक्कामिह च

तेषां येषां पश्चिमेति च कालं निवेदयति, अन्ते च मणति—शुद्धमणोरं कालं निवेदयति, एवं तु पश्चिममणकालं सुतेति  
 यथा पश्चिममणं शुद्धमणयो येष पश्चिमेत्येता मयति, तेषां रात्रयं, द्वाविं पश्चिमयं, तेषामां विही—आह दीपसिद्धं  
 पश्चिममणं अर्धं निवेदयति पश्चिममणं तदेव शुद्धं निवेदयति, तयोः सादृशं येषां मणति—

इत्युक्तं स्वमासमणो ! उक्तमिदं अतिमत्तरपश्चिमं कामेयं, पश्चिममणं विवसाणं पश्चिममणं रात्रिं  
 ज किंचिदप्यस्ति परपश्चिमं अन्ते पाणे विणयं येयावदे आलाने सज्जायते उक्तमणो संजायते अन्तरमासं  
 उक्तमणसाय जं किंचिदप्यस्ति मज्जा विणयपरिशीलं सुद्धं वा वापरं वा शुद्धं आणाह अहं न पाणामि नत्वं  
 मिच्छामि शुद्धं ( सुद्धं )

इदं च निगदसिद्धमेव, नपरमत्तरमाणा—आचार्यस्य आपमाणस्यान्तरं मायते, उपरिमाणा पूरककालं तदेव निवेदयति  
 भावते, अमासाय पदभिभवत्तत् प्रविष्टादयथाह—‘अहमपि काममिदं ग्राह्यं व्याख्या—अहमपि काममिदं शुद्धमेति

१ यथा येषां पश्चिममणं कालं निवेदयति अन्ते च मणति—शुद्धमणोरं कालं निवेदयति, एवं तु पश्चिममणकालं सुतेति  
 यथा पश्चिममणं शुद्धमणयो येष पश्चिमेत्येता मयति, तेषां रात्रयं, द्वाविं पश्चिमयं, तेषामां विही—आह दीपसिद्धं  
 पश्चिममणं अर्धं निवेदयति पश्चिममणं तदेव शुद्धं निवेदयति, तयोः सादृशं येषां मणति—



कहेति, कावचकागे न वस्सुच्चिनिमित्तं कहेति, तस्य य पायोस्सिपुइमादीये णिक्कपकावचसमापकंवतमाधारं विवरे,  
 भाइ—किंनिमित्तं पदमकावससगो एव राइयाधारं ण विवरेति १, उच्यते,  
 निद्रामयो न सरइ अइआरं मा य यइण उणोऽस । किइअकरणदीसा वा गोसाईं तिस्सि वस्सगगा ॥ १५२५ ॥

निद्रामयो—निद्राभिभूयो न सरइ—न संसरइ सुइ अइयां मा यइण उणोऽण्णं अंधपारे वदवयव, किंतिअकरण  
 दीसा वा, अंधपारे वदसणाओ मंदसखा न वेदति, एएण कारणेण गोसे—यवूसे आइए विष्मि कावसगगा मवन्ति, न  
 पुण पाओसिए अइए एवोत्ति ॥ १५२५ ॥

पस्य पदमो वरित्तं वसणसुदीरं पीयथो दोइ । सुयनाणस्स य ततिओ नयर विजति तस्य इमं ॥ १५२६ ॥  
 तइए निसाइयार विजइ वरममि किं तव काइ १ । उम्मासा एगविणाइइणि आ पोरिति नमो वा ॥ १५२७ ॥  
 अइमपि अं न्नामेमी तुन्नेहिं सम अइ य पवामि । आपरियसत्तिप नित्थारगा च हुक्को अ वयणाइ ॥ १५२८ ॥  
 उवो विठिअण अइयार नमोकारेण पोरिवा सिद्धाण सुइं काकण पुवमणिएण विहिणा धंविआ काओएयति, तयो-

१ कंठविण कावोन्पयं व वप्पुदिमिध कुदीरि तव न माओरिक्कसुपादिं वधिअवअवेअरंरवंधीअरं निजवन्ति । काइ—संक्षिप्तं मव-  
 नकावोन्पयं एव ताविकाईअरं न विजवन्ति १, निद्रामयो—निद्राभिभूयो न वरति सुइइयां मा यइमयोऽमं वल्लमानाअमकारे कृतिअमंअर-  
 दावा वा—अवकाइइइअधार मवमंअदा न वरवन्ति, एतं कारणं मायूसे आदी अयः कायोअयो मवन्ति न पुण माओरिक्क वईक्क इमि एवविजविज्या-  
 भिज्याइ वदरअरव ताविकावा विज्जाअमि १ इति इत्या वृत्तमजिनेव विधिया वन्निपायाऽऽकोवयन्ति, तवः

‘सुकथ आणत्तिपिब छोए काकण’ति अहं रण्णो मणुस्सा आणत्तिणाए पेसिया पणामं काकण भन्दंति, तं च काकण पुणो पणामपुव्वं निवेदंति, एवं साहुणोऽपि सामादयगुरुदंयणपुव्वं चरिणापिसोहिं काकण पुणो सुकथकति कम्मा सत्तो गुरुणो निवेदंति—भगवं ! कथं ते पेसणं आयपिसोहिकारगंति, वंदणं च काकण पुणो सक्कुइया आयरिया मिमुहा विणयरत्तिथंज्जिउव्वा विदंति, ज्ञाथ गुरु पुइगाहणं करोति, सत्तो पच्छा समवाए पढमपुवीए इइं कइंति विण वत्ति, तच्चो इइं धइंतिचाओ कइंति तिणि, अहंवा वइतिया इइओ गुरुपुत्तिहणे कए तिणिच्चि गायार्थः ॥ १५२४ ॥ तच्चो पावसिय करोति, एवं ताव देवसियं करोति, गतं देवसियं, राइयं इवाणि, तसियमा यिही, पढमं विय सामादयं कइ रुण चरिसविमुच्चिनिमित्तं पणुवीसुत्तासमिच कावत्सगं करोति, तच्चो नमोकारेण पारिचा दंसणाविसुच्चोनिमित्तं चर वीसत्थयं पढंति, पणुवीसुत्तासमोच्चमेव कावत्सगं करोति, एएयवि नमोकारेण पारेचा सुयणाविसुच्चोनिमित्तं सुयणावत्थय,

१ कथा एवमा मणुस्सा आणत्ता मेसिया मयाम कथा गच्छन्ति तव कथा गुहा मयामपूर्वक निवेदयन्ति एव सामोभोति साममिदकगुरुदयद्वयं चारिणापिसोहिं कथा गुहा सुत्तवत्तिकर्मायः सत्तो गुरुणो निवेदयन्ति—भगवद् ! कृतं तव देवजगत्पविमुच्चिकारकमिदं वत्थं च कथा गुहासककुला आवायीमिमुहा निमयरत्तिवाज्जिकिमुमाकिहन्ति वापुइएवः सुत्तिमद्वयं कुर्वन्ति तदा एवमा समोभावा मयामपुवी सुत्तोः कवचन्ति निवव दंति तदा सुत्तोर्धमावाः कथयन्ति तिस्रोऽववा कर्त्तमावाः सुत्तयः । तदा प्रायेणिकं कथं कुर्वन्ति एवं वावदेवत्तितं कुर्वन्ति सव देवसिक, तसिमियादीं विविचि—मयममेव सामासिक कथयिष्या चरिणापिसोहिं पढमिदं पणुगासमायं कायोत्तरं कुर्वन्ति ततो नमस्कारेण पारिच्चा एवंवसिपुत्तिदीपितं चपुत्तिपिठकं पकन्ति एवमेवपणुगासमायमेव कायोत्तरं कुर्वन्ति अत्रापि नमस्कारेण पारिच्यता सुत्तवत्तविमुच्चिदिसिचं सुत्तवत्तवत्तं





धर्मसिद्धि, एतत्तथापि विद्यमाने, अस्मात्प्राप्तं श्रुत्वा तत्तथापि भवति । अस्मात्तत्तथापि भवति । अस्मात्तत्तथापि भवति ।

एतत्तथापि श्रुत्वा निवेदति अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति ।

निगदसिद्धं, आसत्तथापि श्रुत्वा तत्तथापि भवति ।

एतत्तथापि श्रुत्वा निवेदति अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति ।

निगदसिद्धं, आसत्तथापि श्रुत्वा तत्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति ।

१ अस्मात्तथापि श्रुत्वा तत्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति ।

अस्मात्तथापि श्रुत्वा तत्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति । अस्मात्तथापि भवति ।

मन्त्रमन्त्रं च समस्तमन्त्रैश्चैकमन्त्रमिति, यथा सर्वपा-सर्वकाष्ठं 'सर्वसिद्धेऽन्त्रः' भीष्मसिद्धादिभेदसिद्धेऽन्त्रः, नैवद्या सर्वं धार्यं सिद्धं  
 देवतां ते यथा वेत्स्य, इत्येव सोमाग्नयेन सर्वसिद्धनमोस्कारं कृत्वा पुनरासन्नोपकारित्वाह धर्ममानवीर्याधिपतः भीष्मन्मही-  
 वीरवर्धमानस्त्रामिनः स्तुतिं कुर्यान्नित्य- 'ओ देवाणां देवो जं देवा पंचस्रीं स्मार्त्ति, यो भगवान् महावीरः देवानामपि भवन्-  
 वास्त्रादीनां देवः, पूज्यत्वात्, यथा आह-यं देवाः प्राप्नुयुः नमस्तस्मिन्-विनयवित्तकस्तुताः सत्यः प्रणमन्ति, तं देव-  
 देवमहिम्नं देवदेवाः-शक्रादयः सैः प्रहितं-पूजितं शिरसा वक्ष्यमाग्नेत्यावरप्रदर्शनार्थमाह, वन्दे, तं कं १- 'महावीरः' इति  
 गतिप्रेरणायो रित्यस्य विपूर्वस्य विद्योपेण इत्यसि-कर्म नमयति याति यो विजिमिति वीरः, महोक्तासौ वीरश्च महावीरः तं, इत्य-  
 स्तुतिं कृत्वा पुन कञ्जप्रदर्शनार्थमिदं पठति- 'एकोऽपि नमोऽकरो विष्णवरयसहस्रे'त्यादि, एकोऽपि नमस्तेऽकरो विजिनवर-  
 दुरमस्य पद्ममानस्य सकारसागराचारयति नर पा नारी पा, इयमत्र भावना-सति सन्त्यग्रहकृते परया भावनया क्रिय-  
 माया एकोऽपि नमस्कारः यथाभूताभ्युपसायहेतुर्भवति यथाभूताभ्युणिमवाप्य निःसारति भवोदधिनिःसृतः क्षरमे-  
 कापेयवारादवदधमुच्यते, अन्मया आदिप्रादिपत्यं स्यात् । एवास्तिः स्तुतयो नियमनोभ्यन्ते, केचिद्वृत्त्या अपि  
 पठन्ति, न च सप्त नियमः, 'क्रिस्तिक्कम्' पुणो संदस्य पठितेहिय उपविशति, मुहयोश्चियं पठितेहंति सवीषोपरियं कायं  
 पठितेहिवा मायारियसस पदपं करोति'सि गाथार्थः ॥ १५५॥ आह- 'किनिमिचमिदं बन्धनकमिति १, उच्यते-  
 सुहृदं भाणसि पिय स्तोत्रं काकाण सुहृदपरिदकम् । पट्टमिया मुईयो मुहुरगणो कय तिप्पि ॥ १५६॥

सिद्धाणं बुद्धाण पारगयाण परपरगयाणं । लोकेर्गन्तुवगयाण नमो सया सन्धिसिद्धाणं ॥ १ ॥ ओ देवा  
 णीं वि देवो ण देवा पञ्जली नमंससि । तं देवदेवमहिम् सिरसा धंदे महावीरं ॥ २ ॥ इक्षोऽपिं नमुकारो जिण  
 धरेवंसहस्स वद्धमाणास्स । संसारसागराओ मारेइ नरं व नार्हि या ॥ ३ ॥ वज्जितसेलसिहर विमसा नाण  
 निसीहिआं जंसस्स । तं वम्मवक्कवहिं अरिट्ठेमिं ममसासि ॥ ४ ॥ वसादि अट्ट वस धो य पदिआ जिणपरा  
 सवज्जीस । परमहनिहिअट्टा सिद्धा सिद्धिं मम विससु ॥ ५ ॥ ( सट्ठ )

अस्यं द्यास्या—सिद्धं क्मातमेपामिति सिद्धा निर्देगकर्मणपना इत्यर्थस्तेभ्यः सिद्धेभ्यः, ते च सामान्यतो विधीसिद्धा अपि  
 भवेन्त्यत आह—बुद्धेभ्यः, तत्रावगतांशेषाविपरीतत्वा बुद्धो उच्यन्ते, सत्र कैश्चिद् स्वतन्त्रतया देवदेवो देवदेवो नम्यतनाय  
 इहागच्छन्ति इत्यन्युपगम्यन्ते अत आह—‘पारगतंभ्यः’ पार—पर्यन्ते संसारस्य प्रयोजनभावस्य च गताः पारगताः तेभ्यः,  
 देवपि चानादिसिद्धैकजगत्परीच्छावशात् कैश्चिद् तथाऽन्युपगम्यन्ते अत आह—‘परम्परगतंभ्यः’ परम्परया एकेनाभिव्य  
 कार्यादागमात् (कैश्चिद्) प्रवृत्तोऽन्येनाभिव्यकार्यादन्योऽन्येनाप्यन्य इत्येवमूतया गताः परंपरगतास्तेभ्यः, आह—प्रथमप्य  
 केनाभिव्यकार्यादागमात् प्रवृत्तं इति ।, उच्यते, अनादित्वात् सिद्धाना प्रथमस्यानुपपत्तिरिति, अथवा कथञ्चिद् कर्म  
 धयोपशमात् पूर्वोक्तं दर्शनात् ज्ञानं ज्ञानाच्चारित्रमित्येवमूतया परम्परया गितास्तेभ्यः, देवपि च कैश्चिद् धर्मजाकायजा  
 एवेत्यन्य इत्यत आह—‘लोकाप्रमुपगतंभ्यः’ लोकाप्रभू—रूपत्वाग्नारास्यं तमुपगताः तेभ्यः, आह—कर्म पुनरिह सर्वत्र  
 कर्मविप्रमुक्तानां लोकाप्रं पावद्वतिर्भवति ।, मावे वा सर्वदेव कस्माच्च भवतीति ।, अथोच्यते, पूर्वविषयपदाद् दण्ठादिभ्य-

लब्धेति किमर्थमिति ?, अत्रोच्यते, तद्विनामनत्वाद्दोषः, तस्मैवगुणस्य धर्मस्य सारमुपलभ्य कः सकर्मकः प्रमादी मनेच्चारिषधर्म  
 इति, यत्तद्वैषम्यतः 'सिद्धे भो पश्यमो नमो विनामने' इत्यादि, सिद्धे-प्रसिद्धिर्ते प्रख्याते मो इत्येववतिष्ठायिनानामभ्यर्थं पश्यन्तु  
 भवन्तः प्रयतोऽहं-यथाशक्तयोष्यतः प्रकर्षेण यथा, इत्थं परसाधिकं भूः (कृत्वा पुनर्नमस्करोति-नमो विनामते' अर्थाद् विम  
 क्रिपरिणामो नमो विनामताय, तथा आस्मिन् सति विनामते नन्विः-समृद्धिः सदा-सर्वकारं, कः-सर्वमे-चारिषे,  
 यथोक्त-पश्यम पापं तमो दूषे'त्यादि, किंभूते संयमे !-देवनागमुषण्णकिन्नरगणैः सञ्चरमावेनार्जिते, तथा च संयम-  
 वन्ता अर्च्यन्ते एष देवादिभिः, किंभूते विनामते !-ओक्त्वतेऽनेनेति लोका-ज्ञानमेव स वक्ष्यतिष्ठितः, तथा अगादिदं  
 इत्यवया, केचित् मनुष्यलोकमेव अगात् मन्यन्ते इत्यत आह-त्रैलोक्यमनुष्यासुरं, आचारायेयक्यमित्यर्थः, अथमित्यर्थः  
 सुतभर्मा पद्वता-एद्विमुपपातु दाभवतः-ब्रह्मार्पादेयाभित्या, तथा योक्त-ब्रह्मार्पादेयात् इत्येवा द्वादशाक्षी न कदाचिद्  
 नासीदित्यादि, अन्ये पठन्ति-भर्मा पद्वता दाभवतं इति, अस्मिन् पक्षे क्रियाविशेषणमेव, अन्त्यं पद्वतां अमप्यु  
 त्येति आपना, पित्रपतां कर्मपरमवादिपित्रयेनेति इदम्, तथा धर्मोत्तर-चारित्र्यधर्मोत्तरं पद्वतु, पुनर्द्व्यभिधानं मोक्ष-  
 धिना प्रत्यह ज्ञानधृदिः कार्येति प्रदर्शनार्थं, तथा च तीर्थकरनामकर्महेतुत्वं प्रतिपादयतोक्त-“अप्युदपाणगार्णे”ति,  
 'सुपसस भगवभो करोमि काउससाग धंदणयधिपाप' इत्यादि प्रागपत्, यावद्दोस्तिरामि । परं सुतं पठिषा पञ्चवी  
 सुरसाधमेव काउससाग करोमि, आह च-'सुयणाणसस चउरयो'ति, तमो नमोकारेण पारिषा विमुक्तचरणपदंअप्युदपा  
 यारा मगाटनिमित्तं चरणद्वयमुपदेसगाणं सिद्धाण सुर कर्तुंति, अणियं च-'सिद्धाण सुरं द'ति, सा चेयं स्तुतिः-

श्रुतधर्मस्य प्रोच्यासे-‘तमतिमिरपटलविभ्रंसणस्य सुराणो’त्यादि, तमाः-अज्ञानं सर्वेषु विमिरं अथवा तमाः-पटलसृष्टिनि  
 पक्षे ज्ञानावरणीय निष्काचितं विमिरं तस्य पटलं-मृन्दं तमस्विमिरपटलं सद् विषयं स्याति नात्रावतीति तमस्विमिरपट  
 लविषयं सनः तस्य, तथा चाज्ञाननिरासेनेयास्य प्रयुक्तिः, तथा सुराणनरेन्द्रमहिम्नस्य, तथा चागममदिमानं मूर्त्यस्यप  
 सुरादयः, तथा सीमा-सर्पादां धारयतीति सीमाधराः, सीमि वा धारयतीति तस्येति, सृष्टीधर्मो पक्षी, स पन्दे, तस्य वा  
 यत् माहारम्य तद् पन्दे, अथवा तस्य पन्द इति पन्दनं करोमि, तथाहि-आगमपन्थ एव मर्यादां धारयन्ति, किं  
 भूतस्य ?-प्रकर्षेण स्फोटितं मोहजालं-मिथ्यात्वादि येन स तपोप्यते तस्य, तथा चास्मिन् सति विर्ये किनो मोहजाल  
 यिलयमुपयासेय, इत्थं श्रुतधर्ममभिपन्थापुना तस्यैव गुणोपदर्शनद्वारेण प्रमादागोचरता प्रतियद्व्यव्याह-‘आर्जुनरामर  
 णो’त्यादि, जातिः-वैरपत्तिः जरा-ययोद्धानि मरण-माणस्यागः षोकः-मानसो गुहाविशेषः, जातिश्च जरा च मरण च सोक  
 श्वेति द्वन्द्वः, जातिज्वरामरणशोकान् प्रणाशयसि-अपनयसि जातिज्वरामरणशोकप्रणाशनस्त्वस्य, तथा च श्रुतधर्मोक्तानु  
 धानाज्जात्यादयः प्रणश्यन्त्येव, अनेन चास्यानर्थप्रतिपातित्वमाह, कल्पम्-आरारयं कल्पमणवीति कल्याणं, कल्पं शब्द  
 यतीत्यर्थः, पुष्कलं-सम्पूर्णं न च तदर्थं किं तु विशालं-विकीर्णं सुख-प्रसीतं कल्याणं पुष्कलं विशालं सुखमायदिति-  
 प्रापयतीति कस्याणपुष्कलविधासुखायद्वस्त्वस्य, तथा च श्रुतधर्मोक्तानुधानानु कलञ्जणमपवर्गसुखमयाप्यत एव, अनेन चास्य  
 विशिष्टार्थप्रसाधकत्वमाह, कामाणी देयदानपनरेन्द्रगणार्थित्वस्य श्रुतधर्मस्य सारं-सामर्थ्यमुपलभ्य-‘दृष्ट्वा पिशाय मुर्वादि प्रमादं  
 सचेतननः ? चारित्र्यधर्मं प्रमादः कर्तुं न युक्त इति इदमम्, आह-सुराणनरेन्द्रमहिम्नस्येति युक्तं पुनर्देयदानपनरेन्द्रगणाच्च

तस्येति किमर्थमिति ? अत्रोच्यते, तन्निगमनत्वाद्दोषः, तस्यैवगुणस्य धर्मस्य सारमुपलभ्य काऽऽकर्माः प्रमादी भवेच्चारिषधर्म  
 इति, यत्तद्वैषम्यतः 'सिद्धे भो पयभो नमो विष्णुमये' इत्यादि, सिद्धे-प्रतिष्ठिते प्रख्याते भो इत्येतत्प्रतिष्ठादिनामानाम्बन्धं परमन्तु  
 भवन्तः प्रपठोऽह-यथादात्मनोऽष्टाः प्रकर्षेण यतः, इत्थं परसाधिकं भू(क)त्वा पुनर्नमस्करोति-'नमो विष्णुमते' अर्थाद् विम  
 किपरिणामो नमो विष्णुमथाय, तथा चास्मिन् सति विष्णुमते नन्विः-समृद्धिः सदा-सर्वकाष्ठं, क !-संयमे-चारिषे,  
 यथोक्त-यदमं पाणं सभो द्ये'त्यादि, किंभूते संयमे !-देवनागमुपवर्णकिञ्चरगणैः सञ्चूतभावेनार्चिते, तथा च संयम-  
 यन्तः अर्चयन्त एव देवादिभिः, किंभूते विष्णुमते !-ओम्पठेऽनेनेति लोकाः-ज्ञानमेव स एव प्रतिष्ठितः, तथा चागदिदं  
 नैपतया, केचित् मनुष्यलोकमेव जगत् मन्यन्ते इत्यत आह-त्रैलोक्यमनुव्यासुतं, आधारायेयक्यमित्यर्थः, अयमित्यर्थः  
 सुतधर्मो यद्वतां-पुष्टिमुपयातु शाश्वतः-अध्यायोदयाभित्यः, तथा चोक्तं-अध्यायोदयात् इत्येवा द्वादश्याज्ञी न कदाचिद्  
 नासीदित्यादि, अन्ये पठन्ति-धर्मो यद्वतां शाश्वतं इति, अस्मिन् पक्षे क्रियाविशेषणमेतत्, आश्वतं यद्वतां अप्रभु  
 स्येति भावना, यिञ्चयतां कर्मपरम्परादिविषयेनेति इदय, तथा धर्मोऽह-चारिषधर्मोऽहं कर्तुं, पुनर्देव्यभिधानं मोक्षा  
 धिना प्रत्यह ज्ञानपुष्टिः कार्येति प्रदर्शनार्थं, तथा च तीर्थकरनामकर्मदेवत्वं प्रतिपादयतोक्तं-"अपुत्रपापगहमे"ति,  
 'सुपरस भगवतो करोमि कावत्सगा यद्वपयसिपाय' इत्यादि प्रागवत्, यावद्वोस्तिरामि । एवं सुप्तं पठिषा पशुवी-  
 सुत्सासमेव कावत्सगां करोमि, आह च-'सुपणाणसस चवत्सो'ति, सभो नमोकारेण पारिजा विमुक्तस्वरूपदं सणसुभाह  
 यारा मगातनिमित्तं चरणदसणसुपदेसगाण सिद्धाणं गुर कर्तुंति, मणियं च-'सिद्धाण गुरे य'ति, सा चेयं स्तुतिः-

ततस्तावेव कस्माद्य क्रियेते ? उच्यते, द्रव्यसावत्वात्प्रधानत्वात्, तर्कश्च—‘द्वयस्यैव भावस्यैव’ इत्यादि, अतः साधकाः पूज  
 नसत्कारोपपि कुर्वन्त्येव, सर्वेष्वसु प्रशस्तान्यवसायनिमित्तमेवमभिदधति, तथा ‘सम्माणवर्तिष्याप्’ चि स मानप्रत्यय—सन्मान  
 निमित्ते, तत्र सुत्यादिभिर्गुणोपपत्तिकरणं सन्मानं, तथा मानसः प्रीतिविशेष इत्यन्ये, अथ वस्तुनपूजनसत्कारसन्माना एव  
 किंनिमित्तमित्यत आह—‘बोधिलामवधिष्याप्’ बोधिलामप्रत्यय—बोधिलामनिमित्तं प्रेत्य चिन्तप्रणीतधर्मप्राप्तिर्बोधिलामो  
 मध्यते, अथ बोधिलाम एव किंनिमित्तमित्यत आह ‘निरुपसगपचिष्याप्’ निरुपसर्गप्रत्यय—निरुपसर्गनिमित्तं, निरुप  
 सर्गा—मोक्षः, अयं च कायोत्सर्गः क्रियमाणोऽपि अद्या(वि)विकलस्य नाभिजतिवार्थप्रसाधनायाजमित्यत आह—‘सद्यः ए मेहाप  
 चिर्हृद् चारणाप अणुप्येहाप धर्मभाणीप ठामि कावत्सर्गं’ति अद्या हेतुभूतया विद्यामि कायोत्सर्गं न पञ्चानियोगा  
 दिना अद्या—निजोऽभिजापः, एवं मेवया—पटुत्वेन, न अहवया, अन्ये तु व्याचक्षते—मेवयेति मर्यादापक्षित्वेन नासम्प्रसव  
 येति, एवं ब्रूत्या—मनःप्रणिधानकक्षणया न पुना रागद्वेषाकुलवया, चारणया—अर्हद्गुणाधिकरणकपया न तद्गुण्यवया,  
 अनुपेक्षया—अर्हद्गुणानामेव अर्हद्गुणवित्तुतिकेणानुचिन्तनया न सद्बुद्धिकत्वेन, वर्द्धमानयेति प्रत्येकमभिसम्बध्यते, अद्या  
 वर्द्धमानया एवं मेवयेत्यादि, एवं विद्यामि कायोत्सर्गम्, आह—उक्तमेव प्राक्करोमि कायोत्सर्गं सारम्व विद्यामीति किमर्थं  
 मिति ? उच्यते, ‘वर्द्धमानसामीप्ये वर्द्धमानवद्वा ( पा० ६-२ २३१ ) इति कृत्वा करोमि कस्मिन्व्यामीति क्रियाभिमुख्यमुक्तमिदानीं  
 त्वांसमवर्त्तयात् क्रियाकालनिष्ठाकालयोः कथञ्चिदभेदात् विद्याम्येव, आह—किं सर्वया !, नेत्याह—‘अद्यप्युपसिष्यणमित्यादि  
 पूर्ववत् यावद्बोधिरामि’ति, एते च सुखं पठिष्या पण्योसूसासपरिमाणं कावत्सर्गं करोति, ‘दंसणपिसुद्धीय सव’ति,



तृतीयत्वं चास्यातीर्थांरात्रौचतविधप्रथमकामोत्सर्गापेक्षयेति, तस्मात्तत्रोच्चारणेण पारेणा सुवर्णपाप्परिदुहितिमिधं कतिंवापि-  
सोदणत्वं च सुवर्णममस्य भगवतो परार्थं मणीषं तर्पणकर्मगतमोक्षारणुवर्चं गुरं पदमिति, तैत्तिरीयैः—

पुनस्तत्परदीपद्वे पाण्डुरसंदे य ऊर्ध्वदीपे य । अरहेरवयविवेदे धर्मोद्धारं धर्मसाभि ॥ १ ॥ तन्मतिभिरपह-  
विचसणस्य सुरगणानरिदमहिअस्य । सीमाधरस्य धंदे पक्षोदियमोहधीलस्य ॥ २ ॥ ऊर्ध्वार्जराभरणीसोर्ग-  
णासणस्य, कक्षाणपुनस्तलविसालसुहाधरस्य । की वेवदानेननरिदगणविअस्य, धर्मस्य सारसुवकजन के-  
पमाय ॥ ३ ॥ सिद्धे भो ! पणभो णमो जिणमप मदी सया संजसि, दिवनागसुवणणकिण्ठंगणस्यसंभूतंभोभा-  
विप । एगेगे जत्थ पइडिओ जगमिणी नेलुक्कमयासुरं, पम्मो धवुव सासंको विअपक धम्मसुरं कवुव ॥ ४ ॥  
सुअरस भगवओ करेमि काउत्सगा वंदणं अमत्थं । ( सूअम् )

अस्य व्याख्या—पुष्कराणि—पद्मानि दीपदः—प्रधानाः पुष्करवरा रं ज्ञासौ दीपमेति समासः, तस्यार्धं मानुषीचराचक्षीर्धार्म-  
यतिं वसिन्, तथा पातकीनां लण्डानि यस्मिन् स धातकीलण्डो दीपसाक्षिभ्य, तथा जन्मोपलब्धितसंयत्तीनो वा दीपो  
अभ्यूदीपसाक्षिभ्य, एतेष्वर्धतृतीयेषु दीपेषु महत्तरथेभ्योपापान्याप्तीकरणतः पद्मानुपूष्योपन्यसीषु धामिं भरतीरावतविदेहानि  
प्राकृत्यस्या त्वेकपचननिर्देया इन्द्रैक्यवृभावात् भरतीरावतविदेह इत्यपि भवति, तत्र धर्मादिकरणाद्यमस्यानि—‘जुगेति-  
प्रसूतान् अधिपान्, यस्माद् धारयते ततः । एते वेदान् शुभस्थाने, यस्माद् धर्म इति संवत् ॥ १ ॥’ स च द्विभेदः—  
सुवर्णममभारिप्रथमस्य, सुवर्णमणेहाधिकारः, तस्य भरतादिव्यापी करणधीलासीर्धकया एवावत्तेयां स्तुतिरुक्ता, साम्प्रतं

तव साधेय कस्मात् क्रियेत ?, उच्यते, प्रत्यक्षत्वात्प्रधानत्वात्, सर्वं च—‘देवस्य च भावस्य च’ इत्यादि, अतः साधकाः पूज  
 नसत्कारावपि कुर्वन्त्येव, साधेयस्तु प्रसङ्गाध्यवसायनिमित्तमेवमभिदधति, तथा ‘सम्माणवर्चिषाण्ये’ति सम्मानप्रत्यय—सम्मान  
 निमित्तं, तत्र स्तुत्यादिभिर्गुणोक्तिकरणं सम्मानः, तथा मानसः प्रीतिविशेष इत्यन्ये, अथ वन्दनपूजनसत्कारसम्माना एव  
 किनिमित्तमित्यसं आह—‘यो हि लाभवर्चिषाण्ये’ यो हि लाभप्रत्यय—यो हि लाभनिमित्तं प्रेत्य जितप्रणीतधर्मप्राप्तिर्बोधिजामो  
 संप्रपद्ये, अथ बोधिलाभ एव किनिमित्तमित्यसं आह ‘निरुपसर्गावर्चिषाण्ये’ निरुपसर्गप्रत्यय—निरुपसर्गनिमित्तं, निरुप  
 सर्गो—मोक्षः, अथ च कायोत्सर्गः क्रियमाणीऽपि भद्रा(दि)विकलस्य नाभिलषितार्थप्रसाधनायावन्मित्यसं आह—‘सर्वाण्ये मेवाण्ये  
 विद्वांश्चाराण्ये अणुप्येवाण्ये वदन्माणीण्ये ठामि कावत्सर्गं’ति भद्रया हेतुभूतया विद्यामि कायोत्सर्गं न यत्नाभियोगा  
 दिना भद्रां—निजोऽभिलाषः, एवं मेधया—पटुत्वेन, न जडतया, अन्ये तु व्याप्यते—मेधयेति मर्मादायचित्त्येन नासमञ्जसत  
 येति, एवं धृत्या—मनःप्रणिधानलक्षणया न पुना रागद्वेषाकुलतया, धारणाया—अहंहेतुणाधिक्ररणरूपया न तदुन्मूलकतया,  
 अनुमेधया—अहंहेतुगुणानामेव दुर्मुहुरपि प्युठिकेपेणानुचित्वनया न तद्वैकल्येन, वर्धमानयेति प्रत्येकमभिसम्बध्यते, भद्रया  
 वर्धमानया एवं मेधयेत्यादि, एवं विद्यामि कायोत्सर्गम्, आह—तस्मैव प्राक्करोमि कायोत्सर्गं सारप्रदं विद्यामीति किमर्थ  
 मिति ?, उच्यते, ‘वर्धमानसांमिष्ये वर्धमानवद्वा’ (पा० ३ ३ ३३१) इति कृत्या करोमि कसिप्यामीति क्रियामिमुख्यमुक्तमिदानीं  
 त्वासंभवरत्वात् क्रियाकालनिष्ठाकालयोः कृयामिदमेवाह विद्याम्येव, आह—किं सर्वथा ?, नेत्याह—‘अथारूपसिद्ध्यप्यभित्यादि  
 पूर्ववत् यावद्गोचिरासि’ति, एवं च हेतुः यद्विद्या एव साधकासपरिमाणं कावत्सर्गं करोति, ‘दसंणपिमुद्धीय वदति’ति,

अस्मद्भाषया—सर्वलोकेऽर्हन्त्यानां करोमि कार्यात्सर्गमिति, तत्र लोकेत्येव—एवमेव केवलज्ञानमास्यतेति लोकाः—अतु  
 र्दशरज्जातमका परिप्लवते इति, सर्वं च—“धर्मादीनां वृत्तिर्द्रव्याणां भवति एव एव चेदम् । ईर्ष्येः सह लोकजि  
 परीत प्लवोकास्त्वम् ॥ १ ॥” सर्वः सत्त्वधर्मिर्गन्धर्वभेदभिन्नः, सर्वमासौ लोकस्य २ तस्मिन् सर्वलोके, तैर्लोक्ये इत्यर्थः  
 स्यादि—अथोलोके चमरादिभवेनेषु विरगलोके द्वीपाश्चमरयोतिष्कविमानादिषु सन्त्येयार्हन्त्यानि कर्तृलोके सौधमर्  
 दिषु सन्त्येयार्हन्त्यानि, तत्राद्योकापटमहाप्रातिहार्यकपां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्ताः—तीर्थकरालोपां वैद्यानि—प्रतिमाकम्प  
 णानि अर्हन्त्यानि, इयमत्र भावना—चित्रम्—अन्तःकरणं यस्य भावे कर्मणि वा वर्णाद्वाल्लभ्ये व्यभि कृते चैत्वं भवति,  
 तत्रार्हतां प्रतिभाः प्रशस्तसमाधिचित्रोत्पादनादर्हन्त्यानि भण्यन्ते, तेषां किं ?—करोमीत्युत्तमपुरुषैकवचननिर्वोचनरमण्ड-  
 न्युपगमं दद्यादिति, किमित्याह—कायः—शरीरं तस्योत्सर्गः—कृताकारस्य स्थानमौनधानक्रियाव्यतिरेकेण क्रियान्वराध्या  
 समधिकृत्य परित्याग इत्यर्थः, तं कायोत्सर्गं, आह—कायस्योत्सर्ग इति पञ्चा समासा कृताः, अर्हन्त्यानामिति प्रत्युक्तं,  
 तद् किमर्हन्त्यानां कायोत्सर्गं करोमि !, नेत्युच्यते, पृथीनिर्दिष्टं तत्पदं पदद्वयमतिशय्य मण्डकमुत्था वन्दनप्रत्ययमित्या  
 दिभिः सम्प्रच्यते, ततोऽर्हन्त्यानां वन्दनप्रत्ययं करोमि कार्यात्सर्गमिति द्रष्टव्यम्, तत्र वन्दनम्—अभिषादनं प्रशस्तका-  
 ययाञ्जनप्रपृच्छित्तिव्यर्थः, तत्प्रत्ययं—तन्निमित्तं, तत्पुञ्जं मे कथं नाम कार्यात्सर्गादित्यतोऽर्थमित्येवं सर्वत्र भावना कार्या,  
 तथा ‘पूषणपक्षिपाए चि पूजनप्रत्ययं—पूजानिमित्तं, तत्र पूजनं—ग भूमास्यादिभिरन्यर्थनं, तथा ‘सकारपक्षिपाए’ चि सदकार  
 प्रत्ययं—सदकारनिमित्तं, तत्र प्रवरपक्षाभरणादिभिरन्यर्थनं सत्कारः, आह—यदि पूजनसत्कारप्रत्ययः कार्यात्सर्गः क्रियते

क्षमानि सवस्त अहयपि ॥ ३ ॥” इत्यादि ‘पुराखोदयपुष्पविकसे य उस्सगो’ति एव सामिखा आयरियमार्दी तवो पुराखो-  
 दयं वा होज्जा पुष्पविकठ वा होज्जा अणाभोगादिकरणेण तवो पुणोवि कयसामादया चरिचविसोदणस्यमेव कावस्सगं  
 करेतिचि गाथार्थः ॥ १५२२ ॥ ‘एस चरियुस्सगो’ गाहा व्याख्या—एस चरियुसगोचि चरिचावियारविमुद्धिनिमि  
 चोचि अणियं होइ, अय च पच्चासुस्सात्तपरिमाणो ॥ १५२३ ॥ तवो नमोकारेण पारेत्ता विमुद्धचरिच्चा विमुद्धदेसयाण दंसण  
 विमुद्धिनिमिचं नासुक्किचणं करेति, चरिचं विसोदियमियाणि दंसण विसोदियज्जतिचिकहु, स पुण णासुक्किचणमेयं करेति,  
 ‘लोगस्सुज्जोयनारे’त्थादि, अय चतुर्धससिस्सवे न्यस्सेण व्याख्यात इति नेह पुनर्वाक्यापत्ते, चतुर्धससिस्सवं चाभिधाय  
 दर्शनविमुद्धिनिमिचमेव कायोत्सर्गं चिकीर्षवः पुनरिदं सूत्र पठन्ति—

सठवल्लोए अरिहत्तचेइयाण करेमि कावस्सगं वदणवत्तियाए पूअणवत्तियाए सक्कारवत्तियाए सम्माणवत्ति  
 याए वोहिलाभवत्तियाए निरुवसगवत्तियाए सदाए मेहाए चिइए चारणाए अणुत्पेहाए वट्टमाणीए ठामि  
 कावस्सगं ( सूत्र ) ॥

१ कमे सवत्ताहमपि ॥ ३ ॥ एव क्कमधिरवाऽऽवाचीदीह तवो हुत्ताकोविठ वा अवेए हुत्ताधिकाभवं वा अवेए अन्नाभोगादिकरणेव तवो पुनरपि हुत्त  
 सत्तामाधिकवादिअविप्रोयनार्थमेव कयसोत्सर्गं कुर्वन्ति । एव चारिजोयसर्गं इति चारिवादिवादिअविप्रोदियमिच इति सस्मिठ भवति अर्धं च वच्चाएपुष्पाएव  
 रिमाप्ता, तवो वमस्सकरोए पारविज्जा विमुद्धचारिजा विमुद्धदेसकावां वर्यवट्टादिदिमिचं नागोत्कीर्णं कुर्वन्ति चारिच विप्रोयवमिरवणी एवमेवं विमुद्ध  
 विविठिहुत्ता वत्तुवर्वासोत्कीर्णवमेवं कुर्वन्ति ।

आलोहव निविद गुरुसयासे । होह अहरेगछद्रओ कोहरियमरोह मारवहो ॥ २ ॥ तथा-शुप्यणाशुप्यमा माया अपुम  
 नाओ निहंवमा । आलोयपानिदपगारहणाहि ण पुणो सिया विविधं ॥ ३ ॥ वरस य पायच्छिचं अं मगाविक गुरु वव  
 वसति । वं सह अमुच्चरियं अणयरपसंगमीपणं ॥ ४ ॥ 'पठिकमण'ति-'आलोहकण दोसे गुरुणा पठिदिप्यापायच्छिचा  
 च । सामाहयपुमं समभा(या)पठिया पठिकमंति ॥ १ ॥ सममुवत्ता पयपण पठिकमणं कहुंति, अणवत्सपसंगमीया,  
 अणवरथाए पुण वदाहरणं सिवहारगकप्पहुयोसि, 'कितिकम्म'सि तओ पठिकमिजा कामणानिमिच पठिकंसायवजनि  
 येयणरयं च पवति, तमो आयरियमादी पठिकमणरपमेव दंसेमाणा सामंति, वकं च-आयरिववग्राए सीसे साहंसिए  
 कुलणो य । अ मे केडयि कसाया सवे सिविहेण सामंसि ॥ १ ॥ सवत्स समणसंपरस अगयओ वंजळि करिय सीसे । सब  
 समायइचा समामि सवत्स अहंयं ॥ २ ॥ सवत्स कीवरसित्स आयओ धम्मनिदियतियविचो । सबं समायइचा

१ आलोहव निविदा शुक्मकाये । अणवत्सपमेव कमुक्कसमर इव मारवाहो ॥ २ ॥ तथा-शुप्यणा माया प्रथितार्थं निरूपयता । आलोहकाभिरुच-  
 गदंवाभिर्न स्याद् द्वितीयवार्त्त ॥ ३ ॥ वरस च मायामितं यन्मार्गविदो गुराव वयदिष्यन्ति । तद्यदाऽमुचरितं यत्समवक्यायस्य नीतेव ॥ ४ ॥ आलोहव दोषाद् गुरुना  
 प्रहरेष्यमायामिजास्तु । साममधिकरुरे समभावावस्थिताः प्रथिकमवस्थि ॥ १ ॥ अण्यपुण्यकः पदपदेव प्रथिकमवसूच कवयत्सवक्यायस्य मीपणः अण-  
 वरथायां मुक्कदाहरणं विवद्वारकमिमुनिभिः । तथाः प्रथिकमप्य कामणानिमिचं प्रथिकमवागम्याहृयनिवेदयार्थं च वक्तव्ये एव आवाचीदीप् प्रथिकमवाधमेव पदं  
 दधतः कथयन्ति च । आवाचीयावहाद् विप्याद् साधर्मिकान् दुष्काव्याव । ये मया केडयि कथायिष्यामि सर्वान् विविधेषु समयाभि ॥ १ ॥ सर्वप्रसक्तवृत्त  
 मगावत्सपसंगं दृष्ट्वा धीर्षे । सर्वं कथयिष्यामि सर्वे सर्वसाहस्यि ॥ २ ॥ सर्वमिदं कीवरतापी मावतो यमं निदिवति विविधः । सर्वं कथयिष्यामि

आचार्ये स्थिते दैवसिक्कमित्युक्तं तद्गतं विधिभिर्भिधिसुराह—‘आ देवस्य पुत्रुणं चित्तम्’ गाहा व्याख्या—निगदसिद्धा,  
नयर धेष्टा व्यापारकपाडवगन्तव्या ॥१५२१॥ ‘नमोकारचञ्चीसर्ग’ गाहा व्याख्या—‘नमोकारे’ति कौवस्सगसमधीए नमोष्ठा  
रेण पारोति नमो अरहताणसि, ‘चञ्चीसर्ग’ति पुणो ओहि इमं तिस्य दैवियं तेसिं तित्थगाराण वस्सभादीण चञ्चीसत्थपणं  
चक्खिषणं करोति, लोगस्सुज्जोयगरेणोति मणिय होति, ‘कितिकम्मे’ति चञ्चो धट्ठिकामा गुरु सट्ठासयं पडिउहिवा जयसि  
संति, ताहे सुहणंसग पडिउहिइय ससीसोचरियं काय पमज्झति, पमज्झिवा परेण विणएण तिकरणविसुद्धं कितिकम्मं करोति,  
वन्दनकमित्यर्थ, उक्तं च—‘आलोयणवागरणासुंउट्ठणपूयणाए सक्कमाए । अवराहे प गुरुकं विणओमूढं च वंदयन्ता ॥१॥’  
मित्यादि ‘आलोयणं’ति एवं च वदिता उतथाय चभयकरगाहियरओहरणाद्धावणयकाया पुवपरिचिंतिए दोसे जहारायणि  
याए संजयमासाए जहा गुरु सुणेइ सहा पवहुमाणसवेगा मयविप्पमुक्का अप्पणो विमुद्धिनिमिच्चमाजोयति, उक्तं च—  
‘विणएण विणयमूढं गपूणापरियपायमूढंमि । आणाविज्झ सुविद्धिओ जहा अप्पणं सह परंवि ॥ १ ॥ कयपावोयि मगुरसो

१ कप्पोल्लोसमासी वनस्करेण पारवसि वसोम्वंनय इति अणुविधातिरिति गुरुवैरिद दीर्यं वेधिय ठेवां दीर्यकाल्पाद्धवमादीनां वगुविधाविज्जवेणोत्थि-  
संवं कुर्वन्ति कोकलोपोवकरोयेति मन्थित मन्थति इति कर्मोति ठवो वदिशुकासा गुरुं संयत्ताए प्रयाज्योपसिधमिठ ठवो मुज्जादत्तक मन्थिक्क मणींमु  
परिठमं काय प्रमादं दमि प्रमुत्तय परेण विनयेन धिकरवसिमुद्धं इतिकर्मं कुर्वन्ति । आलोचनान्वाक्कवत्तंयथावद्दवागु लान्ताये । अतएवे च गुरुकं विणओ  
मूढं च वन्दयन्तं । पूव च वदिश्वेतथायोमन्नकरगुहीताओहरणा अर्थावतकावाः पूर्ववदिधियवत्तं दोसाद् वपाएणाधिक्कं संवत्तमावता यथा ॥१॥ वगुमेति  
उतथा प्रवर्त्तमावसेवपा मयविप्पमुक्का आरामो विमुद्धिनिमिच्चमाजोवदिधि—विनयेन विनयमूढं वात्ताऽऽर्थावपाएरमुक्के । एतएव मुविद्धिओ वपाऽऽमनाव उतथा  
परमसि ॥ १ ॥ इतथापोजयि ममुत्तय

आलोच्य निर्दिष्ट गुरुसपासे । दोष आहरेगल्लभो व्योहरियभरोष भारवहो ॥ २ ॥ तथा-वृष्यणाशुप्यथा माया अशुभ  
 भाओ निर्द्वेषा । आलोच्यणनिर्दणगरहणादि ण पुणो सिधा भित्ति ॥ ३ ॥ सस्व य पायच्छिष्टं सं भगविक गुरु स्व  
 रसति । ४ त्वह अशुभरियपं अणवस्थपसंगमीपूर्ण ॥ ४ ॥ 'पटिकमण'ति-'आलोचकण दोस गुरुणा पट्टिदिष्णापायच्छिष्टा  
 च । सामाह्यपुपण समभा(पा)भित्ति पाटिकमीति ॥ १ ॥ सम्भमुपवत्ता पयपपण पटिकमणं कहेति, अणवस्थपसंगमीया,  
 अणवस्थपाए पुण वेदाहरणं चित्तहारगकप्यठगोचि, 'चितिकम्म'ति सभो पटिकमिच्छा कामप्पानिमित्तं पटिकंतायवत्तनि  
 येयणारं च पदंति, सभो आयरियमादी पटिकमणारणमेव दसेमाणा खामेति, चर्क च-आयरिचवत्ताए सीसे साहेनिए  
 हुत्ताणे य । जे मे केडपि कसाया सवे तियिहेण खामेति ॥ १ ॥ सवस्व समणसंवरस भगवभो संजालि करिय सीसे । सब  
 खमावइसा खमासि सवस्व अहययि ॥ २ ॥ सवस्व औयरासिस्व भावभो धम्मनिहिपनियच्चित्तो । सब खमावइसा

१ आलोच्य निर्दिष्टा गुरुसपासे । भवसंनिपादेय कमुद्वृत्तभार इव भारबाहः ॥ १ ॥ अन्तर्भावमुत्पन्ना माया प्रतियोगी विदुस्त्वन्त । आलोचकमिच्छा-  
 पदंताभिरं साह द्वितीयवाराद् ३१३ त्वह यथायथं धम्मार्थविशो गुरव उपदिशसि । त्वत्ता-मुपसिधत्तमनसकसापवद् नीयेव ॥ ३ ॥ आलोच्य दोषाद् गुरुणा  
 सर्वदृष्ट्यादीभवात् । सामासिकत्वे समभावादिस्थिताः प्रतिकल्पयन्ति ॥ ४ ॥ धम्मगुणपुष्पाः पदंतेव प्रतिकल्पयन्तं कल्पमन्वदकसापवद् नीयेव अण-  
 वस्थायां पुनरुदाहरणं चित्तहारगकप्यठगोचि । सभः प्रतियोग्य कामकामिभिश्च प्रतिकल्पताश्चत्तवृत्तिरेवमाय य वत्तते तत्तावावोदीन्द्र प्रतिकल्पतायेमेव पदं  
 वत्त कामवन्ति । आचार्योपाध्यायं सिध्दात् साधर्मिकत्वाद् हुत्ताणीव । ये सभा केडपि कयादिताः सार्वाद् भित्तिरेव कामयामि ॥ १ ॥ सर्वज्ञानवत्तद्वत्  
 भगवतो-भक्ति इत्यादीनि । सब धम्मविद्या सवे सर्वसाहययि ॥ २ ॥ सर्वसिद्धि औपधायी भावतो धर्मनिहिपनियच्चित्तो । सब धम्मविद्या

आचार्ये स्थिते देवसिक्कमित्युक्तं तद्वगतं विधिमभिधित्सुराह—‘आ देवसिप्यं पुणुणं धित्वं’ गाहा न्यास्या—निगदसिद्धा,  
नवरं चोष्टा व्यापारकपाड्वगन्तव्या ॥१५२१॥ ‘नमोकारश्चजयीसग’ गाहा व्यास्या—‘नमोकारे’ति कीवरसगसमचीए नमोका  
रेण पारंति नमो अरहताणसि, ‘चवयीसग’ति पुणो ओहिं इम तित्थं देसियं तेसं तित्थगराणं वसभादीणं चवयीसरपण्णं  
वकिस्सणं करोति, लोगस्सुज्जोयगरेणंति मणियं होसि, ‘कितिकम्मो’ति वओ धदिक्कामा गुरु संहासय पडिउंहिसा चवयि  
संति, ताहे मुहणत्तगं पडिउंहिय ससीसोवरियं काय पमज्झति, पमज्झिता परेण विणएण तिकरणधिसुद्धं कितिकम्मं करोति,  
वन्दनकमित्थं, उक्तं च—“आलोयणवागरणासंपुच्छणपूयणाए सत्ताए । अवरारहेयं गुरुण विणओ मूलं च वंदणं ॥१॥”  
मित्थादि ‘आलोयणं’ति एव च पदिक्का उत्तराय चमयकराहियरओहरणाद्वायणयकाया दुयपरिचिंतिए दोसे अहारायणि  
याए संजयमासाए अहा गुरु सुणेहं वहा पवहुमाणसवेगा मयविप्यमुक्का अप्पणो विमुद्धिनिमित्तमाओपति, उक्तं च—  
“विणएण विणयमूलं गंतुणावरियपायमूलंमि । आणाविज्झं सुविहिओ अहं अप्पाणं वहा परंति ॥ १ ॥ कयपावोयि मणुरसो

१ कापोसर्गसमसो वमस्सरेण पारंति वमोर्ध्वजय इति वगुदिसादिहितिं गुरुदेसिप्यं ॥१॥ देसिप्यं तेषां तीर्थं कल्पयन्नुपमादीनां वगुदिसादिक्कवोक्की-  
तं च कुर्वन्ति लोकाणोपोत्तरेमेति अस्मिन् मयति वृत्तिकर्मोति वतो वधिगुक्कामा गुरु संदेसकाद् ममाज्योपनिधायि वतो मुखावत्तु मन्तिकम्यं सदर्भं मु-  
परितर्कं कार्यं ममाज्यं ददित्वा मन्तुरय परेण विनयेन विज्झापयिमुद्धं वृत्तिकर्मं कुर्वन्ति । आओ वनाम्वाक्कवत्तं मन्तुरवन्तानु स्याप्याये । अतराणे च गुरुकर्मं विनये  
सुद्धं च वन्दयन्ते । एव च वधिगुक्कोपायोमवकरगुदीत्तरओहरणा चर्यावयत्तकायाः पूर्वगतिविधित्वात् दोषान् चकारादिक्कं संवत्तमाववा वया गुरोः पूज्यति  
ववा मन्तुर्यमावसेवया मवन्तिपमुक्का आमावो विमुद्धिदिधिमित्तमाओवपन्ति—सिनयेन विनयमूलं कल्पाडवावपादमूलं । कायदेव मुन्निदिओ वपाऽऽयमाव वपा  
परमपि ॥ १ ॥ वृत्तपापोऽपि मन्तुर्य



भाषोऽहं निदिह गुरुसपासे । होह आहरेगउद्रभो ओहरियमरोह भारवहो ॥ २ ॥ तथा-हृष्यणाणुपपत्ता माया अणुम  
 गभो निहंरवा । आतोपणनिर्दणगरहणाहि ण पुणो सिधा भित्तिवं ॥ ३ ॥ सरस य पायकिष्ठं अं मगाधिक गुरु सव  
 हसति । स सह अणुवरियय अणवत्थपसंगमीयणं ॥ ४ ॥ 'पठिकमणं'ति-'भाषोऽहं'ण दोसे गुरुणा पठिदिष्णपायकिष्ठा  
 च । सामाहयपुपग समभा(पा)पठिया पठिकमंति ॥ १ ॥ सम्मभुवदथा पयपयय पठिकमणं कहुंति, अणवत्थपसंगमीया,  
 अणपरयाय पुण सदाहरणं विठहारगकप्पङ्गोधि, 'कठिकममं'ति सभो पठिकमिणा सामणानिमित्तं पठिकंवायवचनि  
 देयणारयं च पदंति, सभो आयरियमादी पठिकमणारयमेव दत्तेमाणा सामेति, उक्तं च-आयरिचववभाय सीसे साहंमिप  
 कुल्लगणे य । अं मे केडपि कसाया सवे तिविहेण सामेति ॥ १ ॥ सवत्स समणसंपरस भगवओ अंवाठिं करिय सीसे । सव  
 सामापरसा खमासि सवत्स अहयपि ॥ २ ॥ सवत्स अयरसित्स मावओ धम्मनिदियनियच्चित्तो । सवं सामापरसा

१ भाषोऽहं निदिह गुरुसपासे । भवमर्तिसदेव कणुद्वयमार इह भारवाहः ॥ २ ॥ अणुवागुपपत्ता माया प्रक्षिमायं निहृत्तम्भा । भाषोऽहं निदिह  
 गहंशान्ध स्याद् दिवोयवारम् ॥ ३ ॥ सरस य पायकिष्ठं अं मगाधिक गुरु सव  
 हसति । स सह अणुवरियय अणवत्थपसंगमीयणं ॥ ४ ॥ सम्मभुवदथा पयपयय पठिकमणं कहुंति, अणवत्थपसंगमीया,  
 अणपरयाय पुण सदाहरणं विठहारगकप्पङ्गोधि, 'कठिकममं'ति सभो पठिकमिणा सामणानिमित्तं पठिकंवायवचनि  
 देयणारयं च पदंति, सभो आयरियमादी पठिकमणारयमेव दत्तेमाणा सामेति, उक्तं च-आयरिचववभाय सीसे साहंमिप  
 कुल्लगणे य । अं मे केडपि कसाया सवे तिविहेण सामेति ॥ १ ॥ सवत्स समणसंपरस भगवओ अंवाठिं करिय सीसे । सव  
 सामापरसा खमासि सवत्स अहयपि ॥ २ ॥ सवत्स अयरसित्स मावओ धम्मनिदियनियच्चित्तो । सवं सामापरसा

आचार्ये स्थिते दैवसिकमित्युक्तं तद्वगतं विधिमभिधिरसुराह—‘आ दैवसियं शुशुणं धित्वहं’ गाहा व्याख्या—‘निगदसिद्धा,  
नयरं चोष्टा व्यापारक्याऽवगन्तव्या ॥१५२१॥’ ‘नमोऽकारचतुषीसगं’ गाहा व्याख्या—‘नमोऽकारे’ति कावसरसगसमवीए नमोऽका  
रेण पारोसि नमो अरहसायांति, ‘चतुषीसगं’ति पुणो ओहिं इमं तित्थं दैवियं तेसिं तित्थनराणं वसभादीणं चतुषीसत्थपणं  
चक्किचणं करोति, लोगस्सुज्जोयगरेणति अणियं होति, ‘कितिकम्मं’ति सओ पदिक्कामा गुरु संढासयं पढिछेहिचा चययि  
संति, ताहे सुहणंतगं पढिछेहिच ससीसोवरियं काय पमज्जति, पमज्जिचा परेण विणएण तिकरणविसुद्धं कितिकम्मं करोति,  
वन्दनकमित्थर्यः, उक्तं च—“आलोयणवागरणासंनुच्छणपूयणाए सम्भाए । अयराहे यं गुरुकणं विणओ नूळं च पदपणा ॥१॥”  
मित्थादि ‘आलोयणं’ति एवं च पदिसा वरथाय वन्यकरगहियरओहरणाद्रापणयकाया पुवपरिचिचित्थे दोसे अहरायणि  
याए संजयनासाए अहा गुरु सुणेह तदा पवहुमाणसवेगा अयविप्पमुक्का अप्पणो विमुद्धिनिमित्तमालोयति, उक्तं च—  
‘विणएण विणयनूळं गंतूणापरियपायमूळंमि । आणाविज्जं सुविहिओ अह अप्पाणं सह परंवि ॥ १ ॥ कययावोवि मसुरसो

१ कप्पोरसोसमासी वमस्कारेण पारवंति वमोद्धंजय इति चतुर्विंशतिमिह गुरुवैरिणं धीर्यं दैवियं तेसं धीर्यकरणादुपमादीनां चतुर्विंशतिवचनोक्तं।  
यंतं कुर्वन्ति कोकलोघोतकरोयेति मन्त्रियं भवति कृतिकर्मोति वतो वन्धितुकामा गुरु चंदसकारं प्रमाज्जयंविज्जतिव वतो सुखावन्तं मन्त्रिकेन वधीरंमु  
परितर्कं काय प्रमाज्जंरन्ति प्रसूजय परेण विजयेन विहरापविशुद्धं कृतिकर्मं कुर्वन्ति । आलोचयान्नाकारजसंप्रसूजयानु स्याप्याये । अयराहे यं गुरुकणं सिकवो  
मुळं च वन्दनं । पुरं च वन्धितोकापोमयकरगुहीतरओहरणा अयं वतकायाः पूर्वंरतिविचिन्तयन् दोषान् चकारवायिकं संवतमावता वता गुरुः पृथगेति  
वता प्रवर्तमानसंवेगा अयविप्पमुक्का आत्मनो विमुद्धिनिमित्तमालोचयति—सिकवेन सिकवमुळं वताऽऽर्थायपारमुळे । यारयेए सुविहिओ वयाऽऽप्रमाणं वया  
परमपि प १ ॥ छठपपयोऽपि मसुप्य

आओइव निविह गुरुसयासे । होइ अहरेगज्जुओ ओहरियमरोह मारवहो ॥ २ ॥ सथा-वप्यथागुप्यथा माया अजुम  
 गामो निहवथा । आओयणनिदणगरहणाहि ण पुणो सिया विविधं ॥ २ ॥ सरस व पायच्छिखं अ मगाविक गुरु वव  
 इसंति । सं सह अणुवरियं अणपरयपसंगभीएण ॥ ४ ॥ 'पडिक्कमणं'सि-'आओइकण पोसे गुरुणा पडिदिण्णपायच्छिखा  
 व । सामाइयपुपण समभा(पा)वठिया पडिक्कमेति ॥ १ ॥ सम्ममुववथा ययंएण पडिक्कमणं कहुंति, अणवरयपसंगभीया,  
 अणवरथाए पुण चदाहरण तिलहारगकप्यज्जोसि, 'किसिक्कमं'सि सभो पडिक्कमिणा सामणानिमित्तं पडिक्कंतायवचनि  
 येयणत्तं च वदंति, तमो आयरियमायी पडिक्कमणत्तमेव दसेमाणा सामेति, तर्क च-आयरिसववमाए सीसे साहंमिए  
 कुळगणे य । अं मे केडवि कसाया सप तिविदेण सामेति ॥ १ ॥ सवस्स समणसंवस्स मगायओ अंअठि करिय सीसे । एवं  
 समभावइता एमामि सपस्स अहयंवि ॥ २ ॥ सवस्स जीवरसिस्स मावओ वम्मनिहियनियच्चियो । एवं समभावइता

१ आओइव विविधत्वा गुरुसयासे । अणवरयपसंगभीया कहुंति अहरेगज्जुओ मारवहो ॥ २ ॥ अणवरथागुप्यथा माया प्रथिमसं निदणत्तया । अणवरयपसंगभीया-  
 यद्वेवभीमव स्याद् द्वितीयत्वात् ॥ ३ ॥ सरस व पायच्छिखं यस्यापीविहो गुरव उपदिष्टमिह । अणवरथागुप्यथित्यमववज्जामससंगभीयेव ॥ ४ ॥ आओइव दोषाद् गुरुणा  
 मरितवज्जामाभिवासात् । सामासिकत्वे समभावावस्थिताः प्रतिक्रम्यन्ति ॥ १ ॥ सम्मगुप्यगुप्याः परंपरेण प्रतिक्रमत्तस्य कवरत्तत्तववज्जामससंगभीया अण-  
 वस्यायी गुप्यरादाय शिखराकसिमुतिभिः । तदा प्रतिक्रम्य सामकावस्थित प्रतिक्रम्यतामसमाह्वयनिवेदयार्थं च वच्यन्ते एव आचरणीदीप् प्रतिक्रमयायेमेव दूढं  
 वन्तः समपन्ति । आचार्योपाध्याय शिष्यान् साधर्मिकाद् गुरुपथात् । ये मया केडवि कयासिता सर्वोद् निधियेव समवाप्ति ॥ १ ॥ एवंक्रमनसङ्गम  
 मगावद मरित इत्यादीर्षे । सव समसिन्हा इमे सर्वसादृश्यादि ॥ २ ॥ सर्वसिन्हा जीवपायी भावतो यमोनिहियविचरिष्यः । एवं समसिन्हा

आचार्ये स्थिते दैवसिक्कमित्युक्तं तद्गतं विधिमभिधित्सुराह—‘आ दैवसिखं युगुणं चित्तम्’ गाहा व्याख्या—निगदसिद्धा,  
नवरं वेष्टा व्यापारकपाडधगन्तव्या ॥१५२॥ ‘नमोकारचवीसगं’ गाहा व्याख्या—‘नमोकारे’ति कर्तरसगसमवीए नमोका  
रेण पारंति नमो अरहताणंति, ‘चववीसगं’चि युणो ओहिं इमं तित्थं देसिखं तेसिं तिसगाराणं वसभादीण चववीसत्थपणं  
वकिण्णं करोति, लोगससुज्जोयगरेणंति भणियं होति, ‘कितिकम्मं’सि सओ वंदितकामा गुरुं सठासयं पढित्तेहिंसा जयति  
संति, ताहे मुहणत्तगं पढित्तेहिंय ससीसोवरियं काय पमज्जंति, पमज्जिंसा परेण पिणएण तिकरणधिसुद्धं कितिकम्मं करोति,  
वन्दनकमित्थय्यं, उक्तं च—“आलोयणवागरणासंपुच्छणपूयणाए सम्भाए । अयराहे य गुरुण पिणओ मूळं च पदणग ॥१॥”  
मित्यादि ‘आलोयणं’ति एव च भविंसा उत्थाय चभयकरगहिपरओहरणाच्चापणयकाया पुणपरिचितिए दोसे अहारायणि  
याए संजयमासाए जहा गुरु सुणेइ तहा एवहुमाणसंवगा भयपिप्पमुक्का अप्पणो विमुक्किनिमिषमाओयति, उक्तं च—  
“विणएण विणयमूळं गंपूणापरियपायमूळंमि । जाणाविज्ज सुविहिओ जह अप्पाणं तह परंति ॥ १ ॥ कयपायोपि मणुरसो

१ कयोत्तांसमपसौ नमस्तस्मै च पारसंति जमोर्ध्वजय इति जगुर्विद्यादिहितिं दुर्बरेदिह सीधं वीथिय तेचं सीधं कालाधुरमादीनां जगुर्विद्यादिछरवोकी  
तेन कुर्वन्ति कोकलोयोवकरोयेति नन्विमं भवति इति कर्मोति ततो वधिपुकाया गुरु संवत्तकाए प्रमात्तोपसिधंति ततो मुक्कादन्तक मर्त्तकिण्णं छवींसेमु  
परित्तं कय प्रमात्तं इति प्रपुत्तं एरेण विवदेव विक्कणविमुद्धं इति कर्मं कुर्वन्ति । आओचवाप्यकरसंप्रसापुद्दनासु स्थाप्याये । भयत्ते च गुरुत्वं सिद्धा  
सूक्तं च वन्दनं । पूर्वं च वधिपुकायोभयकरगुहीतरओहरणा अर्थावगतकालाः पूर्वपरिधिदिहताय वीणाए चयाप्यायेक संवत्तमायथा तथा गुरुः पूज्योति  
तथा प्रवर्त्तमापसंवेद्या भवविममुक्का आत्मनो विमुक्तिविमिषमाओचपदिह—सिखयेव निमयपूळं गत्ताऽऽर्थापपायपूळं । मायदेए सुविदिता वयाऽऽयमानं तथा  
परमपि ॥ १ ॥ इत्यप्योप्ये मनुष्य

आलोहर निदिव गुरुसपाधे । होइ अहरेगळदूभो ओहरियभरोष भारवहो ॥ २ ॥ तथा-तप्यणाशुप्यथा माया अशुभ  
 गभो निदिववा । आलोपणनिद्वणगरहणादि ण पुणो सिधा भिसिपं ॥ ३ ॥ वरस न पावठिळळ अं मगविक गुरु वव  
 वससि । सं वव अशुवरियपं अणयरपसंगमीपणं ॥ ४ ॥ 'पडिकमण'ति-'आलोहरकण पोसे गुरुणा पडिविष्णुपायचिकणा  
 व । सामादपयुपा समभा(प)यठिया पडिकमंति ॥ १ ॥ सममुपवळा पपपपण पडिकमण कहुति, अणवरपसंगमीया,  
 अणवरयाण पुण उदाहरणं तिलहारगकप्यवगोषि, 'कटिकमं'सि वभो पडिकमिवा सामणानिमित्तं पडिकसाववचनि  
 येयणरणं च पदंति, वभो आयरियमादी पडिकमणतयमेव वसेमाणा सामंति, वकं च-आयरिववगम्राए सीसे साहंमिए  
 पुसगणे य । अं मे केडवि कसाया सय तिविरण सामसि ॥ १ ॥ सयस समणसंवरस भागभो अंजळि करिय सीसे । सव  
 रमावइचा समसि सयस अहयपि ॥ २ ॥ सयस जीपरसिस्स भावभो धम्मनिद्वियनियचिचो । सव लमवइचा

१ आलोहर निदिववा गुरुसकपो । भवसमंसापण कहुद्वरमर इव भारवाहो ॥ १ ॥ कपवागुलवा माया मसिमार्ति निद्वणवा । अलोपणनिद्व  
 पदंतामं सार दिवोववाह ॥ ३ ॥ वस अशुपिद्वं वभमंविरो गुरव नवद्विषिठ । वववागुलवियवमवकसावववमीवेव ॥ ४ ॥ अलोपण येपण् पुस  
 मंनइक्यामंजासु । सामासिहए सवभावावसिवा । मंनइक्यामंविठ ॥ १ ॥ सममुपयुपा । वदंवेव मठिकमवसुं कवववववववववमीया । वन-  
 वरवावदं पुनइराएव मिकइरावसिहविरिठ । वव । मठिकमव सामणानिमित्तं मठिकमणतयमेव वसिदेववार् व कपण्ठे वव पावावीदीन् मठिकमणादीवेव वसं  
 वसः । अशुवमिठ । आवावोपावाद् विष्णुण् वावमंकाद् गुरुसपाधे । न मवा केडवि कवापियवा ववव विविवेव सामयामि ॥ १ ॥ एवममवसवव  
 भपवा मठि ववा वीरे । सव कपमिया भवे वरवसाएयपि ॥ २ ॥ सवसिन् जीवरावी भाववो पदंमिद्विषिठविचिवा । सव कपमिवा

आचार्ये स्थिते दैवसिक्कमित्तमुक्क तद्गतं विधिभिधित्तसुराह—‘आ देवसियं पुगुण धिंउद्’ गाहा व्याख्या—‘निगदसिद्धा,  
नयरंवेष्टा व्यापारकपाडधगन्तव्या ॥१५२१॥’नमोकारवजयीसगं’ गाहा व्याख्या—‘नमोकारे’ति कौवत्सगसमधीए नमोका  
रेण पारंति नमो अरहसाणीति, ‘वजयीसगं’ति पुणो जेहिं इमं तिस्य देसियं तेसिं तित्यगराणं वत्सभादीणं वजयीसत्थपणं  
वक्किणं करोति, लोगस्सुज्जोयगरेणंति अणियं होति, ‘किटिकम्मे’ति वओ धंदिदंकाभा गुठं सद्दासयं पट्टिठेहिस्स। त्वयि  
संति, ताहे मुद्धणंतं पट्टिठेहिस्स ससीसोपरियं काय पमज्जंति, पमज्जिस्सा परेण विणएण तिकरणायिसुद्धं किटिकम्मं करोति,  
धन्दनकमित्तय्यः, उक्क च—“आलोयणवागरणासंगुच्छणपूयणाए सम्भाए । अवरहे य गुक्कं विणओ मूळं च धंदण ॥१॥”  
मित्थादि ‘आलोयणं’ति एव च वदिस्सा तत्थाय वमयकरगद्विरओहरणाज्जावणयकाया पुपपरिचितिए दोसे अद्दारायणि  
याए संजयभासाए अद्दा गुक्क सुणेइ सहो पवहुमाणसंवगा भययिप्पमुक्का अप्पणो पिशुद्धिनिमित्तमाओयति, उक्क च—  
“विणएण विणयमूळं गंतूणायरियपायमूर्तमि । जाणाधिव्व सुविहिओ अइ अप्पणं सह परयि ॥ १ ॥ कयपायोयि मणुरसो

१ कत्थोत्तासमाओ वमस्करेव पारयंति वमोउद्धव इति वट्टिदसाधिति गुणवीरिदं तीर्थं दसिस्स तेथं तीर्थंकात्थावत्तमादीनां वट्टिदसाधित्थोत्तासमाओ  
संव कुम्भेष्ठि कोकसोपोठकरेवेति भवित्त मवति उक्किर्कोठि ततो वट्टिदुक्काया गुठं संदंकाए प्रमाज्जोयसिस्सिष्ठि ततो मुक्कतम्वकं मर्यजिस्स वजयीरंमु  
परितयं कार्यं प्रमाज्जं दसिस्स मणुरस परेव विवयेव विकरणासिद्धं कटिकर्को कुम्भेष्ठि । आलोयणाप्याकरत्तसंगपूयणागु स्सत्थाये । अथाये च गुक्कं विवया  
मुक्कं च वट्टिदमूळं । एव च वट्टिदलोयणावोमवत्तगुदीठरओहरणा अवावत्तकायाः पूर्वगतिविधित्ताए दोसाए वजारायाधिकं संवत्तमावत्त। वया गुक्कं धूणादि  
तथा मवत्तमावत्तंवेगा भययिप्पमुक्का आत्ताओ सिद्धिद्विधिमिस्समाओवयन्ति—विवयेव विवत्तमुक्कं गत्ताडड्यं पपाए मूळं । मणयए पुदिद्विओ वयाऽऽमावं वया  
पामयि ॥ १ ॥ उद्धपायोदयि मणुरस

सद्यः ठाणो'ति चकममपभा बस्य यदेव व्यापारपरिसमाप्तिर्मयति स सर्वेव सामयिकं कृत्वा तिष्ठतीति गाथार्थः ॥ १५१७ ॥  
 अयं च विधिः केनचित् कारणान्तरेण गुरोर्व्यापारे सति । 'अहं पुन निवासागो' व्याख्या—यदि पुनर्निर्वापाय एव सर्वे-  
 वामानदयक-प्रतिक्रमणं सतः कुर्यान्ति सर्वेऽपि सर्वेव गुरुणा 'सह्यदिकदण्णभायाते पच्छा गुरु ठंति'ति निगद्यसिद्धमिति  
 गाथार्थः ॥ १५१८ ॥ यदा च पश्चाद् गुरयस्मिन्निति यदा—'सेसा व अक्षसणी' गाहा व्याख्या—संपासु साधयो यदा  
 द्यष्टि-दत्तमनुकुर्य यो हि याय-तं काळं स्यात्तु सर्वार्थः 'आयुष्ठिचा गुरु ठंति सह्यणे सामायिकं काकणा, किंनिमित्तं ?—'सुख-  
 रपसरणहेतुं' सूत्रार्थस्सरणनिमित्तं—'आयसिए ठियमि देवसिय' आयसिए गुरयो तिए सत्स सामादयावसाये देवसियं अहं  
 पारं भित्तेति, अरणे भणति—आहे आयसियो सामादय कहुर साहे सेवि सवद्विया वेव सामादयसुखमणुपेहेति गुरुणा  
 सह पच्छा देवसिय'ति गाथार्थः ॥ १५१९ ॥ येषां यया अकिरियुकं, एस कायोत्सर्गेण स्यातुं अकिरेव नास्ति स किं  
 कुर्यादिति सद्गतं विधिभभिधिसुराह—'ओ ह्मव व असमयो' गाहा व्याख्या—यः कश्चित् साधुर्नवेदसमर्थः कार्यो-  
 त्सर्गेण स्यात्तु, स किंभूत इत्याह—आठो पुजो नजानः 'परिसंवे'ति परिभान्तो गुरुर्नयाहस्यकरमगदिना वसावसि  
 यिकपादितिरद्विष्टः सन् भयायत् सूत्रार्थे 'आ गुरु ठंति'ति पावद् गुरयस्मिन्निति कायोत्सर्गमिति गाथार्थः ॥ १५२० ॥

१ अतएव गुरु ठिष्ठति इत्यादि सामायिकं हाया किंमिति । सूत्रार्थस्यान्वयेन । आचार्ये भिन्ने वैवधिक-आचार्ये ग्राहा भिन्ने तत्र सामा-  
 दिकाद्विधाने वैवधिकमतिव्यापारं विधायकमिति, अन्वे भवति—यदाऽऽद्यायः सामायिकं अथवातिव्यापारं यदा येषां अद्वैतसिद्ध्या दूर लालानिष्कृष्टमनुमेयान्ते गुरुणा  
 सह वसावसिष्टक

कायोत्सर्गमन्त्रो 'दीहृदको पे'ति सर्वपट्टे चात्मनि परे वा सहसा-अकाण्ड एयोच्चारयसः, सर्वथ आक्रियन्त इत्याकारा  
 सैराकारैरभ्यस्यः स्यात् कायोत्सर्ग पृथमाधिरिति गार्थः ॥ १५१६ ॥ अधुनोपस्यः कायोत्सर्गधिप्रतिपादनायाद-  
 ते पुन सस्वरिष चिष पासवपुष्कारकालभूमीयो । पेहिंसा अस्थमिष ठसुस्सग सप ठाणे ॥ १५१७ ॥  
 जइ पुण निठवायाप आवास तो करिंति सन्धेधि । सह्राइकण्णवायापयाइ पच्छा गुरु ठंति ॥ १५१८ ॥  
 सेसा ड जइासत्तिं आपुत्तिताण ठति सह्राणे । सुस्तपसरणइव आपरिपेँ ठियंमि देवसिय ॥ १५१९ ॥  
 जो ह्ज्ज ड असमत्थो पाळो सुहो गिलाण परिततो । सो धिकइइधिरहिओ इाइज्जा जा गुरु ठति ॥ १५२० ॥  
 जा देवसिअ इगुणं चितइ गुरु अहिंइओडचिह । पमुयायारा इअरे एगगुण ताव चितति ॥ १५२१ ॥  
 पवइयाण व चिह न्नाऊण गुरु पमु पमुधिदीअ । काळेण तनुधिपणं पारेइ थोपच्छिओडयि ॥ (प्र०१) ॥  
 ननुच्चारयववीसगकिइकम्मालोअण पविष्मण । किइकम्मदुरालोइअ इप्यवित्ते य वस्सगो ॥ १५२२ ॥  
 एस चरिमुस्सगो वसणसुदीइ तइयओ इोइ । सुअनाणस्स चटयो सिद्धाण गुरेँ अ किइकम्म ॥ १५२३ ॥  
 व्यासया-हे पुनः-कायोत्सर्गकर्तारः सर्वर्ष एय दिवसे प्रथमणोच्चारकालभूमयः (मीः) प्रत्युपसन्ते, द्वादश प्रथमण  
 भूमयः शालयपरिमोगान्तः पद् पद् षट्तिः, एयमुच्चारयूमयो द्वादश, प्रमाण वासां विषेण जपन्त्यन द्वात्रिंशत्तयार्थं  
 लानि यावत् अचेतनं, वत्कुटसस्तु स्थण्डिलं द्वादश योजनमानं, न च तेनेहाधिकारः, तिस्रस्तु क्वाळभूमय - क्वाळमण्डलाकारः,  
 यावच्चैनमन्य च भ्रमणयोगं कुर्वन्ति कालधेयार्थां सायत् प्रायस्त्रोऽक्षमुपयात्येव सधित्वा वटश्च 'अरथमिष ठंति वस्सगं



स एव तापो'ति एकमव्यथा यस्य पदेन व्यापारपरिसमाप्तिर्भवति स सर्वत्र सामर्थिकं कृत्वा विवर्षीति गायार्थः ॥ १५१७ ॥  
 अयं च विधिः केनचित् कारणान्तरेण गुरोर्व्यापाते सति । 'अहं पुन निष्पापामो' व्याख्या—यदि पुनर्निर्व्यापाव एव सर्वे-  
 वामावयवक-प्रतिक्रमणं सतः कुर्यन्ति सर्वेऽपि सर्वत्र गुरुणा 'सहृदिकहणवापाते पच्छा गुरु ठंति'ति निगदसिद्धमिति  
 गायार्थः ॥ १५१८ ॥ यदा च पश्चाद् गुरवस्त्रिषन्ति सदा—'सेवा व अह्रासवी' गाहा व्याख्या—'सेवासु साधवो यथा  
 यत्कि-सत्त्वयुक्तं यो हि पापन्तं काष्ठं स्यात् समर्थः 'आगुञ्जिषा गुरु ठंति सद्यो सामर्थिकं काकल, किंनिमित्तं ?—'सुख  
 रयसरणोद्व' सूत्रार्थस्मरणनिमित्तं—'भायरिप दिव्यमि देवसिधं' भायरिप पुरमो विप वसस सामादवावसाणे देवसिधं अह  
 धार विवर्षति, अरणे भणति—'आहे आयरिभो सामादय कहुइ ताहे तेवि वयद्विया येव सामादयसुखमणुपेहंति गुरुणा  
 सह पच्छा देवसिधं'ति गायार्थः ॥ १५१९ ॥ येषामवयवा यत्किरिगुरुकं, यस्य कायोत्सर्गेण स्यात् सुकिरेव नास्ति स किं  
 कुर्यादिति वदन्त विधिभभिधिसुताह—'ओ हूअ व असमर्थो' गाहा व्याख्या—यः कश्चित् साधुर्मेवैव समर्थः कार्ये-  
 त्सर्गेण स्यात्, स किंभूत इत्याह—'माओ इओ नानाः 'परिततो'ति परिभान्तो गुरुद्वयाद्व्यक्तकलादिना असावसि  
 धिकपादियिरहिंसः सन् व्यापेत् सूत्रार्थः 'आ गुरु ठंति'ति पापह गुरवस्त्रिषन्ति कायोत्सर्गमिति गायार्थः ॥ १५२० ॥

१ आदयव गुरु विवर्षित्य सत्यमेव साधारणं कृत्वा, विविधित्वं, सूत्रावधारणार्थेन । आचार्ये भिन्ने वैवर्षिक-आचार्ये गृहा भिन्ने यस्य सामा-  
 धिक्यमात्रे वैवर्षिकमिति चारं विधायकम्, अयं यत्किञ्च-यदाऽऽचार्यः सामाधिकं कथयति तदा तेनैव वदयिष्यता यत् सामाधिक्यवदयुक्तेन गुरुणा  
 सह वदयिष्यति

पीत्यर्थः, 'किमुत चेद्वा च'सि किं पुनश्चेष्टाकायोत्सर्गकारी, स तु सुतरां न निरुणद्धि इत्यर्थः, किमिष्यत आह—'सञ्जमरणं  
 निरोहे'सि सद्योमरण निरोधे चञ्चुसस्य, ततश्च 'सुहृदुरसासं तु अयणाए'सि सूक्ष्मोन्मृशसमेव यतनया मुञ्चति, नोन्मेषणं,  
 मा भूत् सत्यपात इति गायार्थः ॥ १५१० ॥ अनुना 'कासिते'त्यादिसूत्रार्थमधिकटिपयेदमाह—'काससुययञ्भिप'  
 गाहा व्याख्या—इह कायोत्सर्गे काससुतज्जम्भितादीनि यतनया क्रियन्ते, किमिति १—'मा २ सरयमणिजोडण्डिरस  
 तिहुण्हो'सि मा शस्त्र भविष्यति कासितादिसमुद्भवोऽनिजो—याशुरनिष्ठस्य—बाष्पास्य पायोः, किंभूतः १—तीव्रोष्णः, बाष्पानि  
 लापेक्षया अशुष्का इत्यर्थः । न च न क्रियन्ते न च निरुप्यन्त एव न 'असमाही य निरोहे'सि (सर्वधारीधे) असमाधिश्च  
 चक्षुब्धात् मरणमपि सन्नभाक्यते कासितादिनिरोधे सति, 'मा मसगार्ह'सि मा मसकादयश्च कासितादिसमुद्भवपयपनभृ  
 व्याभिहृता मरिष्यन्ति जृम्भिते च वदनप्रवेष्ट करिष्यन्ति ततो हस्योऽप्रतो दीयत इति यतनेयमिति गायार्थः ॥ १५११ ॥  
 आह—निःश्वसितेनेति सूत्रावयवो न व्याख्यायते इति किमत्र कारणम् १, उच्यते, चञ्चुसितेन तुल्ययोगशेनत्वादिति,  
 इदानीम् 'चङ्गुगारितेने'त्यादिसूत्रावयवव्याधिक्यासयाऽऽह—वासनिसर्गः—वक्त्रस्वरूप चङ्गुगारोऽपि, तत्राप धिधिः—यतना  
 यच्चस्य क्रियते न निषृष्टं मुच्यत इति, 'नेष च निरोहो'सि नैष च निरोधः क्रियते, असमाधिभाषादेय, चङ्गुगारे या  
 हस्योऽन्तरे दीयत इति 'ममलीमुच्छासु य निषेसो' मा सहसापतितस्यात्मविधिराधना भविष्यतीति गायार्थः ॥ १५१२ ॥  
 सान्मत्तं 'सूक्ष्मैरङ्गसञ्चारै'रित्यादिसूत्रावयवव्याधिरूपासयाऽऽह—वीर्यसयोगतया कारणेन सञ्चाराः सूक्ष्मपादरा दद  
 श्वद्वयभाधिनो, वीर्य वीर्यान्तरायक्षयोपद्रामक्षयञ्च स्वस्यात्मपरिणामो मण्यते योगास्तु—मनोयाद्कायास्तत्र वीर्यसयोग-

तदेवातिजाराः सूत्रमादराः भवन्ति न केवलत्वं धीर्यादिति देह एव न भवति नादेहस्त, तत्र बह्वी रोमञ्जादय आदि  
 सुव्यापुक्तम्प्रमदः 'अन्तो लेखानिछापीषा' अन्तः-मध्ये भवेयमानिछादयो विचरतीत्यर्थः, इति गायार्थः ॥१५११॥ अमुना  
 'सूत्रोद्विष्टिखारै'रिति सूत्रायय व्याख्यानयति—अथलोक्नमाओकलसिधायओके वलं धयओकवलं दर्शनलाउसमि-  
 त्यर्थः, किं ?—चक्षुः-नयन, यत्तर्धयमतो मनोषद्—अन्तःकरणमिव तद्यक्षुर्बुद्धर स्थिरं कर्तुं, न द्यक्यत इत्यर्थः, यतो क्मे-  
 खदासिष्यत् स्वभायतो या-स्वभावेन या नैसर्गिकेण स्वय लजति, आत्मनैव चलतीति गायार्थः ॥१५१२॥ यस्मादेवं तस्माद्  
 न करोति निमेष(रोध)यस्य कापोरसर्गकारी, किमिति ?—'तुरयुयओगे ण हाण हाएव'सि तत्र-निर्निमेषयत्ने य चययोग-  
 स्तेन सता मा न ध्यानं ध्यायेत् अभिमेवमिति, 'एगनिसुं पुवओ हायद् सद्द' अणिमिसुओडवि' एकरात्रिकीं तु प्रतिमां  
 प्रतिपद्यो महासस्यो द्यायति समर्थः अनिमेषाओडवि—अनिमिषे अधिणी यस्य सः अनिमियाओ निजजनयन इति गायार्थः  
 ॥१५१३॥ अमुना एवमादिभिराकारैरित्यादिसूत्रावयवव्याधिस्यासयाह—'अगणि'सि यदा न्योतिः स्रुष्टाति सदा प्रावर  
 णाय कल्पमदणं कुर्वतो न कायोरसर्गमद्द, आह—नमस्कारमेयाभिघाय क्रियति तद्वद्वरण न करोति ! येन तद्वन्मनो न भवति,  
 तस्यैव, नात्र नमस्कारपारणमेयाविशिष्ट कायोत्सर्गमान प्रियते, किं तु यो यत्परिमाणो एव कायोरसर्गं चकलत् कल्प  
 परिसमाशुडपि सस्मिन्नमस्कारमपठतो भद्र इत्यादि, अपरिसमाशुडपि च पठतो भद्र एव, स चात्र न भवतीति, एव सर्वत्र  
 भवनीय, 'ठिदिज्ज प'सि मार्जारीमूषकादिभिर्वा पुरतो यायात्, अत्राप्यमताः सरतो न कायोत्सर्गमद्द, 'योहिपखोनाइ'सि  
 योपिका—तेनकासेन्य क्षोभ—सक्षमः, आदिपद्माप्राजाविशोभ' परिपृष्टते, तत्रास्थानेऽप्युच्चारयतो(ऽनुच्चारयतो)ना न

पीत्यर्थः, 'किमुत चेद्वा त'सि किं पुनश्चेद्वाकायोत्सर्गकारी, स तु सुखरा न निरुणद्धि इत्यर्थः, किमित्यत्र आह—'सम्प्रमरणं  
 निरोहे'सि सद्योमरण निरोधे चञ्चुत्सस्य, सतश्च 'सुहृन्मुत्सासं तु अयणाप'सि सूक्ष्मोच्छ्वासमेव यतनया मुञ्चति, नोत्सर्गं,  
 मा सूत सत्यपात इति गायार्थः ॥ १५१० ॥ अपुना 'कासिते'त्यादिसूत्रार्थमधिकटिपयेदमाह—'कासस्तुयञ्जभिष'  
 गाहा व्याख्या—इह कायोत्सर्गे कासस्तुयञ्जभिषाधीनि यतनया क्रियन्ते, किमिति ?—'मा तु सत्यमणिखोडनिष्ठस्य  
 त्रिषुण्णे'सि मा शब्द भविष्यति कासितादिसमुद्भवोऽनिखो—वापुरनिलस्य—वायस्य वायोः, किंभूतः ?—वीप्रोप्याः, वायानि  
 खोपेक्षया आस्तुष्या इत्यर्थः । न च न क्रियन्ते न च निरुध्यन्त एव न 'असमाही य निरोहे'सि (सर्वधारोधे) असमापिष्य  
 चशब्दात् मरणमपि सम्मानयते कासितादिनिरोधे सति, 'मा मत्सगार्ह'सि मा मत्सकादयश्च कासितादिसमुद्भवपयवनभेदे  
 प्पामिहता मरिष्यन्ति अन्निमते च वदनप्रवेश करिष्यन्ति ततो हस्रोऽपगतो दीपव इति यतनेयमिति गायार्थः ॥ १५११ ॥  
 आह—निःश्वासितेनेति सूत्रावयवो न व्याख्यायते इति किमत्र कारणम् ?, उच्यते, चञ्चुसितेन तुल्ययोगक्षेमत्वादिषि,  
 इदानीम् 'चदूगारितेने'त्यादिसूत्रावयवव्याधिरूपासयाऽऽह—वातनिसर्गः—चकस्यकप चदूगारोऽपि, तत्राप यिधिः—यतना  
 सञ्चस्य क्रियते न निषटं मुच्यत इति, 'नेव य निरोहे'सि नैव च निरोधः क्रियते, अस्मन्नाधिभक्षार्थेय, चदूगारे या  
 हस्रोऽन्तरे दीपव इति 'भमलीमुच्छासु य निवेशो' मा सहसापतितस्यात्मधिरापना भविष्यतीति गायार्थः ॥ १५१२ ॥  
 साम्प्रतं 'सूक्ष्मैरङ्गसञ्चारै'रित्यादिसूत्रावयवव्याधिरूपासयाऽऽह—वीर्यसयोगतया कारणेन सञ्चाराः सूक्ष्मवादरा ददे  
 अवश्यमिति नो, वीर्यं वीर्यान्तरायधयोपपन्नमव्ययं सन्मयात्मपरिणामो भूयते योगास्तु—मनोवाहकायास्तत्र वीर्यसयोग-

विष्णुः, इत्यमपीत्यर्थः । एष प्रथमशुद्धिः कृपादिना पञ्चादेर्भावशुद्धिः प्रायश्चित्तादिनाऽऽत्मन एव, इत्यस्यैव कष्टक-  
 शिषीमुखकृत्वादि, भावशुद्धयं तु मायादि, सर्वे ज्ञानावरणीयादि कर्म पापं पर्येत, किञ्चित् १-आत्म्यते येन कारणेन तेन  
 कर्मणा जीवः सद्यरे-तिर्यग्नेतारकामरन्ध्रपात्रमवलम्बणे, सया च दग्धरक्तुकर्म्येन भयोपमाश्लिणाऽऽसेनापि सदा केवलित्ते-  
 नपि न शुक्रिमासादयन्तीति दाहणं सद्यरेध्वमणनिमित्तं कर्मेति गाथार्थः ॥ १५.०९ ॥ सामप्रवम् 'कर्म्यमोक्तुस्तिरेने'  
 सत्ययय सिद्धणोति—

उरसास न निरुनर आभिगगहिभ्योयि क्रिमुभ सिद्धा वः । सज्जमरण निरोहि सुदुस्तसासु अयणाप ॥ १५.१० ॥  
 कासलुभजभिप मा ह्यु सत्यमणिलोडनिवस्त सिप्युणरो । असमाहीय निरोहि मा मसगार्ह कर्मो हत्यो ॥ १५.११ ॥  
 पायनिसगुणोप अयणासदस्त नैय प निरोहि । उडोप वा हत्यो ममलीमुच्यतासु भ निवेसो ॥ १५.१२ ॥  
 धीरिपसजोगपाप सयारा सुदुमपायरा वेहे । पाहि रोमचार्ह भंगो क्लेशाधिकार्हया ॥ १५.१३ ॥  
 आ(भय)तोभयल वयस्व मनुष्य त हुकर पिर काव । रुवेहि तय सिप्यह समापजो वा सप चलह ॥ १५.१४ ॥  
 न कुणह निमंसमुक्ततरुयभोगं ण साण सारज्जा । एगनिस्सि सुपवलो सापह साह् अणिसिस्सुखोडवि ॥ १५.१५ ॥  
 जगत्तीओ णिदित्र प धीरिपलोभार धीरुवको वा । आगारेहि अमन्तो उस्तनगो एवमार्हिहि ॥ १५.१६ ॥  
 ऊर्ध्व प्रपठः भास वज्यासः स न निरुनरं चि न निरुणद्धि, 'आभिगगहिभ्योयि' अस्मिपुष्टव इति अस्मिप्रहः अस्मि  
 प्रहण निपुष्ट आभिप्रहिक-कायोत्सर्गस्वदव्यतिरेकात् सवर्कत्वाऽप्याभिप्रहिको भव्यते, असावप्यस्मिन्वकायोत्सर्गकार्ये

द्वय(द) गाथायुगल यथा सामायिकाभ्ययने व्याख्यासं सयैव द्रष्टव्यमिति, साम्प्रतं 'तस्योत्तरीकरणेन'ति सूत्राधय  
विषुष्यवाह—

स्वरूपविराहियाण मूलगुणाण सचररगुणाण । उत्तरकरण कीरर जह सगदररगोहराणं ॥ १५०७ ॥  
पाय छिदर जम्हा पायच्छिदर हु भर्भर सेण । पायण वाधि चिरा विसोदर नेण पच्छिदर ॥ १५०८ ॥  
दब्बे भावे य हुहा सोही सल्ले च इकमिदं हु । सच्च पाव कम्म भागिमिदं जेण ससारे ॥ १५०९ ॥  
व्याख्या—'सण्डितविराधितानां' सण्डितः—सर्वथा भग्ना विराधिताः—वेक्ष्यते भग्ना मूलगुणानां—भागाविधादिवि  
निवृत्तिक्रियाणां सह चररगुणैः—पिण्डविष्टु—व्याधिभिर्धर्तव इति सोचरगुणास्तेषामुत्तरकरणं क्रियते, आलोचनादिना पुनः  
सस्करणमित्यर्थः, दृष्टान्तमाह—यथा सकटरथाङ्गोहरानां—गम्भीरकण्टकाणामित्यर्थः, तथा च सकटानां सण्डितविराधि  
ताना भक्षावलकानोत्तरकरणं क्रियत इति गार्थार्थः ॥ १५०७ ॥ अनुना 'पायच्छित्करणेन'ति सूत्राधय च व्याख्या  
सुराह—'पावं' गाहा, व्याख्या—पाप—कर्मोच्यते सत् पाप छिनत्ति यस्मात् कारणात् माहुतथैत्या 'पायच्छिदर'ति अभ्यत, तेन  
कारणेन, सस्कुते हु पापं छिनत्तीति पापच्छिदुच्यते, पायसो वा चित्त—धीव सोधयति—कर्ममल्लिनं विमलीकरोति तेन  
कारणेन प्रायश्चित्तमुच्यते, प्रायो धा—माहुत्येन चित्त स्वेन स्वकणेन अस्मिन् सतीति प्रायश्चित्त, प्रायोमदणं संहरादेरपि  
तथाविधचित्तसर्वभावादिति गार्थार्थः ॥ १५०८ ॥ अनुना 'विशोधिकरणे'त्यादिषु प्रापययव्याधिरूपसमाऽऽह—'दये भावे  
य हुहा सोही' गाहा—द्रव्यतो भावसम्य द्विविधा विशुद्धिः, यस्य च, 'एकमेकं हु'ति एकैकं शुद्धिरपि द्रव्यभाषभेदेन

आत्मकाजस्सगो पट्टिकमणे भाव काय सामद्वयं । तो किं करोह भीर्यं तद्वा अ वा पुणोऽपि वस्सगो ? ॥ १५०२ ॥  
समभावंमि ठियप्पा उस्सगग करिय तो पट्टिकमद्वा । एमेव य समभावे ठियस्स तद्द्वयं तु वस्सगो ॥ १५०३ ॥  
सज्जापसाणातत्थोसद्वेसु खवप्सुत्तुहयपाणेसु । सत्तगुणकिस्सणेसु अ न ह्वति पुणक्खवोसा व ॥ १५०४ ॥

व्याख्या—‘आदिमकायोत्सर्गे’ इति प्रथमकायोत्सर्गे कृत्वा साधायिकमिति योगः ‘पट्टिकमणे ताव विविधं क्वावं सामा-  
द्वयं योगः, वा किं करोह तद्वयं य सामाद्वय पुणोऽपि वस्सगो’ यः प्रतिकल्पोपरीति भाषार्थः ॥ १५०२ ॥ ‘आज्जना  
वंपम्, अत्रोच्यते—‘समभावंमि’ गाहा व्याख्या—इह समभावस्थितस्य भावप्रतिक्रमण भवति नाभ्यधा, एतच्च सम-  
भावे—रागद्वेषमध्यवर्धिनि स्थित आत्मा यस्यासौ स्थितात्मा, ‘वस्सगं क्वाव (करिय) तो पट्टिकमवि’ दिवसातिशयपरिज्ञानाय  
कायोत्सर्गे कृत्वा शरीरविचार निवेष्ट एवंप्रदत्तमायक्षिप्तं समभावपूर्वकमेव प्रपद्य ततः प्रतिक्रमति, ‘एमेव य समभावे  
ठितस्स सविषं तु वस्सगं’ एवमेव य समभावे व्ययस्थितस्य सतत्त्वारिष्यशुद्धिरपि भवतीति कृत्वा तृतीय धामाधिक कायो  
त्सर्गे प्रतिप्रान्वोचरक्काडभापिनि क्रियत इति भाषार्थः ॥ १५०३ ॥ प्रत्ययस्यानभिद्वय—‘समभावेसाणं’ गाहा व्याख्या नि-  
गदसिद्धा, इदानीं ‘ओ मे दंपसिमो अद्वारो क्खो’ इत्यादि सूत्रमयो व्याख्यातस्याध्वनात्स्य ‘एतच्च मिच्छामि बुद्धं’ इति  
सुभाषपथ व्याख्यारथासुराह—

मिस्सि मिजमद्वयसं छस्सि अ दोसाण छायणं होह । मिस्सि य मेराह ठिओ इस्सि बुहुंछामि अत्थपाणं ॥ १५०५ ॥  
एस्सि एद मे पाप दस्सिप देपेमि त खवसमेण । एसो मिच्छावक्खद्वयपक्खरत्थो समासेण ॥ १५०६ ॥

कादौ विषये 'आलोप' दैसिप्य च अतिचारे'ति अथलोकेत-निसीधेत दैवसिक्कनविचारान्-अविधिप्रत्युपेक्षिताप्रत्युपेक्षिता  
 दीनिति, ततः 'सर्वे समणाइत्ता' सर्वानतिचारान् मुखवञ्जिकामत्युपेक्षणादारम्य यावत् कायोत्सर्गावस्थानमभ्यन्तरे य इति  
 'समाणाइत्ता' समाप्य मुख्यधोकेनेन समाप्तिं नीत्वा एतावन्त एव इति, नातः परमतिचारोऽसि सतो 'इदये' चेवसि दोषान्-  
 प्रसिपिक्ककरणादिछव्वणान् आलोचनीयानित्यर्थः, स्थापयेदिति गाथार्थः ॥ १४९९ ॥ कृत्वा इदमे दोषान् यथाक्रममिति  
 प्रसितेवनानुलोभ्येन आलोचनानुलोभ्येन च, प्रतिषेधनानुलोभ्य नाम ये यथाऽऽसेषिता इति, आलोचनानुलोभ्य तु पूर्वं  
 छव्व आलोच्यन्ते पश्चाद् गुरव इति, 'आ न ताव पारेति'ति यावच्च तावत् पारयति गुरुर्मनस्कारेण, 'ताव सुइमाशु  
 पाणु'ति तावदिति कालावधारण, सूक्ष्मप्राणापानः, सूक्ष्मोच्छ्वासनिश्वास इत्यर्थः, किं १- 'धम्मं सुकं च झएज्जा' धम्मध्यानं  
 प्रतिक्रमणाभ्ययनोक्तस्वकर्म शुद्धं ध्यानं च व्यापेदिति गाथार्थः ॥ १५०० ॥ एव—

दैसिय राइय पक्खिय चान्दम्मासे नइव वरित्से य । इक्किं निहि गमा नायव्वा पंचसेएसु ॥ १५०१ ॥

व्याख्या— 'दैवसिय'ति दैवसिके प्रतिक्रमणे दिवसेन निर्धुस दैवसिकं, 'राइय'ति रात्रिके, 'पक्खिय'ति पाक्षिक  
 'चान्दम्मासे'ति 'आहुर्मासिके' तथैव 'वरित्ति'ति तथैव धार्मिके च, धर्मेण निर्धुसं धार्मिकं-सांघत्सरिकमिति भावना, एक  
 कसिन् प्रतिक्रमणे दैवसिकादौ अथो गमा सातन्थाः, पञ्चस्वेतेषु दैवसिकादिषु, कर्म अथो गमाः १, सामायिकं कृत्वा  
 कायोत्सर्गकरणं, सामायिकमेव कृत्वा प्रतिक्रमणं, सामायिकमेव कृत्वा पुनः कायोत्सर्गम्, इह च यस्माद् दिवसादि तीर्थ  
 दिवसप्रधानं च तस्माद् दैवसिकमाधाधिति गाथार्थः ॥ १५०१ ॥ अत्राह चोदकः—



भारमकाजस्सगो पडिक्कमणे ताव काव सामर्यं । तो किं करोह वीर्यं तद्वत्तं च पुणोऽपि वस्सगो ? ॥ १५०२ ॥  
 समभार्यमि ठियप्पा वस्सगं करिय तो पडिक्कमह । एमेव य समभावे ठियस्स तद्वत्तं पु वस्सगो ॥ १५०३ ॥  
 सज्जापसाणत्तवओसहेत्तु ववप्पसपुहपपाणेसु । सत्तगुणकिस्सणेसु अ न भुंति पुणरत्तवोत्ता अ ॥ १५०४ ॥  
 व्याख्या—‘आदिमकायोत्सर्गो’ इति प्रथमकायोत्सर्गो कृत्या सामाधिकमिति योगः ‘पडिक्कमणे ताव विविधं कावं सामा-  
 र्यं’ इति योगः, ता किं करोह सर्यं च सामार्यं पुणोऽपि वस्सगो’ यः पडिक्कान्तोपरीतिं नापार्यः ॥ १५०२ ॥ चावना-  
 भाये—रागद्वेषमभ्युपाधिनं स्थित आत्मा यस्यार्थां स्थितात्मा, ‘वस्सगं काव (करिय) वो पडिक्कमति’ दिवसातिचारपरिज्ञानाय  
 कायोत्सर्गं कृत्या गुरोरतिचारं निषेधं तत्प्रदत्तमापन्नित्वं समभावं पूर्वक्रमेव प्रपद्य ततः प्रतिक्कमति, ‘एमेव य समभावे  
 ठितरत्तं तद्विधं तु वस्सगं’ एवमेव च समभावे व्याप्यस्थितस्य सत्तवारिचशुद्धिरपि भवतीति कृत्या वृत्तीयं सामाधिकं कायो-  
 त्सर्गं पडिक्कान्तोत्तरकावमायिनि क्रियत इति नापार्यः ॥ १५०३ ॥ प्रत्ययस्थानमिदम्—‘सज्जापसाणं’ गाहा व्याख्या नि-  
 गदसिञ्च, इदानीं ‘ओ मे देवसिओ आरपारो कओ’ इत्यादि सूत्रमयो व्याख्यावत्यादनादस्य ‘वस्स निक्कमि तुक्कं’ इति  
 सूत्रापदं व्याधिरुपासुराह—

भित्ति मिजमद्वयसं पत्ति अ दोसाण छाये होह । भित्ति य मेराह ठिओ बुत्ति तुगुंठाभि अण्णार्णं ॥ १५०५ ॥  
 कस्स वट मे पाय दस्सिप देवमि त जवसंमण । एसो मिच्छावक्कवपयक्खरत्थो समासेण ॥ १५०६ ॥

सन् निरेजकायो-तिथ्यक्रमदेह इति भावना, निरुद्धयाकुपसरः-मौनव्ययस्थितः सन् आनीते सुखमेकमना-एकप्रापिच, सन् कोऽसौ ?-मुनिः-साधुः, किं ?-दैवसिकातिचारं आदिशब्दाप्राप्तिक्रमह इति गाथार्थः ॥ ततः किमित्याह-यस्मात् कारणात् सम्यग्-अद्यतभावेन गुरुजनप्रकाशनेन-गुरुजननिवेदनेनेति हृदयं, शुशब्दात् तदादिशब्दप्राप्यक्षितकरणेन च शोधयत्सारमानमसौ, अतिचारमस्तिनं कालयतीत्यर्थः, तच्चातिचारपरिज्ञानमधिकलं कायोत्सर्गव्ययस्थितस्य भयस्यतः कायोत्सर्गस्थानं कार्यमिति, किंच-यस्माज्जिनेर्भगवद्भिरयं कायोत्सर्गो भणित-उक्, तस्मात् कायोत्सर्गस्थानं कार्यमिति गाथार्थः ॥ १-२ ॥ यतश्चैयमठः 'कावत्सर्गं मुक्त्वापहर्देसिच'ति मोक्षपन्थास्तीर्थंकर पूर्व भव्यते तत्प्रदर्शकत्वात्, कारणे कार्योपचारात्, तेन मोक्षपथेन देधित-उपदिष्टः मोक्षपथदेधितस्व, 'आणिकण'ति दिवसाद्यतिचारपरिज्ञानो पायतया विज्ञाय ततो धीराः-साधवा, दिवसातिचारज्ञानार्थमित्युपलक्षणं रात्र्यतिचारज्ञानार्थमपि, 'ठायति वस्त्राणां'ति सिद्ध्यन्ति कायोत्सर्गमित्यर्थः, तद्वच्च कायोत्सर्गस्थान कार्ययोग्य, समयोजनत्वात्, तथाविषयेयावत्स्यवादिति गाथार्थः ॥ १६९७॥ साम्प्रत यदुक्त 'दिवसातिचारज्ञानार्थमिति, तत्रोपगतो विषयद्वारेण समतिचारमुपदर्शयन्नाह-

स्यपणासणणपाणे च्छेय णां सेज्ज काय वचारे । समितीभाषणशुसी चित्तद्वयरणमि अइपारो ॥ १४९८ ॥  
 व्याख्या-शयनीयवितयाचरणे सत्यतिचारः, एतदुक्तं भवति-सस्मारकादेरविधिना प्रवृत्तादौ अतिचार इति, 'आसण'ति आसनवितयाचरणे सत्यतिचारः पीठकादेरविधिना प्रवृत्तादतिचार इति भावना, 'णणपाण'ति अन्नपानपितृवयाचरणे सत्यतिचारः अन्नपानस्यापिधिना प्रवृत्तादायतिचार इत्यर्थः, 'चेतिय'ति चेत्यवितयाचरणे सत्यतिचारः, 'वत्सविषय

विवर्तयाम्भरमभिभिन्ना बन्धन अकरणे चेत्यादि, 'अहं'सि पठित्विधवाचरणे सत्यविचारः, पठित्विधये च विवर्तयाम्भरणं यथाह  
 विनयापकरणमिति, 'सेज्ज'सि सव्यापितवाचरणे सत्यविचारः, एतया पस्यतिरूप्यते, सप्तिपदं विवर्तयाम्भरणमभिभिन्ना  
 प्रमार्जनार्थं कृमादिससक्तार्थां वा पस्यत इत्यादि, 'काय' इति क्वापिकविधवाचरणे सत्यविचारः, विवर्तयाम्भरणं चास्यपिबले  
 क्वापिक इत्युत्पद्यते। स्यपिबले वाऽप्रमुपेक्षितादायित्यादि, 'उच्चार'सि उच्चारयितवाचरणे सत्यविचारः उच्चारः-पुरीषं  
 भण्यते विवर्तयाम्भरणं चेतद्विधये यथा क्वापिकत्या, 'समिति'सि समितिविवर्तयाम्भरणे सत्यविचारः, समितयज्जेयं'समिति-  
 प्रमुखाः यथा यथा प्रतिक्रमणे, विवर्तयाम्भरणं चासामयिधिनोऽप्येवनेऽनासेवने चेत्यादि, 'भावने'सि भावनायितवाचरणे  
 सत्यविचारः, भावनाश्चानित्यराधादिगोचरा द्वावस्य, यथा चोक्तम्- 'भावयितव्यमनित्यत्वमक्षरणत्वं तथैकवान्यत्वे। अयुचित्वं  
 संसारः कर्मोपपद्यतयिधिविध ॥ १ ॥ निर्बरणोक्तयिस्वरपरमस्वाख्यातवत्त्वचिन्ताच्च। बोधेः सुदुर्लभत्वं च भावना द्वादस्य  
 यिद्युद्धा ॥ २ ॥" अथवा यथाविधयतिभावना यथा प्रतिक्रमणे, विवर्तयाम्भरणं चासामयिधियेवनेनेत्यादि, 'गुह्य'सि गुह्ये  
 यितवाचरणे सत्यविचारः, तत्र मनोगुह्यममुखास्तिमो गुह्यम। यथा प्रतिक्रमणे, विवर्तयाम्भरणमपि गुह्यविधये यथा समिति  
 न्यति गायार्थः ॥ १४६८॥ इत्यसामान्येन विरपद्मारेणाविचारमभिधायायुना कापोरुर्गगतस्य मुनेः क्रियामभिधित्सुराह-  
 गोसमुद्गतागार्ह आलोप दंसिप य अह्यारे। सन्धे समानाहस्ता द्वियप दोसे ठविज्जाहि ॥ १४६९ ॥  
 काव द्विभण दोसे एतद्व्यम जा न साव पारेह। ताव सुदुमानुपाणू यम्य सुव्य च द्वाहज्जा ॥ १४७० ॥  
 गोः प्रत्युषो भण्यते, 'मुद्गताग' मुखयस्त्रिका आदिष्व्याप्येपोपकरणमहः, सतमेवदुक्तं यमसि-गोपाकारव्यं मुलवचि

सन् निरेजकापो-निष्प्रकम्पदेह इति भावना, निरुद्धधातुप्रसरः-भीनव्यवस्थित सन् जानीते सुखमेकमना-एकामचिद, सन् कोऽसौ १-मुनिः-साधुः, किं १-दैवसिक्कातिचारं आदिशब्दप्राप्तिक्रमह इति गाथार्थः ॥ ततः किमित्याद-यस्मात् कारणात् सम्यग्-अष्टभावेन गुरुजनप्रकाशनेन-गुरुजननिवेदनेनेति हृदयं, शुश्रूषात् सदादिअष्टप्रायश्चित्तकरणेन च धोषवत्सारमानमसौ, अतिचारमस्मिन् झालयतीत्यर्थः, तच्चातिचारपरिज्ञानमाधिकं कापोत्सर्गव्यवस्थितस्य भयत्नतः कापो त्सर्गस्थानं कार्यमिति, किंच-यस्माज्जिनेर्भगवद्भिरय कापोत्सर्गो भणित-वक्तुः, सस्मात् कापोत्सर्गस्थानं कार्यमिति गाथार्थः ॥ १-२ ॥ यतश्चैवमतः 'कावत्सर्गं मुक्त्वापहृदयि'ति मोक्षपन्थास्तीर्यकर एव भण्यते तत्प्रदर्शकत्वात्, कारणे कार्योपचारात्, तेन मोक्षपथेन दक्षित-चपदिष्टः मोक्षपथदेशितस्तु, 'आणिकण'ति दिपसाद्यतिचारपरिज्ञानोपायतया विज्ञाय ततो धीराः-साधवः, दिवसातिचारज्ञानार्थपितृपुत्रकृष्ण रात्र्यतिचारज्ञानार्थमपि, 'ठापति वस्त्रम्'ति विद्वन्ति कापोत्सर्गमित्यर्थः, ततश्च कापोत्सर्गस्थानं कार्यमेव, सम्योजनत्वात्, तयावियवेद्यावृत्त्यदिदि गाथार्थः ॥ १४९७ ॥

साम्प्रत यदुक्त 'दिवसातिचारज्ञानार्थमिति, तत्रोपतो विषयद्वारेण समतिचारमुपदर्शयन्त्याह-

सयणासणपाणे चैव य ऊह सेज काप उचारे । समितीन्नावणशुसी धितहापरणमि अइपारो ॥ १४९८ ॥

व्याख्या-शयनीयवितथाचरणे सत्यतिचारः, एतदुक्तं भवति-संसारकादेरधिधिना प्रहणादी अतिचार इति, 'आसण'चि आसनवितथाचरणे सत्यतिचारः पीठकादेरधिधिना प्रहणाद्यतिचार इति भावना, 'उणपाण'चि अन्नपानवितथाचरणे सत्यतिचारः अन्नपानस्याधिधिना प्रहणाद्यातिचार इत्यर्थः, 'वेतिय'चि चैत्यवितथाचरणे सत्यतिचारः, चैत्यविषय

मम कायोत्सर्गः, क्रियन्तं काल यावदित्याह—'याव अरहंताणं भगवताणं नमोऽकारेणं न पारेमि' यावदहंतां भगवतां नमस्क-  
रेण न पारयामि, यावदिति कालायधारण, अथोकाष्टमहापातिहार्थादिकथां पूजामहंस्तीत्यहंस्तेषामहंतां भगः—देव-  
यादित्येषाः स पिपथे येषां ते भगवन्तस्तेषां भगवतां सम्बन्धिना नमस्कारेण 'नमो अरहंताण' इत्यनेन न पारयामि—न  
पारं गच्छामि, तावत् क्रिमित्याह—'साय कायं ताणेण मोणेण हाणेणं अप्पाणं वोत्तिरामि' चिं साधकस्येन कालनिर्वेद्य  
माह, कायं—इह स्थानेन—ऊर्ध्वस्थानेन तथा मौनेन—वाणनिरोपलक्षणेन, तथा ध्यानेन शुभेन, 'अप्पाणं' चिं प्राकृतसौम्या  
भारतीयं, अन्ये न पठ स्येन्नमालापक, द्युसृजामि—परित्यजामि, इयमत्र भावना—काय स्थानमीनध्यानक्रियाभ्यतिरेकेण  
क्रियान्तराध्यासद्वारेण द्युसृजामि, नमस्कारपाठं यावत् प्रथममुचो निरुद्धवाक्प्रसरः प्रससाध्यानानुगतस्त्रिषामीति,  
तथा च कायोत्सर्गपरिसमाप्तौ नमस्कारमपठतस्तदभङ्ग एव द्रष्टव्य इत्येव तावत् समासार्थः, अवयवार्थं तु भाष्यकारो  
वस्यति, उच्चैजामि स्यातु कायोत्सर्गमित्याद्य सूत्रावयवमधिकृत्याह—कायोत्सर्गस्थान न कर्तव्यं, प्रयोजनरहितत्वात्,  
तथापिधर्पयन्त्यदिति, अत्रोच्यते, प्रयोजनरहितत्वमसिद्धं, यतः—

कावत्सर्गमि तिभो निरेयकाभो निरुद्धवत्प्रसरो । जाणह सुहमेगमणो सुणि देवसिपाइअइयारं ॥ १ ॥ (प्र०)  
परिजाणिरुण य जभो सम गुरुजणपगासणेण तु । सोइह अय्य सो अन्हा य जिणेहिं सो मणिओ ॥ २ ॥ (प्र०)  
कावत्सर्गम सुपन्नपहंइसिप जाणिरुण मो पीरा । दिवसाइयारजाणणट्टयाह तायति वत्सर्ग ॥ ३ ॥ १४९७ ॥  
इयास्या—इह च सम्पदगाथाद्वयम यकर्तुं क तयापि सोपयोगिमितिकृत्वा व्याख्यायते, कायोत्सर्गं चकस्वकपे स्थितः

मित्यर्थः सस्याः करणं तेन हेतुभूतेन, विधुद्धिकरणं च विधृत्यकरणद्वारेण भवत्यत आह—‘विसङ्गीकरणणं’ पिंगतानि  
 दात्यानि—मायादीनि यस्यासौ विधात्यस्य करणं विधृत्यकरणं तेन हेतुभूतेन, ‘पायाण कम्भाण णिन्मायणद्वारेण ताभि  
 कावत्सरागं पायाना संसारनिबन्धनानां कर्मणा—ज्ञानावरणीयादीना निर्घातार्थ—निर्घातननिमित्तं दयापत्तिनिमित्तमित्यर्थ  
 किं !—‘विधामि कायोत्सर्गं’ कायस्थोत्सर्गः—कायपरित्याग इत्यर्थः त, एतत्पूर्वं भवति—अनेकार्थत्वाद् धातूना विधामोवि—  
 करोमि कायोत्सर्गं, दयापारवशः कायस्य परित्यागमिति भावना, किं सर्वथा ! नेत्याह—‘अक्षरभूतसिष्णुं’ति अन्यत्रोच्यु-  
 स्तिवेन, दृष्टञ्चसिष मुक्ता योऽन्यो व्यापारत्वेन व्यापारवत इत्यर्थः, एवं सर्वत्र भावनीय, तत्रोच्यं प्रयत्नं वा भवसिषमुच्यसिष  
 तेन, ‘नीलसिष्णु’ति अधःश्वसितं निःश्वसितेन, ‘लासिष्णु’ति कासिष प्रवतं, ‘छीष्णु’ति शुष प्रतीतमेव तं  
 तदपि, ‘जंभाहृष्णु’ति जृम्भितेन, विधृतवदनस्य प्रयत्नपवननिर्गमो जृम्भितमुख्यते, ‘वहुष्णु’ति बहुगारितं प्रतीतं, ‘पायनिसरागो  
 ण’ति अपानेन पवननिर्गमो धातनिसरागो भण्यते तेन, ‘भमडीए’ति क्लमस्या, इयमाकस्मिकी क्षरीरञ्चमिषधुणा प्रतीतैव पित्तं  
 मूर्च्छया’ पित्तमूर्च्छयाऽपि, पित्तप्रावल्यात् मनाग् मूर्च्छा भवति, ‘सुष्टुमेहि अंगसञ्चालहि’ सूक्ष्मे रक्तसञ्चारं रक्तसञ्चालनं गार्भपि  
 चलनप्रकारे रोमोद्गमादिभिः, ‘सुष्टुमेहि स्नेहसञ्चालहि’ सूक्ष्मे स्नेहसञ्चारं रसत्वात् सयोगिधीर्यद्रूपवतया ते स्वस्वन्तर्भवन्ति  
 ‘सुष्टुमेहि दिद्विसञ्चालहि’ सूक्ष्मे र्दिसञ्चारे—नियोगादिभिः, ‘एवमाहृष्टहि आगारेहि’ अमरागो अधिराद्रिओ द्वाज्य मे कावत्सरागो  
 एवमादिभिरित्यादिष्वब्दं वक्ष्यामः, आक्रियन्त इत्याकारा आगृह्णन्त इति भावना, सर्वथा कायोत्सर्गापयादप्रकारा इत्यर्थः,  
 हेराकारैर्विषमनानैरपि न भ्रमोऽभ्रमः, भ्रमः सर्वथा नास्ति, न विराधितोऽधिराधितो, विराधितो देष्टभ्रमोऽभिधीयते, भवेत्

मम कायोत्सर्गः, कियन्त काळं यावदित्याह—‘जाय अरहंताणं भगवंताणं नमोऽकारेणं न पारेमि’ यावत्पूर्वतां भगवतां नमस्कारेण न पारयामि, यावदिति काळायभारणं, अथोकाद्यदमहापातिहार्पादिकमां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्त्यस्तेषामर्हतां भगः—‘एष्य यदिच्छणः स विद्यते वेदां से भगवन्त्यस्तेषां भगवतां सम्बन्धिना नमस्कारणं’ नमो अरहंताणं इत्यनेन न पारयामि—न पारं गच्छामि, यावत् किमिस्याह—‘ताय काय ठाणेणं मोणेणं भाणेण अप्पाण बोसिरामि’ च तावच्छब्देन काळनिर्देशं माह, कायं—‘इहं स्थानेन—ऊर्ध्वस्थानेन’ तथा मोनेन—‘आग्निरोष्णक्षणेन, तथा ज्ञानेन शुभेन, ‘अप्पाणं’ इति प्राकृतशैल्या आत्मीयं, अन्ये न पठन्त्येवैनमात्तापक, व्युत्सृजामि—परित्यजामि, इयमत्र भावना—‘काय स्थानमीनध्यानक्रियाभ्यतिरेकेण क्रियान्तराभ्यासद्वारेण’ व्युत्सृजामि, नमस्कारयातं यावत् प्रसन्नमुज्जो निरुद्धयाक्प्रसरः प्रसन्नध्यानानुगतस्तिष्ठामीति, तथाच कायोत्सर्गपरिसमाप्ती नमस्कारमपठत्स्वत्प्रसन्न एव प्रष्टव्य इत्येव तावत् समासार्थः, अथयवार्थं तु भाव्यकारो यस्यति, तत्रेच्छामि स्यात् कायोत्सर्गमित्याद्य सूत्रायथयमधिकृत्याह—‘कायोत्सर्गस्थानं न कार्यं, प्रयोजनरहितत्वात्, तथापिपथपदनादिति, अत्रोच्यते, प्रयोजनरहितत्वमसिद्धं, यतः—

पाउत्सग्गामि ठिओ निरेयकाओ निरुद्धवइयसरो । जाणइ सुहमेगमणो सुणि वेवसियाइअइयारं ॥ १ ॥ (प्र०)  
परिजाणिक्रणय जओ समं गुरुजणपगासणेण तु । सोइइ अप्पमं सो जम्हा य जिणेहिं सो मणिओ ॥ २ ॥ (प्र०)  
षाउत्सग्गं सुयत्तपहइसिय जाणिक्रण मी घीरा । विवसाइयारजाणणद्वयाइ ठापति वत्सन्तं ॥ १२५७ ॥  
इयारुपा—इह य सम्मज्जगाथाद्वयमन्यकर्तृक तयापि सोपयोगमिति कृत्या व्याख्यायते, कायोत्सर्गं तत्कथ्यक्ये स्थितः

अथान्तरे अद्ययनशब्दार्थो निरूपणीयः, स चान्यत्र न्यथेन निरूपितत्वाद्येहाधिकृतः, गतो नामनिष्पद्यो निक्षेपः, साम्रप्रतं सूत्रालापकनिष्पद्यस्य निक्षेपस्याधसर, स च सूत्रे सति भवति, सूत्रं च सूत्रानुगम इत्यादिप्रपञ्चो यच्छब्दः यावत् सपदं सूत्रं—‘करेमि मते । सामादयमित्यादि यावत् अप्पाणं वोसिरामि’ अस्य संहितादिछक्षणं व्याख्या यथा सामाधिकार्ययने तथा मन्सव्या पुनरभिधाने च प्रयोजनं वक्ष्यामः, इदमपरं सूत्रं—

इच्छामि डाइव कावत्सगग जो मे देवसिओ अइअरो कओ काइओ वाइओ माणसिओ वस्सुसो।  
उन्मगगो अकप्पो अकरणिज्जो बुद्धसाओ बुद्धिचित्तिओ अणायारो अणिच्छिअव्यो असमणपावगो नाण  
वसणे चरित्ते सुए सामादए तिणइ गुत्तीण चवणइ कसायाण पचणइ मइव्वयाण छणइ जीवनि कायाण सत्तणइ  
पिण्डेसणाण भट्टणइ पचयणमाज्ज नवणइ वमवेरगुत्तीण वसविहे समणवममे समणाण ओगाण ज सइअं  
ज विराडिअ तत्स मिच्छामि इक्कइ ॥ ( सूत्रम् )

अस्य व्याख्या—सछक्षणं वेद—सहितेत्यादि, वत्र इच्छामि स्यातुं कार्यात्सर्गं यो मे देवसिक्कोडतिचारा कृत इत्यादि  
सहिता, पदानि तु इच्छामि स्यातुं कार्यात्सर्गं मया देवसिक्कोडतिचाराः कृत इत्यादीनि, पदार्थस्तु ‘इडु इच्छायां’मित्यस्यो  
समपुरुषस्यैकवचनान्तस्य ‘इडुगमिअमा छ’ इति ( पा० ७-१-७७ ) छत्वे इच्छामि भवति, इच्छामि—अभिक्रयामि स्यातुमिति  
‘घा गतिनिपूचो’ इत्यस्य तुभ्रप्रत्ययान्तस्य स्यातुमिति भवति, ‘कार्योत्सर्ग’मिति ‘चिष् चयने’ अस्य प्रथमस्य ‘निपासस  
मिभिः/छिनि/जागीरोपसमाधानेव्यादेव क इति ( पा० १-१-४१ ) वीयसे इति कायः देह इत्यर्थः ‘सूअ चिसर्ग’ इत्यस्य वत्पूर्वस्य



यस्मि वत्सर्ग इति भवति, श्लेषपदार्थो यथा प्रतिक्रमणे लयेव, पदविग्रहस्तु यानि समासमाञ्जि पदानि देशमेव भवति  
नाम्येषामिति, एव इच्छामि स्वार्युं, कः।-कायोत्सर्ग-कायस्योत्सर्गः कायोत्सर्गः समिति, श्लेषपदविग्रहो यथा प्रति  
क्रमणे, एवं चान्ता प्रत्ययस्थानं च यथासम्भवमुपरिष्टाद् वक्ष्यामः। तथेदमन्यथु सूत्रं—

तत्सुल्लरीकरणेण पापञ्चित्करणेण विसोदीकरणेण विसर्गीकरणेण पापण कम्माण निगमापणद्वाए ढामि  
कावत्सर्गण अक्षस्य कससिएणं नीससिएण खसिएण ढीएण जम्माइएण वहुएण बायनिसर्गणेण ममत्तिए  
पित्तमुच्छ्राए सुद्धमेहि अमासवाछेहि सुद्धमेहि खलसवाछेहि सुद्धमेहि विहिसवाछेहि एवमाइएहि आगारेहि  
ममन्तो अविरादिभो इज्जमे कावत्सर्गो जाव अरिहणाण मगवन्ताण नमुक्कारेणं न परेन्नि नाव कायं ढावोणं  
मोणेण साणंण अच्चाण योसिरामि ॥ ( सुअम ) ॥

अस्य व्याख्या—‘वस्योत्तरीकरणेन’ वस्येति वस्य-जनशब्दं प्रस्तुतस्य आत्मन्ययोगासङ्गावस्य कपाच्चिद् भन्नादाद् कपिचि  
वस्य विराधितस्य योत्तरीकरणेन हेतुभूतेन ‘ढामि कावत्सर्गण’मिति योगः, सञ्चोत्तरकरणं पुनः संस्कारद्वारेणोपरिकरण  
मुच्यते, वत्सर च तद् करण च इत्युत्तरकरणं अनुत्तरमुत्तरं कियत् इत्युत्तरीकरणं, कृतिः-करणमिति, एव प्रायश्चित्तद्वारेण  
भयति अत आह—‘पापञ्चित्करणेण’ प्रायश्चित्तवत्त्वार्थं धर्यामः यस्य करण प्रायश्चित्तकरणं तेन, अपयवा सामाधिकारीनि  
प्रतिक्रमणावसानानि विशुद्धां कर्तव्याया भूतकरण, इदं पुनरुत्तरकरणमवशेनोत्तरकरणेन-प्रायश्चित्तकरणेनेति, कियत् पूर्वं  
यत्, प्रायश्चित्तकरण च विशुद्धिद्वारेण भयत्यत आह—‘विसोदीकरणेण’विशोधनं विद्वद्धिः अपराधमस्मिन्सारमनः प्रसादन-

अत्रान्तरे अथयनप्रादप्यो निकर्षणीयः, स चान्यथ न्ययेण निकर्षितत्वाद्येष्टाधिकृतः, गतो नामनिष्पद्यो निक्षेपः, साग्रप्रवं सूत्रालापकनिष्पद्यस्य निक्षेपस्यापसरः, स च सूत्रे सति भवति, सूत्र च सूत्रानुगम इत्यादिप्रपञ्चो यस्यभ्यः पापत् सद्यदं सूत्रं—‘करेमि भवे । सामादयमित्यादि पापत् अप्पाणं योसिरामि’ अस्य संदिग्धादिच्छणा व्याख्या यथा सामादिकाभ्ययने तथा मन्तव्या पुनरभिधाने च प्रयोजनं यस्यामः, इदमपरं सूत्र—

इच्छामि ठाहउ काउस्तगग जो मे देवसिओ अइअरो कओ काइओ वाइओ माणसिओ उस्तुत्तो उम्मनगो अकप्पो अकरणिओ इक्कमाओ इन्विच्चिसिओ अणापारो अणिच्छिअब्बो असमणपाउमगो नाणं वसणे चरिसे सुए सामादए निणइ शुसीण चउणइ कसायाण पच्चणइ मइव्वयाण छणइ जीयनिकायाण सत्तणइ विदेसणाण अट्टणइ पवयणमाकाण नवणइ यमयेरशुसीण वसथिइ समणधम्मो समणाण जोगाण ज खड्डिअ ज विराडिअ तस्स मिच्छामि इक्कम् ॥ ( सूत्रम् )

अस्य व्याख्या—तच्छरणं वेद—सहितेत्यादि, तत्र इच्छामि स्यातुं कायोत्सर्गं यो मे देवसिक्कोडतिचारः कृत इत्यादि संहिता, पदानि तु इच्छामि स्यातुं कायोत्सर्गं मया देवसिक्कोडतिचारः कृत इत्यादीनि, पदार्थस्तु ‘इह इच्छाया’मित्यस्यो समपुरुषस्यैकधनान्तस्य ‘इहणमिप्पमा क’ इति ( पा० ७-१-७७ ) छन्दे इच्छामि भवति, इच्छामि—अभिलषामि स्यातुमिति ‘वा गतिनिवृत्तौ’ इत्यस्य शुभप्रत्ययान्तस्य स्यातुमिति भवति, ‘कायोत्सर्ग’मिति ‘चिक्खं चयने’ अस्य पञ्चत्वस्य ‘निपासव मिति ( चित्ति ) शरीरोपसमाधाने व्यादेश क इति ( पा० १-१-४१ ) क्षीयते इति कायः देह इत्यर्थः ‘सुव पिसर्ग’ इत्यस्य चतुर्थस्य

पश्चि वत्सर्ग इति भवति, शेषपदार्थो यथा प्रतिक्रमणे सधैव, पदविप्रवृत्तु यानि समासमाञ्जि पदानि तेषामेव भवति  
नाम्नेपामिति, सप्त इच्छामि स्मार्तुं, क १-कायोत्सर्ग-कायस्योत्सर्गः कायोत्सर्गः तमिति, शेषपदविप्रवृत्तौ यथा प्रति  
क्रमणे, एष चात्तना प्रत्ययस्यानं च पथासम्भवमुपरिष्टाद् वक्ष्यामः । तथेदमन्यतु सूत्रं—

तत्समुत्तरीकरणेण पापच्छिन्नाकरणेण विसोदीकरणेण विसोदीकरणेण पापानं क्रन्माणं निगधापणद्वाप ठामि  
काउत्सर्ग अक्षस्य कससिपण नीससिपण सासिपणं पीपण जमाइपणं वहुपणं वापनिसर्गणं भनजिप  
पिसल्लुच्छाप सुहुमेहि अगसंवालेहि सुहुमेहि स्लससंवालेहि सुहुमेहि विहिसवालेहि एवमाइपहि आगारेहि  
अभनगो अपिरादिभो इज्जमे काउत्सर्गो जाव अरिहताण भगवताण नमुक्कारेण न पारेमि ताव कायं ठामेणं  
मोणेण क्षाणेण अप्याण वोसिरामि ॥ ( सूत्रम् ) ॥

अस्य व्याख्या—‘तस्योत्तरीकरणेन’ तस्येति तस्य-भनन्वर् प्रस्तुतस्य आसप्ययोगसंज्ञितस्य क्यच्चिद् भमावाद् क्यच्चि  
दस्य पिगाधितस्य वोचरीकरणेन हेतुभूतेन ‘ठामि काउत्सर्गमिति’ योगः, तथोचरकरणं पुनः संस्कारद्वारेणोपरिकरण-  
मुच्यते, उचर च तद् करण च इत्युचरकरणं अनुचरमुचर क्रियत इत्युचरीकरणं, कृतिः-करणमिति, तच्च माप्यच्चिद्वारेण  
भवति अत आह—‘पापच्छिन्नाकरणेण’ प्राप्यच्चिद्वारेण पर्याप्तः तस्य करण प्राप्यच्चिद्वारेण तेन, अथवा सामाधिकारीनि  
प्रतिक्षमणापसानानि विशुद्धां कर्तव्याया मूढकरण, इदं पुनरुचरकरणमतस्तोचरकरणेन-प्राप्यच्चिद्वारेणोपरिकरणं, क्रिया पूर्व  
पद, प्राप्यच्चिद्वारेण च विशुद्धिद्वारेण मपत्यत आह—‘विसोदीकरणेण’ विसोधनं विशुद्धिः अपराधमस्तिनस्मात्ततः प्रधातन

अत्रान्तरे अभ्ययनशब्दार्थो निकृपणीयः, स चान्यत्र न्यक्षेण निकृषितत्वात्तेष्वधिकृतः, गतो नामनिकृप्यो निक्षेपः, साम्प्रतं सूत्रालापकनिष्पन्नस्य निक्षेपस्यावसरः, स च सूत्रे सति भवति, सूत्रं च सूत्रानुगम इत्यादिप्रपञ्चो प्रकथ्यः यावत् तद्यत् सूत्र-‘करोमि भवे ! सामादयमित्यादि यावत् अप्याणं योसिरामि’ अस्य संदिग्धादित्यक्षणा व्याख्या यथा सामायिकाभ्ययने तथा सन्तव्या पुनरभिधाने च प्रयोजन वक्ष्यामः, इदमपरं सूत्र—

इच्छामि ठाह्व काठस्तन्ना जो मे देवसिधो अहभारो कओ काहओ वाहओ माणसिधो वस्तुत्तो जम्मनगो अकप्पो अकरणिज्जो हुक्काओ हुब्बिच्चिन्तिओ अणायारो अणिच्छिअन्वो असमपपाजगो नाण वत्सणे अरित्ते सुए सामादए तिण्ह गुत्तीण अठण्ह कसायाण पचण्ह महन्वयाण छण्ह जीवनिक्कायाण सत्तण्ह पिह्वेसणाण अट्टण्ह पक्कणमाकण नवण्ह यमपेरगुत्तीण वत्सपिह्वे समणाधम्मे समणाण जोगाण ज खह्विअ ज विराह्विअ सत्स मिच्छामि हुक्का ॥ ( सूत्रम् )

अस्य व्याख्या—तद्यक्षणं चेदं—संहितेत्यादि, तत्र इच्छामि स्थातुं कायोत्सर्गं यो मे देवसिक्कोजतिचारः कृत इत्यादि संहिता, पदानि तु इच्छामि स्थातुं कायोत्सर्गं मया दैवसिक्कोजतिचारः कृत इत्यादीनि, पदार्थस्तु ‘इडु इच्छाया’मित्यस्यो तमपुरुषस्यैकवचनान्तस्य ‘इडुगमिव्यमा छ’ इति ( पा० ७-१-७७ ) छत्वे इच्छामि भवति, इच्छामि-अभिधयामि स्थातुमिति ‘छा भतिनिवृत्तौ’ इत्यस्य तुम्भ्यत्पदान्तस्य स्थातुमिति भवति, ‘कायोत्सर्ग’मिति ‘चिक्क’अयने’ अस्य प्रमन्दस्य ‘निपासव मिति ( चित्ति ) शरीरोपसमाधानेष्वादेव क इति ( पा० १-१-४१ ) चीयते इति कायः देह इत्यर्थः ‘सूत्र पिसर्गे’ इत्यस्य वरपूर्यस्य

अलहरो वा' मया खदितो भवति इम एव, इमस्तु खदितः अलदितो वा—अवाविर्वैत्यं गाथार्थः ॥ १४८८ ॥ अन्त्ये दु-  
 नरिद् गाथाप्रथमतिक्कान्तगाथावयवाक्षेपद्वारेणान्यथा व्याचक्षते, मयुक्ते 'चित्तं चित्तं न सं क्षाण्ती' त्येतदस्य, कथं?,  
 यदि ते 'चित्तं क्षाणं एव क्षाणमपि चित्तमायत्तं' सामान्येन 'तेन र चित्तं क्षाणं' किमुच्यते 'चित्तं चित्तं न क्षाणं'ति  
 'अह नेय क्षाणमक्ष ते' चित्तात्, अत्र धातान्तरेणोत्तरगाथा 'नियमा चित्तं क्षाणं क्षाणं चित्तं न याचि मययत्तं' यतोऽप्यकादि  
 चित्तं न ध्यानमिति, 'अह खदितो' इत्यादि निदर्शनं पूर्वं, कथं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रसुप्तः, प्रकृतश्च द्वितीयः चक्षिज्ञानमि-  
 धानः कायोत्सर्गभेद इति, स च व्याख्यात एव, नवरं तत्र ध्यानचतुष्टयाध्यायी शेषयापरिगतो वेदितव्य इति, अयेदानीं  
 सुवीयः कायोत्सर्गभेदः प्रतिपाद्यते—निगदसिद्धेय, अशुना चतुर्थः कायोत्सर्गभेदः प्रवर्धते तद्वयं गाथा—निगदसिद्धेय,  
 नवरं कारणिक एव ग्लानस्यपिरादिनिपण्णकारी वेदितव्यः, वक्ष्यते च—'अतरतो च' इत्यादि, अशुना पञ्चमः कायोत्स-  
 र्गभेदः प्रवर्धते, तत्रेयं गाथा—निगदसिद्धा, नवरं प्रकरणाधिपण्णः स पर्मादीनि न ध्यायतीत्यवगन्तव्यम्, अशुना षष्ठः  
 कायोत्सर्गभेदः प्रवर्धते, तत्रेयं गाथा—निगदसिद्धा, अशुना सप्तमः कायोत्सर्गभेदः प्रतिपाद्यते, इह च—निगदसिद्धा, नवरं  
 कारणिक एव ग्लानस्यपिरादियो निपण्णोऽपि कर्तुमसमर्थः स निप(ष)ण्णकारी गृह्यते, साध्यतमष्टमः कायोत्सर्गभेदः प्रवर्धते,  
 निगदसिद्धा, इहापि च प्रकरणाधिप(ष)ण्ण, स च पर्मादीनि न ध्यायतीत्यवगन्तव्यम्, अशुना नवमः कायोत्सर्गभेदः प्रवर्धते,  
 इह च—'अह रुद् च दुये' गाथा निगदसिद्धा। 'अतरतो' गाथा निगदसिद्धेय, नवरं 'कारणियसद्भिषि प निषण्णो'चि यो हि  
 गुरुयथापुत्त्यादिना व्यापृत कारणिक स समर्थोऽपि निपण्ण करोतीति ॥ १४९५—१४९६ ॥ इत्थं तावत् कायोत्सर्गचक्रः,

विविधे ध्याने सति पूर्वं यदुक्तं चित्तस्थेकाग्रता भवति ध्यानं 'अन्तोमुद्रुचकालं चित्तस्तेगगया भवसि स्मार्णं'ति वचनानात्  
 चक्षुष्याद्यन्तं तदुद्बुध्भुक्तं—'मंगियसुय गुणतो वष्टर विविधेवि स्मार्णंभि' वदेतत् परस्परयिठत्वं कथयतस्त्रिविधे ध्याने सति  
 आपन्नमनेकविषयं ध्यानमिति, तथा च मनसा किञ्चिद्ध्ययति वाचाऽभिषत्ते कायेन क्रियां करोतीति अनेकाग्रता,  
 आचार्य इवमनाहृत्य सामान्येनैकाग्रं चित्तं इति कृत्वा काङ्क्षाऽह—'चित्तं चियं तं न तं स्मार्णं यदनेकाग्रं तस्मिन्मयं न  
 ध्यानमिति गाथार्यः ॥ १४८५ ॥ आह—चक्षुष्यायादनेकाग्रं विविधं ध्यानं तस्य तर्हि ध्यानत्वात्तुपपत्तिः, न, अस्मिन्मायापरि  
 स्तानात्, तथाहि—आ०—'मणसहिष्णु' मनःसहितेनैव कायेन करोति, यदिति सम्बध्यते, तपयुक्तो यत् करोतीत्यर्थः,  
 वाचा मायते यच्च मनःसहितया, तदेव भावकरणं वर्तते, भावकरणं च ध्यानं, मनोरहितं तु द्रव्यकरणं भवति, ततश्च  
 तदुक्तं भवति—इहानेकाग्रतैव नास्ति सर्वेषामेव मनःप्रभृतीनामेकविषयत्वात्, तथाहि—स यत् मनसा ध्यायति तदेव  
 वाचाऽभिषत्ते तत्रैव च कायक्रियेति गाथार्यः ॥ १४८६ ॥ इत्थं प्रतिपादिते सत्यपरस्त्वाह—'अहं ते चित्तं स्मार्णं यदि ते—तय  
 चित्तं ध्यानं 'अन्तोमुद्रुचकालं चित्तस्तेगगया हवस् स्मार्णं'ति वचनानात्, एव ध्यानमपि चित्तमापन्नं, ततश्च कायिकवाचिक  
 ध्यानासम्भव इत्यभिप्रायः, तेन किञ्च चित्तमेव ध्यानं नाम्नादिति इत्य, अथ नैवमित्यते—मा भूत्, कायिकवाचिके ध्याने न  
 भविष्यत इति, इत्थं तर्हि ध्यानमन्यत्वे—तय चित्तादिति गम्यते, यस्माद्भावस्य ध्यानं चित्तमिति गाथार्यः ॥ १४८७ ॥ प्रश्नं चाचार्य  
 आह—अन्युपगमाददोषः, तथाहि—'नियमा चित्तं स्मार्णं' नियमानात्—नियमेन चकलयणं चित्तं ध्यानमेव, 'स्मार्णं चित्तं न  
 यावि भद्रयधं' ध्यानं तु चित्तं न चाप्येवं भक्त्या—विकल्पनीयं, अत्रैवार्थे दृष्टान्तमाह—'अहं स्मरतो होहं दुर्मो य स्मरतो

शुभं व्यापयति ध्यानं नाहुममिति गार्थार्थः ॥ १४८१ ॥ किञ्च—‘अधिरोगवशगणं’ न अधिरोगपक्षकः  
 तेषामधिरोगपक्षकानामधिरोगाणामित्यर्थः, मूर्च्छितानामप्यकमवसुधानां—मूर्च्छितानामभिधाद्यादिना अप्यकानाम्—अप्यक-  
 ष्वतसां मयानां मदिरादिना सुधाना निद्रया, इहाप्यकानामिति यदुक्तं तत्राप्यकवैतसाः अप्यकाः, तद् पुनरप्यकं  
 कीदृगित्याह—‘ओदादियमयत्तं च शोश् पाप्यं चिष्यं तु’ ‘ओदादिय’न्ति स्थिति विधादिना विरक्तुवस्वभावं अप्यकं च-  
 अप्यकमेव शराब्धोऽवधारणे भवति प्रायश्चित्तमपि, प्रायोमहणादन्यथाऽपि सम्भवमाहेति गार्थार्थः ॥ १४८२ ॥ स्वादे-  
 तद्—एवंभूतस्यापि वेतसो ध्यातवाऽस्तु को धिरोऽप इति १, अत्रोभयदे, नैतदेव, यस्माद्—प्राक्भवेन उक्तं २ गाहमात्र-  
 न्यने तत्र २ एकाग्रन्यने स्थिरतया इयस्त्वितमित्यर्थः, चिष्य—अन्तःकरणं तर्क—मनितं, निरेकत—निष्पक्षमं ध्यानं,  
 यतर्धममतः शोष—यदस्मादन्यत् तत्र भवति ध्यानं, किंभूत १—‘मनुयमवत्तं समन्तं वा’ मनु—भावनायामकठोरं अप्यकं  
 पूर्वोक्तं अमन्या—अनयस्त्वितं चेति गार्थार्थः ॥ १४८३ ॥ आह—यदि मनुवादि चिष्यं ध्यानं न भवति वस्तुतः अप्यकत्वाद् तद्  
 कथमस्य पक्षादपि व्यक्तं चेति १, अत्रोभयदे—‘उन्मृशसेसोर्बि’तव्यावशेपो मनागपि तव्यमात्र इत्यर्थः, शिक्की—अग्निर्मुखा  
 तर्धे धन—प्राक्काष्ठदिः सत् पुनर्मूर्च्छति, इयं एव अप्यकं चिष्यं मदिरादिसम्पर्कादिना भूत्वा अप्यकं पुनर्मवत्यभिवादिति  
 गार्थार्थः ॥ १४८४ ॥ इत्थं प्रासङ्गिकं कियदप्युक्तं, अधुना प्रकान्तवस्तुशुद्धिः कियते, किञ्च प्रकान्तं, कायिकादि शिचिच  
 ध्यानं, यत् तर्क—‘मंगियसुय गुणतो वदद् तसिद्देऽपि ज्ञाणमि’ इत्यादि, एव च इयस्त्विते ‘अन्तोमुदुतकात् चित्तस्तेग-  
 णाया भवति ज्ञाणं’ यदुक्तमस्माद् धिनेपस्य धिरोपद्याह्या समोहः स्यादतस्तदपनोपाय शङ्कामाह—‘पुनं च अं तदुचं’ ननु

अहं रुद्र च दुवे स्नायह स्नाणाह जो ठिभो सतो । एसो काउरसगो वर्युसिओ भावउ निसओ ॥ १४८० ॥  
 वम्म सुक्क च दुवे स्नायह स्नाणाह जो निसओ अ । एसो काउरसगो निसनुसिओ होह नायव्यो ॥ १४८० ॥  
 वम्म सुक्क च दुवे नवि स्नायह नवि य अहरुदाह । एसो काउरसगो निसणओ होह नायव्यो ॥ १४८१ ॥  
 अहं रुद्र च दुवे स्नायह स्नाणाह जो निसओ य । एसो काउरसगो निसणगनिसणओ नामं ॥ १४८२ ॥  
 वम्म सुक्क च दुवे स्नायह स्नाणाह जो निसओ उ । एसो काउरसगो निवनुसिओ होह नायव्यो ॥ १४८३ ॥  
 वम्म सुक्क च दुवे नवि स्नायह नवि य अहरुदाह । एसो काउरसगो निवणओ होह नायव्यो ॥ १४८४ ॥  
 अहं रुद्र च दुवे स्नायह स्नाणाह जो निसओ उ । एसो काउरसगो निवणगनिसणओ नाम ॥ १४८५ ॥  
 अतरतो उ निसओ करिज नहवि य सहर निवओ उ । संयाहुवस्सए वा कारणिपसहवि य निसओ ॥ १४८६ ॥

धर्मं च शुद्धं च प्राकृमतिपादितस्वकये ते एव द्वे व्यायति ध्याने यः कश्चिद् स्थितः सन् एव कार्योत्तर्गं वत्सुवोत्सुवो  
 भवति ज्ञातव्यः, एसादिह शरीरमुत्सुव भावोऽपि धर्मशुद्ध्यापित्वाहुत्सुव एवेति गाथार्थः ॥ गतः स्वस्वेको भेदोऽप्युना  
 द्वितीयः प्रतिपाद्यते—‘वम्मं सुक्कं’ धर्मं शुद्धं च द्वे नापि व्यायति नापि आर्षरीदे एव कायोत्तर्गो द्रव्योत्सुवो भवतीति  
 ज्ञातव्य इति गाथार्थः ॥ १४७९-१४८० ॥ आह—कस्यां पुनरवस्थायां न शुभं ध्यानं व्यायति नाप्यशुभमिति १, अत्रो  
 च्यते—‘एवकार्यं’ प्रवृत्तायमानं ईषद् स्वपक्षित्यर्थः, ‘सुसुक्कं’ चि सुष्ठु सुष्ठः स खलु नैव शुभं व्यायति ध्यानं—धर्मशुद्ध-  
 लक्षणं अशुभं वा—आर्षरीदे लक्षणं न व्यायति कश्चिद् वत्सुनि चित्तेन सोऽप्यापादितश्चिदाः आप्रदयि एवमेव—नैव



धुमं व्यापति ध्वानं नाशुभमिति गाथार्थः ॥ १४८२ ॥ किंच—‘वचिरोपपन्नगणं’ न चिरोपपन्न वचिरोपपन्नकाः  
 तेषामचिरोपपन्नकानामचिरजानामित्यर्थः, मूर्च्छितान्यपकमसुसानां—मूर्च्छितानामभिधाद्यादिना अपकानाम्—अपक-  
 चेतसां मसानां मदिरादिना सुसानां निद्रया, इहाप्यकामासिति मृदुकं तथाप्यकचेतसां अपककाः, तत् पुनरप्यकं  
 क्रीदगित्याह—‘ओहादिप्रपचं च होह पापण चित्तं तु’ ‘ओहादिप्र’मि स्थितं विधादिना विरक्तवत्समाव अपकं च—  
 अप्यकमेव चहाद्वोऽवधारणे मयति प्रायश्चित्तमपि, प्रायोपहणादन्यथाऽपि सन्मन्माहेति गाथार्थः ॥ १४८२ ॥ स्यादे-  
 तत्—एवंभूतस्यापि चेतसो ध्यानताडस्तु को चिरोप इति, अत्रोच्यते, नैतदेवं, यस्मात्—भावन्यने सप्त २ गाहमाक-  
 र्यने सप्त २ एकसप्तमने स्थिरयथा उपवसितमित्यर्थः, चित्त—अन्तःकरणं चक—मणितं, निरेकन—निष्पकम् ध्यानं,  
 यत्तर्ध्वमत्तं होय—एदस्मादन्यत् तत्र भवति ध्यानं, किंमूढ १—‘मृदुयमवच भमन्त वा’ मृदु—भावनायामकठोरं अप्यक  
 पुर्योक्त भमन्त्या—भनवस्त्विव पेति गाथार्थः ॥ १४८३ ॥ आह—यदि मृदुवादि चित्तं ध्यानं न भवति वस्तुतः अप्यकत्वात् तत्  
 कथमस्य पश्चादपि व्यक्तवति १, अत्रोच्यते—‘उन्मुक्तसोवि’उन्माद्यक्षेपो मनोगति उच्यमाण इत्यर्थः, शिखी—अदिर्मूलका  
 उन्मुच्यते—द्रासकाद्यादिः सन् पुनर्भजति, इयं एवं अप्यक चित्तं मदिरादिसम्पर्कादिना मूल्या व्यक्तं पुनर्मयस्याभिधिविति  
 गाथार्थः ॥ १४८४ ॥ इत्थं मासद्विकं कियदप्युक्तं, अमुना प्रकान्तवस्तुशुद्धिः कियते, किंच प्रकान्ती, कायिकया विविधं  
 ध्यानं, यत् तत्—‘अगिपमुप गुणतो पट्टर विमिहेऽपि साणमि’ इत्यादि, एवं च व्यवस्थिते ‘अन्तोमुद्रकात् चित्तस्वगे-  
 नाया भवति साणं’ यदुक्तमस्माद् धिनेयस्य धिरोपशङ्कया सम्मोहः स्यादवसायनोदाय शङ्कामाह—‘पुर्वं च सं तदुचं’ ननु

'तद्देयं चि' तथा एतदपि अधिकृतं वेदितव्यमिति गाथार्थः ॥ १४७१ ॥ अधुना स्वरूपतः कायिकं मानस च ध्यानमायेदय  
 साह—'मा मे एज्ज काउ' चि एज्जु—कम्पतां 'कायो' देह इति, एवं अथलव एकाग्रतया स्थितस्येति भावना, किं, कार्येन  
 निर्वृत्त कायिकं भवति ध्यानं, एवमेव मानस निरुद्धमनसो भवति ध्यानमिति गाथार्थः ॥ १४७४ ॥ इत्थं प्रतिपादिते  
 सत्याह चोदकः—'जह कायमणनिरोहे' ननु यथा कायमनसोनिरोधे ध्यान प्रतिपादित भवता 'वापाह जुज्जह न एव' चि  
 वाचि युज्यते नैवेति, कदाचिदप्रवृत्त्यैव निरोधाभावात्, तथाहि—न कायमनसी यथा सदा प्रवृत्ते तथा धानिति 'तद्देहा यती  
 च साण न होइ' तस्माद् वाश ध्यानं न भवत्येव, बुधब्दस्यैवकारार्थत्वात् व्यवहितप्रयोगाच्च, 'को वा विसेसोऽप्य' चि  
 को वा विशेषोऽत्र ? येनेत्यमपि व्यवस्थिते सति वाग् ध्यान भवतीति गाथार्थः ॥ १४७५ ॥ इत्थं चोदकेनोक्ते सत्याह गुरुः—  
 'मा मे षलड' चि मा मे षलहु—कम्पतामिति शब्दस्य व्यवहितः प्रयोगः स च दर्शयित्वा, तनुः—शरीरमिति—एव षलन  
 क्रियानिरोधेन यथा सद् ध्यानं कायिक 'निरेइणो' निरेज्जिनो—निष्कम्पस्य भवति 'अज्जताभासविधाज्जित्स वाइयं साण-  
 मेव हु' अयतान्मायाविवर्जिनो—बुद्धवाक्यपरिहर्तुरित्यर्थः, वाचिक ध्यानमेव यथा कायिक, बुधब्दोऽयमारण्यार्थ इति गाथार्थः  
 ॥ १४७६ ॥ सान्प्रतं स्वरूपत एव धाधिकध्यानमुपदर्शयसाह—'एवंविहा गिरा' एवंविधेति निरवद्या गी—यागुप्यते  
 'मे' चि मया वक्तव्या 'परिस' चि ईदृशी साधद्या न वक्तव्या, एवमेकाग्रतया विचारितव्याक्यस्य सती आपमाणस्य धाधिक  
 ध्यानमिति गाथार्थः ॥ १४७७ ॥ एव तावद् व्यवहारतो भेदेन त्रिविधमपि ध्यानमायेदितं, अधुनेकदैव एकमेव विधि  
 धमपि दृश्यते—'मणसा वाधारतो' मनसा—मन्तःकरणेनोपयुक्तः सन् व्यापारयन् कार्य—देहं वाच—भारती च 'तत्परी

'नामो' वत्परिणामो विवक्षितस्तुतपरीणामः, अथवा वत्परिणामो—योगव्यपरीणामः स तथाविधः स्थानो योगव्यपरीणामो  
 वत्त्वाद्यो वत्परिणामः, अङ्गिकस्तुत—दृष्टिवादान्तर्गतमन्यद् वा तथाविधं 'गुणतो'चि गुणयन् वर्तते विविधेऽपि ध्याने  
 मनोवाङ्मनस्यप्रापारलक्षणे इति गायार्थः ॥ १४७८ ॥ अथसितमानुपङ्गिकं, साम्प्रत मेवपरिमाणं प्रतिपादयताऽथ  
 वरसूतोद्दिष्टादिभेदो यो नपथा कायोत्सर्गं व्यन्यस्तः स यथायोगं व्याख्यायत इति, तत्र—

धम्म सुक्कं च दुब्बं सायदं साणारं जो ठिभो सतो । एसो कावस्सगो वसिठसिओ होइ नायब्बो ॥ १४७९ ॥  
 धम्म सुक्कं च दुब्बं नविं सायदं नविं य अट्ठहार । एसो कावस्सगो दब्बुसिओ होइ नायब्बो ॥ १४८० ॥  
 पणहायतं सुसुत्तो नेव सुइ साइ साणमसुइ वा । अत्थावारिपविसो जागरमाणोवि एमेव ॥ १४८१ ॥  
 अभिरोषवपगाणं सुत्थिपअव्यसमत्तसुत्ताण । ओइदिपमव्वत्तं च होइ पाण्ण विसन्ति ॥ १४८२ ॥  
 गादानंणल्लगा विसं पुत्तं निरेण्ण साण । सेत्तं न होइ साण मव्वमवत्तं ममत्तं वा ॥ १४८३ ॥  
 उट्ठासंसोविं सिही होइ छट्ठिणो पुणो जसइ । इयं अवत्तं विसं होइ ॥ १४८४ ॥  
 पुब्बं च जं तदुत्तं विसत्तसंगगया इयइ साण । आवत्तमणेगगं विसं विपं तं न तं साण ॥ १४८५ ॥  
 भा० मणसहिण्णं उ काण्णपुणइ पापाइ भासई अ च । एयं च आवत्तकरणमणरहिण्णं वृद्धकरणं च ॥ १४८६ ॥  
 पो० जइ तं विसं साणं एयं द्वाणमपि विसंमावत्तं । तेन र विसं साणं अइ नेव साणमत्तं ते ॥ १४८७ ॥  
 आ० निपमा विसं साणसाणवित्तं न पाधि अइयन्व । जइ स्वरो होइ पुमो पुमो य अइरो अक्कपरो वा ॥ १४८८ ॥

'सहेयं' तथा एतदपि अधिकृतं वेदितव्यमिति गाथार्थः ॥ १४७६ ॥ अत्रुना स्वरूपतः कायिकं मानसं च ध्यानमाधेय  
 साह—'मा मे पञ्चद काव'सि पञ्चतु—कम्पतां 'कायो' देह इति, एवं अचलत एकप्रतया स्थितस्येति भायना, किं, कायेन  
 निर्मुक्त कायिकं भवति ध्यानं, एवमेव मानसं निरुद्धमनसो भवति ध्यानमिति गाथार्थः ॥ १४७७ ॥ इत्थं प्रतिपादिते  
 सत्याह चोदक—'अह कायभणनिरोहे' ननु यथा कायभनसोनिरोधे ध्यान प्रतिपादितं भवता 'कायाह जुञ्जइ न एव'ति  
 वाचि मुख्यते नैवेति, कदाचिदप्रवृत्त्यैव निरोधाभावात्, तथाहि—न कायभनसी यथा सदा प्रवृत्ते तथा यागिति 'तन्हा यती  
 च क्षाण न होइ' तस्माद् वाग ध्यानं न भवत्येव, शुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् व्यवहितप्रयोगाच्च, 'को वा विसेस्तोऽप्य'सि  
 को वा विसेयोऽत्र? येनेत्यमपि व्यवस्थिते सति वाग् ध्यान भयतीति गाथार्थः ॥ १४७८ ॥ इत्थं चोदकेनोक्तं सत्याह गुरु—  
 'मा मे चलव'सि मा मे चलतु—कम्पतामितिषब्दस्य व्यवहितः प्रयोगः तं च दर्शयित्वा, तनु—अरीरमिति—एव चलन  
 क्रियानिरोधेन यथा सर्व ध्यानं कायिकं 'निरोहणो' निरोजिनो—निष्कम्पस्य भवति 'अजतामासयिवाजिस्त वाइयं क्षाण  
 मेयं तु' अयतामायाविवर्जिनो—दुष्टवाक्यरिहर्षुल्यर्थः, वाचिकं ध्यानमेव यथा कायिकं, शुशब्दोऽयधारणार्थ इति गाथार्थः  
 ॥ १४७९ ॥ सान्प्रतं स्वरूपत एव वाचिकध्यानमुपदर्शयसाह—'एवंविहा गिरा' एवंविधेति निरवद्या गी—वागुप्यते  
 'मे'सि मया वक्तव्या 'परिस'सि ईदृशी साधया न वक्तव्या, एवमेकाप्रतया विचारितवाक्यस्य सतो भाषमाणस्य वाचिक  
 ध्यानमिति गाथार्थः ॥ १४८० ॥ एवं साधव व्यवहारतो भेदेन विविधमपि ध्यानमाधेदितं, अत्रुनैकदेव एकमेव विवि  
 धमपि दर्शयते—'मणसा वाचरतो' मनसा—अन्तःकरणेनोपयुक्तः सन् व्यापारयन् कार्य—देहं वाचं—भारती च 'सप्यरी

स्त्रीर्षकरा गणपराश्च, वरयते च—‘भंतिअसुतं गुणतो पट्टति विविदेवि शार्णसिंशि गाथार्थः ॥ १४७० ॥ परान्युपगतभ्या-  
 नसान्धप्रदयेनेनानन्युपगतयोरपि ध्यानतां प्रदर्शयन्नाह—‘अह एगणं’ गाथा, हे आमुष्मान् ! वदप्येकार्थं चित्तं कश्चिद्  
 वस्तुनि भारयतो वा स्तिरतया देहव्यापिषिपत् संक इति ‘निरुमन्तो वाविंशि निरुधानस्य वा तदपि योगनिरोध  
 इव केषञ्चिन्तः किमित्याह—‘भ्यानं भवति मानस यथा ननु तथा इतरयोरपि प्रयोर्वाक्ययोः, एवमेव—एकप्रधारणा  
 दिर्नैव प्रकारण तद्वधणयोगाद् ध्यान भवतीति गाथार्थः ॥ १४७१ ॥ इत्थं त्रिविधे भ्याने सति यस्य यदोक्तत्वं  
 तस्य तदेतरसद्वभावेऽपि प्राधान्याद् व्यपदेश इति, लोकोक्तोक्तानुगतस्यार्थं न्यायो वर्तते, तथा आह—‘वेत्तिप’  
 गाथा, दद्यपवीति दैयिकाः—अप्रयायी दैयिकेन दैयिणो मार्गः—एन्या यस्य स सयोप्यते ब्रह्मन्—गच्छन् नरपवी—राज्ञा  
 समवे दाब्—ग्रामोति सच्च, किमुतमित्याह—‘रायसि एव वसति’ राज्ञा एव प्रवर्तति, न चासी केवलः, प्रभूतलोकांनुगत-  
 त्यात्, न च तदन्यन्यपददाः, तेषामप्राधान्यात्, तथा आह—‘संसा अशुगामिणो तस्स’सि शेषाः—अमात्यादयः अनुगामिनः  
 अनुयातारस्स—राज्ञ इत्यस्य प्राधान्याद्वात्रोतिव्यपदेश इति गाथार्थः ॥ १४७२ ॥ अथ लोकांनुगतो व्यासः, अयं पुनर्लोकोचरा  
 नुगत—‘पट्टमिदु’ प्रथम एव प्रथमिदुक्तः, प्राथम्य चास्य सम्पत्पदार्थानास्त्वप्रथमगुणपातित्वात् तस्य प्रथमिदुक्तस्य वदये, कस्य,  
 कोपस्य अनन्तानुषिपिन इत्यर्थः ‘इतरेपि तिष्ठिण तत्पत्ति’ शेषा अपि प्रयः—अप्रत्याख्यातप्रत्याख्यानाधरणसञ्जनदाय  
 सत्र—जीवद्रव्ये सन्ति, न चातीताद्यपेक्षया तत्सद्वभाषः प्रतिपाद्यते, यत आह—‘न य ते पा सति तद्विषं’ न च ते—अप्र-  
 त्याख्यातप्रत्याख्यानाधरणादयो न सन्ति, किंतु स त्वेष, न च प्राधान्य तेषामतो न व्यपदेशः, आद्यस्यैव व्यपदेशः,

न भवति त्रिषुविधं प्राणं त्रिविधेऽपि जोगंभिः सर्वतश्च भवति यत् परेणान्यथापि, कुतः !, यस्माच्चि  
नैर्दृष्टं ध्यानं त्रिविधेऽपि योगे-मनोवाक्यायन्यापारलक्षण इति गायार्थः ॥ १४६७ ॥ किं तु !, कस्यचित्  
कदाचित् प्राधान्यमाश्रित्य भेदेन व्यपदेशः प्रयत्नते, तथा चामुमेव न्यायः प्रदर्शयन्नाह—‘गायार्थपात्रणं’  
वातादिवायुनां आदिष्वद्यात् विवृण्वेष्मणोर्यो यदा भवत्युक्तदा-मञ्जुरो वायुः कुपित इति स प्रोच्यते  
सत्कटस्त्वेन प्राधान्यात्, ‘न य इतरे तस्य दो नस्थि’ति न चेतरौ तत्र द्वौ न स इति गायार्थः ॥ १४६८ ॥ ‘यमय  
य जोगाणं’ एवमेव च योगानां-मनोवाक्यकायानां त्रयाणामपि यो यदा उक्तदो योगस्तस्य योगस्य तदा-सस्मिन्  
काले निर्देशः, ‘इतरे तस्यैक दो व णवा’ इतरस्त्वैको भवति द्वौ वा भवतः, न वा भवत्येव, इयमत्र भायना-कवलिनः  
वाचं चत्कटाया कायोऽप्यस्ति अस्मदादीनां तु मनाः कार्यो न वेति, केवलिनः शैलेभ्यस्तथायां काययोगनिरोधकाले स एव  
केवल इति, अनेन च शुभयोगोत्कटत्वं तथा निरोधश्च द्रव्यमिति (मापि) ध्यानमित्याद्येदित् [व्य] निति गायार्थः ॥ १४६९ ॥ इत्य  
य उक्तदो योगः तस्यैवेतरसदृभावेऽपि प्राधान्यात् सामान्येन ध्यान [स्य] मभिधायायुना विद्येण त्रिप्रकारमप्युपदर्शयन्नाह—  
‘कापृषि य’ कापेऽपि च अष्टाशमं त्रिषु विधात्मनि वर्तते इति अभ्यासं ध्यानमित्यर्थः, एकाप्रतया एजनादिनिरोधात्,  
‘वायापृ’ति तथा वाचि अभ्यासं एकाप्रतयेवायतभायानिरोधात्, ‘मणरस’ चैव ज्ञाह होह’ति मनसश्चैव यथा भयत्सुभास एव  
कापेऽपि वाचि चेत्यर्थः, एवं भेदेनाभिधायायुनैकादापि दर्शयन्नाह—कायवाक्यनोयुक्तं त्रिविधं अभ्यासमस्मात्तदन्त

स्वीर्यकरा गणधराश्च, धस्यते च—‘मंगिभस्तुतं गुणं तो धदति विविदेति ज्ञाणंभि’ति गाथार्थः ॥ १४७० ॥ पराभ्युपगतध्या-  
 नसाभ्यप्रदर्शनेनानभ्युपगतयोरपि ध्यानतां प्रदर्शयन्नाह—‘आह एतान्’ गाथा, हे आभ्युपमान् ! पदभ्योकार्थं चित्तं कश्चिद्  
 धस्तुनि धारयतो या स्थिरतया देहध्यापिधिपधत्वंक इति ‘निरुभयो वाधि’ति निरुन्धानस्य वा तदपि योगनिरोध  
 इय केवलिनः किमिस्थानाह—भ्यानं भवति मानसं यथा मनु तथा इतरयोरपि द्वयोर्धार्ककाययोः, पदमेव—एकामधारणा  
 दिनेष प्रक्षरेण स्रष्टव्ययोगाह ध्यान भवतीति गाथार्थः ॥ १४७१ ॥ इत्थं चिदिदे ध्याने सति इत्थं इदोक्तत्वं  
 तस्य तदेतरसद्भावेऽपि प्राधान्याह व्यपदेश इति, लोकोक्तोत्तरानुगतकार्यं न्यायो वर्धते, तथा आह—‘देशियं  
 गाहा, देशयतीति देशिकाः—अप्रयायी देशिकेन दर्शितो मार्गः—एन्या यस्य स तयोभ्यसे ब्रजन्—गच्छन् नरपती—राज्ञा  
 छभवे दान्द—प्राप्नोति शब्द, किमुतमित्याह—‘रायसि एव धञ्जसि’ राज्ञा एव ब्रजयतीति, न चासौ केवलः, प्रभूतलोकांनुगत  
 त्वात्, न च तदन्यव्यपदेशः, तेषामप्राधान्यात्, तथा आह—‘सेसा अनुगामिणो तस्स’ति शेषाः—अमात्मादयः अनुगामिनः।  
 अनुयातारस्तस्य—राज्ञ इत्यतः प्राधान्याप्राप्तेतिव्यपदेश इति गाथार्थः ॥ १४७२ ॥ अथ लोकांनुगतो न्यायः, अयं पुनर्लोकोत्तरा-  
 नुगतः—‘पृथगिष्टु’ प्रथमं पदं प्रथमिष्टुकः, प्राथम्यं चास्य सन्त्यगदर्शनास्थप्रथमगुणधातित्वात् तस्य प्रथमिष्टुकस्य वदये, कस्यै,  
 क्रोपस्य अनन्तानुपनिधन इत्यर्थः ‘इतरेषि विविण तत्यधि’ शेषा अपि प्रयाः—अप्रत्यास्थानप्रत्यास्थानावरणसमुपकनादय  
 स्तत्र—अथद्वये सन्ति, न चातीताद्यपेक्षया तत्सद्भावाः प्रतिपाद्यते, एत आह—‘न य ते ण सति तद्विषं’ न य ते—अप्र  
 त्यास्थानप्रत्यास्थानावरणादयो न सन्ति, किंतु सन्त्येष, न च प्राधान्यं तेषामतो न व्यपदेशः, आद्यस्त्वैव व्यपदेशः।

न भवति जिणविहं श्राणं सिधिवेधि जोगमिं तदेवम भवति यत् परेणान्यथायि, कुतः !, यस्माच्चि  
नेरुट् इयान भ्रिविधेऽपि योगे-मनोयाक्कायव्यापारलक्षण इति गाथार्थः ॥ १४६७ ॥ किं तु !, कस्यचिद्  
कदाचिद् प्राधान्यमाश्रित्य भेदेन व्यवस्थाः प्रवर्तते, तथा चानुमेव न्याय प्रदर्शयन्नाह—‘वाथार्थपात्रणं’  
धातादिधातूना आदिशब्दात् पितृभ्येष्मणोर्यो यदा भवत्युक्तः-प्रचुरो धातुः कुपित इति स प्रोच्यते  
वत्कटत्वेन प्राधान्यात्, ‘न य इतरे तस्य दो नरिथिंश्च न चेतरो तत्र द्वौ न स इति गाथार्थः ॥ १४६८ ॥ ‘एवमव  
य जोगाणं’ एवमेव च योगानां-मनोयाक्कायानां त्रयाणामपि यो यदा वत्कटो योगस्तस्य योगस्य तदा-तस्मिन्  
काले निर्देशः, ‘इतरे तस्येक दो व णवा’ इतरस्तत्रैको भवति द्वौ वा भवत, न वा भवत्यथ, इयमत्र भावना-केशलिनः  
वार्ध वत्कटाया कायोऽप्यस्ति अस्मादादीनां तु मनाः कायो न वेति केशलिनः शैलेयवस्यायां काययोगनिरोधकाले स एव  
केवल इति, अनेन च शुभयोगोत्कटत्वं तथा निरोधश्च द्वयमिति (मपि) व्यानमित्यावेति [व्य]मिति गाथार्थः ॥ १४६९ ॥ इत्थं  
य वत्कटो योगः तस्यैवेतरसदृभावेऽपि प्राधान्यात् सामान्येन व्यान [त्स]मभिधायाधुना विधेयेण त्रिप्रकारमप्युपदर्शयन्नाह—  
‘काएधि य’ कायेऽपि च अकारमं अधि आत्मनि वर्तते इति आचारस व्यानमित्यर्थ, एकाग्रतया एवनादिनिरोधात्,  
‘वायाए’सि तथा वाचि अध्यात्मं एकाग्रतयायतभायानिरोधात्, ‘मणत्स वेय अह होह’सि मनसश्चैव यथा भवत्यध्यात्मं एव  
कायेऽपि वाचि चेत्यर्थः, एवं भेदेनाभिधायाधुनैकायापि दर्शयन्नाह—काययात्मनोयुक्तं त्रिविधं अध्यात्ममास्यावयन्त



इहानुमेवा ध्यानादौ ध्यानोपरमे भवतीति कृत्वा भवेनोपन्यसेति गार्थः ॥ १४६२ ॥ इह ध्यायति च क्षुभं ध्यानमि  
 र्युकं, यत्र किमिदं ध्यानमित्यत्र आह—‘अतोमुद्रकाकं’ द्विषट्किं मुद्रार्थं मिथो मुद्रार्थोऽन्वर्तमुद्रं इत्युच्यते, अन्तर्मु  
 द्रत्काकं चित्तस्वैकाग्रता भवति ध्यानं ‘एकप्रविष्टनिरोधो ध्यानं’ (तन्त्रार्थे अ० सूत्र ९२७) मिति कृत्वा, तत्र पुनरार्थं रीदृ  
 धर्मे शुद्धं च शास्त्रमिष्येवा च स्वकथं यथा प्रतिक्रमणाप्ययने प्रतिपादितं तथैव प्रष्टव्यमिति गार्थः ॥ १४६२-१४६३ ॥  
 ‘तस्य च दो आहता’ गाथा निगदयित्वा । सान्प्रतं यथाभूतो यत्र यथावस्थितो यत्र ध्यायति तदेवमभिधिरुह्याह—  
 ‘सर्वरियासपदार चि संवृत्तानि—स्थगितानि आस्रयद्वाराणि—प्राणाधिपादादीनि येन स यथाविधः, क ध्यायति ।—  
 ‘अध्यासाधे अकटए देसे’चि’ अध्यासाधे—गान्धर्वादिछंषणमायदवाधाधाधिकठे अकट्टके—गायामकष्टकादिद्रव्यकष्टक-  
 ठिकठ ‘देसे’ भूभागे, कथं इयमस्थितो ध्यायति ।—‘काकण धिरं ठाण ठितो निवृण्णो निवर्धो वा’ कृत्वा स्थिरं—निष्कन्मं  
 [अप]स्थान—अवस्थितिप्रियेयसंषण स्थितो निवृण्णो निवर्धो वेति प्रकटार्थ, केवल-गुरुपादि अवेतनं—प्रतिमावि वस्तु  
 अपठमय—यिषयीकृत्वा(त्य) धर्न—इह मनसा—अन्धःकरणेन यत् ध्यायति, किं ? तत्राह—‘सायति सुयमरय वा’ ध्यायतीति  
 सन्धयति, सूत्र—गणपरादिभिर्बद्ध अर्थे वा—सर्वगोचरं, किंभूतमर्थमत आह—‘द्विविधं तप्यज्जवे वावि’ इत्यत्र तत्पर्यायान्  
 दा, इह च यदा सूत्र ध्यायति तदा सर्वेय स्थगयमराछोषयति, न स्वर्थ, यदा स्वर्थं न तदा सूत्रमिति गार्थः  
 ॥ १४६४-१४६६ ॥ अथुना प्रागुक्तवोषपरिहरायाह—तत्र भणोत्—भूयात् कथितं, किं भूपादित्याह—‘ज्ञाणं ओ  
 माणसो परीणामो’ ध्यान यो मानस परीणामा, ‘ये चिन्ताया’मित्यस्य चिन्तार्थत्वात्, इत्यपमाशङ्कोपरमाह—‘तं

वायार्धवाकण जो जाहे होइ वक्रओ वाक । कुविओसि सो पणुषइ न य इअरे तत्थ दो नत्थि ॥ १४६८ ॥  
 एमेव य जोगाण तिणइधि जो जाहि वक्रओ जोगो । तत्स तहिं निरेसो इअरे तत्थिक्क दो य नया ॥ १४६९ ॥  
 काएविय अज्झप्प वायार् मणस्स येव जइ होइ । कायवयमणोत्तुत्त मिथिइ अज्झप्पमाइसु ॥ १४७० ॥  
 जइ पुगाग विवस वारयओ वा निकमओ वाधि । ज्ञाण होइ नणु तहा इअरेसुवि दोसु तम्मव ॥ १४७१ ॥  
 देसियवंसियमज्जो ववतो नरवई लइइ सइ । रायसि एस ववइ सेसा अणुगानिणो तत्स ॥ १४७२ ॥  
 पइमिहुअत्स उदए कोइत्सिअरे धि तिळि तत्थयत्थि । नय मे ण सत्ति तत्थि य न य पाइइ तत्थेयमि ॥ १४७३ ॥  
 मा मे एज्ज काउत्सि अवलओ काइअ इवइ ज्ञाण । एमेव य माणसिय निकट्ठमणसो इवइ ज्ञाण ॥ १४७४ ॥  
 जइ कायमणनिरोइ ज्ञाण वायार् जुळइ न एव । तम्हा वई उ ज्ञाण न होइ को वा विससुत्थ ॥ १४७५ ॥  
 मा मे वलउत्सि तणू जइ त ज्ञाणं निरेरणो होइ । अज्जाभासविषज्जत्स वाइअ ज्ञाणमेव तु ॥ १४७६ ॥  
 एवविहा गिरा मे वत्तव्वा एरिसा न वत्तव्वा । इय वेपालियवक्कत्स भासओ वाइय ज्ञाण ॥ १४७७ ॥  
 मणसा वावारणो काय वारं च तत्परीणामो । भगिअसुभ शुणतो वइइ तिविइधि ज्ञाणमि ॥ १४७८ ॥

'देहमतिज्जुसुद्धी'ति देहआव्ययुद्धिः—अडेप्पादिप्रमाणसः मतिज्ञाव्ययुद्धिः तथावसितस्योपयोगनिश्चेतवः, 'सुहृदुपयति  
 शिक्खय'ति सुखदुःखातिविक्षा सुखदुःखातिवह्नमिस्यर्थः, 'अणुप्पेहा' अनित्यत्राद्यनुमेका च तथाऽयस्यैवस्य भवति, तथा  
 'सायइ य सुह ज्ञाणं' व्यापति च शुभं व्यानं धर्मशुद्ध्यर्थं, एकामा—एकविधाः शेषव्यापाराभावात् कार्योत्कर्षा इति,

इहानुमेव ॥ ध्यानादौ ध्यानोपरमे अथतीति कृत्वा भेदेनोपपद्यतेति गाथार्थः ॥ १४६२ ॥ इह व्यापयति च शुभं ध्यानमि  
 सुकं, तत्र किमिदं ॥ ध्यानमित्यत्र आह—‘अतोमुद्रकाकं’ द्विपटिको मुद्रार्थः मिथो मुद्रार्थोऽर्चमुद्रं इत्युच्यते, अन्तर्मु  
 द्रकाकं चित्तसंक्रामणा भवति ध्यानं ‘एकाग्रचित्तनिरोधो ध्यान’ (तत्त्वार्थ अ० सूत्र ९२७) मितिकृत्वा, तत् पुनराहं रीदं  
 धर्मं शुद्धं च ज्ञातव्यमित्येवं च स्वकथं यथा प्रतिक्रमणाद्व्ययने प्रतिपादितं तथैव प्रष्टव्यमिति गाथार्थः ॥ १४६२—१४६३ ॥  
 ‘उत्तरं च दो आस्ता’ गाथा निगदयित्वा । साम्प्रत यथाभूतो यत्र यथावस्थितो यत्र व्यापयति तदेतदभिधित्वमाह—  
 ‘सर्वरियासवदार चि सवृत्तानि—स्थितिनि आश्रयद्वाराभि—प्राणातिपातादीनि येन स यथाविधिः, क व्यापयति ।—  
 ‘अध्यापार्थे अकटय देते’ चि’ अध्यापार्थे—गान्धर्वादिउक्षणभावव्याप्याधाधिक्ये अकटय दे—गान्धर्वादिउक्षणकादिप्रत्ययकटय-  
 त्रिकटे ‘दय’ भूमागे, कथं यथावस्थितो व्यापयति ।—‘काकण धिरं ठाणं ठितो निसण्णो निवर्त्तो वा’ कृत्वा स्थिरं—निष्कम्भं  
 [अथ] स्थान—भवत्स्थितिविधेयउक्षण स्थितो निषण्णो निवर्त्तो वेति प्रकटार्थः, वेत्तन—पुरुषादि अवेत्तनं—प्रतिभावि यत्सु  
 अवलम्बय—विषयीकृत्या (त्व) यत्न—इह मनसा—मन्ताकरणेन यत् व्यापयति, किं । तदाह—‘व्यापयति सुयमत्तय वा’ व्यापयतीति  
 सन्प्रप्यते, सूत्र—गणपरादिभिषयश्च अर्थं वा—तद्गोचर, किंभूतमर्थमत आह—‘एवियं तप्यज्जवे वाचि’ इत्यत्र तत्पर्यायान्  
 वा, इह च यदा सूत्र व्यापयति तदा तदेव स्वगतधर्मराजोचयति, न त्वर्थः, यदा त्वर्थं न तदा सूत्रमिति गाथार्थः  
 ॥ १४६४—१४६६ ॥ अथुना प्रागुक्तयोषपरिहारायाह—तत्र भणोत्—श्रूयात् कथितं, किं श्रूयादित्याह—‘क्वाणं ओ  
 माणाओ परीणामो’ ध्यान यो मानसाः परीणामः, ‘यं चित्तसाया’ मित्यस्य चित्तवार्पत्वात्, इहवमाशङ्गोचरमाह—‘तं

'अद्विविहंपि य कम्मं' अष्टविधं—आष्टप्रकारमपि, षष्ठ्यर्थो विशेषणार्थः तस्य च व्यपहितः सम्बन्धः, अद्विविहंपि य कम्म  
 अरिभूत च, तत्तन्मायमर्थः—यस्मात् ज्ञानावराणीयादि अरिभूतं—समुभूतं पर्वत भवनिबन्धनत्वाद्यशब्दादप्येतन च तन  
 कारणेन तज्जयार्थ—कर्मजयनिमित्त 'अभ्युद्विधा उंषि आभिमुख्येन चरियता एष एकान्तगार्थाधिकला अपि तपो द्वादश  
 प्रकारं संयम च सप्तदशप्रकारं कुर्वन्ति निर्धन्याः—साधव इत्यतः कर्मव्यवार्थमेव तदभिभवनाय कायोत्सर्गः फलार्थ  
 एवेति गाथार्थः ॥ १४५६ ॥ तथा च्वाह—उत्स कसाया इति 'तस्य' प्रकान्तसमुत्सैन्यस्य कथायाः प्राग्निक  
 पितृशब्दार्थाक्षत्वारः कोषादयो नायकाः—मयानाः, 'कावत्सगमभगा करेति वो सज्जयद्वापंषि कावत्सर्गं—  
 अभिमवकायोत्सर्गं अमर्षं—अपीहितं कुर्वन्ति साधवस्तत्सज्जयार्थ—कर्मजयनिमित्तं तपःसयमप्यदिति गाथार्थः  
 ॥ १४५७ ॥ गत मूलद्वारगाथायां विधानमार्गणाद्वारम्, अधुना कालपरिमाणद्वारावसरः, तत्रैवं गाथा—  
 संवत्सरमुत्कृष्टं कालप्रमाणं, तथा च धातुपलिना सवत्सरं कायोत्सर्गः कृत इति, 'अन्तोमुहुत च' अभिमवकायो  
 त्सर्गं अन्त्यं—अपन्यं कालपरिमाणं, चोष्टाकायोत्सर्गस्य तु कालपरिमाणमनेकमेवभिध 'तपरि बोचु'ति उपरिष्टाद्  
 वक्ष्याम इति गाथार्थः ॥ १४५८ ॥ चर्कं तावदोपतः कालपरिमाणद्वारं, अधुना भेदपरिमाणद्वारमधिकृत्याह—  
 वसिष्ठस्त्विधो अतह उत्सिधो अ उत्सिधमिसिधो चेष। निसजुत्सिधो निसिधो निससन्नगनिसिधो चेष १४५९ ॥  
 निषणुत्सिधो निषिधो निषिधनिषिधगो अ नायक्यो। एपसिं सु पपाण परस्य परुपण हुन्दं ॥ १४६० ॥  
 उत्सिधअनिसिधग निषिधगो य इक्षिन्नगमि उ पयमि। दून्धेण य भावेण य चतकमपपा ह कापन्धा ॥ १४६१ ॥

वरिष्ठः स्त्रियोः वरिष्ठतोऽप्युतः वरसुतमिषण्णमैव निषण्णोत्सुतः निषण्णो निषण्णमैवेति गाथार्थः ॥  
 निषण्णोत्सुतो निषण्णोत्सुतः निषण्णोत्सुतः निषण्णोत्सुतः निषण्णोत्सुतः निषण्णोत्सुतः निषण्णोत्सुतः  
 गाथासमासार्थः, अथप्यपार्थं तु उपरिष्टादस्यामः 'वसिष्ठ' वरसुतो निषण्णः निषण्णोत्सुतः  
 भवेण य वरसुतमपणा व कायया' इत्यस्य वरसुत कर्तुं स्थानस्यः भावत वरसुत धर्मव्यानमुद्धृत्वायी, अन्यसुत इत्यत वरसुतः  
 कर्तुं स्थानस्यः न भावत वरसुतः व्यानवजुष्टयवद्विषः कृष्णादिदेव्यागतपरिणाम इत्यर्थः, अन्यसुत न इत्यत वरसुतः  
 स्थानस्यः भावत वरसुतः, दुष्टव्यायी अन्यसुत न इत्यत नोपि भावत इत्यर्थं प्रतीत्यार्थं एवमन्यपदवतुर्मन्त्रिका अपि वरसुतः नोर्ध्व  
 ॥ १४५०-१४६१ ॥ इत्यस्य सामान्येन भेदपरिमाणे वसिष्ठसत्याह 'यो वरः', ननु कार्योत्सर्गकरणे कः पुनरुपेय इत्याद्याचार्यः  
 दक्षमहजमुत्तरी सुहृदुपममिति कल्पया अणुपेक्षा । सायह य सुहृ साण एपमगो कावत्सुगमि ॥ १४६२ ॥  
 अतोमुत्तराकास चित्तास्सगमगा एवम साण । त पुण अह नर वस्म सुखं च नायव ॥ १४६३ ॥

तस्य य दो आह्लासाणा ससारवद्वृणा यणिपा ।

बुद्धि य चिमुपमवृक निसिद्धिगारो न इत्येति ॥ १४६४ ॥

सपरिपासपदारा अध्याचारं अकट्ट दस । काज्ज धिर ठाणं ठिओ मिससो निवसो वा ॥ १४६५ ॥

संपाजमप्येपण पा एतनु अयट्ठिउ पण मणसा । सायह सुअमत्थ वा दधियं तप्यज्जए वावि ॥ १४६६ ॥

तस्य उ यणिज्ज कोरं साण जो मणसो परीणामो । स न इवम जिणविद्धं साण निविहेदि जोगमि ॥ १४६७ ॥

'अष्टविहंपि य कम्मं' अष्टविधं-अष्टप्रकारमपि, चक्षुष्यो विशेषणार्थः तस्य च व्ययहितः सम्बन्धः, अष्टविहंपि य कम्म  
 अरिभूतं च, ततश्चायमर्थः-यस्मात् ज्ञानावरणीयादि अरिभूत-सञ्जुतं वर्तते भयनिवन्धनत्वाच्चक्षुष्यादवेव न च तत्र  
 कारणेन तज्जयार्थ-कर्मजयनिमित्तं 'अञ्जुद्धिया च'पि आभिमुख्येन उरिषता एव एकान्तगर्भाविकता अपि तयो द्वादश  
 प्रकारं संयमं च सप्तदशप्रकारं कुर्वन्ति निर्भन्याः-साधव इत्यतः कर्मजयार्थमेव सदभिभवनाय कापोत्सर्गः कार्य  
 एवेति गाथार्थः ॥ १४५६ ॥ तथा चाह-तस्स कसाया इति 'तस्य' प्रकान्तशुभैत्यस्य कथायाः प्रागुक्त  
 पितृशब्दार्थात्तवारः क्रोधादयो नायकाः-प्रधानाः, 'कावत्सगमभगा करेति' तौ तज्जयद्वयापि कावत्सगं-  
 अभिभवकापोत्सर्गो अभिभव-अपीदितं कुर्वन्ति साधवस्तत्तज्जयार्थ-कर्मजयनिमित्तं तपःसयमयदिति गाथार्थः  
 ॥ १४५७ ॥ नत मूलद्वारगाथाया विधानमार्गाद्वारम्, अथुना कावपरिमाणद्वारावसरम्, तत्रैव गाथा-  
 संवत्सरमुत्कृष्टं कालप्रमाणं, तथा च पाण्डुबलिना संयसर्तं कापोत्सर्गः कृत इति, 'अन्तोमुद्धुच च' अभिभवकाया  
 त्सर्गो अन्त्य-अथन्यं कावपरिमाणं, चोटाकापोत्सर्गस्य तु कावपरिमाणमनेकमेवमित्यं 'वयदि बोच्छति' उपरिष्टाद्  
 वक्ष्याम इति गाथार्थः ॥ १४५८ ॥ उक्कं साधवोपतः कावपरिमाणद्वारं, अथुना भेदपरिमाणद्वारमपिहुत्त्याह-  
 उरिषिउरिषिओ अतद् उरिषिओ अउरिषयानि सखओ चोव। निसजुस्सिओ निसखो नित्सखगानि सखओ चंप १४५९ ॥  
 निषणुस्सिओ निषखो निषखनिषखगो अ नायव्वो। एएस्सि हु पपाण पत्तेय पत्तवण पुत्त ॥ १४६० ॥  
 उरिस्सअनिसखग निषखगे य इक्किक्कमिस्सि उ पर्यामि। दूव्वेण य आयेण प चउक्कमयणा उ कापय्या ॥ १४६१ ॥



एकौ कायो दुष्टा जायो' एकः कायः-धीरकायः द्विषा जाता, यददये नशासात्, तत्र एकस्तिष्ठति, एकौ मारितः, शीयन् मृतेन मारितस्तदेव ह्येति-नृहि हे मानव ! केन कारणेन !, कथानकं यथा प्रतिक्रमणाभ्ययन परिहरणायामिति गायार्थः, भारकायश्चाथ धीरभूतकुम्भदयोपेता कापोती भण्यते, भारकासौ कायश्च भारकायः, अण्णे अणसि-भारकायः कापोत्येयोच्यते इति ॥ १४४५ ॥ भाषकायप्रतिपादनायाह—

'दुर्गातिगचदरो' द्वौ प्रयत्नतयारः एव वा भाषा-भौदधिकारयः प्रभूता वाऽन्येऽपि 'यत्र' सधेतनाचेवने यस्तुति विद्यन्ते स भयति नायकायः, भावानां कायो भाषकाय इति, 'जोयमशीये धिभासा छ' जीवाजीययोर्धिमभाषा स्वस्यागमानुसारेण कार्यति गायार्थः ॥ १४४६ ॥ मूळद्वारागाथायां कायमधिकृत्य गत निषेपद्वारम्, अभुनैकार्थिकान्मुच्यन्त, तत्र गाथा—कायः क्षरीर देहः मोक्षी अय उपपद्यमान सङ्घात उपर्युक्तः समुपपद्यमान कश्चरं भज्या सतुः पाणुरिति गायार्थः ॥ २३१ ॥ मूळद्वारागाथायां कायमधिकृत्योक्तान्येकार्थिकानि, अभुना उत्सर्गमधिकृत्य निषेपः एकार्थिकानि चोच्यन्त, तत्र निषेपमधिकृत्याह—

नामठवणावधि ए स्थिते काले तत्रैव भावे य । एसो उत्सन्नगत्स ए निषत्स्यो छटिधरो होह ॥ १४४७ ॥ वच्युत्सन्ना ए ज जेण जत्थ अवकिरह दव्यमूयो वा । ज जत्थ वाधि स्थिते जं जधिर जंमि वा काले ॥ १४४८ ॥ भावे पस्तपमियर जेण च भावेण अवकिरह ज हु । अत्संजम पस्तपे अपस्तपे सजम ययइ ॥ १४४९ ॥ स्वरफक्तसाहस्येयणमभेयणं दुरभिगवधिरसार्ह । वयियमधि ययइ दोसेण जेण भावुज्झणा सा च ॥ १४५० ॥



वत्सगग विवत्सरगुल्लसणा य भवगिरण उज्जुण विवेनो । वज्जण वयगुल्लसणा परिसावण सावणा वेव ॥ १४५१ ॥  
वत्सगो निक्खेवो वज्जओ उज्जओ भ कायवो । निक्खेव काळणं पल्लवणा तत्स कायवो ॥ १ ॥

सो वत्सगगो बुविहो विहाय भमिमवे य पायवो ।  
मिक्खसापरियाह पल्लवो वत्सगगभिर्मुज्जणो विहवो ॥ १४५२ ॥

‘नामववणावधिप’ अर्थमधिकृत्य निगवसिद्धा, विधेयार्थं तु प्रतिघातं प्रपञ्चेन वक्ष्यामः, उत्रापि नामस्यापने गतर्ये,  
द्रव्योत्सर्गाभिधित्सया पुनराह—‘वपुल्लसणा व वं वणे’ द्रव्योत्सर्गनां तु द्रव्योत्सर्गः स्वयमेव ‘जंतिं पदं द्रव्यमनेपणीयं’  
‘अवकिरति’ति योगः अवकिरति—वत्सवति ‘वेधे’ति येन करणभूतेन धात्रादिनोत्सृज्यति, ‘वत्स’ति यत्र द्रव्यं वत्सृज्यति  
द्रव्यभूतो वा—मनुपपुच्छो वा वत्सवति एव द्रव्योत्सर्गोऽभिधीयते । वेधोत्सर्गं वक्ष्यते ‘जं वत्स्य धावि वेधे’ति यत्वेन  
दक्षिणदेशापुराज्यति यत्र वाऽपि वेधे वत्सर्गो व्यावर्धत एव वेधोत्सर्गः, काळोत्सर्गं वक्ष्यते—‘वं वज्जिर  
ज्जिम धा काळे’ति यत्काळमुत्सृज्यति यथा मौज्जमधिकृत्य रज्जनीं साधयः ‘वज्जिरं’ति यावन्तं काळमुत्सर्गो,  
यस्मिन् वा काळे वत्सर्गो व्यावर्धते एव काळोत्सर्ग इति गार्थः ॥ १४५८ ॥ साधोत्सर्गप्रतिपादनायाह—  
‘भाधे पसाधमिपरं’ ‘भाधे’ति द्वापरदामर्शः, साधोत्सर्गो द्विधा—प्रसक्तं—सोमन वत्सवधिकृत्य ‘इतरं’ति अप्रसक्तमप्यो  
मन च, उया येन भाधेनोत्सर्जनीयवस्तुगतेन करारिना ‘अपकिरति अन्तु’ वत्सवति यत् उच साधेनोत्सर्ग इति वृत्ती  
यासमासः, उच असंयम प्रसक्ते साधोत्सर्गो त्यज्यति, अप्रसक्ते तु सयम त्यज्यतीति गार्थः ॥ १४५९ ॥ यदुक्तं येन वा

एकौ काव्यो बृहत् साव्यो' एका काव्यः—वीरकाव्यः द्विधा जातः, पटद्वये न्मासात्, तत्र एकस्मिन्निति, एकौ मारितः, स्त्रीयन् मृतेन मारितस्तदेतद्व्येति—मूहि हे मानव ! केन कारणेन !, कथानकं यथा प्रतिक्रमणाभ्ययने परिहरणायामिति गाथार्थः, भारकायश्चात्र वीरभूतकुन्मदयोरेता कापोती भण्यते, भारसासी कायश्च भारकायः, अण्ये भणति—भारकायः कापोत्येवोच्यते इति ॥ १४४५ ॥ भाषकायप्रतिपादनायाह—

‘बुगतिगन्धरो’ द्वौ वयश्चत्वारः पद्य वा भाषा—औद्ययिकादयः प्रभूता वाऽन्येऽपि ‘वय’ सचेदनाश्वेवने वस्तुनि विद्यन्ते स भवति भावकायः, भाषानां कायो भाषकाय इति, ‘जीवमर्थाये विभासा व’ औषाजीवयोर्दिभाषा श्रव्यागमादुसारेण कार्येति गाथार्थः ॥ १४४६ ॥ मूलद्वारगाथायां कायमधिकृत्य गतं निक्षेपद्वारम्, अयुर्नैकार्थिकानुपप्यन्ते, तत्र गाथा—काव्यः क्षरीरं देहः चोन्मी चप तपचयश्च सङ्घात उद्गमः समुद्गमश्च कदवर भक्षा सतुः पाशुरिति गाथार्थः ॥ २११ ॥ मूलद्वारगाथायां कायमधिकृत्योक्तान्येकार्थिकानि, अयुना उत्सर्गमधिकृत्य निक्षेपः एकार्थिकानि चोच्यन्ते, तत्र निक्षेपमधिकृत्याह—

नामठवणादधिप स्त्रिस्ते काले तद्वेध भावे य । एतो वस्सनास्स त निपस्वेवो छिप्यदो दोह ॥ १४४७ ॥ दब्बुज्झणा व ज जेण जत्थ अयकिरइ दब्बमूओ वा । जं जत्थ थावि त्रिस्ते ज जधिर जीमि वा काले ॥ १४४८ ॥ भावे पसत्थमियर जेण व भावेण अयकिरइ ज तु । अस्संजम पसत्थे अपसत्थे सजम चयइ ॥ १४४९ ॥ स्वरफरसाइसवेपणमवेपणं पुरभिगघधिरसार्इ । दधियमधि चयइ दोसेण जेण भावुज्झणा सा व ॥ १४५० ॥

यमिति, एतदुक्तं भवति—वर्तमानभवे स्थितः पुरस्कृतमर्थं पञ्चावकृतमर्थं च आधुनिककर्म सद्रूप्यतया स्पृशति, प्रकृत्यसेना  
 विस्रवदिति गाथार्थः ॥ १४४४ ॥ अत्रुना मातृकाकायः प्रतिपाद्यते, [ मातृकेऽपि ] मातृकापदानि ‘चप्पणोति वे’ स्या  
 योनि वत्समूहो मातृकाकायः, अन्योऽपि तथाविधपदसमूहो बह्वर्थ इति, तथाचाह भाष्यकारः—‘मातृ  
 यपय’ति मातृकापदमिति ‘गेमं’ ‘गेमं’ति चिह्नं, पञ्चरसन्योऽपि यः एवसमूहः—पदसङ्घातः स पदकायो भण्यते  
 मातृकापदकाय इति भावना, यिधिष्टः पदसमूहः, किं०—‘वे एनापय बह्व् अत्था’ यस्मिन्नेकपदे बह्वः अर्थास्तेषां पदानां  
 यः समूह इति, पाठान्तरं या ‘अस्तेकपदे बह्व् अत्थ’ति गाथार्थः ॥ १४४५ ॥ संमहक्यमतिपादनायाह—  
 ‘समाहकाभो णेगा’ समहणं समहः स एव कायाः, स क्रियिधिष्टः इत्याह—‘णेगावि करय एगावयणेय देव्यति’ति प्रभूता  
 अपि यन्त्रकयचनेन दिश्यन्तो गृह्यन्ते, यथा यास्त्रिर्मासः सेना आतो वसति निविहति, यथासङ्गं, प्रभूतेष्वपि स्वमर्थे  
 सत्सु आतं यास्त्रिरिति व्यपदेशः, प्रभूतेष्वपि पुरुषविक्रयविषु वसति प्राप्तः, प्रभूतेष्वपि हस्त्यादिषु निविहता  
 सेनानि, अथ यान्यादिरर्थाः समहकायो भण्यते इति गाथार्थः ॥ १४४६ ॥ सान्यतं पर्वयिकारं वर्धयति—  
 ‘पञ्चयकाभो’ पुर्यापकायः पुनर्भवति, पुर्याया—भस्त्रुवर्मा यन्त्र—परमाण्वायो पिण्डिता बह्वः, तथा च परमाण्वायपि  
 कस्मिंश्चित् सांख्यपदार्थिके यथा घर्णग परसप्तर्षा अनन्तगुणाः अन्यपरेष्वपि, तथा चोक्तम्—“कारणमेव तदस्त्वं सूरसो  
 नित्यश्च भवति परमाणुः । एकरसघर्णगन्धो द्विसर्षाः कार्यस्त्रिभ्यः ॥ १ ॥” स चैकस्मिन्कादिरसस्तदभ्यापयेष्वपि तिकवर  
 त्रिकवर्मादिभेदादानन्त्यं प्रतिपद्यते, पञ्चघर्णादिव्यपि विभायेत्यर्थं गाथार्थः ॥ अत्रुना मारक्यवस्तत्र गाथा—

याह षोदशः—‘बुद्धभोऽणंतररहिषा’ ‘बुद्धव’ चि धर्ममानभाषसिखस्य उभयत एव्यकाछेऽती तफाले च ‘मणसररहिष’ चि अन  
 न्तरौ एव्यासीतौ धनन्तरौ च तौ रहितौ च धर्ममानमयभाषेनेति प्रकरणाद् गम्यते अनन्तररहिषी तापयि ‘अइ’ चि यदि तस्यो  
 न्यते ‘एवं तौ भया अणतगुण’ चि एव सति ततो भया अनन्तगुणा , तद् भयद्वयव्यतिरेका धर्ममानमयभाषेन रहिता एव्या  
 अतिप्रान्ताश्च तेऽप्युपदेरंस्तवश्च तदपेक्षयापि द्रव्यस्य कल्पना स्यात् , अपो व्योत—भयस्वेवमेव का नो हानिरिति १, उच्यते,  
 एकस्य—गुरुपादेरेककाले—गुरुपादिकाळे भया न गुरुयन्ते—न घटन्ते अनेके—सह्य इति गाथार्थः ॥१४६१॥ इत्य आदकेनो क  
 गुरुराह—‘बुद्धभोऽणंतररमविष’ ‘बुद्धव’ चि धर्ममानमये धर्ममानस्य उभयत एव्येऽती वै चानन्तरमविक्र, गुरुरहुतवभात्कृतमय  
 सन्मनधीस्तु कं भवति, यथा तिष्ठति आगुष्कनेव गुणकस्यावधारणार्थत्वात्, न क्षेत्रं कर्म विवक्षितं यद् मन्त्रनयं गाथार्थः ॥१४४०॥  
 गुरुरहुतमयसन्मनश्च त्रिभागावधेयागुष्कः सामान्येन तस्मिन्नेव भये धर्ममानो धमाति, पश्चात्कृतसन्मनश्च पुनस्तस्मिन्नेव  
 भये धेवयति । अतिप्रसङ्गनिवृत्त्यर्थमाह—‘होस्त्रियरेसुपि अइ त दवमया होम ता तेऽवि’ भयेत् इतरेष्वपि—प्रभूतैर्यदीतेषु  
 यद् वज्रमनागतेषु च यद् भोक्ष्यते यदि तस्मिन्नेव भये धर्ममानस्य द्रव्यमवा भवेरंस्तवस्तेऽपि, तदागुष्ककर्मसम्पत्तादिति  
 इदं, न चैतदस्ति, तस्मादसम्बोदकवचनामिति गाथार्थः ॥१४४१॥ अस्तेवार्थस्य प्रसाधकं लोकाग्रणीत्वं निर्दयं नमस्त्रिपातुकाम  
 आह—‘संज्ञासु दोसु सूरौ’ सन्ध्या च सन्ध्या च सन्धये तयोः सन्धययोर्द्वयोः प्रत्युपप्रदोषप्रतिपक्षयोः सूर्य—आदित्य अदृश्य  
 मानोऽपि—अनुपलभ्यमानोऽपि प्रापणीय—प्राप्य समतिक्रान्त—समतीत च यथाऽत्रभासते—प्रकाशयति क्षेत्रं, सद्यथा—प्रत्युप  
 सन्ध्याया पूर्वाधिवेदे भरतं च, प्रदोषसन्ध्यायां तु भरतमपरविदेहं च, तथैव—यथा सूर्यः इदमपि प्रक्रान्तं ज्ञातव्य—यिज्ञ

वामिति, एवमुक्तं भवति—पर्यमानमर्थे स्थितः पुरस्कृतमर्थं न आमुष्मन्कर्म सद्रूपतया स्पृशति, प्रकाशेना  
 विसृज्यवदिति गार्थार्थः ॥ १४४२ ॥ अनुना मातृकाकायाः प्रतिपाद्यते, [ मातृकेऽपि ] मातृकापदानि ‘उष्पष्मेति वे’त्या  
 दीनि वदन्महो मातृकाकायाः, अन्योऽपि तथाविधपदसमूहो बह्वर्थं इति, तथाचाह ‘नाष्पकारः’—‘माह  
 पययं’ति मातृकापदमिति ‘वेमं’ ‘वेमं’ति चिह्नं, भवरगमन्योऽपि या पदसमूहः—पदसङ्घातः स पदकायो भण्यते  
 मातृकापदकाय इति भाषना, विशिष्टा पदसमूहः, किं०—‘वे एगपय बह्व् अस्या’ पक्षिवेकपदे बह्वः अर्थास्तेषां पदानां  
 यः समूह इति, पाठान्तरं या ‘जस्तेकपदे बह्व् अस्या’ति गार्थार्थः ॥ १४४३ ॥ संमहकायप्रतिपादनायाह—  
 ‘संगहकामो णेगा’ संमहणं समहः स एव कायः, स किञ्चिच्छिष्टः इत्याह—‘णेगावि जस्य एगववोय वेप्सति’ति प्रभूता  
 अपि पञ्चकपचनेन दिश्यन्तो गृह्यन्ते, यथा दालिर्मायः सेना ज्ञातो वसति निविद्यति, यथासङ्गं, प्रभूतेष्वपि सन्नेषु  
 सत्सु आसः दालिरिति व्यपदेशः, प्रभूतेष्वपि पुरुषविजयादिषु पसति प्राप्तः, प्रभूतेष्वपि इत्यादिषु निविद्य  
 सेनति, अप्य दान्यादिरर्थः सङ्गहकायो भण्यते इति गार्थार्थः ॥ १४४४ ॥ साम्प्रतं पर्यायकार्यं दर्शयति—  
 ‘पञ्चककायो’ पर्यायकायाः पुनर्भयति, पर्याया—पुरुषर्मा पञ्च—परमाण्वापौ विविदसा बहवः, तथा च परमाण्वावपि  
 कस्मिंश्चित् साम्प्रतहारिके यथा घर्णेगन्धरसस्यर्था अनन्तगुणाः अन्त्यापेक्षया, तथा चोक्तम्—“कारणमेव सद्रूपं सूक्ष्मो  
 नित्यश्च भवति परमाणुः । एकरसघर्णेगन्धो द्विसर्पाः कार्यसिद्धयः ॥ १ ॥” स चैकस्मिन्कादिरससद्रूपान्तापेक्षया विकृतर  
 विकृतमादिभेदादानन्त्यं प्रतिपद्यते, पञ्चवर्णादिष्वपि विभाषेत्ययं गार्थार्थः ॥ अनुना सारकामस्य गार्था—

तत्रेद गाथाशकलं 'अलिखितपुत्रेसा' तेषां पञ्चलिखाया च अस्तीत्यर्थं विक्लवधनो निपातः, अभूवन् भवन्ति भविष्यन्ति चेति भावना, यदुपदेशास्तु यतस्तेन पञ्चैवालिखायाः शुभारम्भस्याधाराणामर्थात्सा न्यूना नाप्यधिका इति, अनन्यवधर्मोक्ताशानामेकप्रव्यस्यपक्षिकायस्वानुपपत्तिरन्नासमयस्य च ए (अने) कस्यादल्लिकायत्वापत्तिरित्येतत् परिहृतमप्या च धर्मोक्ताशानामेकप्रव्यस्यपक्षिकायस्वानुपपत्तिरिति चेत्तस्मात्तद्विषयः आकाशादल्लिकायः जीवाल्लिकायः पुद्गलादल्लिकायश्चेत्यल्लि-  
 न्तव्यं, ते चानी एव, तद्यथा-धर्माल्लिकायोऽप्यर्माल्लिकायः आकाशादल्लिकायः जीवाल्लिकायः पुद्गलादल्लिकायश्चेत्यल्लि-  
 काया इति हृदयमय गाथार्थः ॥ साभ्यत द्रव्यकायावसरत्वात्तत्प्रतिपादनायाह-

‘अं तु पुरस्कृतं चि यद् द्रव्यमिति योगः शुभद्वये विज्ञेयणार्थः किं विचिन्तयि-’ अथिबुद्धान्तरद्वयं, न धर्माल्लिकायादि-  
 तत्त्वैतदुक्तं भवति-यद् द्रव्य-यद् वस्तु पुरस्कृतभावमिति-पुर-भप्रतः कृतो भावो येनेति समासः, भाविनो भावस्य  
 योग्यमभिमुखमित्यर्थः । ‘पुरुषाकश्च य भावायो चि वाशब्दस्य व्यवहितः सम्बन्धः, तत्त्वैवं प्रयोग-प्रकाटकृतभावः, वाशब्दो  
 विकल्पवचनः पञ्चाह कृत प्राप्योक्तिरतो भावः-पर्यायविज्ञेयत्वलक्षणो येन स तथोच्यते, एतदुक्तं भवति-यस्मिन् भावे वस्तु  
 द्रव्यं सतो वा पूर्वमासीद् आद्यः सत्त्वाप्येतं पञ्चाहकृतभावमुच्यते, ‘त इति द्रव्यविषयं’ सादित्यंमूर्तं द्विप्रकारमापि भाविनो  
 भूतस्य च भावस्य योग्यं ‘वर्ग’ इति वस्तु वस्तुवचनो लोको द्रव्यवाक्यः, किं-भवति द्रव्य, भवति कश्चिदस्य व्यवहितः सम्बन्धः,  
 इत्थं द्रव्यलक्षणमभिभाषाशुनोयाद्वरणमाह-‘अहं भविष्यो द्रव्येवादि’ यथेत्युवाह्वरणोपन्यासार्थः मन्वो-योग्यः द्रव्यदया-  
 विरिति, इयमत्र भावना-यो हि पुरुषाविर्मुक्ता देवस्य प्राप्स्यति वज्रानुष्कः अभिमुखनामगोभो वा स योग्यत्वाद् द्रव्य  
 देवोऽभिधीयते एवमनुभूतदेवभाषोऽपि भाविष्यत्याह द्रव्यनारकादिमहः परमाणुमहश्च तथाहि-असाधवि द्रव्यकादि

काव्योपयो भवत्येव, तत्रैतत्सर्वं ब्रह्मं काव्यो भव्यत इति गायार्थः ॥१४३६॥ आह-किमिति पुनश्च यिमेव गान्भीषणु  
 द्वाकाद्व्यमङ्गीकुलस्य धर्मास्तिकायादीनामिह व्यपच्छेदः कृत इति १, अत्रोच्यते, तेषां यथोक्तप्रकारेण व्यपच्छेदो  
 योगात्, सर्वदेवास्तिकायात्पञ्चक्षणमाधोपेतत्वात्, आह य 'नाप्यकारः'—'अहं अस्थिकपमावो' यथास्तिकाया  
 भावः—अस्तिकायात्पञ्चक्षणः, 'इय एसो दोम अस्थिकायार्थ' 'इय' एवं यथा लीषणुद्गमश्च यो विशिष्टपर्याय इति  
 एव्यन्-आगामी भवेत्, केयाम् १-अस्तिकायानां-धर्मास्तिकायादीनामिति, व्याख्यानाह निषेधप्रतिषेधः, तथा  
 पञ्चावृत्तौ या यदि भवत् 'तो ते हविष्य द्यस्थिकाय' इति तत्रैते भवेदुपरि ति ब्रह्मास्तिकाया इति गायार्थं वदन्—  
 'वीर्यमणागय' अवीर्यम्—अतिशयभूतमनागतं भावं यद्—यस्मात् कारणवक्तिकायानां—धर्मास्तिकायादीनां नास्ति-न विद्यते  
 अस्तित्व-विद्यमानत्वं, कायत्वापेक्षया सर्वं योगादिति इत्यं, 'तेषा र' इति तेन किञ्च केचन-शुद्धं 'तेषु' धर्मास्तिकायादिवद्  
 नास्ति-न विद्यते, किं १-'द्यस्थिकाय' इति ब्रह्मास्तिकायत्वं, सर्वं य एवमावयोगादिति गायार्थः ॥ १४३७ ॥ आह-यद्येव  
 द्रव्यदयापुदाहरणोक्तमपि द्रव्यं न प्राप्तोति, सर्वं य एवमावयोगात्, तथाहि-स एव तस्य भावो अस्तिन् वर्धते इति । अत्र  
 पुनराह—'काम भविष्यसुरादि' काममिह सन्नुमतं यथा 'भविष्यसुरादिषु' अन्वयाच्च ते सुरादयश्चेति विग्रहः कायिष्वप्यात् द्रव्यना-  
 रकादिग्रहः संसृ-उद्धृतिपदे विचार भावः स एव यत्र वर्धते सदान्ती मनुष्यादिभाव इति, किन्तु एव्यो-भावी न तावन्मा-  
 यते तदा, 'तेषा र' इत्येव' इति तेन से किञ्च द्रव्यदया इति, योग्यत्वात्, योयस्य च द्रव्यत्वात्, न चैतद् धर्मास्तिकायादी-  
 नामिति, एव्यकाष्ठोपि सद्भावयुक्तत्वादेवेति गायार्थः ॥१४३८॥ यथोक्तं द्रव्यपञ्चक्षणमवगम्य सद्भावेऽतिप्रसङ्गं च सन्तत्यादा

सर्वेदं गाथायकल 'अथिचिबुपेदसा' तेषां पञ्चलिपिकायां च' अस्तीत्ययं चिकारुषधनो निपाठः, अभूवन् भयन्ति भविष्यन्ति चेति भावना, बहुप्रवेक्षास्तु पतस्त्रेन पञ्चैवास्तिकायाः सुष्ठुभ्रदस्यावधारणार्थत्वात् न्यूना नाप्यभिका इति, अनन्य धर्माधर्माकाशानामेकप्रव्यत्यास्तिकायस्यानुपपत्तिरन्नासमयस्य च ए (अन) कत्वास्तिकायस्यापत्तिरित्येवत् परिहृतमप्यग्नव्य, ते चासी पञ्च, तद्यथा—धर्मास्तिकायोऽधर्मास्तिकायाः आकाशास्तिकायाः अधिवास्तिकायाः पुद्गलास्तिकायश्चेत्यस्ति काया इति हृदयमयं गाथार्थः ॥ साम्प्रत द्रव्यकायावसरस्तत्कालमपि पादनायाह—

‘अं तु पुरक्कञ्च’ चि एव द्रव्यमिति योगः सुशब्दो विशेषणार्थः किं विशिनष्टि!—शीघ्रपुद्गलद्रव्यं, न धर्मास्तिकायादि, तत्तत्त्वैतदुक्तं भवति—यद् द्रव्य—यद् वस्तु पुरस्कृतभावमिति—पुरः—अप्रतः कृतो भावो येनेति समसा, भाविनो भावस्तद्योग्यमभिमुखमित्यर्थः। ‘पञ्चकाञ्च’ च भावाद्यो चि वाशब्दस्य व्यवहितः सम्बन्धः, तत्तत्तत्तत् प्रयोगा—पञ्चात्कृतभावं, वास्तव्यो विकल्पवचनः पञ्चात् कृत प्रायोगिकतो भावः—पर्यायविशेषलक्षणो येन स तद्योच्यते, एतदुक्तं भवति—यस्मिन् भागे पर्वतद्रव्यं ततो या पूर्वमासीद् भावाः तस्मादेतत् पञ्चात्कृतभावमुच्यते, ‘त इति द्रव्यद्वयं’ तद्विरयंभूतं द्विप्रकारमपि भाविनो भूतस्य च भावस्य योग्य ‘दृष्ट’ इति वस्तु वस्तुष्वचनो ह्येको द्रव्यशब्दः, किं?—भवति द्रव्य, भवतिसिद्धस्य द्रव्यमिति। सम्बन्धः इत्थं द्रव्यलक्षणमभिधायाधुनोवाहरणमाह—‘अहं भविष्यो द्रव्येद्यादि’ यथेष्टुदाहरणोपन्यासार्थः मध्ये—योग्यः द्रव्येद्यादिरिति, इयमेष भावना—यो हि पुरुषादिर्भूत्वा देवत्व प्राप्स्यति यन्मायुष्मः अभिमुखनामगोत्रो वा स योग्यतराद् द्रव्यदेवोऽभिधीयते, एवमनुभूतदेवभावोऽपि, आदिशब्दाद् द्रव्यनारकादिप्रहः परमाणुप्रहश्च, तद्यदि—भवावपि द्रव्यपुष्पादि



कावचोपरो भवन्नेव, एतच्चैरर्चयुतं ब्रह्मं कावो भण्यत इति गायार्थः ॥१४४॥ ॥ आह—किमिति शुक्लभ्यविभ्रणान्नीचु  
 हुणक्तब्रह्ममङ्गीकृत्य धर्मास्तिकायादीनामिह व्यपक्यतेः फल इति १, भवोच्यते, तेषां यथोक्तप्रकारद्वयप्रवृत्त्या-  
 योगात्, सर्वदेवास्तिकापत्तचक्षणभावोपेतत्वात्, आह च भाव्यकारः—‘आह अस्तिकायभावो’ एवमित्यत्र  
 भावः अस्तिकापत्तचक्षणः, ‘इय एवो होय अस्तिकायार्थ’ ‘इय’ एवं यथा स्वीयपुङ्गवप्रकृत्ये विशिष्टपर्याय इति  
 एव्यन्—आगामी भवेत्, केनाम् १—अस्तिकायानां—धर्मास्तिकायादीनामिति, व्याख्यानाद् विशेषप्रतिपत्तिः, तथा  
 यथावद्वक्तो या यदि भवत् ‘तो से इषिज्य दधयिकाय’चि एतत्के भवेयुरिति ब्रह्मास्तिकाया इति गायार्थः यत्तत्—  
 ‘होयमणायय’ अतीतम्—अस्तिकान्त्वमनागतं भावं यद्—यस्मात् कारणायकि कायानां—धर्मास्तिकायादीनां नास्ति—न विद्यते  
 अस्तित्व—विद्यमानत्वं, कायसाधयेषया सर्वय योगाविति इदयं, ‘तेण र’चि तेन किञ्च केचन—शुक्ल ‘तेषु’ धर्मास्तिकायादिषु  
 नास्ति—न विद्यते, किं १—‘दधयिकाय’चि ब्रह्मास्तिकायात्वं, सर्वय यद्भावयोगादिति गायार्थः ॥ १४५॥ ॥ आह—एतदेव  
 ब्रह्मदेवास्तुदाहरणोक्तमपि ब्रह्मं न प्रामोति, सर्वय यद्भावयोगात्, तथाहि—स एय तस्य भावो यत्किन् वर्तते इति १ अत्र  
 शुक्लाह—‘काम मयियसुटादि’ काममित्यनुमते यथा ‘मयियसुटादिषु’ मन्व्याह ते सुरावच्येति विप्रहो आदिब्रह्मात् ब्रह्मना  
 रकादिप्रहः संसु—तद्विषयये विद्यते भावः स एय यत्र वर्तते तदानीं मनुष्यादिभाव इति, किंय एव्यो—भावी न सावज्जा-  
 यत तदा, ‘तेण र ते दधदेय’चि तेन से किञ्च ब्रह्मदेया इति, योग्यत्वाद्, योग्यस्य च ब्रह्मदेयात्, न वैतद् धर्मास्तिकायादी  
 नामस्ति, एव्यकाउपि तद्भावयुक्तत्वादेवेति गायार्थः ॥१४६॥ यथोक्त ब्रह्मचक्षणमप्यगम्य तद्भावोऽतिप्रसङ्गं च मनस्वाभा

तत्रेदं गाथासकल 'अस्थिस्थिबहुपदेसा तेषां पंचस्थिकाया च' अस्तीत्ययं त्रिकालघञो निपातः, अभूयन् भवन्ति भविष्यन्ति चेति भावना, बहुपदेसास्तु यतस्तेन पञ्चवास्तिकायाः शुशब्दस्यावधारणार्थत्वाच्च न्यूना नाप्यधिका इति, अनेन च धर्माधर्माकाशानामेकद्रव्यत्वादस्त्रिकायस्यानुपपत्तिरन्नासमयस्य च ए (अने)कत्वादस्त्रिकायस्यापत्तिरित्येवत् परिहृतमयम्, इत्ययम्, ते चामी पञ्च, तद्यथा—धर्मास्त्रिकायोऽधर्मास्त्रिकायः आकाशास्त्रिकायः ज्वालास्त्रिकायः शुद्गलास्त्रिकायश्चेत्यस्त्रिकाया इति इदमप्य गाथार्यः ॥ साम्प्रतं द्रव्यकायावसरस्तत्तत्प्रतिपादनायाह—

‘अं तु पुरस्कृष्टं च यद् द्रव्यमिति योगः शुशब्दो विशेषणार्थः किं विशिनष्टि?—जीवशुद्गलद्रव्यं, न धर्मास्त्रिकायादि, ततश्चैतदुक्तं भवति—यद् द्रव्यं—यद् वस्तु पुरस्कृतमावमिति—पुरः—अप्रतः कृतो भावो येनति समासा, भाविनो भावस्य योनयमभिमिश्रमित्यर्थः। ‘पञ्चाकं च भावावो’ति वाच्यव्यस्य व्यवहितः सम्बन्धः, ततश्चैव प्रयोग—यस्मात्कृतमावं, वाच्यदो विकल्पवचनः पञ्चात् कृत प्राप्योक्तिवो भावः—पर्यायविशेषलक्षणो येन स तथोच्यते, एतदुक्तं भवति—यस्मिन् भावे यत्तत् द्रव्यं ततो यः पूर्वमासीद् भावः तस्मादपेतं पञ्चात्कृतमावमुच्यते, ‘त इति द्रव्यविधे’ सदित्यंभूत द्विप्रकारमपि भाविनो भूतस्य च भावस्य योग्य ‘द्वं’ति वस्तु वस्तुष्वचनो द्वेको द्रव्यशब्दः, किं?—भवति द्रव्यं, भवति सद्रस्य व्यपदिष्टः सम्बन्धः, इत्थं द्रव्यलक्षणमभिधायाधुनोवाहरणमाह—‘अहं भविष्यो द्रव्यदेवादि’ यथेत्सुवाहरणोपन्यासार्थः मय्यो—योग्यः द्रव्यदेवादिद्विरिति, इयमत्र भावना—यो हि पुरुषाविर्मुखा देवत्व प्राप्स्यति वद्वशुक्तः अभिशुखनामगोत्रो वा स योग्यदेवाद् द्रव्यं देवोऽभिधीयते, एवमनुभूतदेवभावोऽपि, आदिशब्दाद् द्रव्यनारकादिग्रहः परमाणुग्रहश्च, तथाहि—भसावपि द्रव्यशुकादि

कावयोपयो भवत्येष, एतच्चेत्यर्थपूर्तं ब्रह्मं कावो भव्यत इति गार्थार्थः ॥१४३६॥ आह—किमिति शुभब्रह्मविशेषणाच्चीधु  
 वृगतद्ब्रह्ममस्तीकृत्य भर्मास्तिकायादीनामिह व्ययच्छेदः कृत इति १, अथोच्यते, तेषां पयोऽप्यकारः पश्यलक्षण-  
 योगाद्, सर्वदेयास्तिकायत्त्वच्छृणुभाषोपेतत्वाद्, आह च भाष्यकारः—‘आह अस्तिकायभाषो’ पद्यास्तिकाय  
 भाषा—अस्तिकायत्त्वलक्षणाः, ‘इय एतो होज्ज अस्तिकायाणं’ ‘इय’ एवं वया वीधुद्गजद्रव्ये विशिष्टपर्याय इति  
 एच्यन्—आगामी भवेत्, केराम् १—अस्तिकायानां—भर्मास्तिकायादीनामिति, व्याख्यानाद् विशेषमपतिपत्तिः, तथा  
 पद्यात्कृतो या यदि भवत् ‘तो हे इयिज्ज पयस्सिकाय’चि एतस्य भवेयुरिति ब्रह्मास्तिकाया इति गार्थार्थः एतच्च—  
 ‘हीयमणागय’ अतीतम्—अतिक्रान्तमनागतं भावं यद्—यस्मात् कारणादस्ति कायानां—भर्मास्तिकायादीनां नास्ति—न विद्यते  
 अस्तित्व—पिषमानस्य, कायत्वापेक्षया सर्वय योगादिति इदयं, ‘तेष र’चि तेन किञ्च केवलं—सुखं ‘तेषु’ भर्मास्तिकायादिवु  
 नास्ति—न विद्यते, किं १—‘दयस्सिकाय’चि ब्रह्मास्तिकायत्वं, सर्वय तद्भाषयोगादिति गार्थार्थः ॥ १४३७॥ आह—यथेव  
 द्रव्यदेवापुदाहरणोक्तमपि ब्रह्म न प्राप्नोति, सर्वय तद्भाषयोगात्, तथाहि—स एव तस्य भाषो यस्मिन् वर्तते इति। अत्र  
 श्रुताह—‘काम भविषसुरादि’ काममिदं त्वमुमतं यथा ‘भविषसुरादिवु’ अभ्यास्यते सुरावयस्येति विप्रश्ना आदिष्वच्चाद् ब्रह्मना-  
 रकादिप्रदः तेषु—तद्वृत्तिपथे विचार भाषाः स एव यत्र वर्तते तदानीं मनुष्यादिभाष इति, किंतु एच्यो—भाषी न तावज्जा-  
 यत सदा, ‘तेष र हे दयदेय’चि तेन से किञ्च ब्रह्मदेया इति, योग्यस्य च ब्रह्मत्वात्, न तैतद् भर्मास्तिकायादी-  
 नामस्ति, एच्यकाष्ठऽपि तद्भाषयुक्तत्वादेवेति गार्थार्थः ॥१४३८॥ यथोक्तं ब्रह्मलक्षणमवगम्य तद्भाषेऽतिप्रसङ्गं च मनस्साया

कायः तथा भाषकायश्चेति गाथासमासार्थः ॥ व्यासार्थं तु प्रतिहारमेव व्याख्यास्यामः, तत्र नामकायप्रतिपादनायाद—  
 'कायो कस्सवि'ति कायः कस्सचित् पदार्थस्य सर्वतन्वाधेतनस्य वा नाम क्रियत स नामकायः, नामाभिस्य कायो नाम  
 कायः, तथा देशोऽपि—शरीरसमुद्भूतोऽपि उच्यते कायः, तथा कायमणिरपि कायो भण्यते, प्राकृते तु कायः । तथा पद्व  
 मपि किञ्चिद्वेत्तादि 'निकायमाहसु'ति निकाचितमाख्यास्यन्तः, प्राकृतश्चैस्या निकायेति गाथार्थः, गत नामद्वार,  
 अञ्जना स्थापनाद्वार व्याख्यायते—'अस्मे वराहए' अथे—चम्बुनके पराटके या-कपर्दके या काष्ठ-नुद्दिभे पुस्ते या-  
 वस्त्रकृते चित्रकर्मणि वा प्रतीते, किमित्याह—सर्वो भावः सम्राधः सप्य इत्यर्थः समाभित्य, तथा असर्वोभायः असद्वभायः अवप्य  
 इत्यर्थः, तं चाभित्य, किं?—स्थापनाकाय विज्ञानादीति गाथार्थः ॥ १४६१ ॥ सामान्येन सद्वभायासद्वभायस्यापनो  
 दाहरणमाह—'लेप्यगहरथी' यदिह लेप्यकद्वली हस्तीति स्थापनायां निवश्यते 'एस सवभाविधा मये ठपण'ति  
 एषा सद्वभायस्थापना भवतीति, भवत्यसद्वभावे पुनहस्तीति निराकृतिः—इत्स्याकृतिशून्य एष चतुरङ्गादायिति ।  
 सर्वेवं स्थापनाकायोऽपि भावनीय इति गाथार्थः ॥ १४६२ ॥ शरीरकायप्रतिपादनायाह—'ओरस्त्रियपवयपिष' चदार्ः  
 पुद्गलैर्निर्धुसमीदारिक विविधा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रिय प्रयोजनार्थिना आदिष्व इत्याहारकं तेजोमय दैवस  
 कर्मणा निर्दुत्तं कान्मर्णं, औदारिक वैक्रिय आहारकं तेजस कान्मर्णं चैव एष पञ्चविध स्रज्ज् दीर्यन्त इति शरीराणि  
 शरीराण्येव पुद्गलस्रज्जातकपत्सात् कायः शरीरकायः विज्ञातव्य इति गाथार्थः ॥ गतिकायप्रतिपादनायाह—  
 'वचसुवि गह' इयमप्यन्यकर्तुकी गाथा सोपयोगेति च व्याख्यायते—वचसुन्वपि गतिशु-चारकतिर्यग्नरामरस्रधणासु

'द्वयो' च दारीरसमुद्भयो नारकादीनां यः स गतौ काय इति कृत्वा गतिकार्यो भण्यते, अत्रान्तरे आह चोदका—'एसो  
 सरीरकाय' चि नन्येय दारीरकाय चका, तथाहि—नीवारिकादिव्यधिरिका नारकाधिर्यगादिवेहा इति, आचार्य आह—'विसे  
 सणा इति गतिकार्यो धियापणाद्—विशेषणसामर्थ्याद् भवति गतिकार्यः, विशेषणं आत्र गतौ कार्यो गतिकार्यः, यथा द्विवि  
 धाः संसारिणः—मसाः स्यादराध, पुनस्त एव स्त्रीपुनपुंसकविशेषेण भिद्यन्त इत्येवमत्रापीति गाथार्यः ॥ अथवा सर्वसत्त्वानाम्-  
 पान्तरालगतौ यः कायः स गतिकार्यो भण्यते, यथा आह—'जेपुयगहिभो' येनोपगृहोद-उपकृतो ब्रह्मति-गच्छति भवादित्यो  
 भयः मथान्तर एव, एतदुक्त भवति—मनुष्यादिर्भुज्यमवात् प्युतः येनाभयेणा(विरोड)पान्तराले देवादिभवं गच्छति स ग-  
 तिकार्यो भण्यते, त कालमानवो दर्शयति—यच्चिरेण 'कालेण' ति स च पापसा कालेन समपादिना ब्रह्मति तावन्नुमेव कालमसौ  
 इति सर्वत्रस कर्मणन्दरीर गतिकार्यस्यदाभयेणापान्तरालगती वीरगतेरिति साधनी(यम)ये गाथार्यः ॥ निकायकायः प्रतिपा  
 द्यते तत्र—'नियमं' चि गाथार्ह व्याख्यायते 'नियममहिओ ध काभो वीरनिकाय' चि नियतो—नित्यः कायो निकायः, नित्यता  
 चास्त द्विव्यपि कायेषु भवात् अधिको पा कायो निकायः, यथा अधिको दाहो निदाह इति, आधिक्यं चास्त धर्माधर्मसि  
 कायापक्षया स्वभेदापक्षया पा, तथाहि—एकादयो यावत्संख्यायाः पुषिधीकायिकासाधत् कायस्य एव स्वभावीयान्मभयेपापेक्षया  
 निकाय इति, एयमन्यप्यपि यिमापेत्येयं जीवनिकायसामान्येन निकायकार्यो भण्यते, अथवा वीरनिकायः पुषिध्यादिवेदमिन्नः  
 पद्विषयोऽपि निकायो भण्यते सर्वसमुदायः, एयं च निकायकाय इति, गतं निकायकायद्वारं। अपुनाऽस्मिकायः प्रतिपाद्यते,

कायः तथा भावकायश्चेति गाथासमासार्थः ॥ व्यासार्थं सु प्रतिद्वारमेव व्याख्यास्यामः, सत्र नामकायप्रतिपादनायाह—  
 'काभो कस्सवि'सि कायः कस्यचित् पदार्थस्य सचेतनाचेतनस्य वा नाम क्रियत स नामकायः, नामाभित्य कापो नाम  
 कायः, तथा देहोऽपि—शरीरसमुद्भयोऽपि स्रूपते कायः, तथा कायमणिरपि कापो भण्यते, प्राकृते सु कायः । तथा पद्म  
 मपि किञ्चिद्वेत्सावि 'निकायमाहंसु'सि निकाचितमास्यातवन्तः, प्राकृतश्चैत्या निकायेति गाथार्थः, गतं नामद्वार,  
 अधुना स्थापनाद्वार व्याख्यायते—'अस्से पराहण' अर्थे—चन्दनके पराटके वा—कपर्दक वा काष्ठ—जुष्टिभे पुच्छे वा—  
 यत्नकृते चित्रकर्मणि वा प्रतीते, किमित्याह—सर्वो भावः सन्नायः तस्य इत्यर्थः तन्माभित्य, तथा असतोन्नायः असद्भायः असध्य  
 इत्यर्थः, तं चाभित्य, किं ?—स्थापनाकायं विज्जानाहीति गाथार्थः ॥ १४३१ ॥ सामान्येन सद्भायासद्भायस्यापनो  
 दाहरणमाह—'उत्थगहृथी' यद्विह उत्थकहस्ती हस्तीति स्थापनायां निषेधयते 'एस सठमायिया भये दयण'सि  
 एषा सद्भावस्यापना भयवीति, भयस्यसद्भावे पुनहस्तीति निराकृतिः—हस्याकृतिशून्य एष चतुरङ्गादायिति ।  
 सर्वेषु स्थापनाकायोऽपि आयनीय इति गाथार्थः ॥ १४३२ ॥ शरीरकायप्रतिपादनायाह—'ओरालियववपिय' सवारः  
 पुद्गलैर्निर्बुत्तनौदारिक विधिषा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रिय प्रयोजनार्थिना आद्रियत इत्याहारक तेजोमय तैजस  
 कर्मणा निर्वृत्तं कार्मणं, औदारिक वैक्रिय आहारकं तेजसं कार्मणं चैव एष यस्यायि' स्रुत शीर्यन्त इति शरीराणि  
 नारीराण्येव पुद्गलसङ्घातकपत्वात् काय शरीरकायः यिज्ञातव्य इति गाथार्थः ॥ गतिकायप्रतिपादनायाह—  
 'वचसुवि गह' इयमप्यन्यकर्तुमी गाथा सोपयोगेति च व्याख्यायते—चतसृष्वपि गतिषु—नारकतिर्यगरामरज्जुषासु

तीषमजागपभाबं प्रमत्तिवकापणा नरिष षत्पिप्त । नेन र केवळएसु नत्थी वच्चत्तिवकापत्त ॥ १४६७ ॥  
 काम भविपसुराहसु भावो सो नेव जत्थ षट्ठिणि । एत्थो न ताव जायह नेन र ते वच्चदेवुत्ति ॥ १४६८ ॥  
 बुद्धभोडणत्तररहिंया जह पव लो भवा अणत्तगुणा । एणस्स एणकाले भवा न छुज्झति उ अणोणा ॥ १४६९ ॥  
 बुद्धभोडणत्तरभविंयं जह चिद्धह भावअ तु ज पव । वृत्तिपरसुधिं जह त वच्चभवा बुद्ध लो नेडधि ॥ १४७० ॥  
 सप्पासु दोसु सरो भदिस्समाणोडधि पप्प समर्पय । जह भोमासह चित्त महेष पर्यंयि मायव्वं ॥ १४७१ ॥  
 माजयपयति नेय नवर अमोयि जो पयसमूहो । सो पयकाओ भवह जे एणए पव्व भत्था २६१ ॥ (मा०) ॥  
 सगहकाभोडणंगायि जत्थ एणपएणेण पिप्पयति । जह साळिगामसेणा जामो वचही (त्ति) निविद्धत्ति ॥ १४७२ ॥  
 पञ्चपकाओ गुण वृत्ति पञ्चया जत्थ पिंघिया महेष । परमाणुमिविक्कमिवि जह वज्झाई अणत्तगुणा ॥ १४७३ ॥  
 एणो काओ बुद्धा जाओ एणो चिद्धह एणो मारिओ । जीवत्तो अ मएण मारिओ मं उव माणव । केण हेवणा ॥ १४७४ ॥  
 इण निग चउरा पव य भाया पव्वआ य जत्थ पट्ठति । सो दोह भावकाओ जीवमजीवे विमासा व ॥ १४७५ ॥  
 काए सरारि देहे बुद्धी य चप उयए य सघाए । वस्सग सधुस्सए वा वळेवरे अत्थ लण पाणू ॥ १४७६ ॥  
 सव 'कायस्स उ निक्खेपा' कायस्य तु निधेयः कार्यं इति 'वारसव'त्ति द्वावक्षमकारः । 'ऊहओ य वस्सतो' पट्ठ  
 व्यासर्गविषय पट्ठमकार इत्यर्थः, एवार्द्धे निगदसिद्ध उव कायनिधेयपट्ठियावत्तायाह—'नामं उवणा' नामकायः  
 स्थापनाकायः सरारिकायः गतिकायः निकायकायः अल्लिकायः इन्द्रियकायस्य मातृकायः समग्रकायः पर्यायकायः भार

काए वस्सग्गमि य निक्खेवे वुंति वुंति ए विगप्पा । एएसिं वुण्हपी पस्सेय पस्सवण वुच्छ ॥ २२८ ॥ (भा०) ॥  
'काए वस्सग्गमि य' काये कायविषयः वस्सग्गे च-वस्सग्गविषयश्च एव निक्षेपे-निक्षेपविषयौ भवतः द्वौ एव विकल्पा-  
द्वौ भेदौ, अनयोर्द्वयोरपि कायोत्सर्गविकल्पयोः प्रत्येक प्रकृषणां पक्ष्य इति गाथार्थः ॥ २२८ ॥

कायस्स ए निक्खेवो धारस्सओ णक्खओ अ वस्सग्गे । एएसिं तु पयाण पस्सेय पस्सवण वुच्छ ॥ १४२० ॥  
नाम ठवणोत्तरीरे भर्हे निकोयत्थिकायं दक्षिणं य । माज्जय सग्गे पज्जर्धं भारे सह भावकौणं य ॥ १४३० ॥  
काओ कस्सइ नाम कीरइ वेहोवि जुब्बइ काओ । कायमणिओवि जुब्बइ पट्टमवि निकायमाहसु ॥ १४३१ ॥  
अक्खे वराहए वा कहे पुत्थे य विक्खकम्मे य । सग्गायमसग्गायं ठवणाकायं विषाणाहि ॥ १४३२ ॥  
लिप्पगाहत्थी इत्थिस्सि एस सग्गाविषा भवे ठवणा । होइ अस्सग्गावे पुण इत्थिस्सि निरागिर्ह अक्खो ॥ १४३३ ॥  
ओरालिपवेडव्विपआहारगत्तेयकम्मप चेष । एसो पचविहो खलु सरीरकाओ सुणोयन्थो ॥ १४३४ ॥  
एवइसुवि गर्हसु वेहो नेरइयार्हणं ओ स गइकाओ । एसो सरीरकाओ विससेसणा होइ गइकाओ ॥ १॥ (प्र०) ॥

जेणुधगाहिओ चप्पइ भवत्तरं जसिरेण कालेण । एसो खलु गइकाओ सत्तेयग कम्मगासरीर ॥ १४३५ ॥

निययमहिओ य काओ जीवनिकाओ निकायकाओ य । अत्थिस्सिपट्टपएसो तेण पचत्थिकाया ज ॥ १४३६ ॥

ज तु पुरक्खसहभाय दक्षिण पच्छाकह व भावाओ । त होइ दक्खदक्षिणज्ज भविओ दक्खद्वयार्ह ॥ १४३७ ॥ (भा०)  
जइ अत्थिकायाभायो अपएसो वुज्ज अत्थिकायाण । पच्छाकहुव्वतो ते दक्षिज्ज दक्खत्थिकाया य ॥ १४३८ ॥ (भा०) ॥



तीपमज्जागायमाधं अमत्थिकापाणं मत्थि अत्थिअ । तेन र केवलपसु मत्थी वृष्मत्थिकापअ ॥ १४३७ ॥  
 काम मत्थिपसुराहसु भावो सो वेव जत्थ षडंति । एससो न ताव आपइ तेन र ते वृष्मवेवुत्ति ॥ १४३८ ॥  
 बुद्धभोजणत्तरदिपा जइ पव तो मवा अणत्तगुणा । एगस्स एगकाले मवा न छुज्जंति च अणोणा ॥ १४३९ ॥  
 बुद्धभोजणत्तरमत्थियं जइ चिद्धइ भाजअ तु अ पव । वृज्जियरेसुवि जइ सं वृष्ममवा बुद्ध तो तेजवि ॥ १४४० ॥  
 सम्रासु दोसु सरो अदिस्समाणोडवि पप्प समर्प ॥ जइ ओमासर किरं तदेव एयपि नायव्वं ॥ १४४१ ॥  
 माजपपपति नेप नवर असोपि जो पपसमूहो । सो पपकाओ ममइ जे एगपप वइ अत्था २३१ ॥ (आ०) ॥  
 सगाहकाभोजंणाधि जत्थ एगायपणेण धिप्पति । जइ साळिगामसेणा जाओ वसही (ति) निचिद्धत्ति ॥ १४४२ ॥  
 पञ्चककाओ पुण वृत्ति पञ्चवा जत्थ पिविया मइवे । परमाणुमिचिकंमिचि जइ वसाइ अणत्तगुणा ॥ १४४३ ॥  
 जगो काओ वृहाजाओ पुणो चिद्धइ पुणो मारिओ । जीवतो अ मपुण मारिओ न छव माणव । केण देवणा ॥ १४४४ ॥  
 पुन तिग चउरो पव य भाया महुआ य जत्थ षट्ठति । सो होइ भावकाओ जीवमजीवे किमासा ज ॥ १४४५ ॥  
 काप सरिर देहं हुदी य चप उययए य सघाण । वस्सय समुस्सए वा कलेवरे मत्थ तण पाणू ॥ १४४६ ॥  
 एव 'कापस्स च निक्खंणो' कायस्य तु निधेयः कार्यं इति 'धारसव'सि द्वापृथगकारः । 'छक्कओ य वस्सगो' पट्ठ  
 भात्सर्गविषयः परमकार इत्यर्थः, पथार्द्धं निगदसिद्ध तत्र कायनिधेयमसिपावनायाह—'नामं ठक्का' नामकायः  
 स्थापनाकायः शरीरकाय गतिकायः निकायकायः अस्त्रिकायः द्रव्यकायश्च मातृकायः संप्रहकायः पर्वार्यकायः भार

काए वस्सगगमि य निक्खेवे इति शुद्धिं च विगप्पा । एएसिं सुण्णपी पत्तेय परुवण सुच्छ ॥ २२८ ॥ (भा०) ॥  
 'काए वस्सगगमि य' काये कायविषयः वस्सगो च-वस्सगविषयश्च एव निक्षेपे-निक्षेपविषयो भवतः द्वौ एव विकल्पौ-  
 द्वायेव भेदौ, अनयोर्द्वयोरपि कायोत्सर्गविकल्पयोः प्रत्येक प्ररूपणां परस्य इति गार्थार्थः ॥ २२८ ॥

कायस्स च निक्खेवो धारस्सओ छक्को अ उत्सगगे । एएसिं सु पपाण पत्तेय परुवण सुच्छ ॥ १४२० ॥  
 नाम ठवणोत्तरीरे भेदे निकोपत्थिकायं दयिदं य । माज्ज्य सगोह पज्जर्धं भारे मह भावकाय य ॥ १४३० ॥  
 काओ कस्सइ नाम कीरइ देहोवि सुवर्ह काओ । कायमणिओवि सुवर्ह पद्धमवि निकायमाहसु ॥ १४३१ ॥  
 अक्खे वरावए वा कट्ठे पुत्थे य चित्तकम्मे य । सन्भावमसन्भाव ठवणाकाय विपाणाहि ॥ १४३२ ॥  
 लिप्पगहत्थी इत्थिस्सि एस सन्भाविया भवे ठवणा । होइ अस्सन्भावे पुण इत्थिस्सि निरागिदे अक्खो ॥ १४३३ ॥  
 ओरालियवेव विवयआहारगतयेयकरमए येव । एसो पचविहो खलु सरीरकाओ सुणेयव्यो ॥ १४३४ ॥  
 चउत्तुवि गार्हसु देहो नेरइयार्हण जो स गइकाओ । एसो सरीरकाओ विसेसणा होइ गइकाओ ॥ १॥ (प्र०) ॥  
 जेणुधगहिओ वचइ भवत्तरं जच्चिरेण कालेण । एसो खलु गइकाओ सत्तेयग कम्मगतसरीर ॥ १४३५ ॥  
 निपयमहिओ व काओ जीवनिकाओ निकायकाओ य । अत्थिस्सिपुणएसो सेण पचत्थिकाया उ ॥ १४३६ ॥  
 ज सु पुरक्खइ भाव दयिय पच्छाकइ य भावाओ । त होइ दव्वदयिय जइ मयिओ दव्वदवार्ह ॥ २२९ ॥ (भा०)  
 जइ अत्थिकायभावो अपएसो बुद्ध अत्थिकापाण । पच्छाकइ बुद्ध गो ते इविज्ज दव्वदत्थिकाया व ॥ २३० ॥ (भा०) ॥

तपसा पृथिव्यादिसंपदमद्विजन्म्यो निर्दिगतिक्वाहिना पण्मासान्तेन, धेनाप्ययुष्षममानसयाभूतं गुरुतरं छेदयिष्येण  
 विषोषपन्थीति गायार्थः ॥ १४१९-१४२७ ॥ एवं सप्तप्रकारभाषप्रणयिक्त्रिंसापि प्रदर्शिता, मूलादीनि तु विषयनिक्रम  
 णद्वारेण स्वस्थानादप्यसेयानि, नेह पितृभ्यन्ते, इत्युक्तमानुषश्लोक, प्रस्तुत प्रस्तुतम्—एवमनेनानेकस्वकपेण—सम्बन्धेनापाठस्य  
 कायोत्सर्गाप्यपनस्य चरपार्थनृयोगद्वाराणि सप्तपञ्चानि एकव्यानि, तत्र नामनिष्पत्ते निवेये कयोत्सर्गाप्यपनमिति  
 कायोत्सर्गः अभ्ययनं च, तत्र कायोत्सर्गमधिकृत्य द्वारगायामाह निर्मुक्तिकारः—

निकम्बेध १ गह ७ विद्वाणमगणा ३ कास ४ मेपपरिमाणे ६ ।  
 असह ६ सरे ७ विदि ८ दोसा ९ कस्तसि १० कल ११ वारा १२ ॥ १४२८ ॥

‘निकस्रपगद्विद्वाण’ निरस्यपति कायात्सर्गस्य नामादिवृत्तणो निवेयः कार्यः ‘पगह’ति एकार्येकानि एकव्यानि  
 ‘विद्वाणमगणा’ चि विधान भद्रोऽभिधीयते भद्रमार्गणा काया ‘कास’भेदपरिमाणे’ति कालपरिमाणमनिमयकायोत्सर्गादीनां  
 एकव्य, भेदपरिमाणानुसृतादिकायात्सर्गभेदानां एकव्य यावन्तस्य इति, ‘असहसरे’ति अक्षतः शतत्र कायोत्सर्गकथा  
 एकव्यः ‘विदि’ति कायात्सर्गकरणविधिर्वाच्यः ‘दोस’ति कायोत्सर्गदोषा एकव्याः ‘कस्तसि’ कस्य कयोत्सर्ग इति  
 एकव्य ‘कस्त’ति एहिकानुत्पन्नकभद्र एक एकव्य ‘दारा’ति एतावन्ति द्वाराणीति गायामसाधार्यः ॥ १४२८ ॥ व्यासार्थ  
 तु प्रतिद्वार भाष्यदृष्ट्याभिधास्यति । तत्र पापस्योत्सर्गः कायोत्सर्ग इति द्विपद नामेतिवृत्त्या कायस्य उत्सर्गस्य च निवेयः  
 काय इति । तथा चार भाष्यकार —

स्पन्दनादिलक्षणा धार्यते—निश्चिन्वते, पञ्चमे शास्ये च्यूते प्रणोऽस्यास्तीति प्रणी सस्य प्रणिनः। रांद्रतरस्याच्छन्त्यस्यति गाधार्यः ॥  
 'रोहरे प्रण छठे' इति रोहयति प्रण पठे शास्ये च्यूते सति द्वितमिचमोक्षी द्वित—पथ्यं मित—स्तोकं अमुञ्चन्वेति, याय  
 छल्येन दूयित 'तस्मिन्मिच्छ'ति साधन्मात्र छिद्यते, सप्तमे शास्य च्यूते किं ?—पूतिमासादीति गाधार्यः ॥ 'तद्वयिय अठा-  
 ये'ति तयापि च 'अष्टायमाणो'ति अतिष्ठसि सति विसर्पतीत्यर्थः, गोनसमधितार्था रट्क(रुम्फ)क्यापि क्रियत, षट्द्रष्टुदः  
 सहास्तिकः, षेपरक्षार्यमिति गाधार्य ॥ एव तावद् द्रव्यप्रणालिच्छिकित्सा च प्रतिपादिता, अधुना भाष्यप्रणः प्रतिपाद्यत—  
 'मुल्लुत्तरगुणकवस्स' गाहा, इयमन्यकर्तृकी सोपयोगा चेति व्याख्यायते, मूलगुणाः—प्राणातिपातादिविरमणवर्धनाः विषह  
 विशुद्धव्यावयसु चत्तरगुणाः, एते एव कर्म यस्य स मूलगुणोत्तरगुणकयस्तस्य, तादिनः, परमन्मासौ चरणपुरुषश्चेति समासः  
 तस्य अपराधाः—गोचरादिगोचराः त एव सन्धानि तेन्याः प्रमथाः—सम्भयो यस्य स तयापिचः भाष्यप्रणो भवति ज्ञातव्य  
 इति गाधार्यः ॥ साम्प्रतमस्यानेकनेदभिज्ञस्य भाष्यप्रणस्य विविधप्रायश्चित्तभैषज्येन चिकित्सा प्रतिपाद्यते, तत्र—  
 'निकस्सायरियाद्' निष्काचर्यादिः शुभ्यस्यतिचारा कश्चिद्विकटनयैव—आलोचनयैवेत्यर्थः, आदिशब्दाद् विचारभूत्यादिना  
 मनसो शुद्धत, इह चातिचार एव प्रणः २, एव सर्वत्र योग्य, 'वितिव'ति द्वितीयो प्रणः अपस्तुपक्षित स्तेछयियेकादा  
 हा असमिचोऽस्सीति सहसा अगुसो वा सिध्याशुक्लमिति विचिच्छित्तस्य गाधार्यः ॥ 'चट्टादिदु इट्टानिदु रागं द्वेय वा  
 मनसा(मनाक) गतः अथ 'तद्वजो' दृढीयो प्रणः मिश्रभैषज्यचिकित्सा, आलोचनाप्रतिकमणयोप्य इत्यर्थः, शास्य मनपणीय  
 भक्तादि धिगिच्छना चतुर्थ इति गाधार्यः ॥ 'उत्सरागेणपि सुम्भाद्' कायोत्सर्गेणापि शुद्धयति अतिचार' कश्चिद्, कश्चिद्

तपसा पृथिव्यादितृषधहनादिजन्मो निर्दिगसिक्कादिना पण्मासाभ्युत्थेन, तेनाप्यशुभ्यमानस्यपामूर्तं गुरुतरं छेदयित्वेना  
 त्रिषोषयन्तीति गार्थार्थः ॥ १४२९-१४३७ ॥ एवं सप्तप्रकारमापयणचिकित्सापि प्रवर्धिता, मूलादीनि तु विषयनिकप-  
 णद्वारेण स्वस्थानादपसेयानि, भेद विवच्यन्ते, इत्युक्तमानुषङ्गिकं, प्रस्तुतप्रस्तुत—एषमनेनानेकस्वरूपेण—सम्भवेनापातस्य  
 कायोत्सर्गात्पयनस्य अथार्थनुयोगद्वाराणि सप्तपद्यानि पृथक्यानि, यत्र नामनियमो निषेधे कायोत्सर्गाभ्यपनमिति  
 वापोत्सर्गः अभ्यपनं च, यत्र कायोत्सर्गमधिकृत्य द्वागन्धानाह निर्युक्तिकारः—

निकस्त्रेवे १ गृह ० पित्राणमगणा ३ कास ४ भेषपरिमार्गे ५ ।

असद ६ सदे ७ विहि ८ दोसा ९ कस्त्रसि १० फल ११ वाराह ॥ १४३८ ॥

‘निकस्त्रेवेगद्विद्वान्’ निकस्ययति कायात्सर्गस्य नामादित्यणो निषेधः कार्यः ‘एगद्वान्’सि एकविक्रानि एकव्ययानि

‘विद्वान्मागण’ सि विधान अदाडिभिधीयस अदमार्गणाकाया ‘कासमेदपरिमार्गे’सि कासपरिमाणमभिमयकयोत्सर्गादीनां  
 पृथक्यं, अदपरिमाणमुत्तरीदिकायात्सर्गभेदाना पृथक्यं यापयत्वा इति, ‘असदसदे’सि अस्तः शठस्य कायोत्सर्गकथा  
 पृथक्यः ‘विहि’सि कायोत्सर्गद्वरणविधिर्यः ‘दोस’सि कायोत्सर्गदोषा पृथक्याः ‘कस्त्रसि’ कस्य कायोत्सर्ग इति  
 पृथक्यं ‘कुत’सि पूर्विकाभूमिकभद फल पृथक्यं ‘दाराह’सि एवायन्ति द्वाराणीति गार्थासमाचार्यः ॥ १४३८ ॥ व्यासार्थ  
 तु प्रतिद्वार आप्यहृदयाभिधास्यति । सत्र कायस्योत्सर्ग कायोत्सर्ग इति द्विपदं नामेतिहत्या कायस्य उत्सर्गस्य च निषेधः  
 काय इति । तथा व्याद आप्यकार —

करणः

शिक्षभेषजेनाप॥

प्रतिपादितः, ययोक्तं—'मि०

व—'अहं करगभो निकेतद् दारं जंता ३

रसगो अहं सुद्विपस्स भर्जति भंगमंगाह । इय । म०

यिके चारित्रमुपयणित, चतुर्विंशतिस्त्वे त्यर्हतां गुणस्तुतिः, स।

धानेवनमद्विकामुष्मिकापायपरिशिष्टीपुणा गुरोर्नियेदनीयं, तच्च वन्दनं

प्यव स्थानेषु प्रतीप क्रमणमासेयनीयमित्यनन्तरगणयने तन्निरूपितं, इह पु तयाप्य

भज्यात् प्रतिपाद्यते, तत्र प्रायश्चित्तभेषजमेव तावद्विचित्रं प्रतिपाद्यमाह—

आलोयण पश्चिमणे मीम विवेगे तद्वा यिउस्सगो । तच्च तेय मूल अणवद्वया य पारंथिप

माढायाति आलोचना प्रयोजनतो हस्तशताव् वहिर्गमनागमनादी गुरोर्विकटना, 'पश्चिमणे'चि प्रतीपं क्रमणं

१८८ ४४४४ निहन्ति दारं पाद् पुनरपि मज्ज ॥ एवं हन्ति सुमिहिताः कापोर्यगेन अमाधि ॥ १ ॥ कायोत्तर्गे तथा मुस्विष्य भयान्ते अग्ने

१८८ ४४४४ निहन्ति दारं पाद् पुनरपि मज्ज ॥ एवं हन्ति सुमिहिताः कापोर्यगेन अमाधि ॥ १ ॥ कायोत्तर्गे तथा मुस्विष्य भयान्ते अग्ने

मूलाकारगुणरूपस्य तद्वर्णो परमस्वरणगुरिसस्तः । अकारादसङ्कल्पमर्थो भाववर्णो द्वीह प्राप्यव्यो ॥ १ ॥ (प्र०) ॥  
 निम्बज्वापरिपाह सुजम्भार अहकारो कोह विषयवर्णाप्यव । वीथो असमिधोमिति कीस सहरसा अगुस्तो वा ॥ १४२५  
 सपारपसु राग दोसं च मणा गत्यो तद्वर्णमिति । नाव अणोसणिञ्च अन्ताराधिमिञ्चण चत्तये ॥ १४२६ ॥  
 वरसगणपि सुवम्भार अहकारो कोह कोह व त्वेण । नेणपि असुजम्भमाण छेपधिसेसा विसोद्विसि ॥ १४२७ ॥

द्विविधो—द्विप्रकारा 'कार्यमि यणो'ति वीथव इति कायः—शरीरमित्यर्थः तस्मिन् प्रण—स्वतन्त्रप्रणः, द्वैविध्यं दर्शयति—  
 तस्मादुद्भवोऽस्येति सद्बुद्धयो—गणद्वयः आगन्तुकः कष्टकाधिप्रमथा, तन्नागन्तुकस्य क्रियते इत्यप्ये-  
 चरणेनवरस्य—सद्बुद्धयस्यति गाथार्थः ॥ यद्यस्य यथोद्भूयते—वचरपरिकर्म क्रियते द्रव्यप्रण एव तदेववमिधिसुताह—'सुभुओ  
 भवितस्तुदो' इति सत्तुरेय सत्तुक कृष्णमित्यर्थः, न वीथगुणवदमीत्यनुसन्धिमिति भावना, नास्मिन् सोणिठं विषयत इत्यसोणिठं  
 कथत नवरं त्यणुसमं, सद्बुत्स्य 'अपवज्मसि सत्तो'ति परित्यज्यते इत्यत्र प्राकृतशब्दात् पु पुलिङ्गनिर्देशः, 'सत्तो न मस्तिज्जह  
 पणा य' न च मूढत्वे प्रणः, अन्यथात् इत्यस्येति गाथार्थः ॥ प्रथमशब्दस्ये अय विधिः, द्वितीयादिशब्दस्ये पुनरर्थः—'सगु  
 द्विपमि' उपमसूत उपमासूत तस्मिन् द्वितीय कस्मिन् ?—अद्वुरणसे इत्यत्र इति योगः भवताम् इहत्तम् इति भावना, अथ  
 'मस्तिज्जह पर ति मूढत्वे यदि पर प्रण इति वद्वरण इत्यस्य, पूर्वणं कर्णमत्तादिना सत्स्येवेतानि क्रियन्ते  
 इतरात्वं सुर्वापे इत्यत्र इति गाथार्थः ॥ 'मा येयणा च सो वद्वरेत्तु गाळति सोणिध चत्तये । रुक्कसव छर्तुसि चिक्का वारिज्जह'  
 इति मा पदना भविष्यतीति तत्र वद्वत्स्य इत्यत्र गाळयन्ति सोणिध चत्तये इत्यत्र इति, तथा रुक्कसां वीथमिति चेदा—परि

## अथ कायोत्सर्गाध्ययन

ध्यास्यातं प्रतिक्रमणाध्ययनमधुना कायोत्सर्गाध्ययनमारभ्यते, अस्य धायमभिसम्बन्धः—अनन्तराभ्ययने बन्धनाध-  
करणादिना रसहितस्य निन्द्या प्रतिपादिता, इह तु स्खलितविशेषोऽपराधव्रणयिशेषसंभवादेतावताऽशुद्धस्य सतः प्राय  
श्चित्तभेदजेनापराधव्रणचिकित्सा प्रतिपाद्यते, यद्वा प्रतिक्रमणाध्ययने मिथ्यात्वादिप्रतिक्रमणद्वारेण कर्मनिदानप्रतिषेधः  
प्रतिपादितः, यथोक्तं—‘मिच्छुत्तपश्चिक्रमण’ मित्यादि, इह तु कायोत्सर्गकरणतः प्रागुपासकर्मस्यैव प्रतिपाद्यते, वक्ष्यते  
च—“अहं करगमो निकृष्ट इ दाहं अतो पुणोऽवि यच्छतो । इय किंति सुविहिता कावत्सगणे कम्माइ ॥ १ ॥ काव  
रसग्गे अहं सुद्धियस्स भज्जति अंगमंगाइ । इय भिंदति सुविहिता अहंविह कम्मसंघाय ॥ २ ॥” इत्यादि, अथवा सामा  
यिके पारिव्रजमुपवर्णितं, चतुर्विंशतिसंख्ये त्यहंतां गुणस्तुतिः, सा च ज्ञानदर्शनरूपा, एवमिदं त्रितयमुक्तं, अस्य च वित-  
धासेयनमैहिकामुदिमकापायपरिसिद्धीर्पुणा गुरोर्निवेदनीयं, तच्च बन्धनपूर्वकमित्यतस्तन्निरूपितं, निवेद्य च भूयः शुभे  
ज्येय स्थानेषु प्रतीप क्रमणमासेयनीयमित्यनन्तराध्ययने तन्निरूपितं, इह तु तयाऽप्यशुद्धत्वापराधव्रणचिकित्सा प्रायश्चित्त  
भेदज्ञातुं प्रतिपाद्यते, तत्र प्रायश्चित्तभेदपञ्चमेव तावद्विचित्रं प्रतिपादयन्नाह—

आलोपण पश्चिक्रमणे मीस विवेगे सद्वा यिउत्सग्गे । तव छेय मूल अणवट्टया य पारंघिण् चेय ॥ १४१८ ॥  
‘आलोपण’ति आलोचना प्रयोजनतो हस्तशलाहू वद्विर्गमनागमनादौ गुरोर्विकटना, ‘पश्चिक्रमणे’ति प्रतीपं क्रमणं

१ यथा कचो निहन्ति इह वात्तु पुत्राणि मज्जन् । एवं हन्तिवि मुविहिताः कायोत्सर्गेण क्माणि ॥ १ ॥ कापोत्सर्गे यथा सुस्वित्तस मज्जन्ते बहो  
पात्राणि । एवं भिन्नुन्ति मुविहिता बहविकं कर्मसंघातत् ॥ २ ॥



मूलतरणकमस्त तादृणो परमवरणपुरिसस्त । अन्तराहसकृपमवो भाववणो दोह मायव्यो ॥ १ ॥ (प्र०) ॥  
 भिन्नलापरिपार सुजस्र अहभारो कोह विपवणाए व । बीयो असमिबोमिस्ति कीस सहसा अगुत्तो वा ॥ १४६८  
 सदाएएसु राग दोस च मणा गयो नहयगमि । माउ अणोसणिअ भन्ताहविर्गिण्ण चउत्थे ॥ १४६९ ॥  
 वस्सगणवि सुजस्र अहभारो कोह कोह व लवेण । नेणधि असुअममाण उपविसेसा विसोहिमि ॥ १४७० ॥

द्विविधो-द्विप्रकारः 'कायमि यणो' च धीयत इति कायः-सरीरमित्यर्थः तस्मिन् प्रण-सुतकप्रणः, द्विविधं वर्कयति-  
 सत्साहुभयोऽस्येति सवुद्धयो-गणद्वयिः भागान्नुकस ज्ञातव्यः, भागान्नुकः कण्टकादिप्रभवः, सभागान्नुकस कियते सस्यो-  
 जरण नंतरस-तवुद्धयस्यति गाथार्थः ॥ यद्यस्य यथोद्भिपते-तत्तरपरिकर्म कियते प्रव्यमण एव तदेतदमिचित्सुराह-'तणुयो  
 अठिक्कसुदो' इति तनुरय तनुक कृद्यमित्यर्थः, न तीक्ष्णगुणवमतीक्ष्णपुल्लमिति भावना, नास्मिन् सोम्वितं विद्यत इत्यणोपितं  
 केपल नपर त्यगटमं, वदुत्स 'अपवज्जसि सन्नो'सि परित्यज्यते सद्य माहुतथास्या तु पुल्लिज्जनिर्वेस, 'सन्नो न मत्तिज्ज  
 यणा य' न य मृष्टते प्रणः, अस्यत्यात् दान्त्यस्येति गाथार्थः ॥ प्रथमस्यत्यवे अयं विधिः, द्वितीयाविधस्यवे पुनरयं-'छगु  
 द्धिपमि' छप्रमुत्त छप्रापुत तस्मिन् द्वितीये कस्मिन्-अदूरगते सस्य इति योगः, मत्ताग् इदलम इति भावना, अथ  
 'मत्तिज्ज पर ति मृष्टते पदि पर प्रण इति वद्वरणं दान्त्यस्य, मर्दनं प्रणस्य, पूरण कर्णमळादिना वस्येवतानि कियन्ते  
 दूरगतं तृतीये दान्त्य इति गाथार्थः ॥ 'मा येयणा व तो वद्वरेसु गालति सोणिय चउत्थे । रुग्णव लहुति चिह्वा वारिज्ज' इति  
 भा पदना भविष्यताति तत वदुत्स दान्त्य गात्रयन्ति द्योणित चपुर्थे दान्त्य इति, तथा क्कपता कीप्पमिति चेद्य-परि

## अथ कायोत्सर्गाध्ययन

इत्याख्यातं प्रतिक्रमणाध्ययनमधुना कायोत्सर्गाध्ययनमारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः—अनन्तराध्ययने बन्धनाद्य-  
करणादिना रसहितस्य निन्द्या प्रतिपादिता, इह तु स्खलितविशेषतोऽपराधव्रणविशेषसंभवादेतायताऽऽशुभस्य सतः प्राय  
श्चित्तभेषजेनापराधव्रणचिकित्सा प्रतिपाद्यते, यद्वा प्रसिद्धमणाध्ययने मित्यात्वादिप्रतिक्रमणद्वारेण कर्मनिदानप्रतिषेधः  
प्रतिपादितः, यथोक्त—‘मिच्छच्छपट्टिष्मण’ मित्यादि, इह तु कायोत्सर्गकरणतः प्रागुपात्तकर्मद्वयः प्रतिपाद्यते, वक्ष्यते  
च—“अहं कर्ता प्रो निकतइ दारं जंठो पुणोऽवि बखंतो । इय किंति सुविहिया कावस्सगेण कम्माइ ॥ १ ॥ काव  
रत्तगे जइ सुद्धियस्स भजंति भंगमगाइ । इय भिंदति सुविहिया अट्ठविह कम्मसंघायं ॥ २ ॥” इत्यादि, अथवा सामा-  
यिके पारित्रमुपवर्णित, चतुर्विंशतिस्त्रये त्वर्हतां गुणस्तुतिः, सा च ज्ञानदर्शनरूपा, एवमिदं त्रितयमुक्तं, अस्य च वित-  
धासेयनमैहिकामुनिमकापायपरिजिहीर्षुणा गुरोर्नियेदनीयं, तच्च यन्वनपूर्वकमित्यतस्तस्मिन्निर्णीतं, निवेद्य च भूयः शुभे  
व्येय स्थानेन प्रतीप क्रमणमासेयनीयमित्यनन्तराध्ययने तस्मिन्निर्णीतं, इह तु तथाप्यशुभस्यापराधव्रणचिकित्सा प्रायश्चित्त  
भेषजात् प्रतिपाद्यते, तत्र प्रायश्चित्तभेषजमेव तावद्विचित्रं प्रतिपादयन्नाह—

आलोपण पट्टिष्मणे मीस विवेगे तहा यिउत्सगे । तव छेय मूल अणवट्टया य पारंयिए वेय ॥ १४१८ ॥  
‘आलोपण’ति आलोचना प्रयोजनतो हस्तशताद् बहिर्गमनागमनादी गुरोर्विकटना, ‘पट्टिष्मणे’ति प्रतीपं क्रमण

१ यथा कुरुचो निहन्तमि दाह वाद् पुनरपि मयन् । एवं कुरुचि सुविहियाः कायोत्सर्गेण कर्माणि ॥ १ ॥ कायोत्सर्गे यथा सुखितस्त मयन्त्ये बहो  
पादमि । एवं भिन्नुमि सुविहिया बट्टिषिं कर्मसंघातय् ॥ २ ॥

प्रतिष्कर्माणं, सहासाञ्जमितादौ मिथ्याबुद्ध्यकृत्करणमित्यर्थः, 'मीस'सि मिश्र दार्ढ्यादिषु रागादिकरणे, विरुटना मिथ्याबुद्ध्युक्तं  
 वेत्यर्थः, 'वियेगे'सि वियेकः अनेपणीयस्य अकार्यः कथञ्चित् गृहीतस्य परित्याग इत्यर्थः, तथा 'यित्स्मग्ने'सि तया  
 व्युत्सर्गे कुस्वभावाद्वा कायोत्सर्गे इति भावना, 'तवे'सि कर्म तापयतीति तपः--वृथिव्यादिर्मघट्टनादौ निरिग(कृ)त्रिकादि,  
 'छेदे'सि तपसा पुर्वमस्य अमणपर्यायच्छेदनमिति इत्यर्थः, 'मूल'सि प्राणातिपातादौ पुनर्प्रतारोपणमित्यर्थः, 'अणयद्वया य'सि  
 इक्ष्वालादिप्रदानदोषात् पुनरुत्तरपरिणामत्वात् व्रतेषु नाथस्याप्येते इत्यनवस्थाप्यः सन्नायोऽनयस्याप्यता, 'पारंस्विष्ट चे'सि  
 पुरुषविशेषस्य स्वच्छिन्नाभ्युपस्थाप्यसेवनायां पारस्विक भवति, पारं--प्रायश्चित्तात्मशक्ति-गच्छतीति पारस्विक, न तत्र  
 कर्तुं प्रायश्चित्तमस्तीति गाथार्थः ॥ १४१८ ॥ एवं प्रायश्चित्तभेषजमुक्तं, साम्प्रतं व्रणः प्रतिपादते, स च द्विभेदः--द्रव्यव्रणो  
 भावव्रणश्च, द्रव्यव्रणः शरीरखतलक्षणः, असावपि द्विविध एव, तथा चाह--

दुविहो कार्यमि वणो तदुक्तमवागतुभो अ नायम्बो । आगतुयस्स कारइ सत्तुद्वरणं न इयररस ॥ १४१९ ॥  
 तणुभो अतिक्खत्तुंभो असोणिभो केवल तप लग्गो । अबज्जत्तसि सत्तो सत्तो न मत्तिज्जइ वणो उ ॥ १४२० ॥  
 तणुद्वियंमि बीए मत्तिज्जइ पर अद्वरणे सत्ते । उद्वरणमलणपूरण दूरयरगण तइयगंमि ॥ १४२१ ॥

मा वेमणा उ तो उद्वरित्तु गालति सोणिय चत्थे । रुज्जइ ललुति चिट्ठा वारिज्जइ पक्खमे वणिणो ॥ १४२२ ॥  
 रोइइ वण छट्ठे विपमियभोई अमुंजमाणो वा । तित्तिअमित्तं छिज्जइ सत्तमए पइमसाई ॥ १४२३ ॥  
 तइविप अठापमाणो गोणसत्तइयाइ रुक्कए वापि । कीरइ तपगळेओ समहिभो सेसरवब्बडा ॥ १४२४ ॥

अजीयेसु दस भेषा, एते एतन्निपयं अमुयतेण लद्धा । एवं मद्दयादिसु एकेके दस २ लब्धसि, एव सत, एते सोत्तिदियममुयं  
तण लद्धा, एव चम्पिस्सदियादियेसुवि एकेके सयं २ जासा ससा ५००, एतेवि आहारसण्णाऽपरिस्सायगेण लद्धा, मयादि-  
सण्णादिसुवि पत्तेयं २ पंच सया, जासा दो सहस्सा, एते न करेत्तिसि एतेण लद्धा न कारवेदिपतेणवि दो करेत्ते णाणु  
जाणत्ति एतेणवि दो सहस्सा २०००, जाता ४ सहस्सा, एते मणेण लद्धा ६०००, वायापवि ६०००, काएणवि छत्ति ६०००,  
जाता अट्ठारमत्ति १८००० । 'असुताचारचारित्रिणः' असुताचार एव चारित्र, तान् 'सर्वान्' गच्छगतनिर्गतमेवान्  
'शिरसा' उत्तमाद्रेन मनसा-अन्ताकरणेन मस्सकेन बन्दत्त(बन्दे) इति वाचा, इत्यमभिवन्द्य साधून् पुनरोचतः सकल-

मत्स्यक्षामणमैनीप्रदर्शनायाह—

एवमेमि सख्व जीये, सख्वे जीवा खमत्तु मे । मेत्ती मे सख्वम्पुसु, वेर मज्झं न केणइ ॥ १ ॥

एवमह आलोइय निन्दिय गरहिय दुगुठिय सम्म । तिविहेण पडिक्कतो वंदांमि जिणे बसवीस ॥ २ ॥ (सूत्रं)  
निगदत्तिद्धा एयेयं, सये जीवा खमत्तु मेत्ति, मा तेपामप्यथान्तिप्रत्ययः कर्मवन्धो भवत्स्विति करुणयेदमाह । समासौ  
स्वरूपप्रदर्शनपुरस्सरं मङ्गलगाहा-एवेत्यादि निगदत्तिद्धा, एवं दैवसिक्क प्रतिक्रमणमुक्कं, रात्रिक्रमप्येवम्भूतमेव, नचरं यत्रैव  
दैवसिक्कातिचारोऽभिहितस्तत्र रात्रिकातिचारो वक्तव्यः । आह-यद्येव 'इच्छामि पडिक्कमिन् गोयरचरियाप्' इत्यादि  
सूत्रमनर्थकं, रात्रायस्य असम्भावित्वेति, उच्यते, स्वमासौ समयादित्येषोपः । इत्युक्तोऽनुगमः, नयाः प्राग्वत् ॥  
इत्याचार्यश्रीमद्वरिभमन्त्रुरिशक्रयिद्वितायां आवश्यकपद्धतौ शिष्यशिक्षिताया प्रतिक्रमणाख्ययन समासं ॥

इति श्रीमत्सूरिपुरन्दरभवविरहोपाधिशोभितश्रीमद्धरिभद्र-  
सूरिविहितविवृतियुत श्रीआवश्यकसूत्रीय चतुर्थ्य प्रति-  
क्रमणाख्यमध्ययनं सपूर्णतामगमत् उत्तरार्धे पूर्वविभाग

अह्नाइज्येसु दीपसमुद्देशु पनरससु कम्मभूमीसु जावति केइ साइ रपहरणगुञ्जपहिगहपारा पंथमह  
 ल्वपपारा । अह्नारसहस्ससीलगाधारा अफस्सयायारचरित्ता ते सुब्बे सिरसा मणसा मरपण षट्तामि । (सुयं)  
 कर्म्मवृत्तीयेसु दीपसमुद्देशु-अभ्युद्गीपपातकीसण्हपुक्कराद्धेसु पञ्चदशसु कर्मभूमिषु-पञ्चभरतपथारापतपञ्चापिदहा-  
 भिधानासु पावन्तः केचन साधवः रजोहरणगुञ्जपतिप्रधारिणः, निहयादिबन्धवञ्छेदायाह-पञ्चमहाप्रतधारिणः,  
 पञ्च महाप्रतानि-प्रतीतानि, अतस्तदेकाङ्गविकलप्रत्येकमुच्चसन्नहायाह-अष्टादशशीलङ्गसहस्रधारिणः, तथाहि-केचिद्  
 भगवन्तो रजोहरणाविधारिणो न भयन्त्यपि, तानि चाष्टादशशीलङ्गसहस्राणि द्दर्श्यन्ते, तत्रैवं करणगाथा-जोए करण  
 सखा इदिय भोमाइ सम्मणवन्मे य । सीलगासहस्साण अह्नारसगस्स निष्कस्सी ॥ १ ॥

स्थापना स्थिरं—

| मं०  | व०    | का०  | प०  | का० | ध०  | सं० | सं० | सो० | आ० | ध० |
|------|-------|------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|----|----|
| ण क० | ण का० | ण अ० |     |     |     |     |     |     |    |    |
| आ०   | मं०   | मै०  | प०  |     |     |     |     |     |    |    |
| सो०  | च०    | पा०  | र०  | का० |     |     |     |     |    |    |
| पु०  | आ०    | ते०  | वा० | ध०  | धे० | हे० | च०  | पं० | अ० |    |
| स०   | ना०   | आ०   | मु० | स०  | सं० | सं० | सो० | आ०  | ध० |    |

जे नो करिति मणसा निज्झिपआहारसप्तसोइदि पुढधीकायारंथे स्तित्तुभा ते मुणि धन्दे ॥ १ ॥

इयं भावना—मणेण ण करेइ आहार  
 सण्णाधिप्पज्जहो सोविदियसमुद्देशो स्वतिसप्तमो  
 पुढधीकायसंरक्खमो १, मणण ण करेइ आ  
 हारसण्णाधिप्पज्जहो सोविदियसमुद्देशो स्वति  
 सप्तमो आठकायसंरक्खमो २ एव वेद ३ पाठ  
 ४ षणससति ५ पि० ६ ति० ७ ध० ८ पं० ९

अक्षमभेदपरिहरणानेवाह—‘अकिरिय परिघाणामि किरियं पवसंपज्जामि’ अकिण्ड—नप्रतिबाधः क्रिया—सम्पत्त्याहः ।  
 एवीवं वनवकारणभाभिस्याह—‘मिच्छवं परिघाणामि सम्मप पवसंपज्जामि’ मिच्छात्वं—पूर्वोक्तं सम्भवस्त्वमपि, एतद्वद्भवादेवाह—  
 ‘अथोहिं परिघाणामि वोहिं पवसंपज्जामि’ अथोधि—मिच्छात्वाकार्यं वोधिसु सम्पत्त्वयेति, इदानीं सामान्येनाह—‘अमतां  
 परिघाणामि मतां पवसंपज्जामि’ अमतां—मिच्छात्वादिः मार्गस्तु सम्पत्तदर्थनादिरिति । इदानीं उपासत्वात्संपदसु अर्थमाह—  
 ज सभरामि ज व न सभरामि ज पडिक्कमामि ज व न पडिक्कमामि तस्स सव्वस्स वेवसियस्स अइयारस्स पडि  
 क्कमामि समणोऽहं सज्जयविरयपडिहपपवक्खत्तायपावकम्मो अनियाणो विट्ठिसंपणो मायामोसविबज्जिओ (सुखं)  
 यत् किञ्चित् स्मरामि यच्च उपास्यानमोगासेति, तथा ‘अं पडिक्कमामि अं व न पडिक्कमामि’ यत् प्रतिक्रमामि  
 अभोगादियदिव यच्च न प्रतिक्रमामि सुस्ममविदिव, अनेन प्रकारेण का कश्चिदतिशयः कृतः ‘तस्स सव्वरस वेवसि  
 यस्स अविचारस्स पडिक्कमामि’ चि कण्ठ्यं, इत्थं प्रतिक्रम्य पुनरुक्तप्रवृत्तिपरिहारात्मानमात्रोच्यते—‘समणोऽहं  
 सज्जयविरयपडिहपपवक्खत्तायपावकम्मो अनियाणो विट्ठिसंपणो मायामोसविबज्जिओ’ चि अमणोऽहं तवामि न भरकावि,  
 किं तहिं ?, यद्यतः सामरस्येन यत् इदानीं, विरता—निवृत्ताः अशीतस्येष्वस्य च निम्नदावंवरणद्वारेण यत् पयाह—‘यसिहव  
 प्रत्याख्यावपापकम्मं, प्रसिद्धतम्—इदानीमकरणतया प्रत्याख्यावमयीतं निन्दया पृथक्करणतयेति, प्रयानोऽयं दोष  
 इतिहस्सा सवदुन्यतामात्मनो भवेव प्रतिपादयन्नाह—‘अनिदानो’ निदानरहितः, सकलगुणमूलपूर्वगुणयुक्ततां पूर्वप  
 याह—‘एट्ठिसपछा’ सम्पादार्जनयुक्त इत्यर्थः । एतन्मात्रप्रवचनपरिहारायाह—‘मायासुगाविबज्जो’ ( विवर्जितः )—  
 मायागमसुखं पादपरिहारीत्युक्तं भवति । एतद्वतः सन्द किं ?—

अपणाण परिआणामि नाण उवसपज्जामि अकिरिय परियाणाणि किरिय उवसपज्जामि मिच्छस परियाणाणि  
सम्मस उवसपज्जामि अपोहिं परियाणाणि पोहिं उवसपज्जामि अपमग परियाणाणि मगग उवसपज्जामि (सुदं)

य एए नैर्धम्मपापचनलक्षणो धर्म उक्कः तं धर्मे अदब्बहे (धे) सामान्येनैवमयमिति वि 'पत्तिपामि'ति प्रविप  
यामहे (धे) प्रीतिकरणद्वारेण 'रोएमि'ति रोचयामि, अभिजापातिरेकेणासेयनाभिमुखवया, तथा प्रीती रुचिश्च  
मिक्षे एव, यतः क्वचिद्द्वयादौ प्रीतिसम्भावेऽपि न सर्वदा रुचिः, 'कासेमि'ति स्पृशामि आसेवनाद्वारेणाति  
'अणुपाळेमि' अनुपाळयामि पीनःपुन्यकरणेन 'न धम्म सवहं'तो' इत्यादि, एवं धर्मे अदब्बतः प्रतिपद्यमानः रोचयन्  
स्वयन् अनुपालयन् 'तरस धम्मस्स अब्भुद्धिओमि आराधनाए'ति तस्य धर्मस्य प्रागुक्तस्य अभ्युत्थितोऽस्मि आराधना  
याम्-आराधनविषये 'विरतोमि विराधनाए'ति विरतोऽस्मि-निष्ठोऽस्मि विराधनायां-विराधनाविषये, एतदेव भेद  
नाह-असज्जमं परियाणामि, सज्जमं उवसंपज्जामि' असंयमं-प्राणातिपातादिकम् प्रविज्जानामीति प्रपरिज्ञया विज्ञाय प्रत्या  
स्थानपरिज्ञया प्रत्याख्यामीत्यर्थः, तथा सयमं-प्रागुक्तस्य उवसंपज्जामहे (धे) प्रतिपद्याम (हे) इत्यर्थः, तथा 'अवमं परिधा  
णामि धमं उवसंपज्जामि' आगच्छ-वस्तुनियमलक्षण विपरीतं ब्रह्म, शेष पूर्ववत्, प्रधानासंयमाङ्गस्याद्यामद्यणो  
निदानपरिहारार्थमनन्तरमिदमाह, असयमाङ्गत्वादेवाह-'अकर्पं परियाणामि कुर्यं उवसंपज्जामि' अकर्पोऽङ्कुल्यमा  
ख्यापते कल्हस्तु कृत्य इति, इदानीं द्वितीयं धन्धकारणमाभित्याह, यत्त उक्कं [ध]-"असंजमो य एएओ अप्पाणं अपि  
रुं य पुयिधं" इत्यादि । 'अपणाणं परियाणामि नाण उवसपज्जामि' अज्ञानं सम्यग्ज्ञानादन्यत् ज्ञानं तु मगपद्वचनम्,



अज्ञानमेव हरिहरनामैवाह—‘अकिरिषं परिधाणामि श्चिरिष उवसंपज्जामि’ अकिण्डु-नादिवाहः क्रिया-सम्पन्नाहः ।  
 एतौर्षं जन्मकारणमाश्रित्याह—‘मिच्छस्य परिधाणामि सम्मस्य उवसंपज्जामि’ मिच्छार्थं—पूर्वोक्तं सम्पत्कल्पमपि, एतदप्रकाराद्वाह—  
 ‘अवोहिं परिधाणामि वोहिं उवसंपज्जामि’ अवोधिः—मिष्यात्वकार्यं वोधिसु सम्पत्कल्पस्येति, इदानीं सामान्येनाह—‘अममं  
 परिधाणामि ममं उवसंपज्जामि’ अममार्गो—मिष्यात्वादिः मार्गस्तु सम्पत्कर्षणार्थेति । इदानीं उवाह्यत्वात्संशयानुत्तर्यमाह—  
 अ समरामि अ न संभरामि अ पडिक्कमामि अ न पडिक्कमामि तस्स सन्वत्स देवसियत्स अहयारत्स पडि  
 क्कमामि समणोऽह सज्जयधिरपपडिहपपवक्कत्तायपावक्कमो अनियाणो दिट्ठिसुपणो मायामोसधिविज्जिक्कमो (सुखं)  
 यत् किञ्चिद् स्तरामि एव उप्पत्तानामोगासंति, तथा ‘अं पडिक्कमामि अं न पडिक्कमामि’ यत् पडिक्कमामि  
 आभोगादिधित्तं यच्च न पडिक्कमामि सूत्तमधित्तं, अनेन प्रकारेण यः कश्चिद्विचारः कृतः ‘तस्स सवत्स देवसि  
 यत्स अविपारत्स पडिक्कमामि’ चि कम्प्यं, इत्थं पडिक्कम्य पुनरुक्तमवशिष्यपरिहारात्तानमात्रोपपन्नाह—‘समणोऽहं  
 सज्जयधिरपपडिहपपवक्कत्तायपावक्कमो अनियाणो दिट्ठिसुपणो मायामोसधिविज्जिक्कमो’ चि ज्ञमणोऽहं तथापि न जरक्कादिः,  
 किं तर्हि !, सपथः सामरस्येन यतः इदानीं, पिरसा—निवृत्तः अतीतस्यैव्यस्य न निवृत्तवर्णद्वारेण भव एवाह—यतिवृत्त  
 प्रत्याख्यासपापकर्म, प्रतिवृत्तम्—इदानीमकरणतया प्रत्याख्यासमतीत निन्दया पृथक्करणतयेति, प्रधानोऽयं दोष  
 इति कृत्या। सवद्युत्पत्तामात्मनो भवेन प्रतिपादयन्नाह—‘अनिदानो’ निदानरक्षिः, सक्कमुपमूखमुत्तुगुणानुकर्ता दूर्ध्वप  
 दाह—‘टट्टिसपथा’ सम्पत्कर्षणानुक्त इत्यर्थः । पत्तमाणाद्रव्यवन्दनपरिहारायाह—‘मायानुगाधिवक्कः ( विवर्जितः )—  
 मायानमन्तुर्मां योदपरिदासीत्सु क भवति । एवमूतः सन् किं !—

'इदमेवे'ति सामायिकादि प्रत्याख्यानपर्यन्तं द्वादशाङ्गं वा गणिपिटक, निर्धनधाः-वाङ्माभ्यन्तरप्रत्यनिर्गताः साधयः  
 निर्धन्यानामिदं निर्धन्यं 'प्राध्वन'मिति प्रकर्षेणामिधिनिोच्यन्ते जीयादयो यस्मिन् तत्प्राध्वनम्, इदमेव निर्धन्यं  
 प्राध्वनं किमव आह-सत्ता हित सत्त्वं, सन्तो-मुनयो गुणाः पदार्था वा सद्भूत वा सत्यमिति, नपदर्शनमपि  
 स्वयिपये सत्त्वं भवत्यव आह-'अणुस्तर'ति नास्योचर विद्यत इत्यनुचरं, यथायस्थितसमस्तप्रसुप्रतिपादकत्वात्  
 तत्तममित्यर्थः, यदि नामेदसीरयन्मूतमन्यदप्येवमूतं भविष्यतीत्यव आह-'केशलिप' केशमद्वितीयं नापर  
 मित्यंभूतमित्यर्थः यदि नामेदमित्यभूत तथाप्यन्यस्याप्यसमवायपदार्थगैर्गुणैः प्रतिपूर्णं न भविष्यतीत्यव  
 आह-'पट्टिगुण'ति प्रतिपूर्णमपयर्गप्रापकैर्गुणैर्नृत्तमित्यर्थः, भूतमपि कदाचिदात्मभरितया न तद्वयनशीलं भवि  
 व्यतीत्यव आह-'नैयाद्य'ति नयनशीलं नैयायिकं, मोक्षगमकमित्यर्थः, नैयायिकमप्यवशुद्ध-संकीर्णं नाधरेण  
 नैयायिक भविष्यति इत्यव आह-'ससुद्ध'ति सामरत्येन शुद्ध संशुद्धं, एकान्ताकलङ्कमित्यर्थः, एवंभूतमपि कथ  
 खितपास्वाभाक्याकालमवति वन्यननिकृन्वनाय ( इदमपि तथा ) भविष्यतीत्यव आह-'सद्गनस्तण'ति कृन्वतीति  
 कर्त्तनं दास्यानि-भायादीनि तेषां कर्त्तनं, भयनिषत्वनमायादिसत्यच्छेदकमित्यर्थः, परमवनिषेधार्थं स्याह-  
 'सिद्धिमग्न' मुक्तिमग्न' सेधन सिद्धिः-हितार्थप्राप्तिः सिद्धेर्मार्गः सिद्धिमार्गः, मोक्षनं मुक्तिः-अहितार्थकर्म  
 विच्युतिस्रस्ता मार्गो मुक्तिमार्ग इति, मुक्तिमार्ग-केवलज्ञानादिहितार्थप्राप्तिसद्वारेणाद्वितकर्मविच्युतिद्वारेण च मोक्ष  
 साधकमिति भावना, अनेन च केषचनानादिविकल्पाः सत्कर्मकाश्च मुक्ता इति दुर्नयनिरासमाह, विप्रतिपक्षिनिरा

सार्धमाह—‘निष्ठाणमगग निष्ठाणमगगं’ यानि लक्षितं यानं ‘कुलश्रुटो बहुलं’ ( पा० ६-६-११६ ) इति वचनात् कर्मणि  
 स्मृद्, निरुपमं यानं निर्धारनं, ईदृशाभारात्स्य मोक्षपदमित्यर्थः, तस्य मार्गो निर्धारणमार्ग इति, निर्धारणमार्गो—विधिवदिति  
 बाणमात्रिकाकारणमित्यर्थः, अनेनानियतसिद्धिष्वेवप्रतिपादनपरपुरुषयनिरासमाह, निर्धारणमार्गः परमनिर्घृष्टिकारणमिति इदं, अनेन च  
 मास्यन्तिक सुखमित्यर्थः, निर्धारणस्य मार्गो निर्धारणमार्ग इति, निर्धारणमार्गः परमनिर्घृष्टिकारणमिति इदं, अनेन च  
 निःसुखदुःखात् सुकारमात्र इति प्रतिपादनपरपुरुषयनिरासमाह, निगमयन्माह—इदं च “अविशदमविशदं सर्वदुःखस्यही  
 णमार्गं” अपिदं—सत्यं अविसन्निप—अन्यथाच्छिन्नं, सर्वदा अचरविदेहादिषु भावात्, सर्वदुःखप्रहीणमार्गो—सर्वदुःख  
 प्रहीणो—मोक्षकारणमित्यर्थः, साम्प्रतं परार्थकरणद्वारेणास्य चिन्तामशित्वमुपदर्शयन्माह—“एतद्वि ( इत्यदि ) या श्रीवा  
 ‘सिजसति’ चि ‘अत्र’ नैर्मन्ये प्रयत्नने स्विता श्रीवाः सिन्धुस्थीत्यणिमादिसंयमकलं प्राप्तयन्ति ‘सुखसती’ चि कुप्यन्ते केवळिनो  
 भयन्ति ‘सुखसि’ चि सुप्यन्ते भयोपमादिकर्मणा ‘परिनिश्चयायति’ चि परि—समन्तात् निर्धारित, किमुकं भवति ?—‘सर्व  
 दुःकराणमंतं करिषि’ चि सर्वदुःखानां शरीरमानसभेदानां अमृतं—विनाशं कुर्यान्ति—निर्वर्षयन्ति । इत्यमनिवापाधुनाऽह  
 चिन्तामणिकल्पे कर्ममलप्रहाटनसंछिर्त्तायं भजानमाधिकुर्यान्माह—

न यम सदाहमि पस्तिपाभि रोपमि फासेमि अनुपाठेमि, न यम सदाहमि पस्तिअतो रोपतो फासतो  
 अनुपाठतो तस्य यमस्य अश्रुटिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए असज्जम परिआणाभि  
 सज्जम उपसपज्जाभि अपम परिआणाभि यम लवसपज्जाभि अकप्य परियाणाभि कप्य लवसपज्जाभि

पंगवीभ्यो धघति ह्रस्वठितियाभ्यो करोह मंदाणुभावा य तिवाणुभावाभ्यो करोह, अप्यपदेसाभ्यो बहुपदेसाभ्यो करोह । एवकारी य नियमा दीहकालं संसारं नियत्तेह । अह्वा माणायारविराहणाए दंसणविराहणा, णाण दंसणविराहणाहिं नियमा चरणविराहणा, एवं तिण्ह विराहणाए अमोक्खे, अमोक्खे नियमा ससारो, वन्हा असम्माए ण सम्माहवमिति गाथार्यः ॥ १४१५ ॥

असज्जमाहयनिज्जुत्ती कहिया मे वीरपुरिसपत्न्या । सज्जमतबहुगाण निगमापणं महरिसिणि ॥ १४१६ ॥  
असज्जमाहयनिज्जुत्तिं जुज्जता चरणकरणमाज्जता । साह्म स्ववेति कम्म अणेगमवसच्चियमणत्त ॥ १४१७ ॥

असज्जमाहयनिज्जुत्ती समत्ता ॥

व्याख्या—गाथाद्वयं निगदसिद्धं ॥ १४१६-१४१७ ॥ असाध्यापिकनिर्गुक्तिः समासः ॥

तथा सज्जमाए न सज्जमाहय 'तस्स मिज्जतामिदुक्कडं' तथा स्याध्याधिके—असाध्यापिकयिपर्ययलक्षणे न स्वाध्यापितं । इत्यभाषातनया योऽतिचारः कृतकस्य मिथ्याबुक्कवमिति पूर्ववत् ।

एय सुत्तनिबद्धं अरणेणज्जणपि होति विण्णेयं । स पुण अव्यामोहस्यमोहभ्यो संपवक्खामि ॥ १ ॥ छर्त्तासाए जयारि चोत्तीस बुद्धवयणावतिसेसा । पणवीस वयणावतिसय छवीसं उत्तरज्जयणा ॥ २ ॥ एवं जह समयए जा सयभिसरिकस्स

१ मङ्गलीर्धमाति इत्यभिहितकाम धीर्धम्मिकाः करोति भगवानुभावात् वीजानुभावा करोति अल्पमदसम्पन्नं बहुमदसम्पन्नः करोति पूर्वकर्मा न विद्यमाना धीर्धम्मिका संसारं विवर्त्तयति अथवा शास्त्राचारविराधनार्थां पूर्ववद्विराधना ज्ञानवर्त्तयतिराधनयोर्द्वयमात्राद्विराधना एवं ज्ञानार्थं विराधनयामोहः, अयोधे विद्यमानं संसारं, तस्माद्व्याध्याधिके न ज्ञानेयमिति

क्षेत्रं सवर्णम् । तथा चोक्तं—सुषुप्तिमस्य नक्षत्रं स एव पण्यते ॥ इयं संज्ञा सर्वसिद्धिं ददाति । अथोक्तिः ॥ ३ ॥ संज्ञा समस्तं जगत्स्य य एव सिद्धिदा विहरणाद्धारस्य । इति परिष्कारं पू. वेदीसेहिं शु. धा. पू. ॥ ४ ॥ अथार-  
ण्ये सुखं अलम्बाह इति विषयः सद्यः । सद्यो वदन्त्यारण्यो नृगस्तंजोगादि ओ. पू. ॥ ५ ॥ एगसिद्धिर्वास्तवमस्य सद्य-  
दीहपञ्चमसूत्रे । एवमिति धारविद्योहिं कावं कुण्ठी णमोक्तम् ॥ ६ ॥

अथोक्तं चोदीसाय इत्यादि, अथवा प्राक्तनाद्युभयसेवनायाः प्रसिक्तान्तः अनुनाकारणाय प्रतिक्रामन् नमस्कारपूर्वकं  
प्रतिक्रामन्नाह—

नमो अत्रदीसाय तिर्यग्वराणं वसन्मादिमहावीरपञ्चसंज्ञाणां ( सूत्रम् )

नमश्चतुर्विधविधीर्धरेभ्य ऋषभान्दिमहावीरपर्यवसानेभ्यः, प्राकृते पक्षी अणुपर्यय एव भवति, तथा चोक्तं—  
“चतुर्वयवोणं चतुर्वयवोणं छद्दिभिर्भक्षीर्धरे भक्ष्य चतुर्ययी । अह इत्यादि पाया नमोऽस्तु देवादिदेवान् ॥ १ ॥” इत्यं नमस्कारवत्स-  
प्रस्तुतस्य वपापणनायाह—

इणमेव निगद्य पापयण सद्य अणुसार केवलस्य परिपुण्यं नेमातयं सत्तुह सङ्क्रान्ताणि सिद्धिमन्त्रा-  
मुत्तिमन्त्रा निव्याणमन्त्रा निव्याणमन्त्रा अधिकतद्मपिसिद्धिं सद्यचतुर्वयवोणमन्त्रा, इत्यं विद्या जीवा सिद्धिर्भवति  
सुखमिति सुषुप्ति परिनिव्यापयति सत्यचतुर्वयवोणमन्त्रं करोति ( सूत्रम् )

पगाहीओ धंवसि हस्सठितियाओ य दीहठितियाओ करेइ मंदाणुभावा य सिषाणुभावाओ करेइ, अप्पपदसाओ  
 वहुपदेसाओ करेइ । एवंकारी य नियमा दीहकाळ संसारं निक्खेइ । अइया नाणापारविराहणाए दसणाविराहणा, णाण  
 दसणाविराहणाहि नियमा चरणविराहणा, एव तिणइ विराहणाए अमोक्खे, अमोक्खे नियमा ससारो, तम्हा असम्माइए  
 ण सम्माइवमिति गाथार्यः ॥ १४१५ ॥

असज्जमाइयनिज्जुसी कहिया भे वीरपुरिस्सपप्पसा । सज्जमतवहुगाण निगधार्णं मइरिस्सीण ॥ १४१६ ॥  
 असज्जमाइयनिज्जुस्सि जुंजता चरणकरणमावसा । साह्म स्वर्णेति कम्म अणोगमवस्सच्चियमणत्त ॥ १४१७ ॥

असज्जमाइयनिज्जुसी समत्ता ॥

व्याख्या—गाथाद्वयं निगदस्मिन् ॥ १४१६-१४१७ ॥ अस्याद्यापिकनिर्गुणिकः समासा ॥

तथा सज्जमाए न सज्जमाइय 'तस्स मिच्छामिदुक्कह' तथा स्याद्यापिके—अस्याद्यापिकविपर्ययलक्षणं न स्वाध्यायिव ।  
 इयमाधातनया योऽविवारः कृत्वस्तस्य मिथ्याबुक्कवमिति पूर्वपदम् ।

एवं सुखनिवद्धं व्यथेणऽण्णपि होति विण्णोय । त पुण अज्जामोहत्थमोहओ संपवक्खानि ॥ १ ॥ वेर्त्तीसाए उव्वरि  
 योसीसं बुद्धवयणअत्तिसेसा । पणसीस वयणअत्तिसय छवीसं वत्तरज्जयणा ॥ २ ॥ एवं अइ समयए जा सयभिसरिक्ख

१ मङ्गलीवेमासि इत्थस्सठितियाए दीर्घस्थितिका करोति मग्गदुयावाए वीणादुयावाः करोति अस्सपदसाया वहुपदेसामा करोति पूर्ववर्त्ती च  
 विवमाए दीर्घकालिक संसारं विवर्त्तयति, अइया नाणापारविराहणाए दसणाविराहणाए दसणाविराहणाए अमोक्खे, अमोक्खे नियमा ससारो, तम्हा असम्माइए  
 वयाओक्खे अमोक्खे विवमाए संसारं, तम्हावसाध्यापिके च व्यथेणयति

गणितसहस्राहमहिम्नो रागे दोषसि न सद्यः सद्यः । सञ्जन्मसञ्जन्मायमयं एवार्हं कृति मोहायो ॥ १४११ ॥  
व्याख्या—महिम्नोऽसि इष्टसुखो नन्विषो वा धरेण गणिकायमो वाहरिज्जंगो वा भवति, त्वन्मित्रापी असञ्जन्माद्यपि

सञ्जन्मायं करोह, एव रागे, दोष किं वा गणी पाहरिज्जति वायमो वा, कर्हपि महिज्जामि जेण एयस्स पडिसवचीभूयो  
भयामि, जन्हा जीवसरिरापययो असञ्जन्माद्य तन्हा असञ्जन्माद्यमय-न कर्हपावीत्यर्थः ॥ १४११ ॥ इमे य दोसा—  
उन्माप च सञ्जन्मा रोगापक च पात्रणे वीह । तिरयपरभासिपायो भस्मह सो संजन्माभो वा ॥ १४१२ ॥  
व्याख्या—सेसादिगो उन्माभो चिरकालिभो रोगो, आसुपावी कायंको, एतेण वा पावेज्जा, वन्माभो भंसेज्जा-निष्क-  
दिही पा भवति, चरिस्ताभो वा परियह ॥ १४१२ ॥  
इत्येण फलभेय परखोपं फल न विंति विज्जाभो । आसायणा सुयस्स उ कुब्बह वीह च ससारं ॥ १४१३ ॥

व्याख्या—सुयणायायारविपरीयकारी ओ सो णाणावरणिज्ज कम्मं भंचति, तदुदया य सिज्जाभो कम्मोवकारा  
आयि फल न दैति, न सिचयन्ति इत्यर्थः । विहीए अकरण परिभवो, एवं सुयासायणा, अविविहीए वहुंति निवमा अह

१ इत्येण गणी वाच्यः व्याहृयमायं वा भवति । अस्याप्याधिकं भवि स्याज्जायं करोमि एव रागे द्वेये सिं वा गणी व्यापिपते वाच्यो वा कर्हसञ्जन्माद्येभ्यं  
यदन्तत्स महेमराकोभूयो भवार्थस्य यज्जाए जीवसरिरावच्योऽन्माप्याधिकं तयावाज्जाय्वासिक्कमव । इमे च दोसा—किंसीचिज्जापिच उन्माहः चिरकालिको रोग  
वाहृज्जामो भाज्ज । एतद् वा मयुपाव यमाए भवय-मिप्याहिवहा भवए चारिज्जाया परिपेय । सुदज्जावावाधिरपीठकारी वा य वावावरणीयं कम्मं  
वन्माभं उरुपाव सिंहा वहायवाता भवि कर्हं न ददति विवरकणं परिभवाः एव सुतायाववा अधिपी वरंमाभो सिचमाए भव

व्याख्या—अन्वतरा मूत्रपुरीषादयः, 'तेहिं भवेव बाहिरे लवलिचो न कुणह, अणुयलिचो पुण अर्हिभतरगतेसुपि चेसु  
अह अल्लण करेह ॥ १४१० ॥ किं चान्यत्—

आवट्टियाडधराह सनिहिया न समए जहा पडिमा । इह परलोए दहो पमसल्लणा इह सिआ व ॥ १४११ ॥  
व्याख्या—जा पडिमा 'सनिहिय'सि देवयाहिविया सा जह कोह अणाविण्ण 'आवट्टिय'सि जाणतो बाहिरमल  
लिचो सं पडिम छिधइ अल्लण व से कुणह सो ण समए—सिखादि करेह रोग वा जणोह मारह वा, 'इय'सि एयं जो  
असज्झाहए सज्झायं करह तस्स णाणायारधिराहणाए कम्मपयो, एसो स परलोए व दहो, इहलोए पमस देवया  
छलेज्जा, स्यात् आणाह धिराहणा पुमा चेव ॥ १४११ ॥ कोह इमेहिं अणुसत्थकारणेहिं असज्झाहए सज्झायं करेज्जा—  
रागेण व दोसेण वडसज्झाय ज्ञो करेह सज्झाय । आसायणा व का से ? को वा अणिओ अणापारो ? ॥ १४१२ ॥  
व्याख्या—रागेण वा दोसेण वा करेज्जा, अहवा दरिसणमोहमोहिओ भणेज्जा—का अनुसरस णाणरस आसायणा ?  
को वा तस्स अणापारो ? नास्तीत्यर्थः ॥ १४१२ ॥ तेसिमा विमासा—

१ तेरेव बहिरूपकिसो व करोसि अनुयकिअः जुमरुअमरगतोव्वाव तेवमपार्थमी करोति वा मतिमा वल्लापिठिका सा बहि कोर्धव अमारत्तव आमायो  
वाअमल्लकिसकां मतिमा खुसति अर्थव वा ललाः करोति एहिं व समते—विमल्लिचवादि करोति रोग वा अलवति मारवति वा एवं कोऽसज्झादि  
ललाप्याए करोति तल्ल आमाअमरिदधववा कर्मावज्जाः पुव तल्ल पाएलीकिअसु दवहः इहकोह ममस दवता अल्लयए आमादिहियायवा पुर्वव । किमह  
मिरप्रसक्तभारैसाप्याधिके स्याप्याव जुर्वाए । एतोव वा हेयेव वा जुर्वाए अयवा वृत्तमोहयोदिणो मणव—अयूयस आदल काऽऽपादवः ? का वा  
तलावाभारः ? तेवमिदं विमासा



देवपत्नी पत्य, त्वयि शोचधम्मचिक्कं च तं न कावधं, अविहीणपमत्तो सम्मह, तं देवमा ज्ञसेज्जा, जहा विज्जासाहणवद्  
 गुण्यवाए विज्जा न सिञ्जह एहा इहेपि कम्मस्सओ न होह । देवुण्यं—विधर्म्यं विपरीतभाव इत्थम्यो । प्रम्मवातुं सुव  
 धम्मस्स एव धम्मो यं असन्नाहए सवन्नाहएवज्जाण, करतो प सुयणाणापारं विराहेह, तन्हा मा कुणसु ॥ १४०८ ॥  
 बोद्धुं भाह—अहं दंतमंसतोणियाए असवन्नाओ ननु देहो एवमओ एव, कईं सेण सवन्नायं कुणह १, भावार्थं भाह—  
 कामं देहावयवा दंतार्हं अवज्जुभा, तद्विषयज्जा । अणवज्जुवा न जज्जा सोए तह कल्लरे वेव ॥ १४०९ ॥  
 एवास्या—कामं बोद्धकाभिमायअणुमपारी सव सम्मओ देहो, तद्विषये सटीरओ अवज्जुवत्ति—गुणसूताः ते पज्ज-  
 णिज्जा । अं पुण अणवज्जुवा—साराया ते नो पज्जणिज्जा, इत्युपवर्त्तने । एवं ओके इटं ओकोवटं च्चेवमेवत्थम्यो ॥ १४१० ॥  
 किं ज्ञान्यद्—

अतिमत्तरमल्लिसोपि कुणह देवाण अणण रणेए । पाहिरमल्लिसो पुण म कुणह अवयोह प तन्मो ण ॥ १४११ ॥

१ इतरस्य पत्यः पत्येति काठकर्मिहस्स च तत्र कर्त्तव्यं अविहीणपमत्तो आचरे तं देवता ज्ञसेवेद् यथा विजासाहणवद्गुण्यवत्ता विजा न सिञ्जति  
 तद्वदपि कर्ममत्ता न भवति । धर्मवत्ता—गुणवर्त्मत्वं यथा । परस्वारावाधिके स्वाप्यावकाशं कर्मं कुणम गृहस्थाणाचारं विराचयति, तस्मात् मा कर्त्तव्यं । पति  
 इत्यन्तर्गतो विजाह्मिज्जास्वप्याप्याधिकं ननु अहं पुण्यमव एव कर्म तेन स्वाचार्यं कुणम । बोद्धकाभिमायागुण्यवत्तायं त्वमं ज्ञसेतो देहो त्वत्तस्य च जटीरात्  
 दृष्टान्तात् । तद्वदीयाः, च पुनः तत्रकास्ते न तद्वदीयाः ।

व्याख्या—ध्वजे धोर्यमि निष्पगले इत्यस्य धाहिरभो पट्टं दातं धापू, परिगलमाणेन भिन्ने संमि पट्टो सस्स चवर्त्ति  
 छारं दात पुणो पट्टा देह धापू, य, एवं सहर्यपि पट्टं धंधेज्ज धायण देव्वा, सभो परं गलमाणे इत्यस्य धाहिरं गंतुं प्रण  
 पट्टो य धोरिय पुनरनेनेध क्रमेण धापू । अहवा अण्णस्य पट्टति ॥ १४०५ ॥

एमेध य समणीण वणमि इअरंमि सस्स यथा उ । तह्विय अठापमाणो धोएह अहव अन्नस्य ॥ १४०६ ॥

व्याख्या—इयरं सु-उत्तुतं, सारयपि एवं धेव नवरं सख धधा उक्कोसेण कायधा, सहरपि अट्ठावते इत्यस्य धाहिरभो  
 धोवेत्तं पुणो धापति । अहवा अण्णस्य पट्टति ॥ १४०६ ॥

एएस्तामस्यरेऽसज्जसाए अप्पणो उ सज्जसाय । ज्जे कुणह अजयणाए सो पावह आणामाहेणि ॥ १४०७ ॥

व्याख्या—निगदसिद्धा ॥ १४०७ ॥ न केवउम्माज्ञाभङ्गादयो दोषा भवन्ति, इमे य—

सुअनाणमि अमस्सी खोअधिकदं पमत्तउत्तणा य । विज्जासाहणधइगुत्तवम्मया एव मा कुणसु ॥ १४०८ ॥

व्याख्या—सुयणाणे कणुपयारयो अमस्सी भवति, अहवा सुयणाणमधिकिराएण असज्जसाहए सज्जसायं मा कुणसु

१ ध्वजे धोर्ये निष्पगले इत्यस्य धाहिरभो पट्टं दातं धापू, परिगलमाणेन भिन्ने संमि पट्टो सस्स चवर्त्ति  
 छारं दात पुणो पट्टा देह धापू, य, एवं सहर्यपि पट्टं धंधेज्ज धायण देव्वा, सभो परं गलमाणे इत्यस्य धाहिरं गंतुं प्रण  
 पट्टो य धोरिय पुनरनेनेध क्रमेण धापू । अहवा अण्णस्य पट्टति ॥ १४०५ ॥  
 एमेध य समणीण वणमि इअरंमि सस्स यथा उ । तह्विय अठापमाणो धोएह अहव अन्नस्य ॥ १४०६ ॥  
 व्याख्या—इयरं सु-उत्तुतं, सारयपि एवं धेव नवरं सख धधा उक्कोसेण कायधा, सहरपि अट्ठावते इत्यस्य धाहिरभो  
 धोवेत्तं पुणो धापति । अहवा अण्णस्य पट्टति ॥ १४०६ ॥  
 एएस्तामस्यरेऽसज्जसाए अप्पणो उ सज्जसाय । ज्जे कुणह अजयणाए सो पावह आणामाहेणि ॥ १४०७ ॥  
 व्याख्या—निगदसिद्धा ॥ १४०७ ॥ न केवउम्माज्ञाभङ्गादयो दोषा भवन्ति, इमे य—  
 सुअनाणमि अमस्सी खोअधिकदं पमत्तउत्तणा य । विज्जासाहणधइगुत्तवम्मया एव मा कुणसु ॥ १४०८ ॥  
 व्याख्या—सुयणाणे कणुपयारयो अमस्सी भवति, अहवा सुयणाणमधिकिराएण असज्जसाहए सज्जसायं मा कुणसु

देवदत्तो मल, तसि कोवचममविरुद्धं च तं न काचमं, अविहीय पमचो उचमह, तं देवदा उचमेजा, यहा विज्जासाहपवर-  
 गुणवाप विज्जा न सिग्गह एहा इदंवि कम्मकसको न होह । वैगुण्यं-वैधर्म्यं विपरीतभाव इत्यर्थः । भम्मसावो सुय  
 भम्मस एव भम्मो अं असग्गाए एवसाहववज्जण, करतो प सुयणायायारं विराहेह, उन्हा भा कुणसु ॥ १४०८ ॥  
 बोदक भाह-इह दंतमंसोणिपाए असग्गाओ नणु देहो एयमको एव, कई तेण सग्गामं कुणह १, भाचार्यं काह-  
 कामं देहावयवा इंतारि अवसुभा, तद्वि वज्जा । भणवज्जुआ न वज्जा खोए तह वचारे वेव ॥ १४०९ ॥  
 इयास्या-कामं बोदकाभिमायअणुमपरं सवं तम्मओ देहो, तद्वि अं खरीताओ अवसुवत्ति-इधमूलाः ते वज्ज-  
 निज्जा । अं पुण अणयज्जुआ-ताधारा ते मो पज्जणिज्जा, इत्युपदर्शिते । एवं खोके एटं खोकोचटेज्येवमेवेत्यर्थाः ॥ १४०९ ॥  
 किं चान्यत्-

अरिमतमसिस्सोयि कुणह देवाण अवण स्रोए । पाहिरमसिस्सो पुण न कुणह अवणोह प तम्मोण ॥ १४१० ॥

१ इतरम पुनः वरुणि कोवचमं विरुद्धं च तत्र कचाम अविही प्रमचो वाचते तं देवदा उचमेव एवा विजासाववैगुण्यतया विजा न विज्जसि  
 तवहारि कर्मजसा न भवति । अरिमतया-मुणवर्धस्य चमो वरुणावधिमिके सत्तावावका वर्धनं कुर्वस मुक्कामायाह विराववदि वज्जस्य मा काही । वदि  
 एवमावधिमिके वरुणावधिमिके वरु देह वरुणाव एव कथं तत्र सत्तावाव कुर्वस ? बोदकाभिमायानुसरत्ये सवं तम्मो देहः वचसि से खरीताव  
 इत्युपदर्शिते । वर्धनीयाः च पुनः तत्रकमावते न वर्धनीयाः ।

पृष्ठवैति, अहं सुखं त्वे करोति सम्भारय, नववारहपसुताहणा निषमा हयो, (ततो) पटमाप पोरिशीप न करोति सम्भारयमिति  
गाथार्थः ॥ १५९९ ॥

पृष्ठविषयंमि सिलोमे छीप पटिलेह मिथि अस्तस्य । सोणिय सुत्तपुरीसे धाणातोअ परिहरिआ ॥ १५०० ॥

व्याख्या—अत्र पटवणाए तिथि अस्तस्यणा समजा, तदा त्वरिमेगे सिलोमे कट्टियधो, तंमि समसे पटवणं सम  
पट्ट, विविधपादो गयस्यो 'सोणिय'सि अस्त व्याख्या—

भालोअमि चिलिमिणी गंधे अस्तस्य गंतु पकरंसि । धायाहपकालंमी पट्टग मरुआ नवरि नत्थि ॥ १५०१ ॥

व्याख्या—अस्य सम्भारयं करोतिहं सोणियवधिगा दीसंति तस्य न करोति सम्भारयं, कट्टगं चिलिमिथिं या अंतरे  
दातुं करोति, अतए पुण सम्भारयं वेव करनेत्वाण सुत्तपुरीसकलेवरदीयाण गंधे अण्णंसि धा अस्तुमगंधे आगच्छंते तस्य  
सम्भारयं न करोति, अण्णंसि धंधणसेहणादिआलोप परिहरेआ, एव एव निवायाए कासे अणियं ॥ धायाहमकालोअपि  
एवं वेव, नवरं गंधगमकगविठंवा न सम्भारति ॥ १५०१ ॥

१ प्रत्यापत्तिरिति यदि सुखं तर्हि कुर्वन्ति आत्मायं नववारहपे सुताहणा निषमाय हव्यताः प्रथमायां दीप्यते यः कुर्वन्ति आत्मायं । यदि प्रत्यापत्ते  
दीप्यमानाणि समस्तानि ततोपरोक्तः क्लेशः कथयितव्यः । तस्मात् समस्तं प्रत्यापत्ते द्वितीयपादो यतार्थः । यत्र आत्मायं कुर्वन्ति । प्रोक्षितवर्षिका  
दस्यन्ते तत्र यः कुर्वन्ति आत्मायं कट्टगं चिलिमिथिं दास्यतां तस्मात् कुर्वन्ति नव पुणः आत्मायमेव कुर्वन्तां सुत्तपुरीसादिपट्टेवर्षिकायां मन्त्रोपेत्यो  
वा पट्टोपेत्युक्तं आत्मायमिति तत्र आत्माय एव कुर्वन्ति अस्तस्य निषमाय धायाहोप परिहरेए एतत् सर्वं निषमायादे कट्टे मन्त्रित व्यापककालोपत्तय  
मेव नवरं गंधगमककट्टायां यः संभवतः ।

पुनस्तान्नपरेऽस्यस्वाय जो कतेह सज्ज्वाप । सो भाणाअणत्तं मिच्छत्त चिराहणं पावे ॥ १४०६ ॥

क्यास्या—निगादसिद्धा ॥ १४०६ ॥ 'अस्यस्वायं' तु 'बुद्धिर्' इत्यादिमूलद्वारागाथायां परसमुत्थमस्याभ्यापिकद्वारं समपन्न गतं, इदानीमात्मसमुत्थास्याभ्यापिकद्वारावयवार्थप्रतिपादनायाह—

आपसमुत्थमस्यस्वाय तु एगविध होह बुद्धिह वा । एगविहं समणाणं बुद्धिह पुण होह समणीण ॥ १४०६ ॥

क्यास्या—पूर्वार्धे कच्छं, पश्चार्धेरुपास्या स्थित्य-एगविहं समणाणं तच्च त्रये भवति, समणीण बुद्धिह-त्रये प्रत्युत्सर्गवे चेति गाथार्थः ॥ १४०६ ॥ एवं त्रये विधान—

षोयमि च निरूपगले मया निमंय भुंति चकोस । परिगलमाणे जयणा बुद्धिहमि य होह कायस्या ॥ १४०७ ॥

क्यास्या—पदमं चिप यणो हयसय धाहिं योविसु निरूपगले कयो, ततो परिगलंते सिणि बंधा ज्ञान चकोसेण गतवा पाएह, एतथ जयणा यत्तमागलकस्या, 'बुद्धिह'मिति बुद्धिहं यणसंभवं वदयं च । बुद्धिहेज्जे एवं पद्मा जयणा कायया ॥ १४०७ ॥

समणो च यणिस्स भगवस्सिद्ध पप कस्सि पाएह । तहवि गसंते छार दाव दो सिद्धि मया च ॥ १४०८ ॥

१ बुद्धिहं भगवन्मात्रो ह्यहं मया भवति भगवन्मात्रो सिद्धिर् । एव एवे सिद्धाव-मयममेव मयो ह्यस्यसाह चदिः प्रकल्प्य निरूपगले भुता एता परीय-  
कस्सि मयाः साहज्यादिरय गच्छन्निवर्तो साहयसि, एतं वदन्ना वदन्मागलकस्या सिद्धिर् भवत्संभवात्सर्गं च सिद्धिहेज्ज्येवं एवकपठना कर्तव्या

पुङ्खति, अह सुद्धं वो करोति सम्भार्यं, नवधारहए सुधारणा णियमा हओ, (सर्वो) पढमाए पोरिसीए न करोति सम्भार्यमिति  
 गाथार्थः ॥ १३९९ ॥

पद्मविषमि सिद्धोने णीए पढिजेह निधि अन्नत्थ । सोणिय मुसपुरीसे धाणाओअ परिहरिजा ॥ १४०० ॥  
 व्याख्या—अदा पद्मवणाए तिधि अन्नपणा समत्ता, तदा त्वपरिमेगो सिद्धोने कहुियवो, वंमि समत्ते पद्मवर्णं सम  
 पद्म, विविधपादो गयरथो 'सोणिय'सि अस्य व्याख्या—

आलोअनि चिलिमिणी गंधे अन्नत्थ गंतु पकरंति । धायाहयकालमी दृढा मरुजा नवरि नत्थि ॥ १४०१ ॥  
 व्याख्या—अस्य सम्भार्यं करोतेहिं सोणियवधिगा दीसति तत्थ न करोति सम्भार्य, कद्दग चिलिमिठिं वा अवरे  
 दातुं करोति, अस्य पुण सम्भार्यं चैव करेत्ताण मुचपुरीसकळेवरदीयाण गंधे अण्णानि वा असुभगधे आणकळंते तत्थ  
 सम्भार्यं न करोति, अण्णानि वचणसेहणादिआलोअ परिहेज्जा, एयं सब निवाथाए काळे भणियं ॥ धायाहमकाओअवि  
 एव चैव, नवरं गढगमरगादिहंसा न सम्भार्यति ॥ १४०१ ॥

१ मत्ताएपमि पदि मुद्धं ठाहिं मुर्धमिह साध्याय नवधारहते सुतादिना दिवसाए हठकता मयमाथी पीरुथी व मुर्धमिह साध्याय । यदि मत्ताएने  
 श्रीमत्पद्मवर्णादि वमत्तामिह तरोपर्येका ओका कयदिहत्थः तस्मिन् वमत्ते मत्ताएव वमत्ताये दिवीवपादो गारायो वज साध्यायं मुर्धमिहो योमिहवर्धिका  
 रत्नमते तत्र व मुर्धमिह साध्याय कटक चिकिमिठिं वाअत्ता दत्ता मुर्धमिह पात्र मुक्ता साध्यायमेव कर्तव्यं दूधपुरीयादिहठेवहदिपत्ता गन्धोअओ  
 वा गन्धोअमुन आसाध्यायि तत्र साध्यायं व मुर्धमिह आसाध्यायि वज्जमत्तेववासाध्यायमेव परिहरए, एतए सर्व दिव्यावते कळे भणियं व्यावस्यकाओअप्यव  
 जेअ ववर्ध गढगमरगादिहंसाओअरी व संभवता ।

पुपुसामजयेरेऽसञ्ज्ञाय णो कोरे सञ्ज्ञायं । सो आणाअणत्तं भिच्छत्त विराट्ठं पावे ॥ १४०२ ॥

व्याख्या—निगधसिद्धा ॥ १४०२ ॥ ‘असञ्ज्ञायं’ तु ‘बुद्धिहं’ इत्यादिभूकद्वारागाथायां परसमुत्पन्नमस्याप्यधिकद्वारं समपन्न गठं, इदानीमात्मसमुत्पास्याप्यधिकद्वारावयवाथप्रतिपादनायाह—

आपसमुत्पन्नमसञ्ज्ञाय तु एगविध होइ बुद्धिह वा । एगविहं समणाण बुद्धिहं पुण होइ समणीण ॥ १४०३ ॥

व्याख्या—पूर्वार्द्धे कथ्यं, एवार्द्धे व्याख्या स्थियं—एगविहं समणाणं तत्र प्रथमे भवति, समणीणं बुद्धिहं—अणे ऋतुसंभवे भवति गाथार्थः ॥ १४०३ ॥ एवं प्रणे पिधानं—

शेषेयमि च निष्पगले भया निधेव भुति लकोस । परिगल्लमाणे अपणा बुद्धिहंमि य होइ कायव्वा ॥ १४०४ ॥

व्याख्या—पट्टमं धिय यणे हयसय पाहिं भोविषु निष्पगलो कथो, ततो परिगल्लंते सिणि वंवा जाव चक्कोसेण गल्लतो पाप्प, तत्थ जयणा पक्खमाणलक्खणा, ‘बुद्धिहंमि’सि बुद्धिहं वणसंभवं चरयं च । बुद्धिहेऽपि एवं पट्ठा जयणा कायवा ॥ १४०४ ॥

समणो उ घणिच्च भगवदिच्च पव करिणु वाप्प । तद्धि गल्लंते छारं दात्त दो निमि यवा च ॥ १४०५ ॥

१ एकविध भगवत्पाथो तत्र प्रथम अर्थोऽर्थः, अमयीयां द्विविधः । पुर प्रथमे सिद्धान्तं—अथप्रथमे प्रणे इत्यस्यार्थः अर्थः । प्रथमस्य द्वितीयार्थः भुताः तदा वरीय-  
कणि प्रथो व्याख्याः पाठानुसारेण गल्लगल्लितो वाचयति, तत्र यत्तना वदयमाणावयवा द्विविध प्रकृत्यवयवार्थं च द्विविधेऽर्थेन पट्ठकत्तना कर्तव्याः

पृष्ठवैति, अहं सुद्धं तौ करोति सम्भ्राय, नवधारहृष्टुताहणा निषमा हओ, (तवो)पढमाए पोरिसीए न करोति सम्भ्रायमिति  
गाथार्थः ॥ १३९९ ॥

पट्टविषयमि सिखोगे छीए पढिलेह निधि अन्नस्य । सोणिय मुत्तपुरीसे घाणालोअ परिहरिजा ॥ १४०० ॥

व्याख्या—अत्र पट्टवर्णाए विधि अन्नस्यणा समसा, तदा उचरिमेगे सिखोगे कहियवो, तंमि समसे पट्टवर्णं सम  
पह, वितियपावो गयस्यो 'सोणिय'चि अस्य व्याख्या—

भालोअंमि खिलमिणी गंचे अन्नस्य गंतु पकरंसि । घायाहयकालमी दहना मरुआ नवरि नसि ॥ १४०१ ॥

व्याख्या—अस्य सम्भ्रायं करोतिह सोणियवधिना वीसति तस्य न करोति सम्भ्रायं, कदा खिलमिति या अंतरे  
दातुं करोति, अस्य पुण सम्भ्रायं वेव करेन्नाण मुत्तपुरीसकलेवरावीयाण गये अणंसि वा असुभगंघे आगच्छंते तस्य  
सम्भ्रायं न करोति, अणंपि अयणसेहणादिकावोय परिहरेज्जा, एवं सर्वं निवायाए काळे मणियं ॥ घायाहमकालोऽपि  
एवं वेव, नवरं गंदनामरुगविहंवा न सम्भवंति ॥ १४०२ ॥

१ प्रत्यापवति, यदि शुद्धं तर्हि कुर्वन्ति आभ्यासं नवधारहृष्टे सुतादिना निवसात् इत्येताः प्रथमायां पीठ्यां न कुर्वन्ति आभ्यासं । यदि प्रत्यापदे  
श्रीव्याप्यवदादि समस्तानि तदोपर्येका क्लेशाः कल्पितवन्तः । तस्मिन् समसे प्रत्यापदं समाप्यते द्वितीयपादो यतार्थः । अत्र आभ्यासं कुर्वन्ति । प्रोक्षितवर्षिका  
दस्यने तत्र न कुर्वन्ति आभ्यासं कदाचिद्विधिमिति वाच्यता । वृत्त्या कुर्वन्ति पाद पुनः आभ्यासमेव कुर्वन्तं मूढपुटीयादिकलेवरादिकानां मन्त्रोऽप्यो  
वा गन्धोऽप्युभय आगच्छति तत्र आभ्यासं न कुर्वन्ति, अन्नस्यपि अयणसेहवायात्येकं परिहरेत्, तद्वत् सर्वं विध्यांवाते काळे मणियं व्यापयकावोऽप्यव  
मेव नवरं गन्धनामरुगच्छन्ती न संभवता ।



धामस्य च, तं अर्पयेन्नसि दीक्षरेण वषट्कारः, मईतं वरसुंमरोवर्षयेण वषट्कारः, पाभाद्रपकाष्ठमाहवविही गन्ता, इवाणि  
पाभाद्रपपङ्कणविही, 'गोसे वर' पञ्चमई, 'गोसि'चि, वदितमासिचि, विसाखोयं करोषा पङ्कवेति, 'वरपङ्कविप'चि अत्र  
पङ्कविप अत्र छीटादिणा भग्न पङ्कण अण्णो विसाखोयं करोषा वरमेव पङ्कवेति, एवं वदितपचाय । विसावजोयकरणे  
इमं कारणं—

आइस चिसिय मदिपा पेइत्ता तिसि ठाणाह । मववारइय कासे इवत्ति पङ्कमाह न पङ्कसि ॥ ११९९ ॥

इपासमा—'आइण्णा चिसिय'चि आइण्णं—योगल तं कागमादीहिं आणियं होम्मा, मदिपा वा पङ्कमवारत्ता, एवमाह  
एगठाणे ववो पारा चवइय इरपसयपाहिं अण्णं ठाणं मंहुं पेइत्ति—पङ्कवेइत्ति, पङ्कवितिसि जुचं भवति, वरपणि पुजुव  
विहिणा तिसि पारा पङ्कवेति, एवं चितियठाणेपि असुवे ववोपि इरपसयं अत्र ठाणं मंहुं तिसि पारा पुजुवत्तिहाणेप

१ वावरएवक, वरपेववि विसरेणोवदिसि मइह वरपुमरोवरेणोवदिसि मागसिक्क(कमाहवविचियंता इवाणी मागसिक्कमववविचि—  
वदित आदिस दिगवकोक इत्ता मव्वाएवमि अर्धमवसाधिते वदि, सुत्तादिना मत्र मव्वाएव वरपे विसावकोकं इत्ता ववैव मव्वाएवदि एवं वदीवरातावा-  
मदि विसावकोककाय इव इवः कायं । आदीयं पुङ्क वर कपादिभिरापीतं भवेत् मदिवा वा पणिगारावत्ता एवमादिभिरैकव्वावे वरपे वीह वरमाह  
इत्तावत्ताव वदितावमिह स्वाने गन्ता वदितेववमिह मव्वाएवपठित इजुचं भवति ववावि एवमेवमिचिवा मिसो वरता मव्वाएवमिह एवं विसरेवकमे-  
ववपुह मवामिह इत्तावत्तावत्तावमिह स्वाने गन्ता वीह पाराह एवमेवमिचिवावेव

धृक्कमि वा गिण्हंतीति ॥ २२५ ॥ 'परवपणे स्तरमाह' अस्य व्याख्या 'चोदह स्तरौ पञ्चदश' चोदक आह—अदि रुदतिमणिद्वे कास  
 वद्वो ततो स्वरेण रहिते धारह धरिते तवहंमत, अणोसुवि अणिद्वद्विद्यविषयसु एव धेव कालवद्वो भयतु<sup>१</sup>, आचार्य आह—  
 चोअग माणुसऽण्डिद्वे कालवद्वो सेसगाण उ पहरौ । पावासुआह पुठ्व पञ्चवणमणिच्छ उगपादे ॥ २२६ (आ०) ॥  
 व्याख्या—माणुससरे अणिद्वे कालवद्वो 'सेसग'सि तिरिया सेसिं धार अणिद्वो पहारसद्वो सुवह सो कालवपणे, 'पावा  
 सिव'सि मूलगाथायां योऽवयवः अस्य व्याख्या—'पावासुयाच' पञ्चदश, जह पामाहयकासगाहणवेलाए पावासिदभज्जा  
 पइणो गुणे समरंती दिवे दिवे दोएती, कवणवेलाए पुवयरो काओ वेचवो, अहया सावि पसुसे दोवेज्जा साहे दिया गतु  
 पणविज्जह, पणवणमनिच्छाप सगगाहणकाउत्सगगे कीरह ॥ २२६ ॥ 'एवमादीणि'सि अस्सावयपस्य व्याख्या—  
 वीसरसहकअते अहयत्तागहिंमगमि मा गिण्हे । गोसे दत्तपट्टविए छीय छीय तिगी परे ॥ २२७ (आ०) ॥  
 व्याख्या—अज्जायासेण कयंठ वीरस भयह, तं ववहणए, अं पुणमहुरसह पोकमाणं व त न ववहणवि, जायमअपिंरं

<sup>१</sup> एकस्मिन् वा पृक्कमि । चोदयसि जारः पञ्चदशं यदि शेषमणिद्वे काकवपणे रसिते तदाः चोदय हारए वरएणुपरत्तलं (काल)अणोसुवि अदि रुदतिमणिद्वे कास  
 वपणेवमेव काकवपणे भयतु । मणुससरेअणिद्वे काकवपः दोवा—सिद्वद्वेचोचं यदि अमिहः माराधयहः ववते छहिं काकवपः यदि मायाविककाकमदवकाया।  
 मोविठपसिकव वी पणुण्णार व्यावपी विवसे २ तोदिमि दोवपदेकायाः पूर्वमेव काओ मदीवज्जा, भव व काअसि मणुवसि रयाए वदा। दिवसे ताया  
 मज्जाप्यते, मज्जापयामनिच्छपणं वद्वोउत्सगगे रीरहते । अस्सायासेव दोदव तए धिरसं भयवते, वणुपद्विद्वि, वद पुववोक्कमाव मणुपद्विद्व व ववोवद्विद्व  
 पावहववहराक

धाम्नाय, सं अयेनवि दीयेण ववहणाह, मईतं वरसुभरोवनेन ववहणाह, पाभाहपकाकम्माहवविही गत्ता, इयानि  
पाभाहपपद्वणविही, 'मोसे एर' पपककं, 'मोसि'सि, वविचमाविचे, विचाखोयं करोता पक्कवेति, 'एरपद्विवि'सि कत्त  
पद्विव ए अह वीयादिणा भगग पद्ववण अण्णो विचाखोयं करोता सत्येव पद्ववेति, एवं वविचवाराय । विचावकोपकत्ते  
इम कतरण—

आहस विस्सिप महिया पेहिसा तिथि तिथि ठाणाह । मववाराहए क्काके इवन्नि पक्कमाह न पक्कन्ति ॥ १३२९ ॥

इयात्त्या—'आहण्णा विस्सिप'सि आहण्णं—योगलं सं कगमादीहि अभियं होया, महिया वा पविचमारत्ता, एवमाह  
एगठाणे सवो पारा वयहए इयसयवाहि अण्णं ठाणं गंतुं पेहिसि—पहिसेहेति, पक्कवितिचि जुवं भवति, सत्यपि पुहुच-  
पिदिणा विसि पारा पद्ववेति, एव विविपठाणेवि असुद्धे वकोवि इयसयं अल ठाणं गंतुं विविच वत्ता पुहुचविहाणेण

१ धावरारक, वरवेवमसि विस्सोयोहडि मद्दाह वरसुभरोवनेनोपहसि मयाविककाकम्माहवविचिगंता इयानि मयाविककाकम्माहवविचि-  
वविचे अहिस विगावकोक कुत्ता मयाववमि अहिसयाधिते वदि वुत्तादिवा मयं मयावयं अन्तो विगावकोकं कुत्ता वहेव मयाववमि एवं पृथिवमत्ता-  
मसि विगावकोकम्माह इह पुनः कत्ता । आदीर्घं पुद्गलं वय क्कादिधियापीठं अयेव महिया वा पविचुमाएया ववमादिमरेकम्माने वयवते वीह वाराह  
इयत्ताह अहिसयाधिर स्थाने गत्ता मविचोवपमि मयावपमिह इयुक् मवदि वयावि पूर्वोवमिदिवा मियो वत्ता मयाववमि एवं पृथिवमत्ता-  
वयवते वयामसि इयत्ताहववोवमिह स्थाने गत्ता वीह वाराह पूर्वोवमिदिवा

कारणतो ऽं सुज्झति वा पाओसिएण वा सुपट्टियणिण्ण पवति न गेण्हति, वेरसिए कारणओ न गिण्हति न सुज्झद्द वा, पाओसिए अद्दुरत्तेण वा पवति, विवि विवाणो गेण्हति, पाभाइयं कारणओ न गिण्हद्द न सुज्झद्द वा वेरसिएणेय दिव सओ पवति ॥ १६९७ ॥ इयाणि पाभाइयकालगहणविहिं पत्तेय भणामि—

पाभाइयकालमि व सव्विक्खे तिहि णीयरुत्ताणि । परवणो खरभार् पाभासुप पवमावीणि ॥ १६९८ ॥

क्यास्या त्वस्या भाव्यकारा स्वयमेव करिव्यति । तथ पाभाइयमि काले गहणयिही पववणयिही य, तथ गहणयिही इमा—

नवकालवेलसेसे सवगगहियअद्दपा पट्टिक्कमद्द । न पट्टिक्कमद्द वेगो नवधारइए पुवमसज्जाओ । ॥ (आ० ६६४) ॥

क्यास्या—दिवसओ सम्भायविरहियाण देसादिकहासंभववज्जणद्दा मेहावीतराण य पत्तिभगयज्जणद्दा, एयं सय सिमणुगगहद्दा नवकालगहणकाला पाभाइए अणुणयाया, अओ नवकालगहणवेलाहिं ससाहिं पाभाइयकालगगाही

१ कारणतो न सुज्झति वा पाओसिएण वा सुपट्टियणिण्ण पवति न गेण्हति, वेरसिए कारणओ न गिण्हति न सुज्झद्द वा, पाओसिए अद्दुरत्तेण वा पवति, विवि विवाणो गेण्हति, पाभाइयं कारणओ न गिण्हद्द न सुज्झद्द वा वेरसिएणेय दिव सओ पवति ॥ १६९७ ॥ इयाणि पाभाइयकालगहणविहिं पत्तेय भणामि—  
पाभाइयकालमि व सव्विक्खे तिहि णीयरुत्ताणि । परवणो खरभार् पाभासुप पवमावीणि ॥ १६९८ ॥  
क्यास्या त्वस्या भाव्यकारा स्वयमेव करिव्यति । तथ पाभाइयमि काले गहणयिही पववणयिही य, तथ गहणयिही इमा—  
नवकालवेलसेसे सवगगहियअद्दपा पट्टिक्कमद्द । न पट्टिक्कमद्द वेगो नवधारइए पुवमसज्जाओ । ॥ (आ० ६६४) ॥  
क्यास्या—दिवसओ सम्भायविरहियाण देसादिकहासंभववज्जणद्दा मेहावीतराण य पत्तिभगयज्जणद्दा, एयं सय सिमणुगगहद्दा नवकालगहणकाला पाभाइए अणुणयाया, अओ नवकालगहणवेलाहिं ससाहिं पाभाइयकालगगाही

काष्ठस्य पश्चिममति, सेषादि तं वेत्तं पश्चिममति वा न वा, एषो निषमा न पश्चिमम्, अत्र कीचरुदिवादीहिं न सुम्नम्  
 यो यो वेद वेदस्त्वित्यो सुपदिस्त्विति गोदितिति । सोवि पश्चिमतेषु गुरुणो कालं निवेदिषा वस्तुविष्यै सुदिय काष्ठस्य  
 पश्चिममति, अत्र वेत्तं नववारे पञ्चदशो काष्ठो यो नञ्च गुरुमसन्नाह्यमस्त्विति न करोति सन्नाय ॥ २२४ ॥  
 नववारगाहणादिही इमो—‘सचिकस्ते विष्णि छीवरुणाणि’ति अस्य व्याख्या—

इक्षिक्क तिक्षि वारे पीयाह्यपमि निण्हय काष्ठं ।  
 बोएह खरो वारस अणिट्टिसय भ काष्ठवहो ॥ २२५ ॥ ( भा० ) ॥

व्याख्या—एकस्य निण्हयो पीयरुपादिह्य सचिकस्त्विति माहणादिरमसीत्यर्थः, पुणो निण्हह्य एव विष्णि वारा,  
 सप्तो पर अण्णो अण्णानि धंदित्ते विष्णि वाराव, वरसयि चवह्य अण्णो अण्णानि धंदित्ते विष्णि वारा, तिव्हं वसहं  
 दोटिण अणा पाय वाराभो पूरेह, दोण्हवि अससीय एक्को वेव पायवाराभो पूरेह, धंदित्तेसुवि अववाभो, तिसु दोसु वा

१ काष्ठस्य पूर्वपश्चिममति एषासु वक्ता वेत्ताभो पूर्वपश्चिममति वा न वा एको द्विरात्र मतिश्चममति वक्षि सुवरोत्पादिसिर्न ह्यमति वरा न एव  
 वरावहः सुवर्जवामर्हव । अतिवर्धनः । सोमि पूर्वपश्चिममति गुरोः काष्ठ निवेद्यानुविदे सुर्वे काष्ठाव मतिश्चममति वक्षि गुरुमसन्ने नववारगुपहवा काष्ठ-  
 स्यैव वारते सुवर्जवामर्हमति इति न ह्यमति लाप्याय । नववारगुपहवमतिपर्य—नृकसिन् एवमि सुवर्जवामर्हमतिर्न मदीकते । इत्युक्तानि पूर्व  
 वीह वाराव वहः परमवोभ्वमिह्य स्थितिक वीह वाराव वक्तागुपहवमतिपर्य—नृकसिन् एवमि सुवर्जवामर्हमतिर्न मदीकते । इत्युक्तानि पूर्व  
 वरावहवामर्हव एव नव वाराव सुवर्जव, स्थितिकेवप्यववाव विषु इत्येवार्थः

कारणतो ऽं सुञ्जसि धा पाओसिएण धा सुपहियणिणण पढंति न गेण्हंति, वेरच्चियं कारणओ न णिण्हंति न सुञ्जस्र  
 धा, पाओसिय अहुरत्तेण धा पढंति, तिच्छि धा णो गेण्हंति, पाभाइयं कारणओ न णिण्हं न सुञ्जस्र धा वेरच्चिएणेव दिय  
 सओ पढंति ॥ १३९७ ॥ इयानिं पाभाइयकाळगहणधिट्ठिं पत्तेयं भणामि—

पाभाइयकाळंमिं व सच्चियस्से तिसिं छीपकळाणि । परवयणे स्सरमाई पाधासुय एवमादीणि ॥ १३९८ ॥

व्याख्या स्वस्या भाष्यकारः स्वयमेव करिष्यति । सत्य पाभाइयमिं काळे गहणधिट्ठी पढवणधिट्ठी य, सरय

गहणधिट्ठी इमा—

नवकालवेळसेसे उवगगहियधहया पडिक्कमइ । न पडिक्कमइ वेगो नवसारइय शुवमसज्जमाओ । ॥ (आ० २२४) ॥

व्याख्या—दिवसओ सज्जमायविरहियाण देसादिकहासंभयवज्जणाहा मेहायीतराण य पडिभंगयज्जणाहा, एयं सय  
 तिमणुगगहहा नवकालगहणकाळा पाभाइय अणुणयाया, अओ नवकाळगहणवेळाहिं सेसाहिं पाभाइयकाळगगाही

१ कारणतो न मुख्यति धा प्रादोधिकेव धा सुपहियणिणवेव पढसिं न पण्डितिं दैराधिकं कारणतो न पण्डितिं य मुख्यति धा प्रादोधिकसर्वपादिकान्यामव  
 पढसिं धीय धा न पण्डितिं प्रागगठिक कारणतो न पण्डितिं न सुपहिय धा दैराधिकेव नृत्तये पढसिं । इत्यादीं प्रागगठिकप्रकारधिट्ठिं दुपह  
 मज्झमि—एव प्रागगठिके काळे प्रागगठिधिया भक्तायवमिधिय—एव गहणधियारं नृत्तये क्तायावविरहियायां देसादिकपासंभयवर्धवार भयादिनामितरयं  
 न विप्रवर्धवार्यं, एवं सर्वेषामनुप्रवर्धवार्यं नवकाळगहणकाळाः प्रागगठिकेऽनुवर्धवाः अतो नवकाळगहणवेळामु शेणामु प्रागगठिकप्रकारपदी



भवति, एकमि अगहिण इत्यर्थः, त्रितिए दानिपदे कए पुगं भवति, द्रयोत्तमदणव इत्यर्थः, एवममापाविणो त्रितिए पा अगिणदंतस्स एक्को भवति, अहवा मापाविमुक्कस्स कारणे एकमपि कालमगृह्णतो न दोषः, प्रायश्चित्तं न भवतीति नाधार्यः ॥ १३९४ ॥ कइ पुण कालचवक<sup>१</sup>, उच्यते—

किट्ठियमि अहुरस्से काल धित्तु सुवंति जागरिया । ताहे शुरु गुणसी चवटिय सव्वे शुरु सुअर ॥ १३९५ ॥  
 क्यास्सा—पादोत्तियं काल धेतुं सवे सुचयोरित्थिं कवं पुजयोरिणीए सुचयाही सुवति, अरयाच्चितया चक्काटियपाट्टिणो य जागरति, जाय अहुरसो, ततो किट्ठिए अहुरस्से कालं धयुं जागरिया सुवति, ताहे शुरु चडेवा गुणोति, जाय चरिमो पसो, चरिमज्जामे सवे चट्टिया वेरस्सिय धेतु सज्जायं करेति, ताहे शुक सुवंति । पचे पाभाइयकाळे ओ पाभाइय काळ वेचिछाहिति सो कालस्स पट्टिकमिदं पाभाइयकाळं गेणइइ, सेसा कालवेळाए पाभाइयकाळस्स पट्टिकमति, ततो आवरसय करेति, एव चवरो काला भवंति ॥ १३९५ ॥ तिणिण कइ<sup>१</sup>, उच्यते, पाभाइए अगहिण सेसा तन्नि, अहवा—  
 गहिंयमि अहुरस्से वेरस्सिय अगहिण भवइ तन्नि । वेरस्सिय अहुरस्से अइ उवओणा भवे दुणिण ॥ १३९६ ॥

<sup>१</sup> भवति एकस्मिन्पुट्टीये । द्वितीयस्मिन् दानिपदे कते द्विक भवति एवममापाविणसीए वाउपुक्कए एक्को भवति अहवा कवे पुजा कलकजुक्कं<sup>१</sup> । मावोत्तिक काळं पुट्टीया सर्वे सुजयीवसीं कुत्ता एजावो पीरववां सूजयाट्टिनाः कवन्ति अयस्मिन्कम इरकाट्टिकयत्तकम जागन्ति पावपदंतावः इदा स्मिन्नेउदंतावे काळं पुट्टीया जागरिताः कवन्ति तदा शुरु अथाव गुणयति पावयामाः प्रायः चरमे पाये सर्वे अजाय वेरस्सिक पुट्टीया क्कापयाइ कुदीयि तदा शुरुवा सयन्ति माहे मापाट्टिककाळे या मापाट्टिक काळ मदीयन्ति स काळ मट्टिकमय मापाट्टिककाळं पुट्टीयि दया। कलकेळावां प्राया टिककाकल मट्टिकमयन्ति, तत भावइयक कुदीयि, पुदं जावताः कलक मयन्ति यदा कयं<sup>१</sup> उच्यते मापाट्टिकेउपुट्टीये दोषाकरः, अहवा—



निर्देह, उत्पत्ति वज्रदिशो निरुण्णो वा, मर्तं पश्चिमरगोवि अतो तिथ्यो न्देव पश्चिमरह, एस पाभाहए गण्डमुवागाहइ  
अववावविही, सेसा कासा ठाणासति न पेचवा, आहण्णो वा आणियवं ॥ १३९२ ॥ अस्स काळस्स कं दिसमभि-  
मुहेहिं ठापवमिति भाव्यते—

पाओसि अहरत्ते उत्तरविसि पुच्च वेहए काळ । वेरस्सियंसि अयणा पुच्चविसा पच्छिमे काळे ॥ १३९३ ॥  
इयाहया—पाओसिए अहरसिए नियमा उत्तराभिमुहो ठाह, वेरसिए अयणंसि इच्छा उत्तराभिमुहो पुवाभिमुहो वा,  
पाभाहए नियमा पुवामुहो ॥ १३९३ ॥ इयाणि काळगहणपरिमाणं मण्णाह—

कालचउकं उक्कोसएण जहस निय सु योच्चव । यीपपएण सु दुग मायामयविप्पमुक्खाण ॥ १३९४ ॥

इयाहया—उत्तरगो उक्कोसेण चचारि काळा पेप्पति, उत्तरगो न्देव अहण्णेण विगं भवति, 'विसियपए'सि व्यववाधो,  
सण काळदुग भवति, अमायाविन। कारणे अगृह्यमाणस्तेत्यर्था, अहवा उक्कोसेयं चउकं भवति, अहण्णेण दाणियवे विग

१ गृह्णाति वामापूर्ध्वसिरो निचम्वो वा । अहं मर्तव्याकोभसि अस्माकित्थं पूव मथिचरसि पूव मायासिक्के वण्णोपमादार्थेणवावविधिः शेषः । अस्मा  
ह्वावन्नादि न मदीतिभवाः, आवाकवाता वा वातस्य । कसिहए काळे कां दिसमभिमुहोः काळव्यसिति । माणोसिक्के लब्धेणादिक्के निचमागुणोपमुचक्रिहसि  
वर्णादि भवतेति इच्छा वज्राभिमुखः पूर्वाभिमुखो वा, मायासिक्के नियमात् पूर्वोपमुहः । इयाणी काळमाहणपरिमाणं मण्णवे—उत्तरं वज्रमुह  
काळा गृह्णन्त वासगो पूव अयन्वव दिक् भवति । विहियवदमिति अयवापुः । वेग काळदिक् भवति । अयवेतिउत्तरव्यमुहं मवति । अहण्णेण दाणियवे दिक्

व्याख्या—अस्य ठिओ धासाकाळे तिथिपि विसा पेक्खइ तस्य ठिओ पाभाइय कालं गेण्हइ, सेसेसु तिसुपि काससु धासासु (चहुमद्धे सवेसु) जस्य ठिओ चवरोपि दिसाभागे पेक्खइ तस्य ठिओऽपि गेण्हइ ॥ १३९० ॥ ‘चहुमद्धे वारणा तिथि’ अस्य व्याख्या—

तिसु तिथि वारणाओ चहुंसि पाभातिप अविहेऽपि । धासासु [प] वारणाओ चवरो एते निविहोऽपि ॥ १३९१ ॥ व्याख्या—तिसु कालेसु पाओसिप अहुरसिप चेरसिप, जति तिथि वाराओ अहण्णेण पच्छति तो गिण्हति, चहुमद्धे वेव अन्मादिसपद्धे जइवि एकेपि वार न पिच्छंति तद्वापि पाभाइय कालं गेण्हति, धासाकाळे पुण चवरोपि कासा अन्माइसंपद्धे वारासु अदीसंतासुपि गेण्हति ॥ १३९२ ॥ ‘एते निविहो’ति अस्य व्याख्या—

ठाणासइ चिंदूसु अ गिण्ह चिहोपि पठिउमं काल । पट्टियरइ पहि एको एको [प] अंतहिओ गिण्हं ॥ १३९२ ॥ व्याख्या—जदिपि वसहिसस भाहिं कालजगाहिसस ठाओ नत्थि साहे असो एण्णे च्छट्ठिओ गेण्हति, अह च्छट्ठिपत्तसपि अंतो ठाओ नत्थि साहे छण्णे वेव निविहो गिण्हइ, भाहिहिओपि एको पट्टियरइ, धासचिंदूसु पट्टीसु नियमा अंतोठिओ

१ अत्र लिखितो वर्णांतरकाळे तिथोऽपि विद्याः प्रेरते तत्र लिख्यः प्राभातिक काल एकाहं सेवेन विप्रसि कसकु वर्णसु अत्र सिद्धमदुरो दितीरभा याद् प्रेरते तत्र सिक्तोऽपि गृह्यति । आदुवद्धे वारकाहिकाः । प्रिय कालेसु प्रागेपिके अन्मादिके वेतादिके यदि दिवसकारका जपन्त्येव प्रथेव वरा गृहीयात् आदुवद्धे पुन अन्माद्याप्यपिरे वर्णपि एकमापि कारिका न पदव्यति वर्णपि प्राभातिक कालं गृह्यति अथाकाळे पुनप्रावरातोऽपि काका अन्माद्याप्यपिरे कातास इत्यन्माद्यासपि गृह्यति । उक्ते निमित्त इति । अथपि वसतोर्वादि काकाप्रादिकः स्वार्थं नाति वराऽप्यन्तरे अदीसितो गृह्यति अयोर्वास्तिवसाप्यप्यः स्वार्थं नाति वरा एते पुन निमित्तो गृह्यति यदि लिख्योऽप्येकः प्रसिज्याति वर्णादिभ्युप एतासु विनमाइत्याः स्थितो

वाचोऽस्मिन् दृग्भ्यं एकं मोक्षं वेत्ता एते शुण्यं पश्यन्ति, चेष्टेष्ट विष्ट भद्ररत्न वेदसिन्धु पात्राण्येव सर्वं वा विष्णुं वा

[illegible]

ਸੇਸੇਸੁ ਸੀਸੁ ਥਰਗੋ ਯਤਿਸਿਧਿ ॥੬੦॥

॥ १३९० ॥

धृष्टुर्दीक्षयाप्राप्तोऽयमुक्तः सर्वे कथाः। धर्ममार्गितत्त्वा-महीमाणा। कथकथिते कथकृताः सर्वकथिते कथयते-अथो धीमते यत्प्रजापतिर्येनोक्तुर्दमयते।  
 अतएवः प्रजापतिर्वचः तद्वत्। मातृका। प्रजापतिर्योक्तुः। प्रजापतिः सर्वे। सर्वेषु विद्यो दिवः।

दृढं चरो पुष्कलं अण्णो या, सेवि सच्च(ष)करोति, जति सवेहि वि भणिय—न किंचि सुयं दिढं वा, तो सुद्धे करोति सम्भाय । अह  
 एणेण वि किंचि विष्णुमादि फुढं दिढं गजियादि वा सुयं तो असुद्धे न करोति वि गायार्यः ॥ १३८५ ॥ अह सकिदं—  
 इक्कस्स दोणह व सकिपमि कीरह न कीरती तिणह । सगणमि सकिप परगणं सु गसु न पुच्छंति ॥ १३८६ ॥

व्याख्या—अदि एणेण सदिक्क—दिढं सुयं वा, तो कीरह सम्भायो, दोणह वि सदिक्क कीरति, तिणहं विष्णुमादि एण  
 संदेहे ण कीरह सम्भायो, तिणहं अण्णण्णसंदेहे कीरह, सगणमि संकिप परवयणाओऽसम्भायो न कीरह । एवविभाण  
 तेसिं चोव असम्भाइयसभवो ॥ १३८६ ॥ 'अ एरयं णाणस्स समहं वोच्छ समासेण'ति—अस्यार्यः

कासच्चउक्के णाणत्तनं तु पाओसियमि सन्धेवि । समय पटवपत्तो सेसेसु सम व विसम वा ॥ १३८७ ॥

व्याख्या—एयं सब पाओसियकाठे भणियं, इयार्णि चउसु काठेसु किंचि सामण्यं किंचि विससिय भणामि

१ एणवचरो पुष्कलं अण्णो वा सेवि सच्च(ष)करोति न किंचिद एहं सुठ वा चरा सुदे कुर्वन्ति सान्भाय अयहेमादि किंचिदीपुरादि  
 सुद्धं एह यत्किंचि वा सुठं तदाभ्युदे न कुर्वन्ति । अथ आह्वितं—अथोक्तेन संक्षिप्य—एहं सुठं वा अहं किंचते सान्भायः इत्येतादि संदेहे किंचत, अत्रानां  
 विपुपादिहे एक (समान) संदेहे न किंचते सान्भायः, यत्रानामन्यत्रसंदेहे किंचते सगणे आह्विते वरवचनाय अल्लारवायो न किंचते येषादिभ्यामेव वेद्यम  
 वासाभ्यामिह संभवः । यद्वच नापात्त एवहं वदये समस्येनेति । एतए सर्व यार्थेविककाठे मन्थित इत्यादी अपूर्वादि काठेसु किंचिद सामान्यं किंचिद  
 विसेचितं भणामि—

नेत्रकान्द वस्त्राग्नं करोति, वस्त्रादिपञ्चविधं धर्ममंगलं करोति, तादृशं वस्त्रं वाचं निवेदयति—सुखो पात्रोस्त्रिषो कान्दोचि, तादृशं वस्त्रं मोक्षं सेवा सर्वे पुण्यं पञ्चवेति, किं कारणम्?, उच्यते, पुण्यं धर्मं मरणादिद्वन्द्वोचि ॥ १३८३ ॥

सन्निहिषावा वदारी पट्टविषय पमादि यो वपुः काष्ठं । आदि त्रिष पट्टिपरप चिसर्गं तापञ्चि वदधरो ॥ १३८४ ॥

व्याख्या—वदो वदगो विभागो एण्डं, आदिओ भागादिओ सारिओ वा एण्डं, वदण आदिओ वदारी, वदो सो वदारी सन्निहिषाव मरुगाण छवम् न परोक्कस्स तद्वा देसकहादिपमादित्स पक्खा काष्ठं न वेति, 'दारो'ति अत्र व्याख्या 'मादि त्रिष' पक्कञ्च कंठं ॥ १३८४ ॥ सवेहिपि पक्कञ्चं अस्य व्याख्या—

पट्टविषय यदिप वा तादृशं पुण्ड्रंति किं सुप ? भाने । । मेवि प करोति सव्वं जं जेष सुप न विडं वा ॥ १३८५ ॥

व्याख्या—ददधरेण पट्टविषय यदिप, एष सवेहि वि पट्टविषय यदिप पुक्खा भवम्—मज्झो ! केण किं विडं सुपं वा ?

१ भावकान्तमुत्तमं दुर्बलं आसक्तिरूपं पञ्चमङ्गलं कथयन्ति ततो वदन् वदता निवेदयन्—प्रायेषिका कान्दः सुख इति तथा पक्कञ्चं सुखमाप्ताः सर्वे पुण्यं स्वात्माव दस्यावधि १६ कारणं ? उच्यते पूर्वमुक्तं वसाप् मरुक्कस्स इति । वसो पक्कञ्चो विनासः एवमर्थः । आदिक् अनामिका सार्गक इति एकार्थः । आदिनामिको वायाः एषा स वायाः । सन्निहिषावमङ्गलमप्येव न परोक्षेण तथा देवादिभिः कथ्यमानाश्चतः पञ्चान् कर्म न ददति । इति विनासः अत्राप्या—आप्राप्तिरतः वदानी कथयन् । सर्वेति एवमर्थः । ददधरेण मरुगाणि वेदितुं एव सर्वेति मरुगाणि वेदितुं पुक्खा भवति—आदि । केनविषयं किञ्चिद् एव सुप वा ?

भास्यं न करोः । काळभूमीव गुरुसमीप पृष्ठपियस(पृष्ठियस) अह भवरेण साणमज्जारारिं छिद्यति, सेसपदा पुप्रमणिपा,  
एपसु सवेसु काळमयो भवति ॥ १ ॥

गोणार काळभूमीह बुद्ध ससप्यगा व वट्टिजा ।

कविहसिख विजुयमी गजिय सक्काह काळवट्टो ॥ २ ॥ ( प्र० सिद्ध० ) ॥

व्याख्या—पृष्ठमपाए आपुच्छिषा गुरु काळभूमिं गओ, अह काळभूमिए गोणं निखनं संसप्यगादि वा वट्टि(हि)यादि  
पेच्छेअ सो नियसए, अह काळ पण्डिउहवत्स गिण्हवत्स वा निवेयणाए वा गच्छवत्स कविहसिपादि, वेदिं काळवट्टो  
भवति, कविहसिपं नाम आगासे विकुवं मुवं धानरसरिस हासं करोज्जा । सेसा पपा गतार्था इति गायार्थः ॥ २ ॥  
काळभाही निवाधावेण गुरुसमीपमागतो—

इरियावट्टिया इत्थंत्तरेडवि मंगल निवेयणा वारे । सव्येहि वि पृष्ठपिय पच्छा करण अकरण वा ॥ ११८६ ॥

व्याख्या—अदिवि गुरुत्स इत्थंत्तरेमेसे काळो गट्टियो सहावि काळपवेयणाए इरियावट्टिया पट्टिकनियमा, पजुस्सास

१—भास्यं न करोति काळमप्यगम्यते। प्रस्थितस गुरुसमीप वसन्त्या भगवतादि विन्यति, सेसपि वदादि पूर्व मस्थितानि वरेषु सर्वेषु काळवट्टो  
भवति । प्रथमतया आपुच्छय गुरुं काळभूमिं गताः अदि काळभूमी गी निखनं संसर्पकादि वा वट्टियव(ट्टा)दि वदन्ते वदिं निवर्त्तव, वदिं काळं प्रस्थितवट्टो  
पृच्छताः निवेदये वा पच्छताः कविहसिपादि वैः काळवट्टो भवति, कविहसिपं नामाकारो वातावरणं विकृतं मुवं हासं कुर्यात् द्वेषानि वदादि पाठार्थीनि ।  
व्याख्याही गुरुसमीपे विद्यमानोवागतः । अदिवि गुरोर्दक्षान्तरागते काळो गट्टितव्यसि काळवट्टेरेते ईर्ष्यायिनी प्रक्षिप्यन्त्या, एवमप्युक्तं—

नेमक्याहं वरत्तमं करोति, वरसारिपुत्रश्चि पंचमंगल्यं करोति, एते वंदनं यावं निवेद्यति—सुखो पाप्मोस्मिन्नो कालोऽपि, एते  
 वंदनं मोक्षं चेत्ता एते युगात् पश्येति, किं कारणम् !, वक्ष्यते, पुत्रं जं मरुगविह्वलौति ॥ १३८६ ॥

सन्निहिपाण वदारी पद्विप पमादि णो वृष्ट कालं । नाहि ठिप पद्विपरप विसर्गं नापञ्चि वरुधरो ॥ १३८७ ॥

व्याख्या—वदो वंदनो विभागो एगं, भारिओ आगारिओ सारिओ वा एगं, वदोण भारिओ वदारी, वदो सो  
 वदारी सन्निहिपाण मरुगण सभम् न परोक्कसस्स सदा वेसकहादिपमादिसस्स पञ्चा कालं न वेति, 'दारे'ति अस  
 व्याख्या 'पाहि ठिप' पच्छन्दं कठं ॥ १३८४ ॥ सवेद्विप पच्छन्दं अस्य व्याख्या—

पद्विप वदिप वा नाहं पुच्छति किं सुय ! भाने । नेवि य करोति सव्वं जं जेण सुयं न विह वा ॥ १३८५ ॥

व्याख्या—ददभरणेण पद्विप पदिप, एय सवेदि वि पद्विप वदिप पुच्छा भवद्—भवो । केण किं विहं सुयं वा !

१ मादकममुपमं कुर्वन्ति जामात्रेभ्यो वदमदक कपयन्ति, एते वदने वसा निवेद्यन्त—मावेद्विप कालः क्व दृशि तथा वदकं मुक्ता  
 रायाः सर्वे सुपद्वि लोप्याव मरुगवद्विप, किं कालं ! वदव दृष्टुं वसाप मरुगवद्विप दृशि । एते वद्विपे निमलाः मुक्ताः, भारिक जामात्रेभ्यः  
 सारिक दृशि वृत्ताः । वदवार्मिको जामात्र, यथा स जामात्रः सन्निहिपमं वदवते न जामात्रेण तथा वसादिभिरुपमावदवतः पद्विप कालं न वेति । इत  
 दिप्यस व्याख्या—वद्विपः पद्विप, कालं । एवेति वदव । वदवते मरुगविह्वलौति वद्विपे वृष्ट सर्वेति मरुगविह्वलौति वद्विपे वद्विप यवति—वद । केनविप  
 दिवद एव मुक्ता वा !

विदुः छीए [य] परिणय सगणे वा सकिए भये निणह । भासत मूढ सकिए इदियसिए म अमणुणे ॥ १३८० ॥  
 क्यास्या—गेण्हंतस्स अंगे अइ उदगविंदू पदेअ, अहया अंगे पासओ वा ठधिरविंदू, अप्पणा परण वा अदि छीय,  
 अन्नमयणं वा करेतस्स अइ अन्नओ भावो परिणओ, अनुपयुक्त इत्यर्थः, 'सगणे'चि सगच्छे सिण्हं साह्मण गज्जिए संभा,  
 एष विज्जुच्छीयाइसुवि, ॥ १३८० ॥ 'भासत' पच्छन्नस्स पूर्यन्मकास्य वा विभासा—

मूढो च विसिज्जमयणे भासतो याधि निणहति न सुज्जे । अन्न च विसिज्जमयणे सकनोऽनिद्वयिसए वा ॥ १३८१ ॥  
 क्यास्या—विसामोहो से आओ अइवा मूढो दिस पडुअ अन्नमयणं वा, कहं, उच्यते, पदमे चत्तराहुत्तण ठायम  
 से पुण पुबहुत्तो ठायति, अन्नमयणेसुवि पढम चतुधीसरथओ सो पुण मूढत्तणओ दुमपुत्तिकय सामण्यपुपय कहति ।  
 पुढमेव वंजणाभिकावेण भासंतो वा कहति, पुढहुत्तंतो वा निणह, एवं न सुज्जति, 'सकतो'चि पुप चत्तराहुत्तण ठातिपय,  
 ततो पुबहुत्तेण ठातदं, सो पुण चत्तराउ अवराहुत्तो ठायति, अन्नमयणेसु वि चतुधीसरथयाव अन्नं वेय इड्डियायारगादि

१ पुक्कलोद्धे वपुदकविन्नु पतेए अन्नवाद्धे पाहंभोईं कथिदिन्नु । अन्नमवा पतेय वा कथि शुन अन्नमव वा कयनो पयन्नवतो भावः ।  
 परिचयः क्वापच्छे पदात्तां साधूनां गच्छिते वाहा पूर्व विपुलुगादिप्यपि भावमात्र-समावर्तक विभागा । विमोहसत्त मूढो निचं  
 पटीकामयपदं वा कय, उच्यते मयमणुवोन्मुलेव स्वातथ्यं स पुनः पूर्वोन्मुटादिगति अन्नमयेवपि मयम चतुर्विंशतिवत्तः स पुनर्मुदत्तात् शुभमु  
 स्थिकं काममयपदकं वा कयवति । सुदमेव पदजगामिकापेव भावमात्रो वा कयवति पूर्यन्मकास्यो वा पुक्काठि एवं च शुभति चत्तमान इति पूर्व  
 सुचरोन्मुलेव स्वातथ्यं ततो पूर्वोन्मुलेव स्वातथ्यं स पुनरुत्तरात्ता अपरोन्मुटादिगति, अन्नमयेवपि चतुर्विंशतिवत्तमप्यद्वयं मुत्तमचारादि—



अथवा सर्वे संकमर अथवा संकर किं अमुनिष विद्याए विद्यो न पति, अथवा योनिवि किं कद्रुपं पतिवि । 'ईदिय विद्याए व अममुनिषो वि अणिदो पयो, अथा सोदविपण रुदय भंवरण वा अद्वद्वासं कर्म, क्यो विभीसिगादि विकृतकर्म दद, नंधे कसेवरादिगन्धो रसकांथव रम्योडमिजवासादि, अथवा इहेसु राग गच्छ, अणिहेसु ईदियविषयसु दोसन्ति गाथार्थः ॥ १३८१ ॥ एवमादिवयथापयजिभ्यं कालं वेपुं काकनिययणाए गुरुसमीय गच्छंतस्स इमं अपणइ—  
जो गच्छतमि विहीं आगच्छंतमि होइ सो वेव । जं एस्य पाणत्स समइ वोच्छ समासेण ॥ १३८२ ॥  
व्याख्या—एसा अइयाहुकया गाहा—जीसे अतिदेसे कयपि सिद्धसेणत्समासमणो पुनरुपनिमं अतिदेसं पक्खाणइ—

निसीहिआ आसज्ज अकरणे खलिय पटिय थायाए ।  
अपमज्जिप भीए पा पीए पिये व कालवहो ॥ १ ॥ ( प्र० सिद्ध० ) ॥

व्याख्या—अदि निंतो आयसिसय न करोइ, पयिसंठा निसीहियं करोइ अथवा करणमिति ( आसज्जं अकरये इति )

१ आदरवं संकाभ्यां अथवा आदरे विष्णुकलां विधिं स्थितो भवेति अथवा वेमंति किं कृतं भवेति इति प्रथमविषयज्ञानमथोक्त इत्यन्विताः प्रायः जना ज्योतिष्यकस्य वर्तुषं भवन्त्येव काऽऽहृत्यं कृतं क्व विधीयते इति विदुः क्व एव गन्धे कसेवरादिगन्धः । अथवेहेसु रागं पक्कसिं वल्लिहेविमज्जिपययेपु देवद्विधं । एवमायुरवयवार्थं कालं पुरीषा काकनियेवनाय गुरुसमीयं मय्यत इइ भवन्ते । एसा अद्वद्वाह्वता पाथा वृत्तता अतिवेसे कृतंमि सिद्धसेण-  
कमानमवः एवार्थं दर्शय अतिरेप व्याख्यायति । यदि विमच्छन्त आदिवर्धी न कुर्वन्ति प्रथिज्जमो वेवेविधी (व) कुर्वन्ति अथवा सम्यक्कमकरो

विंद् एपीय [य] परिणय सगणे वा सकिप भवे तिण्ह । भासत मूढ सकिप इंदियधिसण प अमणुणे ॥१३८०॥  
 व्याख्या—गेण्हंतस्स अगे अह उदगधिंदू पढेज्जा, अहवा वगे पासओ वा रुधिरधिंदू, अप्पणा परण वा अदि एोप,  
 अण्णयणं वा करेत्तस्स अह अमओ भावो परिणओ, अनुपयूक इत्यर्थः, 'सगणे'सि सगच्छ तिण्ह साहणं गज्जिए सभा,  
 एवं विज्जुच्छीयाइसुवि, ॥ १३८० ॥ 'भासंत' पच्छक्कस्स पूर्वन्त्यस्तस्य वा विभासा—

मूढो व विसिज्जसयणे भासतो याधि तिण्हति न सुज्जे । अन्नं च विसिज्जसयणे सकमोडनिद्वयिसए वा ॥ १३८१ ॥

व्याख्या—विसामोहो से जाओ अहवा मूढो दिस पडुअ अण्णयणं वा, कह !, उच्यते, पढमे उचराहुत्तण ठायध  
 सो पुण पुचहुत्तो ठायति, अण्णयणेसुवि पढम चपुधीसरयओ सो पुण मूढत्तणओ हुन्नपुत्तिकं सामण्यपुवप इहुति ।  
 पुढमेव वंजणाभिजावेण भासंतो वा कहति, मुहुहुत्तेतो वा तिण्हइ, एवं न सुज्जसि, 'संकतो'सि पुव उचराहुत्तण ठातिपयं,  
 सतो पुचहुत्तेण ठातधं, सो पुण उचराड अवराहुत्तो ठायति, अण्णयणेसु वि चतपीसरयपाव अन्नं चैव सुद्धियापारणादि

१ गृहलोच्चे दगुदकभिक्षुः पदेष्ट जलवाग्ने पात्रयोर्वा दधितभिक्षुः क्षरमन्वा पदेष्ट वा यदि भुव आभयवं वा करतो वपभयवो भगवः  
 परिक्रतः क्षणाच्छे क्षणान्तां सापूर्णां गच्छति साह्य एवं क्षिपुमुत्तादिष्वपि भावमात्र-यथाार्थस्य श्रियाया । शिष्योदकज्ज जालोडवता मूढो रिता  
 मदीक्षाभयवत् वा कथ ! उच्यते, प्रथममुचरोन्मुच्चेन क्षातव्यं स पुन एवोन्मुक्कनिगदति आप्यवसेवपि प्रथम चगुदीपतिष्ठतः स पुनपूर्वभावात् मुमदु  
 स्थितं भागवत्पूर्वकं वा कथयति । सुउदमेव व्यज्यायिमिकायेन भावमात्रो वा कथयति मूढश्चात्रमात्रो वा गृह्णाति एवं न गृह्णाति नृजमान इति एवं  
 मुचरोन्मुच्चेन क्षातव्यं उच्यते । पूर्वोन्मुदेव क्षातव्यं स पुनउचराह्वा अपरोन्मुक्कनिगदति, अप्यवसेवपि चगुदीपतिष्ठतवाप्यद्वय भुव भवतादि-

निरसीद्विजा ननुकारे कावस्तुताने च पञ्चमंगलम् । क्रिदकर्मं च करिन्ता भीमो काचं तु पवित्रम् ॥ १३७८ ॥  
 व्याख्या—पवित्रतो विविध निरसीद्विजाभ्यो करोह नमोक्तमासमपार्णं च ननुकारं करोह, हरिपावहिनाय पञ्चवस्तुसाधका-  
 निव वस्तुगं करोह, वस्तुारिण नमोभरद्वलाय पञ्चमंगलं चैव करोह, ताहे 'क्रितिकर्म'ति नारसाधनं नृपेयं देह, अण्ड-  
 य-संदिग्ध पादसिधं काष्ठ गेष्वाभ्यो, शुक्रवयणं गेष्वाहृति, एवं आव काठगाही संविसावेद्या भोगम्भर तत्र विविधो  
 ददधरो सो काच पवित्रम्, गार्थः ॥ १३७८ ॥ पुणो शुभेय विहिता निगमो काठगाही—  
 भोवावसेधियाय संक्षाय ताति उत्तराहृत्तो । चरवीसगुह्यमुष्णिगपुष्पगमेवेति अ विसाय ॥ १३७९ ॥  
 व्याख्या—'उत्तराहृत्तो' उत्तरामुलः दंध्यारीयि यामपासे ऋजुतिरियदंध्यारी पुषाभिमुहो ताति, काठगाह्यानिमित्तं  
 च भृशसाधकातिधं काठस्तुगं करोह, अणो पञ्चुस्तुसिधं करोह, वस्तुारिते चरवीसत्पदं पुनमुष्णिगं सामन्त्यपुत्रं च,  
 एवं विविध अस्तुतिषु अणुपेदद्या पच्छा पुषाय एते चैव अणुपेद्वि, एवं वृक्षिण्याय अवराय इति गार्थः ॥ १३७९ ॥  
 गेष्वाहृत्तस इमे ववपाया साणिदद्या—

१ अर्थम्, विहो नृपेवहीः कोठि अमात्रमपान्न भवस्तुति १ वीरविषया अयोपुसकाधिकमुष्णं करोति अवादेते यमोर्ध्वत्रया ( अविद्या )  
 एवमात्रकमेव कवचिह, ताता कुतिलकमेति द्वावतावत् वद्वय द्वाति, अयति च—संदिग्धय मादोसिधं काष्ठं पुष्पानि पुष्पवत् पुरावेति एवं वाच्य अमात्रादी  
 म्परित्यागार्थं तावद्द्वयोर्वा द्वावयः स काच मन्त्रवर्ति शुभः पूर्वोक्त विविधा निर्याः काठगाही । एतद्व्यादीय वामपार्श्वे ऋजुतिरपुष्पवद्यादि पूर्वोक्ति-  
 मुलः विहो अमात्रार्थवर्त्मनमोपुषाधकाधिक करोत्यपं करोति अयो ( अयतिव )—ययोपुसिधं करोति अयतिरे अयुर्विद्विधत्तं इवयुक्तिवर्मा  
 अमात्रवत्तं च, पुनानि वीरवृक्षिकाम्यमुषय एव माय एवमात्रेताभ्योपुषेयपेते एवं वृक्षिण्याय अवराय । पुष्पय इमे ववपाया सावन्त्या—

कालवेत्तं सुजंति, अहवा तिसु चक्षुषिषासु संज्ञाप निष्कृति 'परिभंति' अथवा अथापसंज्ञापयि गेहति सदापि न दोषोति गाथार्थः ॥ १३७६ ॥ सो कालगाही वेत्त सुजेया कालभूमीभो सविद्यावणनिमित्त गुरुपापमूर्तं गच्छति । तथेमा विही—

आह्वस्तुल्यमणिपं अणुपुच्छा सखिपयवियवाथाभो । आसंतं मूढसंक्रिय इदियविसप हु अमणुप्यो ॥ १३७७ ॥  
 व्याख्या—अह्वा निगच्छमाणो आतचो निगतो सहा पविर्तवोपि आवचो पयिसति, पुष्पनिगभो यय अह अणा पुच्छाप कालं गेहति, पविसंतोपि जह सजह पहर अमहा परपयि कासुव चपाभो, अहवा धावति हेतुहगातादिणा । 'आसंतं मूढसंक्रिय इदियविसप अमणुप्यो' इत्यादि पच्छद्व संन्यासिकमुपरि वक्ष्यमाणं । अहवा इत्यपि इमो अतथो भाणियवो—वंदण देवो अहं आसंतो देह वंदणानुगं सवभोगेण च न ददाति किरिषासु वा मूढो आवचादीसु वा सका कपा न कयति वंदणं देवस्त इदियविसभो वा अमणुप्यमागभो ॥ १३७७ ॥

१ अहवेकं दोषस्तः अथदोषादिषु विद्युः स्यात्वायो पुच्छति जायामिति अवासावसक्तसंज्ञापयति पुच्छति तर्थात् न दोष इति । स काल गाही वेकं दोषदिता काळभूमिर्दोषावधिमितं गुरुपापमूर्ते मण्यति तद्वार्त्तं विधिः यथा शिर्षपञ्चानुच्छेदो निर्गतकथा मन्त्रिषादि आनुच्छेद मन्त्रिषादि पूर्वनिर्गत एव यथापुच्छ कालं पुच्छति मन्त्रिषादिव पदि स्वकरीय एतसि यथापुच्छादि काल इत्येवञ्चात्, अथवा यत्त इति हेतुहगादीना मातमात्रेणादि, अथवाऽऽन व्यक्तयो मन्त्रिषात्—अन्त्यं ददद् अन्त्य मातमात्रो ददाति अन्त्यदिच्छुपयोपेव च ददाति किरासु वा मूढ आवचादिषु वा यद्वा कृता न कृता वेति अन्त्यं ददतोऽमभो वेतिवदिचत् आगताः

निसीहिणा ननुकारे कावस्तनो य पञ्चमगच्छप । किञ्चकर्म च करिन्ता भीमो काळ सु परिपतर ॥ १३७८ ॥  
 नवास्मा—पंचिषतो तिष्ठि निसीहिषाभो करोइ नमोस्मासमणार्थं च ननुकारं करोइ, इतिपाषहिणाप पञ्चस्तसासको  
 लियं परत्तलं करोइ, वस्तारिए नमोभरदंठालं पञ्चमगळं चैव कइइ, ताहे 'किञ्चकर्म'ति नारसावचं ब्रह्मं वेइ, अणइ  
 व—संदिसइ पावसियं कांठ गेणहामो, गुरुवपण गेणइइसि, एवं आव कासगगाही संदिसावेचा मागकइ ताव विविचो  
 दइपरो सो काळ परिपतर, गायार्थः ॥ १३७८ ॥ पुणो पुण्णेण विहिणा निगमो काजगगाही—  
 भोवावसेसिपाप संसारा ठाति उत्तराहुत्तो । वदवीसगुममुत्किपपुब्बगमेवेसि अ विसाप ॥ १३७९ ॥  
 न्यास्या—'उत्तराहुत्तो' उत्तरामुत्तः द्यपारीवि धामपासे क्कुत्तिरिपद्वद्वारी पुणाभिनुहो ठाति, काजगहपनिमिचं  
 च भहुत्सासकाविपं कावस्तलं करोइ, अण्णो पंचुत्सासियं करोइ, वस्तारिते वदवीसरपचं पुममुत्किचं सासपपुदं च,  
 एते तिष्ठि अक्खल्लिए अणुपेइसा एउठा पुणप एते चैव अणुपेइसि, एवं दक्खिणाए अवराप इति गायार्थः ॥ १३७९ ॥  
 गणइत्तस्स इमे उवपाया आणियवा—

१ अर्थवत् तिष्ठो ईश्वरहीः करोति अथाजमर्णाज अपारकरोति ईश्वरिण्या एवोपुमपकाकिमुत्तमो करोति अस्माते नमोभरदंठला ( अक्खिणा )  
 वसपहउदेव कवचहि, अता इतिउमोहि इ। एसावचं वदइव इति, अण्णो च—संदिसाव मागोसिकं कांठं एउठसि गुरुवचं पावसेसि एवं नाव कजगगाही  
 मीएरापपुमंठ कावइरोहो एउठएः। अ काळ मळिआहि पुणः पूर्वोक्तेर विहिणा निगमः काजगगाही । एउठवापेवि नामपान्णं क्कुत्तिरिपद्वद्वद्वारी एवमि-  
 मुवः । इति अजगदुत्तमिजममोपुमावकाजिक कायोसमं काति अम्ये ( अक्खिणा )—एवोपुमपकिचं करोति अस्माते अणुपेइसियं इमपुत्तिवो  
 अमपपुदं च, एवमि मीवसकाजिकाम्यपुवइव एसाप एउठसामेठान्नेवाणुपेइते एवं दक्खिणसामपावो । पुण्ण इमे उवपाया आठवणा--



आपोसिप बह्वि सुधीसि सेसेसु निषदप दहो । अह तं बह्वि न सुप पढिज्ज गंढभी नाहे ॥ १३७४ ॥  
 व्याख्या—अहा लोप गामादिद्वन्द्वेण आपोसिप बह्वि सुप येवेहि असुप गामादिविदं अकरेतस्त दंढो भवति,  
 बह्वि असुप गंढस्त दंढो भवति, सहा इहेपि तपसंहारेयवं । सतो दंढपरे निमाप काकगह्वी उहेहति गाथार्यः ॥ १३७४ ॥  
 सो य इमेरिसो—

पिपयम्मो दहयम्मो सविमगो येव सज्जमीरु य । खेअण्णो य अमीरु काळ पढिठेहप साहु ॥ १३७५ ॥

व्याख्या—पिपयम्मो दहयम्मो य, एरय यवभंगो, सविमगो पढमभंगो, निष संसारमज्झिमो सविमगो, दज्ज—यावं  
 सरस भीक—अहा त न भवति सहा अपह, एरय काळविहीज्जाणगो खेएण्णो, सज्जवंतो अमीरु । एरिसो साहु काळपहि

उहेओ, सविज्जागरकख भाहकअति गाथार्यः ॥ १३७५ ॥ ते य स वेडं पढियरंता इमेरिसं काळं हुवेति  
 काखो ससा य तहा दोषि समप्यमि जह सम येव । मइ मं हुवेति काळं जरिम य दिस अस्सवस्साप ॥ १३७६ ॥

व्याख्या—संसाप परेतीए काळगह्वणमाहत्त त काळगह्वणं सम्साप य अं सेसं एते दोषि समं जहा समप्यमि सहा तं

१ यथा स्माह प्राप्तादिपदेनाशयिते बहुविधः भूते कोर्कभूते प्राप्तादिविधविपमुत्तरो दृष्टो भवति बहुभिमुखे पादकल्प दृष्टो भवति तदे

हापुसंसारविषयं ततो दृष्टवत् निर्गन्धं काकममुचिहति । य च ईदृक्—विषयस्य दृष्टव्यं च अत्र अन्तरतो भङ्गाः तत्रार्थं जप्यो भवः । विषयं संसार  
 भयोद्दिप्तः संश्रितः यत्र—यावं ससाह भीक—यथा तत्र भवति तथा जतते अत्र काकविधिविपमुत्तरो दृष्टः । सावसावदीक ईदृक्—साहु काकमति चरकः दी च  
 तौ वेडं मतिचरयो ईदृक् काळ लोकायतः । सव्यापी विषयमात्रादी काकमह्वणमाह तए काकमह्वं सम्प्राप्यत्यत्र यए रोच दृते द्वे जसि समं यथा समामुक्तत्वात् तौ

धा इदियविसओ 'दिस'सि दिसामोहो दिसाओ धा सारगाओ धा न दीसति धास धा पसर, असम्भारयं धा आर्यं तो

कास्यधोचि गाथार्यः ॥ १३७१ ॥ किं च—

जइ पुण गच्छसाण णीय जोइ सतो नियसंति । निष्वापाए दोणिण उ अच्छंति दिसा निरिपसत्ता ॥ १३७२ ॥  
 व्याख्या—तोंसि चोव गुरुसमीधा काळभूमी गच्छसाण भंतरे जइ णीय जोवि धा फुसर तो नियसति । एवमारका  
 रणोहिं अवाहया ते दोवि निवापाएण काळभूमी गया, सहासगादिविहीए पमज्जिवा निससा चच्छदिया धा एकाओ दो  
 दिसाओ निरिक्खंतो अक्खइसि गाथार्यः ॥ १३७२ ॥ किं च—सस्य काळभूमिए ठिया—

सज्जसायमर्चितता कणा वद्धुण पद्धिनियसति । पस्ते य दहधारी मा घोस गहए उवमा ॥ १३७३ ॥  
 व्याख्या—सस्य सज्जसाय (अ) करंता अक्खन्ति, काळवेलं च पद्धियरेइ, जइ गिरहे ठिणिण सिसिर पव पासासु सस कणा।  
 रंति (पद्धति) पेरुछेज्ज जहा विनियसति, अइ निवापाएण पसा काळ गाहणयेका साहे ओ दंढधारी सो भता पयसिवा

भणाइ—सुहुपट्टिपुण्णा काळवेलं मा घोस करेइ, एस्य गहगोवमा पुवभणिया कज्जइसि गाथार्यः ॥ १३७३ ॥

१ दोहियविसवो विगिति विमोहो विओ धा सारका धा न दावन्ते वयां धा पसति असाध्यासिकं धा जातं तदि कावचः । तकारं गुरुसमीपाए  
 काळभूमिं गच्छकोरन्तया पदि सुतं ज्योतिर्भं स्पृष्टाति तथा विवर्तते एवमादिकार्यैरप्याहवोटी वावपि विप्यावातेव काळभूमिं पत्यो संदधन्नादिभिर्धना मयूरा  
 विपन्नी अर्धस्त्रियो धा एकेओ द्वे विरो विरीकमान्नाकिट्ठति सत्र काळभूमी सिवती । तत्र स्वाभाव जुईव्यां विहता कावचकां च प्रतिचत्ता तदि प्रीत्य  
 बीरं विविधे पल वयांसु सस कणकारं पश्येतां पततक्का विविवर्तते अत्र विवराधातेव सासा काळमहजयेका तथा चो दहधया सोय्यः मयिरव भयमि-  
 वदुपसिप्यं कावचकेका मा घोस फुसर अत्र गच्छकोपमा पूर्वमभिता विवते ।



आपोसिप ब्रह्मि सुयमि सेसेसु निब्रह्म एवो । अहं तं ब्रह्मि न सुयं पविब्रह्म गंभ्यो नाहं ॥ १३७४ ॥  
 व्याख्या—अथा सोप गामाविर्द्वयेण आपोसिप ब्रह्मि सुप येवेहि असुप गामाविर्द्वि अकरोत्स दंभो भवति,  
 ब्रह्मि असुप गंभ्यस दंभो भवति, तथा इहपि उभयसंहरत्येव । एवो दंभचरे निगाए काळगाही उद्देसि गामार्थः ॥ १३७४ ॥  
 सो य इमेरिखो—

विपचन्मो द्रव्यन्मो सविनगो चेष ब्रह्मन्मो य । छेभण्यो य अमीरु काळ पविछेहए साह ॥ १३७५ ॥  
 व्याख्या—विपचन्मो द्रव्यन्मो य, एतय चवर्त्तगो, सविनो पचमर्त्तगो, निबं संसारमवविनो संविनो, द्रव्यन्मादं  
 उत्स भीरु-अहं स न भवति तथा अपह, एतय काळविहीजाणो छेवण्यो, छवर्त्तरो अमीरु । एरिखो साह काळपाहि  
 छेहन्मो, मविजागरकस्य प्राहकस्येति गामार्थः ॥ १३७५ ॥ ते य स वेक पविचरंता इमेरिसं काळं तुजेति  
 काखो सभा य तहा दोवि समच्यति एह सम चेष । तह स तुजेति काळ एरिस च विस असकम्माएन् ॥ १३७६ ॥

व्याख्या—संसाए भंटीए काळगाहणमाहत्वं तं काळगाहण सन्साए य अं सेसं एते दोवि समं अहं समच्यति तथा सं  
 १ यथा अत्र क मायाहरेण कथावर्तिने वर्तुल्य भुते कोर्धभुते मायाविभक्तिमयभुतेः एतदे भवति वर्तुल्यभुते मन्त्रकस्य एवमेव भवति तदे  
 हापुत्रमहाविब्रह्म, एवमेव एवमपर भिमेवे काळमायुविब्रह्मि । स च ईदृश-विचरमां एवमर्त्तं च अत्र कथातो महता ब्रह्मन् मयमो महता निबं संसार  
 मयाहमा संविनः, अत्र-याव तस्याह भीरु-यथा एव भवति तथा वयते अत्र काळविहीजाणका छेवण्यः भवन्त्यावसीक ईदृशः हापुत्र काळमविचरका ही च  
 एते वही मविचरन्तः ईदृश काळ लोकावतः सम्याया विद्यमानायां काळमव्यवसायं एव काळमाहत्वं भवन्त्यामाह एव सेसं एते हे अति समं यथा समपुत्रकया एते

१ यथा अत्र क मायाहरेण कथावर्तिने वर्तुल्य भुते कोर्धभुते मायाविभक्तिमयभुतेः एतदे भवति वर्तुल्यभुते मन्त्रकस्य एवमेव भवति तदे

हापुत्रमहाविब्रह्म, एवमेव एवमपर भिमेवे काळमायुविब्रह्मि । स च ईदृश-विचरमां एवमर्त्तं च अत्र कथातो महता ब्रह्मन् मयमो महता निबं संसार  
 मयाहमा संविनः, अत्र-याव तस्याह भीरु-यथा एव भवति तथा वयते अत्र काळविहीजाणका छेवण्यः भवन्त्यावसीक ईदृशः हापुत्र काळमविचरका ही च  
 एते वही मविचरन्तः ईदृश काळ लोकावतः सम्याया विद्यमानायां काळमव्यवसायं एव काळमाहत्वं भवन्त्यामाह एव सेसं एते हे अति समं यथा समपुत्रकया एते

आयासग तु काष्ठं जिणोवद्द शुस्सपसेणं । तिणिण-सुई पडिलेहा कालस्स इमा धिही सरथ ॥ १३६८ ॥

व्याख्या—जिणेहिं गणहराण चयद्दं सतो परंपरएण आव अमहं गुरुपएसेण आगतं तं काठ आवस्सयं भवणे विणिण सुतीओ करिंति, अहवा एणा एणसिओणिपा, विविधा विसिओइया वतिया [व] वियसिओणिपा, वेसिं समसीए काठप डिलेहणविही कायदा ॥ १३६८ ॥ अण्ठत्ताव विही इमो, कालमेओ ताव शुद्ध

दुधिहो च होइ कालो जायाइम एतरो य नायन्तो । वाचातो वंचसाळाएँ घट्टण सहकइण वा ॥ १३६९ ॥

व्याख्या—सुद्धं कंठं, पण्डितस्स व्याख्या—आ अविरिण वसही कपडिगसेविया य सा पंचसाळा, ताए अतिंताण दाहणएवणाइ वाचापदोसो, सहकइणेण य वेलाइअमणदोसोति । एवमादि ॥ १३६९ ॥

वाचाए तइओ सिं दिज्जइ तस्सेव ते निवेएति । इयरे पुकठति दुधे जोग कालस्स वेकठामो ॥ १३७० ॥

व्याख्या—तमि वाचातिमे दोणि जे काठपडियरगा ते निगच्छति, वेसिं वतिओ वयम्मायादि दिज्जइ ते काठ-

१ विवेर्यज्वरेण्य वयद्दिहं ठठः परम्परकेन वाचद्वयार्थं शुक्लपदयोग आगत एव कृत्वाऽऽम्भयत् अथे विद्या सुदीर्घा कृत्वा अथवा एका द्रव्योक्तिर्या द्वितीया द्विसोक्तिका सुदीर्घा द्विसोक्तिका, तासां समसी काठपडिलेहाविधा कर्तव्या । सिद्ध ताए विविरं काठमेवजापुप्यवे । एतेषं काठं एवावर्त्तन् व्याख्या—यावतिरीक्य वसतिः कर्णविक्रमद्विधा च ता इहं वाका ठठरी यच्छती अथएववादिध्यायल्लपोर सादृश्यमेव च देवतितन्मन्त्रेण ईति, एवमादि । एतिहं व्याख्ययति तादी ही विवेर्यज्वर, एतेरपुदीव व्याख्यावतिरीक्यते ही काठ-



आवासग तु कासं जिणोवहह गुरुवपसेण । तिणिण-गुरे पव्हिलेहा कालस्स इमा विही सपय ॥ १३६८ ॥

व्याख्या—जिणेहि गणहराण ववहहं ततो परंपरएण आव अमहं गुरुवपसेण आगय तं काव भावस्सयं अप्पो सिणिण पुतीओ करिति, अहया एगा एगसिलोगिया, विठिया विंसिलोइया सतिया [य] तियसिलोगिया, वेसिं समणीए कावव विठेइणविही कायवा ॥ १३६८ ॥ अञ्जल ताव विही इमो, कालमेओ ताव शुभर

दुविहो व होइ कालो वायाइम पतरो य नायवो । वायामो धंवसाछापे पट्टण सहुकइण वा ॥ १३६९ ॥

व्याख्या—गुववहं कंठं, पञ्जदस्स व्याख्या—आ अतिरिजा वसही कप्पदिगसेविया य सा धंवसाछा, ताए अतिंताण पट्टणपट्टणाइ वायाववोसो, सहुकइणेण य वेछाइकमणवोसोचि । एवमादि ॥ १३६९ ॥

वायाए तइवो सिं दिज्जइ तस्सेव ने निवेयति । इयरे शुञ्जति बुवे जोग कालस्स वेज्जामो ॥ १३७० ॥

व्याख्या—संनि वायासिमे दोणिण जे कालपट्टियरगा ते निगच्छति, वेसिं ततिओ वयमसायादि दिज्जइ ते काल-

१. विवैरंमपयेअ वपमिहं तसः परम्परकेव वावइसाकं गुक्कमेरोइ आगत तए इरावाअवपकं जये विहा सुलीः दुईसिं वयवा एका वुडओकिक्क विवीया विओकिक्क पुतीया विओकिक्का, ताओ वमणी कावपठिठिक्कवासिचि कवंक । सिङ्ग ताए अतिपरं वयमोइकावुप्पवे । एवीं कज्जं वज्जोक्क व्यावरा—पामिठिक्का वज्जठि कपमिठिक्काक्किक्का व वा वइसाका तसो वपपठं वरनपठवादिप्पायमवरोका भावकपदेव व वेक्कठिअमवरोव इति, एवमादि । एकिप्प व्यावरावठि ईर वं कज्जपठिक्कावो वी विरंअप्पार तवोसुणीव वपाववाविदीववे वी काल-

भगवतिषी आगुच्छन्ना वीदितापण काळपवेवणं च सर्वं तत्सर्वं करोति, एत्थ गंढगादिहंती न भवद्, इधरे उववत्ता चिह्मंति,  
 सुखे काले तत्सर्वं उववत्तावत्स पवेपंति । ताहे वंढपरो नाहि काळपविचरणो चिह्म, इधरे दुपगादि भंतो पविंसंति,  
 ताहे उववत्तावत्स समीचे सर्वे सुगमं पढ्वंति, पच्छा एगो नीति वंढपरो भवीति, तेथ पढ्विपि उववत्तावं करोति,  
 ॥ १३७० ॥ निवाधाए पच्छदं अत्तार्थः—

आगुच्छणा किइत्तमे आवासिए पविपरिए वापति । इविं विंसा य तारा वासमत्तकसाइयं वेव ॥ १३७१ ॥  
 व्याख्या—निवाधाते दोवि जणा गुठं आगुच्छंति कात्वं वेवत्तामो, गुच्छा अगुच्छावा 'किठिकम्मं'ति वंरणं कात्वं  
 दंढगा वेपुं वयवत्ता अवासिएत्तमात्तज्ज करोत्ता पत्तज्जत्ता ए निगच्छंति, भंतरे ए अइ पत्तज्जंति पढ्वंति वा वत्तादि  
 वा विलगाति किठिकम्ममादि किंचि वित्तवं करोति ततो काळवापाभो, इमा काळ भूमीपविपरणसिद्धी, इदिपहि उववत्ता  
 पविपरंति, 'विंसं'ति अत्थ भवरोपि विंसा वीसंति, तद्धंसि अइ विंविं ताता वीसंति, अइ पुण न उववत्ता अविद्धो

१ भाट्टिचो आगुच्छासंदिपावकाळपवेवत्तादि सर्वं सर्वं पूव कुच्छा, अज एववत्तावत्तमे न भवति इतरे अगुच्छादिहंति इहे काळे तवेवत्तावत्तावा  
 मवेवत्ता, तदा एववत्ताते वदि काळं मत्तवत्ता विहंति, इतरो इवति अत्ताः मत्तिवत्ता एवोपावत्तावत्ता वत्तवे सर्वे गुणत्त पत्तावत्तादि पत्तादेको विठ्ठंति  
 एववत्ता अत्तावत्तात्तं तवे मत्तादिवे वत्तावत्तात्तं कुर्वंति । विवत्तावत्ता ही वत्ती गुणमागुच्छेते कात्वं मत्तिवत्ता गुणमागुच्छात्तं कुर्वंति अत्तं अत्ता एववत्ता  
 एववत्तावत्ता अवासिएत्तीमा एवत्ता कुर्वंति । एववत्तावत्ता न विठ्ठंति । अत्ता न वदि मत्तवत्ता एववत्ता वा वत्तादि वा विठ्ठंति इठ्ठिकम्मंति वा  
 विठ्ठिकम्मंति इववत्ता काळ व्यावत्ता अत्तं काळ भूमीपविचरणसिद्धिः इदिपवेवत्तावत्ता मत्तिवत्ता विंसा इति अत्त अत्तावत्ता विंसा एवत्ता वदि  
 विठ्ठकात्ता एवत्ता वदि गुणवेवत्तावत्ता वदिवत्ता

भावासनं तु कावं क्षिणोषद्द गुरुवपुसेण । तिणिण-सुई पञ्चिजेद्वा कालस्स इमा धिदी सत्थ ॥ १३६८ ॥

व्याख्या—क्षिणेहिं गणहराण उपपद्दं ठणे परंपरण काव असद् गुरुवपुसेण आगतं तं कावं भावसयं अपणे सिणिण सुतीयो करिति, अद्वा पणा एणसिखोगिणा, चित्तिमा धिसिखोइया वतिथा [त] विपसिखोगिणा, सेसिं समचीए कालप चिजेहणविदी कायजा ॥ १३६८ ॥ अण्ठव ताव धिदी इमो, कालमेओ ताव गुरुव

दुविही व इोइ काखो जायाइम एतरो ए भायव्वो । जायातो यंपसाळाएँ घट्टण सहुकरण वा ॥ १३६९ ॥

व्याख्या—गुरुवद्दं कंठं, पण्ठव्वस्स व्याख्या—आ अतिरिचा वसही कप्पहिगसेविथा ए सा यंपसाळा, वाए अतिताण घट्टणपट्टणाइ जाभायव्वोसो, सहुकरणेण ए वेळाइकमणव्वोसोसि । एवमादि ॥ १३६९ ॥

जायाए तइयो सिं दिज्जइ तस्सेव ने निवेयंति । इयरे गुरुव्वति दुवे जोग कालस्स वेण्णामो ॥ १३७० ॥

व्याख्या—वमि जायातिने दोखिण जे कालपट्टियट्ठा वे निगज्जति, वेसिं वतिओ वपमसायादि दिज्जइ ते काल-

१ विदीर्यजवरेण्व वपदिह ठठः वरन्पकेण जावइयान्तं गुरुवपुसेण जागतं तत् कुंथमस्यवद्वद अन्वे विजाः सुली कुंथसिन्ध भवता एका एरुलोकिक्का सिदीवा हिक्कोकिक्का सुतीया विक्कोकिक्का, तासां समाम्नी कालपविजिज्जाविधिः कर्त्तव्यः । सिठ्ठु तावए विधिरत्वं कालमेइकाएदुप्यदे । इतीर्य कालं एजावत्तं जावता-यावतिरिक्का वससिः कर्णविक्रमोविधा व ता वड्डाका वतां यण्ठवां वावएवनादिप्यायस्यवोयः आइकवदीव व वेकाठिठमववोव इति, एवमादि । एतिवद् व्यासवत्तवतिं ईो वी वाक्याविचारो वी विरोधः एवोत्तरीव व्यावहार्यदीर्घवत् दी काठ-

भ्यादिभ्यां आशुच्छन्ना दीक्षितावपि कालपरोक्षार्थं च सर्वं तत्संबन्धं करोति, एतच्च भंडगाविहृतो न भवति, इधरे चवचत्ता विहृतं, कुतश्च काले तत्परोक्षं चवचत्तावत्स परोक्षंति । एतदेव दंडधरो नाहि कालपदिचरगो विहृत, इधरे पुनगावि भवतो वविचति, एतदेव चवचत्तावत्स समीपे संधे शुण्णं पट्टोति, पच्छा एतौ मीति दंडधरो भवति, संधे पट्टविषं समीपं करोति, ॥ १३७० ॥ तिष्ठापाए पच्छदं अस्मार्थाः—

आशुच्छन्ना किं कम्मं आवाप्तियं पट्टिपरियं वापति । इति पं दिसा ए तारा वासमसकत्तादयं केव ॥ १३७१ ॥  
 व्याख्या—तिष्ठापाते पौर्णिमा वणा गुठं आशुच्छंति कालं वेच्छामो, गुच्छा अशुच्छापा 'किं कम्मं'ति पदार्थं कर्म दंडगं वेष्टु चवचत्ता आवाप्तियमासज्जं करोत्ता पमज्जन्ता य निगाच्छंति, भवते ए अत्र पच्छसंति पट्टति ना अत्तादि वा विलगति किं कम्ममादि किंचि वित्तं करोति एतौ कालवाभावो, इमा काल भूमीपट्टिपरगतिही, इति पट्टि चवचत्ता पट्टिपरंति, 'दिसं'ति अयं चवरोपि दिसा वीचति, चट्टमि अत्र तिष्ठि सारा वीचति, चट्ट पुण न चवचत्ता अतिहो

१. प्राप्तिभ्यो आशुच्छासीदिसवकाळपरोक्षार्थं सर्वं तत्संबन्धं पूर्य कुच्छा अत्र गणवत्पट्टाव्यो न भवति इतरे अशुच्छादिभिश्च कुतश्च काले सर्वेषां अत्तावत्स परोक्षंति । एतदेव दंडधरो नाहि कालपदिचरगो विहृत, इधरे पुनगावि भवतो वविचति, एतदेव चवचत्तावत्स समीपे संधे शुण्णं पट्टोति, पच्छा एतौ मीति दंडधरो भवति, संधे पट्टविषं समीपं करोति, ॥ १३७० ॥ तिष्ठापाए पच्छदं अस्मार्थाः—  
 आशुच्छन्ना किं कम्मं आवाप्तियं पट्टिपरियं वापति । इति पं दिसा ए तारा वासमसकत्तादयं केव ॥ १३७१ ॥  
 व्याख्या—तिष्ठापाते पौर्णिमा वणा गुठं आशुच्छंति कालं वेच्छामो, गुच्छा अशुच्छापा 'किं कम्मं'ति पदार्थं कर्म दंडगं वेष्टु चवचत्ता आवाप्तियमासज्जं करोत्ता पमज्जन्ता य निगाच्छंति, भवते ए अत्र पच्छसंति पट्टति ना अत्तादि वा विलगति किं कम्ममादि किंचि वित्तं करोति एतौ कालवाभावो, इमा काल भूमीपट्टिपरगतिही, इति पट्टि चवचत्ता पट्टिपरंति, 'दिसं'ति अयं चवरोपि दिसा वीचति, चट्टमि अत्र तिष्ठि सारा वीचति, चट्ट पुण न चवचत्ता अतिहो

एमेव य पासवणे पारस चववीसतिं तु पेहेसा । कालस्स प तिसि भवे अह सरो अत्थमुपयार्ह ॥ १३६४ ॥  
 व्याख्या—पासवणे एणेष कमेणं पारस एयं चववीस अतुरियमसमत्तं चववणे पडिडेहचा पच्छा तिसि काठ  
 गहणपडिडे पडिडेहेति । अहणणेण हरयंतरिय, 'अह'चि अनतरं धंखिलपडिडेहाजोगाणसरमेय सरो आधमति, सरो  
 आवस्सगं कत्तेह ॥ १३६४ ॥ तस्सिमो धिही—

अह पुण निववायाओ आवास सो करति सव्वेज्जि । सहाहकहणवायापयाह पच्छा गुरु ठति ॥ १३६५ ॥  
 व्याख्या—अयेत्थानन्तये सूरयमणाणतरमेव आवस्सयं करेति, पुनधियेपणे, सुयिहमावस्सगकरण पिसेसेह—निवा  
 याय वावाहम च, अदि निवायायं ततो सबे गुरुसहिया आवस्सयं करेति, अह गुरु सहुसु यमं करेति ता आपस्सगस्स  
 साहहिं सह करणिजस्स वायाओ भवति, अमि वा काठे त करणिज्जं सं हासेतस्स यायाओ भवह, तओ गुरु निसिज्ज  
 हरो य पच्छा चरिवावियारजाणणाहा कात्तरसगं ठाहिंति ॥ १३६५ ॥

१ पासवणेओपेव कमेणं हावस एव अतुरियमसमत्तं संजमसुसुक्कः प्रतिक्रिय एसात् वीसि काठमाहवस्सगिहकादि प्रसिद्धपदार्थं चववणे  
 हकात्तरिते अयेकानन्तरं स्थितिक्रमसिद्धिपवावोगावन्तरमेव सूर्योदयमेति तव आवसयकं कुर्वन्ति । तस्याहं निक्का—सूर्योदयमवनावन्तरमेव वरुणं  
 द्विदिशमावसयककरत्वं सिद्धेपयति—विष्वापातं व्यापातवत् यदि सिद्धपातं ततो सर्वं गुरुसहियाः आवसयकं कुर्वन्ति अथ गुरु भवताम् यस कथमर्थ  
 तदाऽऽवसयकत्वं साधुमिः सह करणीयक व्यापातो भवति अथिय वा काठे तत् कर्तव्यं त हासवणे ववावातो भवते ततो गुरोर्निववावत्त एसात् पार्श्व  
 वादिवापवापायं कथमेतर्गं व्यासताः ।



सेसा च जहासस्मिन् भागुच्छिन्नाण ठमि सकाणे । सुत्तत्थकरणेह्व आपरिपे दिवमि देवसियं ॥ १३६६ ॥  
 व्याख्या—सेसा साद्र गुरु भागुच्छिन्ना गुरुणस्तु मगगो भासमे दूरे आधाराणिपाए जं अस्त ठाणं तं सठाणं,  
 सत्थ परिक्कमंसाणं इमा ठयणा । गुरु पच्छा ठायतो मग्गेण गंतुं सठाणे ठायह, जे वामग्गे ते कर्णंत्तर सग्गेण गंतुं सठाणे  
 ठायन्ति, जे दाहिणग्गे अणत्तरसग्गेण गंतुं ठायति, स च अणारायं ठायति सुत्तत्थसरणहेवं, सत्थ य पुब्बामेव उपयंता  
 करोमि भंत । सामादयमिति सुख करोति, पच्छा आह गुरु सामादय करोता वोसियमिति अणिआ ठिया वत्सत्तां, ताहे  
 देवसियादपारं विसति, अमे अयंति—आह गुरु सामादय करोति ताहे पुबडियावि तं सामादयं करोति, सेवं कंठं ॥ १३६६ ॥  
 जो हुज्ज उ असमत्थो पाळो सुहो गिलाण परित्तमो । सो विकहराद धिरहिज्जो कट्ठिअत्ता निज्जरायेही ॥ १३६७ ॥

व्याख्या—परित्तमो—पाहुणगादि सोपि समुत्थायज्ञाणपरो भवति, आह गुरु ठति ताहे तेवि वाळादिआ ठायंति  
 एएण पिट्ठिणा ॥ १३६७ ॥

१ दायाः साधवो गुरुमाराध्य गुरुत्वात्तदा वृद्ध आसवे दूरे अथापिक्कता वाक्का एव क्कत्ता एव अस्मात् तत्र प्रसिद्धमवगमिजं क्कत्ता—गुरुः  
 वमात् निद्रा मत्थम गाता सत्तामे निद्रासि वे वामात्तेज्जत्तां एवमेव पात्ता वत्तातो शिथलित वे धिक्कतोअन्तराणत्ताएवमेव मत्ता शिथलित तत्र वात्तायतं  
 निद्रासि सुत्तायत्तात्ताः तत्र च पूर्वमेव निद्रात्ताः क्कत्ता मत्ता । सामाधिकमिति सुख कर्तव्यति एत्ताया गुरुः सामाधिकं क्कत्ता पुत्तावत्तामीति  
 मत्तात्ता स्थिता तासो तदा देवसिक्कत्तात्ता विकत्तायति अत्र मत्तायि—यदा गुरुः सामाधिकं क्कत्ता पुत्तावत्तामीति  
 तां क्कत्ता । परिमात्ता—आपुत्तात्ताः सोमेव एतात्ताप्यत्तापत्तात्तात्तात्तात्ता गुरुः पुत्तावत्तायति तदा तेमेव वात्तायात्तात्तात्तात्तात्ता पुत्तावत्तायति ।

उत्कार्थेयं, चोदक आह—सांख्यसहितमीयेण मयसरीरस्स निज्जमाणस्स जइ पुप्फपरधादि पठइ असज्जाइयं,  
आचार्य आह—

निज्जस सुत्तुण परवयणे पुप्फमाइपडिसेहो । जग्हा वडप्पगार सारीरमओ न वज्जति ॥ १३६० ॥

व्याख्या—मयसरीर वमओ वसहीए हत्थसवभंवर जाव निज्जइ ताव तं असज्जाइय, सेसा परवयणभणिया पुप्फाई  
पडिसेहियवा—असज्जाइयं न भवति, जग्हा सारीरमसज्जाइयं वडविह—सोणियं मसं वमम अट्टिय व सभो सेसु सज्जाओ  
न वज्जणिज्जो इति गार्थार्थः ॥ १३६० ॥

एसो व असज्जाओ लडवज्जिवडसाव तत्थिमा मेरा । कालपडिलेहणाए गहनमकपुहिं दिट्ठतो ॥ १३६१ ॥

व्याख्या—एसो सज्जमवाठाइओ पवविहो असज्जाओ भणिओ, वेहिं वेय पवहिं वज्जिओ सज्जाओ भवति, 'तरथ'सि  
तंमि सज्जायकाले 'इमा' वडयमाणा 'मेर'सि सामाचारी—पडिक्कमिणु जाव पेळा न भवति ताव कालपडिलेहणाए कयाए

१ साजुवसतो। समीपे सुतकक्षरीरस्य वीथिमावज्ज वदि पुप्फवडादि एतेए अज्जाप्याधिकं सुतकक्षरीरं वसतेएवपयः इत्यस्योक्तान्तरात् वावधीवते ताव  
वडसज्जायाधिकं होयाः परववडमसिज्जाः पुप्पाइयाः प्रसिदेइवया—असाप्याधिकं न भवति यत्नाए सारीरमसाप्याधिकं चतुर्दिप—सोमिदं मासं वमं अत्थि  
व सवसेयु ज्जाप्यायो न वडनीयाः ॥ एतए संयमसपत्ताधिकं पवज्जिवमसाप्याधिकं भसिज्ज एतेव पयमिभर्दिक्का स्याप्याओ ववर्नि एतेन एकिइ स्याप्याव  
काले इए—वडयमाणा मेरेदि—समाचारी—प्रसिक्कम्य वाचोइजा न भवति तावए कालमसिदेहनायां कयायां

भद्रकण्ठो यस्य भद्रादिहंशो भवितस्तद्, एषि स सुखे काले पञ्चवर्णवेलाय मन्त्रगादिहंशो भवितस्तदिति गार्थार्थः ॥ १३६१ ॥  
 स्वाहृदिः—किमर्थं कासप्रवृत्तम्, अथोच्यते—

यन्महिद्वजसज्ज्वापस्तु ज्वालाकाय वेद्यु कालं । अस्मा अत्रभागावसेसिपाद् भूमिं तन्मो मेहे ॥ १३६२ ॥  
 ज्वाल्या—यन्महिषः संप्रमथादिहकोज्ज्वाल्यायः तत्परिज्ञानार्थं मेधते (कालं) कावर्त्तनं, निक्रयणीसर्पः । कावो

निक्रयणीयः, कावनिक्प्रणमन्तरेण स ज्ञायते यन्महिषसंप्रमथादिहं । अत्र भागेषु कर्त्तव्ये ता अत्रकुणा, सम्रा कावपदि  
 उद्गणाए इमा सामाजारी—द्विजसज्जरिमयोरितीय अत्रभागावसेसाए कावभाहणभूमिको लो पवित्रेहिवा, अत्रा  
 तन्मो ज्वालापासयणकावभूमियसि गार्थार्थः ॥ १३६२ ॥

अहिपासिपाद् भनो भासमे वेव मस्मि दूरे य । निधेव अणदियासी भनो छ छव नाहिरभो ॥ १३६३ ॥  
 व्याख्या—‘भनो’ति निधेयणस्त विधि-वज्जारअहिपासियर्थविके आसणो मन्त्रे दूरे य पवित्रेहेह, अणदियासिपा  
 धटिखवि भनो एव वेव सिणिपदिउहेति, एवं भनो भवित्ता छ, नाहिं पि निधेयणस्त एव वेव छ मन्त्रेति, एतत् अहिपा-  
 सिपा दूरपरं अणदियासिपा भासमपरं कायपा ॥ १३६३ ॥

१ मन्त्रकाव माते मन्त्रकावभनो मस्मियि पृथिवे शुभे च काले मन्त्रावसेसायां मन्त्रकावभनो मस्मियि ॥ यद्यप्येतत् सुप्रसिद्धं यद् अणु-  
 द्गुल ललाए कावमन्त्रिहंशगादिप सावागा-द्विजसज्जरमयीज्या अणुयोपावसेसायां कावभाहणभूमिकालः मन्त्रेहिवाभनः । यथा रिक्त-वज्जार  
 मन्त्रकावभूमयः । अन्वर्त्तन-मिधेयणस्त बीमि वज्जारभावासितकाविक्यानि भासमे मन्त्रे दूरे च मन्त्रेहिवासि अणदियासिपदिउहेति अणु-  
 रमन्त्र बीमि मन्त्रिहंशपन्थि, एवमन्त्रः अणदिकावि दूरे मन्त्रेहि मिधेयगादेवमेव एव मन्त्रेहि, अणदियासिपादि दूरपरे अणदियासिपादि कर्त्तव्यादि ।

ते तन्माहकावत्सर्गं कर्तुं सम्भार्य कर्तेति । सेसद्विष्यसु श्रीषमुक्कदिणाऽऽरन्म व ह्यसत्तन्मवरातिष्यसु पारसपरिसं  
मसम्भारादय, गाथापूर्वार्द्धे, पञ्चार्द्धस्य तु भाष्यकार एव व्याख्या कुर्वन्माह,—

सीयाणे ज दिट्ठं न न मुत्तूणऽनाहनिहयाणि । आहवरे य रुहे माहसु विट्ठद्विया धारे ॥ २२२ ॥ ( भा० ) ॥  
व्याख्या—‘सीयाणे’चि सुत्ताने आणिऽद्वियाणि दृष्टाणि उदगवाहेण पृष्टाणि न ताणि अद्वियाणि असम्भारादय कर्तेति,  
आणि पुन तस्य अणत्स्य वा अणहकहेयरानि परिद्वियाणि सणाद्याणि वा इयणादिभमाये ‘निहय’चि निक्खिस्सणाणि  
ते असम्भारादय कर्तेति । पाणत्ति मायगा, वेसिं आहवरो जक्खो छिरिमेक्कोऽवि भण्णाह, तस्स हेत्वा सज्जोमयदीणि ठपि  
ज्जाति, एवं रुहवरे मादिघरे य, ते काळओ वारस धरिसा, सेसओ हरथसय परिहरणिज्जा इति गाथार्थः ॥ २२२ ॥  
आधासिय च वूढ सेसे विट्ठमि मज्जण विवेगो । सारीरगान्न वाहग सादीह न नीणिय जाव ॥ २२३ ॥

एताप पुबज्जत्स इमा विभासा—

असिषोमाघयणेसु पारस अवित्तोहियमि न करति । इमानिय वूढे कीरह आधासिय सोहिप चेव ॥ २२५ ॥

१ स्वर्गोच्चादकापोत्सर्गं कृत्वा आप्यायं कुर्वन्ति । देयास्त्वियु वीरयोच्चमदिवाहाराभ्य तु हस्तावागमभरात्स्थितेयु इतरथ धर्माण्यस्त्राभ्यादिदं वीर्यात्  
मिति स्मर्याने पाप्यस्त्रीभि इत्यादि नृकन्यादेव श्रूयन्ति च पाप्यस्त्रीनि भस्त्राभ्यादिदं कुर्वन्ति इति पुनस्तत्राभ्याय वाग्यायकहेतरादि परित्यादिनाभि वचनादि  
वा इत्यभाष्यभावे निश्चिन्ताभि पाप्यस्त्राभ्यादिदं कुर्वन्ति । पाप्मा इति भावश्चाद्येयमाहवरो यभो वीर्यकोऽपि भवतते वस्त्राभ्याय सप्तो भूतात्सीभि  
क्याप्यन्ते, एवं एतदुदे मात्तुदुदे च तानि कालतो द्वाहता धर्माणि सेवतो हस्तायते वरीहरणीयानि । एतस्याः पूर्वार्धमेव विभाषा ।

अथ गाथाप्रथम व्याख्या—‘अं वीयाणं अरथ वा असिधोमे मत्ताणि च्छुणि छड्डियाणि,’ ‘आवाठणं’ति अरथ वा महा-  
संगामे मया बहू एएसु ठाणेसु भविषोहिएसु कालथो धारस धरित्ते, खेचथो हयसयं परिहरति, सम्भार्य न करंती  
सोदिया, सेसवि अं गिदीहिं न सोदिय, पच्छा तरथ साह्र तिया अप्पणो वसही समत्तेण मणिगत्ता अ विडं वं विगिंथिया  
अदिदे वा तिणि दिणा चरपाठणकात्तस्सराग करेया असहभावा सम्भाय करेति । ‘सारीरगाम’ पच्छच्चं, इमा विमासा  
सरीरेवि मयस्स सरीरय आय बहरगामे ण निक्किडियं ताव सम्भायं ण करेति, अह नगरे महंते वा गामे उत्तय वाह  
गसाहीव आय न निक्किडियं ताव सम्भाय परिहरति, मा खोगो निहुक्खवि भणेया ॥ तथा आह भाव्यकारः—  
**बहरगगाममए वा न करंति जाव ण नीणिप होह । पुरगामे व महंते वाहगसाही परिहरंती ॥ २२३ ॥** (आ०) ॥

१ अथ समयाय अथ वा-‘पिवावमोदं वममि बहूनि सत्तामि आयावममि अथ वा महावज्जाले वृत्तामि बहूनि धयेयु क्कामिप्पमिभोमिसेयु क्कालो  
द्वारस ववादि धेवथो वृत्ताव धमिहरमिभ-स्साप्पार्यं न दुर्धमदीत्यर्थः । अथैतानि आवादि बह्वज्जालिवा इत्यमि वक्कममो वा वेवाप्पना बभूव । माय  
वगएव वा-‘वसत्ताअममो पुरस्सावादि कोवितादि होचममि बहूदसीनं कोविं पञ्चाए ताव सावधः भित्ताः आत्तामो वसमि । समत्ताए मत्तांमत्तो पणुव एव  
सत्ताअए वा वीन् दिवसान् बहूपावकावोत्तमं कुत्ताप्पममावाः क्कप्पाय कुर्वमि । आरीयाम पञ्चाए इव विमाय-सरीरेदिमि पुरवज करीरं वावड-  
धुपावे व भिक्काव तावट्त्ताप्पार्यं न दुर्धमि, अथ मयरे महंति वा माते ताव वज्जकए पाप्पाया वा वावज विक्कावित्ताव तावट्त्ताप्पार्यं वतिहरमि, मा  
क्कावे भिदुंया इति भमए ।

तेरे लगपादकावत्सर्गं कालं सञ्चार्यं करोति । सेसद्विष्यसु शीघ्रमुक्त्वणिगाऽऽरभ्य च हृत्पञ्चतन्मतरतिष्यसु धारसपरिसे  
असञ्चार्यं, गाथापूर्वार्द्धं, पञ्चार्द्धस्य तु माध्यकार एव व्याख्या कुञ्चसाह,—

सीयाणे जं विद्धं न न मुस्युणऽमाहनिहयाणि । आह्वारे यं रुहे माहसु विद्धद्विया धारे ॥ २२२ ॥ ( भा० ) ॥  
व्याख्या—‘सीयाणे’ति सुसणे जाणिऽद्वियाणि दृष्टानि चक्षुषाहेण दृष्टानि वा ईषणादिअभाये ‘निहय’चि निक्खिष्याणि  
जाणि पुण तस्य अण्णत्थं वा अणाहकवेवराणि परिद्धवियाणि सणाहानि वा ईषणादिअभाये ‘निहय’चि निक्खिष्याणि ढवि  
ते असञ्चार्यं करोति । पाणत्ति मार्गगा, वेसिं आह्वारे अकसो शिरिमेकोऽवि अण्णह, वत्स हडा सज्जोमयट्ठीणि ढवि  
ज्जति, एवं रुद्धवरे माविधरे य, से कालओ धारस धरिसा, सेसओ हृत्पञ्चतन्मतरतिष्या इति गायार्थः ॥ २२२ ॥  
आधासिय च दूढ सेसे विद्धमि मज्जण विवेगो । सारीरगाम धावग साहीह न नीणिय जाव ॥ १३६८ ॥

एताए पुण्णत्तस इमा विभासा—

असिखोमावयणेसु धारस अयिसोवियमि न करन्ति । इमामिप दूढे कीरह आधासिय सोविप चेष ॥ १३६९ ॥

१ एताए पुण्णत्तसोवयणं कुत्ता साध्यां कुर्वन्ति । शेषास्थियु शीघ्रमोचयदिनादाभ्य ए हतासाध्याभ्यभ्यस्थितेषु धारस धर्मात्सराभ्यामिदं सीयाण-  
मिदि इमासाने धान्मस्सीमि द्वावानि वक्कवाहेव प्युवाधि न धान्मस्सीमि अत्ताप्याविद्धं कुर्वन्ति वानि पुण्णत्तसप्य धान्मस्यकसंदासि परित्तापिवादि अवावादि  
वा इन्धवाधमावे निक्खिसानि धान्मससाध्याविक कुञ्चन्ति । पाणा इति मातृवाकोत्तादावद्वारे यओ इमीकोमरि मयवेते वत्तापकाए सधो वृतात्सीमि  
व्याचवन्ते एवं एतदुहे साधुपुहे च वानि काकयो दावता वचीमि सेवणो हताजवं धरित्तापीयानि । एतज्जाः पूर्वार्थमेव विधाता ।

'तं असम्भार्य न शोचि, परित्याज्यं ज्ञात्वा रुद्धिं चेव पूजपरिणामेणं तिथं, विवर्णं स्मररक्कसमार्गं रसिगार्यं, सेसं  
 असम्भार्यं ह्यह । अथवा सेसं अगारीद संभवति विणि विणा, विद्याय वा को सार्यो सो सख वा अह वा शिरो  
 असम्भार्यो भवति विणि । पुकसपसूयाए सख, ज्ञेण सुकुक्कहा वेण तस्स सख, खं पुण इत्थीए अह एतथ चप्पये ॥ १३५५ ॥  
 रजुक्कहा च इत्थी अह विणा तेण सत्त सुक्कहिए । निजि विणाण परेणं कणोचन नं महेरत्त ॥ १३५६ ॥  
 क्यास्सया—निसेगफाले रजुक्कहाए इत्थि पसयह, वेण तस्स अह विणा परिहरणिज्जा, सुक्कहिपणमो पुकसं पसयह वेण  
 तस्स सख दिणा । अ पुण इत्थीए विणह रिजविणाण परको भयह सं सरोगकोलित्थीए अणोचयं तं महेरत्त परको भय्णह  
 तस्सुत्तसाग फावं सज्जायं करोति । एस रुद्धिरे विविदिं गायार्थः ॥ १३५६ ॥ अ पुणुसं 'अहि मोघूणंति तस्सेहाणीं विही मज्जाह—  
 दत्ते दिदि विणिपण ससद्धी पारसेव धासाह । मांमिय वूहे सीआण पाणवे ये प मायहरे ॥ १३५७ ॥  
 क्यास्सया—अह दंतो पदिमो सो पयसमो गवेसियवो, अह विटो सो हत्थसया उपरि विणिविज्जह, अह न विटो

१ एवं अस्माद्वारिद न भवति एवमेष कथा रक्षितं पूजपरिणामेणं विना शिवं पदिरक्कसमार्गं रसिगार्यं सेसमज्जापारिदं मवति अथवा द्वेव  
 मयार्थीकाः संभवन्ति कीदृ रिजसाह मयुगावां वा का भावाः खं ससाह । वा रिजसाह असागारीद (करोतीति) । पुण्ये मयुते एतं वेव सुकोप्ययं वेव वल एत  
 एव पुनः विज्जा अह अशोचये—निरक्कहा रजोप्ययार्थं हिं मयुते, वेव वल अशो विजाः गीरियमेवे सुकाविक्कहाए पुन्यं मयुते वेव वल एत दिदा । एव  
 पुनः विज्जापण्यः अणुदिक्कहा । एतां भवन्ति एवं अणोपपत्तिकाया विद्या अणुपुन एव अणोपण पयतो मयुते वल्लोपयं ज्ञात्वा ज्ञाप्याह कुर्वन्ति पूज  
 एवैरं रसिगार्यं । एतदेव अणु अणु सुक्कहा वल्लोपयं विदि—एव पयः रसिदा खं मयवेव मयवेज्जो पदि एतद्विदं हत्थसयाए एवमं ससये अथ न एव

अहं कुस्मिन् तर्हि पुनं अहं वा लिच्छारिण्य सचिक्से ।

इक्ष्वा न क्षोहं योयग ! वत वा परिणय जम्भा ॥ २२१ ॥ ( भा० )

व्याख्या—भाणो भोक्तु मंसं लिच्छारिण्य मुहेण वसहिआसण्णेण गण्ठंसीं सरस जइ तीरं रुहियेण तिसं एओदासि  
कुसति सो असन्माहयं, अहं वा लेच्छारियणुवो वसहिआसणे चिह्नं वहवि असन्माहयं, 'इयराह'सि आहारिण्य योयग !  
असन्माहय पा भवति, जम्भा व आहारियं वंसं अवत वा आहारपरिणामेण परिणय, आहारपरिणयं च असन्माहय  
न भवइ, अण्णपरिणामओ, सुत्तपुरीसाविचिं गायार्यः ॥ २२२ ॥ तेरिच्छसारोरयं गयं, इयारिं माणुससरीरं, सरथ—  
माणुसस्य वज्जटा अहिं मुरूपण सयमइोरस । परिआवभाविचिओ सेसें तियसस्त अहेव ॥ १३६५ ॥

व्याख्या—सं माणुससरीरं असन्माहयं ववविहं वम मंसं रुहिर अहिं च, ( सरथ अहिं ) मोसुं सेवस्त सिविहस्त  
इमो परिहारो—सेसओ हारयसयं, काळओ अहोरथ, अं पुण सरीराओ वेव वणादिसु भागच्छइ परियायण पियण्ण पा

१ वा भुक्त्वा मांसं कियेन मुहेण वसन्मासनेन गण्ठं ( व्या० ) वत मुणं वरि सीवरेण किं एतन्मओअहिं एउसंति वदन्मासादिहं अहं वा  
किंमुवो वसन्मासने विहतिं वववि वकाण्णायः इतरयेहि आदासियेन ओइव ! वसन्मासयिह व वववि वसाव वदादासिय वान्तवयानं वाअदावदि  
वासेन परियतं आहारपरिणामपरिणय वासावभाविह व भवति अण्णपरिणामात् पूणपुरीसादिहय । तिरलं खापीरं एत इरादी माणुससरीरं एत-यए  
माणुससरीरमभावादिह वदुसियं—यमं मांसं वरिहं वरिहं च, ववविह मुहणा येवज विदियवसानं परिहारो—येवयो ववजव ववजवओओगाव यए मुहः  
सरीरादेव मवादिप्यापण्ठमिं पर्यायज विवयं वा



अकाराद निष्प्रियोरिति अराजभाण जरे पदे निष्प्रि । रायपह विंदु पद्विप कप्यह दूरे पुणऽअस्य ॥ २२० ॥ (भा०)  
 व्याख्या—अकं चेदि न भवति वेदिं पसूपाण धम्ममुक्तिभारायाण, तासिं पसूहकाकाभो आरब्ध विणिण् पोरुसीभो  
 असम्भाराभो मुमुपहोरच छंद, भासन्नपसूपापुवि बहोरचछंदेण सुक्कर, गोमादिबराहकाणं पुज्ज भाव अकं छंदह ताव  
 पदह दूरे सुद्धे'पि अस्या व्याख्या—'रायपह विंदु' पक्कजं साहुवसही आसण्णेण गच्छमायस्स विरियस्स अवि कहिराविंदु  
 गतिपा सं अह रायपहसरिया ठो सुद्धा, अह रायपदे चेव विंदु पद्विओ ठहवि सम्भाराभो कप्यवित्तिकावं, अह मज्जापदे  
 अण्णाय पा पद्वियं ठो अह उदगाहुदपाहेण हियं ठो सुद्धो, 'पुणो'पि विधेयार्थमविपायका, पवीवणणेण वा दूहे सुक्क-  
 दिसि गाथार्थः ॥ २२० ॥ मूळ गाथायां 'वरयण साणमादीणि'पि परोचि चोपगो तस्स वपणं अह साणो पोत्ताकं सुमु-  
 दिसिचा जाय साहुपसहीसमीये धिद्धर ताव असम्भारायं, आदिसद्भावो संजारादी । भावार्थ आह—

१ आहुर्वेत्ता न भवति तथा प्रसूपाणां वणुत्सार्थानां तासां प्रसूक्षिकपदम् आरब्ध विष्णुः पोरुसीरसाध्यायः सुक्काभोरान्नपेक्ष—असम्भारायसूपायानपि अदो  
 रात्रयस्य सुप्पविषं पकादीनां आहुत्तानां दुग्धार्थम् आहुर्वेत्ते तावद्व्याप्यादिभं जणयो पयिते इति वदन् आहुः पयितो भवति तथा वत्तात् पठनककपद  
 भागस्य वदः मद्राः शिरिद्रपस । तावद्वपणूरे सुद्धमिदि तावपय विम्वरा । पदार्थ । साहुवसठेतावदेव मक्कजवित्तिकावो वदि पद्विराविम्वरो पकिट्यावे वदि  
 रात्रवत्ताम्भो(ताम्भे'मुद्धाः अयं तावपय पूव विम्वः पयितः तथापि साध्यायाः कस्यते इतिह्रस्वाः अन्त्यापयेऽज्जनं वा पयितः तदिं वदुदकमेव प्युं पदिं सुद्धा-  
 वदिरवत्तम वा द्वाय सुप्पमिदि । वरदितादिकः तस्य वदन् वदि आहुत्तं मुद्धां भावत् साहुवसठिसमीये धिद्धरि तावद्व्याप्यादिभं भाविक्कम्पात् माद्वेत्तादिक ।

मूसाइ महाकाय मन्त्रारार्हयाधयण केई । अविभिन्ने निणहेव पवति एगे णइउपलोओ ॥ २१८ ॥ (आ०) ॥

गतार्थेवेयं ॥ 'तिरियमसज्झादियागार एव इम भन्नाइ—

अतो एहिं च भिन्न अहवा विंदू तथा विभाया य । रायपह वूह सुद्धे परवयणे साणमावीण ॥ १३५४ ॥ एतं ॥  
व्याख्या त्वस्या भाव्यकार एव प्रतिपद करिष्यति । सायवार्थ स्थिइ न व्याख्यायते 'अंतो एहिं च भिन्न अंतं'ग  
विंदुं'सि अस्य गाथासकलस्य व्याख्या—

अहगमुज्झिमयकल्पे न य भूमि स्थणति इहरहा तिथि । असज्झादयपमाणं मच्छिपपाओ जहि न पुहु ॥ २१९ ॥ (आ०)  
साहुवसहीए सहीए इत्याणतो भिन्ने अंतए असज्झादयं धविभिन्ने न भवइ । अहवा साहुस्स वसहिए अंतो एहिं च अंतं  
भिन्नति एा सज्झिमयंति वा एगहं, त च कल्पे वा सज्झिमयं भूमीए वा, जाइ कल्पे तो कल्पं सहीए इत्याणं एहिं नीणऊण  
वोवंति तओ सुद्ध, अह भूमीए भिन्नं तो भूमी स्थणंणं ण छड्डिअइ, न शुध्यतीत्यर्थः । 'इयरह'सि तरयरथे सद्धिरया  
तिथि य पोरत्तीओ परिहरिअइ, 'असज्झादयस्स पमाणं'ति, किं विंदुपरिमाणमेवेण हीणेण अदिययेण या असज्झाओ  
भवइ १, पुच्छा, उच्यते, मच्छिपयाए पाओ जहिं [न] मुहुइ त असज्झादयपमाण । 'इयाणि यियायसि' एतय—

१ धिरत्तासाध्याधिकारिअर एवेर्द भवयते । साहुवसतोः एवेर्दलेभ्योअर्वाए भिन्नेअहेइसाध्याधिकं वदिमिंने व भवति अथवा साधोर्दसतेरप्यर्दहि  
र्वाअर्दं भिन्नमिति बोधिसत्तं धैकायो एतत् कल्पे बोधिसत्तं भूमी वा एहि कल्पे तर्हि कल्पं एवेर्दलेभ्यो वदिा बीरवा बोधमिन्न एतः शुद्ध अह भूमी भिन्नं तर्हि  
भूमिः कश्चित्वा न भवत्येव । इतरथेति एतत्तत्वे एवेर्दकाः तिथिश्च पोरत्ता एहिं'इत्यनेन अज्ञात्वाधिकत्वं प्रमाणमिति—किं विंदुमात्रपरिमाणेव हीनेषाधिकत्वेन  
नाइकात्वावो भवति १ पुच्छा अच्यते, मच्छिपयाः पाओ एव न भूयते एतत्तत्वाध्याधिक्यमर्थः । इयाणी प्रयुतेति एतत् ।

अजराज निभि पोरिसि जराजभाण जरे पढे निभि । रायपद विंदु पद्विप कप्यद दूरे पुणऽमत्प ॥ २२० ॥ (भा०)  
 व्याख्या—जेठं जेसि न भवति तेसि पसुषाणं वणुकिमादयाणं, दासि पसूदकाजामो आरम्भ तिष्णि पोरसीमो  
 असम्भामो सुपुमदोरज छेदं, भासपसुषापादि अहोरजछेदेण सुम्भद, गोमादिकरासव्याणं पुण जाय अठ छंषद ताव  
 असम्भारयं 'जरे पद्विप'सि जाहे अठ पद्वियं भवद ताहे ताको पद्वयकाजामो आरम्भ तिभि पहरा परिरदियंसि । 'राय  
 पद दूरे सुन्दे'सि अस्या व्याख्या—'रायपद विंदु' पच्छदं साद्वयसी भासणेण गच्छमाणस्स तिरियस्स ज्वि कहिराविंदु  
 गतिपा से जइ रायपदवरिया ठो सुम्भ, अइ रायपदे वेय विंदु पद्विमो वहावि सम्भामो कप्यतिचिकादं, अइ अप्पापदे  
 अप्पारय पा पद्वियं ठो अइ वदगवुद्ववाहेण दिव्यं ठो सुन्दे, 'पुणो'सि विशेषार्थमतिपादका, पकीवमणेय वा दहे सुम्भ  
 इति गाथार्थः ॥ २२० ॥ मूळ गाथार्था 'परयपण साणमापीणि'सि परोचि बोयगो वस्स वयणं अइ साणो पोमानं समु  
 दिसिवा जाय साद्वयसहीसमीये विहदइ ताव असम्भारयं, आदिसवामो मंकारादी । आचार्यं आइ—

१ अरादुद्वेयं न भवति तेन प्रसुताया वणुज्यादीनां तासां प्रसुतिकाजान् आरम्भ विजः पोरसीरकाजान् । मुक्काम्भोराजाम्भे—आद्यवमपुत्राणानि ज्यो  
 राजपुत्रेण मुक्कवि गजादीनां जाणुजानां पुत्रयोवज्ज जाणुजंवेते तावदभाष्यादिज जायसी पद्विरे इति अइ अरादु पद्वितो यवदि वरा वज्जान् पतवज्जकाव  
 आरम्भ भवः अदरा वरिदिकपय । राजवपपुदे मुद्विमिदि राजपये विवदः । पद्वार्थं । साद्वयसोरासवेय पच्छविराजो वदि वदिरासिन्वो पद्विज्जान्दो वदि  
 राजपयाम्भिमिवासाहे मुद्वान् अय राजवज्ज दूद विज्जुः पद्विका वपादि काजान्दोऽकजवे इतिमुक्ता अजम्भयपदेऽम्यन वा पद्विवा वदि वज्जुद्वपेतिव ज्जुदं वदि वद  
 पदीपवज्ज वा द्वाव मुक्कमिदि । अइ इति बोदक सस वद्वर्धं वदि आ मुद्वक मुयना वावज्ज जाणुवसतिसमीये विहदि तावदकाज्यादिनं अमिक्कमद्वज्ज आरंभेतिवद' ।

नृसाह महाकाय मन्त्रारार्हयाघयण केर्ह । अविभिन्ने निणहेह पढति एमे अहउपलोओ ॥ २१८ ॥ (भा०) ॥

गतायेवेय ॥ 'विरियमसम्माहयाहियागार एव इमं भन्नाह—

अतो वहिं च भिन्न अन्नम विवू तद्वा विभाया य । रायपह वूह सुद्धे परवयणे साणमादीण ॥ १३६५ ॥ वारं ॥  
व्याख्या त्वस्या भाष्यकार एव प्रतिपद करिष्यति । आपवार्यं त्विह न व्याख्यायते 'अतो वहिं च भिन्नं अन्नं  
विवू'ति अस्य गाथाशकजस्य व्याख्या—

अन्नगान्मुञ्जियकप्ये न य भूमि स्सणांति इहरहा तिसि । असज्जमाहयपमानां मच्छिपपाओ अहि न घुडु ॥ २१९ ॥ (भा०)  
साहुवसहीए सहीए हत्थाणातो भिन्ने अन्नए असज्जमाहयं वदिभिन्ने न भवह । अहवा साहुत्स पसहिए अतो वहिं च अन्नयं  
भिन्नंति वा जज्जियंति वा एगह, तं च कप्ये वा जज्जियं भूमीए वा, अह कप्ये तो कप्यं सहीए हत्थाण नाहिं नीणाऊण  
वोवंति सओ सुद्धं, अह भूमीए भिन्न तो भूमी स्सणेव ण अहिअह, न सुध्यादीत्सयं । 'इयरह'ति तत्परये सद्धिहरया  
तिस्सि य पोरकसीओ परिहरिअह, 'असज्जमाहयस्स पमानां'ति, किं विवूपरिमाणमेवेण हीणण अहियदरेण वा असज्जमाओ  
भवह १, पुच्छा, वृक्षयते, मच्छिपपाए पाओ अहि [न] जुडुह च असज्जमाहयपमानां । 'इयाणो यियायसि' तत्पर्य—

१ वैराज्यात्वापिकाधिवार एवेह भववते । साहुवसतोः पहेर्हेलोम्वोअपीए मिहेअहेवसाप्याधिकं वदिर्मिन्न न भवति अथवा साधोवसतेरन्वर्ह  
वीज्जमिन्नमिति बोधिसत्तं केजायो एव कप्ये बोधिसत्तं भूमौ वा वदि कप्ये वदि कप्यं पहेर्हेलोम्वो वदिवा वीत्ता वोवमिव ततः शुद्धं, अत्र भूमौ भिन्नं वदि  
भूमिः वदिता न भव्यते । इतरयेसि तत्तत्तं वदिहेवाः तिज्जव वीरप्या वरीरिक्कमे वत्तात्वाधिकत्वा प्रमादमिसि-किं विवुमाद्यपरिमावेन हीरेणाधिकवरेन  
वाऽप्यत्वावरो भवति ? पुच्छा, वृक्षयते मच्छिपपाया पाओ वर न घुडते एव क्वाप्याधिकप्रमाणं । इयानीं प्रचुरोति तत्र ।

अजराज निम्नि पोरिसि जराजभाण जरे पढे निम्नि । रायपह विंनु पडिप कप्यह दूरे पुणऽजस्य ॥ २९० ॥ (मा०)  
 व्याख्या—अरु ओसि म भवति तेसिं पसुषाणं पगुळिमाहपाणं, सारिं पसूहकासाओ आरभ्य विष्णि पोरसीओ  
 असम्भाओ मुमुमहोरय छेद, भासपसुषापवि अहोरसछेदेण सुम्भह, गोमादिकरावभाणं पुण जाव अरु छंभह ताव  
 पह दूह सुजे छि अस्या व्याख्या—‘रायपह विंनु’ पञ्चद्व साहुपसही आसणेण गच्छमाणस्स तिरियस्स अदि ङ्हिराविंनु  
 गडिया ते अह रायपहसरिया तो सुद्धा, अह रायपहे चेंव विंनु पडिओ तद्वावि सम्भाओ कप्यविसिकावं, अह अप्पपहे  
 अण्णत्थ या पडियं सो अह उदगमुदुयादेण दियं तो सुद्धो, ‘पुणो’ छि विसेयार्थयतिपादकः, पलीषणनेण वा दूहे सुक्क  
 इति गार्थार्थः ॥ २९० ॥ मूळ गार्थायां ‘परपण साणमादीणि’ छि परोचि चोयगो तस्स वक्कणं अह साणो योगात्वं समु  
 द्दिचित्ता जाय साहुपसहीसमीये भिद्धह साय असम्भाहय, आदिसद्वाओ मंआरादी । आचार्य आह—

१ अराधुवेंचं न भवति कथं मएजाव । वरगुत्तमदीन । तायां मधुतिक्काजत् अतन्म विजः । पीकरीरजाप्यायः मुज्जाम्भोरान्मच्छेदं—असत्तमपुत्तममदि अदो  
 राजपदेरय मुज्जति गकारदीनां जरापुमानां गुमवीरत् अराधुवेंचं तावत्साप्यादिदं जरादी वसिते इति यदा जरापुः पसितो भवति यदा तस्मात् पठकमजस  
 अतन्म जवः मद्रताः वीरिपन्थ । राजपपपुदे मुद्धमिति राजपये विन्दुवा । पञ्चार्थ । साहुपसहेरासदेव वक्कवकिरओ वदि वीरविज्जसो गकिजाते पदि  
 राजपपपपुदिताकादं मुद्धाः अय राजपय पूव विज्जुः पदितः तयापि स्वाप्यावा कम्मपदे इतिमुक्ता अयाप्यपयेअय वा पसिताः वदि वसुदधेनेन न्यूदं वदि मुद्धा  
 मदीरनक वा पुन्य मुज्जति । पा इति नारकः तथ वक्क मदि आ मुद्धं मुज्जना पावत् साहुपसविसमीये भिद्धति तावत्साप्यादिदं आदिसप्यात् मानंतिपुव ।

मनुसाह महाकाय मन्त्राराहृदयावयवण केह । अधिभिन्ने निणहेव पवसि एगे जहउपखेओ ॥ २१८ ॥ (आ०) ॥

गतार्थेधेय ॥ 'तिरिचमसम्भाराहियागार एव इमं भणइ—

अतो यहिं च भिन्न अहम बिंदू तहा विभाया य । रायपह धूह सुदे परवयणे साणमादीणं ॥ १३६४ ॥ वारं ॥  
व्याख्या त्वस्या भाव्यकार एव प्रतिपद करिव्यति । छाववार्थ स्थिह न व्याख्यायते 'अतो यहिं च भिन्न अहम  
विंदु'सि अस्य गायाराकलस्य व्याख्या—

अहंनानुजिज्ञायकप्ये न य मूमि स्मणति इहरहा निभि । असज्जाराहयपमाणं मच्छिपयाओ जाहि म पुहु ॥ २१९ ॥ (आ०)  
साहुवसहीए सहीए इत्याणंठो भिन्ने अहए असज्जाराहयं वाहिभिन्ने न भवइ । अहवा साहुस्स वसहीए अंतो यहिं च अहयं  
भिन्नंति वा सज्जयंति वा एगळं, सं च कप्ये वा सज्जयं मूमीए वा, अइ कप्ये तो कप्य सहीए इत्याणं वाहिं नीणेऊण  
योवंति तओ सुद्धं, अइ मूमीए भिन्नं तो मूमी स्मणंठ ण छड्डिअइ, न धुप्यवीत्यर्थः । 'इयरह'सि तरयये सद्धिहत्या  
तिक्कि य पोरसीओ परिहरिअइ, 'असज्जाराहयस्स पमाणंति, किं विंदुपरिमाणमेवेण हीणेण अहिययेण वा असज्जाराओ  
भवइ !, पुच्छा, वचयते, मच्छिपयाए पाओ जाहिं [न] पुहुइ सं असज्जाराहयपमाणं । 'इयार्णि विपायसि' सरथ—

१ धिराससाध्याधिकारिकार एवेहं यवयते । साहुवसतोः यवेहंतेत्येवोर्जाए भिन्नेअहेअसाध्यापिणं वदिमिंहे न भवति नववा छाओवंसतेत्यवेहं  
वीउव्वं भिन्नमिति बोधिसत्तं कैकायं तव वव्ये बोधिसत्तं मूमी वा यहि कप्ये यहिं कप्यं यवेहंतेत्येवो नहिः वीत्ता योवसि वतः सुद्धं, अथ मूमी पिअं यहिं  
मूमिः वमित्ता न वचयते । इतरयेसि सज्जये पविहंताः तिक्क वीउव्वः परिरिक्कये नववाध्याधिकार समानमिति—किं धिग्गुमाअपरिसावेव हीणेणधिकपरेण  
वाअज्जावाओ यवयति ? इच्छा वचयते मच्छिपयाए पाओ नव व मूहते सद्धाध्याधिकारमार्गं । इयार्णि मयुतेति वय ।

भंतेो धोविज्जु टीए एत्ते वा संमि दाणे अवयथा पदंति तेण असम्मसारयं, उदयभंतेो व्हिं वोविज्जु भंतेो पणीए भंसमेव  
 असम्मसारयंति, तं च वद्विस्ससभंस आइण्णपोगाळ न भवइ, अ कालसाणादीहिं धणिघारियविप्पयसं निम्मइ तं आइअ-  
 पोगासं आपिययं । 'महाकाए'ंति, अस्या व्याख्या—ओ धंविंविभो अत्थ हओ तं आपापठाणं धज्जेयइ, जेजओ सट्ठि-  
 हरथा, काळओ अहोरत्थ, एत्थ अहोरत्थेओ सुरुत्थण, एत्त पक्कं वा भंसं असम्मसारयं न हवइ, अत्थ व धोयं तेज पयसेण  
 महंतेो चवगावाहो एतेो सं विघोरिसिक्कालं अनुमेयि सुद्धं, आपायणं न सुम्मइ, 'महाकाए'ंति अत्त व्याख्या—महा  
 कायसि पच्छद्द, मूसगादि महाकाओ सोडयि विराज्जाणा आइओ, अत्ति त अभिच्च येव गळिठं पेयुं वा सहीए हत्थाणं  
 वाहिं गच्छइ स केइ आपरिया असम्मसारयं नेच्छंसि । गायायां सु एयुं के केइ इच्छंसि, एव स्वाध्यायोऽभिसंभवते, वेर  
 पक्खो पुण असम्मसारयं वेवसि गाथार्थः ॥ १३५३ ॥ अस्यैवार्थस्य प्रकटनार्थमाह भाष्यकारः—

१ धोराअः प्रभाष्य एव ताव वा ठसिक्क आनेउवयथाः पठमि हेयासाध्याधिकं एवीयस्से वदिः प्रसज्जत्तयाम्भरे नायवेयज्जाअमरेवसि  
 ठकोकसमासं आदीर्यंणुत्त न भवति एव कालसाणिनिरसिवासीतं भिन्नकीर्यं वीचवे एव अत्तीर्यणुत्तं सल्लिखं । महाकाव इति, वा एवेविघो वव  
 इत्तेअ व्याघातकालं वद्विठं जेजठा वहेइतेम्यः काळोमहोरात्र आवाहोरात्रउत्तरा एत्थेइतेव एत्तं एव वा मासं अक्काअदिकं च सुवति वव च  
 धीज एव मयरात्र मरइ चरकयवाहो मूरत्तहिं विरीरवीज्जाउत्तरेइयं सुद्धं, आयाजं च सुप्पसि महाकाव हत्तल धाअवा—महाकाव इति एवार्थ, सुव  
 काएमेवकावः सोडयि मात्राणिद्विजाउत्तराः पदि ठमिअममेव एवीया धिक्किया वा एवेइतेम्यो वदिनेच्छंसि एव वेविवाचामो अक्काअदिकं नेच्छंसि ।  
 व्हिंवादिअमिअ वद्विठेयः पुनरक्काप्याधिकमभवति ।

वेयालियं पदनाविज्ज्ञाय पोकसिमंलभादी, अहवा असज्झायं पवविह इम-मंस सोणियं चम्मं अहि पत्ति गाथार्थः ॥ १६५१ ॥ मंसासिणा चक्खिसे मसे इमा विही—

अंतो पर्वि च षोअ सदीहत्थाव पोरिसी तिअि । मइफाएँ अहोरस रदे पुहे अ सुद्ध ॥ ११७२ ॥

ॐ स्वास्ति नमः—

यद्विधोपरद्वयके भक्तो घोए स अवयवा इति । मरुकाय चिरालार्दं अपिभिन्नं केर इच्छति ॥ १३५३ ॥

इसीण वक्त्राण-साद् वसहीओ सडीहरयाणं अतो वहि च धो भन्ति मंगदर्शनमेवत्, अंतोधोयं अंतो पक्क, अतोधोय पदिपक्क  
वाहि धोयं अंतो पक्क, अंतंगहणात् पढमवितिया मंगा वहीगहणात् ततिओ अंतो, एएसु तिसुवि असन्साइयं, अंमि एएस  
धोयं आणोसु वा रक्क सो एएसो सडिहरयोहि परिहरियवो, काळओ विवि पोउसिओ। एव। द्वितीयगाथाया पूवर्त्तन पदुक्क 'प  
द्विओ परक्कपक्क' एस चत्तप्यमंगो, एरिसिं च्च सडीए हरयाण अकमंतरे आणीयं तहावि र्त्त असन्साइयं न भवइ, एटमवितियभगेसु

१ वैचारिक अन्तर्दोषकं यौक्त्वमीश्वरकामि अथवा असाध्याधिक अतुर्विचमिर्द-मांसं सोमिर्त जसै मशिय जेति । मांसापचोमिर्दसै मांसेज्जं मिदि । अथ योन्मास्याद-साधु वसते । पण्डितानामासुधीमि वीठमिति अन्तर्धीतं अन्तःपक्व अन्तर्धीतं वदि । पक्वं वदि योत्तमम् । पक्वं, अन्तर्धीतम् । प्रवमिर्दोषो मदी । यदीति वदि मदीसाधु एतौचो मद्द । । एतेषु विच्यन्मस्याधिकं पण्डित् प्रदेसो वीठ आनीच वा सादं स प्रदेसः । पण्डितानामन्तरे पमिर्दोषः काकठ-मिदः यीरवी । वदि यौत्तपक्वं एष अतुर्वो मद्द । ईदयं वदि यदेर्दोन्मोन्मत्तामाधीतं एव मी एवसाध्याधिकं व अचति, प्रवमिर्दोषमद्द मिदः यीरवी । वदि यौत्तपक्वं एष अतुर्वो मद्द । ईदयं वदि यदेर्दोन्मोन्मत्तामाधीतं एव मी एवसाध्याधिकं व अचति, प्रवमिर्दोषमद्द



व्याख्या—'यन्निदिद्याण रुदिराह्वयं असम्प्राह्वयं, ज्योत्स्नोऽसृष्टिरह्वयमन्वरे असम्प्राह्वयं, परञ्चो न भवह, आहवा ज्योत्स्नो  
 योगगताविष्णुं-योगगता मंसं तेण सर्वं आकिष्णुं-ज्यासं, तत्सिमो परिहारी-सिंहं कुरत्माहि अघरिषं सुम्भह आरभ्यो न  
 सुम्भह, अण्ठरं कुरद्विय न सुम्भह । महंठरथा-रायमणो ज्येण राथा षष्ठमणो गम्भह देवजापरहो वा विविहा प  
 आसवाहणा गच्छति, सेसा कुरत्था, पसा नगरे विही, गामस्त नियमा गाहिं परथ गामो अविमुत्तणेगमनयदरिसपेण  
 सीमापञ्चरो, परगामे सीमाप सुम्भहचि गामार्थः ॥ ३३५० ॥

काठे त्रिपोरसिद्ध बभाषे सुख तु नविमार्हय । सोऽपि भंसं वन्म अही विप इति वल्गासि ॥ १६५१ ॥  
 व्याख्या—त्रिपोरसम्रायं संभयकाठायो जाव टावया पोस्वी ताव वमव्याव्यं वन्मे

असत्समादयति—ये असत्पापापणक्षणा साध भवन्ति । भावभो पुण परिहरति सुखं, सं च नैदिमणुओगद्वार लवुक्क-

[illegible]

सञ्ज्ञाभ्यो न सुञ्ज्ञाह, अदि तेहिं छड्डिओ सुञ्ज्ञो, अह न छड्डुंछि ताहे अण्ण पसहिं मग्गंति, अह अण्णा पसही न छड्डमाह  
 ताहे पसहा अप्पसागारिए चिगिधंति । एस अभिण्णो विही, अह भिधं दंफमादिपहिं समवा विक्किण्णं दिहमि यियि  
 संमि सुञ्ज्ञा, अदिहे ताव गवेसंवेहिं जं दिहं सं सवं विविचंति छड्डियं, इयरंमि अपिदंमि तथययेवि सुञ्ज्ञा-सञ्ज्ञायं फरे  
 ताणवि न पच्छिज्जं, एस्य एयं पसंगओ भणियंति गाथार्यः ॥ १३४८ ॥ जुगहेचि गय, इयाणिं सारीरोचि दारं, ठरय-  
 सारीरोचिय बुविह माणुस नेरिच्छिय समासेणं । नेरिच्छ नस्य मिहा जलथलसहजं वज्झा व ॥ १३४९ ॥  
 इयास्या-सारीरमवि असञ्ज्ञादयं बुविहं-माणुससरीरकहिरादि तेरिच्छं असञ्ज्ञादयं च । एस्य माणुसं ताव चिद्धं,  
 तेरिच्छं ताव भणामि, तं तिविहं-मच्छादिपाण जळ्ळं गवाइयाण धळ्ळं मयूराइयाण सहयरं । एयहिं एक्कं दयाइयं  
 ववविहं, एक्केक्कस्स वा ददादिओ इमो ववज्झा परिहारोचि गाथार्यः ॥ १३४९ ॥  
 पंचिदिपाण दळ्ळे स्वेसे सडिहस्य पुग्गल्लाइयं । मिक्कुरस्य मइतेगा नगरे पाहिं हु गामस्स ॥ १३५० ॥

१ स्थाप्याभ्यो न सुप्यसि यदि हैल्लकः सुहा अह न सञ्ज्ञाभ्यो पसहिं मग्गंति मग्गंति अथाभा ववविधं कम्यंते वहा इवमा अज्जासमारिंके  
 सञ्ज्ञाभ्यो एयोअमिहे विधिा अह भिधं दंफादिपहिः समवा विक्किण्णं दिहमि यियि ताहे तावए गवेसविधं पुह वए सव परेहानिं इतरिअइ-अटह  
 पससेअणिं सुहा-अज्ञाभ्यां जुदंतामवि न प्राचविधं अहंए पसहवो मसिधं । जुगह इति गय इयाणिं सारीरमवि मल्लाप्यादिह  
 विविधं-माणुससरीरकहिरादि तेरल्लमल्लाप्यां न अह माणुसं तावचिद्धं हैरल्लं तावज्झासि-पचिदिधं-मल्लाप्यां अळ्ळं पवारीयो लळ्ळं मयूरादिवा  
 ववज्झा एतेपासेकेहं दप्यादिहं ववविधं एक्केक्कस्स वा ददादिओ इमो ववज्झा परिहारोचि गाथार्यः ॥ १३४९ ॥

निर्बन्धो बहुधर्मभो य पाभो बहुवचिकारयि—बहुसवणो, ब्राह्मणरहितः पवित्रं वेज्यापरे अर्णोमि वा अण्णपरपराभो  
 आरम्भ पात्र सवपरंवरं पयसु मयसु अहोरथ सन्नाभो न कीरह, अहं करोति निरुपकाधिकारं ज्ञो गारहति मको  
 सेज्ज वा निरुपुदभेज्ज पा, अप्यसरेण वा सणियं करोति अणुपेहति वा, एो पुण मणाहो मरति तं अहं वणिमणं हस्य  
 सप वज्जेपवे, अणुनिमस असज्जाये न हवह सववि कुचिअथित्तावे आयरणाभोअथिअं हस्यसवं वणिअहं । विविचंमि-  
 पट्टिवियमि 'सुज्ज सु' तं ठाण सुज्ज भवह, तप सन्नाभो कीरह, अहं य सस न कोह पठिर्वेवभो ताहे ॥ ११४७ ॥

सागारियाह कदण अणिकठ रत्ति वसहा विनिष्पत्ति ।

विकिसे व समंता ज दिड सरेपरे सुद्धा ॥ ११४८ ॥

दयास्या—अदि नपि पठिर्वेवभो ताहे सागारियस आहसराभो पुत्तणसहस्र भवामरगतस इमं छेह्म अन्ध

१. भिण्डो बहुसवस ब्रह्म, बहुवचिक इति बहुजन्तो वाकरादिवेगिने वा अण्णारे अण्णियद् वा अण्णत्तापुदादान् वाक्कं ससुहस्रवत्  
 एतेषु सृष्टु अदोताय स्वाप्ताभो य विवद, अथ कुर्वन्नि भिरुक्ता इतिह्रस्वा अतो गते अण्णोसेहा विष्कणोहा अल्लवपेण वा दौर्वा कुर्वन्नि एतुमेकन्ते  
 वा, अः सुपरत्तायो विपयं वल्ल पदि पुवपीनवं हसपाय वन्निविदपं अणुविद्व अल्लाप्याधिक न अथवि लक्षयि कुट्टियवादिह्रस्वा वाकरत्तायोअन्निव ह्रस्व-  
 सता वन्निजज्य भिदिसे-परिह्वरिते एतदिपि वल्ल स्यात् सुहं यवति-यव आल्लत्ता विवद, वदि न वल्ल न कोट्ठि परिह्वरकवदा-अदि पमिदि  
 वरिह्वरकव पा सागारिकर अदिह्वरपद्, पुत्तणज्जाहस वपापद्परपेणं ज्ञान भवत्ता

धुरिसाण दोणहं इतिवयाण दोणह मज्झाणं वा जुद्धं, पिक्खायगलोहभंरणे वा, आदिसदाओ विसयप्पसिद्धासु भंसलासु । विप्रहाः प्रायो व्यस्सरवहुलाः । तस्य पमसं देवया छलेज्जा, उहुवाहो निहुक्खसि, जणो मणेज्जा-अन्हं आयइपचाण इमे सण्झायं करेति, अविचयत्तं इवेज्जा, विसहसंखोहो परचक्कागमे, दीदिओ कालाओ भवति, 'अणरापए'ति रण्णा कालाए निक्खपयवि जाव अओ राया न ठविज्जइ, 'समए'ति णीयंतस्सवि रण्णो धोदिगेहिं समंसओ अभिदुय, अखिरं भयं ठधिप कालं सक्खायं न करेति, अदिवसं सुय निदोखं तस्स परओ आहोरत्तं परिहरइ । एस दइए कालाए विहिचि गाथार्थः ॥ १३४५ ॥

सेसेसु इमो विही—

तदिवसमोइआहं अतो सत्सणह जाव सज्झाओ । अणहस्स य इत्थसय दिदि विविस्समि सुक्क हु ॥ १३४६ ॥

अस्या एव व्याख्यानगाथा—

मयहरपगाए वहुपक्खिए य सत्सवर अतरमए वा । निहुक्खसि य गरिहा न पवति सणीयन वावि ॥ १३४७ ॥

इमीण दोणहवि वक्खाण—गात्मनोइए काकाणए ठदिवसंति—आहोरत्त परिहरति, आदिसदाओ गामखमपहरो अदिगाट

१ पुक्खयोर्दोषो विज्जोर्ध्वोर्मखयोर्ध्वं जुद्धं, उहुवावज्जोहभंरणे वा आदिसदादिपयमसिद्धासु मसकासु ( कक्कद्विरोधेयं ) । तत्र ममत्वं देवता कक्कदेव । उहुवाहो निहुक्खा इति जलो मयेत्-अस्मासु आपन्नासेषु इमे क्वाप्पाए कुर्वन्ति अशीतिरु मयेत् इत्थमर्थयोगः परक्कमान् दीदिकः कक्कमातो भवति रादि कक्कातो विधेदेअसि कावए अणो राणा न क्वाप्पते, समय इति बीजजोअसि राओ खोदिक्के सममठतोअधिहुत्तं वाविह ( मत्वं तावत्तं काव क्वाप्पायं न कुर्वन्ति तदिवसे सुव विहीरुं तक्कात्तयोअहोरात्तं परीद्विपते । एव ददिकके अक्कपते विधिः । सेसेव्वदं विधिः । अदयोर्दोषोर्ध्वक्यादं-मात्मनोदिक्के कक्कातो तदिवसमिति अहोरत्तं परीहरति आदिसदाए गामाट्ठमपहरोअधिकार-

निवेद्यो बहुसम्भरो य यगमो बहुयत्किञ्चनिति—बहुसंयणो, आह्वारहिण्य आहिदे संज्यापरे बाष्प्यमि वा भण्यपरावराभो  
 आरम्भ आद्य सप्तपरंतर् पृथु सपसु पाहोरस्य संज्ञाभो न कीरह, आह कर्त्तति निधुयस्त्रयिकात् न जणो गतहति यजो  
 संज्य वा निष्पुरुभेज्य वा, अप्यसद्वेण वा सणिय कर्त्तति बाष्प्येहति वा, ओ पुण भयाहो भरति सं जह्य वस्मिष्यं ह्य  
 सय यज्येयव, अणुभिभसं असासायं न ह्यह्य सहायि कुचिकयविकात् भायरणाभोऽयद्विषं ह्यससय वस्मिष्यह्य । निमिसंति-  
 पट्टियिपमि 'सुद्ध सु' तं ठाण सुद्ध भवह, सय ससाभो कीरह, जह्य य वस्स न कोह परिर्ववको ताहे ॥ १३४७ ॥

सागारियाह कहण अणिच्छ रस्सि यस्सहा चिन्तिवमि ।  
 यिकिन्ने य ससगा ज विह सहेपरे सुद्धा ॥ १३४८ ॥

हयास्या—अदि नरिय परिर्ववको साहे सागारियरस आहसहाभो गुराणसहस्स अहामद्वनस्स इत्तं जहेह भनह

१ भिजुचो बहुयसवस यज्जो, बहुयत्किञ्चन इति बहुसंयणो आह्वारहिदेगीदे वा यस्यावरे वस्मिष्यह वा भण्यपरावराभो आह्य वसपुसज्ज  
 ह्यपु ह्यपु अणोण सग्यावो य विहव अह्य सुयंति भिजुचो ह्यिहवसा जगो गहिं अणोणोहा भिज्जोहा अण्यपरेय वा जहेः सुयंति अणुयंते  
 वा, वा, गुणाज्जो विहव वस यधि गुणयंति ह्यसय यदीयवस्यं अणुविह्वं अज्जायत्तिहं य यवधि ययति कुचिकयविकात् भायरणाभोऽयद्विषं ह्य-  
 सय यज्येयव, अणुभिभसं असासायं न ह्यह्य सहायि कुचिकयविकात् भायरणाभोऽयद्विषं ह्यससय वस्मिष्यह्य । निमिसंति-  
 पट्टियिपमि 'सुद्ध सु' तं ठाण सुद्ध भवह, सय ससाभो कीरह, जह्य य वस्स न कोह परिर्ववको ताहे ॥ १३४७ ॥

धुरिसाणं दोणहं इत्थियाणं दोणहं मज्झाणं वा सुद्ध, पिठायगलोद्भरणे वा, आदिसदाओ विसयप्यसिद्धासु भंसकासु ।  
विमहाः प्रायो व्यन्तरबहुलाः । तस्य पमस देवया जलेज्जा, चट्ठाहो निजुकससि, जणो भणेज्जा—अम्ह आयइपसाणं इमे  
सकमायं करोति, अच्चियत्तं हवेज्जा, विसहसंलोहो परचक्कागमे, दंडिओ कालगओ भवति, 'अणरायप'सि रण्णा कालगए  
निक्कपयि जाव अओ राया न ठविज्झइ, 'समए'सि वीथंतस्सवि रण्णो ओहिगेहिं समतओ अभिबुयं, अच्चिरं भयं सच्चिय  
काल सकमायं न करोति, अच्चियस सुयं निदोषं सस्स परओ अहोरत्तं परिहरइ । एस दंडिए कालगए विदित्ति गाथार्थः ॥ १३४५ ॥  
सेसेसु इमो विही—

तच्चिससओइआहं अतो सत्ताणइ जाव सत्ताओ । अणइस्स य इत्थसय विहि विचिससि सुद्ध तु ॥ १३४६ ॥

अस्या एव व्याख्यानगाथा—

सयहरपणए बहुपक्खिए य सत्तायर अतरमए वा । निजुकससि य गरिहा न पवति सणीपग वापि ॥ १३४७ ॥  
इनीण दोणहवि वक्खणाण—गामओइए कालगए सच्चियसंति—अहोरत्तं परिहरंति, आदिसदाओ गामउभयदरो अहिगार

१ पुक्कयोर्द्वयो किन्नोर्द्वयोर्लब्धयोर्वा सुद्धं, दुहायलओद्भरणद्वये वा आदिष्वप्यादिसयसिद्धासु भंसकासु ( कक्कडिरोरेणु ) । एव समर्थं देवता उच्यते । चट्ठाहो शिष्टः का इति अतो मयेत्—अस्मासु जापयागेह इमे काप्याव कुर्वाणि अमीसिक मये एव हवमसंलोमः परक्कममे दंडिइकः कक्कगायो । सचचि राशि कक्कगाते भिर्भेदेभ्यो वाच्ये अन्वयो राजा न क्वाप्यते । सचच इति वीचलोभसि रम्यो वीचिके समस्ततोऽभिभूय वाचिके । यत्तं तावत्तं काकं क्वाप्याय न कुर्वाणि वाचिके सुतं विहीकं उक्ताप्यलओद्भरणं परिचिचते । एव एचिके कक्कगाते सिद्धिः । दोरेप्यत्तं विदिया । अन्वयोर्द्वयोर्लब्धयोर्वा—याम भोचिके कक्कगाते एदिकलसिचि अहोरात्रं परिहरन्ति आदिष्वप्याय मामात्रमाहवतोऽधिकारः—

चेत्तं मुञ्चो णीसे रार्हं सेसं वज्जणीयं, अन्धा आगामिषूकप ए अहोरत्तसमयी, सूरस्सधि विपागाहिभो विवा चेव मुञ्चो  
 वस्सेव दिवस्सस मुञ्चसेसं रार्हं य वज्जणिज्जा । आहवा सगाहनिष्पुहे एवं विही मणिभो, वओ सी ओ पुञ्चद—अहं चदे जुवा  
 छस सूर सोत्तस जामा !, आचार्य आह—सुरादी जेण होत्तिहोरत्ता, अस्स निवमा अहोरत्तदे गए गहणसंभवो, अण्णं  
 च अहोरत्तं, एवं जुवात्तस, सूरस्स पुण अहोरत्तादीए संकूसिएयरं अहोरत्तं परिहरिच्च एव सोत्तसत्ति गायार्थः ॥१३५३॥  
 सार्वेधत्ति गपं, इयानि जुगहेत्ति दारं, वत्तप—

धोन्नाह वट्टियमादी सस्सोभे वट्टिय य कात्तगए । अणरायए य समए जत्तिर निदोक्कहोरत्त ॥ १३५४ ॥  
 अस्या एव व्याख्यानाभरगाथा—

सेणादिपरं भोदप मयहरुंसिरियमसुमुदे य । छोट्टाहमहणे वा पुवसग उज्जाहमच्चियत्त ॥ १३५५ ॥

इमाना दोणद्वयि पक्कसाणं—इट्टियस्स जुगहो, आदिसद्भावो सेणादिवत्तस, दोणं भोदयाणं दोणं मयहराणं दोणं

१ चेव मुञ्चत्ता तावः एव चर्मनीयं अन्धाएवमिभि सुर्वेत्तयेभ्योपावसमाभिः सुवजायि विवा पुदीवो विवेव मुञ्चत्तैव दिवसज सुञ्चसेसं  
 रार्हस चर्मनीया । अत्र वा समदे मूर्तिरते एव विधिर्यमिषः । वताः पिपत्ताः पुञ्चसि—अयं चन्द्रे द्वावस सुर्वे सोत्तस जामाः । सुर्वोदीभि वेवग्नोताज्जादि यवसिच अन्धस  
 विवमादुरोताज्जमेवं एते म्दवसंभवः अन्धज्जादुरोताज्जमेवं द्वावए, सुर्वस जुवएतोताज्जादिवाए संकूसितेवरे अहोरात्रे पक्षिदिदेवे एते सोत्तस । आदि ज्जमिन्ति  
 एव, इरादी मुञ्चर इति द्वाए, वत्त—अत्र बोदयादि एवावधार्य—वट्टिहत्तस मुञ्चर, आदिसद्वाए सेणादिवत्तः इत्येतोस्मिन्नन्वयेनोक्तमवयवमेव ।

अहमल्लभ्यो सकाए न नज्झइ, केवलं प्रहणं, परिहरिया रार्ह पहाए विहं सगगहो निमुहो अण्णं च अहोरत्तं एवं दुवाळस ।  
एव चंदस्स, सूरस्स अरथमणगहणे सगगहनिम्मुहो, चवदयरादीए चवरो अण्णं च अहोरत्तं एव धारस । अह चदयतो  
गहिओ तो संदूसिए अहोरत्ते अह अण्णं च अहोरत्तं परिहरइ एव सोळस, अहवा चदयेवेलाए गहिओ उप्पाइयगह  
णेण सबं दिणं गहण होत्तं सगगहो चेष निम्मुहो, संदूसियस्स अहोरत्तस्स अह अण्णं च अहोरत्त एवं सोळस । अहवा  
अहमल्लभ्ये न नज्झइ, केवल होहिसि गहण, दिवसओ सकाए न पढियं, अरथमणवेलाए विहं गहण सगगहो निम्मुहा,  
संदूसियस्स अह अण्णं च अहोरत्तं एवं सोळससि गाथार्यः ॥ १३४२ ॥

सनगहनिम्मुह एव सुरार्ह जेण हुत्तिऽहोरत्ता । अहस दिणमुक्के सुखिय दिवसो अ रार्ह य ॥ १३४३ ॥

व्याख्या—सगहनिमुहे एगं अहोरत्तं चवदयं, कहं ?, उच्यते, सुरादी जेण होत्तिऽहोरत्तं, सूरचदयकलाओ जण अह ।  
रत्तस्स आदी भवति त परिहरिह संदूसिअं अण्णपि अहोरत्ता परिहरियवं । इमं पुण आहसं—चंदो रातीए गहिओ रार्ह

१ अमल्लभ्ये सहावां च मायते केवल प्राण परिहृता ताभिः प्रभाते एव समदो भूतिः अन्धकारोरात्रमेव द्वावय एवं चन्द्रस सूर्यस्य अन्धमव  
भ्रमद्वये समदो भूतिरा, एतद्वयरात्र्याभावात्ततोऽन्धकारोरात्रमेवं द्वावय अयोऽन्धकारं पृथीका तया । संदूषिताहोरात्रकालो अन्धकारोरात्र परिहृत्यते एव  
चोदय अथचोदयवेलायां पृथीकाः कौत्साधिक्यमाद्वयेन सर्वे दिव प्राण्य गृह्णा अमाह एव भूतिरा । संदूषितस्साहोरात्रकालो अन्धकारोरात्रमेव चोदय  
अथवाऽन्धकारमेव च मायते केवल भूतिरपि प्राण्य भूतिरते सहावा य पढियं अहमल्लभ्यवेलायां एव प्राण्य समदो भूतिरा । संदूषितकाल अन्धकारोरात्र  
मेवं चोदयोति । समदो भूतिरते एकमहोरात्रमुपपद्य कर्त्तुं ? उच्यते सूर्यदीपि केव मयन्महोरात्राभिः—सूर्योदयकलाए चैवमहोरात्रकालीर्न दधि तद् पर्यट्ठस  
संदूषितमन्धकारोरात्रं परिहृत्यंत्वं इत्थं दुवरावीर्यं—अन्धो रात्री पृथीको रात्रा—





भणुदिए सुरिए मन्मणहे अरथमणे अहुरसे य, एयासु चवसु सन्माय न करेसि पुपुस, 'पाद्विए'सि चवण्ड महामहाण  
 चवसु पाद्विएपसु सन्मायं न करेसिचि, एय अक्षपि जति-मह आणेज्जा जडिंसि-गामनगरादिसु संपि सत्थ पञ्चज्जा,  
 सुगिम्हए पुण सत्थए नियमा असन्माओ भवति, एत्थ अणागाढजोगा निक्खिस्सथंसि नियमा आणाढा न निक्खिस्सथंसि, न  
 पदंसिचि गाथार्यः ॥ १३३७ ॥ के य ते पुण महामहाः<sup>१</sup>, उच्यन्ते—

आसादी इदमहो कस्सिए सुगिम्हए य बोद्धव्हे । एए महामहा स्सलु एएसिं वेव पाद्विएया ॥ १३३८ ॥

व्याख्या—आसादी—आसाहपुत्तिमा, इह उाहाण सावणपुत्तिमाए भवति, इदमहो आसोपपुत्तिमाए भवति, 'कचि  
 ए'सि कचियपुत्तिमाए वेव सुगिम्हओ—वेसपुत्तिणमा, एए अंतिमविवसा गहिया, भार्हे च पुण जत्थ जत्थ विसए जओ  
 दिवसाओ महमहा पवत्तंसि सओ दिवसाओ आरज्ज जाव अंतविवसो ताव सन्माओ न कायपो, एएसिं वेव पुत्तिमा।  
 एंतर जे बहुलपद्विएया चवरो तेचि वज्जियसि गाथार्यः ॥ १३३८ ॥ पद्विसिद्धकाळे करेतरस्स इमे दोषा—

<sup>१</sup> भणुदिते सुदे मन्माहे अकमयेने कर्त्तव्ये च एतासु जलसु आत्माय न कुर्वन्ति पूर्वोक्त 'वदितव' इति जगुज्ज महामहानां जलसु मत्तिजसु  
 स्वात्माय न कुर्वन्तीति एवमन्यमसि यमिंसि माह जानीयाए यमेति मासजगतादिसु समपि तत्र कर्त्तव्येव सुदीप्पमेके बुवाः सर्वत्र निरमादस्मादयावा  
 मवति, अजाजगाहजोगेया विक्खिप्पन्ते विजमाए अमाडाए च सिद्धियन्ति च पदव्तीति । के च बुवन्ते महामहाः<sup>१</sup> उच्यन्ते—आसादी आसाहपूर्वमा इह आटाव  
 आवपपूर्वमाओ भवति, इत्थमह अजपुद्धपूर्वमाओ भवति कार्त्तिक इति कार्त्तिकपूर्वमायामेव सुदीप्पमन्—अजपपूर्वमा एतद्वत्तद्विचारा गृहीताः  
 आदिंसु बुवर्धन एव वेसे वतो दिवसाए महामहाः मवन्तीन्ते वतो दिवसाएतस्य वाचस्पत्यो दिवसकाण्डे आत्मापो च कर्त्तव्यः मृतास्मामेव पूर्वमाया  
 मवन्ता याः कुप्पमादिएपद्विचराका अपि वदित्वा इति । मतिरिद्धकाळे कुर्वन्त इमे दोषाः—

कार्यं सुभोषभोगो लभोषहाण भणुत्तर भणिप । पडिसेदियसि काळे तहावि करु कम्मवपाय ॥ १३३९ ॥  
 छजपा न सेलपण पाडिपएसु छणाशुसज्जति । मइवाउलत्तणेण भसारिभाण न समाणो ॥ १३४० ॥  
 भजपरपभापयुयं छडिज्ज भयिपडिभो न सण पुत्त । भन्दोदहिठिइ पुण छडिज्ज जयणोवजत्तपि ॥ १३४१ ॥

व्याख्या—संरागसज्जभो संरागसंजयजणभो इंदियपिसयाभजपरपभापयुत्तो दियेज स विसेसभो मइमहेसु स

पभापयुत्तं पदणीया देयया छडेज्ज । भयिपडिपा सेचादि छजणं करेज्ज, जयणाजुत्तं पुण साहुं सो भयिपडिभो देवो  
 भन्दोददीभो कणठिईभो न चए छडेदं, भजसागरोयमठिठीभो पुण जयणाजुत्तं वि जकेज्जा । भस्वि से सामत्तं वं तंति  
 पुपापरसंभंपसरणभो कोइ छज्जसि गापार्थः ॥ १३३९-१३४०-१३४१ ॥ 'वदिमसूकरागावि' अस्मा व्याख्या—

उकोसेण पुपाउस चहु जहंसेण पोरिसी भइ । सरो जइस पारस पोरिसि उक्कोस दो भइ ॥ १३४२ ॥  
 व्याख्या—चदो उदयकाळे गदिभो सवुसिपरार्ण चउरो अपणं च अहोरस एव पुपाउस, अइथा सप्पायगहणे

सयराइय गहण, सगहो येय निपुडो सट्टसियराइए चउरो अपणं च अहोरस एयं पारस । अइथा भज्जाणभो,

१ साभायं वदः साभायंसेठवार्दिद्विचक्रियावावरायमायुज्जो भवेत् स भिसेसो मारमहेसु यं मत्तारुज्ज मज्जनीका देवता जडेत्त-अवगन्दिता  
 भिज्जादिपुज्जनी पुशः अउमायुत्तं पुशः साहुं वाभरिद्विको वृथाज्जोदियेव अयिपडिभो न सज्जोडि ककविणं अर्धहापरोरपयिक्कठिज्ज सुवर्धवपयुत्तमदि  
 सउत्त, भदिउलत्त साम्भ चउरणी इवोयसावरावकात्तः कडिपु सडिद्विदि । अउ उदयकाळे पुदीठा संदुभित्तोभेज्जावाः अज्जवदोताभेज्ज हापुव चउर  
 दत्ताज्जत्त सयराइय गहण सगह एव भूदिहः संदुसियरावपायाः अयपवाहोताभेज्ज हापुव अयवा भज्जाणभो—

कान्वसगग करोति तेरसिमादीसु धा तिसु दिणेषु सो साभाधिगे पवतेऽवि सवच्छर सज्जायं करोति, अह वस्सगं न करोति सो साभाधिप य पदंते सज्जायं न करोतिस्ति गाथार्यः ॥ १३३३ ॥ वप्पायसि गय, इत्ताणि सादिपेसि दारं, वय—  
 गायव्विसाधिज्जुक्कमाज्जिए जूअजपस्सआल्लिसे । इक्कि पोरिसी गज्जिय सु दो पोरसी दणइ ॥ १३३४ ॥  
 ध्यास्सा—गाथर्व—नगरयिवण, दिसादाहकरणं विज्जुभवणं उक्कापटण गज्जियकरण, जूअगे पक्कसमाणलक्खणो, अमत्ता  
 दित्त—अक्खुदित्त आगासे भवइ । सत्य गंधवनगरं अक्खुदित्तं च एए नियमा दियक्कया, सेसा भयणिज्जा, जेण फुट  
 न नज्जंति तेण तेसिं परिहारो, एए पुण गंधवाद्या सवे एक्केकं पोरिसिं ववइणत्ति, गज्जिय सु दो पोरिसी चपटण  
 इत्ति गाथार्यः ॥ १३३४ ॥

विसिदाह विज्जमूलो वक्क सेरइ पगासज्जुत्ता धा । सज्जायेवावरणो व जूअभो सुक्कि दिण त्तिथि ॥ १३३५ ॥  
 व्याख्या—अन्यतमदिगन्तरविभागे महानगरप्रदीप्तमिषोपोसः किन्तूपरि प्रकाशोऽपक्वादन्यकारः ईदृक् छिन्न  
 मूलो दिग्दाहः, उक्कालक्खणं—सदेहवर्णं रेहं करोती आ पवइ सा उक्का, रेहधिरद्विया धा उज्जोपं करोती पटइ सायि उक्का ।

१ कानोरागं कुर्वन्ति बभोद्वरादिषु वा त्रिषु दिक्केषु तथा आत्माल्लिकोः एतदोरसि संवत्सरे स्थावरायं कुर्वन्ति अयोरागं च कुर्वन्ति तथा स्वात्माल्लिक  
 एतदि स्थावराय च करोति । भीत्तासिक्कमिति गत इषावी सादिप्यमिति द्वारं उक्क—गाथर्वं बभोद्वरादिकुर्वन् रिन्नाहकरणं दिग्गन्तव्यं नरकागतं गर्द्वहकरणं  
 दूपको—अद्वयमात्रकक्षणं बभोद्वरीसं—पक्षोदीप्तमात्रकसे भवति, उक्क गान्धर्वनगरं पक्षोदीप्तं च पुरे त्रिपलायं देवकेते सेराज्जि यद्वदीयानि यव एतुन च शारभ  
 तेन तेरा परिहारा । पुरे पाप्मन्दीविकाः पुनः सर्व एकेका दीवतीनुपमसिध पार्श्वेन तु द्वे दीवराः/नुपमसिध । नरकागतं—स्वपदवर्णो रेतां कुर्वन्ती वा पवति  
 सोभया रेखाभिरद्विधा बोधोत्तं कुर्वन्ती पवति साज्जुत्ता ।

ध्रुवगोपसि संसृज्याहा चंदप्याहा य वेणं जुगार्धं भवंति वेध ज्वरगो, सा य संसृज्याहा चंदप्यभाषरिवा विच्छिन्नंती न  
मज्जर सुज्जपस्सपदिवागदिसु विणेसु, संसाधेयप् अणज्जमाणे काळवेळं न भुणति ययो विधि विणे पाचधियं काळं न  
गेणंति-विह विणेसु पाचसियसुचपोरिधिं न करोति सि गापार्थः ॥ १३३५ ॥

केसिचि भुतिजमोहा च ध्रुवयो ता य भुति आहता । जेसिं सु अणाहता तेसिं किर पोरिसी निभि ॥ १३३६ ॥  
व्याख्या—आगतं सुभासुभकम्मनिमित्तुप्यायो अमोहो—आह्वयकिरणविकारव्यभिभो, आह्वयमुद्वलवसभायतो(यो)  
किण्वसामो वा सगहुज्जिसंतिभो रंथो अमोहसि स एव सुवगो, सेसं कळं ॥ १३३६ ॥ किं व्याख्यत—  
अदिमसूक्ष्मपरागे निगपाय गुजिए अहोरत्नं । संसा चव पाहिप्या ज जहिं सुगिनप्प नियमा ॥ १३३७ ॥

व्याख्या—सूक्ष्मपरागो गहण भस्म—एवं वक्ष्यमाणं, साधे निरखे वा गगने व्यन्तरकृतो महागर्भवसमो भूति  
निर्वातः, वस्त्रं वा विकारो शुभायसु जितो महाव्यनिर्गुञ्जितं । सामण्यभो एवसु चवसुवि अहोरत्नं सज्ज्यायो न कीरइ,  
निगपायगुज्जिसु धिसंखो—यित्तिपदिण आय सा येळा पो अहोरत्नं एण विज्जर जहा अयेसु ससज्ज्यायसु, 'संसा चव'सि

१ ध्रुव र्हीत सज्ज्यायमा चंद्रयमा च वेध गुणत्वं भवतस्तत्र ध्रुवः सा च एवमवयवः । कल्पमावृता पञ्चमो न वायवे सुहृज्जपवतिपदादि  
दिनसु सज्ज्यायामुद्वेगयमात्र काळवेळं न आनयित वतखोइ विहवात् पापोरिधं कळं न गुह्यविधं विधु विहवेसु पापोरिधं कळीरिधं । अथाः  
सुभासुभकर्मप्रतिधं वातावाधमोह—आदिवाकिरवधि कारवधिः आदिसोद्गागनाव्यमवने आवाहाः कल्पवसामो वा सज्ज्यादिर्हीतव्यो रप्योऽमोव इति स  
एव ध्रुव र्हीत एव कल्पः । चंद्रयुधोपरागो वस्त्रं पाचते एव चंद्रयमात्रं धामाव्यव एतेषु चतुर्धसि अहोरत्नं सज्ज्यायो न कियते विधावगुञ्जितवोति  
एव—दिवादीने वायव सा वहा वायोतावप्यदेव विद्यते यथाऽप्येवमवयवादिषेसु, सुभावाद्युज्ज विधि

संखं न करोति, क्षणं भवति-सुखयपरिसे सुखयवधिप य अहोरत्ता पंच, फुसियपरिसे सच, अभी पर आवकाय भायिए सवा चेडा निरंमसिचि गार्थार्थः ॥ २१७ ॥ कह १—

वासत्ताणावरिया निष्कारण ठंति कझि जयणाए । हरथपंगुलिसत्ता गुत्तापरिया व भासंति ॥ १३३० ॥

इयाख्या—निष्कारण वासाकर्ण—कवली(वा)ए पावया निद्रया सवभवते विव्रति, अवरसकायमे पचमे वा कज्ज इमा जयणा—हस्तेण भमुदादिअच्छिदियारेण अगुलीए वा सत्ताचि—इमं करोति, अह एव जावगच्छह, सुहपोत्तीयभंत रियाए जयणाए भासति, गिठानादिकज्जे वासाकप्पपावया गच्छति चि ॥ १३३० ॥ सजमपाएचि दार गय । इयानि वप्पाएचि, तत्थ—

पसू अ मंसरुहिरे केससिलावुडि तह रजगपाए । मसरुहिरे अहोरत्ता अवसेसे जयिए सुत्त ॥ १३३१ ॥

इयाख्या—पूलीपरिसं मंसवरिस रुहिरवरिस 'केस'चि केसवरिस करणादि सिलावरिस रजगपाएव च, एयंसि इमो

१ सर्वे व करोति अन्त्ये मयमिह-मुहुरवर्णे मुहुरवर्तिने व अहोरात्राणि दद्या विभुवर्णे सच अत्ता एवमकारणभावितावाए सर्वालेटा विव्रति । कथं । भिन्ना रत्ते जयंकत्ता—कम्बका तेव दावुता भिन्नात्ता सर्वात्तपरे विव्रति अवसरकर्तव्ये अवरसकायमे वा कर्त्त इव अत्ता—इत्येव भद्रुत्तामसिसे करोत्तागुत्ता वा संयवमिह—इदं कुर्वति अर्थे वावगच्छति मुक्ताविक्रयान्तरितत्वा एवमपा मावन्ते नकादिकर्त्ते कर्त्तकत्तापावुता यच्छुधीहि । संयवपावक इति इति सच । इदानीमात्तासिकमिसि तत्र पूजितवर्णे मासवर्णे रुहिरवर्त्तः केसोहि केसवर्त्तः काकाणि सिकावर्त्तः रत्तएवपावयत्त व एवपावर्त्त

परिहारो-मंचरहिते अदोख सञ्ज्ञाओ न कीरह, अगवेसा पमुमाइया अछिह काळं पढंति तच्चिदं काळं सुचं मीदिमाइसं न पढंतिहि गाथार्थः ॥ १३३१ ॥ पंसुरसुगथायाण इमं यकज्जाण—

पसू अचिचरओ रयसिखलाओ विसा रज्ज्याओ । तस्य सत्ताए निम्मापए ए सुचं परिहरति ॥ १३३२ ॥

व्याख्या—पूमागारो आपसुरो रओ अचिचो ए पसू अणइ, महासकज्जाधारगमनसमुज्ज्वल इव विमसापरिणामतः समन्ताद्देशुपवन रज्जवद्भातो अणपसे, अइया एष रओ उज्जाडव पुण पंसुरिया अणइ । एएसु वायसहिएसु विजाएसु या सुचपोरिसिं न करेविचि गाथार्थः ॥ १३३२ ॥ किं वान्यत्—

सामाधिप निधि दिणा सुगिणइए निविस्सवति जइ जोग । नो तमि पढलमी करति सब्बउरकज्जाए ॥ १३३३ ॥  
व्याख्या—एए पंसुरवज्जपाया सामाधिया इयेज्जा असामाधिया वा, सस्य असकज्जाविजा ने निम्मापसूमिकंपत्तं दोपरागादिदिपसहिया, एरिसेसु असामाधिएसु कएवि वत्समो न करेति सञ्ज्ञार्थं, 'सुगिणइए'सि यदि पुण चिचसुज्जपकख-दसमीए अवरणइ जोगं निक्खसिपति एसमीओ परेण आव पुणिमा एत्थंउरे विविध दिणा इवकसति अचिचरवज्जपाइयाए

१ धर्मराजः-मोउर्ध्ववरादोतास स्वावलो न विपव अवेरोया पोराधिका थावविहं काळ पवन्नि तासत्तं काळं एत्थं-अज्जाधिपं न पढंतीति ।  
शीघ्ररज्जवज्जामिदं उवाचएण-पूमाकार आपणइस रज्जः अचिचस पंसुमंएवते अवेरेए रज्ज कूदावसु दुका शीघ्रिक पण्यते एतेए वाजसहिरेडु मिवाउडु वा सुववाक्यो न कोटीति । एता शीघ्ररज्जवज्जपाया स्वाभाविको अवेतासज्जासाधिको वा उवाचआधाधिकी दो निर्वाणसूक्ष्मरज्जोरेतासादि दिपसहिना । ईदमथास्वामिकथाः कुपयि कावोसत्तं न कुर्वन्ति स्वाधार्थं सुधीप्सक इति यदि गुणमेवमुदपादरज्जवत्ता अतादे वेत्तं विविधमिद एवमेव । अतः वायव्य इतिमा अमान्तर मीत्र विपसाइ इत्युपरि अचिचरवज्जपावत्तार्थे

पण्डितेहणादिकाधि चेद्वा कीरह, इयरेसु चतसु असम्भारएसु अहो ते धवरो पुरिसा रथाहसु धेय अणासाइणिआ सदा  
 तेसु सम्भारो धेय न कीरह, सेसा सवा चेद्वा कीरह आयस्सगादि चक्कालिय च पण्डिआइ । महियाइतिविहस्स सज्जभोय  
 पाइस्स इमं धक्खाणा—

महिया उ गम्भमासे सच्चित्तरओ अ ईसिआयंथो । वासे तिथि पयारा मुनुअ तक्कअ फुसिए य ॥६१३॥ (भा०)  
 व्याख्या—‘महियं’चि धूमिया, सा य कच्चियमगगिराहसु गम्भमासेसु इवह, सा य पढणासमकाळ धेय मुद्दम  
 सणओ सबं धावकायभावियं करोति, तस्य तक्कालसमयं धेय सबवेद्वा निकमंति, धवहारसच्चित्तो पुढयिकाभो अरणा  
 वावक्खओ आगभो रओ भवह, तस्स सच्चित्तलक्खण यण्णओ ईसिं आपधो विसंठरे दीसइ, सोवि निरतरयाएण विण्हन्ति  
 विणाण परओ सब पुढवीकायभावियं करोति, तत्रोत्थावथाइत्तंभवध । भिजधासं तिविहं—मुद्ददादि, अरय धासे पढमाण  
 तदने मुद्ददा भवन्ति त मुमुयवरिसं, तेहिं वज्जियं तवज्जं, सुद्दमफुसारोहिं पढमाणोहिं फुसियवरिसं, एतेसिं जहासतं

१. मतिवेज्जनादिकामसि चेद्वा क्रियते इत्येतु अणुं अज्जाआधिकेण यथा ते जत्थाण उरुवा रज्जादिपेयानासाववीयाहवा देवु सत्ताज्जाव इव न क्रियते  
 शेया सवर्गं चेद्वा क्रियते आत्तस्यकाहिं अज्जाधिकं च एज्जते । माहिकादिभिरिज्ज सत्तमोपपादिकभेद आत्तस्य—माहिकेति पूर्विका सा च कण्ठकम्मार्गोत्तर  
 भादियु गर्भमासेषु भवति, सा च एतत्तसमकाळमेव सूरमाराए सर्वपक्कावभासितं करोति, तत्र तक्कालसमयव सवर्गं यदा भिज्जादि धवहारसच्चित्तः  
 पुढवीकाय आत्तस्यं वापुद्दह भागत्वं रओ भवत्ये तत्र सच्चित्तलक्खण सर्वव ईवरात्तां वियज्जते एवमेव भिज्जनायत्तव भिज्जनायत्तवः सर्वं पुढवीका  
 पमासितं करोति । सित्तवर्गः विलिखः एव सर्वं एतदिह वदुके मुद्ददा भवन्ति सत्तलक्खणं, तेर्विज्जता तद्वर्गः सूरधैरिपुत्तिः पवन्तिः विपुलवर्गः । इत्येतां ज्जासंस्स



तिष्ठन्पञ्चस्यविष्णवरभो स्वर्गं आनन्दकामसावित्रं भवद् ॥ १३२९ ॥ संवत्सरावत्स सखभेक्षणं इमो ज्वलविष्टो परिहारो-  
'देव क्षेत्रे' पञ्चकर्म, अस्य व्याख्या—

दृष्ट्वे त विप दृष्ट्व चिन्ते जद्विप तु जश्चिर काल । ठाणाइभास मावे मुंणु वस्सासुवम्मसे ॥ १३७ ॥ ( मा० )

व्याख्या—दृष्ट्वभो सं क्षेत्र दृवं महिषा सखिचरभो भिष्णवासे वा परिहरिज्जद् । क्षेत्रे जहिं पद्वरुसि—जहिं क्षेत्रे संमहि  
याद् पद्वरु जहिं क्षेत्र परिहरिज्जद्, 'जश्चिरं काठंति पद्वणकाठामो जारम्म जश्चिरं काठं भवति ठाणाइभास मावे'ति  
भायभो 'ठाण'ति कावस्सगां स करोति, न य भासद्, आइसद्भावो गमणपदिवेइणसक्कायादि न करोति, 'मोसुं  
वरसासवम्मसे'ति 'मोसुं' ति ण पद्विचिगमाति वस्सासाविषा, अणक्कत्तात् क्षीयितव्यायातक्त्ताच्च, क्षेत्रा क्रिया सर्वा  
निविध्यन्ते, एव वस्सागपरिहारो, आइण्णं पुण सखिचरए विविण भिष्णवासे विविण पव सख विणा, भव्यो परं सक्कायादि

१ विरजस्सोदेवभा वराहा सर्वे अस्सपयभाविं भवति संवत्सरावत्समां सर्वेदेवावत्सवं चतुर्विक्का परीहारा—इण्यवकोइव इण्य जहिंका जश्चिररभो  
भिज्जत्तो वा पमिंइएव क्षेत्रे वव पवति—एव क्षेत्रे वव महिकादि पवति वर्धन पमिंइवते वापश्चित काठमिंति पवत्तकाठवत्तत्त वापश्चित काठ भवति  
स्याकर्मभावा भाव इति भावता स्यामिभिदि काठोच्छेदं न करोति, न न भावते जश्चिररुणए पमवमिंतिदेववाप्याप्यामिं न करोति मुक्कभोण्णसोमेवरा-  
मिंति मुक्कवदि न ममिंतिप्यन्ते वपुंसाइया ( नृप वत्तवमिंतिदेवरा आवात्ता पुण जश्चिररभमिं क्षीयि भिज्जत्ते क्षीयि पव सख दिवामि वत्ता वी ज्ञा-भावामिं  
० "क्षेत्रे आई वरद् अवि । काठ इमदि पुणकमरे । + "मोसुं वस्सासवम्मसे" इति यावत् ।

सेहंगति, जहा मेच्छो तहा असम्भाओ महिगादि, जहा रयणधणाह तहा पाणादीणि महिगादीहि भाविहीकारिणो हीरसि गाथार्यः ॥ १३२५ ॥

धोयावसेसयोरिसिमज्जयण भावि जो कुणह सो व । पाणाहसाररहियस्स तस्स छलणा व ससारो ॥ १३२६ ॥  
 व्याख्या—‘धोयावसेसयोरिसि’ कालयेज्जसि जं भणियं होइ, एव सो जसि सवधो, अज्जयणं—पावो भाविसइ।ओ वक्खणां भावि ओ कुणह आणादिउपणे पाणाहसाररहियस्स तस्स छलणा व ससारोसि—पाणादिवेकज्जयणओ धेय गाथार्यः ॥ १३२६ ॥ तन्नाऽऽद्यद्वारावयवार्थप्रसिपादनायाह—

महिंया य भिन्नवासे सधिसरए य सज्जमे निविह । दब्बे स्थिते काले जहिय वा जसिरं सच्च ॥ १३२७ ॥  
 व्याख्या—‘महिंया’सि भूमिगा ‘भिन्नवासे य’सि जुहुदादो ‘सधिसरए’सि अरण्ये पावहुवपुढविरएसि भणियं होइ, सज्जमपाइयं एवं विविह होइ, इमं च ‘दब्बे’सि तं येव दब्बं महिगादि ‘क्षेत्रे काले जहिं वे’ति जहिं एत्थं महिगादि पढइ

१ येषकमिति यथा महेच्छकावाऽऽज्ञायासो महेकानिः यथा रज्जयवानी तथा ज्ञानादीनि महेकाभिभूतविधिकादीनो द्विरन्ते । कोपावरोषा दीर-  
 यीति काकवेहेति वज्रमिख मवसि पूर्व स विवधिसम्भवाः अथयत्वं पादः अधिपत्यत्वाद् व्याख्यातं नाति या करोति अय्यापुठहने यानार्थसादृशित्वं तस्य  
 उक्त्या तु संसार इति ज्ञानादेर्वैक्यपादेव । महेकेति भूमिका भिन्नवर्थासि विहुदादौ ललितं ललितं एव इति अरण्ये जातोदृतं दुष्पीतइ इति भस्मिदं भवति  
 संयमपाठकमेव विविधं सवति इत्थं च रूप्य इति एतेव रूप्यं महेकानि क्षेत्रे काले यत्रवेति एव क्षेत्रे महेकानि पठन्ति



संज्ञं गति, जहा मेच्छो तहा असज्जाओ महिगादि, जहा रयणधणाइ तहा पाणादीणि महिगादीहि अविहीकारिणो हीरति गाथार्यः ॥ १३२५ ॥

योधावसेसपोरिसिभज्जयण धावि ओ कुणइ सो व । पाणाइसाररदियस्स मस्स छलणा व ससारो ॥ १३२६ ॥  
 व्याख्या—‘योधावसेसपोरिसि’ काळवेळचि ज भणियं होइ, एव सो वचि संबंधो, अरज्जयण—पाठो आयिसइ।ओ वक्खलाण धावि ओ कुणइ आणादिळंघणे पाणाइसाररदियस्स तस्स छलणा व ससारोचि—पाणादिक्कलसणओ चेप गाथार्यः ॥ १३२६ ॥ तत्राऽऽद्यद्वाराधयवार्थमतिपादनायाह—

महिपा य भिन्नवासे सधिररए य सज्जमे तिधिव । दब्बे सिस्से काळे जहिय धा जधिर सव्व ॥ १३२७ ॥

व्याख्या—‘महियं’चि धूमिगा ‘भिन्नवासे य’चि कुहुंदादौ ‘सधिररए’चि अरण्ये वावहुंयुद्धधिरएचि भणियं होइ, सज्जमयाइयं एवं त्रिविधं होइ, इमं च ‘दब्बे’चि त वेव दब्बं महिगादि ‘सेस्से काळे अहिं ये’चि अहिं सेस्से महिगादि पढइ

१ वेपकमिस्ति यथा म्हेच्छुज्जावाभवाप्यापो महिकामिः यथा रसयनादि यथा शाखादीनि महिकामिभरक्षितिकामिभ्यो द्विरन्ते । क्रीडावसंघा वीर-  
 दीति काकवेळेसि यत्नमेव मरति पुरं स सिद्धिसम्पन्नाः अल्पवय पाठः अतिप्रवृत्ता एवाक्याना धावि या करोति अत्यायुतं इवे यावार्धसारदिवस इत्य-  
 उक्तवा तु संसार इति शान्तोर्देहव्यादेव । महिकेति प्रथिका शिष्यवर्गमिति कुहुंदादौ एति एतिच रज इति अरण्ये वातोद्भूतं दृग्भीरज इति मन्त्रितं भवति  
 संयमवाचकमेव विभिन्नं मरति इव च दृष्य इति एदेव दृष्यं महिकामि भेदे काळे यथेवेति—एव भेदे महिकामि एतन्नि

तेरथ दिहवो, पोसणपमिच्छ इस्सावेर्गाथाअऊस्सार्थः कथानकावसेव इति गायसमुदायार्थः, अनुना गायपञ्चार्थव  
 नवार्थमतिपादनामाह—

मिच्छन्नमयपोसण निवे हियसेसा ने उ वंइया रण्णा । एवं बुद्धओ दढो सुरपच्छित्ते इह परे य ॥ १३२४ ॥  
 व्याख्या—किमप्यद्विषं पापरं, अियसप् राया, तेण सविसए पोसाविषं अहा मेव्हो राया आगच्छह, वो गामकूळ-  
 णयराणि भोयु सभासंने दुगगे ठायह, मा विणसिअहिह, के तिया रण्णो वयणेण दुगागविसु ते य विणङ्का, के पुण ण  
 तिया से मिच्छया(पार्हे)हि यिहुत्ता, ठ पुणो रण्णा आणामंगो मम कभोसि वंसि केचि हियसेसं वंसि दइया, एवमसस्साए  
 सस्साय करेत्तरस जमभो दढो, सुरसि देवया पउअह पच्छित्तेसि—पायच्छित्तं न पावह इहसि इहकोए परेसि परकोए  
 णाणादि यिकउसि गाथार्थः ॥ १३२४ ॥ ( १९५०० ) इमो दिहवोषणओ—

राया इह मित्थयरो जाणयया साह पोसण सुत्त । मेव्हो य असक्काओ रयणवणाहं न भाणाहं ॥ १३२५ ॥  
 व्याख्या—अहा राया तहा तिरयपरो, अहा जाणयया तहा साह अहा पोसण तहा सुत्तं—असक्काए सक्कापपदि

१ अह एहात्ताः । मिथिमिथिविदं भगवं विठसह एताः तेन समिधये कोपितं यथा म्हेच्छो एता आपयन्ति ततो मामभूकन्नपराधीनि सुखदा समासहे  
 दुयं विवृज भा सिनहुव से भित्ता एणो वचनेन युगीयु ते न भित्ताः ये दुवर्ग भित्तासे म्हेच्छयथिमिदं विवृजः ते दुवा एता आणामन्ने मम कुव इति  
 वरसि किमपि कवणं वरसि दइइत्ता। एवमसस्सायदि के कावणं कुवेत्त तमपरो वराः सुर इति देवता मक्कासि भायदिअमिदि मायदिअ न मायोसि  
 दइति दइत्ताह वर इति वरकोट मायादीनि भिककाणीनि । अयं एहाणोपपत्तः यथा एता तथा वीर्यको यथा आनपदात्ता वाचयो यथा कोल्लं तथा  
 एतं अजाप्यादि के स्वाभ्यायमिदि—

व्ययनकाल सक इति, अस्याध्यायिके स्वाध्यायितं ॥ किमिदमस्वाध्यायिकमित्यनेन प्रस्तावेनाऽऽद्यात्ताऽस्वाध्यायिकमिति  
किरित्यस्यामेवाऽऽद्याद्वारागाथा—

असज्जमादयनिजुत्सी जुञ्जामी वीरगुरिसपणस । ज नाकण सुविदिया पषपणसार उवलहति ॥ १३२१ ॥  
असज्जमाय हु बुविह आयसमुत्थ च परसमुत्थ च । ज मत्थ परसमुत्थ त पचविह हु मायव्यं ॥ १३२२ ॥

व्याख्या—आ अभ्ययनमाभ्ययनमाध्यायः शोभन आध्यायः स्वाध्यायः स एव स्वाध्यायिकं न स्वाध्यायिकमस्वाध्यायिकं  
तत्कारणमपि च कथिरादि कारणे कार्योपचारात् अस्याध्यायिकमुच्यते, तदस्वाध्यायिकं द्विविधं—द्विप्रकार, मूढभेदापे  
क्षया द्विविधमेव, द्वैविध्यं प्रदर्शयति—‘आयसमुत्थं च परसमुत्थं च’ आत्मनः समुत्थं—स्वप्नगोचरं कथिरादि, चशब्दः  
स्वगतानेकभेदप्रदर्शकः, परसमुत्थं—संयमपातकादि, चः पूर्ववत्, तस्य च परसमुत्थं—परोक्षं तं पचयिषं नू—पञ्चमकारं  
‘मुणेयवं’ ज्ञातव्यमिति गार्थार्थः ॥ १३२१—१३२२ ॥ तच्च बहुवचनत्वात् परसमुत्थमेव पद्यमिषमादावुपदर्शयति—

संजमपातवयाप साविष्ये जुग्गहे य सारीरे । पोसणपमिच्छरणो कोहं छल्लिओ पमाएण ॥ १३२३ ॥

व्याख्या—‘संयमपातकं’ संयमविनाशकमित्यर्थः, तच्च महिकादि, सत्यातेन निर्दुषमोत्याधिक, तच्च पांशुपावादि, सह  
दिव्यैः सादिव्य तच्च गन्धर्वनगरादि दिव्यकृतं सादिव्य वेत्यर्थः, जुग्गहमेति जुग्गह—सन्नामः, असापच्यस्वाध्यायिकनि  
मिच्छत्वात् सपोच्यते, सारीरं तिर्यगमनुप्यपुत्रजादि, द्यंति पंचविह असज्जमाप सज्जमायं करोसस् आपचअमपिराहणा,

असक्यो होह कायवो ॥ २ ॥ प्राण धर्मद्वारेण सुताप्तावनोका इह तु स्वतन्त्रविषयेति न पुनरुक्तं । सुतदेवताया आत्मा  
 वनया, क्रिया पूर्ववत्, आप्तावना तु सुतदेवता न विषयेऽकिञ्चित्करी वा, उच्यते—न इतिविधितो मीनिम्नः स्वस्वामिः  
 अवोऽसाक्षि, न चाकिञ्चित्करी, तात्पर्यमप्य प्रसक्तमनसः कर्मव्यवर्धनात् । आत्माचार्यस्याऽऽप्तावनया, क्रिया पूर्व-  
 वत्, तत्र आत्माचार्यो एवाध्यायसंदिष्टो य उद्देशादि करोति, आप्तावना स्थिर-निर्गुणसुखः प्रसूतान् वारान् वन्दनं  
 दापयति, उच्यते—धृतोपचार एषः क इव सत्याग्र दोष इति—

अं वादद् वदामेलिय हीणकस्तरिय अक्षयस्तरिय पयहीण विणयहीण पोसहीण जोगहीण सुदुषिषं दुहु  
 पदिच्छिय भकाछे कभो सज्जसाभो काछे न कभो सज्जसाभो असकसाप सज्जसादयं सज्जसाप न सज्जसादयं सस्स  
 मिच्छापि दुक्कद (सूत्र)

एष वोदस सुचा पुमिदिया य एणूणयीसति एष वेणीसमासायणमुचयि । एवानि चतुर्वसू सज्जसा सुतक्रियाकाक-  
 गोचरस्याग्र पुनरुक्तमाश्रीति, तथा दोषदुष्टपदं सुत पदधीत, तद्यथा—न्यायिदं विपर्यकारकमाहावद्, अनेन प्रकारेण  
 पाऽऽप्तावना तथा हेतुभूतया योऽसिच्चारः कृतस्वस्य सिध्यानुकूलमिति क्रिया, एवमन्यत्रापि योग्या, अस्यावेदितं  
 कोलिकपायसपदं, दीनासरम्—अक्षरन्पुनम्, अत्यक्षरम्—अधिकोचरं, पदहीनं—पदेनैषोर्न, विनयहीनम्—अकृतोचितवि-  
 नय, दोषहीनम्—उदात्तादिदोषरहितं, योगरहितं—सम्पगाद्वययोगोपचारं, सुषुप्तं गुरुणा दुष्टं प्रतीच्छितं कष्टविवान्तरा  
 रमनेति, अत्राछे कृतं स्यात्पायो—यो यस्य सुतस्य कालिकादरकाछ इति, काछे न कृतः स्यात्पायो—यो यस्याऽऽप्तावीपोऽ-

रातीतभेदाः, एकार्थिका वा अन्वय इति, आस्तावता तु विपरीतप्रकरणविनैव, तथाहि—अनुष्ठपर्वमात्रो द्वीन्द्रियाधारमेति,  
 पुथिभ्यादयस्त्वञीवा एव, स्पन्वनादिधैतन्मकार्यानुपलब्धेः, अीयाः क्षणिका इति, सत्त्वाः संसारिणोऽनुष्ठपर्वमात्रा एव  
 भवन्ति, ससारतीता न सन्त्येव, अपि तु प्रध्यातदीपकस्थोपमो मोक्ष इति, वसर—देहमात्र एवात्मा, सर्वत्र सुखदुःखा  
 दिवत्कार्योपलब्धेः, पुथिब्यादीनां स्वल्पवैतन्यत्वात् कार्यानुपलब्धिर्नास्तीत्यदिष्टि, अीया अप्येकान्तक्षणीका न भवन्ति,  
 निरन्वयनाथो वसरक्षणस्मानुरपथेर्निर्दुक्तत्वादेकान्तनष्टस्यासद्विशेषत्वात्, सत्त्वः ससारिणः ( देहप्रमाणाः ), प्रमुक्ता एव  
 ससारतीता अपि विद्यन्ते एवेति, जीवस्य सर्वथा विनाशमात्रात्, तथाऽन्यैरप्युक्तं—“नासतो विद्यते भाषो, नामाया  
 विद्यते सतः । उभयोरपि दृष्टोऽवस्तवनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १ ॥” इत्यादि । कालस्याऽऽद्यावत्तया, क्रिया पूर्ववत्, आद्या  
 तना तु नारत्येव काल इति कालपरिणतिर्वा विभवमिति, तथा च दुर्नयः—“काल पश्चाति भूतानि, कालः संहरत  
 प्रजाः । कालः सुसुप्तु जागर्ति, कालो हि पुरतिक्रमः ॥ १ ॥” इत्यादि, वसर—कालोऽस्ति, समन्तरेण प्रमुलचरकादीनां  
 नियतः पुण्यादिप्रदानभावो न स्यात्, न च तत्परिणतिर्विभ्वं, एकान्तनित्यस्य परिणामानुपपत्तः । सुतस्याऽऽस्तावत्तया,  
 क्रिया पूर्ववत्, आस्तावता तु—को आनरस कालो ! मल्लवत्प्रयोगे य को कालो ! । अह मोक्षतद्वत् नाण को कालो  
 तस्सऽकालो वा । १ ॥ इत्यादि, वसर—जीवो ज्ञिणसासर्णमि दुक्त्वस्वथा एव सर्वतो । अण्णोणमवादाए

१ क आनुरस ( अीयाद्याथे ) कालो न किनामरमकाकते च का कालः । वसि मोक्षहेतुर्वा न काल आलोऽकालो वा ? ० १ ॥ २ इत्यथपकात्मात्  
 प्रमुत्तमात्रो योयो विनसासदे योम्य । अण्णोऽम्यावापया



अस्यचो होर कायचो ॥ २ ॥ प्रायः धर्मद्वारेण शुभासावनोक्ता इह तु स्वतन्त्रविषयेति न पुनरुक्तं । सुखदेवताया आद्या  
 वनया, क्रिया पूर्ववत्, आसावना तु सुखदेवता न विद्यतेऽकिञ्चित्करी वा, वचरं—न जनयिष्यते मोनीन्द्रः स्वस्थानम्  
 अवोऽसावक्षि, न चाकिञ्चित्करी, तामात्रमप्य प्रयत्नमनसः कर्मण्यदर्शनात् । वाचनाचार्यस्याऽऽसावनया, क्रिया पूर्व-  
 वत्, सद्य वाचनाचार्यो सुपाध्यायसंविदो य वरेणादि करोति, आसावना स्थिरं-निर्गुलसुखः मनूतान् वारान् वन्दनं  
 दापयति, वचरं—सुतोपचार एव । क इय सस्याद्य दोष इति—

अं वारद वचामस्थिय हीणकस्त्रिय अश्वकस्त्रिय पयहीण विणयहीणं योसहीणं जोगहीणं सुहृदिकं दुहृ  
 पविच्छिप्य अकाष्ठे कञ्जो सज्जमाथो काष्ठे न कञ्जो सज्जमाथो असज्जमाय सज्जमाय सज्जमाय न सज्जमाय न सस  
 मिच्छामि दुकट (सूत्र)

एव चोदस सुखा पुमिद्विषया य पपूणयीवति एव तेवीसमासायणसुखवि । एषानि असुखं सूचयति । सुखकिपाक्य-  
 गोचरत्वात् पुनरुक्तमाश्रीति, तथा दोषदुष्टपदं सुख यदपीतं, सद्यथा-अप्यविदं विषयस्वरत्नमावाहय, अनेन प्रकारेण  
 पाऽऽशावना तथा हेतुभूतया योऽविचारः कृतस्तस्य मिथ्याबुद्ध्यमिति क्रिया, एवमन्यत्रापि बोध्या, अस्त्यन्वेति  
 कोलिकपायसपदं, दीनास्तरम्-अक्षरन्मन्, अत्यक्षरम्-अधिकारं, पदहीन-यत्नेवीनं, चित्तपहीनम्-अकृतोचितवि  
 नयं, पोषदानम्-उदात्तादिपोषरहितं, योगरहितं-सम्यग्गदवयोगोपचार, सुषुप्तं शुरुणा दुष्ट मतीच्छितं कष्टपितान्तर-  
 मनेति, अकाष्ठं कृतं स्यात्पायो-यो यस्य सुखस्य काश्चिदोदरकाष्ठ इति, काष्ठे न कृतः स्यान्मायः-यो पस्याऽऽस्मीयोऽ

१ अपरतो भवति कष्टतः य इ न पुनरपि असुखं यथासि त्रकाञ्चिद्विषयः पुनरपि अपविच्छिप्यत्वात्वावधारयामि

सन्ममणुसरताण । आगमयिदि महत्थं जिणयणसमादियण्णं ॥ ४ ॥ भावकाणमाशातनया, क्रिया तथैव, जिन्नासन्  
 भक्ता गृहस्थाः श्रावका तच्चन्ते, आशासना सु-सम्पूण माणुसत्वं नाकणयि जिणमयं न ओ यिरई । पटियज्जति कइं वे  
 धण्णा बुद्धंति लोणमि ? ॥ १ ॥ सावगसुत्तासायाणमणुसरं कम्मपरिणइवसाओ । अइयि पयज्जति न स सदायि पण्णसि  
 मग्गठिया ॥ २ ॥ सन्धरदर्शनमार्गस्थितत्वेन गुणभुक्त्वादित्यर्थ, भ्रायि क्काणामाशातनया, क्रियाऽऽक्षेपपरिहारो पूर्वपद,  
 देवानामाशातनया, क्रिया तथैव, आशातना सु-कामपसत्ता यिरई यज्जिया अणिमिसया (१) निच्छिदा । देवा सामर्थ्यमिपि  
 न य तितयस्सुसइकरा य ॥ १ ॥ एत्थ पसिद्धी मोहणियसायवेयणियकम्मवदयाओ । कामपसत्ता यिरई कम्मोदयव चिय  
 न वेसिं ॥ २ ॥ अणिमिस देवसहाया निच्छिदाणुसरा च कयकिंया । कालाणुभाया तिरुसईयि अन्नरथ बुज्जति ॥ ३ ॥  
 देवीनामाशातनया, क्रियाक्षेपपरिहारो प्राग्वत् । इहलोकस्याऽऽशातनया, क्रिया प्राग्वत् । इहलोको-मनुष्यलोक, आया  
 तना तस्य पितृयमकृपणादिना, परलोकस्याऽऽशातनया, प्राग्वत्, परलोक-नारकतिर्पणमरा, आशातना तस्य पितृयम  
 कृपणादिनैव, द्वितयेऽप्याक्षेपपरिहारो स्वमत्या कार्पो । कैवल्यप्रज्ञासस्य धर्मस्याऽऽशातनया, क्रिया प्राग्वत्, स च धर्मो

१ साम्यानुसरता । आगमयिदि महार्थं शिवरत्नसमादितामन्ता ॥ ४ ॥ कठणा मनुष्य शालाग्र्ये शिवरत्नं च वे तिरिति । दर्शनपदत्वे कर्त्तुं ते धर्म्या  
 इत्यस्ये क्योक्ते । ० १ ० भावकाणावकासुधमयोत्तरं कर्मपरिवर्तितयात् । यद्यपि च तां प्रतिपद्यन्ते तथापि यस्या मार्गस्थिता इति ॥ १ ॥ कामपसत्ता तिरास ।  
 बहिर्वा अन्निमेया सिधेष्टाश्च । देवाः सामर्थ्येऽपि च तदीर्यावति कारकाश्च ॥ १ ॥ अयोचरं मोहवीर्यसावरेदीयकर्मोदयात् । कामपसत्ता तिरिति कर्मोदव  
 एव य तेषाम् ० १ ० अन्निमेया देवसाभास्यात् शिधेष्टा अणुजास्तु कृत्वन्त्या । कात्यानुभावात् तदीर्यावतिमपि अत्रैव कुर्वन्ति ॥ १ ॥

विधिषः—सुतधर्मभारिजधर्मश्च, आद्यातना तु—पापसमुच्चनिवर्त्तं को वा आणेइ पणीय केणेयं ? । किं वा वरणेण दू पाणेण विणा व हवइति ॥१॥ वत्तर—“वाडकीभूढ (मन्त्) मूर्त्तार्णं, नृणां चारिमकाङ्क्षिणाम् । अनुमदार्थं तत्त्वज्ञैः, सिद्धास्तः प्राकृतः कृतः ॥ १ ॥” निगुणधर्मप्रतिपादकत्वाच्च सर्वज्ञप्रणीतत्वमिति, वरणमाक्षिप्त्वाह—‘दानमीरक्षिकेणापि, बाण्ढावेनापि दीयते । येन वा तेन वा दीळि, न शक्यमभिरक्षिमुम् ॥ १ ॥ दानेन भोगानामोति, यच्च यत्रोपपद्यते । कीडेन भोगान् स्वर्गे च, निर्याणं आधिगच्छति ॥ २ ॥ तथाऽभयदानदाता चारिप्रयाक्षिपत एवेति । सर्वमनुज्यासुरस्य लोकास्ताऽऽश्वा तनया, क्रिया मावत्, आद्यातना तु विवयप्रकणगादिना, आह च भाव्यकारः—

देवादीय लोप विपरीय भणइ सत्तवीवुदही । तह कइ पयावईण परईरुसि साण जोगो वा ॥ २१३ ॥

उत्तर—सत्तत्तु परिमियसत्ता मोक्खो सुणत्ताण पयावइ य । केण कवत्तज्जावत्ता पयदीए कइ पबिस्सिस्सि ? ॥ २१४ ॥ जमभेयणासि पुरिसरथनिमित्त किंल पयससी सा य । मीसे विपय अपविस्सो परोस्सि सव्वं विपय विक्ख्वा ॥ २१५ ॥ (आ०)

सर्वमाणभूतजीवसत्त्वानामाद्यातनया, क्रिया मावत्, तत्र प्राणिनः—दीर्घिद्रयादयः व्यकोच्छुत्तानि भ्वासा अनूचन् भवन्ति भविष्यन्ति चेति भूतानि—शुधिन्मादयः जीयन्ति जीया—आयुः कर्मानुभवयुक्ताः सर्व एवेत्यर्थः सत्त्वाः—संसारिकसंसार-

१ प्राकृतः सुवर्धितव्य इति को वा जगत्तमं कर्तुं प्रणीतमिति । किं वा चारिप्रकाङ्क्षिणाम् अनेन विना भवति इ ॥ १ ॥ देवादीक कोच विपटीतं भवति सत्तं दीपारवयः । तया इतिः प्रजापतः प्रकृतिगुणरथो संबोधा वा ॥ १ ॥ वत्तर—सत्तत्तु परीक्षितः सत्त्व जगत्तमः सूक्ष्मत्वं वा प्रजापतिव्य । केच कृत इत्यनवस्था प्रकृतः कथं प्राकृतिर्भवति ? ॥ २ ॥ पदवत्तवेति गुणार्थमिति किञ्च प्रवर्त्तते सा च । तस्मा एवाप्राकृतमिति सर्वमेवेति विवद्वत् ॥ ३ ॥

धा सद्वाची अहव चयओगे ॥ १ ॥ रागदोसभुवत्ता तद्वेध अणत्तकालमुपभोगो । दसणणाणार्णं सु दोइ असवणुया  
 च्वेव ॥ २ ॥ अण्णोण्णावरणम(सा)वा एगस वाधि पाणदसणभो । अण्णइ नपि एएहिं दोसो एगोधि सभयर ॥ १ ॥  
 अस्थिति नियम सिद्धा सद्वाभो च्वेध गममए एवं । निच्छिद्धावि भवतो धीरियकूत्सयभो न दोसो इ ॥ ४ ॥ रागदोसो न भय  
 सवकसायाण निरवसेसखया । जियसामवा ण जुगवमुवभोगो नयसयाभो य ॥ ५ ॥ न पिइआवरणाभो दवद्धिनयस्स  
 वा मयेण इ । एगत्त वा भवई दसणणाण दौण्हसि ॥ ६ ॥ पाणाय दसणणए पडुव पाण हु सयमेयेय । सव च दस  
 णती एवमसवणुया का च ? ॥ ७ ॥ पासणय व पडुव्वा जुगव तवभोग दोइ दौण्हसि । एवमसवणुया एसो दोसो न सभ  
 वइ ॥ ८ ॥ आचार्याणामाशातना, क्रिया पूर्ववत्, आयातना हु—इदरो अकुलीणोसि य हुन्मेहो दमगमदुद्धिसि । अपि  
 यत्पलाभलब्धी सीसो परिभवइ आयरिए ॥ १ ॥ अहवाधि वए एव चयएस परस्स देति एवं हु । दसविहययायय कायय

१ वा सद्वा वाग्नि वययोगेऽयका २ २ सुवतात्पणत्ताधीराभ्याम्यकाल वययोपात् । दसंकावयोस मवसवसंवेदव २ २ ३ भयभोऽभावाकशः वा  
 एकल वास्ये श्वावर्द्धनयोः । अणपठे वदेतेषां दोष एकोऽपि संभवति ३ १ ३ सन्धीति निरमलः सिद्धा एगपाएव एगमस्य वृत्तम् । सिद्धा अपि भवति  
 धीर्यअपठोर्निव दोषः ३ ४ ३ रागदोषा न सत्तां सवकसायाणां निरवसेपअयात् । धीर्यसत्ताभावात् वियदोगदीपयत्तं वयमवात् ३ ५ ३ व दसनावाणात्  
 (दुस्सय) दस्यार्थिकवयस वा भवेत्त इ । एकल वा भवति शान्तपूर्ववदोर्दौरोति ३ ६ ३ शान्तव प्रतीत्य सद्देवेष्ट्यात्तं दसंभवत्तं वदीत्य वदंयदेर एतेन  
 सिद्धि एवमसवसंजला का गुणं ३ ७ ३ परपठो वा मदीत्य जुगपदुपयोगो भवति इत्येति । एवमसवसंजला पृथ दोसो व संभवति ३ ८ ३ वाकोऽनुधीन इति च दुर्मेका  
 प्रमत्ते सम्पुद्धिसिति । अपि वात्सल्यभावात्तद्विधः सिद्धः परित्यक्तभावात् ३ १ ३ अयवाग्नि वदुत्तेव—तद्वेदेयं परस्मै वदति एव इ । दससिध वैवाह्यं वदेत्तं

धैर्यं न जुगंति ॥ २ ॥ बहरोक्षि पाण्डुरो भङ्गुलीणोक्षि य पुष्पाकधो किह तु १ । तुमोहोर्दीप्तिषि एवं मर्णवडं तरा तुमोहो  
 ॥ ३ ॥ आस्यति नविष एवं निजन्मा मोक्षकारणं पाण । निजं पणासर्वदा वेपामयाह जुगंति ॥ ४ ॥ वपाभ्यासनामा  
 सावनया, क्रिया पूर्ववत्, आसावनानासि साधेपरिहारा यथाऽऽचार्याणां तपरं सूत्रप्रदा वपाभ्यासा इति, साधूनामासा  
 वनया, क्रिया पूर्ववत्, -ओऽमुणियसमयसारो साधुसमुद्रिसस भासए एव । अघिसहणातुरियगर्ह भंडणमाहुं वपा भवे ॥ १ ॥  
 पाणसुणया य भुंजति एगमो सह पिकयनेवरापा । एमाह यमएवणं मूहो न मुणेह एयं तु ॥ २ ॥ अघिसहणादिवसेनेया  
 ससारसहायसाणणा भवे । साह भेवऽकसाया अमो पमुंजति से सहवि ॥ ३ ॥ साधीनामासावनया, क्रिया पूर्ववत्, -  
 कसहणिया बहुवयहो भइयावि समणुवएवो समणी । गणियाण पुचमपका तुमवेहि अउस्स सेवाळो ॥ १ ॥ अघोसरं-  
 कसहसि नेय नाऊण कसाए कम्ममयधीए व । संसअणाणमुदयमो ईसि कउहेवि को दोसो ॥ २ ॥ उवही य णुविगअपो  
 मअयवरकस्सवारयनेयासि । अणिमो जिणेहि जन्हा तन्हा वयहिमि नो दोसो ॥ ३ ॥ समप्पाण नेय एया उवववो

१ सह य जुगंति ॥ २ ॥ बहरोक्षि साधुहोऽमुलीव इति शुभाक्षः कर्म तु १ । तुमोहवारादीभ्यसि एव मत्वसि अस्तित्व तुमोहः ॥ ३ ॥ आस्यति नविष  
 ईह य निर्दयत्वं मोक्षकारणं साध । निज मकायवणो धेयाह्वायादि जुगंति ॥ ४ ॥ लोभसहसमयवराः साधू एवमुद्रिसव भासते एवम् । अघिसहस्य मत्वसि  
 मत्वसमापुनरप एव ॥ १ ॥ पासा एव भास एव भुज्जति वृत्रज्जया भिकरनेवराः । एवमादि वयसवर्म मूहो न आभासेतु ॥ २ ॥ अघिसहसादिषमेताः  
 संसारसमायानाएव । साधव एवाकाशाः वतोमः मभुज्जति से वदीव ॥ ३ ॥ कउहेवि को दोसो ॥ २ ॥ उवही य णुविगअपो  
 उवमोहता तुमव वट्टी उउल दीपाकाः ॥ १ ॥ कवासाद् कर्मजनवीर्यादि ज्ञानदा ईव कउहवसि । संसजनाणामुदयएव ईव कउहेसि को दोसः ॥ २ ॥ ३  
 उवविम वट्टि वरपा मसमऽ(अभाषमेतासाधू । अघिगो विदीपसाए लकापुवपी न दोसः ॥ ३ ॥ असज्जार्त ईता उवववः

धा सद्वाधी अहव चयभोगे ॥ १ ॥ रागदोसपुत्रा सहेव अणसकालमुषभोगो । दसणणाणाणं मू दोइ असपणुया  
 वेव ॥ २ ॥ अणोणणावरणम(ता)वा एणत्तं यावि णाणदसणभो । अणइ नयि एयसिं दोसो एगोपि सभवइ ॥ ३ ॥  
 अतिथिचि नियम सिद्धा सद्वाभो वेव भम्मए एव । निच्चिह्वावि भयंसी धीरियक्खयभो न दोसो हु ॥ ४ ॥ रागदोसो न भये  
 सवकसायाण निरवसेसखया । जियसाभवा ण जुगधमुषभोगो नयमयाभो य ॥ ५ ॥ न पिइआयरणाभो दयद्धिनयस्स  
 वा मयेण हु । एणत्तं या भवई दंसणणाणाण दोण्हंयि ॥ ६ ॥ णाणणय दसणणए पडुख णाण हु सयमेवेय । सर्वं च दस  
 णती एवमसवणुया का च ? ॥ ७ ॥ पासणयं य पडुखा जुगधं चयभोग दोइ दोण्हंयि । एवमसवणुया एसो दोसो न सम  
 वइ ॥ ८ ॥ आचार्याणांमाधासना, क्रिया पूर्ववत्, आशातना सु-खदो अकुलीणोचि य नुनमेदो दमगमंदमुच्चिचि । अयि  
 यप्पलामलद्धी सीसो परिमयइ आयरिए ॥ ९ ॥ अहवायि यए एवं चयएस परस्स दंसि एव हु । दसयिइययायय कायय

१ वा सदा वादयि वययोगोऽथवा ॥ १ ॥ पुनरागोक्कजाच्छीवाभ्याम्यकाळ वययोगात् । र्धनंन्यावयोस्तु मयससर्ववदेव ॥ २ ॥ भयोऽभ्यावारकता वा  
 एकरत्नं वाऽपि ज्ञातृवर्धनयोः । भवयते वैधेतेषां दोष दूकोऽपि संभवति ॥ ३ ॥ सान्नीति निवसताः सिद्धाः सत्त्वदेव सन्मन्त्रे पश्य । निमज्ज अयि भवन्नि  
 धीरसंख्यतो भव दोषा ॥ ४ ॥ रागदोसो य स्यातो सर्वकथायाभ्यो भिरवसेयपयात् । बीरकलाभाभ्याम् नोपयोगीयायय नवमताम् ॥ ५ ॥ न पुनयावरणाद्  
 ( ऐक्यं ) इत्यादिक्कमवस वा मयेव हु । एकरत्नं वा भवति ज्ञातृवर्धनयोर्द्वोरापि ॥ ६ ॥ ज्ञातृवय मदीक्ष सर्वमेवेव ज्ञातृ र्धनंन्याव सर्वभवेव एतेन  
 मिति पदमसर्ववता काहुं ॥ ७ ॥ परवर्धं वा मदीक्ष पुनश्चपुत्रयोगो भवति इत्येतेषां । एवमसर्वज्ञता एव दोषो न संभवति ॥ ८ ॥ वाकोऽप्युकीव इति च नुमेवा  
 मसको सम्मुच्चिरिति । अयि पालमजायकडियः शिष्यः परिनवलाचार्यात् ॥ ९ ॥ अथवाऽपि अहमेव-इत्येतेषां परकी इति एवं हु । इत्यभिप हैवाहुस्त्वं कर्तव्यं

अरिहताणं आसायणाए सिद्धाण आसायणाए आपरियाण आसायणाए उच्चरसायणं आसायणाए  
साङ्ख्यभासायणाए साङ्ख्यीण आसायणाए साध्याणं आसायणाए साधिपाण आसायणाए देवाण  
आसायणाए देवीण आसायणाए इहलोगस्सासायणाए परलोगस्स आसायणाए केवल्लिपप्पस्स पम्मस्स  
आसायणाए सदेवमनुपासुरस्स लोगतस्स आसायणाए सुब्बपाणनूयलीवसत्तायां आसायणाए कालस्स  
आसायणाए सुयस्स आसायणाए सुयदेवपाए आसायणाए वायणापरिपस्स आसायणाए ( सूत्र )

अर्हता—आदिक्पितृदाध्यायिना सम्मन्धिन्याऽऽद्यातनया यो मया दीवसिकोऽविवारः कृतस्तस्य निष्सा दुष्कृतमिति  
क्रिया, एष सिद्धादिपदेव्यपि योग्यते, इत्थं चाभिदपतोऽर्हतामाद्यातना भवति—तथी अरहंती आप्तो कीर  
मुञ्चर् ओए । पाहुदियं वयसीये एष ययसुत्तरं इणमो ॥ १ ॥ भोगकळं निवसिपपुण्णपगवीणमुदयवाहता । मुञ्चर्  
ओए एयं पाहुदियाए इमं सुणसु ॥ २ ॥ णाणाइअणयरोहकअपातिसुइपायवस्स वेयाए । तिरयंकरनामाए वदया तह  
पीयरयायसा ॥ ३ ॥ सिद्धानामासातनया, प्रिया पूर्वपद—सिद्धाण आसायण एव मणंतस्स होइ मूहस्स । नतपी निवेहा

१ न सति अर्हस इति आगामा वा कथ मुनिक भोगात् । पाहुदिकं ( समप्रत्ययिक ) वयसीवति कथं ? एष वयं वयमिति ॥ १ ॥ सिद्धे-  
सिद्धभागादनुवचनकर्तृकामुत्पत्त्यात् । मुनिक भोगात् एव प्राप्यतिक्रिया इव ननु ॥ २ ॥ आसायणवतोपक्रमादितिमुञ्चपादस्य वेदनाय । तीर्थकरवाह  
इत्याद तथा वीतरागावात् ॥ ३ ॥ सिद्धानामासातनया वय भवतो भवति मूहसः । न सति शिष्येण

ठाणे अचछद्म सधारो विदुलकदमयो वा, अहवा सेञ्जा एव सधारयो तं पापण संपदेह, पाणुञ्जाणयेद्-न सामेह,  
मणियं च-‘संपदेहाण काएणे’ स्थाधि ३०, ‘वेद्ध’चि सेहे राहणियस्स सेञ्जाए संधारे वा चिद्धिचा वा निसिइचा वा हुय  
द्धिचा वा भयइ आसायणा सेहस्स ३१, ‘उच्च’चि सेहे राहणियस्स उच्चसणं चिद्धिचा वा निसिइचा वा भयइ आसायणा  
सेहस्स ३२, ‘समासणे यायि’चि सेहे राहणियस्स समासणं चिद्धिचा वा निसिइचा वा हुयद्धिचा वा भयइ आसायणा  
सेहस्सचि ३३ गायान्नितयार्थः ॥      ॥ सूत्रोकाथातनासम्बन्धाभिधित्तयाह सप्तहणिकारः—

अहवा-अराहंतायं आसावन्नाधि सत्कार्यं किञ्चिन्नापीय । वा कठमल्लिहिा ठेवीसासायवा एवा ॥ १ ॥ मस्सिक्कमक्कइहणी समका ॥

व्याख्या—अथवा-अयमन्यः प्रकारः, ‘अर्हतां’ सीर्यकृतामाथातना, आदिषब्दात्तिसिद्धादिप्रहः यापरस्याभ्याये किञ्चि  
क्षापीठ ‘सम्भाए ण सज्झाहयंति पुच भयइ,’ एताः ‘कण्ठसिद्धाः’ निगद्यसिद्धा एवेत्यर्थः, अयस्सिंयदासातना इति  
गायार्थः ॥      सामप्रतं सूत्रोका एव अयस्सिंयदास्साख्यायन्ते, तत्र—

१ स्वाने विद्धति संसारको दिव्ज्जममको वा अयवा समीह संसारका य पावेन संपदेवति आणुभाययति—अ समवीठ समित्त अ कमेन संपदेवि  
रवेत्ताधि १०, स्वानेति दीसो राहिकल वायवापी संसारके वा स्याता वा निपीदसिवा वातम्बपीसिवा वा अक्कसापावला दीक्कल १ । उच्च इति दीसो राहिकल  
भाए उच्च भासने स्याता निपीदीसिवा वा अक्कसापावला दीक्कल ३१ समासने जापीति दीसो राहिकलमल्ल सम भासने स्याता वा निपीदीसिवा वा  
ल्लमल्लपीसिवा वा अक्कसापावला दीक्कलपेति ।



न एव एवं भवति २६, कर्हं छेद्य चि रायणियस्स कर्हं कहेमाणस्स तं कर्हं अर्थिक्खिच्चा मय्य आसायणा सेहस्स, अर्थिक्ख-  
 दिच्चा भवदसि भणइ अर्हं कहेमि २७, 'परिसं मेसे'ति रायणियस्स कर्हं कहेमाणस्स परिसं भेसा भवति आसायणा  
 सेहस्स, इह च परिसं भेससि एय भणइ-भिक्षसायेजा समुत्तिणयेजा सुत्तरपपरिसिखेजा, मिणइ वा परिसं २८, 'अणु-  
 द्विपाए कहेइ' राणिणयरस कइ कहेमाणस्स णीए परिसाए अणुद्विपाए अवोच्छिन्नाए अवोगाहाए दोसमि खच्चंमि कर्हं  
 कहेसा भयइ आसायणा सेहस्स, इह सीसे परिसाए अणुद्विपाएचि-निविद्धाए भेय अवोच्छिन्नाएचि-आवेगोवि अण्णइ  
 अयोगाहाएचि अपिसंसारियचि भणियं होइ, दोसमि खच्चंमि-विहिं विहिं चरहिं समेवचि ओ आचरिएण कहिओ अत्थो  
 समेवाहिगारं विगप्पइ, अयमपि पगारो अयमपि पगारो वस्सेवेगस्स सुत्तस्स २९, 'संपारपयमइण'चि सेज्जासंवारणं पाएय  
 संपट्टेसा हरथेण ण अणुणयिच्चा मय्य आसायणा सेहस्स, इह च सेज्जा-संवरणिया संपारो-अह्माइअहत्थो अत्थ वा

१ देव एवं भवति २६ कथां छेद्यति एतिक्के कथां कयवति तां कथां छेद्यति आयातवा कैयल, अण्णोवा मवयीसि यजसि-अर्हं कयवाति २७  
 वरं भेद्यति एतिक्के कथां कयवति वरयो भेसा भवति आयातवा कैयल इह च वरयो भेसेसि एय यजति-विज्जावेका योजनवेका सुवादीकसीवेका  
 निर्माद वा परं २८ अणुविवाया कयवति एतिक्के कथां कयवति यज्जां वरीइ अणुविवायासमुत्तिद्धायासयणाज्जायां (अर्थिमदीज्जायां) छिरिय विवसि  
 कयाया कयवति मयसायाया कैयल इह यज्जां वरंइ अणुविवायाज्जायि विविवायासेय अणुविज्जावाज्जायि वावुवेकोसि विवसि अयवाज्जावाज्जायि  
 अर्थमंयवाज्जायि मल्ल भवति विवसि विवसि-विज्जावाज्जाया अणुविवायासेय विवसि य अयवासेय कयवतोसंअमेवविक्कां विज्जावसि अयमसि मय्मा  
 अयमसि मय्माः सत्तवकत्त सुत्तस्स २९ संकाराएयवमिदि वावसांअकारं पादंय संपुटियावा इहेव वावुजावदिवा भवति आयातवा कैयल इह च  
 वावसा-संकारादं संकाराः-अर्थमंयवाज्जाया एव वा

खंभं पश्चा भवद् आसायणा सेहस्स, इमं च सख-चञ्जुसहेणं सरककस्सनिवुरं भणद् २०, 'तस्य गप्'सि सेहे रात्रिणिप् पादरिप्  
 जत्थ गप् सुणद् तत्थ गप् चैव तत्थाय देह आसायणा सेहस्स २१, 'किंवि'सि सेहे रात्रिणिप्ण आद्रप् किंसि पचा भयद्  
 आसायणा सेहस्स, किंसि-किं भणसिचि भणद्, भयप्ण पदासोचि भणियधं २२, 'सुप्'सि सेहे रात्रिणिपं सुमंति पचा भयद्  
 आसायणा सेहस्स, को सुमंसि चोपत्थप्, २३ 'तज्जाप्'सि सेहे रात्रिणिप तज्जाप्णं पट्टिद्वणिचा भवति आसायणा सेहस्स,  
 'तज्जाप्ण'सि कोस अज्जो ! निक्काणस्स न करेसि !, भणद्-सुमं कीस न करेसि !, आधरिओ भणद्-सुमं आलसिओ,  
 सो भणद्-सुमं चैव आलसिओ इत्यादि २४, 'णो सुमणो'सि सेहे रात्रिणियस्स कह कहेमाणस्स नो सुमणसो भयद् आसायणा  
 सेहस्स, इह नो सुमणसेसि ओहयमणसकप्पे अत्थम्ह न भणुम्हद् कह अहो सोहण कट्ठियंसि २५, 'णो सरासि'सि सेहे रात्रि  
 णियस्स कह कहेमाणस्स णो समरसिचि पचा भयद् आसायणा सेहस्स, इह न 'णो सुमरसि'सि न सुमरसि सुमं एव अत्थ,

१ कहं वच्चा भवति आसायणा कैसल इह च कह-हृदय्कप्पेव वारककसिधुदं भवति १ तत्र यत्ते इति कैसो रात्रिकेव वच्चावो वच्चा पत्तः भवति  
 तत्र गत्त पुरोक्ताव दृष्टाति आसायणा कैसल २१ किं मिमीति कैसो रात्रिकेवाहुः। किमिति वच्चा पदवच्चावत्तया कैसल किमिति किं भवतीति भवति  
 मत्तकेव वत्थ इति नसितवर्द २२ 'एव'मिति कैसो रात्रिकेव त्वमिति वच्चा भवति वच्चावत्तया कैसल कत्तवमिति भोदसिया २३, तज्जस्स इति सलो रात्रिके  
 तज्जावेव इति वच्चा भवत्तयावत्तया कैसल तज्जावेनेति कत्तवार्थः। प्पानत्त न करोमि ? भवति एव कत्तव करोमि ? आचार्यो भवति-एवमत्तः। स भवति-  
 एवमेवाकस इत्यादि २४ न सुमना इति कैसो रात्रिके कथा कथयति नो सुमना अच्चावत्तया कैसल इह न सुमना इति अहयमणः। सञ्जरीण्डादि  
 नानुवृत्ति कथा भवो सोमव कथयमिति २५ न वारसीति कैसो रात्रिके कथा कथयति न वारसीति वच्चा भवति वच्चावत्तया कैसल इह न व वारसीति  
 व वारसि एवमेवमर्थ

पुष्पामेव सेहतरागरस आलोपयति पच्छा रायणियस्स आसायणा सेहस्स १४, 'उक्कदस'ति सेहे असणं वा ४ पदिगाहेवा तु  
 पुष्पामेव सेहतरागरस उक्कदसेह पच्छा रायणियस्स आसायणा सेहस्स १५, निर्मलवेत्ति सेहे असणं वा ४ पदिगाहेवा पुष्पामेव  
 सेहतरागं निर्मलेह पच्छा राइणियं आसायणा सेहस्स १६, क्कदति सेहे राइणियण सद्धिं असण वा ४ पदिगाहेवा तु  
 राइणिय अणापुच्छिवा असस असस इच्छा वस्स २ क्कद क्कद पच्छवद आसायणा सेहस्स १७, 'आइयण'ति सेहे असणं  
 वा ४ पदिगाहेवा राइणियण सद्धिं मुज्जमाणे तरय सेहे क्कद २ दार्य २ क्कद २ रसियं २ मणुण्णं २ मणाम २ णिद्धं २  
 सुक्ख २ आइरेवा भयइ आसायणा सेहस्स, इहं व सक्कंति वज्जवज्जेणं उक्कयेण जायं जायंति पञ्चसाकः वाइणणियस्स  
 रायसिगादि कसद्वति पञ्चगंधरसफरिसोपयेयं रसियंति रसात् रसियं दादिमंकादि 'मणुण्ण'ति मणसो इहं, 'मणाम'ति २  
 मणसा मणं मणामं 'निद्ध ति २ नेहावगाह' सुक्ख'ति नेहवज्जियं १८, 'अप्यदिमुणयो'ति सेहे राइणियस्स वाइरमाजस्स अप  
 दिमुणोवा भयइ आसायणा सेहस्स, सामान्येन दिपसओ अपदिमुणया भयइ १९ 'क्कदंति प'ति सेहे राइणियस्स क्कदं

१ पूर्वपञ्चमपादिकस आकाशवति पञ्चपादिकसागावका वेक्क १० 'उक्कद'मिदि कैयोउक्क वा ३ मसिपुल वत् पूर्वमेवावमतादिकसवो  
 वरत्तवदि पञ्चपादिकसागावका वेक्क १५, विमज्जमिदि कैयोउक्क वा ३ मसिपुल पूर्वमेवावमतादिक विमज्जवत्त पञ्चाह तादिक आकाशका वेक्क १६  
 'क्कद'मिदि कैया तादिकेन कायमपय वा ३ मसिपुल वत् तादिकमनापुप्पय वो व इच्छति तं तं मज्जुं मज्जुं वदति आकाशका वेक्क १७  
 इदं यमिदि कैयोउक्क वा ३ मसिपुल तादिकेन कायं मुज्जमाय कैया मज्जुं ३ काक २ वेक्क वस्स मक्कोहं मक्कमयं विवत्तं क्कदं २ आइरेवा मक्क  
 आगावका वेक्क २, इह व क्कदंति इहवा इहवा क्कमेव अक्कमिदि मक्कमयवससयोपि रसियमिदि वज्जुवं दादिमाज्जादि मक्कोहं मिदि मक्क इह  
 मक्कोहमिदि मक्कमय मक्कम विवत्तमिदि आइरेवा १८ आदिमज्जमिदि कैया तादिकेन आइरेवि अपदिमुणोवा मक्कोहं  
 आगावका वेक्क २, सामान्येन दिपसयोपि मक्कोह १९, क्कदंति कैयि कैयो तादिक वत्

आसन्नं गंगा भवद् आसायणा सेहस्स १, चिद्धसि सेहे रायणियस्स पुरओ चिद्धेसा भवद् आसायणा सेहस्स ४, सेहे राइणि  
 यस्स पक्ख चिद्धेसा भवद् आसायणा सेहस्स ५, सेहे राइणियस्स आसण्णं चिद्धेसा भवद् आसायणा सेहस्स ६, निसीयणसि सेहे  
 रायणियस्स पुरओ निसीइसा भवद् आसायणा सेहस्स ७, सेहे राइणियस्स सपक्ख निसीइसा भवद् आसायणा सेहस्स ८,  
 सेहे राइणियस्स आसण्णं निसीयिसा भवद् आसायणा सेहस्स ९, 'आयमणे'सि सेहे राइणिण सार्द्धं पइया विचारभूमी  
 निकस्संते समायो तत्थ सेहे पुबतरायं आयमति पच्छा रायणिप्प आसायणा सेहस्स १०, 'आलोपणे'सि सेहे रायणिण  
 सार्द्धं पइया विचारभूमी निकस्संते समाय तत्थ सेहे पुबतराय आलोप्प आसायणा सेहस्स, 'गमणागमण'सि भायणा  
 ११ 'अपडिहुणणे'सि सेहे राइणियस्स राओ वा वियाले वा वाहरमाणस्स अज्जो ! के सुत्ते के आगर १, तत्थ सेहे  
 आगरमाणे रायणियस्स अपडिहुणेसा भवद् आसायणा सेहस्स १२, 'पुवाउवण'सि केइ रायणियस्स पुपसंउत्तप्प  
 सिया त सेहे पुबतरायं आलवद् पच्छा रायणिप्प आसायणा सेहस्स १३, आलोप्पइसि असणं या ४ पडिगाइसा त

१ आसन्नं गंगा भवति आसायणा दीपक २, चिद्धं चिद्धेसा भवति आसायणा दीपक ४ दीपो रत्ताधिकस पापे स्थला  
 भवत्तायावता दीपक ५ दीपो रत्ताधिकसाल्ल कणा भवत्तायावता दीपक ६, निचद्वभिमिदि दीपो रत्ताधिकस पुरवो निवीद्विणा भवत्तायावता  
 दीपक ७ दीपो रत्ताधिकस पापे निवीद्विणा भवत्तायावता दीपक ८ दीपो रत्ताधिकसाल्ल निवीद्विणा भवत्तायावता दीपक ९ आसन्नं गंगा भवति  
 रत्ताधिकस सार्द्धं पडिदिचारयुमिं निष्कन्ताः सत् तत्र दीपः पूर्वमेवाज्जमसि पक्का रत्ताधिकः आसायणा दीपक १ आसन्नं गंगा भवति  
 पडिदिचारयुमिं निष्कन्ताः सत् तत्र दीपः पूर्वमेवाज्जमसि आसायणा दीपक गमणागमणमिदि भावणा ११ अपडिभद्वजमिदि दीपो रत्ताधिकस  
 सार्द्धं वा पक्काइसि भाव १ कः सुत्ते कः आगसि ? तत्र दीपो आगरत्प राधिकसाल्लमिदि भवत्तायावता दीपक १२ 'पुवाउवण'मिदि पडिद् रत्ताधिकस  
 पूर्वसंउत्तः आत्त त दीपः पूर्वमेवाज्जमसि पक्का रत्ताधिकः आसायणा दीपक १३ आलोपयती'मिदि असणं वा ४ पडिगाइसा त

# नेप्थीसाय भासायणर्हि (सुधं)

प्रयत्निषाभिरायावनाभिः, क्रिया पूर्ववत्, भाषा—समदर्शनाद्यवासिष्ठशृणुः तस्मा ज्ञातना, तदुपदर्शनायाह सप्तह  
 णिकाराः—

शुराजो पक्कासधे एता विदुषमिधीयजायमेवे । आलोचनयविमुक्ता हुताकमेवे च आलोच ॥ १ ॥  
 इह नवरसमिमंजल अद्यादेवाज इह भण्डिमुक्ते । एतंमि च एताय एतु किं तुल कथार जो सुमवे ॥ २ ॥  
 जो सतिष्ठ भद्रं चेका परितं पिता अणुविदार कदे । उवाचावचनम पिने रवात्मर्दु ॥ ३ ॥

आसां कपास्या—इहाकारणे रसाधिकस्याऽऽचार्यैः शिष्यकेणाऽऽज्ञातमासीक्या सामान्येन पुरतो गमनादि न कार्यं,

कारणे तु मार्गादिपरिज्ञानादौ व्यामलवर्धनादौ च विपर्ययः अत्र सामाचार्यनुसारेण स्वहृत्साऽऽज्योचनीयः, तत्र पुरतः—  
 अमत्रो गन्ताऽऽज्ञातनायानेव, तथाहि—अमत्रो न गन्तव्यमेव, विनयमहादिदोषात्, 'एकस्मिं पञ्चान्यामपि गन्ताऽऽज्ञात  
 नायानेव, अतः पञ्चान्यामपि न गन्तव्यमुक्तदोषमसंज्ञादेव, आसन्ना दृष्टतोऽव्याससं गन्तव्यमेव एकक्याः, तत्र निश्चासन्नु-  
 तश्चेत्पक्कापातादयो दोषाः, सर्वत्र यायता भूभागोन गच्छत एवे न भवन्ति दाषता गन्तव्यमिति, एवममरगमसन्तिक्ता  
 कार्या, असन्मोक्षार्थे तु दशास्त्रेण प्रकटार्थव्याख्यायन्त, तथाथा—'पुरतो'सि सेहै रायपियस्त पुरतो गता भवद् आसा-  
 यणा सेहस्त १, एकस्मिं सेहै राइणियस्त एकस्मे गता भवद् आसायणा सेहस्त २, आसण्यासि सेहै राइणियस्त प्रिमीययस्त

१ शुरा इति शेषः । रात्रिकस शुराजो गयता भवसायावना सेहस्त १, पयोवि सेहो रात्रिकस पक्कायोर्यता भवसायावना सेहस्त २ आसन्मिति सेहो  
 रवादिक्कल निधीएव

आराहणापे मरुदेवा ओसस्मिणीए पढम सिद्धो ॥ ११२० ॥

अस्य व्याख्या—विणीयाए णयरीए भरहो राया, उसहसामिणो समोसरणं, प्राकारादिः सर्वः समवसरणपर्णकोऽभिधा-  
तन्मो-यथा कल्पे,—सा मरुदेवा भरहं विभूतिय द्दण भणइ-जुमस पिथा एरिसिं विभूतिं चइसा एगो समणो हिंदइ, भरहा  
भणइ-कसो मम तारिसा विभूई जारिसा तावत्सः, कइ न पत्तियसि वो एहि पेण्डामो, भरहो निगओ सपयलेण, मरुदे  
वावि निगया, एगंसि इत्थिमि विलग्गा, जाय पेण्डइ उछाएछस सुरसमूह च ओषयव, भरहस्स परयाभरणानि ओमिडापं  
ताणि विहाणि, दिहा पुत्तविभूई ! कओ मम एरिससि, सा वोसेण सिंतिवमारक्का, मणुक्करणमणुपयिहा, च्चावी नमिभ,  
खेण मणत्सइकाएहिंओ वयहिंता, तस्येय इत्थियरागायाए केवलनाणं उरणां, सिद्धा, इमीए ओसस्मिणीए पढमसिद्धा ।  
एवमारथना प्रति योगसद्महः कर्तव्य इति ३२ ।

१ विनीतायां पगनी भरहो राया क्वमल्लमिणः समवसरणं सा मरुदेवी भरह विभूतिवं द्दुग भवति-तव विवेरसी विभूतिं कल्पेकः भवन्तो ईराह  
मारो अणसि-कसो मम तारसी विभूतिपीरसी तावत्सः ? यमि न ममेसि तवेसि मेहावहे, मारो मीराः कइवखेव मरुदेवसि मीरा, बुक्किइ इति  
सिक्कसा, पावइ मेसठे उछाविचइ मुरसमूई चारपणव भरहस वजाभरणान्यवमयायमासि दहानि दहा जुवसिपूर्त्तः ! जुवो ममेरपी ! इति सा वाचन  
विम्वसिदुमारइया, मरुदेवरजममुप्रसिद्धा, जासिस्सुविधीयि वेन वत्तएयसिकधिकगुहूता तवेव वाहल्लिएकअयवजायाः केवक्यामसुएणं पिद्धा भत्तामव  
कर्त्तव्या मयसः सिद्धः ।

१) धातुना सबमेव भावतिने पदिविञ्चिता कथसामादयो पदिसं ठिओ, सावपरिहं कदयो, सिओ, एवं सगपरिष्णाए ओगा संगहिदा भवति ३० । संगणं च परिष्णाति गर्भं, इयार्णि पायच्छिन्नकरणन्ति, जहाविहीए वृषत्स, विही नाम जहा सुवे भविषं ओ विञ्चिष्ण सुम्भर सं सुहु ववधंजिदं वरेण ओगा संगहिया भवति वीणहवि करेवरेवयार्ण, वस्योपाहरणं प्रति गाथापूर्वार्धमाह—

पायच्छिन्नपक्षणा आहरणं तस्य दोह वणगुत्ता ।

इमरस पक्षणा—एगए वणरे वणगुत्ता आयरिया, ते किर पायच्छिन्नं वार्णति दाव छवमत्पणावि दोतगा जहा एचिष्ण सुम्भर पा नयचि, इणिण आणह, ओ साण मूखे यहर ताहे सो सुवेण नित्परह सं जारवार ठिओ ए सो दोह अरुमहियं च निज्जरं पायेह, सहा कायय, एवं वाण ए करणे व ओगा संगहिया भवति, पायच्छिन्नकरणेचि गर्भं ३१ । इयार्णि आराहणा य भारणतिचि, आराहणाए मरणकाले योगा सकृद्वान्ते, वओवाहरणं प्रति गाथापश्चार्धमाह—

१) दासरा स्वरमर भावकिन्न मठिचय कुलसामादिकः मठिमां थितः आरुहः आदिता, विहः, एवं सवपरिहं वीणा संगुदीया भवन्ति । वज्रवती च वरुहोति मठ । इयदी मावन्तिवरावन्ति वयविविद वृक्षस मठिर्वाय वया सूवे मठिदं वो वावया गुप्पदि सं सुहु वणगुत्त एवता वीणा संगुदीया मवन्ति इवोति कुदरेवतो वमोदरात् । अरु व्यावर्ण—वृक्ष मठि वणगुत्ता भावार्थी । ते किन्न मायन्तिव वान्ति एतं जपका अयि सुवो ववेवता गुप्पदि वा ववेति इविदव जगार्थ ववेवो मूळ वदति एता ए सुवेव भिज्जति च वाविचारं विरत्त मवति सः अरुविकरं च ममोति भिज्जती एता कर्त्तव्यं एव एत कवेव च योगा संगुदीया मवन्ति, मायन्तिवरावन्ति मठ । इयदीमावया च मावन्तिवरीति आवावया मरककाले वीणा संगुद्वान्ते,

‘विर्गिच्चेहिचि, सो स गहाय अहविं गओ, एगत्थ रुक्खवहुच्छायाए विर्गिच्चाभि, पचाधधं मुयवस्स हय्यो छिच्चो, सो सण एगत्थ फुसिच्चो, सेण गंधेण कीदियाओ आगयाओ, आ जा खाइ सा सा मरइ, सेण चित्तिधं—अए एगेण समप्पद मा जीवमाओ होवचि एगत्थ धंदिळे आलोइयपट्टिकत्तेणं सुहाणत्तं पट्टिलेहिचा अणिर्दसेण आहारिय, पयणा य विपा जाया अहियासिया, सिच्चो, एव अहियासेयधं, उदए मारणाठियसियाय २९ । इयाणिं सणाणं च परिहरणंति, सगो नाम ‘पक्खी सङ्गे’ भावतोऽभिक्खङ्गः स्नेहगुणतो रागाः भावो च अभिसंगो येनास्य सङ्गेन भवमुत्पद्यते च आणणापरिष्णाए णाकण पक्खक्खाणपरिणणए पक्खक्खाएयधं, उत्थोदाहरणगाहा—

नयरी य चपनामा जिणदेवो सत्थवाइअहिउत्ता । अहवी य तेण अगणी सायपसगाण धोसिरणा ॥१११९॥  
इमीए वक्खाणं—चंपाए जिणदेवो नाम सावगो सरथवाहो उवोसेचा अहिउत्तं पक्खइ, सो सथो पुत्तिदएहिं पिछो छिओ, सो सावगो नासंठो अहविं पविट्ठो आव पुत्तो अग्निभयं मगाओ वगपमयं पुइओ पयायं, सो भीओ, असरण

१ अवेठि स ठं एहीत्ताम्भी मलः पुक्कइ वगवहुच्छायायापो अजानीति पावकण्ठं सुखतो इवो कित्तः च वेधेकइ एउइ । तेव गण्ठेव कीटिका जालावा । या वा जालति वा सा भित्तते तेव भित्तिउ—अथैकेन संनात्तवत्तां सा जीवयातो एहीति पुक्कइ अविउत्ते सुयात्तत्तक मत्तिठिकव आकोविज्जमठिअत्तेनाभिइव ताहारिउ वेदना च वीमा आठाउपपत्तिता सिद्धा पुक्कसज्जसित्तधं उदयो मात्ताभित्तइ इति एतं इहवीं सङ्गाथां च परिहरवन्निजं सङ्गो नाम भावत्तव भिज्जइः स मावपसिद्धया जालत्ता मल्लक्खापपरिद्धया मल्लएपाठवत्ताः उयोदाहरणगाथा । अस्मा व्पाकपाण—अगयापी भिज्जदेवो नाम भावकः सायवाइ उदयो व्पादिउत्तमां जालति स सायः पुत्तिद्वैर्गिक्कोकित्तः, स भावको नरइत् अहवीं पविट्ठो जावए उातोमीमव उइतो वदाममयं दिवाउ, प्रजातं च भीवः अणत्थ



नारुण सधमेव भावर्धितं परिचञ्जिष्या कथयामाहञो पद्विमं ठिष्यो, साधयहि वरुणो, सिञ्चो, एवं सगपरिष्णाए योगा सगद्विषा भवति ३० । संगानां च परिष्णसि गयं, इयार्णि पायच्छिष्यकरणसि, अहोविहीए दधत्स, विही नाम अहा सुते भजियं ओ जिच्छिपुण सुम्भर सं सुहु दधधंविदं देतेण ओगा सगद्विषा भवति दोष्णवि करोवर्देतभाणं, दधोवाहरणं प्रति गापापूर्वार्धमाह—

पायच्छिपुसपस्वण भाहरणं नत्थ होह धणगुत्ता ।

इमस्स वक्कणाण—एगएध णयरे धणगुत्ता भायरिया, ते हिर पायच्छिष्यं आणति दाव छठमत्तगावि होतगा अहा एच्छिपुण सुम्भर पा नवसि, इमिण्ण आणाह, ओ साण मूत्ते वहर ताहे सो सुहेण नित्थरह सं जाइपार ठिष्यो य सो होह भवमद्वियं च निज्जरं पायेह, सहा कायय, एवं दाण य करणे य ओगा संगद्विषा भवति, पायच्छिष्यकरणेसि गयं ३१ । इयार्णि आराहणा य मारणतिसि, आराहणाए मरणकाळे योगाः सकुलान्ते, दधोवाहरणं प्रति गापापद्वार्धमाह—

१ इमहा स्वधमम भावर्धितं परिचय कृत्वाभाविकः प्रथितो विप्रः कार्यैः कान्तिरा विप्रः, एवं सधपरैवया योगाः संगुदीया भवन्ति । एकमती च वर्धज्जति गय । इयानी मायधिवरान्ति पयधिवि वत्तल विधिवमेव यया सुते भवितं यो नावता सुप्पति सं सुहु वपुज्ज दधता योगाः संगुदीया भवन्ति इयोरेरि इयंएततो वयोएहएण । अल भाययान—अकय ययरे धणगुत्ता भावार्थाः । ते हिर मायधिवं भावन्ति एतुं अकया अपि धन्वो वदेयता एवमि वा भवन्ति एहिदव जानार्थि वदेयं मूत्त वदति वया य सुहेव भिक्खति सं जातिचारे विहरव भवति यः अज्जविज्जं च मम्मोसि भिक्को वया कल्लं वरं दाव करणे च योगाः संगुदीया भवन्ति मायधिवरान्ति पय । इयानीमागयया च मारणतिसि विप्रः अयावयवा मरणकाळे योगाः संगुलान्ते,

पदं, भणइ-एत्तो ठियगा धदह, आयरिया पावठा, भणण्या ते अयरोप्पर मंतंति-किं मण्यो होआ गयेसामोचि, एणो ओधरगाधारे ठिओ निवसेइ, थिरं च ठिओ, आयरिओ न चउइ न मासइ न फइइ ऊसासनिसासोधि नरिय, सुट्टमो थिर तेसिं भवइ, सो गणूण कहेइ भण्णोसिं, ते दह्हा, जज्जो ! सुम आयरिए काळगएधि न कहेसि !, सो भणइ-न कासा यचि, झाणं झापइचि, मा धापाय करेहिचि, भण्णो भण्णोसि-एवइओ एखे किंणी मत्ते वेयाळं साहेठकामो उमस्सणसुधा आयरिया तेण पा कहेइ, काज्ज रसिं पेच्छहिइ, ते आरत्ता तेण समं भंडितं, तेण धारिया, ताहे से राया करसारेउण कहिआ आणीओ, आयरिया काळगया सो ठिंणी न देइ नीणेउ, सोधि राया पिच्छइ, तेणयि पचीयं काळगामोचि, एउमिचस्स पा पचियइ, सीया सज्जीया, ताहे णिच्छयो णायो, विणासिया होहिंति, पुष भणिओ सो आयरिएहिं-ओइ अगणी ! अओ धा अज्जओ होज्जचि ताहे मम भंगुठए छियेज्जाहि, छिमो, पटिउज्जो भणइ-किं अज्जो ! पापाओ कओ !, पिच्छइ

१ दहासिं मज्जि-मज्ज सिंहा मज्जपव आजायां प्याहुवा, अज्जइ ते एरत्तं मज्जमये-किं मज्जे अहेइ एवेकपास इति एकोअसरकट्टारे सिंहा विनाकवचि, थिरं च सिंहाः आजायां न चउसिं न मज्जे न एवमये उण्णुसादिः। तासावचि न का सुट्टमो किं तेयो भवतः। स पात्ता कवचो अदेवां वे दह्हा सारं ! एवमाचार्यइ काळ पासावधी च कवचोचि स मज्जि-न काळपटा इति मज्ज एवापचि स पासावठं कहेति अज्जइ भवन्ति-वचोचि एव किंही मज्जे वेताळ साधसिपुजामो कसएपुक्का आजायांतेव च कवचोचि, अय राओ येकएवं ते आरत्तातेव समं मज्जिपटुं तेव वारिंता। एण ते एताव मज्जसायं अयसिन्नाउसीववत्तं, आजायां ककपाणा ए किंही न दहासिं विज्जावसिणं, ओइयि ताका मेकवे विवायि मज्जिचि अज्जपाव इति पुअपिआव न मज्जावचि थिरिका सीज्जवा एण विज्जो ज्जातो विवाधिता मज्जिपचि एवं मज्जिवा स आचार्य-मज्जमिस्सयो वाउमवो अहेइ एण मज्जाइइ। एउइए। एउइः मज्जिउज्जो मज्जि-सिंहायं ! मज्जायाव। इति ! मेकएवमेवे-

एषा हि सीते हि गुप्त कथंति, अवादिता, परिसर्ग किं क्षाण पविसिष्यं, तौ जोगा संगहिषा भवंति २८ । क्षाणसंवरजोगे  
 वधि गव, इषाणि वदप मारणसिष्यं, वदप अह किं वदयो मारणसिष्यो मारणसी वेयणा वा तौ अहिषासेव्यं,  
 वरयोदाहरणगाहा—

रोहीदगं च मपरं सलिभा शुद्धी अ रोहिणी गणिभा । घन्मकरं कहुअनुद्विषयाणापयणे अ फंसुदप ॥ १११८ ॥

इमीए वक्खणं—रोहिदप पापरे सविषागोही रोहिणी शुष्णगणिषा अण्ण जीवणिदवायं अकर्मसी तीसे गोहीए मत्तं  
 परधिया, एष काळो पचाइ, अण्णया तीए कहुयदोद्विषं गहिप, स च महुसंमारसंमियं वक्खणिद्विषं विष्णस्सइ वाव मुहे  
 ण तीए काव, तीए विविषं—सिंसीया होमि गोहीएसि अण्णं वयक्खवेइ, एयं सिक्खवराण विज्जहिदि, मा दवमेवं  
 वयं पासइ, आय धम्मकई णाम अणगारो मासक्खमणवारणए पविडो, तस्स विषं, सो गओ ववत्तसं, भाळोएइ गुक्कं,  
 तेहि भायणं गहिप, एारणयो य णओ, अंगुलिप विण्णसिष्यं, तेहि विविषं—ओ एयं आहारोइ सो मरइ, अणिओ

१ शुभाक पिप्पः कठमंसि, सिर्माद्वहा, ईरसं किं व्वावं मवेद्वं वडो जोगा संगुहीवा मवन्ति । आनसंवरसेसा इति एतं इरासीमुद्वो  
 मारजाप्पक इति वदि किंकोद्वो मात्ताभिवडो मात्ताभिवडो देइया वा एराज्जयसिष्यं वडोदाहरणगाहा । अका व्वात्तसं—रोहिदवे मारे वरिक्खमोही  
 राईदी जीयेमंसि का अन्ध आजीविकेपावमकथमाया वसा गोइया मक्ख मात्तवदी एयं अको मवन्ति, अन्धया वसा कहुवं दीसिक्ख गुहीसं वव महुसंमा-  
 रसंमुत्तमुत्त विनयपदि वावए मुले च वावव कणु वसा विविषं—मिपिक्ख अविषाणि गोइयां इति अन्धगुपत्तयोहि एवए पिक्खमरेमो दीमते इति  
 मा इववववेर विवडोइ वावए एयं वदिक्खगातो मात्तवक्खपावके मविह । वडो वव च गव ववाववं, आकोवपदि गुक्कं दीयावं गुहीसं विष्णमव  
 वाव अहुवा पिप्पमंसि व दीमपिचवं—य ववमाहाववि च विपते, मंसिवाः—

१ शुभाक पिप्पः कठमंसि, सिर्माद्वहा, ईरसं किं व्वावं मवेद्वं वडो जोगा संगुहीवा मवन्ति । आनसंवरसेसा इति एतं इरासीमुद्वो  
 मारजाप्पक इति वदि किंकोद्वो मात्ताभिवडो मात्ताभिवडो देइया वा एराज्जयसिष्यं वडोदाहरणगाहा । अका व्वात्तसं—रोहिदवे मारे वरिक्खमोही  
 राईदी जीयेमंसि का अन्ध आजीविकेपावमकथमाया वसा गोइया मक्ख मात्तवदी एयं अको मवन्ति, अन्धया वसा कहुवं दीसिक्ख गुहीसं वव महुसंमा-  
 रसंमुत्तमुत्त विनयपदि वावए मुले च वावव कणु वसा विविषं—मिपिक्ख अविषाणि गोइयां इति अन्धगुपत्तयोहि एवए पिक्खमरेमो दीमते इति  
 मा इववववेर विवडोइ वावए एयं वदिक्खगातो मात्तवक्खपावके मविह । वडो वव च गव ववाववं, आकोवपदि गुक्कं दीयावं गुहीसं विष्णमव  
 वाव अहुवा पिप्पमंसि व दीमपिचवं—य ववमाहाववि च विपते, मंसिवाः—

दई, भणइ—एसो ठियगा वंदइ, आयरिया घातछा, अणया ते भयरोपरं मंसति—किं भण्यो होआ गवेसामोसि, एगो  
 ओवरगाधारे ठिओ निवधेइ, चिर थ ठिओ, आयरियो न चलइ न भासइ न कंदइ कसासनिस्सासोपि नाथि, सुहुमो फिर  
 तेसिं भयइ, सो गदूण कहेइ भण्योसिं, ते कछा, अज्यो ! तुमं आयरिए कालगपधि न कहेसि !, सो भणइ—न काछा  
 यसि, झाणं झायइसि, मा घाघायं करेहिसि, भण्यो भणसि—यवइओ एसो छिगी मझे येयाछं साहेवकामो छकसणभुसा  
 धायरिया तेण ण कहेइ, आज्ञ रसिं पेछछहिइ, ते आरजा तेण समं भडिइ, तेण वारिया, ताहे से राया करसारेऊण  
 कहिसा अणीओ, आयरिया कालगया सो छिगी न देइ नीणेव, सोवि राया विच्छइ, तेणयि पसीयं काछगमोसि,  
 पूसनिस्सस ण पचियइ, सीया सझीया, ताहे णिच्छयो णायो, विणासिया होहिसि, पुष भणिओ सो आयरिएहि—जाहे अणणी  
 अओ घा अछओ होआसि ताहे मम अंगुष्ठए छिवेआहि, छिसो, पडिहुओ भणइ—किं अज्यो ! पायाओ कओ !, पिच्छइ

१ बुद्धादिं सकलदि—अथ स्थिता कल्पय आचार्यो व्यासमुखा, अथवा ते वरस्तरं सज्जनस्ये—किं मज्जे भवेइ गवेवकाम इति पुकोभयवकइते स्थिता  
 भिमाकवति फिर थ किसि, आचार्यो न वकति न भायते न एण्णते कण्णसादिः कासावधि न का। सुदसी किं देवो भवत। स एव कययसि अनेव। ते  
 कया भाव । एवमाचार्यान् काय मातावदधि न कययसि स भवति—न काकाया इति एवमं एवावधि मा एवावातं काहति अथवा न कययसि एव  
 किंही मज्जे देवावं सायसिहुकामो कसपुण्ड्रा आचार्योदेव न कययति अथ रात्री मेसुप्प ते आरवकाजेव सम भवइहिं, तेव वारिताः एता ते रात्रान  
 मयसायं कययित्वाऽप्रीतवन्ता आचार्याः काकायाः स किंही न बुद्धादि भिक्खायहिं, कोट्ठि रात्रा मेकते तेवापि मयसित काकाव इति, पुनर्भिमाव  
 न माकावति सिद्धिका सकिता एता सिधयो जातो सिधापिता भविष्यति एवमं मज्जिः स आचार्यो—बुद्धादिसिधयो वाज्ययो भवइ एता ममाहुः एतावः  
 एतदः मसिहुओ मज्जि—किमर्थ ! एतावता कता ? मेसुप्पमेवे—

चित्रोद्-गुरुकुलवाचो न जाओ, इहपि करोमि ओ वषपसो, तेण ठपणापरिमो कथो, एवमावासागमावीचकवाकसामावासी  
सवा विमासिपवा, एवं किळ सो सवाय न जुळो, एण २ वषपुआह-किं मे कथं?, एवं किळ साहुणा कथवं, एवं तेण  
ओगा संगहिवा भवंति २७ । सवाकवेचि गयं, इयाणिं साणसंवरओगेचि, साणेण ओगा संगहिवा, एवोवाहरणं—  
गयरं च सिंभवकण मुहिम्यपअअपूसमूर्दे य । आयाणपूसमिसे सुहुमे साणे विवाचो य ॥ १३१७ ॥

इमीए वकसाणं—सिंभवकणे गयरं मुहिम्यगो राया, सय पूसमूर्द आयरिवा बहुसुया, वेहिं सो राया ववसामिओ सहु  
आओ, साण सीओ पूसमिओ बहुसुयो ओसणो अणाय अण्डह, अणया तेसिं आयरियापं चित्ता-सुहुमे सायं पदि-  
स्सामि, व महापाणसमं, स पुण आहे पविसर साहे एवं ओगसनिरोहं करोह व न किंविह वेपूह, तेसिं च वे मूले ते मगीयत्वा,  
वेसिं पूसमिओ सदापिमो, आगओ, कहियं, स तेण पविसमं, साहे एगाय वषपरए निवायाय सायंति, सो तेसिं होयं न

१ चित्रवाचि-गुरुकुलवाचो न जाओ: इहापि करोमि य वषपसो, तेन ठपणापरिमो कथो, एवमावासागमावीचकवाकसामावासी कथो विमासिपवा एवं  
किळ स वषप न अचिहो, अओ कथे वषपुआहे-किं मे कथं?, एवं किळ साहुणा कथवं एव तेन ओगा संपूरिता ववसिह । अवाकव इति एवं इयाणीं  
व्यावसंद(वोम इति व्वावन ओगा: संपूरीता: एवोवाहरण । असा अवाकवा-विवाकवदे वयरे मुहिम्यपअअपूसमो रावा एव पुसपूरव आवाचो बहुकुला  
है: ए राओरपिमिह: साहे जाओ: एयां पिय: गुरामिओ बहुमुलोअसओअय विहति अयरा वेवावाचवर्मा चित्ता-सुहुमे व्यावं ममिसामि एवं  
महापाणसमं एव गुरुवरा मविहाठि वदेव ओगसमिओ: कियसे वया न किंविह विमते वेवां च वे पाहें वेम्वीवार्मा: है: गुरुवमिह: कियिवा वमसठा  
कपिय, स (कप) तेन मविहव वदेवपारदे विवर्वायसे व्वापूठि स वेवामापामुं च

नूणं सदोसाणि पुष्पाणि, जह य भणीहामि एएहिं पुष्केहिं अज्जणिथा अचोक्खा विसभाविवाणि धा ता गामेत्तासण  
होहिं चवाएणं वारेसिं, सा य रंगाओइणिंया, अण्णया मंगल निज्जह, सा इमं गीतिं पणीया—

पसे वसतमासे आभोक्क पमोअए पक्खंमि । मुत्तूण कणिणआरए भमरा सेवंति भूअकुत्तुमाइ ॥ १३१५ ॥

गीतिं, इमा निगदसिन्द्वेव, सो विंतेइ—अपुवा गीतिथा, तीए णाय—सदोसा कणिणारसि परिहरवीए गीयं नदियं  
च सवितासं, न य तस्य छलिया, परिहरिय अप्पमात्ता नहं गीय न कीर जुक्का, एव साहुणायि पक्खिह पमाए रक्खंतेणं  
जोगा सगहिया २६ । इयाणिं लवालवेसि, सो य अप्पमाओ खवे अज्जलये धा पमायं न आइयय, तरयोदाहरणगाहा—  
भरयञ्छमि य विजए नहं पिहए वासवात्तनागधरे । ठवणा आयरियस्स (व) साभायारीपउज्जणया ॥ १३१६ ॥

इमीए वक्खाण—भरअञ्छं णयरे एगे आयरिओ, तेण विजओ नाम सीसो चज्जेणी कज्जेण पेसिओ, सो आइ, तस्स  
गिलाणकज्जेण केणइ वक्खेवो, सो भंठरा अकालवासेण रुद्धो, अंठगतणदज्जियंति नरुपिहए गामे वात्तावासं ठिओ, सो

१ दूरं सद्योपासि पुष्पासि बहिं वामसिंय पठे। पुष्पैरर्धमिकाऽथोक्ता सिपलासितासि वा तदा प्राप्तेवक्कवमससिपदिंति इयावेव गामासि इति  
सा च द्वावदीर्घाञ्चया भद्रं णायति सेमां गीतिं प्रगीतवती—गीति इत्थं स सिप्लवदिं अयुधं गीतिः तदा वादं—सद्योपासि कर्मकारासि इति  
परिहरत्त्या गीतं पठितं च सवितासं न च तत्र छलिया परिहृत्य (तामि), अयमाया पुरे गीते च न किञ्च स्तुतिता इत्थं साधुवादीयं नमस्विवात् प्रमादत्  
रक्खयता योया संपुदीता । इयमी क्खत्ता इति स वाममाया क्खेउरुक्खे वा प्रमादं न पातयं ततोदाहरणया—अस्सा इयमीय—दुगुक्खे वगारे पक्  
भावायो तेव सिज्जवो नाम विज्ज वज्जिपणी कर्त्तव्य पेसिता स याति तस्स अकारकार्त्तव्य केनविइ इयावेया सोअत्तराअज्जहरेव इत्थं भवत्तदुत्तो  
विस्तमिंति नदयेरुक्खे प्राप्ते वर्यावासं सिंयता स

विशेष—गुरुकुलवासी न आशो, इहं पि करोमि यो वषट्को, तेण ठवणापरिचो कळो, एवभावासागमादी चक्याळसाभापारी  
 ववा विमासिपवा, एवं किळ सो सवण न जुळो, कळो र ववजुवड—किं मे कथं?, एवं फिर सादुणा कवचं, एवं केव  
 जोगा संगदिया मवंति २७ । छवाळवेति पथं, इयाणि साणसंवरयोगेति, साणेण योगा संगदिया, ठाभोवाहरणं—

णपरं च सिंक्कवज्जण मुदिन्मपमज्जपूसमूर्धं प । आयाणपूसमिसे सुहुमे साणे विजायो प ॥ १३१७ ॥

इमीए वक्त्ताणा—सिंक्कवज्जणे णपरे मुदिन्मगो राया, सत्य पूसमूर्धं आयरिया बहुस्सुया, वेहिं सो राया ववसानिमो सवो  
 काभो, ठाण सीसो पूसमिचो बहुस्सुभो ओसण्णो अण्णस्य अण्णइ, अण्णया वेसिं आयरियाणं विंठा—सुहुमं साणं पवि  
 स्सामि, स महापाणसमं, सं पुण आहे पविचइ साहे एवं जोगसंतिरोहं करोइ स न किंचिइ वेपइ, वेसिं च मे मूळे ते अगीयरवा,  
 वेसिं पूसमिचो सइयिमो, आगामो, कदिरं, स तेण पविचमं, साहे एणस्य ववपरए निवायाए सायंति, सो वेसिं दोसं न

१ विस्ववदि—गुरुकुलवासी न आशो, इहं पि करोमि स उपदेवाः तेन आराणायाः कृता, पूससावसकमिचमज्जकताभापारी सर्वा विद्यारिचव्वा एवं  
 किं स वचं न स्मदितः, यथे यथे उपपुण्यते—किं मे कथं? एवं किं सागुना कवचं पवं तेन जोगा, संपुदीला मवसिं । कवाकव इति पवं इत्यर्थं  
 एवावसंवेद्योप इति, एवावेन बोधाः संपुदीताः कवोवाहरणं । अस्मा अणववाक—विज्यावर्धने क्वरे मुदिक्कवज्जणे रावा सव पुण्णवूतव वावारी बहुकुळा  
 वेः स रात्रोपपन्निवः आदो वावा, तेवा विज्जः पुपमिचो बहुकुलोमवसंवेद्यस्य सिद्धिं यन्परा वेवासावावर्धनां विज्या—सुहुमं पवचं मविवादि वर  
 मद्रमावमम वरं उपवेदाः साविपति वदेव योगसंवेद्येयः विचये पया न किंचिइ विमते वेवां च वे पावं वे अगीठार्याः वेः पुण्णमिच कविठः वमसा  
 कविठ स (वर) तेन साविचं वेदेकवावरके विचरीवते एवापठित स वेवासागामु न

कण्ठा । एवं सो विहरत् । ते चत्वारि विहरमाणा विहरपट्टियणपरमग्गे भवद्दारं देववर्त्तं, पुषण करकंहु पयिद्दो, दम्मिल्ल  
णेण दुम्ममुद्दो, एव सेत्तावि, किद्द साहुस्स अल्लहामुद्दो अल्लामिप्पि तेण दम्मिल्लणेणापि मुह कय, नमी अयरण, सभो  
वि मुह, गंधारो दत्तरेण, तयो वि मुह कयंति । तस्स य करकंहुस्स षडुत्तो कहु, सा अत्थि खेय सेण कहुयणगं गादाय  
मत्तिण मत्तिणं कण्णो कहुद्दओ, तं तेण एगएय सगोविथं, त दुम्ममुद्दो पेच्छद्द,--अया रज्जं य रट्ठं य, पुरं अंतवर्त्तं वहा ।  
सवमेय परिच्छज्ज, सवय किं करेत्तिमं । ॥ १ ॥ सिळोगो कठो ज्ञाव करकहु पट्टियणं न देद्द ताए नमी ययणम्मिअ भणद्द--  
अया ते पेद्दए रज्जं, कया किच्चकरा षट्ठ । तेत्तिं किच्चं परिच्छज्ज, अल्लकिच्चकरो अयं । ॥ २ ॥ सिळोगो कठो, किं मुअ एपरस  
आवत्तिगोत्ति । गंधारो भणद्द--अया सव परिच्छज्ज मोक्खाय षट्ठसी भव । पर गरिहसी कीस, अचनीसेसकारए ॥ ३ ॥  
स्तिळोगो कठो, तं करकहु भणद्द--मोक्खसमगं पयण्णाण, साट्ठणं वंमयारिण । अट्टियएयं निवारत्ते, न दोस यत्तुनरिहत्ति ॥ ४ ॥  
सिळोगो--'कसव वा परो मा वा, विसं वा परिअसव । भात्तियवा हिया भासा, सएक्खसगुणकारिणी ॥ ५ ॥ सिळोगो,  
भट्टो कट्टयमपि कण्ठ्यं । तथा--

१ एव स विहरति । ते चत्वारो विहरत्ताः शिथिमतिविहवणारमग्गे षडुद्दारं देववर्त्तं ( वज्र ) पूर्वेण करकान्ता मल्लिहः दक्षिणतः दुर्गुदाः पूर्वं शाय  
वसि कयं साधोरत्तपत्तेषु विविधकामीति तेन दक्षिणत्वात्पि मुहं वृत्तं नमिरपरेण तत्त्वामपि मुहं मात्थार एवरेण तत्त्वामपि मुहं वृत्तमिति । एव  
करकयोर्दो कण्ठा सायस्सेव देव कण्ठपय पट्टियणा मयलं मायुल कयं कण्ठयिता एव देशिकय सेनोत्तिवं एव दुर्गुदाः देशेहे स्त्रोका कण्ठाः वादा  
करकान्ता मत्तिवचनं न ददाति तावत् अग्निर्देवमिह मल्लिह । स्त्रोकाः कण्ठाः, किं एवमेव सायस्सुक्क इति । मात्थारो भवति-स्त्रोकाः कण्ठाः तं करकान्ता  
मत्ति-स्त्रोकाः स्त्रोकाः



अथा जलनाह(त) कदाहं, एवेवाहं न चिर जले । धृष्ट्या यद्विद्या मस्ति, तन्वा साह धवर्ण ॥ १३१२ ॥  
 सुचिरपि बहुकदाह होहिंति जगुषमन्नभाणार्ह । करमद्विद्याकथाह गयंकुसागारवेडाह ॥ १३१३ ॥

इदमपि गाथादयं कथ्यमेव, चार्णं सदाण दधवित्ससगो, षं रज्जालि चक्रिययाधि, माधवित्ससगो कोहादीर्घं, विव  
 रसगोचि गय २५, इयाणि अप्यमापचि, ण वमाओ अप्यमाओ, सत्योदाहरणगाहा—

रायणिहमगाहसुवरि मगाहसिरी पञ्चमसत्पपक्खेवो । परिहरियमप्यमत्ता नह गीयं नधि य जुळा ॥ १३१४ ॥

इमीए वक्ख्माणं—रायणिहे णपरे जरासंघो राया, सत्स सवप्पहाणाओ वो गणियाओ—मगाहसुदरी मगाहसिरी य, मगा  
 हासिरी चित्तेह—अह एस न होज्जा ता मस अओ माणं न खहेज्जा, राया ए करयउत्थो होज्जचि, सा य सीसे चिदाणि  
 मगाह, साह मगाहासिरी नट्टदिवसमि कणिणयारेसु सोवज्जियाओ सवज्जियाओ विसपूवियाओ सूचीओ केसरसरिचियाओ  
 खिवाओ, ताओ पुण सीसे मगाहसुदरीए मयहरियाए ऊहियाओ, कहं भमरा कण्हित्तराणि न कळियंति चूपसु निळोति<sup>१</sup>,

१ एता सर्वेषां रूपानुसृष्टीः, एव राज्यानुसृष्टिवाप्ति, भावपुष्पाणां कोवादीनां । अनुसृष्टा इति सर्वं इत्यस्मिन्प्रकार इति न प्रमाणोक्त्यभावात् एवमे-  
 दाहकथाया । अस्या एवावधानं—राजगृहे गगरे आचरन्तो राजा एव सर्वप्रधाने हे गन्धिहे—मगाहसुदरी मगाहसील मगाहसीलित्यवसति यजेया न मयेष्टवदा  
 नय जग्घो माग क्खउत्थेए, राजा च करवउत्थो भवर्णिं सा च वक्खानिष्ठासि मार्गपदि एदा मगाहसीलुत्थीएवसे कर्त्तिकारेणु सोवर्द्धका मज्जेके विवज्ज-  
 णिवाः सुवरः कस्यावदप्यः येचिववदी साः पुवकसा मयवसुभूप्या मद्वरिक्का ज्ञाणा, कय भमराः कर्त्तिकारेणु मागउत्थि<sup>१</sup> चूपसु कण्ठि

कण्ठ्या । एवं सो विहरह । ते श्वघारि विहरमाणा श्विहपद्विषणयसमन्मो चवहारं देववत्, पुषेण करकंदू पयिद्वो, दक्षिण  
 णेणं पुम्मुहो, एष सेसाधि, किह साहुस्स अज्झामुहो अज्झामिचि तेण दक्षिणोणाधि मुह कय, नमी अयरंण, तमो  
 वि मुह, गंधारो वत्तरेण, तथो वि मुह कयंसि । तस्स य करकहुस्स चहुसो कहु, सा अरिथि येय तेण कहुयणं गदाय  
 मसिण मसिण कण्णो कहुहओ, तं तेण एगाय सगोविण, त पुम्मुहो पेच्छह, 'अया रज्जं च रद्धं च, पुरं अंतेवर्तं सदा ।  
 सवमेय परिज्ज्ज, सवयं किं करेसिमं ? ॥ १ ॥ सिलोगो कठो ज्जाय करकंदू पडिचयणं न देह साय नमी पयणमिमं भणह—  
 जया ते पेहए रज्जे, कया किच्चकरा वद्ध । तेसिं किच्चं परिज्ज्ज, अज्झकिच्चकरो भयं ? ॥ २ ॥ सिलोगो कठो, किं पुम एयस्स  
 आचसिगोचि । गंधारो भणह—जया सय परिज्ज्ज मोक्खाय पडसी भयं । परं गरिहसी कीस !, अचनीसेसकारए ॥ ३ ॥  
 सिलोगो कठो, तं करकंदू भणह—मोक्खसमभं पवण्णारं, साहूण वमयारिणं । अहियरथं निवारन्ते, न दोसं पप्पुमरिहसि ॥ ४ ॥  
 सिलोगो—'कस्स च प्रा परो मा धा, विसं प्रा परिअचट । भासियथा हिया भासा, सपक्कसणुणकारिणी ॥ ५ ॥ सिलोगो,  
 भजो कहुयमवि कण्ठ्यं । तया—

१ एव स विहरति । ते श्वघारो विहरमाः श्विधिमविहितवगारसमन्मो चवहारं देववत् ( तत्र ) पुषेण करकंदू पयिद्वो नृवं एता  
 वधि कयं साधारण्यतोयुज्जविहामीति तेन दक्षिणज्जायसि मुह कय नमिरयेण वज्जामवि मुहं गान्थाय वज्जेण वज्जामवि मुह वृणमिदि । तज्जं च  
 करकन्दोर्बद्धी कण्ठ्या सायसेव तेन कन्दूयन पुरीषा मासुच मासुच कयं कण्ठ्यमिया ताए तेदीकज संगोपितं तए पुमुहाः देवते श्लोकः कण्ठ्याः माधए  
 करकन्दूः प्रतिवचयं न ददाति तावए वसिर्नचदमिदं मयमि । श्लोकः कण्ठ्याः किं एवमेतज्जायमुच्छरु इति । गान्थातो मज्जति—श्लोकः कण्ठ्याः तं करकंदू  
 वधि—श्लोकः श्लोकः

जहा जलताह(न) कदाह, खवेहाहं न फिर जले । घटिया धटिया कसि, ननहा सहर घटण ॥ १३१२ ॥  
सुधिरंयि बकुटाह होहिसि अणुपमजमाणाहं । करमधिराकपाह नयकुसागारबेदाह ॥ १३१३ ॥

इदमपि गाथादय कण्ठमेध, सार्ण सवाण पवधिवरसगो, वं रज्जानि चसिमुपाधि, भावविचस्सगो कोहादीनां, विव  
रसगोचि गय २५, इयामिं अप्पमापचि, न पमाभो अप्पमाभो, वरयोवाहरणगाहा—

रायगिरमगाहसुवरि मगाहसिरी पवमससथपक्सेवो । परिहरियअप्पमात्ता नहं गीय नवि य जुक्का ॥ १३१४ ॥  
इमीए यक्स्ताण—रायगिहे णयरे जरासंयो राया, वस्स सवप्पहाणाभो दो गणियाभो—मगाहसुंदरी मगाहसिरी य, मगा  
हासिरी धितेह—अइ एउ न होज्जा ता भन अन्नो माण न करेज्जा, राया व करवउरयो होज्जचि, सा व तीवें छिद्दामि  
मगाह, साहं मगाहासिरी नट्टवियसमि कण्णिमारोसु सोयसियाभो संयसियाभो विसधुवियाभो सूचीभो केसरसरसियाभो  
लिसाभो, चाभो पुण सीसे मगाहसुंदरीए मयहरियाए उहियाभो, कहं भमरा कण्णिमारानि न कञ्चिचि पूएसु निकोति !

१ अथ सर्वेषां इत्यनुसृत्यः अहं राज्याभ्युत्थितामि, मावभुतासं कोवादीनां । अनुत्तमं इति एवं इत्यधीपममाह इति न प्रमादोऽयमन्तः । यत्रो  
दाहरस्याया । अस्मा न्वावभौ—राजगुह भगरे जताधन्यो तावा । अस्म सर्वपचारो हे मन्त्रिके—मयभुतामि मयवधीन मावकीदित्यवधि पचेया न मदेष्टया  
नम याम्यो माव अहमवह, तावा न करवउरयो भवेमिह सा व तस्मात्किदाभि मार्यचरि । अहा माववधीपमिहचं कर्मकारेणु सोम्यन्मत्ता मज्जदं । विस्वा-  
नित्याः सूचका कपासतयाः भवितव्यं, तां सुवक्ता मावभुतामि मदेष्टिका मज्जा । अय भमरा कर्मकारेणु मावचरि । एतेषु कथमि

धन्तः, के १-दीप्ता अपि-रोपणा अपील्यः, वर्णितवृषभा-बलोन्मत्तवलीयर्दी इत्यर्थः, सुसीम्नाभृङ्गा अपि द्वासीरेण  
 बलेन । पौराणः गतर्दपः गल्लयन बलवृषभोष्ठः, स एवाय वृषभोऽधुना पङ्कगपरिषट्ठणं सह, पिगसारः ससार इति,  
 स्यर्पमाणभृता वैधेयं घातति सस्मादलमनेनेति, एष सन्बुद्धो, ज्ञातीसरण, निगभो, विहरइ । इभो पचालसु जणपपसु  
 कपिष्ठे णयरे बुम्बुहो राया, सोचि इदकेवं पासइ लोएण महिज्जंतं भणेयकुडभीसहरसपडिमीडियाभिरामं, जुणोपि सुप्पव,  
 पडियं च अमेवममुत्ताणमुघरिं, सो संबुद्धो, तथाऽऽह मात्थकारः—

जो इदकेवं समलकिय सु, दइ पढंत पवितुप्पमाणा ।

रिद्धिं अरिद्धिं समुपेहिया ण, पचालराया पि समिक्ख धम्म ॥ २१० ॥ ( ना० )

निगवत्तिद्धैव, विहरइ । इभो य विदेहाजणवप महिलाए णयरीए नमी राया, गिलाणो जाओ, दवीओ चदण समति  
 तस्स दाहपसमणानिमिच्च, बलयाणि खलखलति, सो भणइ—कक्षापाओ, न सहामि, एकक अपणीए जाय एक्कओ अउट्ट

१ एव संबुद्धः जातो सारथं धीमता विहरति । इतश्च पाञ्चालेभ्य उत्पद्येभ्य जायतीत्येव गगरे जुहुंयो राज्ञा लोमि इत्यर्थे इत्यर्थे इत्यर्थे इत्यर्थे  
 यदेकमुपताकासहसपरिमितताभिराम, पुनरपि सुप्पमात्तं, पठितं जामेय्यमुत्ताणमुपि स संबुद्धः विहरति । इतश्च विदेहजरादे  
 राज्ञा गङ्गानो जातः, देवपञ्चनृप पर्यवसित तस्माद् दाहपसमणनिमित्तं बलयाभिः शस्त्रैश्च स भजति—कक्षापाता, न सहै एवमपि  
 विहरति,

धरो नसिध, राधा भणइ—जाधि बलयाणि न बलबल्लोति ।, अथणीयाणि, सो वेण पुक्कणेण बभसाइओ परकोगाभिमुहो  
 चित्तेइ—बहुपाण दोसो एगस्स न दोसो, संजुओ, तथा आइ—

बहुपाण सइय सोआ, एगस्स य असइयं । बलयाणं ममीराया, निक्कसंगो निदिजादियो ॥ २११ ॥ ( आ० )  
 कज्जा, यिहरइ । इओ य गंधारधिसए, पुरिमपुरे णवरे नमार्हे राधा, सो अन्नया अणुज्जं निमाओ, पेच्छइ चूयं  
 कुसुमिय, वेण एगा मंजरी गहिया, एय स्वपापारेण लपवेण कडावसेसो कओ, पडिनिपयो पुच्छइ—कहिं सो चूयठक्कओ ।,  
 अमयेण कहियं—एस सोचि, कह कडाणि कओ ।, ठओ भणइ—अं हुओमहिं मंजरी गहिया पन्ना सेवेण स्वपापारेण  
 गहिया, सो चित्तेइ—एय रज्जसिरिचि, जाय भन्नी ताव सोहेइ, अलाहि एयाए, संजुओ । तथा आइ—

जो चूयरुक्क सु मणाहिराम, समज्जहिं पल्लवपुष्पचिचिं ।  
 रिचि अरिचि ससुपहिया ण, गंधाररायाधि समिक्क वम्मं ॥ २१२ ॥ ( आ० ) ॥

१. धरो नसिध राधा भयति—तामि बलवती न धारयति । अथनीयानि स वेण पुक्कणेण बभसाइओ परकोगाभिमुहो दोसो  
 नैकस दोषः संजुओ । चित्तेइ इत्यत्र गान्धाराधिक्ये प्रथमपुरे जगते जगती राधा सोऽप्यहं बहुबलसि शिपाया प्रेषते चूयं कुसुमितं तैमका मज्जती पृथीका  
 इव स्वपापारेण पुक्कगा काडावसायः कडाः मणितिरुता इत्यदि—क स चूयइत्यर्थः । अमात्येन कथित—स एव इति कथं कदापीकृता, । एतो मज्जति—बलवता  
 मज्जति पृथीका एवाए सर्वत्र स्वपापारेण पृथीका, स चित्तवदिति—एव तन्मयीति, ग्राहयित्वाएव ज्ञोमते अकमपया संजुओ ।

वन्तः, के ?—दीप्ता अपि-रोपणा अपीत्यर्थः, दर्पितवृषभा-धलोन्मत्तधलीवर्षा इत्यर्थः, सुतीक्ष्णशृङ्गा अपि दारिरेण  
 वलेन । पौराणः गतदर्यः गलक्षयनः खलुद्वेषमोषः, स एवाय वृषभोऽपुना पङ्कगपरिपट्टण सह, धिगसारः ससार इति,  
 सर्वप्राणभृता वैवेय धार्तसि सस्मादलमनेनेति, एष सम्बुद्धो, ज्ञातीसरण, निगमो, विहरइ । इओ पञ्चालसु जणपएसु  
 कंविहे णपरे बुम्बुहो राया, सोचि इदंकेदं पासइ लोपण महिज्जंतं अणोयकुट्ठीसहरसपडिमडियामिरामं, पुणोयि सुत्पंतं,  
 पडिय च कमेमममुत्ताणमुवरिं, सो संबुद्धो, तथाऽऽइ मात्थकारः—

जो इदंकेदं समलकिय सु, दइ पडन पविसुत्थमाण ।

रिद्धि अरिद्धि समुपेहिया ण, पञ्चालराया चि समिक्ख वम्म ॥ २१० ॥ ( ता० )

निगदसिद्धेय, विहरइ । इओ य विदेहाजणपए महिलाए णयरीए नमी राया, गिलाणो जाओ, दयीओ चरण वसति  
 तस्स दाहपसमणनिमित्त, धलयणि खलखलति, सो भणइ—कक्षायाओ, न सहामि, एकेक अयणोए जाय एकदा अउइ,

१ एवं संबुद्धः, ज्ञातेः स्मरणं शीघ्रतः विहरति । इत्यत्र पाञ्चालेभ्य अवपदेभ्य कम्पनीस्ये वगैरे द्रुमुद्यो राज्ञा सोमं च दानंकेन पदवति कादव मङ्गमान  
 कमेकमुपगताकसहजपरिमिडिताभिराम पुनरापि सुखमानं, पठितं ज्ञानेयसूत्राणांमुपरि स संबुद्धः विहरति । इत्यत्र विदेहजनान्दे मिथिकायां जयय । नमी  
 राज्ञा स्मरणो ज्ञातः देव्यश्चान्यत्र पर्यवसित तस्य दाहपसमणनिमित्तं, एकस्यापि पादपवति स भवति—कक्षायाः न सदे एकद्विजवपदानं वाचय  
 कैकसिद्धाति,

सर्वो नरिषु, राधा मण्ड-तानि पञ्चयाणि न लज्जलयेति १, नवणीयाणि, सो येन पुनस्तेन अन्नमाहभ्यो परलोकमिमुहो  
चिरेण-बहुपाण दोषो एगस न दोषो, संजुहो, तथा चाह—

बहुपाण सद्य सोढा, एगस य असद्य १ । बहुपाण ममीराया, निष्कलितो मिहिलाहिषो ॥ २११ ॥ ( मा० )

कञ्ज्या, विहरद १ इमे य गंधारयिष्य पुनिसपुरे जयते नगार्हे राधा, सो अन्नया अनुभवं निगमो, पेच्छद पूर्व  
हुसुमियं, येन एगा मज्जरी गहिद्या, एय स्वभावातेन छयेतेन कञ्जयसेवो कभ्यो, पठिनिषयो पुच्छद-कहिं सो पूर्वकम्पसो १,  
अमद्येन कहिद्यं-एस सोचि, कह कञ्ज्याणि कभ्यो १, तयो मण्ड-सं हुक्मेहिं मज्जरी गहिद्या पच्छा सर्वेण संधावारेण  
गहिद्या, सो चिरेण-एयं रज्जसिरिति, आय ऋज्वी ताव सोदेह, अकहि पयाय, संजुहो १ तथा चाह—

जो चूपकफज हु मणाहिराम, समज्जरि पञ्चबुपफचिस्सं ।  
रिद्धि अरिद्धि ससुपेहिद्या ण, गधाररायाधि समिक्ख वस्सं ॥ २१२ ॥ ( मा० ) ॥

१ एतरे नरिषु राधा मज्जरी-कामि पञ्चयाणि न एगसमिष १ नवणीयाणि स येन हुक्मेणामाहवः परलोकमिमुहो-बहुला दोषो  
मज्जरी दोषः संजुहो १ विहरति इहम मायावासिष्ये दुर्ममपुरे जगते भगवती राधा कोऽप्यनुबन्धनायै धियाः मेघवे चूय हुसुमियं वेदीका मज्जरी गहिद्या  
पूर्व सन्ध्यावारेण गृह्णा काञ्चयतिः कञ्जः मतिविह्वलः गृह्णाति-क स चूयद्वयः १ अन्नामेव कथित-स चूप इति कर्म काहीकृत्, १ तयो मज्जरी-मज्जरा  
मज्जरी गृहीता मज्जरी सर्वे न रज्ज्यावारेण गृहीता, स चिरेण-एयं रज्ज्यावारीति, पावतिद्वयाय चोपये अन्नमाहभ्यो संजुहो १

मम गामति, भणइ-अं ते रुद्धइ त गेण्ह, सो भणइ-ममं चपाए परं सहिं देहि, साहे दहिपाइणत्स छेहं देइ, दहि मम  
 एगं गामं अइ सुभस अं रुद्धइ गामं पाणपर पा त देमि, सो कछो-मुद्धमायगो न जाणइ अप्पय सो मम छेइ देइसि, दूएण  
 पट्टियाणएण कहिंयं, करकंहुओ कछो, गभो रोहिअइ, जुद्ध च यट्ठइ, तीए संजतीए सुयं, मा जणप्सओ दोवसि कर  
 कंहु ओसारेत्ता रहस्सं भिंदइ-एस तव पियसि, तेण ताणि अम्मापियराणि पुच्छियाणि, सेहिं सज्जायो कदिओ, नाम  
 मुहा कवउरयण च दाविय, भणइ, माणेण-ण ओसरामि, ताहे सा चंप अइगया, रण्णो परमसैवी पाया, पाययट्टियाओ  
 दासीओ पकण्णाओ, रायाएवि सुय, सोयि आगभो पविचा आसण दाउण सं गभं पुच्छइ, सा भणइ-एस सुमं जेण  
 रोहिओसि, तुहो निगभो, मिळिओ, दोयि रज्जाइ दहिवाइणो तस्स दाऊण पयइओ, करकंहु महासासणो जाभा, सो  
 य किर गोचळियिओ, तस्स अणेगाणि गोचळाणि, अणया सरयफाले एगं गोयच्छा गोरगसं सयं पेच्छइ, भणइ-एसस्स

१ मलं प्राममिहि मज्झि-मलं रोचते च पुहण च अयाहि-मम जयाया। एह तव देहि तदा दयिवाइणत्स छेहं देइ म एकं प्राम अहं च  
 दो रोचते प्रामो वा मयं वा च ददामि, सा रुद्ध-मुद्धमायगो न जाणाति अत्रयानं ततो मलं छेय दहसीति दूतेन मज्जागतेन कथितं करकंहु इह। तदा  
 रोचयति, जुद्ध च यट्ठते तथा संजता सुत मा जणकयो भूमीति करकंहुमपयानं रहसं भिंदसि-एव तव पियेति तेन सो मातापित्रो इहो। ताभ्यां संज्ञाया  
 कथितः नाममुद्रा कम्बकारणं च दहिंते मज्झति आनेन-जायसामि तथा सा जयाभाविपया राज्ञो पुहमायान्दी जस्ता दाइयतिता राज्ञो रोहिंते जयाः  
 राजादसि सुत सोउसि अमयतो वधिराजाऽऽसन्नं ददाता तं यमं पुच्छति सा मज्झति-एव एव पेन इह इति तुहो निर्गतः सिद्धिंती दे अहि तादे दयिवाइण  
 सखी दय्या मज्झितः, करकंहुदेहासासणो जाता, च च किर गोचळियिः तज्जानेकानि गोचळानि, अणया सायफालं एकं योससकं गीतागं स्तवं देअत  
 मज्झति-मुत्तम



भापरं मा धुरेज्जह, अथा वह्निभो होह तथा अन्धानं नावीणं द्रुव पाएज्जह, सो गोवाका पडिस्सुणोति, सोवि चण्डविजानो  
 सधवसहो आभो, राया वेच्छह, सो जुद्धिक्कभो कभो, पुणो काळेण आगभो वेच्छह महाकायं वसहं पडुप्पहिं पडिअंठं,  
 गोवे पुच्छह—कहिं सो वसहोसि ?, सेहिं वाविभो, वेच्छंतो तभो विसण्णो विंसेतो संमुदो, तथा जाह भाप्पकारा—  
 सेयं सुआयं सुविमत्तासिगं, ओ पासिया वसअं गोहमअसे ।

रिद्धि अरद्धिं ससुयेहि पा णं, कळिगरायावि समिक्कअ वम्म ॥ २०७ ॥ ( भा० ) ॥

गोहंगणस्स मअसे वेक्कियसहेण जसस अज्जति । दिस्सावि हरियवसहा सुनिक्कसिंगा सैरीरेण ॥ २०८ ॥ ( भा० ) ॥  
 पोराणपगएदप्पो गत्तनयणो अल्लवससोहो । सो वेव हसो वसहो पडुपपरियहण सवह ॥ २०९ ॥ ( भा० ) ॥

गायाअयस्स व्याकपा—वेव—शुद्धं सुआतं—गर्भदोषविकल ( सुविमक्क ) शूत्रं—विभागस्स समशूत्रं यं राज्ञा हृद्वा-  
 अभिसमीक्ष्य धृपभ—द्रवीत गोष्ठमभ्ये—गोकुलायः पुनश्च तेनैवानुमानेन कृद्धिं—समृद्धिं सम्पदं विधूतिमित्यर्थः, तद्विष-  
 राता व्याकृद्धिं च संप्रेक्ष्य—असारवयाऽऽलोभ्य कलिङ्गा—अनपदासोप राज्ञा कलिङ्गराजः, असावपि समीक्ष्य धर्म—धर्मा-  
 होरूप धर्मं समुद्ध इति धाक्यदोषः । किं चित्तवन् १—‘गोहंगणत्वं मअसे’ सि गोधाङ्गणस्यान्तरा वेक्कितव्यवत्स यस्य मअ-

१ मातरं मा शरणं यथा वर्जितं अवेव कदाञ्चनानां यथा दुरास पापवेव ततो गोपाकाः पथिधृष्यन्ति सोऽप्युच्यन्तमिदं राज्ञा स्फुटवृत्तमो जातः राज्ञा  
 मेकत सं पुरोक्षः कृतः पुनः काष्ठनामता मेकते महाकायं धृपभ मदीपीवर्धैर्हृदयान्नं गोपाद् दृक्कथि—क स हृदय इति निर्दिष्टं, मेकमात्रकतो विव  
 र्मनिष्ठवत्वं संमुदः । • समत्पाद् म

भंम नामंति, भणइ-अं ते रुक्मइ स गेण्ह, सो भणइ-ममं चंपाए धरं तहिं देहि, ताहे दहिवाहणस्स छदं देइ, दहि मम  
 एगं नामं अहं तुम्हअ जं रुक्मइ नामं वा णयर वा स देमि, सो रुद्धो-दुद्धमायगो न आणइ अप्पय तो मम छेदं देइसि, दूएण  
 पाहिवागएण कहियं, करकहुओ रुद्धो, गओ रोहिअइ, जुअं च वटइ, तीए सजतीए सुय, मा अणयसभो दोगसि कर  
 कहु ओसारेवा रहस्सं भिंदइ-एस तव पियसि, तेण ताणि अन्मापियराणि पुच्छियाणि, तेहिं सभभावो कहिओ, नाम  
 मुदा कंवलरयणं च दावियं, भणइ, माभेअ-ण ओसरससि, ताहे सा वए अइगया, रण्यो परमवैती णया, पाययदियाओ  
 दासीओ परण्णाओ, रायाएवि सुयं, सोवि आगओ वदिचा आसणं दाऊण स गभं पुच्छइ, सा भणइ-एस जुमं जेण  
 रोहिओसि, मुद्धो निगभो, मिलिओ, दोवि रज्जाइ दहिवाहणो तस्स दाऊण पवइओ, करकहु महासासणो आभा, सो  
 य छिइ गोचलपिओ, तस्स अणेगाणि गोचलाणि, अणया सरयकाळे एग गोयच्छणं गोरगसं सय पैच्छइ, भणइ-एसस्स

१ महां मायमिठि, भणहि-यखे रोचते स गृहण स भणहि-मम जयावां पूइ तव देहि तया दियवाहणय केन ददासि देहि मे एक मास अहं तव  
 यो रोचते मासो वा जयर वा सं ददासि स इह-दुद्धमावहो न आवाति अहमाहं ततो महां सेव ददातीसि पूवेन मत्तागतेन कसितं करकहु इहः मता  
 रोचयति, मुय न वचंते, तथा संवया सुत मा अणययो मुदीति करकहुमयसाहं इहसं भिगसि-पुय तव पियेति तेन हो मावहारवती इहं। तान्वां सत्तावः  
 कसित। नाममुदा कम्बकराव न दसिंते, भणहि मायेअ-वायसासि तया सा जयागतिपया राजो गृहसायान्दी माता पाएयतिता दासो रोपिदु कया।  
 राजासि सुत सोसि जालयो वभिइराज्जमनं दयावा सं गर्भ पुच्छसि सा भणहि-पुय तव येन वटइ इति तयो निर्गता। सिक्खी हे अरि ताहे दियवाहण  
 कासे दया मत्तिवता, करकहुमहासासो आता स न किअ गोपुअपिय, तज्जातेकसि गोपुअसि अन्वरा वात्ताकाळ पूर योवाएव नीतायानं वरं मेधते  
 भणहि-पुवस

भाषरं मा पुहेज्जह, अया वहुभो होइ तथा भाषाणं गावीणं पुज पापज्जह, सो गोवाला पहिसुयेति, सोवि उज्जवाधिसम्भो  
 सधवसहो जाओ, राया पेच्छह, सो सुद्धिज्जभो कभो, पुणो कालेण भागओ पेच्छह महाकार्यं वसहं पणुएहिं पहिज्जंतं,  
 गोवे पुच्छह—कहिं सो वसहोसि ?, सेहिं दाविओ, पेच्छंओ तथा पिसण्णो धिंसेतो संमुदो, तथा जाह भाव्यकारा—  
 सेयं सुजायं सुविमत्तसिंणं, ओ पासिया वसभं गोहमज्जहे ।

रिदिं अरुदिं समुयेहि पा णं, कलिंगरायावि समिक्ख वम्म ॥ २०७ ॥ ( भा० ) ॥

गोहंणगस्स मज्जे वेक्खिसरेण जस्स भज्जति । दिस्तावि दरियवसहा सुनिक्खसिंणा संरीरेण ॥ २०८ ॥ ( भा० ) ॥

पोराणयगयद्व्यो गलननयणो चलनवसमोहो । सो वेव हमो वसहो पणुयपरियहण सव्वह ॥ २०९ ॥ ( भा० ) ॥

गायात्रयस व्याख्या—वेव—शुद्धं सुजात—गर्भदोषविकल ( सुविमल ) शुद्ध—विभागस्स समष्टुद्धं यं राया हृष्टा—  
 अभिसमीक्ष्य वृषभ—प्रतीत गोष्ठमध्ये—गोकुलात् पुनश्च तेनैवानुमानेन क्खदि—समृद्धिं सम्पदं विवृतिमित्यर्थः, तस्मिन्  
 रीता चाक्खिदि च संप्रेक्ष्य—असारतयाऽऽलोच्य कलिङ्गा—जनपदस्यैव रासा कलिङ्गराजः, असावपि समीक्ष्य धर्म—धर्मा  
 सोऽय धर्मं सम्मुद इति वाक्यशेषः । किं चित्तयन् ?—‘गोहंणगस्स मज्जे’ चि गोष्ठाङ्गणस्यान्तः वेक्खितव्यवत्स यस्य भस्म-

१ भाषरं मा दाव वदा धर्मिणा भवेत् कदाभ्यासां दावां पुण्यपापयेव तयो गोपाकाः मतिशुच्यवधिं सोऽप्युज्जतमधिपत्तः स्ववृषभो जाता रान्ता  
 वसह स पुत्राः इवः पुत्रः कालमगाताः वेधते अदाकारं वृषभ मदिपीयातेष्वयमात्र गोवात् पुच्छति—अ स वृषभ इति वर्धितं, प्रेक्षमाप्यज्यो विव  
 र्नास्त्वयम् संमुदः । ० समत्कारं प्र०

मम नामंति, भणइ-अं ते रुक्मइ तं गेण्ह, सो भणइ-ममं वंयाए परं सहिं देहि, ताहे दहिपाइणस्स उइं देइ, दहि मम  
 एयं नाम अइ सुज्झ अं रुक्मइ नामं वा णयरं वा त देमि, सो रुद्धो-सुद्धमायणो न जाणइ अप्पय सो मम उइं देइसि, दूएण  
 पट्टियागएण कहियं, करकहुओ रुद्धो, गधो रोहिअइ, जुद्ध च धट्टइ, तीए सज्जीए सुय, मा अणकस्सओ होवसि कर-  
 कहु ओसारेणा रहस्सं भिंदइ-एस तव पियसि, तेण ताणि अम्मापियराणि पुच्छियाणि, तेहिं सन्नापो कहिओ, नाम  
 मुदा कम्मळरयण च दावियं, भणइ, माणेण-ण ओसरामि, ताहे सा चय अइणया, रण्णो परमवैरी णाया, पापवट्टियाओ  
 दासीओ परुण्णाओ, दायाएवि सुय, सोवि आगओ यदिसा आसणं दाऊण तं गधमं पुच्छइ, सा भणइ-एस सुम जेण  
 रोहिओसि, सुद्धो निगओ, मिस्सिओ, दोयि रज्जाइ दहिपाइणो तस्स दाऊण पइइओ, करकहु महासासणो जामा, सो  
 ए किर गोवळप्पिओ, तस्स अणगाणि गोवळानि, अणया सरयफाले एग गोवळणं गोरगसं सयं पेच्छइ, भणइ-एयस्स

१ महं प्राममिस्सि भवसि-यस्य रोचते च पुद्गल च भवति-स्य अन्त्यायो एव तत्र देहि तदा दधियदयाव केच ददासि इति मे एक नाम अहं च  
 यो रोचते प्रामो वा वयरं वा च ददासि च इह-सुद्धमायणो च जायति अन्त्यानं वतो मयं केचं ददासीति इतेन प्रज्ञासतेन कथितं काकइ इह। एतां  
 रोचयति सुद्ध च वरंते तथा संवदा सुव मा अणकयो बुद्धिणि करकहुयपसारं रहस्सं पियसि-एय तव पियेहि तेव सो माताविदो इहो। ताभ्यो मन्नाय  
 कविता। नाममुद्रा कम्मळराव च वसिंते, भवसि मायेव-वायसासि तथा सा अन्त्यामठिणया। एयो एवमाजन्मी ज्ञाया पादपठिता दासो रोपितं कमा  
 दायासि सुव सोयसि अन्त्यातो वसिदत्ताअसयं ददाया तं गर्भं पुच्छति सा भवति-एव त्वं येव इह इति एतो विरंता मिच्छीते दे अयि एतदे दहिपाइण  
 सत्ये ददाया प्रमद्विता। करकहुमहासासणो जामा। च च किर गोवळप्पियं, तस्यावेकानि गोवळानि अन्त्याया सात्ताके इव गोवळके यान्तावे सव मेकते  
 भवसि-एवस

धारभो पुच्छिभो-किं न देसि !, भणइ-अह पयस्स पइगस्स पइगेषेणं राधा भविस्सामि, ताहे कारभिया हसिकण  
 भणंति-अथा सुमे राधा भविज्जासि तथा पयस्स मकमस्स गामं देज्जाहि, पडिपण्णं सेण, मकएण अण्णे मरुया विविज्जा  
 गहिवा अहा मारेभो ठं, वरस पिवणा सुय, ताणि विणिगि नद्धाणि जाय कंचणपुरं गयाणि, सत्थ राधा मय, रज्जारिहो  
 अण्णे नरिय, आसो भविवासिभो, सो वरस सुचगस्स मूळमाणभो पयाहिणं काकण ठिभो, जाय छक्खणपाठयहि दिव्वो  
 छक्खणजुणोचि अयसहो कभो, नदिनूराणि आहयाणि, इमोयि चियंमंठो वीसरयो चट्ठिभो, आतं विठगो, मार्गगोचि  
 भिज्जारया न देति पवेषं, ताहे सेण पंदरपणं गहिंये, अठ्ठिमारुदं, मीया ठिया, ताहे सेण बाहवापणा हरिपसा भिज्जा-  
 इया कया, छक्क प-दधियाहनपुत्रेण, राज्ञा सु करकण्डुना । वाटहानकवासाभ्यामापडाका भाक्कणीकुसाः ॥ १ ॥ तस्स  
 पिरपरनामं अयइसगोचि, पच्छा से तं चेदगकयकय नामं पइट्ठिय, करकंडुचि, ताहे सो मरुगो भानभो, भणइ-देह

१ धारकः इह-किं न ददासि ? भवति-अहमेवमं दण्डकस्य प्रसाधेन राज्ञा भविष्यामि तदा करभिका हसित्वा समन्वि-अथा नं एका मनेवहै  
 सक्तं मासनाय मासं दद्याः मन्त्रियं तेन नदकेन भव्ये मासप्याः साहाय्यमायं पुरीषा कथा मारयासक, एका भिक्षा भुवं ते करोमि नटाः पाद-काजपुत्र  
 गताः उच्यते एकाः राजाहोभ्यो भवति भवोभियवसिवा, स वरस सुसक्तं पार्थमाणाय। मयिचित्वा कृत्वा स्थितो पाचपुत्रनरदीर्घो कञ्चणपुत्र इति अयसव्य।  
 इहः अर्धावर्षेभ्याहवामि अयमपि विप्रपमानो भिक्का वसितः अथ भिक्षाः मायम् इति पित्रादीनां न ददमि प्रवेष्टं तदा तेन ददातुं पुरीषं  
 मरुकिमुपात्तं भिक्षाः स्थिताः तदा तेन वारयावपुत्राया हसित्वा विप्रमादीनां कृताः । एका भिरुपुत्रमायवपीप्यक इति पञ्चावस्य तत् वेदककृतं नाम  
 मन्त्रिणं, काकण्डुर्भक्षि तदा स मासना भगवतः, मन्त्रि-मन्त्रि

तेण अत्पणो भज्जाए समत्थिओ, सा अज्जा तीए पाणीए सह मेत्थियं पदेइ, सा य अज्जा संसतीहिं पुच्छिया-किं गएओ !, भणइ-सयगो आओ, तो मए चत्थिओचि, सोचि सवइइ, ताहे दारगेहिं सम रमंतो दिंभाणि भणइ-अदं तुभं राया मम तुभमे करं देइ, सो सुक्कच्छूए गाहिए, ताणि भणइ-ममं कहुयइ, ताहे करंकहुचि नाम कय, सो य तीए ससतीए अणुरत्तो, सा से मोदगे देइ, अं वा भिक्खं छइइ, सवहिओ मसाणं रकसइ, तय य दो सज्जया केणइ कारणण च मसाण गया, आव एगएय वसीकुइगे दइगा पेच्छंति, तयेगो दइलकखणं जाणइ, सो भणइ-ओ एयं दंढग गणइइ सो राया दवरं, किहु पइच्छियओ आव अण्णाणि वचारे अणुत्ताणि वइइ, ताहे जोगोचि, तेण मायंगेण एगेण य भिज्जाइएण सुय, ताह सो मरुगो अत्पसागारिए तं चवरंतुल लणिकण छिंदइ, तेण य चेत्येण दिओ, वइत्तिओ, सो तेण मरुएण करण णीओ, भणइ-वेहि मे दइगं, सो भणइ-न वेमि, मम मसाणे, भिज्जाइओ भणइ-अण्णं गिणइ, सो नेच्छइ, मम एएण वज्ज, सो

१ देवामयो मायसि समत्थिः। सा आर्या तथा पाप्मा सह मैत्री वरयति। सा आर्या संवर्तीसि। एता-क वर्यः। १ अर्थात्-दुवधे तावत्तवा मयो सिक्ख इति सोमसि संवर्तते तथा दारकैः समं समान्यो विगमाद् अर्थात्-अह मययो राता मयं पूयं करं दत्त स शुक्कच्छूया पुरीठाः ताह अर्थात्-मो कएइ वत्, तथा करच्छूयसि नाम कृतं स च तयो संवर्त्ता अणुत्ताः सा तली मोदकाद् ददाति यो वा भिक्षां कसते संवृत्ता समान लक्षि वत् च ई। सारं केनचित्कामयेव तद् समाधानं पठो। वाचकेन वसीकुइगे दवरं मेथेते तीको दवरकखणं जायति स अर्थात्-अ एयं दवरक पुरीठाणि च राता अर्थात् किमु प्रतीक्षितव्यो वाचकस्याद् चतुरेन्द्रियाद् वर्यते तथा बोध इति तथैव सावहेनेकेव च विगमार्थायेव भुवं तथा स ज्ञानाद्योऽप्यसाधारिके च चतुरेन्द्रिय निराका विवर्ति तेन च चेत्येव एतः उदाहृतः। स तेन ज्ञानायेव कारणं (आधारत्वं) नीतः, अर्थात्-वेहि मयं दवरकं स अर्थात्-अ ददासि, मम वप्याने विगमा-दीयो मयसि-मयं पुराण स मेच्छति समेत्येव वर्यः, स

तिरन्तोरो गन्धो भयं लक्ष्मिं, सावि इतिषा गीया निम्माणुसं ब्रह्मिं जाय तिसाहभो पेच्छइ यइ महइमहाकप, तत्त  
 वइण्णो, अभिरमइ हएयी, इमावि सणिइमोइया सत्तिण्णा, दहाभो विसा अयाण्यंटी एयाए विसाए सागारं मयं पव  
 वसाइया पहाविषा, जाय पुंरं पया ताव तावसो विओ, तस्स मूलं गया, अभिवादिभो, तरय गच्छइ, तेण पुच्छिया-  
 क्खो भम्मो ! इहागया !, ताइ कहेइ सब्भायं, वेइगस्स पूया, जाय इतिषा भाणिया, सो व तावसो वेइगस्स निब्रह्मो  
 तेण आसासिया—मा धीहिदिहि, साहे वणकळां देइ, अक्खावेया करवि दिवहे ब्रह्मीए निष्केहिण एवोहिंओ भम्माणं  
 अगाइविसभो, एखो परं हठयाइया भूमी, व न कप्पइ मम अठिकमिदं, जाहि एस दत्तपुरस्स विसयो, दंतवको एया,  
 नितगया सभो ब्रह्मीभो, दत्तपुरे अजाण मूखे पवइया, पुच्छियाए गम्मो नाइकिक्खो, पच्छा नाए भवहाइयाए आओ  
 धेइ, सा वियाता समणी सह गाममुइयाए कंठतरयणेण य वेहिदं सुसाणे उक्खेइ, पच्छा मसाणपाओ पाओ, तेण गहिओ,

१ भित्तवन्तो गवज्जन्तो जयन्ती सावि की भीमा निमोण्णामरवी पावएणाहिंवा मेक्खे इइ महइमहाकपं उजावलीदं; अमिरमते हली इमसि  
 दधैरिं सुज्जोवीन्तो इय भित्तोऽज्जगन्तो एकस्मां दिग्धि साकारं मयं मसाण्णाय मयाभिया जायदूरे मया तावजाण्यो एवा उक्ख मूलं एवा अभिवादिव। ताव व  
 क्खमिं ताव दुरा—ज्जोऽय्य ! इरमया !, तावा कपवदि ज्ञाताव, वेइकप्प इहिंवा जावदियेराऽअपीया व व तावसो वेइकप्प सिक्ख तेवावकिता—मा धैरीरीधि  
 ताव ववज्जन्तो इरासि क्षावभिया कीठीविइसाए अरपीओ भित्तोरेतोऽज्जगम्भिवन्तो गतो अस्स। परं इक्खेया भूमी, ताव व क्खमतेऽज्जगम्भित्तान्  
 दधैरिं इक्खुताए विववइया, इक्खवको राता भित्तोरा वतोऽय्यया। इक्खपुरे आर्यन्तो मूखे मयाभिया उववा यमो वस्सवातः ज्ञाते एयान्महाउपदेवजा आओ  
 ववहिं वा मज्जवज्जो जम्भी साइ जाम्भुइयाए एक्कमत्तेव व वेइभिया इमपाते वस्सहि एयाए इमपातपाळा एक्कमेव पुरीया।

धंसा, भिक्खुं गहियं, एवं चत्तरुणा न भग्गा । एवं चत्तरुणपक्कस्साणं २६, पक्कस्साणिचि गयं २६ । इयाणिं विवस्स  
 गोसि, विवस्सग्गो बुविहो—द्वओ भावओ य, तथ दवविवस्सग्गो करकडादओ उदाहरण, सधाऽऽह भाव्यकार —  
 करकडु कल्लिगोसु, पञ्चालेसु य हुम्मुरो । नमीराया धिवेहेसु, गघारेसु य णगती ॥ २०५ ॥ ( भा० ) ॥  
 वसभे य इय्केऊ वल्लय अये य पुत्तिकय बोही । करकडुहुम्मुरस्सा, नमिरस गघाररओ य ॥ २०६ ॥ ( भा० ) ॥  
 इसीए वक्खणं—वपाए दहिवाहणो राया, चेहगबूया पत्तमावर् देवी, सीसे होहलो—किहऽह रायनयथण नयधिपा  
 हज्जाणकाणणाणि विहरेज्जा १, ओलुग्गा, रायापुच्छा, साहे राया य सा य देवी जयहरेयमि, राया छस भरह, गया  
 हज्जाण, पट्ठनपावसो य पट्टह, सो हत्थी सीयलएण मदियागंधेण अरुमाहओ षणसभरिऊण चियहो यणाभिमुहा पयाओ,  
 ज्जणो न तरह ओल्लिगिवं, दोवि अहविं पवेसियाणि, राया वट्ठकस्सं पाठिऊण देयिं भणह—एयरम पटस्स द्दहेण जादिति वा  
 तुम सालं गोण्हज्जासिचि, सुसज्जता अण्ड, चहसि पडिमुणोह, राया दच्छो सेण साला गहिया, इदरी दिया, सो चरणो,

१ इसीए धैर्यं युहीह पक्कमुचएणा न भग्गा पक्कमुचएणपक्कस्साणं । पक्कस्साणमिहिं गय इदानीं खुल्ला इति खुल्लगों इतिथः पक्कस्स  
 भावतलं तथ पक्कमुल्लस्ये करकडुआदय इदाहरण तत्राह—अनयोप्यधिकारं—अनयो धिविवादनो राजा अटकुद्धेवा यथावती द्वां वला इह—अवमर्द  
 राजनेपप्येव धेयविवातोयानकावगातिं विहरेय, कीणा, राजपुच्छा तथा राजा सा य देवी जयहरेयि राजा उच्च वारयति गतोयानं प्रथममाहुर य वर्यत  
 स हत्थी सीयलएण मदिक्रमपन्थेनमाहरो वन स्मृत्वा मत्तो वनायिमुच्च मयावा अवरो न एकोपवकणिर्गुं द्रावति अटवीं प्रवेसिती राजा अटकुधं एता  
 देवीं भयति—एतस वटसावच्छाए पाकति ततत्थं वाक्यं युहीया इति सुसज्जता इति दयेति मतिरुच्योहि राजा वक्खणं वाका युहीया इता  
 सोऽप्यदीर्घः



निराश्रयो गच्छो नश्ये पावति, सावि इतिगता नीया निम्माणुसं बहविं आत्त विसाहभो पेच्छह दह महासहाकय, तत्त  
 वदण्णो, अभिरमह ददयी, इमावि सणिहमोहता सत्तिगता, दहाभो दिसा अण्णोसी एगाय विसाय सगारं मत्तं पक्क  
 बत्ताहया पहाविया, जाय दूरं पया ताव तावसो विट्ठो, सत्त मूळं गया, अभिवाविभो, तत्त गच्छह, तेष पुच्छिया-  
 क्खो भम्मो ! इहाया !, ताह कहेर सत्तावं, चेदगत्तं पूया, जाय इतिगता आणिया, सो प तावसो चेदगत्तं निपक्कभो  
 तेण आसासिया-माधीद्विद्वि, ताहे वणफत्ताह देह, अण्णोवेसा कइवि दियेह बहवीए निक्केहिता एवोहिंठो अन्नाप  
 अगाविसभो, एवो परं हत्ताहिया भूयी, तं न कप्पह मम अतिकमिद, सावि एस दंतपुरत्त विसभो, दंतचक्को राता,  
 निगया सभो अहवीभो, दत्तपुरे अज्जाण मूळे पयइया, पुच्छियाए गम्भो नाहिकिक्खो, पक्का नाए मयहादिपाए भाओ  
 वेह, सा वियाता समाणी सह जाममुइयाए कंमत्तरयणेण य वेहिद सुत्ताणे सक्खेह, पक्का मत्ताणयाओ पाणो, तेण गहिंयो,

१ भिगान्णो मत्तज्जनां वपयी साअरि की भीष्मा निर्माज्जामरवीं वात्तएवमिंत्तः मेखते इदं महासिंभरत्तम् धत्तावतीवं, अतिमत्तते इत्थे इममि  
 धमोमुत्तयोवीनां इत्थ भिगोऽज्जामरवीं वृक्कां विधिं साकारं मत्तं प्रसाक्याए मत्तामिंता वात्तए मत्तावात्तज्जो एत्ता तत्त मूळे मत्ता अतिमत्तते, तत्र य  
 म्ममिं तेन वृत्ता-ज्जोऽज्ज ! इत्थमत्ता ! तदा कयवति सत्ताह, चेदकय इद्विंता वात्तद्विक्काऽअमींता स य तावसोदकय भिक्कं देवावहिता-मा देवीमिंति  
 तदा बत्तकम्मिं इत्थं अण्णमिया अतिविद्विदाए अदवीतो भिक्कपदेवोऽज्जामरविचो गतेः अत्ता परं इत्तकया मूमी। तए न अत्तादेवमाकम्मपिकम्मं  
 मम्मं एत्तपुत्ताए विचए पुरः एत्तज्जो ताता भिक्का ज्जोऽज्जमः इत्तपुरे अण्णोनी मूळे मत्तामिंता इत्तदा गयो बत्तयात्ता। ज्जते पत्तामत्तएविकारा अत्तो  
 वदयि सा मत्तवत्तमी अत्तो साह जाममुइया एत्तकमत्तेन य वेहिमिया। इत्थाने जम्मसि एत्ताए इमपाणयात्ता पात्तदेव पुरीसः

कोडीधरिसचिजलाए जिणदेवे रयणपुच्छ कहणा य । साएए ससुजे धीरकहणा य समोदी ॥ १३१० ॥

न्यास्या कथानकावसेया, सवेद—ठाएए ससुजए राया, जिणदेवो सावणो, सो दिसाज्जाए गभो कोटीधरिसं, स निच्छा, सए चिजलाओ राया, तेण सस रयणाणि अण्णागारे पोसाणि भणी य जाणि तए नरिध ताणि दोइयाणि, सो चिजलाओ पुच्छइ—अहो रयणाणि कथियाणि, कहिं एयाणि रयणाणि !, साहइ—अह रज्जे, चित्तेइ—जइ नाम मनुसज्जा, सो राया भणइ—अहंए जिमि रयणाणि पेच्छामि, सुज्झं सणस रणो धीहेमि, जिणदेवो भणइ—मा योदहि, साह सस रणो केइ पेसेइ, तेण भणिओ—एवहि, अणिओ सावणेण, सामी समोसढो, सेज्जओ निगभो सपरिचारी मइया इट्ठिए, सयणसमूहो निगओ, चिजलाओ पुच्छइ—जिणदेवो ! कहिं अणो जाइ !, सो भणइ—एस सो रयणवाणियओ, भणइ—तो जामो पेच्छामोचि, दोचि अणा निगया, पेच्छंति सामिस्स छात्ताइअ सीहासणं, यिभासा, पुच्छइ—कहं रयणाइ, साह

१ साकेसे धाउअवो तावा दिवदेवः आसकः स विग्गवाया यातः कोटीधर देहेच्छाः तत्र विज्जालो तावा देव तस्स रयमि निविद्याकालि अप्पदि मयपव वासि तत्र स स्मितं तानि हीनिकवानि स विज्जालः पुच्छति—अहो एवमि सुक्कामि केवमि एवमि ! कववति—अस्माक एतए विम्वर्त्तन—वदिं नाम संसुप्पेत स तावा भणति—महम्मज्जावामि एवमि मेवे परं एवीणाए एयो विमेमि दिवदेवो भवति—मा भेषो ! तदा तस्स एव केव इदं एतं तत्र यस्मिन् भावाविमि आवीतः आरहेअ जामी समवतुतः धाउअवो विर्यतः सपरीचारी मइया अज्जा सववसयुरो विर्यतः विज्जालः पुच्छति—अनइ ! क जव ! वसि ! स मज्जि—एए रअवमिइ सः मज्जि—वहिं वावः मेवएव इवएवि अयो विर्यतो मेवेत—जामिअज्जाविअपपं विहासव विमाए इएवदि—अए एवमि !, तदा

साम्नी भावरत्नगणि दत्तरत्नगणि च पुष्पवेष्ट, चिन्ताम्नो मण्ड-मग भावरत्नगणि देहिषि मणिम्नो रत्नहरणगोष्ठगार  
 साद्विज्जति, पद्मभो, पर्य भूतगुणपञ्चकक्षणं, इयानि चत्तरगुणपञ्चकक्षणं, तन्मोदाहरणगार-  
 बाणारसी य जयरी अणगारे धम्मयोस धम्मजसे । भासस्स य पारणप गोचलमगा च अणुकंपा ॥ ११११ ॥

इयत्तया कथानकादवसेया, तन्नेदं-बाणारसीय धुवे अणगारा वासावासं ठिया-धम्मपोसो धम्मससो च, ते भासं स्वमणेण

अच्छति, अउरथपारणाए मा णिपापासो होहिषिषि पढमाए सवसायं बीयाए अउरथोरिही चइयाए चगाहेया पहाविया,  
 सारइएणं चण्डेण अउसाइया सिंसाइया गंग चत्तरंग मणसावि यालियं न परयेति, वरिष्णा, गंगादेवदा आउइ, गोच  
 छाणि चिद्विषा सपणीया गोषणा दधिपिमासा, साहे चइयेइ-एइ साइ सिक्खं नेणइ, से चक्कणा दइण ताए क्खं,  
 सा सेहि पट्टिसिन्ना पहायिया, पञ्चा ताए अणुकंपाए वासपइलं चित्तियं, भूमी चछा, सियलेण वाएए अण्णारका गामं

१ साम्नी भावरत्नगणि दत्तरत्नगणि च पुष्पवेष्टि चिन्ताम्नो मण्डि-मग भावरत्नगण्येव इति अस्मिन् रत्नोद्धारणोक्त्याभि दत्तं नस्ति यदस्तिः इत्य-  
 द्वाङ्गुल्यन्तावसानं इत्यादीमुक्तपुन्यमावसानं तन्मोदाहरणगार-वासावासं इत्यवयवादि दत्तं नस्ति इति चेत्तः इत्य-  
 न्नाहः अणुपारणक मा भिषवादिभ्यो दूषति यवसायां स्वाध्यायं विधीयमानयोरीक्ष्यं ( इत्या ) इतीपकायुद्धमा यवादिभ्यो सप्तभिन्नेभ्योवैवाचन्याहरी  
 दूषतिभ्यो यवाभुवाभ्यो यववादि यमीय न प्रापयतः, इतीभ्यो गङ्गादेवताऽऽवर्तिता योक्त्यादि सिद्धयं जगतीवत् एवेत्यर्थः इति सिन्धवा चरा  
 एतद्वर्ति-वावाह साधू । भिषो गृहीतं वायुपुच्छे इत्या देवां रूप, वा वाच्यं यद्विषया यवादिना पञ्चाए तथामुक्त्या चत्तरं दत्तं सिद्धितं यस्मिन्नादी  
 ( वाता ) सीतलव वायुनाऽऽवर्तिभ्यो भाग

असद्योसोपसहारो कथो, मरामिति सद्य सायज्ज पद्यकसाधं, कहयि कम्मकलभोपसमेणं पउणो, तद्वयि पद्यन्त्याय धेय,  
पद्यज्जं कथाइओ, सुहज्जवसाणस्स णाणमुप्पण्णं आव सिद्धो। असद्योसोपसहारोचि गय, २१। इयाणिं सद्यकामपिरत्तयसि,  
सद्यकामेसु धिरंथियय, तथोदाहरणगाथा—

उज्जेणिवेयल्लासुय अणुरत्ता लोपणा य पउमरदो। सगयओ मणुमइया असियगिरी अब्बसकासा ॥ १३०० ॥

ध्यास्या कथानकादयसेया, सद्येद—उज्जेणीए नयरीए देवल्लासुओ राया, सत्तस भज्जा अणुरत्ता लोपणा नाम, अन्नया  
सो राया सेजाए अच्छइ, देयी घाले वीयरइ, पठिय दिठ्ठ, भणइ—भट्टारगा ! धूमी आगओ, सो ससभमं भयइरिसाइओ  
उठ्ठिओ, कदि सो?, पच्छा सा भणइ—भम्मदूओचि, सणियं अंगुलीए पेठिसावक्खय, सोषण भाडे लोमजुयउण यठिसा  
एयरं हिट्ठाविओ, पच्छा अभितं करेइ—अजाए पल्लिए अमइ पुषया पयसंति, अहं पुण नं पयइओ, पउमरदं रज्ज ठपेउया  
पयइओ, देवीवि, संगओ दासो मणुमइया दासी ताणिवि अणुरगणेण पयइयाणि, सयाणिवि असियगिरिवापसासमं वरय

१ अस्मन्मयोपयसंहारः कृतः शिव इति सर्वं सावयं प्रकाशयत कथमसि कर्मस्योपयमेव मनुष्यः तयाहि प्रकाशयतमेव प्रकथ्यो कृतवान् पुमान्  
वसावस्य शान्तुत्यर्थं पावत् सित्वा । आत्मयोपयसंहार इति गर्त इवासीं सर्वकामाधिराज्येति सर्वकामेभ्य विरक्तत्वं । वज्जदिन्नां वयसः । देवताभ्युक्तो राजा  
तस्य भार्योऽनुरक्ता कोचका नाम्नी जन्मया स राज्ञा सपथ्यासीति वृत्तिर्येवी राजान् वीज्यवसि ( सोपवसि ) देव्या बाले पठितं त्वं भवति—भट्टारक । एष  
भागात् स सर्वप्रथमं भयइरदवाइ इत्येवम् । क सा?, एवमाह सा मज्जति—जमेवूय इति सदैरइत्या धेयविशेषोपसहं सोक्येत्त्याह धीमज्जुगादेव वदिसि। वा गये  
हिरिन्दतः पद्मार्कटं करोति—अन्नादे पठितेऽप्याह पूर्वकाः प्रपन्नविशुः अहं पुनर्न प्रपन्नितः पद्यार्थं रामये कथाविधेरा प्रपन्नितः इत्येव हि संगो दाया  
मणुमसि का दासी दावप्युदायेव प्रपन्नितो सर्वेऽप्यसि तमिहिरावाभमस्यत्र

भवाणि, संगमभो मनुमतिगा न केवाह काठंउरेण वप्यवद्याणि, देवीपुत्रि गम्भो नक्कामो पुवं एण्णो, पद्धिउमारब्धो,  
 राणा भविमि पगभो-भयसो काभोमि अह, तावसभो पच्छमं सारवेह, सुकुमाळा देवी विचार्यती मया, तीए पारिषा  
 व्यादा, सा असायं तावसीयं भणय पियह, संयद्धिया, ठाहे से अन्नसंकासमि नामं कयं, सा ओवणत्था व्यादा, सा पियरं  
 अहवीभो आगयं विरसाभेह, सो तीए ओपणे अम्होवयभो, अज्जं हिम्भो छपुमिमि अक्कह, अण्णया पहाविभो निष्वांसिमि  
 उहगकट्टे आवहिभो, पदिभो चिंतेह-पिदी हहउए फल परलोए न नक्कह किं होसिमि सभुद्धो, ओहिनाण, मयाह-  
 भविपव भो छल्लु सप्तकामविरसेणं अम्हपण भासह, पूया विरसण संवतीण विण्णा, सोवि सिद्धो । एव सप्तकामविर  
 सिएण ओगा सगदिया भयति । सप्तकामविरसयमि गय २२, इयानिं पक्ककलाणिमि, पक्ककलाणं न दुदिहं-मूळगुणपक्क  
 कलाण चसरगुणपक्ककलाण न, मूळगुणपक्ककलाणे वदाहरमगाह।—

१ पाठाः संगमो मनुमतिक न केनचित्काकमपरेण।प्राग्भित्तौ देव्यामसि पार्श्वो नावराजः पूर्वं रात्रा वर्तिगुप्तस्यः रात्राऽपुनं ललतः ललता अतोऽयं  
 कावसाय प्रच्छन्न संदर्भसि सुकुमाळा। देवी प्रवन्नवल्मीकता लला रात्रिश्च लला प्राग्भ्यामं तावसीयं अत्र स्थिति संदर्भिका लला लला सर्वसंक्रमेति शान्त  
 कृतं वा वाचनस्या ताता सा विराभरवीभ आयात विरसयमि ललता वाचनेऽनुपपन्नाः अत्र चो कावसायीमि भिन्नमि अण्णया प्रधासितो पुष्कामीमि सन्नक्कह  
 आसित्तः, वर्तिविसयवदि-पिय पिय हहउके अत्र परकाके न सायते किं भविप्यतीमि सभुद्धः अत्रविज्ञानं मयमि-मलितमं भोः अल्लु सर्वकामनि  
 रज्ज्व अत्रपय भावते दुदिता विरस्य संवतीय्यो दया, सोऽपि सिद्धः । पूर्व सर्वकामविरसेण पोषाः संयुदीया मयमि । सर्वकामविरकरोमि एवं  
 एतादी मलाम्भानमिन्न मलाम्भानं न द्विविधं-मूळगुणपक्ककलाणमूळगुणपक्ककलाण न मूळगुणपक्ककलाणे उदाहरमगाह।—

साह्र आया, एसा भावपणिहिसि । पणिहिसि गयं १८ । अहा इयाणिं सुविहिसि, सुविहीए ओगा संगदिया, यिधिरजुसा यिधी अस्स इहा, योमनो यिधिः सुविधिः, सर्वोदाहरणं अहा सामाइयनिजुसीए भासुकपाए अकखाणां—

बारवई वेयरणी वल्लमरि अयिय अमयिय विज्जे । कइणा य पुच्छियमिय गइनिहेसे य सयोही ॥ ११०५ ॥  
सो जानरज्जइवई कतारे सुविधियाणुकपाए । आसुरवरणीदियरो देवो वेमाणिओ जाओ (८४७) ॥ ११०६ ॥

आव साह्र साहरिको साह्रण समीवं । सुविहिसि गयं १९ । इयाणिं संवरेसि, संवरेण ओगा संगदिज्जंति, सरय पदिवक्खेणं वयाहरणगाहा—

वाणारसी य कोट्टे पासो गोवालमइसेणे य । मवसिसरी पचमसिसरी रायगिहे सेणिए धीरो ॥ ११०७ ॥

अयास्या कयानकादवसेया, तच्चेदं—रायगिहे सेणिएण वद्धमाणसामी पुच्छिओ, एगा देवी पाटविहिं वयदंसेसा गया का एसा !, सामी भणइ—वाणारसीए भइसेणो कुससेही, तस्स भंज्जा नेदा, सीए पूया मंदसिसरी परणाविवाज्जिपा,

१ साह्र जाही एया माक्खमिधिसि । ममिधिसिध गयं, इरावी सुविधिसिध सुविधिया योणा संपुट्ठन्ते शिधिववा वल्लेहा, एसा सामागिह-  
मिधुंकी अजुक्कमायमाअवागयं—जाहवी वैतरसिः यमवत्तारिभेय्योउमययस वैधी । कयमं य पुहे वं भविमिरेणव संवोसिः ॥ १ ॥ स वावरपुत्तरसिः  
कामवारे सुविधिराजुक्कपाया । आसुरवरणीयिधरो देवो वैमाणिओ जायाः ॥ २ ॥ बारव साह्र संवराः वापूणं समीपं सुविधिसिध भवं । इरावी संवर  
इति, संवरेण योणा संपुट्ठन्ते एव मणिपधेयोदाहरणगाया । एतत्पुट्टे अविक्केव मयंमावज्जामी इहा युवा देवी वुक्खीयधियुत्तरयं भया वैसा ? सामी  
सजसि—जाताअसां भाइदेवो वीजभेही, एका भावीं जग्ग, एसा इदिता वज्जुधीसिधो वरविवाज्जिपा

ठेरव कोहर वहर वासस्वामी अमोघहो, संवसिरी पणइया, गोवाठीए सिस्सणिपा विष्णा, पुढं उगणेण विहरिचा  
 वच्छा कोसजा जावा, हरये पाप मोनेह, जहा दोवठी विभासा, वारिजवी डेडकणं विमराप बसहीते ठिया, ठस  
 ठाणसठ अणसोइयपरिभंवा जुलदिसभंते वरसवहे सिरी जावा-देवगणिवा, एसीए संवरो न कभो, परिबकसो सो न  
 कावहो, अण्ये अणंति-इरियणिपाकवेण वावकापइ, ताहे सेणिपण पुच्छिभो, संवरेचि गर्ध २० । इयानि 'अचदोसोव  
 सहारे'चि अचदोसोवसहारो कायवो, जइ किंचि कहासि सो जुणुणो बवो होविति, तस्य ववाहरणगाहा-  
 वारवइ अरइमिसे अणुदरी नेव लइय जिणवेवो । रोगस्स ए वज्जसी पविसेहो अस्ससंहारो ॥ ११०८ ॥

व्याख्या कथानकादयसेया, खखेई-भारयवीए अरइमिचो सेही, अणुदरी यज्जा, छावयाणि, जिणवेवो जुचो, तस्स  
 रोगा वज्जया, न तीएर विरिंठिउठं, वेज्जो अणइ-संसं खादि, नेच्छइ, सवणपरियवो अस्सापियरो ए पुचणोहेअणुका  
 पादि, निबभेयि कह सुचिर रक्सियं यय भंजानि, उकं व-“परं प्रवेष्टुं ज्वलितं द्रुताश्वतं, न जापि माघं चिरसच्चितं प्रवन्”

१ ठाव कोहरे वेसे जार्कसामी समवसुहा, जणसी, जवाडिवा गोवाळें ठियाइया एका एवंगुमेव विहस पज्जाइवसा जता इहें पाद्री पाककज्जति,  
 बवा श्रीपरी सिमाया जार्कसोवाया विमज्जयते बघली सिमा, तस्य आवासायाकोरवमसिककावा हुडभयिनवति पज्जइवं मीनंठा देवगणिप, पुवला  
 संवरो व इयः मीविसः स व कर्कषा, अण्ये अणपिउ-इठिमीकोनेव वासहुदिरसि ( सावाइ क्योसि ) तया नेमिनेव पुड, संवर इति वतं इण्णमीयाम-  
 योवोपसंहारोठि आकरोवोवसोहाः कर्तव्यः यर्हि विपिउ करियमी तर्हि दिण्णो बज्जो भसिज्जदीसि एजोवाइरकाया-इरावज्जा बईमिवा येही, अणुदरी  
 भावा जावही विवदेवः पुषः तस्य रोगा वसजाः न इरायण्ये विविदिपु वेवो अणपि-सोसं जाइव नेच्छति सज्जवपरिववो सतापियवी व पुज्जयेवेव-  
 मुवावपिउ, विवंपयेज्जि कय सुचिउं इठिउ मठं भवमि,

भरयच्छे जिणवेधो भयतमिच्छे कुलाण भिक्खु य । पइठाण सालवाहण गुगुल भगाय च णइमाणे ॥ १३०४ ॥

अथारूया कयानकादवसेया, ठवेदं—भरयच्छे णयरे नइवाहणो राया कोससमिद्धो, इमो य पइछाणे सालपाहणो राया वलसमिद्धो, सो नइवाणं रोहेइ, सो कोससमिद्धो ओ हस्यं वा सीसं वा आणेइ सस्स सयसहरसग पिस देइ, छाइ ठेण नइवाहणमणूसा दिवे ३ मारंति, सालवाहणमणुस्सायि केवि मारिंता आणोति, सो सेसिं न किंचि देइ, सो सीणअणा पइआइ, नासिंता पुणोयि वितियवरिसे पर, तथयि तवेव नासइ, एवं कालो वचाइ, अज्जाया अमयो भणइ—मम अय राहेत्ता निविसयं आणवेइ माणुसगाणि य वंधाहि, ठेण ठेवे कयं, सोयि निगणूण गुगुलभारं गहाय भरयच्छेमागमो, एगस्य देवउले अच्छइ, सामंवरज्जेसु पुइ—सालवाहणेण अमयो निच्छइओ, भरयच्छे णामो, केणति पुच्छिओ को सोचि, भणइ—गुगुलभगयं नाम अहेति, वेहिं णामो ताण कहेइ जेण विहाणेण निच्छइओ, अहा सहुं सेगणचि, पच्छा नइवाहण

१ अणुकच्छे सयरे वनोवाहो राजा कोयासइहा इहव मतिहावे साकवाहो राजा वलसइहा । स वनोवाहं प्पत्ति, स कोदसइहा वो इह वा सीसं वाअज्जायि वल्ले वलसइहअण्ण इहाति वहा देव वनोवाहमसमुत्था दिवसे ३ मारवन्ति वाकवाहवयमुत्ता भति कोदवाति मारवित्ताअज्जायि स तेम्यः किंचिदपि य इहाति स वीजवत्तः मतिवाति नहुं पुवरति इदीववत् अयाति वजाति ठेव वरवाति वृष काको वज्जति अज्जाअज्जाओ भवति—मामपराय निर्विषयमायपयव ममुत्थाय वयाव देव वदीव कुलं, सोमि विराल गुणुज्जातं पुदीया अणुकच्छमाणाः एकव देवउल ठिवाहि सामभवान्णु विव—साकवाहसेवामाओ दिक्कासिताः अणुकच्छे वताः, केवचित् पुइ, कः स इति अज्जति गुगुलमयवाइ वामाहमिति, वैद्यावकाइ वरवाति देव विवि वा निक्कासितः, यथा कहुं ( अयराय ) ते गजपन्थि एवाहमोवाहमेव



भूय, मधुस्सा विसाज्जया नेच्छुइ भुमारामज्जणस्स भंघंवि सोवं, सो प राया सवं मागवो, ठविओ अमवो, वीसमं  
 जाणिकण भणइ-गुणोण रज्जं छब्भइ, पुणोवि अणत्तस्स अम्मस्स पत्थयणं करेहि, ताइ देवकुञ्जाणि भूमवज्जागवाभीण  
 खणावणादिप्यहि दवं सइय, सेंससाइणो आवाहिओ, पुणोवि ताविज्जइ, अमवं भणइ-गुमं पढिओवि, सो भणइ-  
 वइमि अठवरियाण आभरणेणंवि, पुणो भओ पइछणंवि, पच्छा पुणो संवेवरिओ णिवाइइ, तम्मि णिहिइ साकवाइणो  
 आवाहिओ, नरिय दायवं, सो विणइओ, नइं नयरवि गहिय, एसा दवपणिही भावपणिहीए वदाहरणं-सकपच्छे जिणदेवो  
 नाम आयरिओ, अदंतमिस्सो कुणासो य सव्वणिमा दोवि भापये वार्ह, ठेहि पइइओ निक्काकिओ, जिणदेवो नेइय-  
 वंदगो गभो सुणेइ, पारिओ, रावळे पायो जाओ, पराजिया दोयि, पच्छा ते विचिंतेइ-विणा एयसिं सिवंसेण न तीरइ  
 एयसिं ववरं दावं, पच्छा माइठाणेण साण मूळे पवइया, विमासा गोविन्दवत्, पच्छा पदंताण ववगत्तं, माइओ पडिबला,

१ भूय मधुस्सा विसया नेच्छुमि भुमारामज्जणस्स भोइ, ए व राया सवं मागवो, ठविओ अमवो, वीसमं  
 ज्जणिकण भणइ-गुणोण रज्जं छब्भइ, पुणोवि अणत्तस्स अम्मस्स पत्थयणं करेहि, ताइ देवकुञ्जाणि भूमवज्जागवाभीण  
 खणावणादिप्यहि दवं सइय, सेंससाइणो आवाहिओ, पुणोवि ताविज्जइ, अमवं भणइ-गुमं पढिओवि, सो भणइ-  
 वइमि अठवरियाण आभरणेणंवि, पुणो भओ पइछणंवि, पच्छा पुणो संवेवरिओ णिवाइइ, तम्मि णिहिइ साकवाइणो  
 आवाहिओ, नरिय दायवं, सो विणइओ, नइं नयरवि गहिय, एसा दवपणिही भावपणिहीए वदाहरणं-सकपच्छे जिणदेवो  
 नाम आयरिओ, अदंतमिस्सो कुणासो य सव्वणिमा दोवि भापये वार्ह, ठेहि पइइओ निक्काकिओ, जिणदेवो नेइय-  
 वंदगो गभो सुणेइ, पारिओ, रावळे पायो जाओ, पराजिया दोयि, पच्छा ते विचिंतेइ-विणा एयसिं सिवंसेण न तीरइ  
 एयसिं ववरं दावं, पच्छा माइठाणेण साण मूळे पवइया, विमासा गोविन्दवत्, पच्छा पदंताण ववगत्तं, माइओ पडिबला,

‘विहेसा भागया, महासमरसंघाभो आभी, पच्छा धारसगो विंतेइ-एएण कारणेण भगव नेच्छइसि, सोइणं अगसपसाण  
 वयगओ, आइ संभरिया, संघुद्धो, देवयाए भंडगं वयणीयं, सो धारसरिसी विहरतो सुसुमारपुरं गभो, तस्य भुंजुमारो  
 राया, तस्स भंगारवई पूया, साधिया, तस्य परिवायगा वयागया, याए पराजिया, पदोसभावना से सापसए पाइमिहि  
 चित्तं फलए छिहिया वज्जेणीए पज्जोयस्स दंसेइ, पज्जोएण पुच्छिय, कहियं वणाए, पज्जोओ वस्स धूरं पेसइ, सो भुंजुमा  
 रेण असक्कारिओ निच्छुद्धो, भणइ पिवासाए-विणएणं धरिआइ, दूएण पदियागएण बहुतरां पज्जोयस्स कहियं, आसु  
 रुत्तो, सव्वल्लेण निगओ, सुंसुमारो अंसो अच्छइ, सो य धारसगरिसी एतस्य नागपरं चयारमूले ठिप्पगो,  
 सो राया भीओ एस महावल्लवगोचि, नेमिचगं पुच्छइ, सो भणइ-आइ-आव नेमिसं गेणहामि, चट्ठाकयाणि रमंसि ताणि  
 मेसाव्वियाणि, तस्स धारसगस्स मूले आगयाणि रोवंताणि, ताणि भणियाणि-मा धीइहिसि, सो आगंतूण भणइ-मा

१ पिच्छादिवा भागयाः, महासमरसंघाभो आभो, पच्छाधारसगो विंतेइ-एएण कारणेण भगवन्नेच्छइसि, सोइणं अगसपसाण  
 संघुद्धः। देवयोपकल्पमुपनीयं स वारसकभविर्हरत् मिहमारपुरं गम्य तत्र भुज्जुमारो राया वल्लहारावतीं बुद्धितां आभिकां तत्र परीक्षादिभ्यः आगतवा  
 यावे ( राया ) पराजितां वृत्ताः। मध्येयमापन्ना सापस्ये पातयामीति चित्तं वज्जे पदियागज्जिधर्मा मयोत्ताय दंस्यति मयोत्तेन दृढं, कहियं वातया मयोत्त  
 यस्ये दूतं प्रपद्यते स भुज्जुमारोपासकको विच्छादितः, भवितः पिवासाए-विनयेन विवते, दूतेन प्रसापयेत् बहुतरं मयोत्तल्ल कथितं भूत्वा। सव्वल्लेन  
 सिंगं, भिज्जुमारपुरं वेदयति, भुज्जुमारोभ्याः सिद्धति, स च वारसकविरिक्तः चत्तरमूले विज्जोअसि स तस्मा भीय एव महावल्ल इति, धीमसिद्धं दृष्ट्वा  
 स भणति-आह वावविमिच्छं दृष्ट्वाभि वेदा एतन्ते से माणित्ताकल्ल वारावत्तस्य पार्यमात्तवा वत्तलः, से भवित्ता-मा भैवेति, स आगतं मप्यदी-मा

भीरेद्विचि, शुक्लं अर्धो, छात्रे मन्त्रावेह ओज्ज्वलाकार्णं वचरिं पदिभो, पञ्चोक्तो वेदिज्ञा गदिभो, णवरिं व्याधिभो, धाराणि  
 वचाधि, पञ्चोक्तो भणिभो—कञ्जोमुहो ते वाभो वाह १, अण्ड—अं व्याणसि तं करोह, अण्ड—किं तुमे माहासासर्ण्यं वहि  
 एव १, छात्रे ते महाविश्वरूप अंगारवरं पदिज्वा, धाराणि शुक्लाणि, तस्य अण्डह, अण्ये अर्णवित्—तेन पुंशुभारेण देववाप  
 वचवाभो कञ्जो, टीप वेदकथाणि विद्विषया निमित्तं गदिभ्यति, छात्रे पञ्चोक्तो णवरिं हिहह, पञ्चह अण्यसाहर्षं राचार्यं,  
 अंगारयति शुक्लह—कहं अहं गदिभो १, हा साधुवपयं करोह, सो वसस नूतं गभो, वंशानि निमित्तगन्धमर्षति, हा वच  
 वचो व्याप पचञ्जाह, वेदकथाणि संवरियाणि १ अंदजसाप सुजापसस धरमघोससस धारचगसस सवेति संवेत्यं जोगा संग  
 दिवा अवरति, केहं तु सुखरं व्याप मियावर्षं पचरया परंपरभो पर्यसि करोह १७ १ संवेगसि नवं, इयार्थि पदिद्विचि, पदिद्वि  
 नाम माया, हा सुविहा—द्वयपणिद्वी य भावपणिद्वी य, द्वयपणिद्वीय वचाहरणागाहा—

१ भीरेदि वच वच, हा मन्त्रावेह वासववापगमुहरे वसिठ, अण्योक्तो वेदिभवा पुदिभः। अर्णवमाधिकाः धाराणि वचानि मन्त्रोक्तो मन्त्रोक्त—कुंजोमुहो  
 वचो वच १, अवरति—वचवापसि हाहह, अवरति—किं त्वया वचवापसरेण विमर्षितेव १ हा वचो मुंशुभारेण अरामिप्रपादरावर्षी एव इतराणि शुक्लकियादि,  
 वच भिरिदि, अण्ये अर्णवित्—तेन पुंशुभारेण देववाभो वचवाभो कञ्जः, वच वेदय विद्वर्दिता विविधं पुदिगविमि, वच मन्त्रोक्तो वचरे विद्वत्कथा  
 हाहामन्त्रमन्त्रं अहं वचदी शुक्लवि—अहं कवं पुदिभिः। हा साधुवचन वचपदि, हा वच पचं मच, अण्ये विविधिकथापञ्चमीनि १ वचव  
 वचवो वेदा हहहः १ अण्वचपदि। सुजापस धर्मपावस वासवकस अर्धोक्तो संवेत्यं वीणाः संपुदीता अवरति वेदिभ्यु सुखरं वापय मगलमि। मन्त्रिवा  
 ( वचः ) वाचवाकः। पचमणि वचवित् १ संवेत्यं एहि नः, इतराणि मन्त्रिवादि मन्त्रिवादिना हा मन्त्रिवा—मन्त्रमन्त्रिवा भावमन्त्रिवा मन्त्रमन्त्रिवा  
 इतराणिमन्त्राः—

‘विदेवा आगया, महासमरसंघाओ जाओ, पच्छा धारसगो विदेइ-एएण कारणेण भगव नेच्छइसि, सोइएण भगसवसाण चयगओ, जार्ह संभरिया, संजुओ, देवयाए अंढगं उवणीयं, सो धारसरिसी विहरसो सुसुमारपुरं गओ, एतथ भुंजुमारो राया, तस्स अंगारवर्ध पूया, साविया, एतथ परिधापणा उवागया, धाप पराजिया, पदोसमायन्ना से सावसए पावमिचित्थि कलए छिह्तिचा उज्जेणीए पज्जोपस्स दसेइ, पज्जोएण पुच्छिय, कहियं यणाए, पज्जोओ वस्स दूयं पेसइ, सो भुंजुमारोण कसक्कारिओ निच्छुओ, भणइ विधासाए-धिणएणं धरिज्जइ, दूएण पदियागएण बहुतरगं पज्जोपस्स कट्ठियं, भाहु वसो, सववलेणं निगओ, सुंसुमारो अंतो अच्छइ, सो य धारसगरिसी एतथ नागपरे च्छरमूखे ठिप्पगो, सो राया भीओ एस महावलवगोचि, नेमिसगं पुच्छइ, सो भणइ-ज्जाइ-ज्जाव नेमिच गेणहामि, वेढगक्याणि रमंति ताणि भेसावियाणि, तस्स धारसगस्स मूलं आगयाणि रोवताणि, ताणि भणियाणि-मा वीहेहिसि, सो आगंण भणइ-मा

१. चिन्हादिवा भगताः, महासमरसंघातो जाता, एवाहावकपिअवसि-एतेन कारणेण भगवोवसीदसि सोयसमभद्रसाहसुरपता, जातिः स्रुता संजुताः देवतपोरकल्पमुपवीक्षं स धारसकपिअविरहए पिअुमारो एता एव भुंजुमारो राज्ञा वज्राहारवयीं दुपेया, भासिका एव परीक्षादिकर भागता वादे ( तथा ) पराजिता एकाः प्रद्वेयमापन्ना सापक्षे धावयामीति चिह्नं कृत्वे विविक्तलोकादिभ्यर्था प्रयोजाय सर्ववसि प्रयोदेव एहे, कथितं वाचसा, प्रयोव वस्ये दूतं प्रेयवसि, स भुंजुमारोपासकृत्तो विज्जगिअताः, भजितः पियासया-विचरेव चित्ते, एतेन प्रत्यापदेव बहुतरं प्रयोवस कथितं भूतः सर्ववदेव विगतः, विगुमापुरं वेदपसि भुंजुमारोम्या सिद्धति, स च धारसकपिरिकर कलरयुते स्थितोऽपि च राज्ञा भीत एव महावज इति, वीमद्विहं दुपयसि, स भजति-माव पावविमिचं दूहमि चेटा एतथे वे मारिताएव धारसक पार्थमापता दहन्ता, वे भजिता-मा भिहेति च भागस भजति-मा

देवज्ञाने, सणायरो राया निगमो ज्ञामिओ, भग्मापियरो रायाणं च आगुच्छिन्ना पण्डओ, भग्मापियरोवि अणुपण्डयाणि,  
 तथा सिद्धाणि, सोडवि भग्मपेसो निबिसओ आणसो ओणं सस्स गुणा ओए पपरंति, एया नेव सया थीलं, एया नासा  
 तथाड्ढवम् । एया रुपं तथा पिच, एया थीलं तथा गुणाः ॥ १ ॥ अथवा-विपमसमैविपमसमा, विपमैविपमा सनैः  
 समावाताः । करवरणकर्णनासिकन्दोषनिरीक्षणैः पुरुषाः ॥ २ ॥ पण्डा सो च निवेयमावणयो सत्त्वं सए मोगळोमेण  
 विणासिओचि निगमो, हिंदवो रायगिहे णयरे थेराणं अरिए पण्डओ, विहरवो षडुस्तुओ वारसुत्तर गओ, सत्य कम  
 यसणो राया, धारचओ अमसो, भिक्ख हिंदवो वरसगस्स परं गओ भग्मपेसो, सत्य महुपयसंजुलं पायसयालं नीणीयं,  
 सओ विदु पडिमो, सो पारिसादिसि निच्छइ, पारचओ ओळोयणगमो वेच्छइ, किं मसो नेच्छइ ? एव चित्तिइ जाव  
 ( साय ) तस्य मरिछया चलीणा, ताओ परकोरुछिया वेच्छइ, संवि सरवो, सरवंसि मज्जारो, संवि पण्डवियसुखओ, संवि  
 परयपगसुणओ, वे दोवि भट्ठणं लंगा, सुणयसानी लयड्डिया, अंदणं कायं, सारामारी, वाहिं निगया पाहुणगा बलं

१ इत्यादि, सम्मपरा राका निगमः ज्ञामिष्ठः, माकाविष्ठः । तन्नावं आगुच्छय प्रवृत्तिवः । माकापिणगादसि अगुमप्रतिवो वे विद्धाः । सोमसि बदेवोयो भिदिस्य  
 भग्मपेसो वन सस्स गुणा कोक मज्जसि वसाह स च निर्द्वारावः सत्त्वं मया मोपलोपेव सिद्धादिष्ट इति धियं, विज्जमानो तन्मपुहे वयरे ज्ञप्तिपत्तामन्विदे  
 दम्विष्ठः विहरश् षडुसुवो वारसकुत्तरं पण्डः सथापयसेवो एता वारसकोडजाजः भिक्खं विज्जमानो वारसकस एव गतो समेकोच एव वरमजुसंजुलं  
 धारससाकमानोव सओ दिन्नु पडिवा स एमैसादिशिति वेळ्ळति वारावकोडकोकमपण्डः वरवी किं मये वेळ्ळति एव जावजिज्जपसि वावचव मज्जिक  
 म्पावताः सता ( साः ) पुरेकणिकेका वामसि सट्ठा सरदमसि माओरा समसि प्रमसिष्ठकः आ समसि वावचवः आ वो इादसि मग्गधियं जयो ज्ञप्तिमिवाह  
 पसिष्ठो पुद जाव, एववाएवमपि, वरविदंताः मापुदेकाः वर

अच्छद वीसस्थो मारिञ्जिद्विविचि दिणे २ एगद्धा अभिरमंति, तस्स क्व सीठं समुदायार दहूणं धितेइ-नवर अंतैवरियादि  
समं विणद्धोचि तेण मारिञ्जइ, किइ वा परिस क्वं विणासेमिचि वस्सारिचा सप परिकइइ, छेइ च दारिसेइ, तेण सुजा  
एण भणइ-अं आणसि तं करेइ, तेण भणियं-शुभं न मारेमिचि, नवरं पण्डणं अत्ताहि, तेण चदअसा भणिणी दिण्णा,  
सा य सज्जाइणी सीए सह अच्छइ, परिभोगदोसेण स धट्टइ सुज्जायस्स ईसि सकंठं, सावि तेण सायिया कया, धितेइ-मम  
कएण एसो विणद्धोचि सवेगमावण्णा भव पच्चक्खाइ, तेण चेव निज्जाभिया, देयो जामो, ओहि पवंजइ, दइणागओ,  
वदिचा भणइ-किं करेमि !, सोचि संवेगमावण्णो धितेइ-जइहा अन्मापियरो पेच्छिज्जामि सो पवयामि, तेण दयेण सिळा  
विवविद्या नगरस्सुपरि, नागरा राया य पूयपट्ठिगाइइइया पायवट्टिया विण्णव्वेवि, देयो वासेइ-हा ! दासचि सुजाओ समणो  
यासओ अमच्चेण अक्खे दूस्सिओ, अज्ज भे चूरेमि, तो नयरि मुयामि जइ तं आणेइ पसादेइ ण, फहि !, सो भणइ-एस

१ विष्ठु विचयो मारंसे इति विने १ एकस्त्री अभिरमंते तस्म क्वं सीठं समुदायार दहू विचयपटि-नवरमत्तःदुरिकाभिः सम विनइ इति वच  
मारंसे क्वं वेदयं क्व विमाद्ययामीति ? अस्मार्थं क्वं परिकययति केयं च दूतं वति तेन सुजातेव भवत्ये-नज्जावाति वए कुरु, तेन मस्ति-नच। न मार  
यामीति नवरं मच्छजं स्तिइ तेन चन्द्रयथा मणिणी दूया सा च तज्जातीया ( एवमेवगुहा ) तया साइ विववि परिभोगदायव वए जतंते सुजातस्तेव  
संज्जान्तं सायसि तेन आसिकीकृता विचयपटि मम कतेनेव विनइ इति संवेगमावण्णा भव मत्तावयति तेनेव विर्यामिदा दूयो जातः भवति मपुष्पवि  
दहू आगता, वसिक्का भवति-किं करोमि !, सोयसि संवेगमावण्णविचयपटि-यथा माताधितरो मेयेवं तया ममत्तव तेन देवेन पिक्क मिदुदिया वमारोवरि  
जागरा राजा च पूयपटिगाइइयाः पायपटिठा विचयपटि च दूया इति सुजातः अमच्चोपासकोऽमार्थेनकार्यं दूवित। भव मववभूरावावि  
वाहि परं मुज्जामि एहि समानयत मसादुपयेन क ! स भवति-एव

वेङ्गाये, सणापररो राया निगमो क्षामिओ, अम्मापियरो रायाणं च कापुच्छिछा पद्दओ, अम्मापियरोवि अणुपद्दयाणि,  
 ताणि सिद्धाणि, सोडवि धम्मपोसो निविसओ काणसो जेणं सस्स गुणा सोए पयंसि, पया नेअे तथा कीलं, पया नासा  
 तथाड्डव्वम् । पया कय तथा विच, पया कीलं तथा गुणा ॥ १ ॥ अथवा-विपमसमैविपमसमाः, विपमैविपमाः समैः  
 समानाः । करवरणकर्णनासिक्कत्तोष्ठनिरीधणोः पुरुषाः ॥ २ ॥ पच्छा सो च निवेयमावणणो खलं सए मोगल्लोमेअ  
 विणासिमोचि निगमो, विद्वो रायगिहे णयरे थेराणं असिए पद्दओ, विहरतो बहुत्तुओ वारवपुरं गओ, तस्य अम  
 यसेणो राया, पारसमो अमसो, निक्खं विद्वो वरवगस्स परं गओ धम्मपोसो, तस्य महुपयसंजुसं पापसयासं मीणीयं,  
 समो विट् पटिओ, सो पारिसाद्विचि निच्छ, वारसओ ओलोपणगमो पेच्छ, किं ससो नेच्छइ !, एवं विठेइ काव  
 ( ताव ) तस्य मरिछया वलीणा, तओ परकोरुडिया पेच्छ, तंवि सरवो, सरवसि सज्जारो, तवि पद्दविपसुणओ, तंवि  
 परयपगसुणओ, से दोवि भरणं टागा, सुणयसामी चवट्टिया, भरणं आयं, मारासारी, वाहिं नितया पाहुणगा वलं

१ वचने समपापो राया विपदाः क्षामिता, मातापितृता ताया च कापुच्छयमस्मिताः मातापितृतादिव बहुप्रसन्नतां ते सितताः । कोऽपि यदेवमेवो विविच्य  
 आप्तो यत्र तस्य गुणा कोऽपि यदापि, यथाय स च विदेहस्यस्यः स्वयं मया मोगल्लोमेव विवक्षित इति विवेकः । विचमाओ तावपुरे कपरे अस्मिन्नात्मन्येव  
 दद्विद्वतः विहरत् बहुभुजो वारवपुरं गतः वचामपयसो एता वारवकोजमासः । भिक्षां विचयाओ वारवकल पुरं गतो यदेवमेव । तत्र एवमजुसंजुसं  
 वारवससाध्यानीव ववो विट् पटिओ, स पट्टेयादिभिश्च भेषजैश्च वारवकोजकोकनयताः पयसवि किं सस्ये नेच्छति एवं वावविच्यवति पाजपत्र मरिचक  
 व्यापडाः वता ( ताः ) पुरवर्तिकां क्षामयि ताटा सरवसि माताः । तमपि प्रसन्नितः आ तयापि वाक्यम् । आ वो व्रातयि यथद्विपुं कपो वक्षामिवाच  
 एतितो, पुरं काव एतादृश्यादि, वद्विर्वीराः मातुर्वकाः वव

वरस्या इयास्या कथानकावचसेया सद्देव—धर्पाए मित्रप्पमो राया, भारिणी देवी, धणमिस्सो सत्थयादो, धणसिरी  
 भज्जा, तीसे कोयाइयलद्धओ पुत्तो जाओ, सोगो भणइ—ओ एत्थ धणसमिच्च सत्थयाइकुल्ले जाओ वत्स सुजायंति, निविसे  
 धारसाहे सुजाओसि से नामं कथं, सो य किर देवकुमारो जारिसो वत्स छलियमण्णे अणुसिक्खंति, ताणि य सायणाणि,  
 तत्थेव पायरे धम्मपोसो अमच्चो, वत्स पियगू भज्जा, सा सुणोइ—अहो एरिसो सुजाओसि, अण्णया दासीओ भणइ—आहे  
 सुजाओ इओ धोलेज्जा ताहे मस कहेज्जइ आध त णं पेच्चेज्जामिस्सि, अण्णया सो मित्रवदपरियारिओ तेणवण एति,  
 दासीए पियंगूए कहिय, सा निगया, अण्णाहि य सधधीहिं दिट्ठो, ताए भणइ—धण्णा सा ओसे मागायदिओ, अण्णया  
 ताओ परोप्परं भणंति—अहो छीळा वत्स, पियंगू सुजायत्स वेसं करेइ, आभरणयिभूसणोहिं विभूसिया रमइ, एवं पथइ  
 सविलासं, एव हत्थसोहा विभासा, एवं मिस्सेहि समंणि भासइ, अमच्चो अइगयो, नीसइ अंतवरांति पाए सप्पिपं निक्खियंता

१ जन्मायां सिद्धममो राजा पारिणी देवी वनमित्रः सार्वभारः वनमीर्ष्यां तस्या वचनादिर्वर्तकः पुत्रो जातः कोको भवति—ओऽथ वनसमूहे  
 सार्वभारकुलं जातस्तत्र सुजायमिस्सि भिरुत्ते ह्यारसाहे सुजाय इति तत्र नाय कुतं स च किञ्च देवकुमारो पादयः तत्र कठिणमन्त्रेऽनुविशन्त्ये ते भावकाः  
 ठद्देव जगरे वनोद्योऽन्माकाः तत्र पियगूः सार्वा सा नृणोति यदेवयः सुजाय इति अन्वया दासीर्यवसि—अहो सुवसोऽमेव वर्यंका प्यठिक्कमेए वरः  
 मस कथयेत पावच मेक्कमिप्पे इति अन्वया स मित्रवदपरिवासितलोकाप्यवा पालि दासा पियगूरे कथितं सा भिरंता अय्यामिन्न वयमीभिर्दहः इवः  
 मवपुते—अन्त्या सा वक्ता भाग्ये भाषयित्तः अन्वया ताः परस्परं वनमित्र—अहो छीळा वत्स, पियगूः सुजायत्स वेप करोति आभरणमिभूतरीर्धं पुरिया रमते  
 एव वदसि सविलासं, एवं हत्थसोमा विभासा एवं मिस्सिः समसपि भाषते, अमायोऽभिराजः मित्रवमन्त्रापुरमिति पावौ वदेः भिभिक्क



धारादिदेवं पञ्चोपर, विद्या विद्युर्द्वयी, तौ विदेह-विजहं भवेत्तरंति, भण्ड-पञ्चगुण होच, मा मिच्छे राहस्ये सार-  
 धाराद होहिंति, मारोद भण्ड सुचार्य, धीदेह य, पिपा य से रण्यो निरार्य कश्चिभ्यो, मा तयो विपासं होहिंति, वपासं  
 विदेह, उद्यो दवाभ्योति, वणपाया दूदवेदेहिं पुरिसा कपा, यो मिषप्यहसस विमन्स्यो, तेण सेहा विमन्सिपा तेगीति,  
 सुजायो वचवो-मिषप्यभरायाणं मारेहि, गुयं पाग्यो रावते, तयो अन्नरक्षिप्य करोमि, तेण से उहा रण्यो पुरयो धारया,  
 धारा शुभं मारोपयोति, राया कुचिभ्यो, तेवि सेहारिया वस्या वणपाया, तेयं से पञ्चगुणा कपा, मिषप्ययो विदेह-अह  
 वीणनाय कज्जिदि तौ पवरे लोभो होहिंति, मयं अ सस रण्यो वययो विह्व, वयो वयापण मारोमि, सस मिषप्यहसस  
 एता पञ्चलणपरं अरक्षुरी नाम, वय सस मणूयो चैवञ्चभ्यो नाम, सस सेदेदेह (मं० १९०००) अहा सुचार्यं पेवेमि तं  
 मारोहिंति, पेसिभ्यो, सुचार्यं सदायेण भण्ड-वद्य अरक्षुरी, वय रायकज्जलि पेञ्चपाहि गर्भो तं पायति अरक्षुरिं नाम, विहो

१ धाराधर्मस्य प्रकोकनसि एता धीवन्धी, अ विषयवि-मिषमयःदुस्मिदि अचक्षि-मन्त्रकं नवतु, मा मिमे रहते लीगयता धूलिहरी वमोर्ध्व  
 मारोवसि सुजाद, विदेहि अ विहा अ सस रायो मिता सिता, मा तयो विपायो यद्विदि वपाय विषयवसि वपाय वपाय इति मन्त्रपा धूलिहरीः  
 (पुष्पाः) धुरया वपाय, यो मिषमयस विह्वः तेव सेह विषयवसि इति सुजायो वचवो-मिषमयसं मारय त्वं मययो रावन्ते, तेव धारोपसि  
 कोमि तेव से उहा राय, गुजायो वारिता वया त्वं मारोपय इति, एता कुचिता, ते सेहापाया वया वपायाः, तेव से मन्त्रका कुता विषयवसिप्यवसि-  
 वरि कोकनसं विह्वे वरापुरे कोभ्यो मन्त्रिप्यवसि मयं अ सस रायोअयो वारिता एत वपादेव मारोपसि सस मिषमयसो मन्त्रकं मन्त्रकमभरायापुर्त काम  
 एत एत मन्त्रकमभरायो काम, वयो सेहं वरिता-वया सुजादं वेषपादि तं मारोपसि पेसिता, सुजादं वचविह्वो वमन्ति-वरापुर्त एत एतकप्योमि  
 पेञ्चस, एतः तौ वमोपापुर्ती वाम, एतः

नं छभागमि, न य पट्ट इत्थपट्टं, सस्सवि अधिती आया, भणइ-स्वंता ! एकस्सि कहिंवि ठाहिं मगाति, भणइ-मगाति  
 अइ धिणीओ होस्सि एकस्सि नथर अइ, पणइयाणं मूल गया, पणइयाणा सुहिंया, सो भणइ-न करेहिंवि, सइयि निच्छंति,  
 आयरिया भयंति-मा अज्जो ! एवं होइ, पाहुणगा भये, अज्जकलं आहिंवि, ठिया, साहे सुत्तभो विणि २ उपायास  
 यणाणं वारस भूमीओ पडिउहिंया सया सामायारी, विभासियमा अधिसदा, साइ सुत्ता, सो निपओ अमयपुत्तुगा आओ,  
 सरसमज्जोगेण पंचवि पडिस्सगासयाणि ताणि ममाणियाणि आराहियाणि, निर्गंतु न हिंवि, एय पच्छा सो पिणओयगा  
 जाओ, एव कायप १५ । विणओवएहिं गयं, इयाणिं धिरमईयसि, धितीए ज्ञो मसिं करेइ सस्स योगाः सइहीता भयन्ति,  
 तरयोदाहरणगाहा—

नयरी य पडुमपुरा पंडववसे मई य सुमई य । वारीयस्समाकणो उप्पाय सुट्टियपिभासा ॥ १३०१ ॥

व्याख्या कथानकादवसेया, सखेइ—णयरी य पंडुमपुरा, तस्य पञ्च पट्टया, सेहिं पयवंताहिं पुत्तो रज्जे ठियेओ,

१ य कसे य य वसेते वज्जमज्जि, वज्जप्यथिक्कांता भयंति-सुइ ! एकयाः पुत्राय स्थितिमभवेव अथहि-मार्गयामि वरिं निर्मीतो भवत्सकः १२  
 वरिं मयत्तितानां सुइ गतो मज्जिक्काः सुत्तया स भयन्ति-इ करिष्यतीति तथासि नेपथ्येन आचार्यां सपथिक्क-भेदं भवताम् । मातृभेदी भवतां भय  
 कसे पास्तव इति स्थितौ तथा सुत्तकाः शिष्याः २ वज्जापञ्चवचोर्द्वाव्य भूमीः प्रथिक्किय सदां समायातीः ( करोति ) विभासितस्य भवितायाः सत्य  
 वस्तुताः, स विम्वक्केप्पुवसुत्तको जाताः तारमयोगेय पञ्चासि प्रथिक्कयादमि तासि मसीकुत्तानि आरादासि निर्गंतु न ररई एव स वजाव स विदव-  
 यो जाताः पञ्च कर्त्तव्य । विदवोपया इति सर्व इदानीं वदितमिति वि एतो यो मतिं करोति वल-ववोदइरज्जयाया । जमरी य पाट्टमपुता तव वज  
 पाट्टवजाः, सेः मज्जमज्जि पुत्तो तान्ने वजासिक्काः

ते अतिरुनेमिस्व पायमूले पट्टिया, हस्तकप्ये मिहस्यं विहिता सुर्जोति—अथा सामी काकगभो, गह्विं मत्तपाणं विनिविद्या सेचये  
 पाण्य भयपञ्चकसायं कर्तवि, पाणुप्यपी, सिद्धा य। साण नसे भण्णो राया पंहुसेणो नाम, तस्स दो पूयाभो—मई सुमई व  
 ताभो नञ्जठे चेद्वधदियाभो सुर्धं पारिषसभेण [ पारिषसभो नाम वद्वयं वेण ] समुद्वेण यद्, वप्पादयं वद्विधं, ओणो  
 लंदवदे नमंसद, इमाहि पणिपतराणं अप्पा संसभे ओद्वभो, एधो वो काखोत्ति, भिन्न वद्वणं, संवययत्ति सिणायगत्ति  
 काकगपाभो सिद्धाभो, एगदय सरीराणि वञ्जसिपाणि, सुद्धिपण उवप्पादिवरणा महिमा कया, वेजुज्जोए साहे तं पमासं  
 वित्तय जायं, दोद्विधि साहे धीवीए मत्तिं कर्तवीहि ओगा संगहिया, चिद्वमई पयि गयं १६, इयाणि संवेगेत्ति, सव्वग् वेगा  
 संवेगा वेण संयेगेण ओगा संगहिया भयति, तथोदाहरणगापादयं—

अपाय भित्तपसे पणमिस्ते पणसिरी सुजाने य। पियग् पम्मपोसे य अरक्खुरी वेव वंदयोसे य ॥ १३०९ ॥  
 वद्वजसा रायगिदे पारसपुरे अभयसेण वारसे । सुसुमार पुप्पुमारो भंगारवई य पज्जोए ॥ १३१० ॥

१ उऽऽदिक्कमः पादपूज मसिक्काः, इतिहक्कसे दिवदमाया भववसि—अथा काली अककाका पुदीलं मज्जायं अज्जा वज्जुज्जये पदेते यअज्जाज्जानं  
 इदंमिह सान्नेगीः विद्वांस । वेणं वणं अण्यो राया पाणुसेवो नाम वज्ज इ इद्विद्वी—मत्ति। सुमत्तिव, वे नञ्जठे वेजवमिद्वे सुत्तार् वारवेव वज्जुदे.  
 व्यापावः वपाव वपिपवः कोकः इज्जवद्वो वमसमि आसया वारवद्वपमा संवेते वेतिवता नृप स अज्ज इति पिधं मवद्व संवययमपि वारवमपि  
 काकपावे मित् इद्वज्ज एतरे नपणिकव सुसिद्धेव अज्जाविपविद्या मदीया इज्जा वेवोयोते वज्ज ममाकाव वद्व सीदे वज्जं, इज्जागमपि तदा वदी मत्तिं  
 इदंमपि बोधाः संगुदीताः । एतद्वमत्तिमत्ति गतं इदानीं संवेप इति वेव संवेवेव पोमाः संगुदीता भवमिह ।

संक्षमे समादिवतरो जायो, णाणमुप्यण, आथ सिद्धो १३ । समादिसि गयं, आयारेचि इयाणि, आयारवयगच्छपाप  
योगाः समुद्धान्ते, एतयोदाहरणगादा—

पावलिपुत्त ह्यासण जलणसिद्धा चेव जलणवहणे य । सोदम्भपलियपणए आमलकप्पाए णट्ठियेदी ॥ १६१९ ॥

अथास्या कथानकादवसेया, तच्चेदं—पावलिपुत्ते ह्यासणो माहणो, वस्स भज्जा जलणसिद्धा, सावणाणि, वेसिंदो पुच्छा-  
जलणो वहणो य, चचारिवि पयइयाणि, जलणो चञ्चुसंपणो, वहणो मायावहुलो, एदिसि पयइ, पयादि एइ, सो वस्स  
ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंवा कालगओ, दोवि सोधम्मं वववसा सकस्स अर्धभतरपरिसाए, पंच एठिओयमावि ठिठी, सामी  
समोसवो आमलकप्पाए अन्नसाजवणे वेइए, दोवि देवा आगया, नट्टविहिं द्वाएठि दोवि जणा, एणो चञ्चुगं पिवधिरसामिचि  
उज्जुग विचवइ, इमस्स विवरियं, तं च दइण गोयमसामिणा सामी पुच्छिओ, चाहे सामी वेसिं पुणभयं कहेइ—मायादोसोचि,

१ संक्षमे समादिवतरो जाया भावमुत्तमं पावए सिद्धा । समादिसि गयं जायार इदीदानीं आचारोपगतवया बोधाः भद्रोदाहरणगादा । पाट  
किपुत्ते ह्यासणो माहणः तस्य भावो अकथयिष्या आचर्ये, एतयोदी पुच्छो—अचन्तो इदमन्न आचारोपयि मयद्रिष्टाः अकथं अट्टतासंख्यं इदमं माया  
वहुला, आयादीदि माहति मत्तज्जयादि ए ववव आगयावहुलोठिठयतिज्जमत्ता कालगादाः इववि सोधम्मं वववो अकथान्नपरिपरि एव पक्खा  
यमादि सिद्धिः, सामी समवसुताः आमलकपयाणामाहसाकवसे वेसो द्वावदि देवावाणीं पुणमिहिं एयं वटा इत्यपि जनी एव अट्ट किदुर्धपिज्जममीदि  
कट्टक किदुर्धदि, अन्न विपरिसं, तच्च एव गोतमज्जामिना सामी पुट्टः एता सामी एवोः पूर्वमर्थं कथयति—मायादोय इति



ताहे सो त भणइ—सोयति, भणइ—सच्चांति, पुच्छिओ किं सख !, पुणो ओहासइ, पासुदेवेण भणियं—अट्ठिं त एयं पुच्छिय  
 तहिं एयंपि पुच्छिय होतति खिसिओ, तेण भणिय—सच्चं भट्टारओ न पुच्छिओ, धिषिंवेउमारओ, आइं सरिया, पच्छा  
 असीव सोयवतो पत्तेयजुओ आओ, पढममहायण सो येव वयइ, एवं सोएण ओगा समादिया भयंति ११। सोएसि गय,  
 इयाणि सम्मदिट्ठिसि, समईसणधिसुदीएवि किल योगाः सङ्गन्ते, सख उदाहरणगादा—

सागेयन्मि महारपल विमत्तपहे वेव चित्ताकम्मे य । निष्कस्ति छट्ठमासे सुमीकम्मस्स करण य ॥ १६९७ ॥

कस्या कयाख्या कथानकादवसेया, साएए महत्तलो राया, अथाणीए दूओ पुच्छिओ—किं नरिय मम अ भवसि  
 रायाण अरियासि !, चित्तसभसि, कारिया, सख दोयि चित्तकरायमसिमां पित्थावी विमत्ता प्रभाकरस, तसिं अद्भजण  
 अयिया, जयणियंतरिया चित्तेइ, एणेण निम्मधिय, एणेण भूमी कया, राया सरस सुद्धो, पूइयो य पुच्छिओ य,—प्रभाकरा  
 पुच्छिओ भणइ—भूमी कया, न ताव चित्तेमिसि, राया भणइ—केरिसया भूमी कयसि !, जयणिया अयणीया, इयर चित्तकम्मं

१ तदा स तं भवति—श्रीशमिति अणति सखमिति दुःखः किं सख ! पुनरापन्नामते आसुरदेव भवितं—एव १६९७ए दुःख वनेतरि इहमभिवर्धमा  
 भिर्भस्सितः, तेव भस्सित—सख महारको व दुःख भिषिण्णविगुमारकया आसिः स्सुवा यमाएवीव सोववाइ प्रलोक्कुओ बाठा प्रथममप्पवर्त्तं स एव (वयइ)  
 वयसि । एव सोवेव बोयाः संयुहीठा भवसि । काशमिति गय इयमी सम्मदिट्ठिसि सभयएयनविगुमारवि उमोइएइरगयाया । काकडे अरावओ १/२  
 अस्यान्या दूतः दुःखः—किं नासि मम यवणेयां ताकां असि ! चित्तवसेति कारिया तव हो चित्तकः । तावामय्यांमयां अरियववाइ वरसिकारवसेती  
 चित्तवताः एकेज भिर्भित एकेज भूमी कया राया वसेी दुःखः पुनितस दुःखस प्रभाकरः पुद्धो भवति—भूमी कया व वावइ चित्तवामीर्त्तं, ताका भवति—वेरिणी  
 भूमी कयेति, पवसिकाअदीठा इतरचित्तकम्मं

निष्कण्ठपरं दीप्तम्, राधा कुयिभ्यो, विजयविभ्यो-पद्मा एतत् संकटादि, सं छान्दयं, नवरं कुर्वन्, शुद्धेन एवं चैव अस्मद्विधि  
भणिभ्यो, एवं संभवं विमुक्तं कायम्, सेनैव योगाः समुद्गीता मयन्ति १२ । सम्पन्नदितिसि गतं, इत्यादि समादिदि  
समाधान, सत्योदाहरणगादा—

णपर सुवसणपुर सुसुणाप सुजस सुवप चैव । पञ्चद्व सिक्कमावी एगविहारे य फासणया ॥ १२१८ ॥

व्याख्या—कथानकादयसेया, ठवेदम्—सुवसणपुरे सुसुनागो गादावर्द, सुवसा ये मज्जा, सङ्गणि, तावा पुजो सुवभो  
नाम सुहेण गन्धे अचिच्छभो सुहेण पद्धिभो एवं ज्ञाव ओवणत्थो संजुजो भागुच्छिक्का पवद्भ्यो पद्धिभ्यो, एकस्मिन्निहारपद्धि  
मापद्धिपण्णो, सक्कपसंसा, देवेहि पत्तिस्सिक्खो अणुक्कजेण, धण्णो कुम्मारवंमज्जारी एणेण, वीएण को एयाभो कुक्कसवावाक्के  
दगाभो अपण्णोत्ति १, सो मगय समो, एवं भायाविचाणि सविसयपसत्ताणि दंसियापि, पक्का नारिज्जतगाणि, कहुमं  
हुमंति, चहापि समो, पक्का सवेधि चक विवधिता दिपाए इत्थिपाए सविक्कम एकोद्वयं मुक्कवीहनीसासमवगूहो, चहापि

१ निर्मलकरं इत्येतं एता इत्थिदं, सिक्का-मज्जाय संक्रान्तेति चक्यादित्थं चरं कुक्का सुदेवैवमेव विवदित्थि भणितं एवं दन्तकरं सिद्धं  
कथयं । इत्यादी समादिदिति चकोदाहरणगाया । सुवसंजपुरे सिद्धवत्ता भेदी सुवसाकल भावी ज्ञावो, एतेः कुक्का सुवतो नाम सुदेव पर्यं सिक्काः सुदे  
व इदं । एवं ज्ञाव दोषदसाः संजुजः भागुच्छिक्का प्रयत्तिताः पद्धिः पृष्ठादिद्विधापद्धिर्वा भणित्वा सक्कपसंसा देवैः पटीसिद्धोऽणुक्कजेव ज्ञावः कुम्मारकलप्यो  
पद्धेव दिदीयेन क पृष्ठकाए कुक्कसवावाक्कोदादयस्य इति १, स मगयत् समः, एवं भायाविधौ सविपकाकल्यो पद्धिर्वा, पक्का नार्यनामी कथं इत्येता,  
अथाग्निं समः, पक्का सदा अतरो सिद्धिर्वा भणित्वा पद्धिर्वा सविमं मकोकिटं मुक्कवीहनीसासमवगूहः चथाग्निः ।

भण्णे भणंसि—यएहिं सँण्हिदिएहिं मणिओ, दयाए न देइ, नियसरीरसपसंरपवअणेण कटियपसंहेसु कएसु सेट्ठी धिंवेइ-  
 अहोउहं धण्णे ! जेण इमाए वेयणाए पाणिणो ण ओइमसि, सचं परिधिल्लक्षण सुरधरो सयं येव पडिहुओ, पिड्डमया पा  
 कया, एय देवायुधिः आधकत्वं, सर्वयुष्मी सामिस्स दो सीसा—यम्मयोओ यम्मजसो य, एगस्स असो गयरपाययस्स हेहा  
 गुणोति, से पुवण्हं ठिया अवरण्हवि छाया ण परायसर, एगो भणइ—जुम्म सिद्धी, पीओ भणइ—जुम्म छद्धी, एगो फाइरा  
 भूसीए गओ, नितिओवि तहेव, नायं जहा एगस्सवि न होइ एव छद्धी, पुच्छिओ सामी—कहेइ तस्स वप्पसी—

सोरियसमुद्विजए जलजसे येव जलवत्से य । सोमिस्सा सोमजसा वंछविही नारदुप्पसी ॥ १२९५ ॥

अणुकंपा येवहुो मणिकंचण वासुदेव पुच्छा य । सीमंधरजुगपाइ जुगधरे येव महयाइ ॥ १२९६ ॥

गाथाद्वितयम्, अस्य व्याख्या—सोरियपुरे समुद्विजओ जया राया आसि तया अणजसो ठायसो भासी, तस्स भज्जा  
 सोमिस्सा, तीसे पुसो जलदसो, सोमजसा मुण्हा, ताण पुसो नारदो, ताणि वंछविसीणि, एगदियसं जेमंसि एगदियसं

१ अथ च मन्त्रिन्—अथैव सन्निहितेषु मंत्रिणः कथं न ददाति भिक्षादीरवच्छेदः प्रथममात्रे कथितेषु अथैव केषु भेदो विन्ययति—अथो अहं  
 ब्रह्मो देव मयाज्जया देवताया मन्त्रिनो न भोविता इति सत्त्वं यदीयं सुरताः कथमेव मण्डितुया विवमया वा इवाः । आभिषेको द्वौ द्वितीयो—यमं योषा  
 यमं यथास्य एकस्य वरायो कथादपसापसकम् गुणयन्तो द्वौ पूर्वोक्ते भिन्नौ अयादेभ्यो छाया न परावर्त्यते एको भवति—अथ भिन्नः द्वितीयो भवति—अथ कथितः  
 एकः कथितस्त्वयि गतः द्वितीयोऽपि तथैव, ताव यथा भिक्षुसाम्येणा कथितारिह, यतः आसी कथयति एवमेवार्ताह । सीमंधरे जयरे समुद्विजसो वरा  
 राजाज्जसीए वरा धनपयाजापस भासीए तस्य भाषो सोमिस्सी भासीए तस्याः पुसो वज्रदस, सोमजसाः मुण्हा तयोः पुसो नाराः समुज्जयसी दस-  
 सिमन् दिवसे जेमाव एकसिम् । १ गाएपहि



ब्रह्मणां करोति, ताणि तं नारदं असौ गुरुकरोहे पुण्ये ठिक्कण विषयं चंछति, इमो य वेयमुपाय वेसमपक्काया देवा  
 अभगा तेणं २ बीयीवयंति, पेच्छंति दारयं, ओहिणा वामोपंति, सो सार्धं देवनिक्कायाओ खुवो ठो तं भणुक्कपाए तं  
 छाहिं भंवेति-अकसं चण्हे अप्पइति, पडिनिचयेहिं नीसीहिमो सिक्काविमो व-प्रमुजवत्, केइ मणंति-एसा असौ ग-  
 पुच्छा, मारयुप्पसी य, सो वन्मुक्काउपायो ठेहिं देवेहिं पुणमविययाए विज्जत्वंमएहि पडिनिमादियामो सिक्काविमो,  
 सो मणिपावभाहिं कंषणकुट्टियाए आगासेण हिंदइ, अज्जाया बारवइमागमो, वासुदेवेण पुच्छिओ-किं सीचं इति १, सो  
 ण सरति विबेदेदं, वक्खेवो कओ, अज्जाए कइए चहेसा पुणविदेहे सीमपरसामिं जुगावाइवासुदेवो पुच्छइ-किं सीचं १,  
 तिरयगतो भणइ-सख सोयंति, तेण एगेण पएण सखं पज्जाएहि ओवहारियं, पुणो अवरोविदेहं गमो, जुगं परतिक्खारं  
 महापाइ नाम वासुदेवो पुच्छइ च वेय, सरसपि सक्खं चवगयं, पच्छा बारवइमागमो वासुदेव मणइ-किं से तया पुच्छियं १,

१ दिवसे ब्रह्माहं ब्रह्मा, तां च नारदमसौ गुरुपावकाय पूर्वो हि ज्ञापयित्वोपमत्तः, इत्यत्र हैतच्छब्दे हैततज्ज्वायिका देशा वृत्तमनन्तेनाप्यत्रा अस्ति-  
 मश्विष्ठ मेष्ठान्ते इत्यत्र, अस्ति नारायणोऽसौ गुरुश्च स तर्था दृष्टमिकापायुषः, तत्र च नारदमुक्त्वा तां अर्था कथयति-हं ब्रह्मस्मि विबुधैः प्रकीर्तितः  
 ( जुगा विजा ) विबिक्का, केहिं भवमिच्छ-एवाणो कइएण वारोत्तमिअं स जग्गुक्काउपायतिरेहं, पूर्वमविययाए विजावृत्तः मक्खमादिका  
 विज्जताः स मणिपावकावो क्कायनमुत्तिक्कयाऽऽकाराए दिवसे, अज्जाया इत्यपीमागो, वासुदेवेण पुच्छ-एसा व पज्जेवुत्तं वणं, चण्हेसा इता अज्जाया  
 कयरोत्ताए दूरं विदेहे बीमज्जाज्जासिअं जुगावाइवासुदेवः पुच्छति-दीयेकरो भवति-सखं सीचमिति तदेकैव एवेन सखं एतदीयवज्जासिअं  
 जुगावसिदेहे जुगावज्जासिअं कं महावाज्जुर्वास वासुदेवाः पुच्छति तदेव तस्मादिति साहाय्यगतं, एवमाहं इत्यपीमागो वासुदेवं पज्जेहि-किं ज्ञाया ताया एहि

ध्वजारि कसाया अहा से पाथीसं कुमारा सह पाथीस परीसहा अहा वे दो मणूसा सह रागदोसा जहा धितिंगा धिथेयपा  
 तहा आराहणा जहा निधुसीवारिया तहा सिन्दी । धितिकस्यसि गय ९, इयार्णि अज्यपसि, अज्यप नाम वज्जुपत्थं,  
 वरधुदाहरणाहा—

वंपाप कोसिपज्जो अंगरिसी कइए प भाणसे । पयग जोइजसापिय वन्मयकसाणे य सयोरि ॥ १२९३ ॥

इमीए वक्खसाण—वंपाप कोसिअज्जो नाम वयगसाओ, वरस दो सीसा—अंगरिसी कइओ य, अंगओ भइओ,  
 सेण से अंगरिसी नाम कय, कइओ सो गंठिउदओ, वे दोवि सेण वयगसाएण दाकगण पडुपिया, अंगरिसी अइवीओ  
 भारं गहाय पडिपसि, कइओ दिव से रमिवा वियाले समरिय साहे पहापिओ अइवि, व व पेच्छइ दाकगभारएण एन्तग  
 धितेइ य—निच्छइओमि वयगसाएणवि, इओ य ओइजसा नाम वच्छवासी पुत्तस्स पंपगस्स भस नेऊण दाकगभार  
 एण यइ, कइएण सा एगाए सज्जाए मारिया, सं दाकगभारं गहाय अण्णेण मग्गेण पुरओ आगओ वयगसायस्स इए

१ कज्जारा कयावा यवा से इतिवसिआ कुमागाकया इतिवसि। परीसहा यवा दो दो डुरही। यपा रायदोही यवा। पुचडिका वेइभसा वयाडायवा यवा  
 सिद्धिवागिरिका वया सिद्धि। । विविधेवि भव, इयामीमावंधमिदि भार्दं नाम अठ्ठरं वलोएइएवाया असा वयावराह—अज्जो कोडिकओ नामेना  
 वापा; वयस ही धिप्यो—अइवि; कइओ अइओ अइओअइ वयावसि; भाय कुठं कइ। व धिप्यउदइक; दो इतिव सेलोएवायव दाइडेइका वस्यपिरवी  
 वइसिरववीओ भारं गृहीत्वा वसोवि कइओ भिक्खे एववा भिक्खे स्सुतं वया वया प्रयासितोडसी व व धिक्खे दाइकयारेवाभसं धिक्खवि व भिक्खवि  
 दोमीस उपायवायेवेसि इवव वयोधिर्दंका नाम वयावसिक्का पुत्तस एवयकस भव वीत्वा दाइकयारेवावति सा इइकेकसा यवावी मादिवा व दाइक  
 भारं गृहीत्वाअज्जो भार्दं डुराव भागव उपायवाइक वयो

धुणमाणो कहेइ—अहा णेण सुवस सुंदरसीखेण ओइअसा मारिया, रमणविभासा, सो आगयो, आदिओ वणसंदे विंदेइ—सुह  
वसवसाणेण आठी सरिया संजमो केवळनाणं देवा महिमं करोति, देवेहिं कहियं, अहा एएण अरुमकखाणं दिवं, करुणो खोगेण  
हीछिअइ, सो विंदेइ—सख मए अरुमकखाणं दिवं, सो विंदेवो संजुओ पसेयजुओ, इयरो वंभणो वंभणी य दोवि पइइ  
याणि, वयणयाणाणि सिद्धाणि आचारिणि, एवं कायवं या न कायवं वेति १० । अखवसि गवं, इयाणि सुहसि, सुई  
नाम सखं, सख अ संजमो, सो येव सोयं, सत्वं प्रति योगा सङ्कीता भवन्ति, उओवाइरणगाथा—  
सोरिअ सुरवरेंचि अ सिद्धी अ वणंजय सुभदा य । बीरे अ वन्मयोसे वन्मअसेउसोगणुक्का य ॥ १२९५ ॥

सोरिणपुरं णयरं, सत्र सुरवरो अकसो, सय खेटी णणंअओ नाम, वस्स भज्जा सुभदा, तेहिं सुरवरो नमंछिओ, पुचका-  
मेहिं वयाइय सुरवरस्स कयं—अइ पुछो जायइ तो महिससणं अणं करेमि, साणं संपयी जाया, साणि संजुओहिन्नि  
सामी समोखओ, खेटी निगाओ, संजुओ, अणुपयाणि गिण्हामिचि अइ अकसो अणुजाणइ, सोचि अकसो जवसाभिओ,

१ इएए कयवदि—ययप्पनेव एव सुवराधिपेव अओछिंखा मारिता एएवमिमाहा ए जायता विवसिओ ववरवदे किम्बवदि—हुवाअवसादेव  
आसिः इसुता संपमा केवकसावं मदिमाव देवाः इहंमिह वूथैः कथितं ववेतेनान्नावकखणं वणं, ववरवो कोकेव हीरवदे ए किम्बवदि—अअ मवाअमकखावं  
वणं ए किम्बवइ संजुइ, मसेकजुइ । इयतो आकओ आकली अ हिं कथि मायविदे एएवयाआअवतोपदि सिद्धाः । एए कयवं या न कयवं वेति ।  
आवंचमिदि एव इएवी पुचिंमिदि पुचिंवीम सख, सखं अ संयसा अ एव खीच खीचपुरं वणं एव सुवरो वका एव खेटी यवज्जो वन्म एव यारो  
सुभदा वान्मो सुवरो वमंअओः पुचकमान्वाणुपयाविवं सुरवरस कयं—अइ पुछो मदिपयिहिं कहिं मदिपयवेव वणं करिन्नामि एवोः संपयिचमंका एमि  
संभास्सवइ दिव सामी वमवसुव, खेओ विंयंत, खंडुइ । अणुपयामि पुचकमीदि यमि यओउज्जवावीदे योमि यव वयवस्सव,

ध्वजारि कसाया जहा से पाथीसं जुमारा सहा पाथीस परीसहा जहा से दो मणूसा सहा रागदोसा जहा पितिंगा धिंयेयया  
तहा आरादणा जहा निबुसीवारिया सहा सिद्धी । तितिकससि गर्प ९, इयार्णि अज्यवसि, अज्यव नाम चजुयचणं,  
तारपुदाहरणगाहा—

धंपाप कोसियज्जो अगारिसी रुदए य आणसे । धंपग जोइजसाधिय बनभक्साणे य सपोधेही ॥ १२९६ ॥

इमीए धक्साणं—चपाए कोसिभज्जो नाम चयम्माओ, सरस दो सीसा—अगारिसी रुदओ य, अंगओ भदओ,  
तेण से अंगारिसी नाम कयं, रुदओ सो गतिछेदओ, ते दोधि तेण चयम्माएण दाकाण पडुबिया, अंगारिसी भदवीओ  
भारं गहाय पडिएति, रुदओ विवसे रमिया वियाछे संभरिय साहे पहाविओ बडविं, सं च पेच्छइ दाकगभारएण पन्तग,  
विंतेइ च—निच्छुइमि चयम्माएणति, इओ य जोइजसा नाम पच्छवाली पुसस धंपगसस भवं नेऊण दाकगभार  
एण एइ, रुदएण सा एगाए सजुगए मारिया, ठ दाकगभारं गहाय अणणेण मरणेण पुरओ आगओ चयम्मायसस इयं

१ बल्लारः कयाया यया ते हार्दपठिः कुमारायया हार्दपठिः कीयया यया वो दो पुरवो यया रागदोही ययाः पुष्पिका वेदभ्या ययाऽऽत्थन नन।  
सिद्धिवारिका यया सिद्धिः । तितिकेसि गर्प इयावीमार्दवमिदि भार्दव नाम कज्जलं तत्रोपाहरणयाया अजा एवावपाय—अज्यवो कोसिकारो अमोएन-  
एयाया एज ही सिच्यो—अज्योः ययन अज्जो गज्जसेन तकाज्जिः नाम कुतं बट्टा स मयिययेइकः वो हार्दवि धमोपायपायन दादेंदका मस्यारिठो  
भज्जिंरदवीवो भारं गृहीत्वा मस्येति कज्जो म्मिचसे रायया विकारी सज्जं यया जहा मयासितोदरवी, सं च मेससे एवइयारेणायार्तं धियज्जवि च सिच्योसि  
तोदीसि ययाय्यवेनेसि इतल वपोतिर्दका याम बल्लपणिकका पुज्जल एण्यज्जल मज्ज कीयका दाइकयादेकायाति सा च्चदकैकसा। मयावी मारिका च दादक  
भारं पुरीसवाअयेव मार्येन पुरव भागाठ ययाय्यज्जल इयो

धुणमाणो ऋतेर-अहा पोण सुरस सुंदरसीसेण ओहजसा मारिया, रमणविमासा, सो भागणो, पाहिओ वणसेरे चित्तेर-सुर  
जसवसाणेण जायी सरिया संजमो केवळनाणं देवा महिंमं करेति, देवेहिं ऋषिय, जहा एएण भवमकखाणं विंभं, ठहरणो योगेण  
हीठिज्जर, सो चित्तेर-सखं मए अरुभकखाण विंभं, सो चित्तेरो सज्जो पत्तेमज्जो, इपरो बंमणो बंमणी ए दोवि पइ  
याणि, वय्यण्णयाणाणि सिज्जाणि ज्जातिवि, एवें कायवं वा न कायव वेति १० । अज्जवसि मयं, इयाणिं सुरसि, सुरे  
नाम सख, सख व संजमो, सो खेव सोपं, सत्यं प्रति योगा सद्दीता भवन्ति, लोकाहरणमाया-  
सोरिज सुरपरेवि अ सिद्धो अ षणंजए सुभवा य । पीरे अ वम्मपेसे वम्मजसेउसोगुच्छा य ॥ १३९४ ॥

सोरियपुरं णपरं, तत्र सुरपरो अकखो, सत्य सेही षणंजमो नाम, वसस मक्का सुभवा, वेहिं सुरपरो नमंसिओ, पुणक-  
नेहिं वयाइयं सुरवरसस कप-अइ पुणो मायइ सो महिससएणं अण्यं करेसि, ताणं संपयी जामा, ताणि संजुज्जेहिन्ति  
सामी समोसहो, संही निगाओ, संजुज्जे, अणुवयाणि गिण्हासिचि जइ अकखो अणुवाणा, सोवि अकखो ववसासिओ,

१ इए कपवति-वयमयेव एव सुपरिचित्तेन ज्वेतिर्ब्रह्मा मारीता एतद्विमतं, ए जागता विवर्धितो ववववे विज्जवति-धुणज्जवसावेव  
जातिः एवता वयमा केवळनाणं मरिमाणं देवाः सुवेति एवेः कीयत वयमेवामकखाण एवं वयमे कोवेव हीत्यते ए विज्जवति-मयं भवमकखाण  
एव ए विज्जवत् संजुटः समोसहो इतो मज्जमो माज्जमो ए हे अवि मज्जमो वल्लभायावज्जमोमहि विज्जाः । पुढं कर्तव्यं वा व कर्तव्यं वेति ।  
आवेवमिति एवं इरामी इविमिदि, इविमोय सख, सख व संजमोः ए इव हीव सीहेपुटं वयं एव सुरपरो ज्जाः एव सेही जवज्जो वम्म एव साओ  
सुभवा जाज्जो सुरपरो वयससः पुणकमाय्यायुरयावेव सुरवरसस-मयं पुणो वसिधसि चहिं मरिचवदेव एव करीयामि, एवो वयसिर्ब्रह्मा तावि  
समाकसवत् इति सामी समवसुता, अहो विरोदः, संजुटः, अणुवयाणि गुह्यमिति वदे ज्वोपज्जवावीते सोमहि एव वयमाणः ।

अहं सा एह, हहहहहो, हस्तिवपह्मनां जपरं कथं, रंगो कथो, तस्य चक्रं, एष्य पंगमि अक्से अह चक्राणि, तेसि पुरभो  
 धीया ठयिया, सा पुण विभियवा, राया सखद्धो निगभो सह पुचैहिं, ताहे सा कण्णा सघालंकारविद्रुसिया एगमि पासं  
 अण्णइ, सो रंगो रायाणो य ते य हंअमहभोरया आरिसो दोषवीए, सस्य रण्णो अेद्रुपुत्तो सिरिमाळां पुमारी, एसा  
 दारिया रअं च भोखवं, सो तुवो, अहं नूणं अण्णोहिंत्तो राहिं अक्खदिभो, ताहे सो भणिभो-पिंथहसि, ताहे सो  
 अक्खकरणो तस्स समूहस्स मक्खे तं वणुं पेप्पुण येव न चाएइ, किह्वि अण्णेण गहिपं, सेण जत्तो वयाइ सत्तो ययइरुसि  
 कइं सुक्कं, एवं कस्सइ एगं अरयं धोडिय कस्स दो तिण्णि अण्णोसिं वाहिरेण येव निंति, सेणयि अमखेण सो ननुगो  
 पसाहिं तं सविचसमाणीओ तस्यअण्णइ, ताहे सो राया ओइयमणसंकप्यो करयलपरहरथमुहो-अहो अहं पुचहिं ओगमरसे  
 चिगोविओसि अण्णइ, ताहे सो अमखो पुण्णइ-किं तुवसे देवाणुप्पिया ओइय जाय सियायइ !, ताहे सो भणइ-

१ एया दीसि हहहहह, वणिक्कपलल भगर् कय रत्तां कय, एव अह, अहैवसिए वकेय अक्खसि वेरां हुराटा हुलकिता ज्ञाणिता सा पुवदेवमा  
 राजा सखद्धो निगंठा सइ तुवो: एया सा कण्णा जवंअण्णसिधुयिता एकासिए पायं सिहसि स एह! ते राजाणो वणिहकमदलोअिया वादवो दीवज्जा एव  
 राजो ज्वेह: तुवा अस्मिन्नी पुमारा: एया दारिका राजवं च भोखवं स तुवा अहं पूवमण्णावमयोअमदिक्क: एया स अस्मिन्नी-पिंथेहिं एया सोअण्णक  
 वसस समूहक मय्ये एवमुपदीगुमेव च सक्कोसि कसमय्यवेव यूहीतं वेव वतो मज्झसि एतो अज्झियिठि काणइ मुक्कं, एवं कसविदेकमराकं अक्खिअसं कसविद  
 मीसि अण्णेयां वसिरेव निगंछज्झिं सेकाप्यमाणेव स जसा मयाअ एदीवसमाणीठसह सिहसि, एया स तावोपदवमय:संकपया करवअज्जापिहमुवा: अह!  
 एहं तुवैवोअमय्ये सियोपिठ इसि सिहसि एया सोअमारा: पुण्णसि-किं पूवं ववाणुप्पिया अयलपरमयासंकपया जायए ज्जावठ ! एया स मज्झि-

देवर्षिर्ह आहं कर्तुर्मेकमो, तावदे भणामि-अस्मिन् पुत्रो हुत्वं अण्णोवि, कर्हि !, सुतिद्वयो नाम कुमारो, तं सोवि वा विष्णा-  
 खर मे, तावदे तं राधा पुच्छामि-कमो मम एत पुत्रो !, तावदे ताणि सिद्धाणि एहत्साणि, तावदे राधा हुत्तो भणामि-सेवं त्व  
 पुत्रा ! एए अहं अण्णं रत्नसोक्क निहृत्तिवारिय पाविणए, तावदे सो कुमारो ठावं आसीदं तावत्तणं निणहं यणू,  
 त्वत्ताभिमुहं सरं संभेह, ताणि वेहकमाणि ते ए कुमारो सममो रोदति, अण्णे ए दोष्णिण्णुतिता भसिअप्रहसी, तावदे सो  
 यणामं रण्णो त्वत्तायस्स ए करेह, सोवि से त्वत्तायस्सो अयं वत्तेह-एए दोष्णिण्णुतिता अहं किञ्चित्ती सीवं ते किहं (हिसिंति)  
 वेसिं दोष्णवि पुत्तिता ते ए अवारि ते ए वारीवं अण्णंते ताण अट्ठणं रत्नसोक्कं सिद्धं जाणिअण एगमिं किं नोक्कण  
 अक्किट्ठियाए दिट्ठिए अमिं उक्खं तेण अण्णमि ए यणं अण्णमाणेण ए वीरीणा अक्किमिं विअ, तत्त ए अण्णसिंताय-  
 साहुकारो दिण्णो, एसा दमतिविक्खता, एसा वेयं विभावा भाये, त्वत्तायस्सो अहं कुमारो एहा सए अहं ते अवारि एहा

[illegible]

अहं सा एह, इहगुहो, तस्मिन्पथनां पायरे कथं, रंगो कथो, तस्य चक्रे, एष्य एगंमि अकसे अह चकण्णि, तेसिं पुरओ  
धीया ठविया, सा पुण विधियथा, राया सअओ निगओ सह पुचेहिं, ताहे सा कण्णा सपाठकारयिद्रसिया एगमि पासं  
अच्छइ, सो रंगो रायाणो य ते ए इहमहभोइया आरिसो दोयसीए, सप रण्णो ओइपुसो सिरिमाटी जुमारो, एसा  
दारिया एज्ज च भोचवं, सो सुहो, अहं नूणं अणोहिंतो राईहिं अणमहिओ, ताहे सो भणिओ-पिंधइहिं, ताहे सो  
अकपकरणो तस्स समूहस्स मभ्भो त यणुं वेत्तुण चेष न चाएइ, किइयि अणेण गहिंयं, सेण अत्तो वयइ तत्तो वयइसि  
कंठं मुक्कं, एवं कस्सइ एगं अरयं योत्थिय कस्स दो तिण्णि अणोसिं पादरेण चेष निंति, सेणवि अमयेण सो नचुणो  
पसाहिं वडिवसमाणीओ तस्यडच्छइ, ताहे सो राया ओइयमणसंकप्पो करयउपहृथमुहो-अहो अह पुचेहिं छोगमयसे  
विगोविओहिं अच्छइ, ताहे सो अमओ पुच्छइ-किं तुभे वेवाणुप्पिया ओइय ज्ञाव हियायइ !, ताहे सो भणइ-

१ एया कीरि इहगुहा, तस्मिन्पथनां पायरे कथं राया कथा तत्र चक्रे, एहोकीए चकेइ अज्जसि तेसं गुहाः मुचकिता आसिता सा पुनरेइया  
राजा सज्जो भिंताः सह दुर्गेः तथा सा कथा सर्वावहादिगुहिता एवमिह पासं तिष्ठति सा राज्ञः वे राजानो वडिइकमदभोइका पादसो दीयया तत्र  
रणो वेत्तु पुना श्रीमाटी कुमारः एषा वारीका राज्ञं च भोचवं सा गुहा अहं वृत्तमन्तावभ्योअवधिका तथा स वसिता-रिप्येति, तथा सोऽहवता  
अहस्य समूहस्य मध्ये तद्गुर्मणीगुमेव च आओहि कथमप्यथेव गृहीत, तेन वतो मज्जति वतो मज्जतिहि कान्ठं मुक्कं, एवं कस्यिदेकमारक म्पठिअत्वं कस्यिद्रे  
भीमि अन्नेयं वडिरेव सिंयण्ठि वेवाणुमाम्भेव सा यथा मसाय वडिवसमाणीयतां तिष्ठति तथा स राजोपहृतमवःसंकपः अतउज्जगारिवगुहाः अहो  
एहं दुर्गेकममध्ये विगोसित इति तिष्ठति, तथा सोऽमसाः पुच्छति-किं तूय वेवाणुप्पिया अथतमवःसंकपः आहव ज्ञावत ! तथा स भणति-



ध्याए सो दिवसो सिधो भुवचो धेका थं न राएण ज्ञानविषं साहसंकारो तेण थं पचए छिदियं, सो य सारवेइ, नवप्यं  
 मासाण दारभो आभो, तस्स दासवेहाणि वदिषसं आयाणि, तं०-मत्तिपभो पदपभो ब्रुत्तिगो सागरगो, ताणि  
 सहसायाणि, तेण कलापरियसस ववणीभो, तेण छेदाइयाभो बावसरि कजाभो गहियाभो, जाहे साभो गाहेइ आप  
 रिभो दाहे ताणि कुट्टंसि विकटंसि य, पुवपरिआएण ताणि रोवंति सोवि ताप्ति न गणोइ, गहियाभो फलाभो, ते ब्यवे  
 गाहिअति बावीसपि कुभारा, अस्स अरिअब्बंति आयरियसस थं पिट्ठंति मरपएहि य इणचि, भइ ववअसाभो ते  
 पिट्ठइ अपटठे साहे साहेति माइमिरिगणो, दाहे ताभो भणंति-किं सुकमाणि पुसअम्ममाणि !, दाहे न चिकिस्साइ !  
 इओ य महुराए अियससू राया, सरस सुया निभुरं नाम कण्णया, सा अउंकिया रणो ववणीया, राया भवइ-भो रोपइ  
 सो ते भवा, दाहे ताए पाप-भो सरो पीरो विकवो सो पुण रअं विअ, दाहे सा य वडं वाहणं गहाव गवा इहपुरं  
 पायरं, रायसस पइये पुवा सुएत्तिमा, दूओ पयइो, दाहे आयाहिवा सवे रायणो, दाहे तेण रायाणएण सुयं-

१ यथा स दिवसो भुवचो देका वज रायोसं समद्वारा ( सव सर्वसुख ) तेन सव पचके सिद्धिं स न पीकसि नवसु माहेइ दासवे जस, वज  
 दासवेजसोदेव जसः। दासवा-अग्निः सर्ववका बहुकिञ्चः आगो ते दासवाः। तेन कजावायोरोरदीवः-तेन देवादिभ्यः दासवतिः कजा पुदीयाः  
 नरा ता माइयसावार्थसाइ वरा ते भुवचसि विकटंविधि न, पूर्वपदिवदेन ते सुसिध सोमसि ताव वजपसि पुदीया कजा तेअये माकअये दादिबसिदि  
 इमाः। यओ अर्यअये आवावोव स पिट्ठविधि गकोदेव न अग्नि अयोपाप्यापकादपिडवसि अयसका वरा कजविधि मलपुअपुदीयो वरा दा मयसि-किं सुकमाणि  
 पुवअम्मामि वरा(वि) न पिडिदाः। इदम मनुपायो पिडवपइ ताका वज सुवा सिद्धिंवाव कजा, काअकूता ताव वपदीवा ताका यजसि-भो पोअये  
 स ते मयां सरा वका यादं-यः सरो पीरो विकवः स पुवा रायं वपाए, वरा सा वडं वाहणं न गृहीत्वा यवे मरुतं वपतं दाओ वइवः सुवा सुवपयः  
 दूतः पवसिवा। वराभुवचा अकिञ्चा दावावः, दाहा तेन राया सुव

भारेह वसि, भर्णाति ते तस्मा करेहिंसि भणिषा नेच्छति, सुनुगकुमारस्य मरणेण छागा पयइया, समहिं सोभो परिचसो,  
एवं अजोमया कायसा, अजोमेसि गर्ध ८ । इयानि तितिवस्ससि वार, तितिवस्सा कायसा—परीसहोपसमाणं अतिसदण  
भणिय होइ, तत्रोदाहरणगाथाइयम्—

इदपुर इंदवस्से पायीस सुपा सुरिवदस्से य । मङ्गराप जियससू सपधरो निव्हुईए ॥ १२९१ ॥  
अग्निगपए पवधपए पङ्गुली मइ सागरे य थोव्वस्से । एगदिवसेण जाया तत्थेय सुरिवदस्से य ॥ १२९२ ॥

अस्य न्यास्या कथानकादवसेया, सत्तेदम्—इंदपुरं णयर, इंदवसो राया, तस्स इहाण वराण देयीण पायीस पुत्ता,  
अण्णे भर्णाति—एगाए देवीए, ते सबे रण्णे पाणसमा, अहेगा पूया अमच्छस्स, सा अ एर परिणतेण दिहा, सा भणया  
कयाइ पहाया समाणी अच्छइ, ताइ रायाए दिहा, कस्सेसा !, तेहिं भणिय—जुवमं देवी, ताइ सो ताए सम एक रति  
जुच्छो, सा य रित्तिपहाया, तीसे गम्भो उगो, सा असत्तेण भणियसिया—अथा सुवम गम्भो उगोइ तथा मम साहेज्जादि,  
जुच्छो, सा य रित्तिपहाया, तीसे गम्भो उगो, सा असत्तेण भणियसिया—अथा सुवम गम्भो उगोइ तथा मम साहेज्जादि,

१ भारव वसि भवसि ते तथा कुर्वसि भणिषा नेच्छति सुनुगकुमारस्य मरणेण छागा पयइया । समहिं सोभो परिचसो । एवं अजोमया कायसा, अजोमेसि गर्ध ८ । इयानि तितिवस्ससि वार, तितिवस्सा कायसा—परीसहोपसमाणं अतिसदण  
भणिय होइ तत्रोदाहरणगाथाइयम् । इदपुर इंदवस्से पायीस सुपा सुरिवदस्से य । मङ्गराप जियससू सपधरो निव्हुईए ॥ १२९१ ॥  
अग्निगपए पवधपए पङ्गुली मइ सागरे य थोव्वस्से । एगदिवसेण जाया तत्थेय सुरिवदस्से य ॥ १२९२ ॥  
अस्य न्यास्या कथानकादवसेया, सत्तेदम्—इंदपुरं णयर, इंदवसो राया, तस्स इहाण वराण देयीण पायीस पुत्ता,  
अण्णे भर्णाति—एगाए देवीए, ते सबे रण्णे पाणसमा, अहेगा पूया अमच्छस्स, सा अ एर परिणतेण दिहा, सा भणया  
कयाइ पहाया समाणी अच्छइ, ताइ रायाए दिहा, कस्सेसा !, तेहिं भणिय—जुवमं देवी, ताइ सो ताए सम एक रति  
जुच्छो, सा य रित्तिपहाया, तीसे गम्भो उगो, सा असत्तेण भणियसिया—अथा सुवम गम्भो उगोइ तथा मम साहेज्जादि,  
जुच्छो, सा य रित्तिपहाया, तीसे गम्भो उगो, सा असत्तेण भणियसिया—अथा सुवम गम्भो उगोइ तथा मम साहेज्जादि,

ताए सो दिवसो सिद्धो मुद्रणो वेला वं न राण्य छविचं साहसंकारो लेख तं पद्य छिदियं, सो न सारवेह, नवणं  
 मासाण पारमो जामो, वस्स दासयेवाणि तदियसं ज्ञायानि, तं०-अणिगयओ पयसमो बह्विणो सागरगो, ताणि  
 सहजायाणि, तेण कलापरिपस सवणीमो, तेण छेदादयाओ भावहारि कलाओ गहियाओ, जाहे ताओ गाहेह जाम  
 रिओ ठाहे ताणि कुट्टिंति विकट्टिंति य, पुनपरिपण ताणि रोहंति सोवि तावि न गण्हेह, गहियाओ कलाओ, ते अत्ते  
 गाहिअति भावीसपि कुमारा, जस्स अतिअति आपरिपस तं पिट्ठिंति मरपपहि य इणंति, अह जवज्जामो ते  
 पिट्ठि अमहंते ठाहे साहति माहमिस्सिगण, ताहे ताओ अणंति-किं सुजभाणि पुत्तवम्मणि !, ताहे न सिक्खिपाहं ।  
 इओ य महुताए जियसयू राया, वरस सुपा निजुरे नाम कण्णया, सा अलंकिता रणणो जवणीया, राया मवाह-ओ रोपह  
 सो ते भवा, साह ताए पाय-ओ सूरो पीरो विकटो सो पुण रज्जं दिवा, ताहे सा न वलं वाहणं गहाय गपा इहुरे  
 पायरं, रायस्स महंते पुसा सुपुत्तिआ, पूओ पयट्ठो, ताहे आवाहिपा छवे रायाओ, ताहे तेण रायापपुज सुयं-

१ यथा स दिवसो मुद्रणो वेला वं न राण्य छविचं साहसंकारो लेख तं पद्य छिदियं, सो न सारवेह, नवणं  
 मासाण पारमो जामो, वस्स दासयेवाणि तदियसं ज्ञायानि, तं०-अणिगयओ पयसमो बह्विणो सागरगो, ताणि  
 सहजायाणि, तेण कलापरिपस सवणीमो, तेण छेदादयाओ भावहारि कलाओ गहियाओ, जाहे ताओ गाहेह जाम  
 रिओ ठाहे ताणि कुट्टिंति विकट्टिंति य, पुनपरिपण ताणि रोहंति सोवि तावि न गण्हेह, गहियाओ कलाओ, ते अत्ते  
 गाहिअति भावीसपि कुमारा, जस्स अतिअति आपरिपस तं पिट्ठिंति मरपपहि य इणंति, अह जवज्जामो ते  
 पिट्ठि अमहंते ठाहे साहति माहमिस्सिगण, ताहे ताओ अणंति-किं सुजभाणि पुत्तवम्मणि !, ताहे न सिक्खिपाहं ।  
 इओ य महुताए जियसयू राया, वरस सुपा निजुरे नाम कण्णया, सा अलंकिता रणणो जवणीया, राया मवाह-ओ रोपह  
 सो ते भवा, साह ताए पाय-ओ सूरो पीरो विकटो सो पुण रज्जं दिवा, ताहे सा न वलं वाहणं गहाय गपा इहुरे  
 पायरं, रायस्स महंते पुसा सुपुत्तिआ, पूओ पयट्ठो, ताहे आवाहिपा छवे रायाओ, ताहे तेण रायापपुज सुयं-

भारेह षष्ठि, भणति ते तथा करेद्विष्टि भणिषा नेच्छति, सुहृन्कुमारस्तु मगोण छागा पप्रया, सयदि ओमो परिचक्षो,  
एवं अलोभया कायदा, अलोभेति गप ८ । इयानि विविक्खति वारं, विविक्खा कायदा—परीसहोमसगणण अस्सिहण  
भणियं होइ, तत्रोदाहरणगाथाद्वयम्—

इदपुर इदक्से पावीस सुया सुरिवक्से य । मङ्गराए जियसम् सयवरो निरुहुरेए ॥ १२९१ ॥  
अतिगमए पक्कपए मङ्गुली मइ सागरे य बोद्धव्वे । एगदिवसेण जाया मत्थेए सुरिवक्से य ॥ १२९२ ॥

अस्य क्पास्या कथानकादवसेया, तत्रेदम्—इदपुर जयरं, इदवसो राया, तस्स इच्छण यरण देवीणं पायीस पुत्ता,  
अप्पो मणति—एगाए देवीए, ते सव रण्णो पाणसमा, अहेगा पूया अमच्चस्स, सा अ पर परिणयेण दिक्का, सा अणया  
कयाइ पणया समाणी अच्छइ, ताहे रायाए दिक्का, कस्सेसा १, सेहि भणिप—जुहमं देवी, ताहे सो ताए सम एकं रसि  
पुच्छो, सा य रिणुदाया, सीधे गहमो लग्गो, सा कामयेण भणियसिया—अथा सुक्ख गहमो लग्गइ तथा मम साहेज्जाहि,

१ भारव वेसि ममभिय ते तथा जुद्धिहि भणिठो वेच्छति, सुहृन्कुमारस्तु मगोण कथाः प्रवदितः, सर्वदोषः परित्यक्तः पृथमजोनवा कवेः।  
अलोस इति गत । इदानीं विविधेभिर्द्वारं विविक्खा कर्तव्या—परीसहोमसगणो विविधान् भणित्वा भवति १ इदपुरं कथं इदपुरं तो राजा वल्लेहो भवति  
देवीयां द्वाविस्सति जुजाः अन्ने अमच्छि—मुक्खा देव्याः ते सर्वे राज्ञः माणवमाः अयेकास्मास्तस्य बुद्धिवा सा अत्तं वरिणवता इहा सा अन्नेण अदुत्तमा  
कवी सिद्धिं, तथा राजा इहा कस्सया १ देवीधर्म—जुक्का देवी, तथा स तथा सममेकं राधियुद्धिहि सा च अदुत्तमा वक्ता समो कथः सा अमात्र  
भणित्वा—अथा एव पायीं मनेचया मयं कथये।

एवं निगदसिद्धैष, धैर्यवरे शुद्धपुण कंचरयणं हृदं, असमर्थेण शुद्धरात्रणा कुंडलं सयसहस्रमोक्षं, सिरिकंलाय सत्यवा  
 विधीय दारो सयसहस्रमोक्षो, अवसंधिणा भगवणे कचगो सयसहस्रमोक्षो, कण्ठावाधो मिथो वेप भंजुसो सयसहस्रसो,  
 कंचलं कुंडल ( कचयं ) दारोगावलि भंजुसोसि एयाह सयसहस्रमोक्षह, ओ प फिर एतथ सूचह का देह का सो सबो  
 श्लिखिज्जह, अह जाणह सो शुद्धो अह न याणह सो दहो सेसिसि सबे किहिया, पभाए सबे सदाविया, पुच्छिया, सुद्धगो ।  
 हुक्मे कीस दिवं !, सो जहा पियामारिओ सं सब परिकोह जाय न समरयो सज्जमयणुपावेवं, हुक्मं मूज्जमागमो रज्जं अहि  
 छसामिधि, सो भणह—देसि, सो सुद्धगो भणह—अछाहि, सुमिणसय धट्टह, मरिज्जा, पुक्कभयोधि संजमो नासिद्धिधि, सुद्धरापा  
 भणह—हुम मारेवं मगागामि धेरो रापा रज्ज न देहसि, सोधि दिव्वं वनेच्छह, एतथवाहमज्जा भणह—मारस परिसाप्पि पवत्थस्स,  
 पदं पट्टह, अथ पयसेमि धीमंसा पट्टह, असद्यो—अण्णारापाणपुहिं सुम पट्टामि, पवत्तरायाणो हसियेमंठं भणीति—इत्थिं काप्पोहि

1. अत्रात्तरं शुद्धकुमारस्य कर्मकारणं भित्तं यतोमयेन पुत्रात्तेन पुत्रवत् सत्तवहससुत्तं श्रीकण्ठना कार्यवाहा दाराः कचसहस्रमूलाः कचसन्निभाना-  
 मसंख कटकं तावत्सहस्रमूलं कर्मपात्रो मय्यकाहुताः सत्तवहससुत्तः कचसहस्रमूलं ( कचयं ) दारं वृक्षसन्निभं बाहुपं हसंतानि कचसहस्रमूलाणि यत्र  
 किञ्च एव सुव्यभिच ददाति वा स सर्वो किञ्चनो धर्मो कानार्थं ददां शुद्धो अहं य आगामि यथा वृक्षलोचनमिति सर्वं निश्चिन्ता मयाते सर्वं जन्तिना शुद्धा,  
 शुद्ध ! त्वया किं दय ? स पया पिया मायेताः एत् दय धर्मकपयसि यावत् समयाः संयममनुपावसिषु पुण्याहं पार्थसापाता एतन्मयिकक्यामीति स  
 भगवति ददामि स शुद्धो मय्यभि अहं स्वाम्यो जहते प्रिये पूर्वसोऽपि संजमो अहोदिधि पुत्ररात्रो मय्यभि—एवं मारसिषु वृपदे कचिरा एतत् एतत्  
 ददामीति बोधसि दीयमानं मेच्छसि कार्यवाहमायो मय्यभि—इदं दय ज्ञानी मोक्षिणः, यति वर्तते एव मयेवावामीति निमज्जोऽपूत, कमाज्ज-  
 भय्यराजमिः समं मज्जवामि मज्जमात्राज्ञो हकिनेवं मय्यभि—इति नमाय

क्षीए मूले सेणेय कमेण पणइया अहा धारिणी सहा विभासियवा, नयर तीए दारओ न छत्रिओ सुइगुमारोसि से नामं  
 कयं, सो जोगणरयो जाओ, विवेइ-पणअ न तरामि काव, मायर आपुच्छइ-जामि, सा अणुसासर सइयि न ठाई, सा  
 भणइ-सो स्याइ मस्मिमिअ धारस धरिसाणि करेहि, भणइ-करोमि, पुअेसु आपुच्छइ, सा भणइ-सयइरिय आपुच्छामि,  
 तीसेधि धारस धरिसाणि, ताहे आयरियस्सधि वयणेण धारस, सवइसायस्स धारस, एवं अइयासीस धरिसाणि अण्छा  
 खिओ सह वि न ठाई, विसिअिओ, पण्छा मायाए भण्णइ-मा जहिं या तहिं या यच्छाहि, महइयिया गुणस पुंटरीओ  
 राया, इमा ते वितिसंविद्या सुइया कवलरयण च मए निर्तीए नीणीय एयाणि गहाय वच्छाहिं, गओणयर, रणो ज्ञाण  
 साखाए आवासिओ कसे रायाण पेच्छइमिअि, अरुमंतरपरिसाए पेच्छणयं पेच्छइ, सा नट्टिया सपरसि नच्चिरुण पभा  
 यकाळे निइइया, ताहे सा धोरिणिणी विवेइ-जोसिया परिसा धनुग च लखे अइ एरय पियइइ सो परिसियामोसि, ताह  
 इम गीतिय पगाइया-सुइ गारयं सुइ नखियं सुइ धारय साम सुवरि। अणुपालिय दीहराइयओ सुनिणंस मा पमायए ॥ १ ॥

१ एका मूले सेवेइ कमेण मज्झिमा वज्जा धारिणी सहा विनासियवा एयर सहा दारओ न छत्रिओ सुइगुमारोसि से नामं कयं स वाइवस्यो ज्ञाता  
 विरुधसि-मज्झिमा न कम्मोमि कसु, मातरमापुच्छे-जामि सा अनुसासि लयायि न विवसि सा भणवि-अहा मस्मिमिअ दारस वयोमि नुइ भणवि-करोमि  
 पुअेसु आपुच्छे सा भणवि-महचरिकामापुच्छे सहा धरि दारइ वयोमि लव वाचार्थेज्यायि वचनेव दारइ वयोमिअकर दारइ एवमाइवचवर्धोअय वयोमि  
 ज्ञापितसयायि न विवसि विरुधः पणान् माभा मयये-मा नइ वा लव वा मायी, विरुधवचन गुणवीको रामा इवं च ते विरुधस्स सुविका  
 कम्मकरवं मया विगच्छममाइमीवं पुते युहीला नइ एते वयरं रामो वाचकाकावसुविका कसे रायाव मस्मिमिअि अइयवापर्येहि मज्झकं मज्झकं, सा  
 वरी सवेराव भविसि माभावकाळे विवसिवा सया सा मर्यवी विरुधसि-जोसिया पर्येव च्छु च कस्यं चयजुवा ममायदि लहिं अइमाविवाः स इयि वरमा  
 गीतिकां प्रगीतवती-सुपुगीव सुपु भविसि सुइ धारिइ इममाओ सुवरि।। अणुपालिय दीहराइयओ सुनिणंस मा पमायए ॥ १ ॥

सांख्यो मर्णाति—अथ पञ्चनखायव्यो परमं साद्र्ध्वात्महे भण्डामो, दोवि रायानो ठिया, विवसे २ महिमं करोति, काकामो, एव ते य गन्ता रायाणो, एव तस्स अनिच्छमाणस्सवि व्यावो इयरस्स इच्छमाणस्सवि न व्यावो पूयासक्कारो, अहा वम्म असेण तहा कायव । भण्णायपप्पिगये ७। इयाणि अजोमेत्ति, जोमयिगेयाए व्योगा संगहिवा मर्षति अजोमया तेण कायवा, कइ ! तस्सोवाहरणमाह—

सायए पुडरीए कहरिए वेव देविजसमदा । सावत्थिअजियसेणे कित्तिमई खुडुगकुमारो ॥ १२८८ ॥

असमदे सिरिकेता जयसेवी वेव कण्णपाळे य । नदविही परियोसे पाणं पुब्बा य पब्बज्जा ॥ १२८९ ॥

सुहु वारय सुहु गारयं सुहु नविए साम सुवति । अणुपाछिए पीहराइयवो सुमिणसे मा पम्मायए ॥ १२९० ॥

आरागायाअमम्, अस्य व्याख्या कथानकावसेया, तत्वेद—सागेय जयरं, पुडरिओ राया, कहरिमो खुवराया, खुव राओ देवी असमदा, तं पुडरीमो अकर्मवी दहण अमणोववओ, नेच्छइ, सहेव खुवराया मारिओ, सावि सत्केय ससे यसाया, अहुणोववअगकमा पचा य सावत्थि, तस्य य सावत्थीए अजियसेणो व्यापरिओ, कित्तिमवी मयहरिया, सा

१ ता मन्थित—मन्थनकारमन्थोऽत्र आहुः । ततो यत् तिष्ठताः द्वावपि तान्मात्री किंवा द्विषसे २ मक्षिणार्धं पुनः । अकपायः । पूर्वं ते राजात्री च एतत्त । पूर्वं तस्मान्निष्करोऽपि जातः क्खिंकाकारः । इतकोच्छोमी च जातः पूजाअकारः । पचा कर्मवज्जा तथा कर्तव्यं । अन्नाअमिंति गत् इरावी अकोम इति कोवद्विरेकिववा योगाः संपुरीता मयसिअ अकोमता वेव कहेवता कर्त्तुं । ततोइएदत्तमाह । साकेसं वगरे पुडरीओ राया अकर्मवी खुवराया पुवराअक देवी यसोमया ता अहुमन्थी इहा पुडरीकोअणुपयजा नेच्छति, तथैव पुवराओ मारिता । सप्पसि सार्त्तव जर्म पकवित्ता अहुनेअवयमो मया च मावकी, इह च भावसमाअिवसेव भावार्थः । कित्तिमविमंहरिया, सा

चित्तोद्गमा अणकस्यभ्यो होतसि रहस्सं निर्दामि, अतेवरमङ्गया, मणिप्यहं ओसारेत्ता भणइ—किं भावणेण समं कळहेसि ?  
 सो भणइ—कहन्ति, ताहे सं समं संषयं अकसायं, अइ न पत्तियसि तो मायरं पुच्छाहि, पुच्छइ, तीए णायं अयरस रद  
 समेओ, कहिय अहावसं रद्धवत्तणसंतगाणि आभरणगाणि नाममुद्दइ धारयाइ, पचीओ भणइ—अह एत्ताहे ओसरामि तो  
 मम अयसो, अज्जा भणइ—अह स पत्तिवोहेसि, एवं होवत्ति, निगया, अधत्तिसेणस्स निघेइयं, पयइया द्दुमिच्छइ, अइ  
 यया, पाए द्दुण णाया अंगपाठिहारियाहिं, पायवट्टियाओ परमाओ, कहिय तरस सव मायत्ति, सो य पायवट्टिओ  
 परमाओ, तस्सवि कहेइ—एस मे आया, दोवि बाहिं मिळिया, अयरोग्गमवयासेअण परम्मा, किंचि काळं कोसंयीए  
 अच्छिळा दोवि उज्जेणि पाविया, मायावि सह मयहारियाए पणीया, अाहे य वच्छयासीरे पपप पत्ता, ताहे अे तीमि  
 ज्जणवए साहुणो ते पपप ओरुमंते व्हंते य द्दुण पुच्छिमा, ताहे ताओयि यंदित गयाओ, चित्तियदियसे राया पदायिओ,

१ विजयवट्ठि—मा जगज्जयो भूद्विंस्सि इहक मिचयि अण्णापुरमसिपत्ता मस्सिपसमएसाय अज्जि—किं आजा सम कळहेसि ? स भज्जि—कयंमिंठ  
 एता सं कळं समवज्जसाकलवती वस्सि य मज्जेयि ठहिं मायरं पुच्छ पुच्छिं तवा जाल—अमरव रहस्येवः कहितं यथापुत्र ताइ वधेवत्तकामि आभरणामि  
 माममुद्दयापीयि धारिणांमि प्रसादितो भज्जि—एवमुपाणसतामि ठहिं मेअयसाः आर्यो भज्जि—अह स मत्तिरोवयामि एवं मवत्तिवत्ति निर्गता भवत्तयेवाव  
 निवेदित, ममिंठता म्मुमिच्छति आदिगता, यदी इत्ता आताअवःपुत्तादिद्वारिणीमिः पाएपसिताः मदीवताः कयिं वत्त वव मावत्ति स व पाएपाठताः  
 मदीवताः, वत्तायि अयपत्ति एव सव आता इवत्ति वत्तिमिळितो परसपमाकिअ मवत्तिवो कडि—काक कीसाम्भवं विजाया इवपुज्जविदी मग्गो मग्गायि  
 सह माइयरिकवा भीता एता व वासकावीरे पवत्त माता एता ये वीअन् अयपदे सायवत्ताइ पवत्ताइवत्तव आतेवत्तव एता इववती एता ता भाव  
 वत्तिवत्तं गताः द्वितीवदिवसे राजा प्रसिद्धा,



भजान्नहिवीय विभो अनुत्ताप, सो य पुत्रो, सा च संवतीहि पुच्छिषा भणइ-उत्तापनं आर्यं तं मए विगिञ्चियं, जइयं  
 होहिहि, ताहे अंतदरं पीइ अवीइ य, अंतदरियाहिं समं मिथिया आया, उत्तस मणिप्पहोसि णामं कयं, सो एया मयो,  
 मणिप्पमो राया आयो, सो य वीए संवर्इए निरायं अनुत्तापो, सो य अर्धतिक्कणो पच्छायाणेण भायावि मारिओ छादि  
 देवी न आयसि भावनेहेण अर्धतिसेणस्स रज्ज दाक्कण पणइओ, सो य मणिप्पहं कप्पागं मग्गइ, सो न देइ, ताहे छइ  
 बलेण कोसंदिं पइविओ । ते य होवि अणगारा परिकम्मो समत्ते एगो भणइ-अइहा विजयवतीए इही एहा ममवि होव,  
 जयरे भयं पण्नस्सायं, बीओ धम्मज्जओ पियूष नेच्छंतो कोसंवीए उज्जेणीए य अंतरा पच्छगासीरे पन्नयकइराए मए  
 पण्नस्सायं । ताहे सेण अयसिसेणेण कोसंवी रोहिदा, एतए अणो अप्पणो अइण्णो, न कोइ धम्मयोस्सत्त समीवं अट्ठिपइ,  
 सो य विंतिपमरधमउभमाणो काछगओ, जारेण निप्फेहो न छइमइ पागारस्स ववरिएण अहिक्किच्चो । सा पणइय

१ भजान्नहिवीय अनुत्ताप इत्यः स च पुत्रः, सा च संवतीहि पुच्छिषा भणइ-उत्ताप-सुतं ज्ञातं उत्तमया अहं, एतिहं (विचरं) मणिप्पहोसि एता-अनुत्तापं पण्न-  
 स्सायं य भजान्नहिवीयः। समं मयी आता एता मणिप्पम इति क्त्वा इत्येव सा राजा सुता मणिप्पयो राजा जाता इ च उत्तमो संवत्तो विचरान्नुत्ताप-  
 स अयसिसेणः। यज्जान्नाय भज्जामेयि मारिओ एवो न मयसि भज्जोदेवताकलीयेत्त एतए इत्ता मग्गइता इ च मणिप्पमं इत्तं मार्यसि ए  
 य एतहि, एता एतदहं च अयान्नी मग्गइता । सा च एतसि अयानो परिकम्मसि अयाने (अयानोपवती) एतदे अट्ठि-अवा विजयवती अट्ठि-अवा  
 मग्गइत मग्गइ, एतदं भज मग्गइता एतं इत्ताओ कयं एता विपूजामसिप्पइ। कीयन्त्या इति विपूजान्ता एतस्सत्तमोरे एतदप्युत्तापं भवं मग्गइता इत्ता  
 एतास्सत्तापम कीयान्ती इत्ता एत एतद अवा कीयिताः न कीयइतयोस्सत्त समीपमापयसि इ च विंतिपमरधमउभमयाः। अहंमया इतोय विज्जान्नायं च  
 एतदे (इत्ता) मग्गइता एतदेव अट्ठि-अवा इति मग्गइता

रद्वयवृणो य, पालनो अर्थसिद्धयण रायाण रद्वयवृण शुक्तरायणं ठविता पयश्चो, रद्वयवृणस्त भज्जा धारिणी, तीसे पुणो अर्थसिसेणो । अज्जाया वज्जाणे राइणा धारिणी सधगे धीसत्ता अचठंती दिहा, अज्जसोयवधो, दूती पेसिया, सा नेच्छइ, पुणो २ पेसइ, धीए अपोभावेण मणियं—भातरसवि न लज्जसि ?, तादे सेण सो मारिभो, विभासा, तमि पियासे सयाणि आभरणगाणि गहाय कोसंघिं सरथो वज्जइ, तस्य पूगस्स शुद्धस्स याणियगरस जयधीणा, गया कोसधिं, संजइओ पुच्छिता रण्णो ज्ञाणसालाए ठियाओ तस्य गया, धविता साधिया पयइया, धीए गभो अट्टणोयवधो साहुणा माण पभाविद्वि(चि) तं न अक्सिय, पच्छा णाए मयहरियाए पुच्छिया—सकभावेण कहिभो जइहा रद्वयवृणभज्जाइइ, संजवी नक्खेप्पसागारियं अच्छाविया, वियाया ररिं, मा साहुणं चहुाहो होद्वितिसि णाममुहा आभरणणि य वक्सिणिता रण्णो अंगणए ठविता पच्छसा अच्छइ, अजियसेणेणागासतलगण्णं पभा मणीण दिया दिहा, दिट्ठो य, गहिभो, पोण

१ राइवर्धमस्य पस्सकोप्पन्नीवर्धमं राज्ञानं राइवर्धमं पुक्कराज क्कापवित्ता मज्झिक्का राइवर्धमस सायां धारिणी, तस्सा पुक्काप्पन्नीवधः । अज्जसो साये राज्ञा धारिणी सधंदिनु सिक्कका तिहन्वी इहा अणुपयसः दूती पेसिया सा नेच्छति पुनः २ पेसये तथा तिरस्सापुत्त्या मज्झिक्क—भागुरसि ज्जज्जये ? तथा तेन स धारिणा विमाया, ठक्सिद् सिक्कके लक्काम्भाभरत्ताधि गृहीत्या क्रीडाम्भ्यां सायां मज्झति तदेकस्य इत्थं वणिजः । पार्थसाधिता पाठा कंय्यातां संपन्नः दृष्ट्वा रामो पावसाकायां सिक्काः तत्र यथा वणिक्त्वा आक्षिप्य मज्झिक्का तथा धर्मोऽनुचोत्पन्नः साधवो मा मज्झिक्कद्विति तज्जावधत्तं पञ्चान् याव सङ्घपरिक्कता दृष्ट्वा—सत्तराजः कथितः यथा राइवर्धमस भार्थाद्धं संवतीमप्येयसागारिक् क्कापित्ता मज्झितवती राज्ञा मा साहुणमुद्राहो पूर्णद्वि नमःमुद्रां माभरत्ताधि चोदित्वाप्य रामोऽप्यने क्कापवित्ता मज्झसा तिहति, अजितसेनेनाकासातक्कापदेव सन्धीयां मया दिव्या इहा इदं यदुदीतः भदेन

साद्र पक्षिणा, आणिमो, देवयाए भणियं-विहगिर विह्वहिचि दिभं, दिभं, सिक्कविभो य-न य एयं क्खपभं । निप्पहि कमचि गयं ६ । इयाणि अभायपुत्ति, कोडर्यः ।-पुर्वि परीसहसमत्थाण अं छवहाणं कीरह तं अहा छोगो न पाप्पाह तहा कायवंति, नाथ वा कयं न नज्जेज्जा पक्कभं वा कयं नज्जेज्जा, समोदाहरणगाहा-—

कोसविय जिपसेणे धम्मवद्ध धम्मघोस धम्मज्जसे । विगयमया विणयमई इहिविप्पुस्ता य परिकम्मे ॥ १३८६ ॥

इमीए वक्खाणं—कोसंबीए अजियसेणो राखा, धारिणी वस्स देवी, तत्थापि धम्मवद्ध भायरिया, ताणं दो सीसा-वम्म पोसो धम्मज्जसो य, विणयमई मयहरिया, विगयमया वीए सिस्सिणोया, सीए भयं पक्कवक्खायं, संयेम मइवा इहिवज्जा रेण निज्जामिया, पिभासा, ते धम्मवसुसीसा दोषि परिकम्मं करेति, इको ए-—

उज्जेणिवनिवद्धपात्तासुपरुधवज्जणे येव । पारिया(णि) अर्वातियेणे मणिप्पमा वक्कगामीरे ॥ १३८७ ॥

उपासया—उज्जेणीए पज्जोयसुया दो भायरो पात्तागो गोपालभो य, गोपालभो पवइभो, पाळगास्स दो पुत्ता-अर्वातिवद्धणो

१ आचवाः दीपिताः, आनीताः देवतवा मणिवाः—वीजपुत्तमे एव एका विताः पियावित्त-व देवं कवीर्यं । निप्पसिक्कमेति एयं । इयमीम्वारव इति एव वरीएवसमयेरुपवाज क्रियते एव मया कोको व आवाति तथा कर्वावमिदि भाव वा इव व जायेत मक्कहं वा इव जायेत । अला अममवाज-कोपाभ्यामिदवसवो राजा पारिणी तथा वृषी उज्जापि जमवत्त आवायोः देवं दो विप्पी-वर्मदेवो वर्मवक्काज विवममिदीरवरीका निपठयका तथाः पिक्का तथा भक्क ममवत्तपार्तं, सहेन मइवा अदीरसाकोरेण विर्यामिता, विमाया, वी पर्यवसुविप्पी दावपि परिकम्मे इदीर, इवत्त वक्कविप्पी मयोठ-सुवी दो भावरी-पाळको पोवाककज, पोवाककः ममावित्तः पाळकस दो पुत्ती-मवन्वीवर्धवो

देस पुत्राणि अणुसज्जाति ॥ एवं चिन्तां प्रति योगाः सङ्गृहीता भवन्ति यथा स्फुलभद्रस्यामिनः । चिन्तेति गत ५ । इपाणि  
निष्पत्तिरूपमयसि, निष्पत्तिरूपमयणेण योगाः सङ्गृह्यन्ते, तत्र वैषम्योदाहरणमाह—

पट्टाणो नागवत्स नागसिरी नागदत्त पञ्चज्वा । एगविद्वा सट्टाणे देवय साहू य चिह्नगिरे ॥ १२८५ ॥

अस्याख्यार्थः कथानकादयसेयः, सखेवत्—पट्टाणे णयरे नागवत्स सेही नागसिरी भज्जा, सट्टाणि दायि, तसि पुत्रा  
नागदत्तो निष्पत्तिरूपमयणेण पट्टाणो, सो य वेच्छइ जिणकप्पियाण पूयासकारे, पिमासा जहा वयहररे पट्टिमापट्टिय  
क्षाण य पट्टिनिपत्ताण पूयाविमासा, सो भणइ—अहं पि जिणकप्पं पट्टिवज्जामि, आयरियाहं पारिओ, न ठाह, सयं वय  
पट्टिवज्जइ, निगओ, एगएय पाणमंतरपरे पट्टिमं ठिओ, देवयाए सम्महिद्धियाए मा चिणिस्मिहिविचि इत्थिकयेण उयद्वा  
गहाय आगया, पाणमंतर अस्सिमा भणइ—णिणइ खवणासि, पल्लभूय कूर भक्खक्याणि नाणापगारक्याणि गहिपाणि,  
साहसा रसि पट्टिम ठिओ, जिणकप्पियत्त न मुचति, पोट्टसरणी जाया, देवयाए आयरियाण कहिय, सो सोसो अमुगएय,

१ इय पूर्वसि अणुसज्जात्ये । प्रतिष्ठाते नगरे नागवत्स सेही नागवत्सोत्तरे वाहे हे अयि तयोः सुतो नागवत्तो निर्देव्यकामयोतः प्रमद्विहाः ॥ च  
मेसते विवकथिकायां पूजासकरी विभाया यथा व्यस्यहारे प्रतिमाप्रतिपाद्याम् च प्रतिविदुज्जालं दृष्टविमया स यमसिद्धि-भद्रसाय विवकय प्रतिय  
भाचार्यविरितः न विद्वति स्वयमेव प्रतिपाद्यते मिर्यताः पुक्क व्यस्यहारे प्रतिमाया स्थिता देवता सम्यग्दृष्टिः मा प्रियदुद्धिदं वीकयानाहाः पूरुणाऽ-  
गता, व्यस्यहारेमयित्वा मयति—गुह्यं व्यस्यहारे पक्कयत्तं ( सिद्धं ) कूरं मयक्कयाणि नाणापगारक्याणि पूरुणाणि पारिया राहा मट्टिमाः स्थिताः  
जिनकप्पियत्ता म मुचति अस्मिन्नातो जाया, देवतायाऽऽचार्याणां कथितं, स विवकयोऽमुग

ब्रह्मब्रह्म च ताभ्यो लघादि भगिणीभ्यो पञ्चदश्याभ्यो, आध्यायिषु मात्तनं च धीविहं निगमायाभ्यो, उच्चापे किर तविषुक्ता  
 आध्यायिषा, धीविचा गुच्छति—कहिं ओह्यो !, एषाप देवछिषाप गुणेश्चि, तेणं ताभ्यो विह्यो, तेण धीविधं—भगिणीषा  
 दहिं दित्तिसेमिषि सीहकय धिवहद, ताभ्यो सीहं वेच्छति, ताभ्यो नह्यो, भणति—सीहेण एह्यो, आध्यायिषा भणति—न सो  
 सीहो ब्रह्मभयो सो, ता आह एसाहे, आगमाभ्यो धीविभ्यो, सेमं पुसल गुच्छा, अहा सिरियभ्यो पञ्चभ्यो ब्रह्मभयहेण काल-  
 गभ्यो, महाविदेह य पुच्छिषा सिरियपरा, देययाप नीया, अज्जा ! दो अन्नमपणाणि आध्यायिभुत्तां आध्यायिषि, एवं  
 धीविचा गयाभ्यो, विहयविपसे चहसकासे चयहिभ्यो, न लहिचति, किं कारणं !, उवचसो, तेण लालिधं, ब्रह्मचरणेण,  
 भणद, न पुणो काहामि, से भणति—न तुम काहिति, पच्छा माहया किउसेण पविचय्या, उवतिह्यमि चचारि  
 पुषाणि पढाहि, मा पुण भणत्तस दाहिमि, ते चचारि तभ्यो धोच्छिण्णा, दसमत्त दो पच्छिमणाणि धरपूयि धोच्छिण्णाणि,

१ पुरुषसूक्तं च ताः लघादि भगिण्यः, प्राग्विह्यः, आचार्योह आर्तं च धीविधं धीविह्यः, एषाने किञ्च विह्यता आचार्यो, धीविह्यः गुच्छति—  
 नह्यो !, दसमं दसमं विह्यतां गुच्छति एह ता एहा तेन विह्यित—भगिनीनां अहिं एधयमीमि विह्यत्तं विह्यति एता हिं पदपति एता एहा,  
 भणति—मिहं लहिह्यः, आचार्यो भणति—न ल हिह्य एह्यो भणति—नह्यो, सेमं पुसलं च पुच्छति एता धीविह्यः भणति—नह्यो  
 दस काह्यः महाविदेह य पुच्छिषा सिरियपरा, देययाप नीया, अज्जा ! दो अन्नमपणाणि आध्यायिभुत्तां आध्यायिषि, एवं  
 धीविचा गयाभ्यो, विहयविपसे चहसकासे चयहिभ्यो, न लहिचति, किं कारणं !, उवचसो, तेण लालिधं, ब्रह्मचरणेण,  
 भणद, न पुणो काहामि, से भणति—न तुम काहिति, पच्छा माहया किउसेण पविचय्या, उवतिह्यमि चचारि  
 पुषाणि पढाहि, मा पुण भणत्तस दाहिमि, ते चचारि तभ्यो धोच्छिण्णा, दसमत्त दो पच्छिमणाणि धरपूयि धोच्छिण्णाणि,

भक्ष्यो सिंघादभ्यो विसज्जिभ्यो, जो संघस आणं धाक्कमइ तस्स को दहो !, ते गया, कहियं, भणइ-भोपादिअइ, ते भणीति,  
 मा चग्गादेह पेसेह मेहावी सच्च पढियाभो देमि, भिक्खायरियाए आगभो १ काखेछाप २ सण्णाए आगभो ३ पेयाळियाए ४  
 पडिपुच्छा आवससए दिणि ७, महापाणं किर अया धावयथो होइ तथा चप्पणो कम्म अतो मुहसेण चवइस पुयाणि अणुपेइइ,  
 चक्करओषक्करपाणि करेइ, ताहे भूजमइअमुहाणं पच्च मेहावीणं सयाणि गयाणि, ते ए (ए)दिया मायणं, मासेणं एणेणं  
 दोहिं सिहिं सबे कसरिया न तरंति पडिपुच्छएण पडिच, नवर भूजमइसामी ठिओ, धेवावसेसे महापाणे पुच्छिओ-न हु  
 किळंससि !, भणइ-न किळासामि, ससालि कंचि कालं सो दिवस सबं पायणं देमि, पुच्छइ-किं पढिय कित्तिवं या ससं !,  
 आयरिया भणीति-अछासी य सुचाणि, सिद्धरत्थगमंदरे चवमाण भणिओ, एखो क्खत्तरेण काणेण पढिदिसि मा पिसाय  
 वच्च, समसे महापाणे पढियाणि नव पुत्राणि दसमं च दोहिं वरपूहिं क्खण, एयमि अंतरे विहरता गया पादळिपुस,

! टैरल्लः संघसको विसुद्धः कः संघज्जामाठिकाम्भसिं तका को दहो ! ते गयाः कथितं मज्झिम-निकायसंघे ते मज्झिम मा कम्मियतः मेवदत  
 मेवाधियः सस माक्का ददासि भिक्खावधीया आगताः क्खत्तरेकायां संयात्ता आगते भिक्खे आवसये कुते तियाः महाप्पाव दिक्क वरणिगळो भवति चरोरहं  
 कावेकल्लसुं हूयें अणुपेस पूदाणि अणुपेसयते कम्मभिक्खणकनिकासि कयोति तदा एण्णमइअमुहाणं पच्च मेवाधियं यत्तादि गदाणि ते दावया पडिपुस-  
 रत्ताया, मावेकेकेन हाम्भा विधिः सर्वेअयथा न सज्जमसि पडिपुच्छकेन ( सिंघा ) पडिं नवर एण्णपावसामी तिया कोकावासे महाप्पाव इह-  
 हाम्भसि ! भणसि-न हाम्भयासि मयीअत्त कथिए काळं ततो दिवसं सर्वे दावयां दावामि पुच्छति-किं वदिय दिवसं होच ! आवापो मज्झिम-अत्ता  
 योसिा सुहाणि सिद्धार्थकाम्भारोपमानं मभितं इत्त क्खत्तरेण काणेण पडिदिसि मा पिसाय मावीः समसे महाप्पावे पडिदिसि नव पुत्राणि दसमं च दावयां  
 नसुम्भायुतं पुराभिसावन्दरे सिद्धरत्तो यताः पादळिपुसं

पूरुभरसस च पाथो लज्जति भगिणीभ्यो पञ्चरूपाभ्यो, भायरिप भाजगं च धंसितं निमायाभ्यो, चञ्जाप्ये किर टविपुङ्गा  
 भायरिया, धंसिता पुच्छति—कहिं जेठज्यो !, पयाप देसधियाप गुणेरुति, तेणं पाथो विहाभ्यो, तेण चित्तिप—भगिणीपं  
 इहिं एरिसेमिचित्ती सीरकय चित्तप, पाथो सीरं चेच्छति, पाथो नद्धाभ्यो, भर्णति—सीहेण सारभ्यो, भायरिया भर्णति—न सो  
 सीरो पूरुभर्यो सो, सा जार पत्ताहे, आगपाथो धंसिओ, सेमं कुसकं पुच्छ, जहा सिरियभ्यो पञ्चरूपा भवमचठेप काउ  
 नभ्यो, महाधिरदेह य पुच्छिया तिरपपरा, देवयाप सीया, अज्जा ! सो अज्जयणानि भावणादिमुच्छीं आनिवाणि, एवं  
 धंसिता गयाओ, धिरपदियसे चरसकाउं चवडिओ, न चरिसंति, किं कारणं !, चवडयो, तेण जानियं, कज्जयणनेण,  
 भणइ, न पुणो काहामि, से भणति—न सुमं काहिसि, असे काहिति, पच्छा महया किलेसेण पडिक्कणा, इवदिक्कणि चचारि  
 पुपाणि पढाहि, मा पुण अणत्स दाहिसि, से चचारि सभ्यो धोच्छिण्णा, दसमत्स दो पच्छिमाणि यत्तुणि धोच्छिण्णाणि,

१ एपुक्कभरस च पाः लज्जति भगिनीभ्यः पञ्चरूपिणा, आचार्यभ्यः आगतं च धंसितं निमेषा लज्जाप्ये किर टविपुङ्गा  
 अचचारं !, एतस्यां दृक्कर्मिकायां पुनरपि तेन ता दद्याः तेन विनितं—असिमीयां कहिं एतं पाथीये विहरसं विजुमंति ता हिं परमणि ता भद्रा  
 भज्जिठ—मिहेव कर्मिणः आचार्यो भज्जिठ—न च हिंइ एपुक्कभर्यो सा तव पाठाहुवा अमाता धरिणं, सेमं कुसकं च इच्छति तथा धीयका म्मविरोममका  
 यं कयकायः महाधिरदह य दृष्टादीयकता, दृष्टवया र्थाया आरं ! हे जज्जयणे भाववाणिमुच्छीं आनीते, एवं धरिणत्ता एते द्वितीयद्विचरे चरसकाउं चवडिणः  
 सोरियाभिठ किं कारणं ? एपुक्का, तव शार्तं द्वावदीयेव भज्जिठ—न पुणः कहिं पामि से भज्जिठ—न एवं कहिं पामि असे कहिं पामि एवमप्य महता हेसेव  
 एरिपवदवत्ताः वरमिदवानि अज्जमि एवीणि एव मा पुणत्सदी यता ताहि चत्तामि एतो प्पुच्छिमाणि एतत्तुणि धोच्छिण्णाणि

नेच्छन्, भणन्—अहं नवरि किंचि वेसि, किं वेसि !, सयसहस्स, सो मणिगवमारब्धो, नेपाछविषय सापगो राया, जो वदि  
 जाह तस्स सयसहस्समोहं कथलं वेह, सो त गओ, विओ रायाणएण, एह, एगए चोरहिं वधो पद्धो, सवणो वासर-  
 सयसहस्सं एह, सो चोरसेणावर्ह जाणह, नयरं एज्जंत संजय पेच्छह, घोलीणो, पुणोवि वासर-सयसहस्सं गयं, तंण  
 सेणावएणा गंतूण पलोहओ, भणन्—अरिय कंवल्लो गणिपाए नेमि, मुक्को, गओ, वीसे दिओ, ताए चदणिपाए हूदो, तो  
 चारेह—मा विणासेहि, सा भणन्—तुमं एय सोयसि अप्पयं न सोयसि, तुमंपि एरिसो चेष दोहिसि, वयसाभिओ, छन्ना  
 जुद्धी, इच्छामिचि मिच्छामिवुक्क, गओ, पुणोवि आलोएसा विहरह, आयरिएण भणिय—एयं अहंनुक्करुअरकारणा  
 पूळमद्धो, पुणपरिच्चिया असाविपा य पूळमद्धेण अहियासिया य, इयाणिं सहुा सुमे अदिहदोसा पयियसि तपाचद्धो,  
 एय ते विहरसि, एयं सा गणिपा रहियस्स दिण्णा नदेण, पूळमद्धसामिणो अभिक्खण गुणगहण करेह, न सहा वययरह,

१ नेच्छन् नन्नादि—नदि परं किञ्चिद्वापि किं ददासि ? एतत्तत्त्वं स मार्तण्डमारुतः नपाकविषये सावको एताः ॥ तत्र नादि तर्को एतत्तत्त्वं  
 कथञ्चं ददाति स तं गतः दृष्टो राज्ञा ज्ञायति एकत्र चैरेः क्खान बल, सवणो एद्वि—एतत्तत्त्वं ज्ञायति स चौरसमापदिज्जोनाति नवरमावण्यं संवत्  
 पयसि, पञ्चादशः पुनरपि रहसि—सप्तसहस्रं गतं तेन सेनापतिना एतया प्रकीर्तितः नरादि—अस्मि कथञ्चो गणिपादे वयसिं मुक्को गतः तर्को एताः नरा  
 वचोपुदे विस्तः स चारयति—सा विनासाय सा भयति—एवमेव ओहले ज्ञायमाणं न ओहले एवमपीरयो भविष्यति देव वयणमत्तः कथया बुद्धिः इत्यादि-  
 तिस्रो सिन्ध्यावुक्कवमिदि गतः, पुनरपि आकोष्य विहरति ज्ञायार्थेण भविष्ये—पुनरपिदुक्कवुक्ककारका एतुक्कपद्धः पूर्वपरिचितः अमादिका ॥ एतुक्कपद्ध  
 भय्यादिता ॥ इत्यादी सादा लयाजहद्वयोया मार्तण्डेति अपाकटपाः एव ते विहरसि एव सा गणिपा रहियकाव एता अप्पन एतुक्कमद्धसामिणः ॥ भिन्नं  
 गुणमद्वयं करोति, न तन्नोपचरति



सेो तीए अण्णो विण्णाण दुरिखितकामो असोणवणियं नेह, भूमीगण्ण भंगगणियंही पाठिया, कंठपुंसे अण्णोण्यं साय  
 देण हस्यभ्भासं भाणोसा अट्ठवेंदेण छिन्ना गहिया, ठहयि न वूसइ, अणइ-किं सिक्खियस्स जुक्कं !, सा अणइ-येण्ण  
 ममंति, सिद्धरपणारासिंमि नखिया घूर्णेणं अगगयंमि य, सो आतट्ठो, सा अणइ-‘न जुक्कं तोदिय भंगवृत्तिया न जुक्कं  
 नखिव सिक्खियाए । तं जुक्कं तं च महाणुभायं, खं सो मुणी पमववणंमि जुक्को ॥ १ ॥ तीए सोवि सावओ कम्मो ।  
 तमि य काठे वारयरिसिभो जुक्कावो जाओ, संजयाइ तभो समुहसीरे अण्णिका पुणरवि पाठकिणुसे मिठिया, तेसिं  
 अण्णरस वदेसो अण्णरस संद एय सपातेंवेहिं एकारस अंगाणि संघारयाणि, विठ्ठिवाओ नत्ति, नेपाळवत्तिणीए य  
 भइयाइ अट्ठंति चोइसपुयी, तेसिं संयेण सपाइओ पठ्ठविओ दिठ्ठियायं वाएहिंसि, मंणुण निवेइयं संपकळं, से अण-  
 दि-‘जुक्काठनिमिचं महापाण न पविट्ठोमि, इयाणि पविट्ठो, तो ण जाइ वापण दावं, पठ्ठिणियवेहिं संघरस अन्नसायं, तेहिं

१ स उल्लासाय्यवो विद्यानं वरुणपुत्राणोपकोकवधिकं भवति क्षुभितोनाज्जित्तिही पाठिका वात्सल्येभ्योऽप्य काला वसेरानेवाभक्त्येव किरा गुरीला  
 स्यादि न तुष्यति भवति-किं सिद्धिस्तस जुक्कं ! सा भवति-यस्य मनसि विद्यायंकावी वरुणा सूचीनां ज्ञाने च वाचकिंताः सा मनसि-न जुक्कं  
 वीरिजायामाश्रित्या न जुक्कं सर्ववदने(शिथिलतायाः) । तुक्कं तस्य महापुत्रानं पाठ मुनिः प्रमादवत्ते अभिवा ॥ १ ॥ तथा सोऽपि भावका कृताः । एतिसं  
 कास इत्युपवर्गको जुक्कावो जातः, संपत्ताधिकः तदा समुद्रतीरे कालापुत्रपी पसकिणुसे मिठिकाः तेषामनवज्जोरेकोऽप्यत्र अण्णमेव संघातवन्तिरेअरणा-  
 दाभि संपाठिताभि, दूरितारो नाति मेवाकएण न पदवदवत्तिथिठ्ठिठ्ठि चतुर्दशपूर्ववताः तेषां सहेव संघसका प्रेयसो एतितार्थं वाचयेहि, यथा विवेचिं  
 संपकाय, स भवति-‘जुक्काठनिमिचं महापाण न पविट्ठोमि इत्यादी प्रविष्टवतो न वाच्यो वार्तु समर्थः प्रविष्टिबुद्धिः संघातवत्तवत्,

नेच्छद्, भणद्—अद् नवरि किञ्चिद् दोसे, किं दोसे ? सयसहस्स, सो माग्गेवमारब्धा, नपाळावसए सावणा राया, जा ताह  
 आह तस्स सयसहस्समोहं कथस देह, सो तं गओ, दिओ रायाणएण, एह, एतरथ चोरहिं पयो पओ, सवणो पासद्-  
 सयसहस्सं एह, सो चोरसेणावर्ह जाणह, नवरं एज्जत संजय पेच्छद्, बोलीणो, गुणोपि पासद्—सयसदरस गयं, तण  
 सेणावद्दणा गंण पळोद्दओ, भणद्—अपि कंवल्लो गणियाए नेमि, मुक्को, गओ, वीसे दिओ, ताए चदणियाए हूदो, सो  
 पारेह—मा विणासेहि, सा भणद्—सुमं एय सोयसि अप्पयं न सोयसि, सुमंयि एरिसो च्छेद दोहिंसि, वयसामिओ, छक्का  
 बुद्धी, इच्छामिंसि निच्छामिदुक्कहं, गओ, गुणोपि आलोएसा विहरद्, आयरिएण भणियं—एवं अद्दुक्करदुक्करकारणा  
 पूळमद्दो, पुषपरिचिया असायिया य पूळमद्देण अहियासिया य, इयाणि सद्दा तुमे अदिहदोसा पथियसि वपाळदो,  
 एवं ते विहरंसि, एवं सा गणिया रहियस्स दिण्णा नंदेण, पूळमद्दसामिणो अभिक्खण गुणगद्दण करेह, न तद्दा वयपरद्,

१ नेच्छति भवति—एदि परं किञ्चिद्दोसो किं दोसो ? एतसहस्रं स माग्गेगुमारब्धः मागको राया यः तत्र नाति ठस्ये एतसहस्रमुत्स  
 कम्बक इत्यादि स तं गतः इत्यो राया भावाति एकत्र नातिः एतत्तत्र एतसहस्रमावाति स चौरसवपातिर्मनाति नवरमायाभ्यं संवत्  
 पश्यति एतादृशा दुस्तरसि रयति—सतसहस्रं गतं तेन सेनापतिना एतत्तत्र प्रकोपिता अभति—अथि कम्बको गतिकार्ये नवामि मुक्को गतः तस्यं इतः तत्रा  
 बर्जोपदे शिषः स वारयति—मा विनायाय, सा भवति—एवमेव कोवसे ज्ञात्मानं न कोवसे एतत्तत्परेसो यदिभ्यसि वैरं वयसायाः कथा मुदिः इच्छामी  
 तिमि मिथ्यादुक्कवसिति गतः पुनरपि जाओप्य विहरति जाओर्द्वेन अविर्द—एवमादिदुक्करदुक्करकारणं एतद्वयम्: पूर्वपरिचिता भवति क्वा च एतद्वयमद्द  
 वपादिता च इत्यादी भावा एतत्तत्तद्वयोपा मार्थितेति तयाकथयः एव ते विहरंसि एव सा गमिमा रथिकाय इवा नन्दन एतद्वयमद्दस्यामिमाऽभिक्ख  
 गुणमाहव करोति, न वयोपवराति

उवा ॥ रात्रिपथरात्रिपथ ॥ आगमाद्य, मण्ड-क कराम १, वज्राण परं ठाणं वीहि, विष्णो, रसिं सभाकंकारविद्रुसिया  
 आगया, चाहुयं पक्या, सो मदरो इव निष्कपो न सकृप लोहेतं, ताहे धर्मं पडिसुणह, साधिया जाया, मण्ड-अइ  
 रायावसेणं अण्णेण सम पसेया इयरहा धंभयारिणिपावयं सा निणह, साहे सीहगुहाभो आगभो यत्तादि मासे ववपासं  
 काकण, आयरिएहि ईसिसि अमुद्धिओ, भणियं-सागयं पुकरकारगसससि १, एवं सप्पहसो कूबफउहचोवि, पूउमइ  
 सामीधि वरयेय गणियापरे भिक्ख गेणह, सोधि चवमासेसु पुण्येसु आगभो, आयरिया संममेण अउमुद्धिआ, भणियं-  
 सागयं से अइहुक्क २ कारगसि १, से भणति विणिणधि-मेक्कइ आयरिया रागं वहंसि अमअगुचोचि, विविधवरिसारये  
 सीहगुहासमओ गणियायदं वव्हासि अभिगहं गेणह, आयरिया वववसा, वारिओ, अणहिमुणंसो गओ, वसही मणिगया,  
 दिआ, सा समयेण वराखियसरीरा धिभूसिया अयिभूसियाधि, धम्मं सुणेह, वीसे सरीरे सो अक्खोववओ, ओमासह, सा

१. एता परीपहपागिअ आगत इति भवति-कि ओमि १ वधावे पुहे अगं देहि एव रात्री सर्वाकहाविभूतिया आगया आहु मण्डया धं भेकीव  
 विष्णकम्पो न रात्रये ओमिदं वरा धम धुणोमि आदिआ आहा मयसि-एदि रात्रयसेवाभवेव सर्वं वसामि इतरथा मण्डादिनीमत सा गृह्णाति इरा  
 सिहगुहाया आगतमगुरो सासागुववासं कृत्वा आचार्योपदिष्टि अस्तुमियता मसिदं-समागं हुक्ककारकसेति १ एव सर्वधिकसत्तः कृतककसपुत्रेभ्य  
 एषूकसपुत्रेभ्य कर्मा सर्वत्र यत्किमगुहे भिक्षां गृह्णाति सोऽपि अगुमोक्षा पूर्वायमागता आचार्या सर्वमेवोसिबताः यत्किदं-समागं तेऽपिपुष्करपुष्करकार  
 कससि १ ते मयसिध पयोभ्य-एत्यद आचार्या एतं अहमि अनामगुव इति द्वितीयवर्षायावे सिहगुहावपत्रो यत्किमगुदं मजामीने अभिपद गृह्णाति  
 आचार्या वपगुक्ताः मार्ततोऽपसिभूतवद् मया वसतिमार्तिता, एता सा सभावेवोवाहरीता विपुषिता अधिभूषितायसि सर्वं धुणोमि वत्ताः अरीरे  
 सोऽस्तुपपह, पावते, सा

आओ, एय सुतं पापदि, तीए भणिणी भणिया-तुमं मच्चिया एस अमत्तओ अं वा स वा भणिदिचि, एयंयि पापदि, रा  
 पपाइया, सो नेच्छइ, अळाहि ममं तुमे, ताहे सो तीए अधिओग मागतो चएप्पमं सुत पियइ, छोगो आणाइ रीरति,  
 कोसाए सिरियस्स कहिय, राया सिरियं भणइ-एरिसो मम द्विओ तव पियाडसी, सिरिमो भणइ-सचं सामी !, एएण  
 मच्चवाळएण एयं अमह कयं, राया भणइ-किं मज्झ पियइ ?, पियइ, कह !, सो पेच्छइ, सो रावलं गओ, तेणुप्पल भापियं  
 मणुत्सहरथे दिण्ण, एयं घररइस्स दिज्जाहि, इमाणि अणोसिं, सो अरथाणीए पहाइओ, त घररइरस दिअ, तणुत्सियिय,  
 भिंणारेण आगयं निच्छुदं, चान्दवेज्जेण पायच्छिंसं से सच तवयं पेज्जावियो, मओ । पूळभइसामीयि सभूययिजयाण  
 सगासे घोराकार तव करेइ, विहरंसो पाटसिपुत्तमागओ, तिण्णि अणगारा अभिगाहं गिण्हवि-एणो सीइगुहाए, त  
 पेच्छंतो सीहो चवसंतो, अण्णो सप्पमसहीए, सोचि दिहीयिसो चवसंतो, अण्णो पूयपलए, पूळभइो कोसाए परं, ता

१ काठः एय सुता पापय तथा भणिणी अभिता-त्वं मजा पयोज्जमो यहा यहा मच्चियिषि एवमपि पापय सा मर्यादता स मर्यादित भक्तमन त्वरं  
 यहा स वक्ता अभियोगं युगपन्मत्स्यमद्वयमां सुतां पिवति कोको जालाति-भीरमिति कोशाया श्रीयन्नाय कथित राजा श्रीयक मर्यादित-ईदयो मम दिव्यर  
 पिताऽस्सीत् मयिको अयति-अत्र स्थापितः । पुरेव युवनीयपादिना पुरवकाकं कृत राजा मर्यादित कि मयं पिवति ? निर्वर्तित कर्त्तुं ? तर्हि मर्यादय स  
 राजकुल गतः तेनोत्पन्न भाषित मनुष्यद्वयो इव पुरव वरद्वयो इया इमान्यभ्येय्य स आत्माभ्यां मर्यादितः एव परद्वय इव तनामात्र ककरोत्तमा  
 तमुद्गीर्षं चागुर्वेतेन मायमिव स तस मनुः पाथितः सुतः । एतूळभइसामीयि संयुक्तिमिजयाणां सकासं याराकारं तयः कर्त्तुं विहाए पाटसिपुत्तमागत  
 जयोअगारा अभिगाहं गृह्णित-पूकः सिइगुहायां तं मेळमाणः सिइ अयनामता, अन्धः सर्ववसंतो सोन्धि दहिदिव वरपान्तः भन्धः इतइकइ (पूळभइः  
 कोशाया गुरे सा

शुद्धा परीसहपरान्निभो आगन्धोचि, भणइ—किं करेसि !, वज्जण धरे ठाणं देहि, विण्णो, रासिं सघासंकारविभूत्तिया  
 आगया, आहुयं पक्कया, सो मयरो इव निक्कयो न सक्कए खोहेवं, छाहे वस्मं पडिसुणइ, साधिया आया, भणइ—अइ  
 रायावसेणं अण्णेण समं यसेअइ इयरइ। धंमयारिणिपायधं सा गिणइ, ताहे सीहगुहाओ आगओ वयारि मासे उववासं  
 काकण, आयरिपइ ईसिचि अमुद्धिओ, अणियं—सागयं पुक्ककारगस्ससि !, एव सण्णइओ कुवक्कइओवि, पूळभइ  
 सानीवि सस्येव गणिपापरे भिक्ख गेणइ, सोवि चवमासेसु पुण्णेसु आगओ, आयरिया संमणेण अक्कुद्धिया, भणियं—  
 सागय ते अइपुक्क २ कारगसि !, ते भणंसि सिणिणवि—पेक्कइ आयरिया रागं वडंति अमक्कपुण्णोवि, विविक्कविसारचं  
 सीहगुहाखमओ गणिपापरं वज्जानि अभिगहं गेणइ, आयरिया उववचा, वारिओ, अपविहसुण्णो गओ, वसही मणिगया,  
 दिआ, सा सभायेण चराजियसरीरा यिभूत्तिया आयिभूत्तियावि, वस्मं सुणोइ, तीसे सरीरे सो अक्कमोववओ, ओमासइ, सा

१ शुद्धा परीसहपरान्निभ आगत इति भणति—किं करोमि ? अघाये पुरे ज्ञानं देहि, एवं तावो सर्वोद्धाराविधिरा आगता आइ मक्कजा स मेकरीव  
 निक्कमयो न सक्कवते सोमोदि, छाहा वरंणं सुणोमि आल्लिका आता भणति—यदि रात्रवसेणान्नेव वरं वसामि इतरया मक्कयदिभीमवं सा पुरइति इहा  
 सिहगुहाया आगतमगुरो मासापुपवासं कुत्वा आचार्येतिपदिमि अमुद्धियताः भणितं—सागतं पुक्ककारकस्सेमि ! एवं सर्वेभिकससः। अण्णमपुपमेमि  
 एपुक्कमपुपमेमि ज्ञानीं वडैव गत्तिकापुरे भिक्षां पुरइति सोअसि ज्ञानीणां पूर्वाभासागताः आचार्याः संमनेवोत्थिताः भणितं—सागतं देवदिवुक्करुं अममर  
 वक्कसि ! ते भणन्ति धयोअसि—परवत आचार्यो रामं वडन्ति अमान्जुव इति विदीयवर्णराणे सिहगुहासपक्को भणिकपुपइ मज्झमीसि आनिमइ पुरइति  
 आचार्यो उपपुज्याः वारितोअसिपुपइ, एताः वसविमोत्तिताः, वृथा, सा ज्ञानायेवोद्धारणीया विधिरा आधिरुपिगामि वस्मं सुणोमि वज्जण। सरीरे  
 सोअपुपवज्ज, वाचते, सा

देरिसेइ, ओहामिओ गओ, पुणोवि छिदाणि मगइ सगढालस्स पएण सव खोदियंति, अणया सिरिपस्स पियादो, रण्णो  
 अणुओगो सज्जिअइ, घरठण्णा तस्स दासी ओलनिया, सीए कहियं-रण्णो भत्तं सज्जिअइ आओगो य, ताए तण  
 खितियं-एयं छिडु, दिभकधाणि मोयगे दाकण इमं पादेइ-‘रायननु नपि ज्ञाणइ अ सगढालो फादिइ । रायनंद मारसा  
 सो सिरिय रज्जे ठवेद्विचि ॥ १ ॥’ ताइ पढंति, रायाए सुय, गयेसामि, त विट्ठ, कुवियो राया, जओ जओ सगढालो  
 पाएसु पढइ सओ तओ पराहुओ ठाइ, सगढालो घर गओ, सिरिओ नदस्स पढिहारो, त भणइ-किमइ मरामि सपा  
 णिवि मरंतु?, सुम ममं रण्णो पायवदियं मारेदि, सो कखे ठएइ, सगढालो भणइ-भहं तालदद विस खामि, पायपदिओ  
 य पमओ, सुम ममं पायवदियं मारेद्विसि, तेण पढिस्सुय, ताहे मारिओ, राया चट्ठिओ, हाइ। अरज्जं?, सिरियासि,  
 भणइ-ओ तुअ पावो सो अन्हवि पावो, सक्कारिओ सिरियाओ, भणिओ, कुमारामखसण पढिवज्जसु, सो भणइ-ममं अट्ठो

१ दुसंधवि अरज्जादितो गताः पुनरपि विज्जाणि मार्गयसि शुक्लाकल पदेन एवं विवाधिरमिषि अन्यथा भीषकल विवादः राणा दिवागः सगभव  
 करद्विवाग ठल दासी बदकमिता ताया किकिर्त-रण्णो भक्त सज्जयते आयोगस्य ताया देव विधितं-एवए विमं विवमाइ सोरकान् दादेतए पम्भवि-न११।  
 राजा भैव ज्ञानादि एए दाकदाकः करिपयसि। अन्यराव मारयिता तातः भीषक रातरे ख्यापयिष्यतांति ते पढन्ति एसा मुत्तं गयेपजामि तदुं कुदिता राजा  
 पतो यतः सक्काकापादयोः पठति तत्कतः पठासुक्किपति सक्काको गृह गत भीषको भयम्ब मरीरता। त भणति-दिमइ द्विये सवभ्य पिबयतां ?  
 तं मां रायः पद्मोः पठित मारय स कपी ख्यापति सक्काको भयति-भाइ ताकपुर सिंयं ज्ञादादि पाएयठित मयुतः तं मां पारवदितं मारयः एव मदिमुत्त  
 तया मारितः राजोपिठा-हा हा अकार्यं भीषक इति मयति-वर वयेव पायः सोअसाकमपि पायः साहुतः भीषक-भविता-कुमारामाखत्तं मन्त्रियत्त म  
 मबदि-मम जेहे

भाया पूछमहो नारसमं धरिसं गणिथाए परं पथिद्वस्त, सो सदाविभो भणइ-विसेमि, सो भणइ-मसोगवणिथाए विसेहि,  
 सो तरय भाइयभो विसेइ-केरिसया भोगा रज्जवक्खिस्ताण १, जुणरवि णरयं व्याव होहितिचि, एते पामेरिसया भोगा  
 तभो पंचमुद्धियं छोयं काकण कववरयणं छिदिचा रयहरणं करेसा एण्णो पासमागभो भस्सेण धव्वाहि एवं चितियं, राया  
 भणइ-सुचिसियं, निगाभो, राया भणइ-वेच्छइ कववरत्तेण गणिथापरं पविसइ नविचि, आगासतळगभो वेच्छइ, जहा  
 मतकेवरत्तस ज्जणो भवसरइ मुहाणि ए ठएइ, सो भगवं छहेव साइ, राया भणइ-निदिण्णकामभोगो भगवति, सिरिभो  
 ठविभो, सो समूयविवयत्तस पासं पवइभो, सिरियभोचि किर भाइनेहेण कोसाए गणिथाए परं अद्धियइ, सा व समुरसा  
 पूछमहे अय्यं समुत्तस नेच्छइ, तीसे कोसाए सह्रिया अगिणी तवकोसा, तीए सह वरकरई चिदइ, सो सिरिभो वत्तस  
 छिदाणि मगइ, नावज्जायाए मूछे भणइ-एयरस निमिसेण अम्हे पित्तमरणं पसा, भाइविभोगं व पसा, जुज्ज विवोभो

१ आता एपूछमइ: हाएयं वय एमिकगुइ मल्लिअ ए वधिवो अय्यि-विस्सयासि ए मज्जति-मज्जोकरविक्रयं विज्जव ए वज्जानियवविज्जवति  
 कीटमा भोगा रायवप्पविक्रयानां १ जुजरवि मरकं वासभं मल्लिवतीति एते वासेइया भोगान्णव पव्वमुत्तिहं कोवं कुरवा अम्मकवं जिया रावोइएव कुरवा राज्जा  
 पार्कमागस अम्मं वर्यसेव विभित्तं राजा मज्जति-सुविठितं विर्यतो राजा मज्जति-एवमसि करेव एमिकगुइ मल्लिअवोहं मल्लिअति वसेति आकावत्तच्छव: देवते  
 वया मूवकडेवराए जवोअपसराति मुज्जानि व ज्जगपथि ए मगवत्तं ठवेव याति राजा मज्जति-मिदिअम्ममभोगो मगवमिति भीयका ज्जापिठा: ए संपूति-  
 विववस पार्थ ममजित: भीयकोमसि मिक अम्लवेहेव कोसाया मुरमाववसि सा आगुराए एपूछमहेअय्यं समुत्तस वेच्छति तज्जा: कोसाया अय्यी यमि  
 म्मुवकोया तथा सह वरकीविक्रयति ए भीयकज्ज किरासि मर्मपथि भाएवावाया मूछे मज्जति-एयरस निमिसेव अक्काके पित्ता मरयं माइ: भाएविभोयं  
 व (वय) मासा: एर विवोयो

पंढ्रिनियसो, इयरोवि यिलकसो नियसो पुच्छिओ लज्जर भकिखवं, पलयइ पडुगोसि अक्खायं, नद्या, नदीवि कप्पण भणिओ—सण्णाहु, पच्छा आसहरथी य गहिया, पुणोवि ठविओ तीमि ठाणे, सो य निओगाभसो विणासिमो, सरस कप्प गस्स यसो पंदयंसेण समं अणुवसर, नयमए नदे कप्पगयसपसूओ सगढालो, पूलभदो से पुसो सिरिओय, सच पीयरी य जक्खा जक्खदिखा भूया भूयदिण्णा सेणा येणा रेणा, इओ य घररुइ विज्जाइओ नद अट्ठसण सिळोगाणमोत्तगइ, सो राया सुट्ठो सगढालमुह पलोएइ, सो मिच्छवंसिकाव न पचसेइ, तेण भज्जा से ओलनिगया, पुच्छिओ भणइ—भत्ता ते ण पससर, तीए भणिय—अह पसंसावेमि, तओ सो तीए भणिओ, पच्छा भणइ—किह मिच्छस पससामिसि !, एयं दिवसे २ महिलाए करणिं कारिओ भण्णया भणइ—सुभासियंति, साहे दीणाराण अट्ठसय दिणं, पच्छा दिणे २ पदिण्णा, सगढालो विठेइ—निद्धिओ रायकोसोसि, नंदं भणइ—मट्टारगा ! किं सुक्खं एयस्स दइ !, सुक्खं पससिओसि, भणइ—अदं

१ मांठिनिरुत्ता, इवरोवि विक्खओ विरुत्ता; एवो कळते आक्खणं, प्रकणति पडुइ इति आक्खणं नद्या, मग्गेओ कप्पणं भणिओ—सङ्गाय वभाइका इतिअव पुरीया; पुनरपि क्खाधिरस्येयान् स्थाने स व विओगाभासो विवासिका तस कप्पकस पंखो अक्खणं सममनुवते नयमे ववइ कप्पकयस प्रसूतः क्खडाकः स्फुलभप्रकल्ल पुष्पः मीयकअ तस बुद्धिराव यथा यथेएवा भूता भूतएवा सेणा धेणा रेखा इतल वरसिअरिअग्गेयो अक्खणं वट्ठे कायां सेवते स राजा पुष्पः शाब्दाकमुक्क प्रकोकपति स मिक्खात्तमिथिअत्ता न प्रससति तेव भावोत्तलारादा एवो मय्ठि—भत्ता एव न प्रससति तथा मय्ठि—अह प्रससयामि तवः स तथा भणिका एवाए मय्ठि—कयं मिक्खणं प्रससामि ! इति पुन दिवसे मय्ठिकया भावं ( प्रसंसिअत्ता ) मांदि एवमपि भणति—सुभासियंति तथा दीणाराणामट्ठसय वटं पळादिने दिने मग्गेगुमारकयः क्खडाकविक्खयति—मिद्धिओ राजक्खेस दंथे ववइ भणति—अह रक्का ! किं पुप्पमेवयं वट्ठ !, एवया प्रकसित इति मय्ठि—अह



पंसंसासि खोदयकृन्नाणि अनन्ताणि पदह, राया भणह-कई खोदयकृन्नाणि !, सगहाळो भणह-सम पूयाभोवि पदवि,  
 किंसंग पुण अण्णो खोगो !, अक्सा एंगेपि सुखं निण्हह विविद्या दोहि ठरया सिहि चाराहि, ताओ अण्णया पविसंति  
 अंतचरं, अथणियंसारिपाभो ठवियाभो, वरकरई आगओ शुणह, पच्छा अक्खाए पढियं वितियाए दोण्णि ठरयाए विण्णि  
 चारा सुखं पढियं एवं सत्तहिहि, रायाए पवियं, वरकरईस्स दाणं चारियं, पच्छा सो ते दीणारे रसिं गंगाज्जले वंते ठवेह,  
 ताह दिवसओ शुणह गंगं, पच्छा पाएण आहणह, गगा देवसि एवं खोगो भणह, कालंठरेण रायाए सुखं, सगहाळस्स  
 कहेह-उत्तस्स किर गंगा देह, सगहाळो भणह-अह मए गए देह सो देह, कसं वज्जानि, तेण पदहगो पुरितो पेसिओ  
 विगाळे पदज्जसं अक्कसु अ वरकरई ठवेह त आणेज्जासि, गएण आणिया पोह्लिया सगहाळस्स विण्णा, गोसे नंदोसि गयो,  
 पदहह शुणंठ, एए निक्कुओ, हस्सेहि पाएहि य अंतं भगगह, नरिय, विलक्खो आओ, ताह सगहाळो पोह्लियं रक्खो

१ प्रसंसासि खोदयकृन्नाणि अन्तर्जातानि अन्तर्जातानि पदवि राया भणति-कई खोदयकृन्नाणि ! अक्कयाको भणति-सम पूयाभोवि पदवि  
 कोकः ! यस्मा पुरुषः सुखं पुरुषसि द्वितीया द्विजः। सुदीया मिः ता अक्खया प्रवेसवति अक्खयापुं वदन्निक्कान्तरितः। खासिताः वरदीयापाठा वीसि  
 ययाए अक्खया पुरुषः द्वितीयया द्विजस्तत्पुत्रीया मिः सुखं पद्विं एवं सतिभिरसि राया भणति-व वरकरदे दाणं चारितं वज्जस्त दान् दीक्कयाह् रानी पद-  
 ज्जले एतन्ने अक्खयापदि यया विवसे वीसि गह्वां यज्जात्पावेनाद्विज पाह्वा द्वादीसेवं कोको भणति अक्कान्तरेण राया सुखं अक्कयाकन्त अक्खयति-ददी किज गहा  
 द्वादि सक्कयाको भणति-यसिं मदि गते द्वादि दाहिं द्वादि अक्खे अक्खयाः तेव भणतिता गुक्का मेसितो विक्काले मक्कज विह वदरदीधः अक्खयति ययापयेः  
 यवेयानीवा पोह्लिका अक्कयाकाय द्वाता मत्तुपवि अक्खोअयि गहः मेक्कते सुवन्त सुत्ता भग्वा ह्वात्तये पाह्वात्तये अक्खं यानीवति चारि, विक्कओ जाता  
 तया अक्कयाका पोह्लिका राये

पङ्क्तिनियसो, इयरोवि विलक्सो नियसो पुच्छिओ लज्जा अकिस्सवं, पलघइ वहुगोसि अक्खाय, नट्ठा, नंदोवि कप्पण भणिओ—सण्णाइ, पच्छा आसइरयी य गइया, पुणोवि ठविओ तीमि ठाणे, सो य निबोगामसो विणासिओ, ठस्स कप्प गस्स वसो पांदवंसेण समं अनुवत्तइ, नवमए नदे कप्पगयसपसूओ सगढाओ, भूलभइो से पुसो सिरिओ य, सस भीयरो य अक्खा जक्खदिआ भूया भूयदिण्णा सेणा वेणा रेणा, इओ य वरकइ पिज्जाइओ नद अट्ठसएण सिउगोणमोलगइ, सो राया तुठो सगढाउमुहं पलोएइ, सो मिच्छवंतिकाव न पसंसेइ, तेण भज्जा से ओलनिगया, पुच्छिओ भणइ—भवा ते ण पसंत्तइ, तीए भणिदं—अइ पसंसावेमि, तओ सो तीए भणिओ, पच्छा भणइ—किइ मिच्छव पसंसासिचि !, एयं दिवसे २ महिहाए करणिं कारिओ अणया भणइ—सुमासिदंति, ताहे दीणाराण अट्ठसयं दिणं, पच्छा दिणे २ पदिज्जा, सगढाओ चित्तेइ—निद्धिओ रायकोसोचि, नेए भणइ—अट्ठारणा ! किं तुन्ने एयस्स इइ !, तुन्ने पसंसिओसि, भणइ—अट्ठ

१ प्रथिमिहवाः इतरोऽपि विज्जसो विहवा एते कम्मते आक्खाय प्रवर्णति वट्ठक इति भावयतं वटाः अन्तोऽपि ककरकव भजितः—सज्जव पमाइवा इच्छिअए पुहीयाः जुजरपि ज्जापिठयकिअ ज्जाणे स ७ विवोगामाओ विवासिठः सस कक्खक ससो अक्खंतेन सससज्जवते नवमे वट्ठ ककरकव प्रसूतः सज्जटाः सपूजमयकस पुत्रः भीयकस सस बुद्धिरस यथा वत्तइया भूता भूतइया चेवा विवा रेवा इतस वरदधिधेयवादीयो अक्खससठव भू कानां सेवते स रावा एइः शाक्याकमुज प्रकोकपति स भिज्जावसिठिज्जा य प्रससर्त तेण भायोवकारात्ता एते भवति—भवत्ता वव न प्रससर्त तथा मभियं—अइ प्रवसपासि वतः स ववा मभियः पमाए भवति—कयं भिज्जाव प्रसससि ! इति एवं विवसे विवसे मदिज्जा वाच ( प्रवससिचि ! ) माहि तोअएवा भजति—सुमापितमिठि तथा दीणाराणमसठव इयं पमाहिने भिने प्रवगुमाअयः शाक्याकविज्जवति—मिठितो राजवेस इति वट्ठ भवति—अट्ठारणा ! किं पुपसेवसे वट्ठ !, एववा प्रवसिठ इति भवति—अइ

सो जेमेव, ताणि भणंति—अग्रे असमस्याणि, मत्तं पञ्चकलागो, पञ्चकलायं, गणाणि देवलोकां, कप्पगो जेमेव, पञ्चतरा  
तीहि य सुय जहा कप्पगो विणासिओ, जामो गेण्हामोचि, आगापुहि पावलिपुत्तं रोहिणं, नवो चित्तेह—अह कप्पगो होतो  
न एवं अभिदधतो, पुच्छिषा चारवाळा—अरिष सख कोह मत्तं पच्छिक्खह !, ओ सत्स दासो सोचि महामतिचि, सेहि  
भणिय—अस्सि, ताहे आसंद्दएण चक्खिवा नीणिओ, पिण्डकिओ विओहिं सज्जुकिओ आउसे कारिय पागारे दरिसिओ  
कप्पगो, दरिसिओ कप्पगोचि से भीया दंढा सासंकिया जया, नव परिहीण पाऊण सुहुसरं अमिदधति, ताहे छेहो  
विसस्सिओ, ओ सुअ सवेसिं अमिमओ सो एव सो संधी वा अं तुअसे भणिहिह तं करोहिचि, सेहि दूओ विसस्सिओ,  
कप्पओ विनिगओ, नवीनअसे मिलिया, कप्पगो नाघए हरपसणगहिं छवह, चक्खुकळावत्स हेढा चवरिं च किअत्स मअसे  
किं होहि, दहिज्जहत्स हेढा चवरिं च किअत्स भसचि पडियत्स किं होहिहचि !, एवं भणिआ तं पयाहिणं करोतो

१ स जेमाण ते भगविट्—अयमसमयोः पञ्च महाकलायाः पञ्चकलायं गता देवलोकां कल्पये जेमाणि महापरात्मनिव सुत जया कल्पको विवाहितः  
जामो पुच्छिष इति ज्ञातव्यो पापकिपुत्र इह, कल्पविस्तपति—वर्षे कल्पकोऽयमप्यवधः देवमन्त्रोत्पत्तं वृथा हारपाळा—अस्ति तत्र कश्चिद ! अत्र मयोक्कसि !  
चत्थस दासः सोऽपि महामन्त्रीसि पैयविठं—अस्ति सदाऽऽजन्तुकेयोसिक्ख विज्जाधितः पुच्छतो देवैः ( पीठिसाधितः ) पटी जसे माजारे वरित्तः  
कल्पका वरित्तः सद् कल्पक इति ते भीयाः पुत्राः सायाहा जाराः जन्म परिहीणं मात्ता सुपुत्राणामिदमस्ति तदा जेओ सिद्धः—ओ पुज्यात्तं सर्वेयामिमस्यः  
स जयाणं तदाः सन्निव वा पपूत्तं मणिप्य तदा करिज्याम इति धैर्यतो सिद्धाः कल्पको विविर्वातः, नवीनपदे भिक्षियाः कल्पये जामि हत्तसंजामिदधति इहु  
कलावसायकपुपरि च पिडवत् मअसे किं भवति ? दहिज्जहत्सावधपुपरि च पिडवत् वसतिहि पडितत्त किं भवतीति एवं मस्सिआ ताए मद्रकिमां इदं

भणइ—मक्षाराय ! ज भणसि त करेमि, रयगसेणी आगया, रायाए समं लह्येत दइण नह्य, कुमारामद्यो ठिओ, एय सय रज्ज तदायस ठियं, पुसाधि से जाया, सीसे अण्णार्णं च ईसरभूयाणं, अण्णया कप्पगुप्पस्स पियाहो, तेण पितियं—सते तरस्स रण्णो भस दायवं, आहरणाणि रण्णो निजोगो धदिज्जइ, ओ नंदेण कुमारामद्यो केदिओ सो सस्स छिइणि मगइ, कप्पगदासी द्वाणसाणसगाहिया कया, ओ ए तव सामिस्स दिवसोदंतो त कहेइ दिये २, सीए पडियणं, अण्णया भणइ—रण्णो निजोगो धदिज्जइ, पुषामद्यो य ओ केदिओ तेण छिइ लवं, रायाए पाययदिओ पिण्णवेइ—अइयि अमइ तुमइ अविगणिया तहायि तुमं संतिगाणि सिरयाणि धरति अज्जवि शेण अयस्स कहेयवं अइ किं कप्पओ तुमं अदियं चित्तिन्तो पुष रज्जे ठविठकामो, रज्जनिजोगो सज्जिअइ, पेसविया रायपुरिसा, सज्जुओ कूवे छुटो, कोइयोदणसरया पाणिपगलंतिया य दिज्जइ, सवं साहे सो भणइ—एएण सघेहिंवि मारियव, ओ ण एगो जुल्लभारयं करेइ धेरनिज्जायण य

१ भणसि—मक्षाराय ! वज्जमसि तव करोमि रज्जकोभिरागता राक्का सममुल्लापयसइ इहा अहा इमासासल्लिखतः पूर सव रागव तरावस लिखत पुसा अयि तव जाताः तस्मा अन्त्याद्यो वेधरदुहिदल्लाल, अण्णदा कप्पकपुत्रकं शियाहो ( जातः ) तेय विन्धित—साभ्यःपुरस राक्को भक रागवं आभरकानि राक्को निर्वर्ततो यज्जते वो कप्पेन कुमारामद्योः स्वेदिताः स तस किमादि मार्गयसि कप्पकराव्यो दान्यमानसंगुटीयाः कृताः यम तदस्सभिन्नो रिषतोइत्येव कययोः दिवा भिवा तथा प्रतिपवं अण्णया भणति—राक्को पियोगो यज्जते पुर्णमासल्लालः स्वेदितायेव छिइ कथ रागे पाएपठितो विजययति—इयदि ववं पुष्पाकम्मदिमतल्लवायि पुष्पसत्तकानि दिवपूनि दिपन्तेअयायि येनावर कययितव्यं यथा किं कप्पको पुष्पाकम्मदिठ लिखयन् पुष रागव स्यादियुक्तामः रागयनिर्योगः प्रगुणीकियते प्रेषिता राक्कपुण्याः सज्जुमभ्यः कूवे लिताः कोइवीइत्येवेलिका पानीयस पाळमिक्का ( गती ) य दीयते सर्वान् तथा स भयति—पुसेव सर्वेअयि मारयितव्याः एतेऽस्माकमेकं कुलोदार् करोति धैरनियतव च

कल्पगत्स पोच्छाह धोवसि नवसि !, भणह—बोवामि, छाहे राधाए भणिओ—अह एछाहे अप्पेह सो मा विज्जासिचि, भण्णाया इदमहे से भणह भज्जा—से समयेठाह पोच्छाह रयाधिवि, सो नेच्छह, सा अभिक्खणं पहेह, तेण पडिक्खणं, तेण पीयाणि रयागहरं, सो भणह—अहं विणा भोत्तेण रयामि, सो छणदियसे पयतिगओ, अज्जाहिज्जोसि काळं हरह, सो छणो बोकीणो, वहरि न देह, बीए वरिसे न विण्णाणि, सइएवि वरिसे विधे र मगाह न देह, तस्स रोसो जाओ, भणह—कप्पगो न होमि अह ठव कहिरेण न रयामि, अमि पयिसामि, अण्णदियसे गओ छुरियं देवूय, सो रवओ भव्वं भणह—भाणेहिचि, दिण्णाणि, तस्स पोहं कालिछा कहिरेण रयाणि, रयागभज्जा भणह—राधाए एसो वारिओ किमेएण भवरह !, कप्पस्स जिंता जाया—एस रण्णो भाया, तया मए कुमाराभज्जसणं नेच्छियंति, अह पव्वओ होवो किमेयं होयंति, वज्जामि सुवं मा गोहेहि नेज्जीहामिचि गओ रायकुल, राया वडिओ, भणह—सदिसह किं करोमि !, तं मम चित्तं चित्तियंति, सो

१ कप्पकस वज्जामि मयाकपयि ववेति ! भणति—मयाकसामि वहा राजा मसिका—मयपुत्राभ्यंति वदिं मा वहा इति वज्जदेवमहे तं मज्झि मार्या—मम मम एमि वज्जामि रज्जकल ए वेणुमि साज्जीएवं ककदवति तेव मसिकवं तेव बीरामि रज्जकपुहं, ए मज्झति—अहं विना सुत्थेव रयामि ए वज्ज-दिवसे ममामिंता मय हः ( का ) इति मयाकपुहंते ए वज्जो वज्जिज्जाला ववसि न वहाति विणीये वरं न वहाति पृथिवीमि वरं विवहे २ मारोवसि न वहाति वस रोपो जाता भज्जति—कपको न ममामि वदिं ठव कहिरेण न रयामि अमि पयिसामि अज्जदियसे गओ छुरियं पृथीया ए रज्जो मार्या मज्झति—भावयेमि वज्जामि वकोएवं पारमिणा कहिरेण रयामि रज्जभावां मज्झि—राधेय जामिका किमेयेनपराहं, ककस विज्जा जाता एव एवो माया वहा मया कुमाराभज्ज नैवमिदि वदिं मयाजिहोऽपयिप किमिदमपयिपयिदि भज्जामि एवं सा वडिहवेवाधिवि इति गवो पव्वकुलं समोत्थितः मज्झति—सदिस किं करोमि तं मम चित्तं चित्तियं, ए

नं हृच्छद्, दारियाओ रुमसाणीओ नेच्छद्, अणोरोहिं स्रस्तिगसपहिं परिवारिओ हिंद्द्, इओ य सस्स अद्गमणनिगमणपद्  
 एगो मरुओ, तस्स धूया जम्भूतवाहिणा गहिंया, लापव सरीरस्स नत्थि असीयरुक्खिणिस्ति न कोइ परेइ, महती जाया,  
 रुहिर से आगयं, तस्स कहियं मायाए, सो भित्तेइ—यंयवग्गा एसा, कप्पगो सच्चसंघो सस्स जयाएण देमि, तण दार  
 अगद्धे सओ, तत्थ ठविंया, तेणतेण य कप्पगोडतीति, महया सहेण यकुक्खिओ—भो भो कयिञ्जा ! अगद्धे पठिया ओ  
 नित्यारेइ तस्सेवेसा, त सोऊण कप्पगो किंवाए धाविओ च्चारिया यड्ढेण, भणिओ य—सच्चसंघो होज्जासि पुत्तगत्ति,  
 ताहे तेण अणवायमएण पद्धिक्खणा, तेण पच्छा ओसइसंओएण लही कया, रायाए सुयं—कप्पओ पंढिओत्ति, सद्दाविओ  
 विष्णुविओ य रायाण भणइ—अहं प्रासाञ्जादन विनिर्मुच्य परिग्रहं न करोमि, कह इमं किं सपद्धियज्जामि ?, न सीरइ  
 निरवराहस्स किंवी कावं, ताहे सो राया छिद्दाइ मगगइ, अण्णया रायाए जायाए साहीए निहेवगो सो सद्दाविओ, मुम

१ नेच्छति दारिका सम्भ्रमाणा नेच्छन्ति अनेकप्यावधौः परितुलितो दिग्बद्धो हवन् तस्य प्रवेक्षनिर्गमयणे एकमे मरुकः तस्य दुर्दिता जम्भोरभ्यादिना  
 पृष्टीणां लापवं सरीरस्य भासीति असीयरुक्खिणीति न कोऽपि ह्युत्ते महती जाता कलुषाञ्ज जाताः तस्मै कथितं नाम्ना स विन्यस्यति—महदभेया कलकः  
 सस्रसन्धस्यस्यै यपायेन द्वाप्सि तेन द्वारि भवतः जाताः तत्र स्थापिता तेनाप्यन्या भवन्त्येक आयाति महता धातुपद्मद्विजित—भो भो ! कथितं भवदे पठित्वा  
 यो विच्छदपयति तस्मैवैषा तच्छ्रुत्वा कल्पकां कृपया धासिताः जयाहिता जनेन भवितव्यमसत्तासन्धो भव युष्मक इति तदा तेन जवापवाद्भीतेन प्रत्यपवा तत्र  
 पञ्चावोपवसंयोगेन कदा कदा राया सुत—कलकां पठितव इति कथित्वो विजिज्ञास्य तावन्तं भवति न करोमि कथमेव इत्थं संप्रतिपासे ? न एवमवद निरा  
 रायस्य किञ्चिद् कर्तुं तदा स राजा छिद्राणि मार्गयति अन्धरा राया पादके ( तस्य ) जायाया भिक्षेपकः स धारितव्यः ( न

अस्याणीओ सट्टिछा निगओ, पुणो पयिओ, से ण चहुंसि, तेण मणियं-गेणह एए गोहेसि, से अवररोप्पर वहुण हसीव,  
 तेण अमरिसेण अस्याणिमंहरियाए छिप्पकम्मनिम्मियं पट्टिहारजुपण पओरयं, ताहे तेण सरमसुद्धाएण असिहस्येण  
 मारिया केह नद्ध, पच्छा विणयं सवट्ठिया, स्वाभिओ राया, तस्स कुमाराभज्जा नत्थि, सो मग्गह । इओ ए कविलो नाम  
 बंभणो णपरवाहिरियाए सत्तह, वेयासियं ए साहुणो आगया इकसं वियाले असियमुमिचि तस्स अणिहोचस्स वरए  
 ठिया, सो बंभणो चित्तेइ-पुच्छामि ता णे किंचि आणंसि नवसि !, पुच्छिया, परिकहियं आयरियाई, सहुो आओ सं  
 वेव रयणिं, एवं काले वव्वंते अणया अणो साहुणो तस्स वरे वासरसिं ठिया, तस्स ए पुसो आयमेवओ वंवारवईहि  
 गाहो, सो साहुण भायणाणि कप्पेसाणं हेहो ठविओ, नद्धा धाणमवरी, सीसेपया यिरा आया, कप्पओसि से नामं कयं,  
 साणि दोवि कालगयाणि, इमोवि ओहससु विज्जाट्ठाणेसु सुपरिभिद्धिओ णाम उमाह पावस्सिपुत्ते, सो ए संतोसेण दाणं

१ आत्मानिकाया अस्याय विंशता पुत्रः प्रसिद्धा, ते बोधिवृद्धिं देव भवितुं-पुढीठेवत् अयमासिस्ति ते परस्परं वहुं वसन्ति तेनामंकेनान्नान्नमयसि  
 क्त्वा संपत्कर्मनिर्मितं मदीयस्सुपुण्यं प्रकरोमिहं वदा देव सत्यमद्योदासिदेव भवितुं देव मातिता केविज्जाता एज्जादिपवसुपकिताः काप्पिठो राजा वल  
 दुन्नारामाया न सन्ति स मार्गवसि ! इत्थं कथिओ वाम माहुणो अवरवाहिरिकायां वसति विक्काके ए सावव आगया हुण्ठं विक्काकेअसिपपुमिसि वक्कादि-  
 होवस पुहे सिक्का साववससप पुहे बरोदासे सिक्काः वस ए पुत्रः आठमाओअमारेवठीम्वी पुढीठा ए साहुण कप्पवपु माववानमवकाए ज्जापियवः नरे  
 काहे अयववाअये साववससप पुहे बरोदासे सिक्काः वस ए पुत्रः आठमाओअमारेवठीम्वी पुढीठा ए साहुण कप्पवपु माववानमवकाए ज्जापियवः नरे  
 वरमवपी वक्काः प्रजा सिक्का ज्जाता कप्पव वृद्धि वल वाम वृत्तं दी हावसि काकपटी अयमपि अयुईससु विद्याकयनेनु सुपरिभिद्धिओ णाम ( रेखा ) कयते  
 पाम्ठीपुत्ते ए ए संतोसेय दावं

रायाधि पशुतो, तेण वद्विजा राणो सीसे निवेसिया, सखेय अट्टिलगो निगभो, धाणइहाणाधि न पारिति पप्रओसि,  
 रुहारेण आयरिया पच्चाडिया, वद्विया, पेच्छति रायाणगं धायाइयं, मा पवपणसस ठुहाइो होहिइसि आलोइयपठिअतो  
 अप्पणो सीसं छिंदेइ, कालाओ सो एवं । इओ य ण्हावियसाणिणए नावियदुयकसरओ चयनभापसस फेदेइ-अदा  
 ममज्झउतेण णयरं वेहियं, पदाए विहं, सो सुमिणसत्थं जाणइ, ताहे धरं नेऊण मत्थओ धोओ धूया य से दिण्णा,  
 दिप्पिचमारओ, सीयाए णयर हिंवाविअइ, सोधि राया अंतंठरसेज्जायसीहिं दिहो सहसा, दुयिय, नायओ,  
 अचत्तोसि अण्णेण दारेणं नीणिओ सक्कारिओ, भासो अहियासिओ, अहिमतारा हिंवायिओ मज्जे हिंवायिओ पाहि  
 निगभो रायकुलाओ तस्स ण्हावियदासत्स पडि अदेइ पेच्छइ ए णं तेयसा जज्जवं, रायाभेसेएण अहिसिओ राया  
 जाओ, ते य वंदमदभोइया दासोसि तहा विणयं न करोति, सो चित्तेइ जइ विणय ण करोति कस्स अह रायसि

१ राजाधी पशुतो, वेवोत्थाय राया धीरे विवेकिता तद्वद्व कसमुदि (१) निर्गतः पालीइसिका अधि य वायसिअ प्रमादित इति दधितेअ-  
 वाचाः प्रसार्जिताः वसियताः प्रेक्षत्ये राजार्थं व्यापारितं मा प्रवचवसोद्ग्राहो वृद्धिजाओविजयधिकात्ता अत्तमा धीय छिम्मीअ कलगावाए एवं । इतअ  
 नाधितयाआया नाधितवस यथाआवाअ कथयति-यथा मगायाजेय नगरं वेडिअ प्रभाते एए स कसमात्थं जायाति तदा गृहं नीरवा मज्जे पीठ दुदितो  
 य तयो वला, धीधितुमाठवा धिअकपा नगरं दिअवते सोअधि राजा अत्तगुदिकासाववायधिकमधिदेहः सहसा वृद्धितं माताः अगुय इत्तन्मन द्वाराअ  
 भीताः सारजसिताः अयोअधिवासिताः, अन्मत्तरे दिविअतो मन्थे दिविअताः अहिर्मिततो राजकुलाए य नाधितद्वाराकं युही क्कायति प्रेक्षते य ए तद्वता उअकलं  
 राजगामिनेदेवामिअिअते राजा जाताः ते य दधितकुमुपदयोदिका वास इति तया विजय य कुर्वन्ति स चिन्तयति-यदि विजयं न पुचिअ कसार्हं रासोधि



पादस्त्रिपुलस्त वप्पयी । सो वपार्ह सस्य ठिक्को रज्ज भुंजह, सो य राया ते बहे अभिक्कस्यं ओक्कगावेह, ते चित्ति-  
 कइमहो एयाए भादीए सुच्चिज्जामो ? इयो य एगस्स रायाणस्स कविहवि अवसाहे रत्तं हियं, सो राया नहो, वस्स  
 पुणो भमंतो वज्जेणिमागओ, एण रायायं ओक्कगाह, सो य बहूसो २ परिभवह वपार्हस्स, ताहे सो रायपुणो पायवट्ठिओ  
 विण्णवेह—अह वस्स पीह पिमासि नवरं मम पितिविज्जयो होज्जासि, सेण पविस्सुयं, गमो पादस्त्रिपुलं, नाहिरिगमन्समि-  
 गपरिसासु ओल्लिगिक्कण छिहमलभमाणो साह्मणो अतिंति, ते अतीवमाणे पेक्कह, ताहे एगस्स भायरियस्स मूळे पबइओ,  
 सभा परिसा आराहिया वस्स पक्खाया, सो राया अहमिक्कवइसीसु पोसहं करेह, सयायरिया अतिंति भम्मकहानिमियं,  
 अणया येयात्थियं, भायरिया मणंति—गेणहह ववगरण राचलमटीमो, ताहे सो सच्चिसि वट्ठिक्को, गहियं ववगरणं, पुब  
 संगोविया ककओहकसिया सावि गहिया, पक्कण कया, अतिगया राचलं, चिरं वम्मो कहिक्को, भायरिया पसुचा,

१ पादस्त्रिपुलस्योत्पत्तिः । स वपारी तस्य विहारे तान्मं भुजयि, स य राजा बह ( एकेकए ) एयाए अनीदं अवकावसि ते चित्तवन्ति—अस्मिन्ने  
 पल्लया भाव्या सुप्पेमाहि इतमेक्कस राजा अस्सिअहसि अणोये तान्मं इत स राजा बह तल्ल पुणो भावए बहविदीमागता पुबराज्यकसवक्कावाहि य य  
 बहूका २ परियुयते वपारिया तया स राजपुला पाएयठिठो विहववसि—अहं तल्ल भीक्षित पिणमि परं मम द्वितीयो मव देव मसिमुलं यथा पादस्त्रिपुलं  
 यासमज्जपुणपणंसु अवकाय ठिहमकभमाणः सावव भावमिह ताह भावता देवते वरैक्कसाय्ययेक मूळे मवविताः अतो पर्यए भागता तल्ल मवता स  
 राजाअसीवट्ठिहयोः पोवव करोसि तत्रावावा भावाभिह पर्येकपामिभिह अणया वीकाकिरं, भावपी मवन्ति—पुहल्लोवकत्तव राजपुल्लमविक्कअस्सः  
 वपार्ह ॥ सच्चिह वसियः गुरीयमुपकरणं वरैयपोपिया अहकोहकसिया सावि गुरीया, मक्कजा कुता अतिपयो तल्लपुलं सिंयं ययो अस्सिया  
 भावपायोः मसुसा ॥

भद्रसपण, क्षामेद्र, अद्रितिं पगभो, साहे सो केवली भणद्र-तुन्मेवि चरमसरीरा सिमिसिद्धि गगं वत्तरता, वो साहे भेय  
 पचसिष्णो, पाषावि ओण २ पासेणडवखणद्र त स निवुद्ध मग्गे वट्ठिया सभावि निवुद्धा, तेहिं पाणीए छुदो, नाण वप्प  
 ण्ण, देवेहिं मदिमा कया, पयाग तत्थ तिए पवत्ते, से सीसकरोही मच्छकच्छमेहिं सज्जती एगतय वच्छलिया पुत्तिणे, सा  
 द्रओ सओ सुक्कममाणा पुराय सभा, साय पावलिवीय कहवि पविट्ठ, दाहिणाओ हयुगाओ करोटिं भिंदवो पायगो  
 वट्ठिओ, विसालो पायवो जाओ, तत्थ सं चास पासंति, चित्तोत्ति-एत्थ णयरे रायस्स उपमेव रयणाणि एहिंवि त णयर  
 निवेसिंति, तत्थ सुखाणि पसारिज्जति, नेमिसिओ भणद्र-हाय जाहिं जाय सिया वासंति तओ नियत्तेज्जासिचि, ताहे  
 पुब्बाओ अंतओ अवरामुहो गओ तत्थ सिवा वट्ठिया नियत्तो, वत्तराहुचो तत्थवि, पुणोपि पुद्गाहुचो गओ तत्थवि, दप्पिस्स  
 णाहुचो तत्थवि सिवाए वासियं, त किर यीयणगसत्थियं नयर, णयरणाभिप य वद्दाएणा चेद्दहर कारायियं, एसा

१ कतिक्कयेव कम्मवति, अत्थहिं भगवाः तदा स केवली मयति धूममयि चरमसरीरा सेत्थय पाद्ममुचरत्थः। तत्तत्तरेव मोक्षीयं। आरि कालिद्र १  
 पात्तंजलकाति तेन १ मूढति माये वपस्यापिवाः सर्वाणि दूहिता है। पायीये भित्तः। भागमुत्तम दूरेमदिमा कृता। मत्तां तत्र हीयं जातं वल हीरं करोटिका  
 मत्तकच्छः। जायमानेकभोवट्ठिका पुत्तिणे सेठकका। विष्णुमाक्षैकव समा तत्र पादकावीर कयसांति मत्तिहं दक्षिणावयोः करोटिं सिम्पद् पादय रत्नपः।  
 पादयो सिद्धाको जातः। तत्र त जाय दक्षिण विष्णुपण्डित-आव जागे राणः। कयमेव रत्नाप्येप्यन्ति तत्र जातं निवेष्टितमिति तत्र पूजाभिप्रायस्ये धर्मिचक्रः।  
 मयति-दावपात जादधिक्का वासयति ततो निवर्त्तयन्मिति तदा पूर्वकादल्पादपरमियुक्तो गणकस्य विना रक्षित निवृत्तः। वत्तराभिमुचरत्ताणि पुनरति  
 पुनरिमुक्तो पतयत्तापि, दक्षिणापुचरत्तापि विष्णुवा जातिव तत्किञ्च अन्वयकसंक्षिप्तं जातं वापराभाओ ओषादिना धैसपूव जातिव, एसा

पंच गओ, काळेण देवो देवळोवं वरिसेइ, तल्याचि तरेच पासंदिणो पुच्छिया आहे न याणंति ताहे कण्ठिचपुचा पुच्छि-  
 पा, तेहिं कहिया देवळोगा, सा भणइ—किह नरगा न गंमति !, सेण साहुचममो कहियो, रायाणं च आगुच्छइ, तेण  
 भणियं—मुएमि जइ इहं वेव भम गिहे भिक्खं गिणइइचि, तीए पडिससुच, पणइया, तल्या ए ते आयरिया वंणावळपटि-  
 हीणा ओसे पणइयो विसज्जेसा सत्येच विहरंति, ताहे सा भिक्खं वंतेवराओ आणेइ, एवं काळो वणइ, कण्ठया तीसे  
 भगवईए सोभणेणअस्रवसाणेण केवळणाणमुप्पणं, केवळी किर पुणवचवं विणयं न संवेइ, कण्ठया वं आयरियाण हिय  
 इच्छियं त आणेइ, सिंमकाळे ए जेण सिंमो ण उप्पज्जइ, एव संवेइचि, ताहे ते भणति—वं मए चित्तिंयं तं वेव आणीयं,  
 भणइ—आणामि, किह !, अइसएण, केण !, केवळेण, केवळी आसाइओचि ज्ञामियो, अण्ये भणंति—वासे पढंते आणियं, ताहे  
 भणंति—किह जज्जे ! वासे पढंते आणोसि !, सा भणइ—जेण २ वंतेण कच्चियो तेण २ वन्तेण आगया, कह ज्ञाणासि !,

१ पूर्व पदा, काळेच देवो देवळोच इतं वरि, ज्ञायाचि तरेच पावडिइया; पुढा वया न आचरिउ वयाअज्जयां पुढा तेा कचिउ देवळोका वा  
 यचति—कयं अरका न सम्यग्गंते ! तेच सागुयमी कचिउ; राजाच आगुच्छते तेच कचिउ—मुज्जाति एदीइ नल पुहे सिळां पुक्कसि जया मसिहुवं,  
 मज्झिमा ठाव च ते आवायो। परिहीणज्जावका अज्जे मज्झिमतए वित्तज्ज तरेच विहरति वया सा भिक्कासत्तागुपएअवसि एव काळो मज्झि आनया  
 ठका भयवज्जा सोमवेवाअवसावेव केवळज्जावगुणं, केवळी किह पूर्वमवचं भिनव च अज्जचि अज्जया एवअवायां इदीयिउ वयाअवसि केम्प-  
 काळे च देव मुएया वीत्तपटो, एवं कोरेरसि ठाव ते अज्जिउ—अज्जया विमिउ ठावेवादीउ भज्जि—आवासि कय ! कचिउवेव केव ! केवळेच कचिउवा  
 केवळपापाविउ इति अज्जे भज्जिउ—अवायां एवअवां जावीउ वया अज्जिउ—कयमावें ! अवायां एवअवायावचि !, सा भज्जि—देव वेव मार्गेवाचिउवेव २  
 मार्गेवापदा, कयं जावीसे !,

नं पदद्विद्विचि, ताद्रे सो अण्णिपपुणो तम्मूळमालभायो भोगे अवहाय पवइओ, धेरसणे चिहरमाणो गणायदे पुष्कभइ  
 नासं णयदे गओ समीसपरिचारो, पुष्कफेक राया पुष्कपवी देवी, तीसे अमलगणि दारगो दारिया म जाया  
 णि पुष्कचूळो पुष्कचूळ ५ अण्णसण्णमणुरचाणि, तेण रायाए चित्तिदं-अइ विओइअवि वो भरवि, वा एयाणि  
 चव भिड्डणगं करेमि, मेळिआ नगरा पुच्छिया-अएथ रं रयणपुष्कअइ तरस को वयसाइ राया णयदे वा अवेवरे वा १, एय  
 पत्तियावेइ, सायाए वारंतीए ससोगो पढाविओ, अमिरमवि, सा देवी साविमा तेण निवेएण पपइया, देयो जाओ, ओइणि  
 पेच्छइ पूय, ठओ से अन्नसहिओ नेहो, मा नराय गच्छिहि सिमिणए नराय दंसइ, सा भीया रापाण अययासेइ, एवं  
 रसि २, ताइ पासहिणो सदाविद्या, कहेइ केरिसा नराया १, ते कहिहि, ते अण्णारिसगा, पच्छा अण्णिपपुचा पुच्छिया,  
 ते कहेवमारइ-‘निबंधयारतमसा०, सा भणइ-किं तुमेहि वि सुमिणओ दिहो १, आयरिया भणसि-तिरअयरोयएसोचि,

१ न भलाकलीसि कदा सोमसिकपुत्र अमुकमालभायो भोगानयदाय मन्त्रिणः उपधारये भित्तम् एतावदे पुष्पभद्र नाम भगव मत्तः सतिश्वरतीतारः  
 पुष्पकेतु रात्रौ पुष्पवती देवी लक्षा गुप्तं वारको वारिका न काये पुष्पपूजः पुष्पपूजा वास्योत्पन्नममुराके तेन रात्रौ विधिष्ठ-वदि भिन्नोपेवं सर्वं  
 भिन्नते उपेवावेव सिद्धुव करोमि मेळयिआ जागारा ॥ इत्या-अन्न पद्मभुज्यते तस्य को वयससि एतावतां वारं वा अय्यादुरं वा १ पूय मन्त्रावलि आचरि कमाव  
 म्मां संयोगो वदिताः अमिरसेते सा देवी आदिता तेन सिद्धेण मन्त्रिणा देवी जाताः अर्वाभिया मयते दुहितं वदत्यस्तस्यदिकः पदः सा भरव गार्गि  
 लये नरकाइ इत्येवमि सा भीता राज्ञाव कलवसि पूवं तायो तात्री तदा पापविद्वन्मः साविताः कलवय वीरका भरका १ ते कयवन्ति येऽन्तरका वन्ता-  
 रदिकपुत्राः इत्या, ते कययिदुमात्पन्ता-शिवान्यकारावसिद्धाः सा भणति-किं तुम्याभिरपि सज्जो एव, आवाही अर्वा-अन्तरकोपेद एदि

दो मंदुराभो—दक्षिणया चत्तरा य, चत्तरममुराभो बाणिगदारगो दक्षिणममुरं विसाज्जाएगभो, तस्स उत्तर एगेण बाणिस-  
 नेण सह मिजया, तस्स भगिणी भणिया, तेज भयं कयं, सा य वेमत्तस्स वीयणं परोह, सो सं पाएसु भारंम  
 विवण्णेति अम्मोदवत्तो, मागाविया, ताणि भणंसि—अह इह जेय भण्ठसि जाय एत्थंपि ता दाराकयं जार्यं तो वेमो, पहि  
 वण्णं, दिण्णा, एवं काछो वज्जह, बाणया तस्स पारगस्स वंभापितीहिं तेहो विसस्मिभो—अन्हे कंयसीमूयाणि जह  
 जीयंताणि पेच्छसि तो एहि, सो तेहो ववणीभो, सो सं पाएइ असूणि मुयमाज्जो, सीए दिहो, पुच्छइ, न किंचि साहइ,  
 सीए तेहो गहिभो, दाइया अणइ—मा अधिचिं करोहि, भाणुच्छामि, ताए कहियं सबं अन्हापिच्छं, कहिए विसस्मि-  
 याणि, निगायाणि दक्षिणममुराभो, सा य भणिया गुहणी, सा अत्तरा पंये वियाया, सो जितोह—अम्मापिचरो नामं  
 कहिचिचि न कयं, साहे रमायंतो परिपणो अणोइ—अणियाए पुचोचि, काछेय पछाणि, तेहिवि से सं जेय नामं कयं अण्णा

१ हे भगुरे—दक्षिणया चत्तरा य चत्तरममुराया दक्षिणममुरं दक्षिणममुरं विसाज्जाए गभो; तस्स उत्तर एगेण बाणिस-  
 नेण सह इह, सा य वेमत्तो अम्मोदवत्त आरयसि सा ती जाइयारम्य पयसि अणुपयज, मासिंता से भगवति—परीहैव अत्तासि जायदेवमसि ताएइ तत्तकयं  
 जारं (अवेद) दाइया; मतिरयं इहा, एवं काछो मयसि अन्हा ताका वामकल मायापियुत्थं केहो विवत्ता वलन्नीयुटी वहिं वीरन्नी मेविपुसि-  
 ज्जोसि दाइया; सा तेहो ववणीभो, सो सं पाएयसि मुज्जवणिय ताका इहा पुच्छसि न किंचिदपि कयसि ताका केहो पुटीयो जाविया; मयसि-  
 माउपसि कार्या; भाउछे ताका कयं तो तेहो मायापियुत्थं, कहिंते विवत्तो मियंतो दक्षिणममुराका सा जहिंका गुहणी सामन्तरा पया प्रवसिचरणी च  
 विसवपसि—मावरावत्त नाम कयिचरणी च इह, दाइया रमायं परिपणो अणो—अणियाया पुचोचि, काछेय पछाणि, तेहिवि से सं जेय नामं कयं अण्णा  
 इहममयए

संगमाथो ( प्र० १७५०० ) पंति नवति जहा निरयावलिपाए ताहे पवइयाथो, साहे कोणिओ थंय आगओ, सथ  
सामी समोसदो, साहे कोणिओ वितेइ-महुया मम हथी चक्कवटीओ एवं आसरइओ आमि पुच्छामि सामी भदं चक्कयटी  
होमि नहोमिति निगओ सव्यवलसमुदएण, धदिचा भणइ-केवइया चक्कयटी एस्सा !, सामी भणइ-सपे अतीठा, पुणो  
भणइ-फहिं चक्कअस्सामि!, कट्टीए पुवधीए, तमसइहंसो सवाणि एणिदियाणि कोहमयाणि रयणाणि करेइ, ताहे सप  
वलेणं तिमिसगुहं गओ अहमेणं भत्तण, भणइ कयमालगो-अतीठा वारस चक्कवट्टिणो जाहिसि, नेच्छइ, इत्थियिटगो  
मणी इत्थिमरपए काकण ददेण पुवार आहणइ, ताहे कयमालगेण आहओ सओ छहिं गओ, ताहे रायाणो वदाइ  
ठावति, वदाइस्स धिंठा जाया-एथ णयरे मम पिया आसि, अट्ठिटीए अण्ण णयरे कारावेइ, मगाइ परमुंति पेंसिया,  
तेवि एणाए पाइलाए उवरिं अवयारिण पुदेण चास पासति, कीइगा से अण्णया वेंय मुहं अस्सिंति, किइ सा पाइल्लिंति,

१ संगमाए आपमिक्कयि भवेति । यथा विरयावलिक्कया । तथा प्रवर्तिताः तथा कोविदब्रह्मसागराः सप स्वामी समवसव तथा कोविदिभन्त  
वति-वद्वो मम इत्थिमरपवित्तः (यथा) एवमजरायाः वामि पुष्पाणि स्वाभिरं भदं चक्कयटी भवामि न सवामीसि । निर्मठः सर्ववत्समुदरेण विभ्रता  
मवति-किप्पसवक्कयट्ठिं पृथ्वा । सामी भवति-सर्वेभीठाः पुपर्ववटि-कोत्ताप्पे ! वद्वो पुष्पाः तद्वद्वयाः स्वान्देकेन्द्रियानि रक्ताणि कोहमयादि  
करोति तथा सर्ववलेन वसिमगुहं गताः अहममेव भवति कृतमाहकः-अतीठा इदं स चक्कयट्ठिं पृथ्वा पाहति नेप्पयि इत्थिमरपो ममि इत्थिमरपे इत्ता  
दुद्वेण द्वात्तामहिं तथा कृतमाहकेभाहवो मुक्ता वही पाताः तथा राजाव द्वाविमं स्यावमिं वद्वविद्विन्ता अता-भव गगरे मम विताऽभीए, अमु  
स्याऽवज्जगरे कवमसि मार्गयत वासु इति श्रेयिताः तेऽप्येकजाः पाटकायाः वपर्ववद्वारीयेन पुप्वेव जाव वद्वविं कीटिकसवसायदेव मुसमावमिं  
कयं ता पाटकेसि !,

द्रो मंदुराभो-दक्षिणगा चत्तरा य, चत्तरमंदुराभो दक्षिणदातगो दक्षिणममदुरं विसावचाए गयो, ठत्स ठाय एतेण द्वाभिय  
 गोण सइ मित्थवा, ठत्स अग्निणी द्वाणिग्धा, तेण अयं कयं, सा य जेमत्तस्स वीयणमं वरेइ, सो तं पाएसु जारंस  
 पिवण्योति अज्जोववन्नो, मग्गाविधा, ताणि अणंति-आइ इइं वेव अण्णसि जाव एकंपि ता दातगकमं जाव ठो देमो, पडि  
 वण्यं, दिण्णा, एव काओ वण्णइ, बाणया ठत्स दातगत्स अंमापिसीहिं सेहो विसज्जिभो-अन्हे अंचलीभूयाणि जइ  
 जीवंदाणि वेण्णसि ठो एहि, सो सेहो ववणीभो, सो तं धाएइ अंसुणि मुयमाणो, टीए दिहो, पुण्णइ, न किंचि साइइ,  
 टीए सेहो गहिभो, धाइसा भणइ-मा अधितिं करेहि, भापुण्णामि, ताए कहियं सबं अन्हापिकणं, कहिए विसज्जि-  
 याणि, निग्गायाणि दक्षिणममदुराभो, सा य द्वाणिग्धा जुद्धिणी, सा अंतरा एवं विधाया, सो विंतेइ-अम्मापियरो नामं  
 कहिंतिस्सि न कयं, ताहे रमावेत्तो परियणो मणोइ-अणिग्धाए पुजोसि, काळेण पचाणि, तेहिंवि से तं वेव नामं कयं अण्ण

१ इ अमुरो-दक्षिणा चत्तरा य, चत्तरममदुराभा दक्षिणममदुरं विपत्तादी यथा: तत्र तत्र पुकेन दक्षिणा सइ मैत्री तत्र धमिनी जर्जिज्ज  
 तेव मज्ज क्ख सा य जेमत्तो अज्जववं जारवति स तां पाएसात्तय पवति अज्जुपयका मारिंता ते मज्जपिइ-सदीइइ ज्जावतिस्स जावदेकमसि जावदे दत्तककमं  
 जारं (अवेइ) चत्ता इत्था मतिववं इत्था एव काओ जवति अज्जदा तत्र दातकक मातासिपुत्ता सेहो सिट्ठा: जजमज्जीपुट्ठी वदि औयन्ती मेक्षिपुत्ति  
 ज्जासि चत्ताअभा, स सेइ अयदीठ: स तं जावयति मुज्जववुत्ति तथा इइ, पुण्णसि न सिद्धिपि अज्जवति तथा सेहो पुट्ठीतो जावकिन्ना यवदि-  
 माइपुत्ति जार्थ: जापुत्थो तथा कथितं एवं मातासिपुत्था कथिते विट्ठी विंतेही दक्षिणममदुराभा सा जर्जिज्ज पुर्वा साअत्तरा यथा: मज्जसिठवती य  
 विट्ठपयदि-मातासिपुत्तं जाम करिण्णसीति न क्खं चत्ता रमायइ परियवो अज्जति-अर्जिज्जया: जुव इति काळेव मात्तो जमममसि तत्र ठोइव जाम  
 जवमज्जयइ

दिंदो, पळाओ, मगगओ खगाइ, एव हेहा वयसिं च नासइ, कालसदीयेण सिद्धि पुराणि विवपिसा, सामिपायमूले  
अच्छइ, ताणि देवयाणि पदओ, ताहे ताणि भणति-अम्हे विज्जाओ, सो भट्टारगपायमूल गओसि सध गओ, एकमेक  
खामिओ, अण्णे भणति-उयणे मद्दापायाले मारिओ, पच्छा सो विज्जाचकनट्टी विसंभ सयतिरधगरे धंदिचा णइ च  
दाइचा पच्छा अभिरमइ, तेण इंदेण नाम कय महेसरोत्ति, सोयि किर थेज्जाइयाण पओसमायण्णो धिज्जाइयवत्तगाण  
सयं २ विणासेइ, अस्सेसु अंतरेसु अभिरमइ, तस्स य भणंसि दो सीसा-नदीसरो नदी ए, एयं पुप्पएण यिमाणेण अभि  
रमइ, एव कालो वच्चइ, अस्सया उज्जेणीए पज्जोयरस अतेचरे सिधं मोत्तूण ससाओ विवसेइ, पज्जोओ चित्तेइ-दो उयाओ  
होज्जा जेण एसो विणासेज्जा !, तथेया उमा नाम गाणिया रुवसिण्णी, सा किर धूयगाहणं गेणइइ जाइ तणातेण एइ, एयं  
वच्चइ काळे चइण्णो, ताए दोणिण पुप्फाणि यियसियं मत्तलियं च, मत्तलियं पणामियं, महेसरेण वियसियस्स इत्थो पसारिओ,

१ इहः एकस्मिन् वृक्षे काले, पुरुषस्य कान्धुपरि च मरुति कालसदीयेन वीथिं गुराणि विवर्तयति स्तामिपुराणि ॥ इहः मद्दाः मद्दाः वराहा  
मयाभित्त-वच विद्याः स मद्दारकपादमूलं गत इति गता एव पूरुकेव सतिवः अन्धे अवभिष्ट-अवले मद्दापायाले मारिवाः एवमेव स विद्याचक्रवर्ती विसंभ स  
दीर्घकराद् अभिरमइ सुय च धर्मविद्या पञ्चादभिरमते तेनेनेय पास कृतं महेभरइति सोऽपि भिक्खु विज्जादीवानां महेवसायलो विज्जादीयचक्रवर्तकाणो एव २  
विद्यासयति, अन्येज्जन्तापुरेसु अभिरमते तस्स च मयेये हेतुं सिध्दी-नदीसरो मग्दी च एव पुप्पयेव विद्यायेन अभिरमते एवं कालो मद्दर्शनं अन्धप्रायविद्या  
मयोवकान्तापुरे सिद्धां मुक्तां सेवा विप्यसयति, मयोवविमलपति-क इयायो मयेए येन एव विद्यायेव ? एवमेवोपायाभीरं यमिका क्तिन्नी सा भिक्खु पूर  
मद्दर्शनं पुक्काति यदा तेन मार्गेदीति एवं मरुति काळे अवतीर्ण, एवा हे पुप्पे विवर्तितं मुक्कलियं च मुक्कलितमयं वसि महेभरेण विवर्तितवा इहः मत्तलियं  
मद्दर्शनं पुक्काति यदा तेन मार्गेदीति एवं मरुति काळे अवतीर्ण, एवा हे पुप्पे विवर्तितं मुक्कलियं च मुक्कलितमयं वसि महेभरेण विवर्तितवा इहः मत्तलियं



सां मचळ पणामेह एयस्स पुग्गे अरहसिचि, कं १, ताहे भणइ-एरिसिओ कण्णाओ ममं साव पेच्छइ, तीए सइ सबसर  
 हियहिपओ कओ, एव वज्जइ काळो, सा पुच्छइ-काए वेळाए देवयाओ ओसरंसि १, सेण सिद्ध-आहे मेणुणं सेवामि, तीए  
 रण्णो सिद्धं मा ममं मारेहिचि, पुरिसेहि अंगस्स उव्वरिं ओगा परिसिचा, एव रक्खलामो, ते य पज्जोएण भग्निचा-सइ  
 एयाए मारेह मा य पुरारज्जं करेहिह, ताहे मणुरसा पच्छण्णं गया, वेहिं संसट्ठो मारिओ सइ तीए, ताहे नंदीसरतो ताहिं  
 यिज्जाहिं अहिद्धिओ आगासे सिठं विज्जविचा भणइ-हा दास १ भग्गेसिचि, ताहे सनगरतो राया उल्लपइसाहगो खमाहि  
 एणावराहंति, सो भणइ-एयस्स ज्जइ उव्वरय अवेह तो मुयामि, एयं न णयरे २ एव अवाचहिं तावेहसि तो  
 मुयामि, तो पट्टिवण्णो, ताहे भाययणाणि काराविद्याणि, एसा महेसरस्स उव्वणी १ ताहे नगरिं सुण्णिवं कोणिओ अइ  
 गओ गइमनंगळेण गाहाविद्या, एरयंउरे संणिपभज्जाओ कालियादिमाविद्याओ पुच्छंसि नगवं विरूपयरे-अमं पुजा

१ सा मुहुकमर्षयसेवस लमर्दीपीति कथं ? तदा भगवि-ईदस्य कथा मां तावए मेकळ तवा सह संवसाति इत्यइदमः क्व। एवं ब्रवति  
 काला सा पुच्छति-कलां देवानां देवता व्यवसति वेदोक्तं-वदा मेणुवं सेवे तवा एवे कवितं मा मां मातवतेति पुनरेतदज्योतिरि नोमा  
 द्वापदा, एवं रक्षयामां ते न भयोतेन भविता-सदैवया मातवत मा ह्यारज्जं कर्हं तदा मज्जन्नाः ज्ज्ज्ज भवतां हे संधिधो मारिवा सह तवा, तदा-  
 नन्दीसरस्याभिर्दयाभिरधिष्ठि आकरो भिक्षां विजुज्जं भवति-हा दास ! सुतोभपीति तदा धनपापो राजाऽर्धकासिज्जपस समवेकमपराधीमिति च भगवि  
 बहिं पुनमेतदइदम अचवठ तदा मुज्जाभि एव न भगरे २ पुनमागुतं व्यापवतेति तदा मुज्जाभि तदा मथिपवा तदाऽऽवववादि करितानि पूजा महेवर  
 सोत्सविः । तदा भगती पूज्यां ओमिकोऽपि तादाः पर्वयकाऽऽवेव कृता अत्रापरे भविष्यत्याः कालिकादिकाः पुच्छन्ति भगवन्तं पीडकं-अकारं पुजाः

दिंदो, पळाओ, मरगाओ खगाइ, एव हेछा छयतिं च नासइ, कालसदीयेण तिखि पुराणि यिवप्रिवा, सामिपायमूछे  
अच्छइ, ताणि देवयाणि पइओ, ताहे ताणि भणति-अगरे विज्जाओ, सो भट्टारगपायमूछ गओचि सथ गओ, एकमेक  
खामिओ, अण्णे भणति-छवणे महापायाळे मारिओ, पच्छा सो विज्जापक्कट्टी तिसंम सयतिथगरे धंदिछा णट्ट च  
दाइवा पच्छा अभिरमइ, तेण इंदेण नामं कयं महेसरोचि, सोवि किर धेज्जाइयाण पओसमायण्णे विज्जाइयवत्तगाण  
सयं २ विणासेइ, असेसु अंतरेसु अभिरमइ, तस्स च भणति दो सीसा-नंदीसरो नदी य, एय पुक्कएण यिमाणेण अभि  
रमइ, एव काळो वच्चइ, असया वज्जेणीए पज्जोयस्स अतेवरे सिव मोत्तूण ससाओ विद्धसेइ, पज्जोओ चित्तेइ-सो दयाओ  
होज्जा जेण एसो विणासेज्जा !, तरयेगा वमा नाम गणिया क्वत्तिस्सणी, सा किर भूयगावणं गेणइइ जाहे सणंतोण एइ, एयं  
वच्चइ काळे चइण्णो, ताए दोष्णि पुक्काणि वियसियं मवळियं च, मवळिय पणामियं, महेसरेण वियसियस्स हरयो पसारिओ,

१ इहः पकायितः दृढतो क्कयति पृथमवच्छादुपरि च दधयति काळसदीयेण धीणि पुराणि विजुर्विजानि स्ताभिपुराणिहतिं ता इवता। इहता। वरावा  
भयान्ति-अथ विद्याः। स महारक्तावसूक्त गाढ इति गाढा ताव पुकेकेच क्षमिताः अन्ये मयपिद-अथ ये महापायाळे मारीका पळाव स सिमावडवर्वा विसरुधं सव  
धीयंकराव् बन्धिरावा मुरव च द्योदितवा पळावभिरमते तेनेत्रेय मास कुवं महेसर इति सोअरि किड विरवादीबावा। महेयमायवो विरवादीवक्कवकावा ताव २  
विनायायसिं अन्येअसव।पुरेसु अभिरमते ताव च मयवेते दी। धिप्यो-मयदीवरो मयदी च पूव पुप्पकेव विमायेव अभिरमते पूर्व काळो मयसिं अन्यदोयविप्या।  
मयोतलाव।पुरे सिवर्त मुरवा सेवा विवर्तसयति मयोतविमवति-क जयावो मयेव येव पूव विनाइवेत ? तत्रेकोमागधी गविकर कतिनी ता किड पूव  
मइव पुक्काति पवा। तेव सार्गेवति पूर्व वडति काळे अवादीयेः तावा हे पुत्ते विवसिंतं सुकुकिव च सुकुकिवमययसिं महेसरव विवविताव इहा। मयावितः

कामविकारो जायो, सहृपकुले बह्मविभ्यो, समोसरण गयो साहुणीहिं सव, तस्य ए काळसंदीपो वंदिषा सामिं पुच्छर-  
 कर्मो मे भय ?, सामिणा भणियं—एयायो सज्जतीयो, ताहे सत्स मूलं गयो, व्यवणाए मणह—अरे तुमं ममं मारेहि  
 सिचि पापसु बडा पाहिओ, भयहिओ, परिबायणेण तेण संजतीणं हिओ, विज्जायो सिक्खाविभ्यो, महारोषिणिं न साहेह,  
 इमं सज्जमं भय, पंचसु मारिओ, छहे छम्मासावसेसावएण नेच्छिया, अह साहेसुमारओ वण्णाहमइए चित्तिवं काळण  
 वज्जालेया अहध्वंस विपदिषा धामेण भंगुदएण ताव चंकमइ जाव कडाणि ज्जंति, एत्थत्तरे काळसंदीपो जागयो कडाणि  
 पुवमइ, सज्जरचे गए देवया सयं चयद्विया—मा विगयं करोहि, अहं एयत्स सिक्खिवकामा, सिक्खा मणह—एगं भगं परिक्खय  
 ज्ञेण पविस्सामि सरीरं, तेण निजारेण पदिच्छिया, तेण अइयया, सत्य चितं जायं, देवयाए से जुहाए तइयं अक्खि कयं,  
 तेण पेढालो मारिओ, कीस नेण मन माया रायपूयसि चित्तंसिया, तेण से रदो नारं जायं, पक्खा काळसंदीवं धामोएइ,

१ कामविकारो जाताः सहृपकुले बह्मविभ्यः समोसरणं गयो साहुणीहिं सव, तस्य ए काळसंदीपो वंदिषा सामिभं पुच्छरि-  
 कर्मो मे भय ? इत्यादिवा भणियं—एयायो सज्जतीयो, ताहे सत्स मूलं गयो, व्यवणाए मणह—अरे तुमं ममं मारेहि  
 सिचि पापसु बडा पाहिओ, भयहिओ, परिबायणेण तेण संजतीणं हिओ, विज्जायो सिक्खाविभ्यो, महारोषिणिं न साहेह,  
 इमं सज्जमं भय, पंचसु मारिओ, छहे छम्मासावसेसावएण नेच्छिया, अह साहेसुमारओ वण्णाहमइए चित्तिवं काळण  
 वज्जालेया अहध्वंस विपदिषा धामेण भंगुदएण ताव चंकमइ जाव कडाणि ज्जंति, एत्थत्तरे काळसंदीपो जागयो कडाणि  
 पुवमइ, सज्जरचे गए देवया सयं चयद्विया—मा विगयं करोहि, अहं एयत्स सिक्खिवकामा, सिक्खा मणह—एगं भगं परिक्खय  
 ज्ञेण पविस्सामि सरीरं, तेण निजारेण पदिच्छिया, तेण अइयया, सत्य चितं जायं, देवयाए से जुहाए तइयं अक्खि कयं,  
 तेण पेढालो मारिओ, कीस नेण मन माया रायपूयसि चित्तंसिया, तेण से रदो नारं जायं, पक्खा काळसंदीवं धामोएइ,

क्षाणयथा ॥ २ ॥ पट्टिचरणोभासणया कोणियगणियचि गमणनिगमणं । वेखालि अष्टा धेप्पइ चट्ठिक्ख अओ गये  
 सामि ॥ ३ ॥ वेखालिगमण मगण सार्द्धकारावणे थ आसट्ठा । भूभ नरिंदनियारण इहगानिकाजणयिणासो ॥ ४ ॥ पट्टि  
 यानमणे रोहण गइमहलवाहणापइण्णाय । वेहगनिगम वट्ठपरिणओ थ माया छयाठट्ठो ॥ ५ ॥” कोणिओ अणइ-  
 वेहग ! किं करेमि !, जाव पुक्खरिणीओ चट्ठेमि ताव मा नगरी असीदि, तेष पट्टिवण्णं, चट्ठगो सवळोद्वियं पट्टिमं गळए  
 धंघिऊण चट्ठणो, धरणेण समवण नीओ कालगओ देवळोनं गओ, वेखालिअणो सणो महत्तरेण नीळवंतमि साइरिओ ।  
 को महत्तरोसि !, तत्तवेव वेहगास्स पूया सुअेढा वेरगा पवइया, साववस्सयस्सवो आयावेइ, इओ थ पेढाउगो नाम परि  
 वायओ विज्जासिखो विज्जाव दाउकामो पुरिसं मगाइ, अइ वंसच्चारिणीए पुचो होज्जा वो समरथो होज्जा, त आयावेवी  
 दइणं भूमिगावामोइ काऊण विज्जाविषज्जासो तत्थ सेरिणु काले जाए गओ अविषयणाणीहिं कहियन्त एयाए

१ भागवतं ॥ २ ॥ पट्टिचरणोभासणयासं कोणियगणियचि गमणं निगमणं । देवाकी वया एअवे इहीअइ अरवो ववेचयासि ॥ ३ ॥ देवाकीभासणं मर्मज  
 सलङ्कारकरणेनावर्जिता । सत्तुः करेयमिभारतं इहिकाविज्जासव विनासाः ॥ ४ ॥ पट्टिवे गमय रोषः ( दूष्टि ) परमहन्तवाहनमर्जिताः । चेट्ठवि  
 र्गसो वचपरिपलब्ध भावोपाकम्पा ॥ ५ ॥ कोणिको पणथि-वेरक । किं करोमि ! भावए पुक्खरिण्या भागवतासि तावभा नगरी आसीः । वेव मल्लिचवं चटकः  
 सकळोहमयीं मठिमो गळे वट्ठा अरणीयो धरणेण समवर्तं वीठा काऊणवो देवळोक पाठा देवाकीवयः सर्वो मदेवरेष थियवदि अट्ठका । को मदेवर  
 इठि !, छसैव चेट्ठस्स इहिका सुअेढा वैराग्याप्यज्जिता सोपाअयसामरतायावठि इतल देवाकको नाम वरीआइ विद्यासिखो विद्या इणुकायः पुरव  
 मारवठि पट्टि अट्ठचरिचया पुओ थवेए छहिं समवो थवेए वामावापयसी इया भूमिकावामोइ इत्या विद्याविषवोसः वव पुण्यअ ( वरः ) काउ  
 जावे गर्भेऽविषयव्याप्तिमा कश्चिद-पैठसाः

भारिज्जह, अमरिसिओ भणह—भारिज्जह, ताहे इंगालखड्डा कया, ताहे सेयणओ ओहिणा देच्छह न पोछेह कहुं, कु-  
 मारा भणति—सुम्न निमित्त इमं आधारं पसा तोषि निच्छसि !, ताहे सेयणएण च्छाओ ओधारिया, सो न ताए  
 खड्डाप पडिओ मओ रयणप्यहाए नेरओ जयवण्णो, तेवि कुमारा समिस्स सीससि पोसिरंति देवयाए साहरिया अत्स  
 मयधं तिरयपरो विहरह, सहावि णयरी न पडह, कोणियस्स धित्ता, ताहे कूळवाळगस्स रुद्धा देवया आगासे भणह—  
 ‘समणे अह कूळवाळए मागहिंयं गणियं लोहिती । छाया य असो गच्छंय, वेसाकिं नगरिं गहिस्सह ॥ १ ॥ सुपेवओ  
 वेव च्छंयं गओ कूळवाळयं पुच्छह, कहियं, मागहिया सहाविया विवसाविया आया, पहाविया, का सीसे लप्पची जहा  
 पासोकारे पारिणामियडुद्धीए धूमेसि—‘सिद्धसिखायजगमणं सुद्धगसिखलोदुणा य विक्खंसो । सावो निच्छावाहसि  
 निगओ कूळवाळवधो ॥ १ ॥ सायसपसी नहवारण य कोहे प कोणिए कएण । मागहिगमणं वंयण मोदगअहसार

१ मापेव, अमरियओ भणति—मापेवो तदाज्जागठां क्कठा तदा सेववओअविद्या पएवति दासिअमसि गतो कुमारी भण्णो—तव भिनिअमिअमा-  
 पविः मासा तपादि देव्यसि तदा सेववओए एकआववतासीतो स य तकां गतोवां पयितो सुतो एवमसन्ना वैरपिअ कएवः तावसि कुमारी सविअः  
 सिअविअसि सुतायवन्तो देवतया संवतो वद मागहन् सीसको विहरसि तथासि जगरी य पठसि कोअिअए भिअता तदा कूळवाळकएण सदा देवताअअमे  
 मयसि—ममयः कूळवाळओ परि मापविअं देवयां कणिअसि । एआ जालोअअओ वैवासी ययरी अहीअसि ॥ १ ॥ अएवओए जप्या पठा कूळवाळक  
 एवसि कपिअ मागविअ जविअता विदअविअ आता पयावित्ता का तका जयविअं जगसायरे पारिणामियडुद्धो एए हसि सिद्धविअताअयमनं  
 सुतेओए सिद्धाओअं य दिअममः ( पादप्रसादिका ) । तापो सिअवाहीसि विरीता कूळवाळकएणः ॥ १ ॥ सायसपसी नहीसारवं य ओसे कोअिअए  
 ( देवतया ) कपिअ । मागविअममनं वदन् देव मोदता जतीसाएः

ससाधव्या, ताहे जुद्ध संपन्नगं, कोणियस्स काळो दंढणायगो, दो वूहा काया, कोणियस्स गरुडवूहो चेदगस्स सागर  
 वूहो, सो जुद्धसो काळो ताव गओ जाय चेदगो, चेदएण य एगस्स य सरस्स अभिगगो कओ, सो य अमोदो, सेण  
 सो काळो मारिओ, मगं कोणियवळं, पद्धिनियत्ता सए २ आयासे गया, एवं दसहि दिवसेहि दसवि मारिया चेदएण  
 काळादीया, एकारसमे दिवसे कोणिओ अद्धममत्त गिण्हइ, सक्कवमरा आगया, सक्को भणइ—चेदगो सायगोत्ति अटं न  
 पहरासि नयरं सारक्खामि, एत्थ दो संगामा महासिक्काकदओ रहमुसळो भाणियवो जहा पण्णसीए, ते किर चमरेण  
 विवद्विया, ताहे चेदगस्स सरो वहरपडिक्कये अण्णिकद्विओ, गणरायाणो नहा सणपरेंसु गया, चेदगोचि पेसाळिं गओ,  
 रोहगसज्जो ठिओ, एवं वारस परिसा आया रोहिज्जंतस्स, एत्थ य रोहए दहविहहा सेयणएण निगया पळं मारेंवि दिवे  
 दिवे, कोणिओवि परिलिज्जइ हस्तिणा, चित्तेइ—को सयाओ जेण मारिज्जेज्जा !, कुमारामया भणति—अइ नयर दएयी

१ सक्कवजासए तदा पुद्धं मवुत्तं कोणिकल काळो दंढणायक, ही प्युही कयो कोणिकल गरुडवूहचेदकस सायाप्यूर। स पुप्पमाग। कम्पज्जा  
 बहवो वावयेदका, चेदकेव कैक्क एत्थामिम्मः कृतः स जामोवः तेव स कस्यो मारिता मगं कोणिकवळं मलिनिट्ठाः स्सक १ आयासे गयाः एव  
 दसमिहिं वईयाणि मारितमहेदकेव काकादयः पुकाएसे मिवसे कोणिकोडहलमत्तं गुक्कमि सक्कवमरायागो कओ भणति—चेदकः भारक इलइ य मद्राणि  
 पवर संरक्कपासि, अथ ही संप्रप्तो महासिक्काकदकयमुसळी मलिणवी यया मयठी ती क्कल जमरेव म्पिदुर्विदी तदा येदकस्स पठो वज्जमठिक्कके रस  
 क्कितः गज्जराजा भट्टाः सवगारेणु गताः चेदकेअचि पेसाळीं गता, रोहकसज्जः स्थिता, एव द्वाइय वयांसि जावसि कप्पमाये अय य रोहके दठमिदठो अक्क  
 वकेन मिंगठी अक्क मारयता मिवसे मिवसे कोणिकोअचि परिलिजयते हस्तिना, चित्तवयसि—क तयाओ येव मारयेते, कुमारामाया भणति—अइ नयर दएयी

एवं बहुसो २ भणवीए चित्तं चप्यण, भणया हाछविहले भणइ-रज्जं अज्जं अज्जेण विणिग्गामो सेवणं मम वेह, ते हि  
 मा सुएक्खं चित्तिं देवोसि भणति गया समयण, एक्काए रवीए समतेवरपरियारा वेसाहिं अज्जसूळं गया, कोभियस्स  
 कक्षियं-नद्धा जुमारा, वेण चित्तिं-वेवि न जाया हत्थीवि मत्ति, वेहयस्स पुनं पेसइ, अमारिस्सिओ, जइ गया जुमारा  
 गया नाम, हरिं पेसेइ, वेहगो भणइ-जइ हासं मम नजुओ सह एएवि, कइ इषाणिं सरणानयाण हराणि, न वेमिचि  
 इओ पट्ठिगओ, कक्षियं न, पुणोवि जुए यद्धोइ-वेह, न वेह सो जुअसज्जा होइ एमिचि, भणइ-जइ ते कजइ, ताहे  
 कोणिएण काहाइया जुमारा दसवि भावाहिंया, यत्थकेकस्स विधि २ हत्थिचइस्सा विधि २ आससइस्सा विधि २ रइ-  
 सहस्सा विधि २ मणुस्सकोटिओ कोणियस्सवि एचियं सवाणिवि तिचीसं ११, तं सोअण वेहएण अट्ठारसण्णरत्ताणो  
 मेस्सिया, एवं ते वेहएण सम एण्णवीसं रापाणो, वेसिचि विधि २ हत्थिचइस्साणि इह वेव नवरं सबं संलोवेण

१ एवं बहुसो २ भणया चित्तमुत्तादिह भणया हाछविहले भणति-रज्जमर्ममं विमज्जमा देवज्जं सबं एवं ते हा मा सुएवं चित्तिं च  
 यत्थसो पाठी अमरव एक्का हाया साम्वापुरपदिवाही वैज्जमममार्गं (अममम) एएएए पाठी कोभियस्स कक्षियं-जइ जुमारी तेव चित्तिं-जावनि  
 न जावो हस्सवि माहि, वेदकाय एवं मेवयदि, अमारिओ पादि पाठी जुमारी पाठी माय हत्थिं मेवय वेदको अचि-जया तं ज्जा ठवैवावसि कवमिदमो  
 पाजापयवोहीरामि न द्वामीति हत्तां प्रविष्टां कथितं न पुवावि एवं मज्जापवदि-वेदि न द्वापयरा जुदयओ पद्वीमीति मज्जि-जया वे रोचवे एए  
 कोमिदेव काकादिक्कां जुमाए द्वाप्याहुतां पाद्वीकज मीति २ हत्थिचइज्जावि मीति २ अज्जसज्जावि मीति २ रससइज्जावि मीति २ मज्जुअवेदका  
 कोमिकसाप्पेवाए सर्वावपसि प्रपदिवाए, एए जुला वेदकेमाहाएव पयााजा मेस्सिया, एवं ते वेदकेव सममेकोनिकटी रत्ताव। तेजामसि हत्थिवा विम-  
 हत्थी २ एवेव नवरं सबं संलोवेण

सुणेतथो भवे चट्टाय लोहदंढं गहाय नियन्त्राणि भञ्जामिषि पश्चात्

दढं गहाय पइसि, सेणिपण चित्तिप-न नअइ कुमारेण मारेदितिसि ।

अपिती आया साहे दइछण परमाणयो रज्जपुरामुक्कवत्तीयो तं चेव चि ।

होइसि संघिए सावणे जिहिया भक्कराणि शुण्णं काकण राइणो चवणीयं, ५

अइ, सय्पमिति पिइनिवेयणा पवसा, एयं काळेण विसोगो आभो, पुणरयि सयणपरिभोए य पियसंतिए दइण अद्धिती

होइसि ठओ निगओ भंयारायहाणी करेइ, ते इअविहसा सेयणएण गयइरिपणा सम सभयणसु य चआणसु य पुक्क

रिणीएसु अमिरमति, सोयि हस्यी अवंचरियाए अभिरमावेइ, ते य पढमावई पेच्छइ, णयरमज्जेण य ते दइअपिहसा दारेण

कुंइजेहि य देववुत्सेण विसुसिया हसियकंघवरगया दइण अच्चित्तिं पयाया कोणियं पिण्णवेइ, सो नेच्छइ पित्थणा दिण्णंति,

गा नेहेण भणसि-एस सो पायो लोह

तेस सइय आव एइ ताप मओ, सुद्धपर

पच्छइ, कुमारामअहि चित्तिप-नढं रज्ज

पित्थणो कीरइ पिंददाणादी, निरयारि

य पियसंतिए दइण अद्धिती

गयइरिपणा सम सभयणसु य चआणसु य पुक्क

णयरमज्जेण य ते दइअपिहसा दारेण

कुंइजेहि य देववुत्सेण विसुसिया हसियकंघवरगया दइण अच्चित्तिं पयाया कोणियं पिण्णवेइ, सो नेच्छइ पित्थणा दिण्णंति,

१. नएववेतोयाव कोइएवढं एहीत्ता निगावाइ भवमिअ इति प्रथमित्ता। वेदेव एअपाकका। भवमिअ-एअ स पायो कोइएवढं एहीत्ता-अयाति भवमिअ-वि

मिठल भावये ( केव ) कुमारेण माराविष्यतीति ताकपुढं सिधं आसिधं पावदेहि तावप्युता। सुद्धपावतिवांता वरा दएया एइमागावो सुद्धाएएअहिअइ

पिअववद् सिद्धाति कुमारासाम्भोविमिठल-राअय अणुपाटीति ताकिअं साअव विविअत्ता-अअराअि बीअंदि कुआ राअ इअनीठ एवं पिणुः किरवे पिअइराअदि,

सिअयवे तपययसि पिअइमिदेवणा मइया एवं काळेण विसोको आतः पुणरयि अअववसिमोयाअ पिअएअकाए दइयाअयसिभंविष्यतीति सितावकाअराय। ताअयादी

करोति, यो दइअमिहओ भेअनकेअ इअिका। सम सभयवेयु ययागेयु पुक्कसिणीयु आभिरमंते सोअये इवी अअयःपुत्तिका अमिरमवदे वी य पयावदी मेअवे

वगारमएवेव य वी इअमिहओ हारेअ कुअवकाअया देववुत्सेण य विसुसिती अराअिकएअपाटी दइयाअयसि प्रयाता कोअिकं विअववसि स मेअयसि पिअा एअमिठि



एवं बहुसो २ अणवीय चितं चप्यण, अण्यथा ह्यविद्येच्छे अण्व—रज्ज्वं व्यर्थं व्यजेण विनिर्गमो सेयम्भं मम वेह, ते हि मा सुरक्ख चित्तिं देमोसि अणंसि गया समयण, एक्काए रवीय सभंतेयरपरियारा वेसाठिं अज्जमूलं गया, कोणियस्स कश्चियं—नद्धा कुमारा, सेण चित्तिं—सेवि न जाया हत्थीवि नरिय, वेहयस्स पुवं पेसह, अमरितिसिभो, अह गया कुमारा गया नाम, हरिय पेसेह, वेहगो अण्व—अह्य सुमं मम ननुभो तह्य एयवि, कह रथानिं सरणागम्याण हरामि, न देमिचि दुभो पविगमो, कश्चियं च, पुणोचि पुय पट्ठयेह—देह, न वेह सो सुणससब्बा होह एमिचि, अण्व—अह्य से रुक्कह, ताहे कोणिएण कालाहया कुमारा दसवि आवाहिथा, तत्थेकेकस्स तिसि २ हरियसहस्सा तिसि २ आससहस्सा तिसि २ रहसहस्सा तिसि २ मणुस्सकोटिओ कोणियस्सवि एचियं सद्याणिचि तिसीसं २३, सं सोज्जण वेहएण अह्यरसगप्परायाणो मेलिया, एवं ते वेहएण समं एणुणवीसं रायाणो, तेसिचि तिसि २ हरियसहस्साणि सह वेव नवरं सभं संक्षेपेण

१ एव बहुसो २ अण्वन्ना चित्तुत्तामिं अण्वरा हल्लिहलीं अमोहि—रज्ज्वमर्थं मयं मिसवमा केण्वं सभं एवं ही ह मा सुत्तं निमित्तं एवेसि अण्वो अमववं एकया ताया सम्यःपुत्तमिवाही वैजाज्जमाभं ( मत्तामह ) पाएएए एवो कोसिअव अरिहं—अहो कुमारी तेव चित्तित्तव—जायसि न जाली हरन्नासि माचि, वेहकाय हूतं मेयवधि, अमपिणो एहि गली कुमारी गली गाल हरिहं मेयव केरको मन्नाति—एवा एवं अह्य जदीयावसि अममिद्वसी एराणापवचोहरामि न दयामीसि हूता मसियाया कयितं च पुनारि हूतं अण्वणवधि—वेसि न दयाएया पुत्तसब्बो यदीमीसि मन्नाति—एवा ते रोक्को एवा कोसिकेव अजामिक्काः कुमारा दयाप्याहूताः, एवेकेकस मीसि २ हरियसहस्साणि मीसि २ अण्वसहस्साणि तिसो २ मणुज्जकोट्यः कोसिकमाप्येवाएव सवाअसि अचकिअए एव हूता येत्तेकेनाह्यएव पावराणा मेसियाः, एवं ते येत्तेकेव सममिक्कोपविहलीं राज्जवः सेवामपि हरिहन्ना मिसव हली २ एवेव नवरं सभं संक्षेपेण

सुणेतओ चेष चट्ठाय लोहदंदं गहाय नियलाणि भंजामिचि पद्माविओ, रक्खवालागा नेहेणं भणंति-एस सो पापो छोर  
 दंदं गहाय पद्मचि, सेणिएण चित्तिर्यं-न नज्झइ कुमारेण मारेदित्तिचि साछरव विस ससदं जाप एइ ताप मओ, सुहुपरं  
 अधिती जाया ताहे दक्षिकण परमागओ रज्जपुरामुक्कवचीओ सं चय चित्तो अच्छइ, कुमाराभयोहिं चित्तिर्यं-नदं रज्ज  
 होरचि ढविए सासणे छिहिसा अक्खराणि जुण्णं काकण राइणो चयणीय, एव पिढणो कीरइ पिददाणादी, भिरयादि  
 जइ, तप्पमिचि चिदनिवेयणा पववा, एय कालेण वित्तोगो ज्जाओ, पुणरयि सयणपरिओए य पियसंविए दइण अक्किती  
 होहिचि तओ निगओ वंपारायदाणीं करेइ, ते दम्मविदइसा सेयणएण गयइरियणा सम सन्नवणसु य चज्जाणसु य पुक्क  
 रिणीएहु अमिरमंति, सोधि इरयी अतंठरियाए अभिरमावेइ, ते य पढमावई वेच्चइ, णयरमन्नेण य ते दइयिइता हारेण  
 कुंइलेहि य देवदुत्तेण चिन्नुत्तिया दित्तिसंघयरगया दइण अक्किं पयाय कोणियं विण्णवेइ, सो नेच्छइ पिढणा दिण्णींसे,

१ अथवेतोत्थाय कोहववव सुदीनाम नियलाह मल्लिम इति प्रचक्षितः कोरेण रक्खाककाः मल्लिमिद-एय स पापो कोहववव सुदीनाः भवति भविकेव वि  
 त्तिर्यं जायते ( केव ) कुमारेण मारयिष्यतीति ताकगुटं विरं क्षाभितं यावदेति तावन्मुक्ता सुहुवरायतिर्नांता तथा एत्था पदमागयो मुक्कटाएवसंकिंकरव  
 भिन्वपद् विह्वति, कुमाराभासीभिन्वितं-एअयं नहुणवीति ताभिक क्षासव किंवितायप्पराणि वीचीमि इत्था एअ वयनीसं सुव विगु किंयते पिददाणादि,  
 मिखायंते, तप्पयूति पिददमिवेववा महुवा, पूर्व कालेन वित्तोको जाता पुवरयि एअवपमियोगांम पियसत्कान् दइयादवतिभंविप्यतीति निर्णयवदमन्तः। एअयानां  
 करोमि तौ दइमिदइती सेचमकेन दइयिवा समं समवयेण वयायेण पुक्कमियीणु जामिरमंते सोमिइ इती भव्याःपुमिका अमिरमयते तौ च पपावती मञ्जे  
 पगारमयेव च तौ दइमिदइती हारेण कुंइककायां वेवदुत्तेव च चिन्नुत्तितौ पादविदइककायादी दइयायतिं प्रयाता कोसिकं सिद्धययति य नेच्छति पिवा एवमिदं

कोणिभ्यो काठादीहि वसहिं कुम्भारोहिं समं मंदीर-सेमियं बंधेया एकारसमाय रत्नं करोमोसि, सेहिं पदिचुयं, सेणिभ्यो  
 वज्रो, पुषणहे अवरणहे य कससयं वधावेह, धेष्णिणाह कथाह बोयं न देह, भयं वारियं, पाणिभ्यं न देह, साहे अण्णा  
 कहवि कुम्भासे वाळेहिं बंधिया सयातं च सुर पयेसेह, सा किर पोषह सवधारे सुरा पाणिभं सधं होह । अण्णाया वत्स  
 पवभाधए देयीए पुत्तो चदावितकुमारो जेवंतस्स सच्छंभो तिओ, सो थाळे मुत्तोहि, न थाळेह मा दूमिज्झिहिहि ( अत्थिए )  
 मुत्तिभं वत्तिभं कूटं अयमेह, मायं भणवि-मम्मो । अण्णास्सवि कस्सवि पुत्तो पत्थिभ्यो वत्तिभं । मायाए सो मणिभ्यो-  
 दुरात्मन् तव भंगुसी किमिए वसवी पिया मुहे काऊण अत्थिअयाहओ, इपरहा सुमं दोवंतो अत्थिअयाहओ, ताहे चित्तं  
 मतयं जायं, भणह-किह ।, सो स्साह पुण भम गुल्लमोयए पेसेह ।, देवी भणह-मए से कया, खं सुमं सदा पिहवेरिओ  
 सदरे आरओसि सव कहेह, सहावि सुव्वा पिया न विरज्जह, सो नुमे पिया एवं वसण पाविओ, सत्स भरती जाया,

१ कोणिभ्यः काठादीनिर्दशसि। कुम्भारैः समं मन्दिरवति-मयिर्न वज्रा मुकाएव भस्माए रत्नमस्य कुर्मं वसि हैः पदिचुयं सेमिसे वदा एतदीहं वराण्यहं  
 न कथावत् वारयसि धेष्णिनाया कथाविद्वि भामर्षं ( कर्तुं ) न ददासि यत्नं वारियं पानीयं न ददासि यथा धेष्णिना कथमसि कुम्भायाए वाकेहं वज्रा  
 सयं न सुरा प्रवेदवसि सा किञ्च प्रकाशयसि पाठकुत्सा सुरा पानीय सर्वं भवसि । अत्थाया वत्स पवभाधया देव्याः पुत्र दद्यादियकुमारो वेतव वत्सहे भिन्नतः  
 स स्याते मूढवसि, न आकवसि मा वीवीदिसि ( जावसि ) सुविर्तं सावयं कूरयपववसि मावर्तं यवसि-ममम् । अण्णायाहि कज्जाहि पुत्र इवद्विओदीहि ।  
 माया स मयिवा-तवगुह्यी कमीह वमन्यी पित्ता ( वत् ) मुळे कज्जा विवतयाए, इवतायायं वए विवतयाए तया पित्तं यदु जायं ववसि-कमीं वि इवताहिं  
 मयं गुहयोदकाद् अधीपीह । देवी भवसि-मया से कज्जा, वत्स सदा पित्तदीहि, वदरे ( अण्णमभय ) आरभ्येसि सर्वं कसिं वदासि तव पिया न वर  
 होए स तया पित्तं वज्रायं मासिवा, वज्रावतिर्वाहा,

संवत्सवद्वया भगना तेषि तावसेहि रुद्धेहि सेणियस्स रण्णो कसिय, ताहे सेणिएण गहिओ, एसा सेयणगस्स वप्पत्ती ।  
 पुबभयो तस्स-एगो विज्जाइओ ज्जं जयइ, तस्स दासो सेण ज्जवधादे ठपिओ, सो भणइ-अइ सेस मम देदि सो ठामि  
 इयरहा ण, एय होवचि सोवि ठिओ, सेसं साएण देइ, देयावयं निवद्धं देवओगाओ जुओ सेणियस्स पुओ नदिसणो  
 आओ, विज्जाइओउवि ससारं हिंदिचा सेयणगो जाओ, जाहे किर नीव्सेणो विलगाइ ताहे ओइयमणसंक्कणो भयइ,  
 विसणो होइ, ओहिणा जाणइ, सामी पुच्छिओ, एय सवं कहेइ, एस सेयणगस्स पुबभयो । अममो किर सामि पुच्छइ-  
 को अपच्छिमो रायरिसिचि !, सामिणा वदायणो धागारिओ, अओ पर वद्धमददना न पायति, ताहे अमएण रज्ज दिज्जमाणा  
 न इच्छियं, पच्छा सेणिओ चित्तेइ-कोणियस्स रज्जं विज्जाइचि हलस्स हरयी दिओ विहलस्स देयादिओ दारो, अमएण  
 पवयतेण नंदाए य सोमजुयल कुंडलजुयलं हलविहलणं दिण्णाणि, महया विमयेण अमओ समज्जओ पयइओ, अण्णाया

१ तावसेहि तावसेहि रुद्धेहि सेणियस्स रण्णो कसिय, ताहे सेणिएण गहिओ, एसा सेयणगस्स वप्पत्ती ।  
 पुबभयो तस्स-एगो विज्जाइओ ज्जं जयइ, तस्स दासो सेण ज्जवधादे ठपिओ, सो भणइ-अइ सेस मम देदि सो ठामि  
 इयरहा ण, एय होवचि सोवि ठिओ, सेसं साएण देइ, देयावयं निवद्धं देवओगाओ जुओ सेणियस्स पुओ नदिसणो  
 आओ, विज्जाइओउवि ससारं हिंदिचा सेयणगो जाओ, जाहे किर नीव्सेणो विलगाइ ताहे ओइयमणसंक्कणो भयइ,  
 विसणो होइ, ओहिणा जाणइ, सामी पुच्छिओ, एय सवं कहेइ, एस सेयणगस्स पुबभयो । अममो किर सामि पुच्छइ-  
 को अपच्छिमो रायरिसिचि !, सामिणा वदायणो धागारिओ, अओ पर वद्धमददना न पायति, ताहे अमएण रज्ज दिज्जमाणा  
 न इच्छियं, पच्छा सेणिओ चित्तेइ-कोणियस्स रज्जं विज्जाइचि हलस्स हरयी दिओ विहलस्स देयादिओ दारो, अमएण  
 पवयतेण नंदाए य सोमजुयल कुंडलजुयलं हलविहलणं दिण्णाणि, महया विमयेण अमओ समज्जओ पयइओ, अण्णाया

तस्य पत्नीमि शुंभश्चक्षुषत् पत्नीमि देवपुत्रश्चक्षुषत्, शुद्धाए गहिर्याणि, एवं हारस्स लप्पवी । सेवणगस्स का लप्पवी<sup>१</sup>, एतास्य  
 वणे हरियज्जुहं परिवसह, तमिं ज्जुहे एणो हत्थी ज्ञाप वाए हरियज्जुहए मारेह, एणा गुणिणी हरियणिगा, छा न व्योसरिचा  
 एक्कहिवा चरह, अणयाया कयाह लणपिंदिरे सीसे काळण सावसासमं गया, तेसिं तावसाणं पाएसु पडिया, तेहिं पाय-  
 सरणागया चरार्ह, अणयाया तस्य चरंती वियाया पुत्तं, हरियज्जुहेण सम चरंती छिदेण भागंण्ण एणं देह, एवं संवहह,  
 तस्य तावसपुत्ता पुष्कजार्हयो सिंभंति, सोवि सोहए पाणियं नेकय सिंभह, ताहे नामं कयं सेवणज्जोति, संवह्मिओ मय  
 गलो ज्ञाओ, ताहे पोण ज्जुहवर्ह मारिओ, अज्जणा सुहं पडियणो, अणयाया तेहिं सावसेहिं राया गामं दाहिविचि मोव  
 गेहि सोमिचा रायगिहं नीओ, णयर पवेसेसा वद्धो साकाए, अणयाया कुळवती सेण चेष पुहकमासेण हुक्को किं  
 पुत्ता । सेवणग ओच्छमा च से पणामेह, सेण सो मारिओ, अणो मणति—ज्जुहवहणो डिप्पं ना अज्जणावि वियातिचि से

<sup>१</sup> यथैकस्मिन्, क्वाश्चक्षुषात्मैकस्मिन् देवपुत्रपुत्राश्च तावता गृहीताणि पदं हारलोत्पत्तिः । सेवणकालं कोत्पत्तिः । पुरुष इने हरिश्चक्षुषं परिवसति  
 वस्मिन् पुरे पुरो हत्थी आताम् आताम् हरिश्चक्षुषमाह भारवति वृका गुह्यं हरिश्चो वा आसुभौकादिभ्यो वसति अन्वया कदाचित् दुष्परिचित्वायं कीर्ति  
 क्वाह तावसासमं गया तेभ्यं कलसागं कावयोः पडिका, तेभ्योऽहं-सावसासा वताकी, अन्वया ताव अन्वयी मन्त्रविचरती पुत्र हरिश्चक्षुषेण समं वरन्ती अन्-  
 वरे अणयाय कय एप्यसि, एवं सेवयेते, ताव तावसपुत्ताः पुष्पजायः सिञ्चन्ति, सोमसि कुण्डला पाणीवयावीच सिञ्चन्ति तथा नाम कुपं सेवयन् हरि संवहो  
 मयकको जाह, तदाज्जेव पुष्परिधमोतिह, अन्वयाया सुपं मसियहं, अन्वया हैहायसे राजा मामं वाजवीसि व्योमविज्जा मोहके राजपुहं दीदा। अयं मदीय  
 वदा धाकापं अन्वया कुकपतिसेहैव एवोन्वयोवायादा, किं पुत्र सेवयन् । एवं च तस्मै दिवसि तेव स मारिता अन्वे यज्जन्ति—पुष्परिचित्त्वे  
 किंतेव माअयासि मदीयवदिचि से

पांचगंगं, अणया मरिससयाणि पंच पुत्तेण से पलायियाणि, तेण विमंगेण दिह्याणि भारियाणि प, सोउस य रोगायका  
 पाउभूया विवरीया इंदियस्या जाया वं जुगांधं व सुगांधं मखइ, पुत्तेण य से अभयस्स कहिय, ताहे चदणिउदंगं दिअइ,  
 भणइ—अहो मिढं विहेण आलिप्पइ पूइमसं आहारो, एवं किसिऊण मभो अहे सत्तम गओ, ताहे सयणेण पुत्तो स ठपि  
 अइ सो नेच्छइ, मा नरग जाइस्सामिसि सो नेच्छइ, ताइं भणति—अन्हे विगिच्चिस्सामो भुम नवर एकं मारेदि ससए  
 सबे परियणो मारेदिसि, इरयीए मरिसओ विइए कुहाओ य रत्तवंधणेणं रत्तकणवीरेहिं, दोवि दंडीया मा तेण कुहाएएण  
 अया हओ पछिभो विखवइ, सयणं भणइ—एवं युक्कस अवणोइ, भणंती—न तीरंति, तो कहं भणइ—अन्हे विगिच्चामोसि !, एवं  
 पसंगेण भणिअ, तेण देवेण सेणियस्स पुत्तेण अट्टारसवको हारो दिण्णो दोण्णि य अक्कलियवट्टा दिण्णा, सो हारो चोह-  
 णाए दिण्णो पियसि काव, धट्टा नंदाए, ताए रत्ताए किमइ चेटकमसिकाऊण अनिरक्सिया संभे आपदिआ भग्गा,

१ प्रायोगेय भन्नाए मरियपआसटी पुत्तेण सक पकासिवा तेन विअदेन एहा मारेता च पोहए ठोणावट्टाअ प्रागुभूताः विवरीया इंदियस्सामो जाता। एवं  
 पुत्तं लालुगादिअ मन्थते पुत्तेण च तस्मान्मयाय कथितं तादा बर्जोपुहोदक वीरते मयति—अहो मिढं विहयेपदिअत्ते एस्सिनासमाभारः। एवं किंनु भवो  
 अहा ससम्भा गता। तादा कलमेव तका पुत्ताः स्थाप्यते सं वेच्छति मा बरक यममिसि सं वेच्छति ते मन्थिअ—अहं विपयस्सामसं परमेक मातव तायाइ  
 सर्वाप् परिसिन्नो मारयिअस्सि विवया मरियो द्वितीयया पुत्ताहो रत्तकण्वेव रत्तकण्वीरेः (मरिचकी) दावपि मा वरिहवा भूय तेन कुहाएएणमा इता।  
 पठितो विहयस्सि सव्वं भणति—एवमुक्तामपयस्य मणसिअ—अ भवयते, एवं कयं भण्य—अयं विपयस्साम इति ! एतत्तत्तदेव मरितं तेन एवव अयिआव  
 एवेवाहाइससरिको हारो दया ही चारअएववपी वसी। स हारवेअभाधे दयाः मियेसिअस्सामा वृत्ती भन्नाए तादा रदया निअइ चरकयेदिअस्सामा इंद विहवा।  
 एवमेव आपदिती भग्गी,

संभो सेडुगवतं सामी कहेर, चाव देवो छाभो, ता तुम्मेहिं छीए किं एयं भणइ !, भगव ससं भणइ-किं संसारे  
 अण्डइ निषाण गच्छेति, तुमं पुण चाव औवासि ताव सुहं मभो नरयं जाहिसिचि, भमभो इहवि चेइयसाहुपुआए पुण्यं  
 समज्झणइ मभो देवछोगं जाहिति, काठो अइ औवर दिवसे २ एव महिससयार्द वावएइ मभो नरए गच्छइ, रावा  
 भणइ-अइ तुम्मेहिं नाहेहिं कीस नरय जामि ! केण उवाएण वा न गच्छेआ !, सामी भणइ-अइ कबिलं माहणिं मि  
 कसं दावसि कालसुरियं सूरं मोएसि सो न गच्छसि नरयं, धीमसियाणि सवप्पगारेण नेच्छंति, सो ए किर भमवसिदीभो  
 काळो, धिआइयाणिवा कयिळा न एहिअइर जिणवयणं, सेणिएण धिआइणी भणिवा सामेण-साइ वंवाहि, ता नेच्छइ,  
 मारेमि ते, वहावि नेच्छइ, काळोवि नेच्छइसि, भणइ-सम पुणेण एहिभो अणो सुहिओ नगरं न, एएव को दोसो !,  
 तस्स पुछो पालगो नाम सो भमएण उवसाभिभो, काळो मरितमारदो, तस्स एवमहिंसगसययातेहिं से कयं अहे सत्तमया

१ एतां सेडुगवतं सामी कयवति वावरेवो काठः तर्हि तुज्जामिः सुते किमेव मयसि ! वाइ मयवाइ मां मयसि मि संसारे निज्ज विचरं  
 एण्णेतं त्वं पुनयावदीवति तावसुकिठो सुतो नरकं वाज्जसीति भमव इहापि दीप्पमाहुएववा पुणं समुपादेयति सुतो देवकोटं वाज्जति कस्मिंसे वदि  
 बीरेव विवसे २ भदिअवज्जसो विपाएवति सुतो नरकं गमिअसि राजा मयसि-अइ तुज्जामि वायेपु कवं वरत्त गमिअसि ! केण दोयादेव व एच्छेवं !  
 सामी मयसि-वदि कयिकं भावणीं मिखां वावयसि काकयोकरिअए सूरं मोववसि तवा व एच्छसि नरक मयापिटो सदीमअरेव नेच्छः, स किंममव  
 सिद्धि का कालिकः धिअदीया कयिका व मयिअपयते विजववव येमिअ विजवादीया यमिळा साजा-साएइ वप्पव सा नेच्छति माएयादि त्वं एवापि  
 व मयिअपयते कस्मिंसेअपि नेच्छसीति मयसि-सम पुणवेणाइ ववाः सुली वयरे व वाइ ओ दोया तस्स पुछा पाळको वावामयेन स वज्जमिठा कस्मिंसे  
 मयुंमएएव वस मदिअवज्जसा भावेनायोवमवा एच्छमी-

अणो भणइ—किह ते नदं, भणइ—देवेहि मे नासिय, ताणि पेच्छइ—सहसहिताणि, किह सो पुग्गेवि मम सिंहाइ?, तां  
 ताणि भणसि—किं तुमे पावियाणि?, भणइ—धावति, सो जणण खिसिओ, तां नदो गओ रायणिह दारयासिएण सम  
 दारे वसइ, तस्य वारजकस्सणीए सो मरओ भुंजइ, अण्णया वइ उंदेरया सइया, सामिसस समोसरण, सो वारयालिओ  
 त ठयेवा भगवओ वदओ एइ, सो वार न छइइ, तिसाइओ मओ वावीए भंजुओ जाओ, पुणमय संभरइ, वसिण्णो  
 वावीए पहाइओ सामिवदओ, सेणिओ य नीठि, तरयेणेण वारयालिओ किसोरेण अकवो मओ दवो जाओ, सक्को सेणियं पससइ,  
 सो समोसरणे सेणियस्स मूले कोहियक्केण निविट्ठो सं चिरिका फोहिंसा सिंघइ, तस्य सामिणा छिय, भणइ—मर, एणिय  
 वीव, अमय वीव वा मर वा, कालसोरिय मा मर मा वीव, सेणिओ कुविओ भइरओ मर भणिओ, मणुरसा ॥  
 छियाया, चड्हिए समोसरणे पछोइओ, न तीरइ णाव देवोचि, गओ परं, विइयदियसे एए आगओ, पुच्छइ—सो कोचि?,

१ वदो मयसि—कय वद वदं?, मयसि—देवेमं नासिह ते पयसिह—अठिअसिवादि (पूणीव स्यादादि) कवं वद पूवमयि मा निमव? वरा व  
 मयसि—किं त्वया मासिताः? अयसि—वावमिति ए वदेव विमंतिताः वरा वदो एतो रावपुहं वाराककेन समं दारे वसति वय वाराकावासे ए म  
 वको भुंजु अमयवा वदो वदका भुंजुः अमियः समवसरवं स वाराकाक वारापिठ्ठा मगावइएवको एताः स दारं न वदति पुचार्दो वदो वाव  
 मयको वराः पूवमय वारति अमवीयो वाप्याः मवावित्ता अमिवदका भेषिकइय सिगंछति वाराका वदेव किंसारोणावन्तो पृतो दवो वराः एव अमिह  
 मयसि ए समवसरणे भेषिकइय मूले (अठिअके) कुठिकसेव निविट्ठो सं एवोवकाव एवेदीवत्ता विमसि वय वसामिना भुण मयसि—यवस अमिह  
 वीव अमय वीव वा भियव वा ककवीकरीकं मा भियव मा वीव भेषिकः कुठिठा भइराकं (मति) विवअति वमिं मयुपः॥ सीवताः वियव  
 समवसरणे वकोचिह, न वदवते वराव देव इति, एतो एव द्वितीयवीवसे मते आगताः, पुच्छति—स क इति



तंभो सेतुगमचतं सामी कहेह, आव देवो जाओ, ता शुभमेहिं छीए किं एवं अणह !, मगवं ममं भगह-किं संसारे  
 अण्डह निबाण गच्छेसि, पुमं पुण आव वीवसि साध सुहं मओ नरयं जाहिसिचि, अभओ इहवि चेइयसाहुपूसाए पुण्यं  
 समजिणह मओ देवलोमं जाहिसि, काओ अह वीवह दिवसे २ पण महिससयार्द वावाएह मओ नरए गच्छह, राया  
 मणह-आह शुभमेहिं नाहहिं कीस नरय जासि ! केण उवाएण वा न गच्छेज्जा !, सामी भणह-अह कविछं नाहणिं सि  
 वलं दावसि काळसूरिय सूर्ण मोएसि सो न गच्छसि नरयं, धीमसियाणि सवणगारेण नेच्छंति, सो व किं भमवसिदीओ  
 काओ, धिआइयाणिमा कविछा न पहिवज्जह जिणवयण, सेणिएण धिआइणी मणिवा सामेण-साह धंदाहि, सा नेच्छह,  
 मारेमि ते, सहावि नेच्छह, काओवि नेच्छहचि, भणह-मम गुणेण एसिमो जणो सुहियो नगरं व, एत्थ को दोसो !,  
 सत्स पुणो पाछगो नाम सो भमएण उवसामियो, काओ मरिचमारजो, सत्स पचमहिंसगसयधातहिं से ऊपं बहे सजमया

१ उवा सेतुगमचतमं सामी कवयसि वावरेवो जातः तर्हि शुच्यामिः सुते किमेव भवति ? आह भयवाह मां सबसि सि संसारे सिज्ज सिचंमं  
 यच्छतेसि त्वं पुनर्वाचदीवसि तावत्सुखियो सुतो वरकं वाससीति अभय इहासि कैल्यणपुत्तवा सुचं समुपादेवसि सुतो देवकोलं वाकसि कयिच्छे वरि  
 बीदेए सिचसे २ मदीएवज्जसरीं अयाएवसि सुतो वरकं एमिअसि तावा सबसि-अहं शुच्याहु नायेयु कवं नरए गमिअमिदि ! केण दोसोवेव व यच्छेव ?  
 सामी भवसि-एहि कपिकां माइवीं मिकीं वापवसि काकलीकरीयाए सूर्ण मोववसि उवा व गच्छसि वरए, मवायिदी सदीयज्जरेण नेच्छव, ए किज्जममव  
 सिदिक्का कयिक्का धिअवादीवा कपिका व मसिपयते सिनवज्ज भेजिजेव धिअवादीवा भयिया साझा-साएए वज्जस सा नेच्छति मारवासि त्वां उवासि-  
 व मसिपयते कयिक्कोमसि नेच्छतीति मणसि-मम गुणेनेपाए अहः सुली नगरं व अह को दोसः उह पुण पाछको वालामवेव स वयममिदं, कयिक्को  
 मदीमारएव, उह मदीएवज्जसमा वातेवावोवमया समसी-

भुविषी एह भणइ—यममोक्ष विवचेहि, के मगासि !, भणइ—रायाण पुष्पेहि ओजगगहि, न य पारिजिहिसि, सो य  
 चळगिओ पुष्पफळादीहि, एव कालो वसइ, पज्जोभो य कोसंघि आगच्छइ, सो य सयाणिभो तरस भएण जवणाए  
 दाहिण कूल चट्ठविचा चत्तरकूल एइ, सो य पज्जोभो न ठरइ जवणं चत्तरिं, कोसंघीए दक्खिणपासे संयायार निध  
 सिचा चिद्धइ, ता बेइ—जे य तस्स तण्हारिगार् सेसिं वायसिओ गहियओ कज्जनासादि छिंदइ सयाणि य मशुरसा परं  
 परिलीणा, एगाए रत्त ए पज्जोभो, त च तेण पुष्पपुट्टियाणएण विद्ध, रण्णो य निवेइय, राया जुडो भणइ—के देसि !,  
 भणति—बंधणिं पुच्छामि, पुच्छिआ भणइ—भगासण कूर मगाहिसि, एव सो जेनेइ दिवसे २ दीणार दइ दक्खिण,  
 एवं ते कुमारमज्जा चित्तंति—एस रण्णो भगासणिओ दाणमाणगिहीओ कीरवसि ते दीणारा देहि, खज्जादाणिभो  
 ज्जाओ, पुत्तावि से ज्जाया, सो तं बहुय जेमेयवं, न तीरइ, ताहे दक्खिणालोभेण यमेवं २ ज्जिमिओ, पच्छा स कोडो

१ गुर्ही पाठ भवति—इतरेष्वनुपादेय क मार्गायामि ! भवति—राजावमदकय पुत्तैः न च वार्धसे स चारकयः पुष्पफलादिभिः पूर्वं कालो मन्थति  
 मन्थेतस कोष्ठान्मीमायचकति स च एतापीककल अयेन बहुभावा दक्षिण कूल तयाज्योत्तरकूल पाण्डिति स च मन्थेतो न ततति बहुमशुरसिर्न, कोष्ठान्मना  
 दक्षिणपाथं रक्तपाथारं निवेशय तिष्ठति तथा मन्थति—ये च तस्य एण्हारकारययेणं जगाधितो गृहीता कलदासारं तिष्ठति एताभि च मशुरज्जायां एवं  
 परेकीयादि पुच्छतं रावीं पच्छादितः तत्र तेन पुष्पपुट्टिकयातेन दइ एतेन च निवेदिवं राजा जुडो भवति—किं ददामि !, मन्थि—ज्जाओ इच्छामि इत्था  
 मयति—भमासनेन सह कूरं मार्गयेसि एवं स जेमेसि द्वितसे २ ददाति दीयारं दक्षिणा एव ते कुमारमज्जाधिरववसि एव एज्जोम्यायमिको दानपावपूरीतः  
 चिक्खतामिति दीयाराम् ददति बहुपुणीयो ज्जाया पुत्ता भवति तत्र ज्जायाः स तद बहुक जेमियव च एवइते तथा दक्षिणालोभेन मज्जता २ ज्जिमिणः  
 पच्छादित इह

भ्रात्रो, अभिममसाद्येन, ताहे कुमारमन्ना अर्पति-पुत्रे ! विसज्येह, साहे से पुत्रा जेमेह, साणावि राहेप, संवटी कासंसेप  
 पिचणा छज्जिहमारन्ना, पच्छिमे से निलयो कभो, सायोवि से सुण्हाभो न वहा। वहिहमारन्नाभो, पुत्रावि नाहायीति,  
 तेण विविध-एयाणि मम एवेण वहियाणि मम वेव नाहायीति, वहा करोमि जहेयाणिनि वसणं पावीति, अन्नया तेण  
 पुत्रा सदाविधा, अण्ण-पुत्रा ! किं मम जीविणं !, अन्नं कुकपरंपरागभो पसुधरो तं करोमि, हो अणसणं काहामि,  
 तेहिं से काछगभो छाछभो विण्णो, सो तेण अण्णं चज्जिहावेह, चज्जोसियाभो प सवावेह, साहे नाय सुगाहिओ एव  
 कोट्ठेयंसि साहे सोमाणि जप्पादेह कुत्तचित् एत्ति, साहे मारेणा अण्ण-पुत्रोहिं वेव एव ज्ञापयवो, तेहिं ज्ञाओ, कोट्ठेप  
 गहियाणि, सोवि चट्ठेणा नट्ठो, एगाय अन्नवीए पवयदरीए णाणाविहाणं रुक्खाणं सपापसफलाणि पढवाणि विक्का य  
 पढिया, सो सारएण चण्हेण कक्को ज्जाओ, तं निविण्णो पियह, सेणं पोहं भिक्खं, सोहिए सज्जो ज्जाओ, ज्ञागभो सगिहं।

१ जार्त वरा कुमारमन्ना अर्पति-पुत्राह विष्टव वरा वल पुत्रा जेमसिह, तेपमसिह जेवेव संवति। काकम्वरे सिद्धसिद्धपुत्रमन्ना, पच्छिमे वल  
 सिक्काः क्कठा, ता अरि वल एवुवा न वया कर्हिपुत्रमन्नाः इहा अरि अदिबल्ले, तेव सिक्कलं-एते मम इवेव इहा ममेव अदिबल्ले वल करोमि वसिसेवे  
 एवमेव मम्मसिह अन्नया तेव पुत्रा अर्पित्वा, अर्पति-पुत्रा ! मम किं जीवितेन ! अकारणं कुकपरम्परमभो पसुधका व करोमि जयोअन्नदं अदिप्यामि  
 तेवमेव कुप्पमन्नाको इहा स तेवमयीव ( वज्ज ) पुत्रवति मज्झिमस्य ज्ञावति वरा जार्त सुएरीय एव ज्जहेवेसि वरा रोमाजुल्लावति कसिमा  
 पान्ति वरा माविवा अर्पति-पुत्राभिरैवेव अर्पित्वा तेः ज्ञाहिताः ज्जहेव पुदीया, सोसज्जयाव वहा एवमेव अज्जो पढवदरीं वनाजिवावी इपाया  
 एवइवइवमपि वरसिह सिक्का न पसिता, स ज्ञाएवेव वल्लेव कस्सो ज्ञाता वतो भिर्विज्ज्जं सिवति तेयोपदं सिव पुट्ठी सज्जो ज्ञाता ज्ञाता अण्णं।

भुविणी परं भणइ—ययमोक्षं विदधेहि, कं मगगामि !, भणइ—रायाण पुप्फेहि ओजगगहि, न य धारिच्चिद्विसि, सो य  
 छलनिगओ पुप्फफलादीहि, एवं कालो वच्चइ, पज्जोभो य कोसंघि आगच्छइ, सो य सयाणिभो तस्स भएण जवणाए  
 दाहिणं कूलं चट्ठयिष्ठा उच्चरकूलं एइ, सो य पज्जोभो न तरइ जवणं सत्तरितं, कोसंघीए दक्खिस्सणयासे संभायार निध  
 सिष्ठा चिद्धइ, ता धेइ—जे य तस्स दण्हारिगार् तेसिं वायस्सिओ गहियओ कज्जनासादि छिंदइ सयाणि य मणुस्सा एवं  
 पारिक्खीणा, एगाए रत्त ए पळाओ, स च तेण पुप्फपुट्टियागएण दिद्ध, रण्णो य निवेइय, राया तुओ भणइ—किं देमि !,  
 भणसि—धंभणिं पुच्छामि, पुच्छिष्ठा भणइ—अगासण कूर मगगहिचि, एव सो जेमेइ दिवसे २ दीणार देइ दक्खिस्सण,  
 एव ते कुमारामच्चा विंतेति—एस रण्णो अगासणिओ दाणमाणनिगहीओ कीरवचि से दीणारा देति, सदादाणिभा  
 ज्जाओ, पुच्चावि से ज्ञाया, सो तं धरुयं जेमेयधं, न तीरइ, ताहे दक्खिस्सणालोभेण धमेदं २ ज्जिमिभो, पच्छा स कोटो

१ गुह्यं पठि भवसि—वृत्तसूक्तमुपास्य क मर्मपाणि ! भवति—राजानमवकाशं पुनः न च वार्धसे स जावकाशं पुष्पककादिभिः पूर्व कालो ज्ञाति  
 मघोत्तव क्रीडाम्भीमामकवति स च सतापीककल्ल भवेव एतुनाथा दक्षिण कूर दयाप्योच्चरकूलं गच्छति स च मघोत्तो न ज्ञाति वसुनमुत्तरीयं क्रीडाम्भ्या  
 दक्षिणपार्श्वे स्कन्धवारं निवेश्य तिष्ठति तथा मघीति—ये च तल्ल एण्हाराकारवत्तेषां जगगामितो पुरीयः कल्लयसाहिं तिन्नचि सतामि च मणुप्पाप्यं एवं  
 पसिक्खीणादि पुक्कळा एादीं पळावित्ता तच्च तेन पुष्पपुट्टिकमालेन दद राक्षे च निवेदितं राजा तुओ भवति—इह दममि ! भवति—जाकम्भीं पुच्छामि इहा  
 मयसि—अमासवेन सह कूरं मार्गयोति एव स बोमति द्विचसे २ ददाति दीणारं दक्षिणा एव ते कुमारगामाज्जिज्जवचि एव राय्योय्यावमिक्खे दानमानपुटीवः  
 चिपटाभिनि दीनारान् ददति वसुदामीयो ज्ञाता पुच्चा भवि तल्ल ज्ञाता स एवं कूरं जेमितवधं न धव्वत्ते तथा दक्षिणाज्येमेव वप्पवा १ मिमित्ता  
 पळावत्तल्ल कूर

आभ्यो, अभिप्रकालेन, ताहे कुमाराभ्याम् अर्थति-पुत्रे । विसञ्जेह, ताहे से पुत्रा भोगेह, साणावि ठहेव, संतती क्कळंतेण पिहणा छज्जिहमारत्ता, पच्छिमे से निलयो कभो, साभोवि से सुव्हाभो न वहा व्हिहमारत्ताभो, पुत्रावि नाहार्थति, तेण विविचं-एयाणि मम पदेण व्हियाणि मम भेव नाहार्थति, सहा करेसि ज्जेयाणिवि वसणं पारिणि, भजया तेण पुत्रा सहाविथा, अणह-पुत्रा । किं मम जीविणं !, अणह कुक्कपदं परागभो पसुवहो तं करेसि, तो क्कणसणं काहामि, तेहिं से काळगभो छासभो विणो, सो तेण क्कणं चप्पिहावेह, चप्पोसियाभो य सवावेह, जाहे नाय सुगहिभो एव कोहणंति ताहे सोमाणि चप्पादेह कुसिचि एत्ति, ताहे सोरेया अणह-पुक्कोहिं भेव एव ज्जाएववो, सेहिं क्कभो, कोहेण गहियाणि, सोवि चढेया नहो, एगएय अहवीए पक्कयदरीए ज्जाणाविहारणं रुक्कणं सयापसकळाणि पढंतापि सिक्का न पढिया, सो सारएण चण्हेण क्कओ आभो, तं निविणो पियह, सेणं पोढं सिण्णं, सोहिए सक्को ज्जाभो, अगभो सगिहं,

१ ज्जणं वहा कुमाएमात्ता भजन्ति-पुत्राहं पियह वहा एव पुत्रा भोगसि, तेणमसि उवेव संतति । क्कणसरे सिक्कंविज्जुवत्तम्, पच्छिमे उक्क भिक्काः क्कणं, ता क्कवि वक्क सुव्हा न वहा क्कंविज्जुवत्तम् । पुत्रा क्कवि क्कविज्जुवत्तं, तेव सिक्कं-एवे मम ज्ज्जेव वहा ममेव क्कविज्जुवत्तं उक्क करोमि वक्केमसि एवमम म्मुवन्ति अणहो तेव पुत्रा क्कविज्जुवत्तं, अर्थति-पुत्रा । मम किं जीवितेव ! अणमं कुक्कपदं परागभो पसुवहो तं करोमि उयोक्कणं क्कविज्जुवत्तं तेव क्कणस्यो वहा, स तेवमवीव ( एव ) पुत्रवन्ति अण्णुवत्तम् ज्जावन्ति एव ज्जणं सुपुटिय एव क्कहेवेसि वहा रोमाणुवत्तम् क्कविज्जुवत्तं पानि वहा माधिया भजन्ति-पुत्राभिरवेव क्कविज्जुवत्तं । क्कविज्जुवत्तं क्कहेव पुटियाः एवमणुवत्तम् वहाः एवम अण्णुवत्तं पढंतापि वक्कविज्जुवत्तं वक्कविज्जुवत्तं पढिया विक्का न पढिया, स एवमेव वक्केव क्कणं ज्जावत्तं, एवो भिक्कंविज्जुवत्तं सिक्का, तेवोवत्तं सिक्का पुट्टी उक्को ज्जावत्तं ज्जावत्तं क्कणं.

आगभो इषारयाळेहिं विहिओ, सारवारा पुर सारवारा राया पळिलगार, सो नितगभो, नार अधिपीए नितगभो  
 पवइओ एइणा घरसिओ, निपाणं करेइ-एयस्स पहाए सवयआमिचि, कालगभो, अधिहिओ पाणमंतरो  
 आओ, सोइधि राया सावसभओ सावसो पवइओ सोधि पाणमंतरो आओ, पुणिं राया सेणिओ आओ, हुंटी  
 समणो कोणिओ, संं वेव वेइणाए पोदे सवयणो संं वेव चितेइ-कहं रायाण अक्खीहिं न पेक्खआ १,  
 सीए चितियं-एयस्स नरभस्स दोसोचि नरभं, सारणेहिधि न पवइ, होइलकास दोइओ, किइ १, सेणिपस्स  
 उदरधळिमंसाणि सायआ, अपुरे परिहायइ, न य अक्खार, णिकये सवइसापियाए कहिय, तओ अभयस्स  
 कहियं, ससगवमंण समं मंसं कप्पेणा पळीए सवहिं दिअ, सीसे ओलोचणगयाए पिच्छमाणोए दिअइ, राया अलिपप  
 मुळिअयाणि करेइ, वेइणा आहे सेणिय चितेइ ताहे अलिपीय उप्पआइ, आहे नरभं चितेइ साहे कइ सवं साएअचि १,  
 एवं चिणीओ दोइओ, पावहिं मासेहिं दारगो आओ, रण्णो णियेइय, तुहो, दासीए छुटायिओ असोगयणिपाए, कहियं

१ आगभो इषारयाळेहिं विहिओ कहियस। आगभो एहिआरा राया पळिलगार, सो नितगः अक्खआ निपंणं पवइए पुरेव चरितं। दिआन करोति-  
 पवइस वयावोपयवे इति ककमसः अस्सदिओ अत्थतो आता, सोअये एतां तापसभअः तापसः पमंमिका सोअये अत्थतो आता पूरे राया अभिके  
 आता। हुंटीअमनाः कोमिकः, एदेव वेइणाया उदरे उदरअसीइ चित्तपति-कय रायाअमंमिका न पेक्खेव उवा चित्तिउ-पुवस गमंअ दोव इति गमं  
 ससवेरापि न पठति, दोइइकासे दोइइ। कयं १, ओमिकलोवरचिमांसाणि आदेयं, अपुरंसाये परिहीयते न आक्खति निर्दये अरपयासितरा कहियं  
 एवेउप्पयाए कहियं, पक्ककर्मअ समं मांसं कस्सयित्ता वक्का वपमि वृण तासाएवकोकमगावादे मेक्खमावादे पीयते ताया अकीअपूजंवादि कोमि  
 वेइआ पवा मेमिक चित्तपति उवाउइसिअपये, उवा गमं चित्तपति पवा कयं उरं आवेअमिति पुर अयपीओ पीइइ। ववहु मासेवु उवाओ अत्थः एवे  
 निवेदीयं उवाः उवासा आतिओओकअमिअवा, कहियं

‘सेषिषस्स, आगमो, धंवाहिया, किं से पढमपुणो चरिअओचि ।, गओ असोगवणियं, सेणं सो उज्जीविओ, असोगवरो से नाम कयं, तस्यवि कुजुदरिपिअणं कोणगुलीडहिविआ, सुकुमाखिया सा न पढणइ, कूणिआ आधा, चाहे से दारएहि नामं कयं कूणिओचि, आहे य त अंगुलिं पूइ गसति सेणिओ मुह करेइ चाहे ठाति, इयरहा रोचइ, सो य संवइइ, इओ द अण्णे दो पुआ वेअणाय आया—इओ विइओ य, अण्णे सेणियस्स बइवे पुआ अण्णासिं देवीणं, आहे य किर उज्जा-  
णियाअवाचारो आओ, चाहे वेअणा कोणियस्स गुळमोयए पेसेइ इअविइअणं खंडकए, सेण वेरेण कोणिओ चित्ते एए सेणिओ मन देइसि पओसं पइइ, अण्णया कोणियस्स अइहिं रायकआहिं सम विवाहो आओ, आव चरिं पासा ययरगओ विहरइ, एसा कोणियस्स उण्णयी परिकहिया । सेणियस्स किर रण्णो आवतिपं रअस्स मोअं तावतिवं देव विअस्स हारस्स सेपणगस्स गवइत्थिस्स, एएसिं उअणं परिकेयव, हारस्स का उण्णयी—कोसंवीए पायरी चिआइणी

। अेअिकाए भायस। उपाकयइ कि उपा मयमपुइ उअिकव इशि। गतोअोअअअिकं तेव स उअीसिआ अओअकअअकअ गान कुं उअसि कुजुद विअेअ ओअअगुकिअसिअिआ सुकुमाअिकअ सा य मगुअीअवसि अअ आता उपा उअ दारैअमं कुं इअिक इसि यपा य उअा अगुअण पइसि। अवसि अविअओ मुअे करोसि उपा उयरउसइओ मवसि इउअा रोसि स य संवयेसे इउअाअओ ही गुली वेअण्णया आतो इओ विइउअ अण्णे सेअिकअ बइवा पुआ अण्णया देवीओ यपा य अिक उअाअिकाअकअआतो आउअपा वेअण्णा कोअिकअ गुअओअकअ पेअे इअविइअण्णा अण्णयाअण्णो तेव देवेअ ओअि-  
अअिअयसि पुवाइ ओअिको मअे ददणीसि मअेवं बइसि अण्णया कोअिकअआसि। एअकअआसि समं विवाहो आता यपाए अपरि मअवाअवरअ गतो विहरसि पुआ ओअिकओअसि। परिकअिआ । ओअिकअ अिक वाअए एअअअ मूअं वाअए देवदउअ हारअ सेअअकअ मअइइअिआ, उअओअकअयं परिकअविउअ, हारअ ओअसि। १—ओअाअया अिआअवीया

केयं !, अमर्यो भणइ-को समरयो सरस रुचं क्वाव !, सं वा त वा छिदियं, धासचेदीहिं कण्ठांतउरे क्वावियं, ताओ भणि  
 याओ-आणेह ताव तं पद्दगं, दासीहि मणिओ न देइ, मा मज्झ सामिए अवस क्वादिहि, धरुयाहि ज्ञापणियाहि दिण्णो,  
 पच्छज्जा पवेसिओ, दिट्ठो सुजेहाए, दासीओ विभिण्णरहस्साओ कयाओ, सो धाणियओ भणिओ-कहं सेणिओ भसा भयि  
 जइ !, सो भणइ-जइ एव सो इहं जेव सेणिय आणेमि, आणिओ सेणिओ, पच्छज्जा सुरंग खया ज्ञाय कण्ठावरं,  
 सुजेहा चेक्षण आणुच्छइ-जामि सेणिएण समंति, दोवि पहावियाओ, ज्ञाय सुजेहा आमरणण गया ताव मणुत्सा सुरं-  
 गाए लब्धुवा चेक्षण गहाय गया, सुजेहाए आराही मुक्का, चेक्षणो सनद्धो, वीरंगओ रहिभो भणइ-भट्टारगा ! मा तुक्कं  
 वच्चेह, क्वाहं ज्ञाणेमिचि निगयो, पच्छज्जा लज्जइ, तस्य दरीए एगो रहमगो, तस्य से पत्तीसंपि सुलसाणुवा ठिवा, ते  
 वीरगाएण एकेण सरेण मारिया, ज्ञाय सो से रहे ओसारइ ताव सेणिओ पत्ताओ, सोवि नियचो, सणिओ सुजेहं सत्तपइ,

१ क्वां ! अमर्यो भणति-कः सममयास क्व क्वं ? यद्वा तद्वा किञ्चित् दासचरीमिः कणाज्ज-जुरे क्वचित् ता मयिवाः-ज्जावव तावदं सं पद्दं  
 दासीमर्यादितो न ददासि मा मम ज्ञाभिजोउवणां कार्पाय्, बहुकामिर्वाचवाविर्दवाः पच्छजं पत्तीयता इहः सुरयेववा दासो विभिन्नरहसाः क्वाः स  
 वसिमा मयिवाः-क्वं सेनिको भर्ता भवेत् ? स भणति-यदेव तादेव सेनिकमाववामि ज्ञायताः सेनिका पच्छज्जा सुरादा ज्ञावा दासकणाज्ज-जुरे न  
 भवेत्ता चेक्षणमापुच्छति-यामि सेनिकेव ज्ञामिमिहि हे भवि मय्याविते यावद सुरयेहा ज्ञायारयेम्यो यता तावद मणुत्साः सुरादावो वधावावेठणां पुरीषः  
 गावाः, सुरयेववाउज्जादिमुक्का, चेत्तकः सत्तव्वं, वीरगरो रयिको मज्झि-मट्टारका ! मा पूव ज्ञिह्व भट्टारकामीति शिरंगा इहवो ज्ञयसि एव द्वायेको  
 रयमम्योः एव ते द्वावज्जद्वयि सुकसाणुवाः किज्जाः, ते वीरगदेवैकेव योष्य मारियाः स यावज्जाइ रयाव ज्ञपमारावदि तावदं मयिकः पत्तीयताः सोऽपि  
 भिदुवाः सेनिकाः सुरयेहा संभवति



सा भणार—अहं वेष्टणा, सेणिभो भणार—सुखेदुखरिषा पुमं वेव, सेणिवत्स हारिसोवि विषाभोवि विषाभो रद्विसमारयेव  
 हरिसो वेष्टणाळंमेण, वेष्टणाएवि हरिसो वत्स क्वेणं विषावो भणिणीवण्णेण, सुविद्धावि चिरत्तु काममोगाणीवि पव-  
 तिषा, वेष्टणाएवि पुणो जावो कोणिभो माम, वत्स का वण्णी १, एयं पवण्णपरं, सत्थ विवसजुरण्णो पुणो सुमंगलो,  
 अमच्चपुणो सेणगोवि पोद्विओ, सो हसिअह, पाणिए वच्चोउण्हिं मारिअह सो बुक्खाविअह सुमंगळेण, सो सेण निवे  
 एण वाउववत्सवी पवहभो, सुमंगलोवि राया जावो, वाण्णया सो तेण ओगासेण वोउतो वेक्खहं स वाउववत्सि, रण्णा  
 पुच्छिय—को एत्तसि १, ओगो भणार—एव परिसं ववं करोति, रायाए अणुकेण जाया, पुहिं बुक्खाविपगो, निमंतिओ, मम  
 घरे पारोद्विहि, मात्तकत्तमणं पुण्यं गभो, राया पव्हित्तगो न विण्णं वारयाउहिं वारं, पुणोवि वद्विषं पविद्धो, संमरिओ,  
 पुणो गओ निमंतेह, आगओ, पुणोवि पव्हित्तगो राया, पुणोवि वद्विषं पविद्धो, पुणोवि निमंतेह उहणं, सो सववाए

१ सा मय्यसि—अहं वेष्टुया ओमिओ भणति—सुखेदुखरिषा वत्सोव वेणिवत्स हारिसोवि विषावोवि विषावो रद्विसमारयेव वेष्ट  
 णाया अरि हर्षकत्त क्वेण विषावो भणिणीवण्णेण सुखेदुखरिषा विषावो काममोगाणीवि पवतिषा वेष्टणाया अरि पुणो जाता कोमिकत्तमा एव वद्विषा १  
 एव मत्तमत्तमपरं एव विवसजुरात्तम पुणः सुपव्हकः अमात्तपुणः सेणक इति महेव १। ए वत्तो पविक्कमा वद्विद्धोमंतिं ए वत्तमे सुमंगळेव, ए वेव  
 विवेद्वेव वाउववत्सवी मय्यसि १। सुमङ्गलोमि राजा जाता, अमपए ए सेवावत्तमेव वत्तमत्तमपरं एवति एं वाउववत्तमं राजा एव—ए एव इति १  
 कोको भणति—एव इत्यां वरः करोति एवोदुक्कमा जाता एव इति इति ओ मियत्तमा मम एव पारोद्वि मत्तकत्तमे एव गता राजा मयिक्कया ( प्काओ  
 जता ) ए इव हारयाउहिं, पुणोवि विपगो ( पुणिको ) मयिह, वरपुणः, पुणोवि मियत्तमवि, जायता, पुणोवि मयिक्कमा राजा, पुणोवि मयिह, पुणोवि मियत्तमवि  
 पुणोवि मियत्तमवि वद्विषं पविद्धो, ए वद्विषं पविद्धो

अक्षपकं गहाय निगया, तं पि भिष्णं, सद्यं पि भिष्णं, सुदो य साह्य, अक्षाविहिं वसीसगुधियाव देह, कमेण सादि,  
वसीसं पुचा होहिति, जया य से किंचि पओयण साहे सभरिआसि एहामिति, साए चितियं—केधिर पाळकयाण अमु  
इयं महेस्सामि, एयाहिं सवाहिं पि एगो पुचो हुआ, सद्यओ, तओ णादया वसीस, पोह पडुह, अदिदीए कावस्सगा  
ठिया, देवो आगओ, पुच्छइ, साह्य—सवाओ सद्यओ, सो भणइ—दुहुं ते कय, एगावया होहिति, देवेण उपसामियं  
उ अत्ताय, कालेणं वसीसं पुचा आया, सेणियस्स सरिसवया धुंति, उडविरहिया आया, देयदिनधि विक्खाया । इओ  
य वंसाळिओ चेहओ हेइयकुलसमूओ तस्स देवीणं अन्नमन्नाणं सत्त भूयाओ, तज्जा—पभावई पवमायई नियायई सिपा  
जेहा सुजेहा चेहणत्ति सो चेहओ सावओ परविवाहकारणस्स पच्चस्सायं ( ति ) भूयाओ कस्सइ न दइ, ताओ मादि,  
मिस्सग्गाहिं रायाणिं पुच्छिआ अणेत्ति इच्छियाणं सरिसयाणं देह, पमावती वीईमए णये उदायणस्स दिण्णा पवमायई

१ अन्वयक पुरीत्या निर्गता एवमि शिबं पुरीयमपि शिवः पुण्ड्र कथयति यथाविधि हार्दिकगुटिका एवाति अमेव एतदेवः हार्दिकपाद गुणा मसि  
 एवमपि वदन् दे किमिदं मयोक्तं वदन् संकोरेः आत्मानामीति वया विविध-किमिदं वाक्यस्यात्मासुवि सर्वमिष्यमि एताभिः सर्वमिभरति वृत्ता  
 गुणो मयत्तु वारिताः एत मत्तवा हार्दिकपाद एतं वर्धते मत्तवा कथोक्तमपि स्थिता वैव भागवतः पुण्यति कथयति सर्वो हार्दिकः स मयति-दुर्दं नवता  
 इतं एकगुण्य मसिप्यति वैवोपयमिति एताव कठिमे हार्दिकपाद गुणा जाताः भेदिकता एतदवयवो वर्धते वैवमिदं आता एवदवा हर्दिसि  
 कथाताः एतन्न वैवमिदमेतन्नो वैवदुक्तसंयुतो एत वैवमिदमन्वयमिदं सप्त पुष्टितः एतय-मत्तवती एतावती विद्या अयेवा सुमन्ता वदमपि  
 स वेदकः भावकः एतवीवदकरतलस मत्तवतामिति सुष्टितः कथयिदं न वदमि एता मत्तमिदमितिः एतावं पुष्टायेनय इदमः एतामयो वीवमे  
 मत्तवती वीवमये वदमप्यम वदता एतावती

वेपाय दृष्टिवाचकास्तु मियार्हं कोसंवीप सयाणियस्तु सिवा उज्जेवीप पञ्चोपस्तु जेहा कुंडरगामे दृष्टमापसाभिषो जेहस्तु  
 णंदिबद्वपस्तु दिष्णा, सुजेहा जेहणा द कण्णयायो अण्ठंति, तं जंसेवरं परिवावणा अहगया ससमयं तासि करेह, सुजे-  
 हाए निष्पिहपसिणवागारणा कया सुहमकहियाहिं निष्पूहा पथोसमापण्णा निमाया, अमरिसेप सुजेहाकव चित्तफउहे  
 काकण सेणिपरमागया, दिहा सेणिपण, पुच्छिया, कहियं, अथिठिं करेह, दूथो सिंसज्जिओ वरगो, तं मण्ह जेहगो—  
 किहह वाहियजुसे देमिचि पडिसिज्जो, गोरतरा अथिठी लाया, अमयागमो छाहा णाय, पुच्छिअ कहियं—अण्ह वीसत्ता,  
 आणमिचि, अतिगमो निययमवणं उवायं चित्तो वाणियकवं करेह, सरमेयवण्णमेयात्त काकण देसाहिं गयो, कण्ठमे  
 उरसमीये आवणं गिण्हह, चित्तपहए सेणियस्तु कवं छिहह, जाहे ताओ कण्ठासेउरवासीयो केज्जगस्तु पए ताहे सुवहं  
 देह, ताओचि ए दाणमाणासंगहियाओ करेह, पुण्ठंसि—किमेयं चित्तपहए !, मण्ह—सेणिओ अण्ह सामी, किं पुरिसं सस्तु

१ जन्माद्यो दृष्टिवाहवाय सुगमवर्धो वीद्यामन्त्रां अवाधीक्याव शिवोऽपिन्वां प्रयोथाव जेहा कृत्वायसे वर्धमावज्जामिओ जेहउव दक्षिणवर्धनक दृष्टा  
 सुत्थेहा जेहवा द कन्थे विहवा उद्वत्तादुरं प्रमादिकाऽसिगता अउमय ताओ कयपसि सुत्थेहवा सिट्ठवाकवत्तकत्ता कया सुज्जमंकेदिकमिनिर्द्विदिग  
 मदेवमापणा भिगता अमर्येण सुत्थेहाकव चित्तफउहे कया ओथिकपुहमापणा उहा ओथिकेव उहा कथितं जवतिं करोति दूवो सिपुओ वरक, उ मज्जति  
 जेहकः—कयमहं वादिकपुहाय दृष्टामीति मतिचिन्ता गोरतराउवतिः जाला अमयापमो वया जाले पुहे कथितं—सिउव सिक्का जालवामीति जवतिगव  
 सिद्धमवय दयाय चिगपपद् दक्षिणूरं करोति कलमववर्धमेवो कया सिक्कां पाठा कयाऽमवागुरसमीये आरप पुहाति चित्तपहवे ओथिकक कयं चिज्जति  
 पदा वा अण्डऽगुरवादिभ्यः कयायावाभिज उदा सुवहं दृष्टाति वा अपिच वावमावर्धपुहीयाः करोति पुण्ठंसि—किमेयं चित्तपहए ! मज्जति—अभिन्नेऽप्याहं  
 ज्ञामी सिमीत्या वस्तु

दारुपहिं चियगा कीरव, सस्य पविसामि, राया विसओ, सुद्धो सक्कारेव विसज्जिओ, चाहिं अमओ भणइ-मह सुवभाहिं  
 छल्लेणं आणियो, सुवमे दिवसओ आइअं दीवियं काकण रक्खव णयरमभसेण अइ न हुरामि तो अग्गि अतीमिचि, व  
 मज्जं गहाय गओ, किंवि काळं रायगिहे अच्छिळा दो गणियादारियाओ अप्पदिक्याओ गहाय पाणियगयेसेण चअ  
 णीए रायसगोगाढं आवारिं गेणइइ, अण्णया दिहाव पज्जोएण, चाहिं विसविलावाहिं दिक्खीहिं निन्नाइओ अंजली य से  
 कया, अइयओ नियगभवणं, दूती पेसेइ, चाहिं परिकुवियाहिं धाविया, भणइ-राया ण होदिचि, दीयदियसे सणियगं  
 आरुसियाव, सइयदियसे अणिया-ससमे वियसे देवकुळे अमइ देवअण्णगो तरय विरहो, इयरहा भाया रक्खइ, तण य  
 सरिसगो मणूसो पज्जोचसि नाम काकण सम्मत्तओ कओ, भणइ-मम एव भाया सारयेमि णं, किं करोमि ? एसो भाइ  
 गेहो, सो रद्धो रद्धो नासइ, पुणो इक्कविकण रद्धो पुणो २ आणिअइ चट्टेइ रे अनुगा अनुगा अहं पज्जोओ दीरानिचि,

१ दास्येनसिद्धिका पियवो तव प्रसिधामि राजा शिवज्यः दुष्टा सारुज्य विवदः तदाऽसतो भवति-अहं शुष्माभिःपुच्छेयतीति। शुष्माइ विवस  
 भादिअं दीपिकं कृत्वा रटव वयरसयेव दासि व वदि तवामिदं प्रसिधामीति वो भायां पुद्दिता गवः कटिज्ज्ज्ज्जं राजपुद्दि विवरा हे गतिक्करादिंके  
 कयतिअये पुद्दिता वसिन्नेवेज्जोअधिय्या राजमायावयाभाएयं पुद्दिता भवत्ता एदे प्रयोतेव, ताम्यां शिवसिद्धासामिर्दिधिमिअतः अभाकिअ तका कृता  
 अठिगावो सिअभवदं दूतीं प्रयेते ताम्यां परिकुविताम्यां धावित्ता, अज्जदि-राजा व भवतीति द्वितीयदियसे सदीराएदे दुर्धवदियसे अठिगा-ससम दिवसे  
 देवकुळेअमाकं देववक्काम दिवदः इतराया भराता रक्खति तेव व सारयो मणुज्यः प्रयोत इति नाम कृत्तोमयाः कृता भवदि-सदीव भाराता रक्खामि एवं  
 किं करोमि मणुज्जेइ ईदवः स रद्धो रद्धो नरपति शुभः इत्थानिचि रटव शुभः २ भावीवते वीचिअव रे अनुकाः १ २ अहं प्रयोतो दिवसे ईदव

तेष्व सत्यमे दिवसे दृष्टी वेसिषा, एव पञ्चमवसि भणिभो आगभो, गवकस्य विरगो, मणुस्सेहिं पडिबन्नो पठकेण समं, हारि दिवसभो पयरमन्नेण, विहीकरणमूलेण पुच्छिञ्जइ, मणइ-विज्जमर् गेञ्जइ, अगभो आसरहेहिं वन्निस्सो पावि भो रायगिहं, सेलियस्स कहियं, अहिं अछिवा आगभो, अमएण वारिभो, किं कज्जइ, सक्कारिवा विज्जिअभो, पीर आवा परोप्परं, एवं ताव अभयस्स वट्ठाणपरियावणिपा, तस्स सेणियस्स वेट्ठणा देवी, सीसे वट्ठाणपारियावणिपा कहिअइ, सस्य रायगिहं पसेणइसंतिभो मागनामा रहिभो, तस्स सुलसा भज्जा, सो अनुचभो इदकसंवादी यमंसइ, सा साविपा नेच्छइ, अस्स परिणोहि, सो मणइ-एव पुचो सेण कज्जं, सेण वेज्जोवएसेण सिहिं सयसइस्सेहिं विस्मि वेठ पुठवा पक्का, सक्काए संजायो-एरिसा सुलसा साविपाचि, देयो आगभो छाह, वज्जावियकवेण निगीहिया कया, वडिवा एदइ, मणइ-किमागमणं सुभं, सयसइस्सपायवेडं तं देहि, वेज्जेण उवइहं, देमिचि अगिगया, उचारंतीए सिद्धं,

१. सव सयमे दिवस दृष्टी मरिवा पुकादी आयाविमि अविठ आसता, ताको सिक्का मणुचो मरिक्का पक्कइव ससं पुरते दिवसे कस्यअन्नेव, धीपकरमूठव पुप्पयव, मज्जहि-ईएणइ भीयते अमलोभरयेकीअसः मासितो राजपुहं, वेज्जिअव कथितं, वसिमाणुअगसता अयवेव याहीवा किं विरवा, साक्कारिवा सिद्धः, मीठिअंजा वारसं एवं तावए अयवसेलियस्सवर्पायसिक्का सक्क वेज्जिअव विट्ठमदेवी उक्का अयववर्पायसिक्का कस्यते सव राजपुहे मज्जमिआसक्को अयवमासा रियकः, सक्का यावी सुलसा सोअणु इअस्समवादीइ वसकसि सा आसिक्का वेज्जसि यज्जा परिअव ए यज्जि-एव पुठवाव काव सेव वेपोवएण विमिः सलसइदीअयाः पैकुअयाः वक्का, पुक्का सक्कावे संजाय-ईएवी सुलसा आसिक्केसि देव वससता छाहुः उ-आअस्सयव नवविही दृता, हायाव वज्जुवे, मज्जहि-ईमयवमासमर्वं पुप्पाकं, सलसइअयाकदीडं पदेहि, पैवेवोवदीडं वृत्तमीअसिपवा अववाएअज्जा सिद्धं

एतं वीथो धरो, अमपण भणियं—एसोवि तुळमं येव पासे अच्छव, अण्णे भणति—वज्जाणिपागओ पज्जोओ इमा दारिया।  
 णिम्माया तत्थ गाविज्झिद्विस्सि, तस्स य ओगंधरायाणो अमच्चो, सो वम्मसगधेसेण पट्टइ—यदि तां धेय तां धेय, तां धेया  
 ड्ययत्तलोचनाम् । न हराभि नृपस्यार्थे, नाहं योगंधरायणः ॥ १ ॥ सो य पज्जोएण दिट्ठो, ठिओ कारयं पयोसरिठं, णाय  
 रो य कओ पिसावच्चि, सा य कंधणमाळा विभिन्नरहरसा, यसत्तमंठेणवि चचारि मुत्तपट्टियाओ पिळइयाओ पोत्तयवी  
 धीणा, कच्छाप पक्कतीए सक्कुत्तो नाम मठीए अयलो भणइ—कृषायां पय्यमानायां, यथा रसति दस्त्रिनी । योजनानां  
 क्षतं गत्वा, प्राणत्याग करिष्यति ॥ १ ॥ ताहे सबअणसमुदओ, मम्मो उदयणो, भणइ—एय प्रयाति सार्थः क्रामानमाळा  
 धसन्तकक्षैव । भद्रवती पोयवती धासवदसा उदयनक्ष ॥ १ ॥ पहाचिया हस्तिणी, अनलनिरी जाय संनरुइ साय पणपीसं  
 ज्ञोयणाणि गद्याणि सनट्ठो, मगालगो, अदुरागए पट्टिया नग्गा, जाय स चत्तिस्सयइ ताय अण्णाणिवि पंचपीस, एय तिणिणिवि,

१ एव द्वितीयो वरः अन्येन मिलित—पुनोऽपि बुद्ध्यात्मनेव पासें तिष्ठत अन्ये अर्थादि—व्याधिक्रमता प्रत्येक इत्थं च दारिका निष्पाता इव गालस्यैव  
 तस्य च दोषाभ्युदाययोगमात्रः । स उभयाकक्षेरेण पट्टति—स च प्रयोतेन दृष्टः क्रियतः कायिकी प्रमुखाई । असाय कुट्टः पिच्छाच्च इति सा च क्रायवसायः  
 विभिन्नरहरसा, वसन्तमेव्हेनापि चत्तलो मूढपट्टिका निष्पतिताः पोयवती वीथ्या कृषायां पय्यमानायां सपुरातो नाम सन्धी (सत्कोरको रणे नाम) सन्निवृत्ता-  
 न्यो सन्वते—तदा सदैववससुदयो मध्ये यथायथो वर्तते । यवति—प्रवासिता द्रष्टव्यी अथकागिरीचवत् संवदते तावत् यथापिचरि चान्नवाचः । एतः वरः  
 मार्गेकषः अदुरागये भटिका मग्गा, धावतामुज्झिज्झति तावदुत्पाप्यपि यथापिचरि, पुनं वीथ् वारात्

नगरे च बह्वर्गभ्यो । अल्पया उन्मेषीय अगती चक्षिभ्यो, गणरं दन्तस्य, अमन्थो पुच्छिभ्यो, सो भण्ड-विषय विषमौषधं  
अधेरप्रिरेव, ताहे अगतीव अण्यो अगती कभ्यो, ताहे ठिक्को, तरभ्यो वरो, एसवि अण्णव । अण्णया उन्मेषीय अस्सिं  
चक्षिं, अमन्थो पुच्छिभ्यो भण्ड-अभिन्तरियाए अण्णणीए देवीभ्यो विद्विस्सिवाभ्यो एज्जंणु, आ जुक्कं रायाळंकारविमूखिए  
विणारं त मम कहेज्जह, तदेव कयं, राया एउोपयति, सभा हेउाण्णी ठायंति, सिवाए राया विक्को, कहिंयं एव जुज्जमान  
गाए, भण्ड-राखिं अवसण्णया कुंभकसिए अण्णणियं करेव, अ मयं उन्मेष वस्स मुहे कूरं सुक्कमह, तदेव कयंति, विषयवन्ने  
अट्टालए ए आहे सा देवया सिवाकयेणं वासरं ताहे कूरं सुक्कमह, भण्ड य-अहं सिवा गोपाळगमावति, एवं सवण्णिवि  
निज्जयाणि, संती आया, एए चतरयो वरो । ताहे अमन्थो विंतेर-कंजिरं अण्णभ्यो !, आनोत्ति, भण्ड-महारागा । एए  
दिज्जणु, धरेहि पुत्ता !, भण्ड-जलगिरिंमि हरियमि सुक्कोहिं निपेठेहिं सिवाए उण्णंभो निवन्थो ( अग्निंसाहंमि) अग्निमीकस्स रहस्स

१ वपरे आठिगावः । अल्पदोष्मधेयान्नामिदमेष्यतः, वपरे दृष्टते अमन्था एका स मन्थि-वराभ्योन्मेषीया उन्मेषया सिक्ता । एउीभ्यो वरा, एउीभ्यो  
विहवु । अमन्थोन्मेषिनामिदमुत्तिष्ठं अमन्था । एउी मन्थि-अमन्थोन्मेषीयागमागमाभ्यो देव्यो विपुत्तिता अण्णण्य वा सुप्पान् रायाळंकारविपुत्तिनाम् । अन्थि  
तो मयं कयवत्त एउेव कूरं राया मन्थोन्मेषिं एउं । अण्णण्यं सिहमिं ( हीना एउमन्ते ) सिक्ता राया सिक्ता कहिंय एव कहुयाआ मन्थि-रायाव-  
सभा जुगमवकिक्कयाउचमिका कुंरंणु, सो मूए वटिचवति एज्ज मुक्के कूरं सिक्कति एउीव कुरमिमिं सिक्के अण्णुण्णुण्णुण्णे च वरा सा देवता सिवाकयेणं एउति  
वरा ह्राः सिक्कते मन्थिं च-अहं सिवा गोपाळकमावति मूए सर्वेभ्यो निर्विगाः आठिचमैता एव चणुवो वरा । एउण्णवविमन्थवति-विज्जिन्ते सिक्का !  
वाम इति मन्थि-महारागा वारा दृष्टतु, दृष्टुए पुत्ता !, मन्थि-अण्णवगिरी वटिचमि सुप्पामु मेउेदु सिक्काया एउाहे विपन्थोभ्यो मन्थिमांमि अग्निमीकस्स

ठंठेचा पक्षाधिको, पुणो दूरं गंतु पक्खादिको, तस्यपि धारिको तद्वयपि धारिको, तेषां चित्तिय-भविष्यं कारणेणंसि पज्जो  
 यस्स मूल गओ, निवेइयं रायकज्जा, स च से परिकट्ठियं, अभओ वियक्खणोसि सदायिको, तं च से परिकट्ठियं, अभओ  
 सं अरवाइव सवलं भणइ-एरथ दवतंओएण दिट्ठीविसो सप्यो सम्मुच्छिमो आओ, जइ तस्यदिइयं होतं वो दिट्ठीयिसण सप्येण  
 खाइको होइ(त्तो), तो किं कज्जव ?, यणनिवंसे मुएज्जइ, परंमुहो मुक्को, यणाणि दग्धाणि, सो अत्तोमुत्तण सओ, सुहो  
 राया, भणिओ-ययणविसोक्खवज्ज वर वरेइत्ति, भणइ-सुहम येय हरये अत्तइव, अण्णयाज्जलगिरी वियदो न सीरइ धत्तु,  
 अन्नओ पुच्छिओ, भणइ-सदायणो गायवत्ति, सो वदायणो कइ वज्जोत्ति-तरस य पज्जोयस्स भूया पासवदसा नाम,  
 सा धत्तुयाव क्कताव सिक्खापिया, गंधेण वदयणो पक्षाणो सो वेप्पवत्ति, केण वयाप्पंतं ?, सो किर अ इत्थि पत्तइ  
 तरथ गायइ जाव वंधपि न याणइ, एवं कालो वज्जइ, इमेण जंतमओ इत्थी काराधिको, तं सिक्खसायेइ, तरस पिसयए

१ इत्याद्य प्रधासितः पुनर्दूरं गत्वा प्रक्षादितकालादि शीतः पृथीयसीति शीतः तेन चित्तिय-भविष्यं कारणेनेति प्रयोक्तव्यं मूलं सवो निवेइयं रायकज्जं  
 तस्य सस्यै परिकट्ठियं अभओ विक्खसज इति शीतः तस्य सस्यै परिकट्ठियं अभयकज्जं आयाय सावकं भजति-जइ इत्थसंयोदेन इतिशेषा सर्वं। संमुत्तिमा  
 आताः यत्तुत्थादितममसिक्खत्तया इतिशेषेण सर्वेषां आदितोऽमसिक्खत्तय, तत् किं कियतां ? वननिपुणे सुज्जव वराइमुत्तो मुक्का वयासि इरावादि सोऽप्यवमुत्तं  
 सवतः, सुहो एत्ता भजित-अन्यवज्जिमोसवत्तं वरं वृत्तुयेति भजति-मुत्तयाकमेव इको तिष्ठतु, अण्णयाज्जलगिरीदिक्को न वरवत्ते महीतुं अभवः सुहो भजति-  
 इरायवो गायसिइति तत् उदायणो कय पत्तइ इति तस्य च प्रयोक्तव्यं वृत्तिता वासवइरा नामी सा वज्जुक्काः कक्का सिद्धिता गान्धर्वोदायवः प्रधावः स  
 पुष्पतासिद्धि केतोपादेनेति, स किञ्च य इतिशेषं मेधते तस्य गायति यावइ वज्जइ ( वय ) सीपि च जानाति एवं कालो प्रधाति अनेन वज्जमवो इत्थी कातिः  
 य सिक्खयति तस्य निपये



भारिज्ज, एस्स पणत्तरेण करियं, सो गओ एत्थ, संधावातो पेरतेहिं अण्ण, सो गत्तेह्म हत्थी हिओ इहो गहिओ य  
 भाणिओ य, भणिओ-सम पूया काणा ए सिक्खायेहि मा त पेण्णु मा सा सुमं पट्ठण खम्महिंति, तीससि करियं-  
 जयज्झाओ कोटिचत्ति मा दण्डिद्विसिद्धि, सो य अयणियंवरिओ तं सिक्खायेह, सा सस्स सेएण हीएह कोटिओसि न  
 ओएत्ति, अणण्या धित्तेह्-ज्ज पेण्णामि, सं धित्तेन्ती अण्णहा पट्ठ, सेण कट्ठेण भणिया-कं काणे ! धिणासेहि !, सा  
 भणह्-कोटिद्या ! न याणसि अण्णाय, सेण धित्तिय आरिसो अहं कोटिओ तारिसा एसावि काणत्ति, अयणिया कालिया, विह्व,  
 अयरोप्पदं संजोगो जाओ, नयरं कंषणमासा दासी ज्ञाणह् अन्नमधारं य सा नेय, अणण्या आकाण्णत्तमाओज्जवमिरी  
 किट्ठिओ, रायाए अमओ पुच्छिओ-वदायणो निगायवत्ति, साहे वदायणो भणिओ, सो मणह्-मद्वत्ति हस्सियो आक-  
 टिज्जण अह दारिगा य गायाओ, अयणियत्तरियाणि गाणि गीयत्ति, हत्थी गेएण अक्खिओ गहिओ, इमाणिवि पञ्जायाणि,

१ चार्दस एत्त वदत्तः। कथितं स गच्छन् रज्ज्वायाः पर्यन्तेषु विहतिं स धामति इत्येति स्थितः आसन्नोपेतो पुरीषकाशीश्वर मन्त्रितो-मम  
 दुर्द्विवा कस्य सा विभवं मा ए शयीः। मा सा। सा। इत्यादिप्रतिपत्तिं लक्षादपि कथितं-उपायः। कुटीरि सा शयीसिति स च वदन्निज्ज्वरितव्यां विह्वत्ति सा  
 एत्त एत्तवत्तमिभूता कुटीरि न वदत्ति अयथा कियत्तवत्ति-एहि परवामि लक्षितवत्तम्येति अन्वया एवति सेव एतेव यत्किञ्च-एहं कथे ! विवाहवत्ति ! सा  
 भर्त्तव-मुहिन् ! न आनासायां तं तं विहित-आलोच्यं कुटीरं तावती पूयसि कथेति नवभिक्षा पाठिता एता परस्परं संयोगे जातः वदन् कावत्तमाका  
 वती इतिदीमाएकाह एतिहा न गायाः एवभिक्षावत्तिं मां पायतः इत्येते येववत्तिओ पुरीषाः इमे आसि पञ्जायेति

जन्मभूमीव णिकस्त्वमण्णणणिपाणभूमीओ पंदायेसि, पुच्छइ-कओ ? ताओ कहेंति-उज्झणीए अमुणो पाणिपुत्तो घरस  
य भज्जा, सो कालनओ, तस्स भज्जाओ अग्गे पणइवंकामाओ, न तीरसि पणइएहिं चेइयाहिं पदितं पडियपए, भणियाओ  
पाहुणियाव होइ, भणंति-भन्नात्तद्वियाओ अग्गे, सुच्चिरं अच्चित्ता गयाओ, पितियदियस अभओ एएणो आसणं पण  
पणओ, एइ मम घरे पारेपसि, भणंति-इमं पाराग तुम्हे पारेइ, चित्तेइ-मा मम घरं न ज्ञाहिंति भणइ-एयं दीव, पज्जि  
सिओ, संजोइवं महुं पाइओ सुत्तो, ताहे आसरहेण पळापिओ, अतरा अण्णोयि रहा पुपडिया, एय परंपरण उज्झणिं  
पायिओ, उवणीओ पज्जोयरस, भणिओ-कहिं से पडिहं ? धम्मज्जउहेण पचिओ, पद्धो, पुपणीया से भज्जा सा उवणीया,  
तीसे का उवप्पी-सेणियस्स विज्जाहारो मित्ते सेण मित्तया पिरा होवसि सेणिएण से सेणा नाम भणिणी दिस्सा निवधे  
कए, सायिय विज्जाहरस्स इहा, एसा परणिगोपरा अग्गे पवहाएसि विज्जाहरिहिं मारिया, तीसे पूया सा उण मा एसायि

१ कस्समूरीर्हिच्छमपज्जानिवाकमूरीर्हन्ववसि पृच्छति-भुत्ता ? ताः कथयन्ति-वज्जविस्वाममुक्को वसिइयुक्ता वल्ल व भावो। स काकमवः वल्ल  
भायो वल्ल मयविट्ठकामाः, स काकस्ते मयविट्ठायिभज्जयादि पभिवु मयामु, भणिताः-मापूदिका मवत्त मवन्ति-भमज्जापेप्पो वल्ल मुत्तिरं स्थिता गताः  
द्वितीयदिवसे वमवः एकाकी वज्जन मयाते मयाता जायन्त मम पूहे पावतेति मयन्ति-इए पावत्तक पूदं पावत्त विन्ववदि-मा मम पूदं जावत्तसि  
मण्णति-पुव मवत्त, मन्निमिणः सोयोणिक मज्ज पाययित्वा स्मरिताः तत्ताउयरसेन परियापिताः कथरा कन्धेअधि रयाः पूदंस्थारित्ता पूव वाअपाअपाअदिर्भ  
मायिता, मयोतापोपवीतः मयितः-ए से पाडिहं ? वर्यंउउहेव वसितो वहा पूर्वाणीता वल्ल भायो सोपवीता वल्ल क्खोपवि ? अलिकस्स मियाअ  
मिहं, वतो भेवी स्थिरा मवत्तिवति भेसिकेन वत्ते सेजावाही भणिनी वता निर्दन्ध इत्ता कविच विवावरसेहा पूवा परणीओवताउत्ताक मव वापन्ति मिया  
पटीभिसीरिता वल्ल मुत्तिरा सा तेव मयाअधि

भारिजिह्वितिसि सेनिपस्त चवणीया जिज्जिभो ( चक्रिया ) च, सा बोधणत्वा लभयस्त दिष्णा, सा विज्जाहरी अम-  
 यस्त इहा, सेसाहिं महिसाहिं मावंगी चछगिणा, ताहिं विज्जाहिं जहा नमोकारे अकिंसादिपत्तवारणे ज्ञाव पचंतेहिं  
 पस्सिया तावसेहिं पिहा पुच्छिया कभोसिचिं<sup>१</sup>, दीए कहियं, ते य सेनिपस्त पवया तावता, तेहिं अमह नपुनिचि सारवि-  
 या, ज्ञावया पवविवा सिवाए चप्पेणी नेकण दिष्णा, एव दीए समं जमभो वसह, तस्त पप्पोयस्त ज्ञावारे रचणाधि—  
 छोहजंपो छेहारओ अगिभीकरहोञ्जलगिरी इरिय सिवा देविचि, ज्ञावया सो छोहजंपो भक्कपचं विस्सिज्जिभो, ते ओका प-  
 षितेन्ति—एस एगदिवसेण एह पंथवीसजोयणाणि, पुणो २ सदाविज्जामो, एवं आरोमो, ओ जप्पो होदिचि सो गप्पि-  
 एहिं दिवसेहिं एदिचि, पप्परंवि कालं सुदिया होमो, तस्त संवत् पदिष्णं, सो नेक्कह, ताहे विहीए ते दवाविचं, तत्पवि-  
 से विस्सज्जोइया मोयणा दिष्णा, सेसग संवत् इरियं, सो कइचि ज्ञोयणाणि गंधं नदीतीरे ज्ञामिचि ज्ञाव सज्जो वारेइ,

१ मावतामिठि भेसिकावोवोठा, इह ( ज्ञावोवाव ) सा नीवरज्जाअपाए दवा हा सिवावर्धपप्पेहा, देवाविमोहेकाविमोव्ही जवकसिका  
 ठामिदिवाविमर्धवा जमरज्जे जप्पुमिद्रपोरावसे भावए प्रकमोहेसिक्का तावहीटा इहा—अयोमोसिं ? तवा अमितं ते य भेसिकज पवपायत्तावा, ते  
 ज्ञाव भेसिं धेरावता जमपाए मस्यपिता वज्जिदी नीज्जा सिवाये दवा एवं तवा समसवरो वससि तल पवोत्तल ज्ञावारे एक्कसि—ओएवहो हे-  
 हाओअमिभीक एयोअवज्जिभिर्देवी पिवा देवीति, ज्ञावया स ओहज्जो अणुक्क मसि दिवहा ते ओकाव पिण्डयमिन्—एव एक्कदिवसेवावाति एक्कदिवसि-  
 बोन्नमसि पुनः पुनः ज्ञावपाविच्यमाहे, एवं मावामा, पोअज्जो मसिचसि स जप्पुमिदिवापायसति इरिवर कालं सुसिभो मसिज्जामा तदी जमकं  
 एव एवं स वेपथि तवा विचिना ( नीज्जा ) वर्यं शक्ति, तवावि सिवसंजुहा मोएक्कवदी इहा, होव जमव इतं, स अदीविचोववाति एवया नदीतीरे  
 ज्ञावामोसि भावज्जुवो वारवति,

शेणिओ पुच्छिओ-भंभा, ताहे राया भणइ सेणिय-एस ते सख सारो भंमिचि ?, सेणिओ भणइ-भामं, सो य रण्णो  
 शब्दसपिओ, तेण से णामं कयं-भंभिसारोचि, सो रण्णो पिओ लक्खणञ्जुओचि, मा अण्णहिं मारिज्झिहिचि न किञ्चिय  
 देइ, सेसा पुमारा भइचखगरेण निति, सेणिओ ते दइण अधिसिं करोति, सो सओ निप्फिहिओ वेण्णायहं गओ,  
 पादा तगोफारे-अच्चियत्त भोगड्ढाणं निगम चिण्णायहे य कासवए । सभ परनयण ननुग भूया सुत्सुत्तिया दिण्णा ॥ १ ॥  
 पराण कापुच्छणया पहरजुइसि नमणमभिसेओ । दोइळ णाम णिठ्ठी कइ विवा मेत्ति रायणिहे ॥ २ ॥ आगमणडम  
 गमण सुभुग छाणे य कत्त सं ? सुभस । कइण माऊआणण विभूषणा धारणा माक ॥ ३ ॥ त च सेणियं उज्जणिओ  
 पज्जोओ रोइओ आइ, सो य उइण्णो, सेणिओ वीहेइ, अमओ भणइ-मा संकइ, नावेमि से धायति, तेण सधायार  
 णियेसआणएण भूमीगाया दिणारा सोइत्तपाइएसु निकसाया दइवासत्थणोसु, सो आगओ रोइइ, जुविमया कइयि वियत्त,

१ श्लोकः। दुष्ट-मन्त्रा। यथा राजा भजति श्लोक-एव ते सारो अर्थोति । श्लोको मन्त्रि-भोए । स च राज्ञोऽन्तराश्रितः । तेन तत्र काम इव-  
 भस्मसार इति । स राजा द्विओ कसण्णुक इति मा अर्थोमदीति य किञ्चिये इराति दोषाः पुमारा अत्तसद्वदेन श्रियंण्यसि अर्थककण्ठ इत्यादिभि  
 करोति । स तदा श्रितो वेवातदं यत्त । यथा भमत्तरे-अधीतिमोणायां श्रितो वेवातदे च डेक्कताः । कामो पुइत्तवत्तं मत्ता दुइका पुइत्तिका इत्ता ॥ १ ॥  
 मेवत्तं आणुएया धाभुत्तइत्ता इति गमणमभिसेका । वीइइ । यमा शिरसिः क पिता मे इति राजपुहे ॥ २ ॥ आगमण अन्तात्तमार्थेण पुइत्तिका दासव च कत्त  
 रत्तं । तय । कयनं माणुरादवत्त सिमुत्तं वात्त माणु ॥ ३ ॥ तं च श्लोक इज्झपिपीत्ताः मत्तोओ दोषक आयाति स योइका अर्थको विभवि अमओ भजति  
 मा सइत्तं वात्तमासि तत्त काइमिति, तेन उक्कयावात्तमिरेयावात्तेन धूमिगता वीत्ताओ सोइत्तपाइएसु श्रियाता पुइत्तवासत्तयावेणु, स आयवो उज्झि  
 योपिताः कविचिद्वत्तात्

येच्छा भवभो छोह देह, जहा तय दीहिया सवे सेणिपण भिण्णा पास माडधिहिसि, अहय ए पञ्चभो भमुगस्स दंइस्स  
 भमुग पयसं लणह, वेण जयं, पिहो, नहो य, पच्छा सेणिपण वलं विकोखियं, वे य रायाणो सबे पकहिंति-न एयस्स  
 कारी अहे, अमएण एसा माया कया, लण पत्तीवं । जणया सो अत्थाणीए अणइ-सो मम नसि । ओ तं आपेज्ज,  
 अणया एगा गणिया अणइ-अह आपेमि, नयरं मम चित्तिज्जिगा विज्जु, दिण्णाओ से सव चित्तिज्जिगाओ जामो से  
 ठअहि मग्गिमययाओ, मयुस्सायि येरा, सेहिं सभ पवइणेसु वहुएण य भयपाणेण य पुवं व संवइमूले कवइसहुएणं  
 गेहकण गयाओ, अज्जसु य गामणयेसु ज्ञाय संजया सहु य वहिं २ अइतिको सुहुयरं वहुसुयाओ कायाओ, रायगिहं  
 गयाओ, पाहिं सज्जाणे ठियाव वेइयाणि पदवीव परवेइयपरिघाहीए भवयपरमइगयाओ निसीहियायि, वनओ  
 दहूण चन्मुकभूखणाव वट्ठिओ सागयं निसीहियायि, वेइयाणि दरिसियाणि धंयियाणि य, वनयं धंयिकण निबिह्वाओ,

१ यमारमयो छंय दयाति यया लव इतिहक्य सर्वे भेज्जिकेन भेरिया भयय माडय्येया । यय व य प्रजयोऽमुकल इतिहक्यमायुवं मोयेवं जव देव  
 काव इतो यइम वजापुमिकेन वल विहोकिव वे व राजाया । सर्वे प्रकवयसि-वेयक कयन्ते वरं वयवेदीया माया कुवा देव मज्जिदं । जज्जया व  
 आसायो भवसि-स मम भासि । यक्यमानयेव, वनवेदीया यथिका यथहि-अदलाववसि ववरं मम साहाय्यिक यीयस्य दयानक्या । सव द्वीयिका यथस्ये  
 रावमव मय्यवयकाः मयुया अयि स्थिताः । ई सस मयइयेसु व वहुकेव अउयनेन व पूर्वमेव संववीमूले कयरावइव गृहीत्वा गावाः । वनयेसु व दासवगोरेसु  
 वय संयवाः आयाव वयार्थयपयमयाः सुहुतरं वहुसुया जस्य रावगुह गावाः । वदिकयावे विवठाभीजायि वनययावा गुरवेवयसिपयज्जामयगुहमभियावा कैरे-  
 यिदीसि ( मग्गिमयया ) भवयो इहोरायुज्जभूखणा यथियाः ज्ञायवं वैयधिकीयमिति वज्जायि वरिंवायि वरिंवायि व वमयं वरिंवायि निबिहाः

‘सेणिओ पुच्छिओ—अंभा, सादे राया अणइ सेणिये—एस ते ठारथ सारो अभिधि १, सेणिओ अणइ—आमं, सो थ रएयो  
 वायंतपिओ, सेण ते फामं कथं—अभिसारोसि, सो रण्णो पिओ छरएणसुणोसि, मा अणोदिं भारिअहिरो ७ किंचिदि  
 देइ, सेसा कुमारा अहयदगरेण तिसि, सेणिओ से दसूण अधिसिं वरेसि, सो एओ णिक्किदिओ पेण्णापदं गओ  
 खदा नमोफारे—अचियस भोगडवाणं निगम पिण्णायदे थ कासयए । ठाम परायण मणुग भूवा सुस्सुसिमा दिण्णा ॥१॥  
 पेसण आणुच्छणया पट्टकुसुसि गमणमभितेओ । दोएठ फाम णिकली कदं पिया भेहि रायणिदे ॥ २ ॥ आगमणडमय  
 मगण दुमुग छणो थ कस्स सं १ सुअं । कएणं माऊआणण पिभूसणा पारणा माऊ ॥ ३ ॥ तं थ सेणिये वज्जेणिओ  
 पज्जेओ रोइओ जाइ, सो थ उइण्णो, सेणिओ पीदेइ, अमओ अणइ—मा संकए, तासेसि से पायसि तेण संघापार  
 णियेसआणएण भूमीगया दिणारा सोइसंपासएसु निक्खाया दंइयासरथानेसु, सो भागमो रोइइ, सुवियाया कईवि दिवस,

१ वेत्तिकः पूरः—अरमा एदा राया अजसि भेत्तिक—पूव ते सागे अभ्येति १ अन्तिको अजति—ओइ स च एयोअजजविहः वेत्त वसं वास भूदं—  
 अस्मसार इति स राज्ञा भिषो अजपयुक्त इति मा अन्धमंसीसि च किमिदं एतदि सोवा भुजारा अजसयुतेन भिन्त्यन्ति वेत्तिककाइ एताएदि  
 करोति स तदा भित्तो वेत्तातदं रावाः अजा अमरकरे—अमीणिमोणायां भित्तो वेत्तातदे च उच्यते ॥ १ ॥ आओ पूरवत्तं अजा दुदितं दुदितं अजा ॥ २ ॥  
 देवप आणुच्छा पाण्डुरज्ज्वा इति गमणमभितेकः । पीइवा नाम निरुद्धि क पिवा मे इति राइएदे ॥ ३ ॥ आगमं आगममार्गं सुदिका योमं च कस  
 रवं १ उच । कथं मातुरावपवं विभूचं वार्त्तं मातुः ॥ २ ॥ स च वेत्तिक वज्जिपिण्णं मयोतो रोपक आयाति स ओदिताः अन्तिको विभेदि अमओ अजसि  
 मा सज्ज्वा नासयामि सस वाइमिदि तेन एज्जवावाविधेसणापकेव भूमिज्जा पीणा कोइअटकेसु सियजा एताएवसकथेसु, स आगारो वज्जि  
 योविताः कविभिद्विजवाइ

काळेण तस्स वरपूणि क्षीणाणि, पुणोषि वरुं मणिज्झइ, सत्थ पंगो वसहो अण्णेहि पारब्बो एगीमि रण्णे अण्णइ, न  
वीरइ अन्नोहि वसहहि पराज्जिणिव, तत्थ वसमपुरं निवेसियं, पुणरपि काळेण सण्णसं, पुणोषि भगगि, कुसयवो विट्ठो  
अतीवपमाणाकिठिविसिट्ठो, सत्थ कुसगपुर जाय, वमि य काळे पसेणई राया, सं च जयरं पुणो २ अग्निप्पा इत्थइ  
साहे लोभभयजणणनिमित्त पोसायेइ-अस्स धरे अग्गी जट्ठइ सो जगराओ निवुत्तुअइ, सत्थ महाणसियणं पमाएण  
रण्णे च्वेव पराओ अग्गी जट्ठिओ, से सच्चपरण्णा रायाणो-अइ अण्णं य सासयासि सो कहं अन्नंति निगओ जयरओ,  
सस्स भाववसिसे ठिओ, साहे दहमइमोइया वाणियगा य सत्थ पव्वंति मणसि-कहिं वज्झइ, आइ-रायनिहंति, कयो एइ !  
रायनिहाओ, एवं पायरं रायनिह जाय, जया य राइणो निहे अग्गी जट्ठिओ वओ कुमारा वं अस्स पियं आसो इत्थी वा  
स सेण पीणिए सेणिएण अंभा पीणिया, राया पुच्छइ-केण किं पीमियंति !, अण्णो मवाइ-मए इत्थी आसो पवमाइ,

१ काळेण वल वरपूणि क्षीणाणि पुणरपि वासु मार्गवदि यैवे इत्थोअन्नेः पाएव एकस्मिन्नएणे विट्ठि व अण्णतेअन्नेइत्थीः एत्तमेव, व  
इत्थमपुरं निवसिषि व पुणरपि काळेमोण्णव पुणरपि आगेवदि वज्झइएणे एत्थोअन्नेवमसाणासुविविदिट्ठो व व कुसमपुरं जस एत्थिअ व काळे प्रसेवदिए  
राजा वज्ज मयरं पुवः २ अग्निप्पा इत्थो ववा कोकमपवज्जमविमिष वोपवदि-अक्क पुदेमसिषिणइति स वपाएव सिक्कअवते व व महावसिअयो ममादेव  
एव पुव पुवाए अग्निरयिणः ते अग्गमयिणो राजाणः-मपाएमां व वापिअ ववा कयममवमिति विवट्ठो जगाए वज्जाए एवपूटमागे सिवः ववा इति  
अमट्ठोइका वज्जिअ व व वज्जिअ अज्जिअ-अ मज्जव ! आइ एत्थपुइमिति कुट्ठ आणाव ! एत्थपुइए पव्वं वयरं एत्थपुइं जसं ववा च एत्थो पुदेमसि  
इतिवट्ठवः पुममा पवस मियमओ इत्थी वा वयेव विट्ठमिति वेपिअेव वज्जा पीणा राजा पुच्छति-केण किं वीमियंति ! अण्णो मवमि-मवा इत्थी  
अवः पवसाहि !

धापुहिं खोदियगंधेण सिवाए सपेद्धियाए आगमण, सिवा एगं पायं स्थापइ, एगं धिअगाणि, पढमे जामे अणुयाणि धीए  
 ऊक तइए पोइ फालाओ, गधोदगपुष्फवास, आयरियाण आलोयणा, भज्जाणं परपर पुच्छा, आयरिएहिं कहियं, सपि  
 द्वीए सुणइहिं समं गथा मसाणं, पवइयाओ य, एगा गुविणी नियसा, वेसिं पुचो तत्थ देयकुळ करेइ, स इयाणिं महा  
 फालं आयं, खोएण परिगादियं, उच्चरञ्जुलियाए भणियं पाञ्जलिपुत्तेति, समचं अणिसियतपो महागिरीण ४ । इयाणिं सि  
 कखसि पय, सा इविहा—गइणसिक्खा भासेवणासिक्खा य, सत्य—

स्मितिवणउसमकुसुमं रायगिह वपपाञ्जलीपुत्त । नदे सगहाले पूलमइसिरिए वरक्की य ॥ १३८४ ॥

एईए वक्खाणं—अतीतअज्जाए सिइपइद्विय णयरं, जियसत्तू राया, तत्स णयरस वरपूणि वत्सणणाणि, अण णयर-  
 हाण वरपुपाइएहिं मगावेइ, तेहिं एगं वणयक्सेत्तं अतीय पुष्केहिं फलेहि य उयवय दहुं, वणयणयरं नियेतिय,

१ पादयोः क्वचित्पान्थेन सिद्धायाः सतिष्ठुकाया आगमनं एकं पादं सिवा आदति एकं सिद्धाः प्रथमे जामे आनुदी द्वितीये वरक्की तृतीये वरं कम्बवतः ।  
 गन्धोदपुष्पवर्धे आचार्येभ्य आलोचना आचार्या परपरकेन वृत्ता आचार्योः क्वचित् सर्वथां भुजाभिः समं गथा समसाय प्रसन्नताम एका गंधिनी विदुषा  
 तेषां पुत्रस्य देवकुळ करोति तन्निदात्री महाकाळ जात कोदेष परीपूहीत उच्चरञ्जुलिकायां भक्तिर पादिकपुत्रमिति सपादं भूमिधियोपचारं महादिग्धां ४ ।  
 इत्यादीं सिद्धेति पदं सा द्विजिया—महत्त्वविश्रामासेवसाधियाया य तत्र—महा व्यावधानं—मदीयाद्यादीं धिर्मियमिति वगतं द्वितमम् एतां वत्स वगदस  
 वत्सपुत्तस्यानि आम्बपारत्तानं पादुपामैर्मार्गयति तेरेक वत्सकेसेवं जतीव पुत्रीः क्वचिपोवरेण दहुं वपकवपां निवधितं



एषा गयगणयस्य चप्यसी, तस्य महागिरीर्हि मत्तं पञ्चकलायं देवत्वं गया, सुहृत्पीथि जम्बेर्णि जियपद्मिन्मं ददया गया  
 तज्जाणे विद्या, भणिद्या य साधुणो—यसार्हं मगाद्विधि, तस्य एगो संघाद्वगो सुभद्राए सिद्धिमन्त्राए धरं भिक्खुसस आहगओ  
 पुच्छिया ताए—कओ भगवतो १, सेहिं भणिधं—सुहृत्थिस्स, धसर्हिं मगागओ, जाणसात्ताव दरिस्सियाव, तस्य विद्या, कन्न  
 या पओसकाळे आयरिया नळिणिगुम्मं अज्जयणं परियदंति, सीधे पुच्छो अर्वाविसुक्कमाळो सत्तत्तत्त पासाए बचीसाहिं  
 भज्जाहिं सम वयत्तत्त, तेण सुचयित्तुत्तेण सुय, न एयं नाहगंति सूमीओ सूमीय सुणतो २ वदिण्णो, बार्हिं निमाओ,  
 कस्य परिसंति आर्हं सरिया, तेस्स मूळ गओ, साह—अह अर्वाविसुक्कमाळोचि नळिणिगुम्मो देवो आसि, तस्स वत्सुगो  
 पन्नयामि, असमरयो य अह सामन्नपरियाग पात्तेवं, इगिणिं साहेसि, सेचि मोयाविद्या, तेणं पुच्छियच्चि, नेक्कवि, सयमेव  
 छोयं करेति, मा सयंगिदीयहिंणो हवत्तच्चि लिंयं विण्णं, मत्ताणे कंथरे कुब्जगं, तस्य मत्तं पञ्चकलायं, सुक्कमाळपद्मिं

१ एषा पञ्चमपदकस्य इत्यर्थः। तत्र अष्टांगिरीतिर्यत्तं प्रकाशयति देवत्वं मत्ता सुहृत्थिचोदयि वज्रीवती वीर्यवतिमात्रपदका एतां वज्जाने विज्ञताः  
 मन्त्रिचक्षुः क्षात्रधः क्षात्रिं भार्गवसेति वज्रीकः संघाद्वकः सुभद्रायाः। वीहिभार्वाणां गृहं भिक्षागणितया वृत्तकला—हृत्ते नगद्वका १ ईर्धन्वि—सुहृत्थिस्स,  
 क्षात्रिं भार्गवमा यावत्पाका ददित्याः। ताव स्थिता। अत्राद्यां प्रवेशकाले क्षात्राणां वीर्यवीर्यसमाज्जयत्वं परित्यज्यवन्ति वज्जताः। सुहोमन्त्रासुभगाका सप्ततले  
 पासादे इतिक्षेपता भार्वादिः। समसुपज्जकस्मि तेन सुसावहृदेव सुत्तं वीर्यवज्जमिति यत्तेर्धमिगुत्तमं। अत्राप्य् अर्वाविराता देवक्षमिति क्षात्रिः। स्मृता तेषां  
 मूळं एताः, कस्यचित्—अहं अर्वाविसुक्कमाळ इति वीर्यवीर्यस्य देवोऽन्मत्तं तस्यासुभगाकाः। प्रकाशयति असमर्थत्वाद् आसन्नं पाकविद्यु इतिद्वी क्योमि तेभ्य  
 (अवन्ति—) मातुर्भोविद्या, तेन पुहति, वेत्तवति, अयमेव कोच करोति मा अर्वाविरावक्षिहो इतिदि विहं दत्तं सप्तदाने कंथरेकुब्जं तत्र मत्तं प्रका-  
 शयत्तं सुक्कमाळयोः।

केशो एति १, वरथ सो एलकच्छओ, अण्णे भणंति—सो धेय राया, साहे दसणणपुरस्स एलकच्छं नामं जायं, सरथ गय  
गापयओ पयओ, तस्स सप्पची, सरथेय दसणणपुरे दसण्णमहो राया, तस्स पंचसपाणि देधीणोरोहो, एवं सो ओणण  
क्वेण य पदिषओ एरिसं अण्णस्स नसियसि, तेण काळेण तेण समएणं भगवओ महावीरस्स दसण्णभूद समोसरणं, साह  
सो धितेइ—सहा कस्से धंयामि अहा केणइ न अण्णेण धदियपुवो, तं य अममरिययं सको णाऊण एइ, इमोयि महया इहीए  
निगओ धंदिओ य सविहीए, सकोयि एरावण यिलगो, सरथ अइ दते चिचवेइ, एकेक दते अइद पावीओ एकेकाए पायीए  
अइद पटमाइ एकेकं पचमं अइपचं पचे य २ वचीसइवदनाहगं, एय सो सविहीए एरावणयिलगो आयाहिण पयादिण  
करेइ, साहे तस्स हसियस्स दसण्णभूदे पवए य पयाणि देयप्पहावेण चट्टियाणि, तेण णामं कयं गयगापदगोसि, ताह सो  
दसकमहो तं पेच्छिऊण एरिसा कओ अमहारिसाणमिदी १, अहो कएइओउणेण यम्मो, अहमयि करमि, साहे सो पययइ,

१ कुल आवासि १ यइ स एउककाहा अन्ने भणयिउ—स एउ राया, वहा दसायपुरात्तेककायं नाम जातं उअ पाअप्पए पर्वता वसोत्तठि—इमाके  
पुरे वसामंमदो राया वस पअसतामि देधीणामहोरा पुरं स जाववेण कोण य मयिपदोउयसेरसं पासीठि ठक्किइ काल ठक्किइ समवे मगावहा  
महावीरस वसामंमदो समससरथ वहा स भिउयपति—अमा कस्से वधित्ताहे यया देवविज्जान्तेव वधित्ताहो. एउप्पवसितं य मग्गे मग्गाअआठि अइममि  
महया अइजा मियतो वधित्ता सार्धव्या आओउयेरावर्ण सिज्जाः एमाह दन्ताव् सिज्जुवठि एकेकसिन् दन्ते अहाह पायीः एकेकसां पाप्पामहाह पट्टानि  
एकेक पअमइपचं पचे पचे य हाविषादयं गाटकं एउ स सार्धव्या मीरावपठिअ आवठिअं मवठिअं कराठि वहा वस इठिओ दसामंमदो एवते य वहा  
देवताममावेमोठिअता तेव नाम कुटं गजामपएक ( वाम ) इठि वहा स वसामंमदय्यं मेवय देवपी कुटोअकाकयुद्धि १ अहो कुओअन्तेव यमोः अहमरि  
कसोमि, वहा स मअवसि

नैयन्नापदगं धंदया, तस्स कइं एलगाच्छं नामं ।, तं पुढं दसण्णपुरं नगरमासी, एत्थ साविथा एगस्स मिच्छदिदस्स विष्णा,  
 वेयाळियं आवस्सधं करोसि पच्चक्खाइ य, सो भणइ—किं रत्तिं छट्ठिणा कोइ जेमेइ ।, एवं उवइसइ, अण्णाया सो भणइ—  
 अइंवि पच्चक्खामि, सा भणइ—भंजिद्विसि, सो भणइ—किं अण्णयावि भाइ रत्तिं जठ्ठेणा जेमेमि ।, विंशं, देवया भित्तेइ—  
 साविथ च्वासेइ अस्स णं सुधाळभामि, तस्स भगिणी सरथेव वसइ, सीसे कवेव रत्तिं पहेण्यं गहाय आगया, पच्चक्खाइभो,  
 सायियाए वारिभो भणइ—सुक्कमएयाइं आलपाळेहिं किं ।, देवयाए पहारो विष्णो, दोसि अच्चिओकणा भूमीए पट्ठिया,  
 सा मम अयसो होहिंवि कावस्सगं ठिया, अहुरत्ते देवया आगया भणइ—किं साविथ ।, सा भणइ—मम एव अन्नवोचि  
 ताहे अण्णास्स एलगास्स अच्छीणि सप्पएसाणि तक्कणमारियस्स आणेसा साइयाणि, तयो से सवणो भणइ—सुक्कं  
 अच्छीणि एलगास्स जारिसाणिचि, तेण सवं कहियं, सहुो जाओ, जणो कोउहउेण एवि वेक्खणो, सवरज्जे पुढं भण्णइ—

१ पाद्मापदककम्पका ठल कयसेइकाणं नाम । तए पूर्वं वृत्तान्तपुरं वयरासासिच, तत्र जालिका एकस्मै सिन्ध्याएवमे वृत्ता भिक्खुं जावइत्त  
 करोहिं मत्ताकयावि च ए भजति—किं एत्ताहुत्ताव कोइयि जेमासि । पुणमुपएससि जण्णाए ए भजति—अहमसि मत्तामत्तामि सा भजति—युत्तुपसि च  
 भजति—किमत्तएत्तएव एत्ताहुत्ताव जेमासि वृत्तं देवता भिन्नायति—आधिकमुत्तावते अथैवमुपज्जये तत्र भगिनी एथैव वससि तत्रा कतेव एतौ महे  
 जकं सुदीराज्जमाता मत्ताकयापका आधिकया भासितो भणति—जरीदीः मत्तायां कि । देवताया महारो वृत्ता इत्थज्जिपोकको भूमी पठितो सा मत्ताज्जो  
 भजिप्यसीति कायोत्थयं विजता अर्थराजे देवताज्जमाता भजति—किं आसिजे । सा भजति—ममैवइत्तएव इति एत्ताज्जदीवज्जालिनी सवपेये तज्जज्जमासित-  
 कावीर पोडितानि ठठकल कइतो भजति—सवाहिंवी एउकल पाएसे इति, तेव सीरे कथित ज्ञायेो जाता जता इत्तएउेवावाति मेक्कका धंदरात्ते  
 पुढं भवपदे—

करेति, ते विहरता पादलिपुत्र गया, तस्य वसुभूमी सेह्री, तेसिं अंतिय भम्म सोद्या साधगो जाओ, सो अणया भणइ  
 अज्जसुहत्थि—मयय ! मज्झ दिओ ससारनित्थरणोपाओ, मए सयणस्स परिकक्षिय स न तहा लगार्ह, जुम्भेयि ता अण  
 भिज्जोएण गंपूण कहेहिचि, सो गंपूण पक्खिओ, तस्य प महागिरी पविहो, ते दहूण सहसा जडिओ, वसुभूमी भणइ—  
 पुहमवि अश्वे आयरिया !, ताहे सुहत्थी तेसिं गुणसययं करोइ, जहा—ज्जिणक्खो अवीसो तहायि एए एय परिकम्मं करेति,  
 एयं तेसिं चिरं कहिचा अणुबयाणि य दाज्जण गओ सुहत्थी, तेण वसुभूणा जेमिचा से भणिया—अइ परिसो साद्द एअ  
 तो से सुहमे सज्जंसगाणि एय करोअ, एयं दिण्णो महाफलं भवित्सइ, धीयदिषसे महागिरी भिक्खस्स पयिहा, त अपुप  
 करण दहूण किंतेइ—दवओ ४, पायं जहा णाओ अहति तहेय अरुममिते नियचा भणति—अज्जो ! अणसणा कया,  
 केण ! जुमे जेणसि कइं अमुट्ठिओ, दोवि जणा पतिविस गया, तस्य जियपट्ठिमं वेदिचा अज्जमहागिरी एउकरुं गया।

। कुर्मसि ते ( सुहत्थिः ) विहरताः पादलीपुत्रं गताः तत्र वसुभूतिः सेह्री वेचामन्विके पर्मं सुत्वा आरको जाताः सोअइए मज्जित आर्मुह  
 चित्त—अगावन् ! मइं दवः संसारनित्थरायोपायः गणा सज्जन्ताय परिकक्षिय तत्र तया जगति पूज्यसि एए अणभिरापोए गत्वा कयवतांति स गत्वा मज्जिअतः  
 तत्र च महाधिरिः मज्जिअः तात् इह्वा सहसोत्थितः वसुभूतिर्भेज्जि—जुम्भाकमप्यन्ने आजायो !, एए सुहत्थिवदेवो गुणसंखट्ठ कुर्मसि कया विरक्कयोओ  
 तस्यवाज्जेते एयं परिकम्मं कुर्मसि एयं वेम्भसिअरं कययित्वाअुपयादि च दत्ता गताः सुहत्थी तेव वसुभूतिना विमिषा से भजित्वा—अयेतारहाः आणुतावा  
 वसत् तदा तस्मै पूज्यमुक्षितकप्यन्नेव जुर्मस्य, एव इते महाफलं भवित्थि विदीयविहते महागिरिर्भेज्जो मज्जिअः एएएकराज इह्वा विम्वरति दावताः व  
 शांतं पया शांतोअमिति तवेवाज्जान्ता धिराता अणसिअ—मार्ग ! अदेयया इता कयं ! एवं वेचामसि कस्सेअमुत्थिता इत्यति वयो सिद्धं गता तत्र भीव  
 मसिमं वपित्वा आर्यमहाधिराव पुहकास गता

संज्ञागमनं पाछएण विमाणेण, कस्सवि ए रण्णे अपिही आया, वज्जेण मेसिओ सकेण-अह पवइसितो मुच्चसि, पवइओ,  
 येराण अतिए अभिगादं पेणइ-अह भिक्खागओ संभरामि ण अमेमि, अह दरअमिमो ता सेसगं विसिष्णामि, एवं  
 तेण किर भगवया एगमयि विवसे नाडइरिय, कस्सवि दणवार्, दंसस भावार्, भावार्सु दइभम्मठसि गय १ ।  
 इयाणि अणिरिसोषइणेसि, न निभितमनिभितं, प्रयोपधानं उपधानकमेव भावोपधानं एया, सो किर अमिसिओ  
 कयवो इह परत्थ य, अहा केण कयो !, एरयोपाइरणगाह-  
 पाइल्लिपुत्त महागिरि अज्जसुइत्थी य सेसि वसुअती । अरविस वज्जेणीए जिपपडिमा एउककउ अ ॥ १९८३ ॥

इंसीए मक्खलाणं-अज्जपूखभइत्त दोसीसा-अम्ममहागिरी अज्जसुइत्थी य, महागिरी अज्जसुइत्थिस्स उपवत्ताया, महा  
 गिरी गण सुइरियस्स दाऊण वोच्छिण्णो विणकप्पोचि, तइयि अपडिपइया होतचि गच्छपडिबद्धा विपकप्पपरिकम्मं

१ पाकपाननं पाककेन विमाकेन उक्कासि अ एओउठिमांठा अजेव मापिठाः पाकके-अहि पाकवसि ठहिं सुअण्णे अमिकका अविताम्ममनिकेउठि-  
 मरं पुकसि-अहि भियामकाः क्कासि अ अमासि एहि अरविमिठक्का दोष क्कासि एव तेव किं अगावैकविअसि दिवसे वायं उक्कासि इआपाए  
 इउरत्त आवाए अणसु इउयमंठठि एतं १ । इयाविममिभितोपयाविमिठि एए भिक्कासिभितं कउंअं इह एत्त अ एया केव कुं ? अउरोउरक्काय-  
 २ अका व्याख्या-आर्धपूकमाइसा हा एत्थो-अमंमहागिरिरावसुइत्थी अ महागिरिरावसुइत्थि अयाआवाः महागिरिर्गमं सुइसिसे एजा पुविअओ  
 दिक्कइत्त इहि, एयाअपाडिबद्धा अरविमिठि गच्छपडिबद्धा विक्कइत्तपरिकम्मं

अस्या व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेद-वज्जेणी णयरी, तस्य वसू धाणियओ, सो चयं आनुकामो वगपोसण कोरइ  
अह [नाए] धओ, पर्यं अणुअथेइ वम्मणोसो नामणगारो, सेसु दूरं अद्वयिमइणसु पुल्लेदहिं थिठोळिओ सत्थो इमो  
वइओ नद्धो, सो अणगारो अण्णेण ओएण समं अद्विं पविद्धो, से मूखाणि स्वायति पाणियं च पियति, सो निमत्तिअइ,  
नेअइ आहारआए, एगत्य सिलायले मत्तं पञ्चकस्साय, अदीणस्स अहियासेमाणस्स केयलणणमुप्पणं सिद्धो, ददधम्मयाए  
जोगा संगहिंया, एसा दधामई, सेचाधई सेचाणं असईए कालाधई ओमोदरियाइ, भायायईए वदाहरणगादा—

मधुराए जजण राया जजणावकेण वडमणगारे । वइण च कालकरणं सक्कागमण च पट्टज्जा ॥ १२८२ ॥

व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेद-मधुराए णयरीए जजणो राया, जजणायकं वज्जाणं अयरेण, तस्य जजणाए कोप्परो  
दिण्णो, तस्य दद्धो अणगारो आयावेइ, सो रायाए निठेण दिद्धो, तेण रोसेण असिणा सीस छिन्न, अद्व भणति—जजण  
आहओ, सर्वेहिंवि मणुस्सेहिं परपररासी कओ, कोवोदयं पइ तस्स आधई, कालगमो सिद्धो, देवागमणं मद्विमाकरणं

१ वज्जयिणी मरारी तस्य वसुर्दसिइ, स कम्पा धातुकाम वसुपोय्यां कारवति यथा वज्जः एतमनुज्ञापयति धर्मपोषो वम्माममाः । तेन वृत्तमद्वीम  
सिगतोयु पुच्छिर्द्विजोक्षितः सार्धः इतस्ततो बहः । सोऽभगारोऽभ्येव कोकेव समसदधीं प्रसिद्धः । ते मूकादि तादृशित्वादीयं च विवद्विद्य च द्वियज्जते भव्य-  
ति भाहारजात एकत्र सिक्कातले भक्त प्रत्याकम्भात् अद्विन्मस्याप्यासीन्नका केवकज्जानमुत्पन्नं सिद्धा ददधर्मदया योगाः संपुदीयताः पुरा प्रख्यापइ भेदाए  
भेदाप्यामससि क्काकाए अन्नमोदरिकादि भाषापुद्गररण्याया । २ मधुरायां अयर्वा यमुपो राज्ञा यमुनावज्जमुपानमपरकां तत्र वडुवावां स्फुट्यावातो दध  
तत्र वृद्धोऽभगार आवापयति, स राज्ञा निर्गच्छता ददः । तेन रोसेयतिवा सीयं छिन्नं अयरे मय्यदि-वीजरोप्यादवा । सर्वेति मधुर्धः प्रवृत्तादिः । इतः  
कोपोदयं प्राति तस्य भाषए, क्काकातः सिद्धा देवागमनं मद्विमाकरणं

मेषीयमलक्षणा कंकणं च गङ्गाय अहर्षिं गयो, दंठा उक्ता पुंसो कयो, सेण सणपिङ्गिणाण मन्सो धंधिचा सुगदं  
 मरेणा आणीया, पायरे पवसिज्जतेसु वसहेण सणपिङ्गणा कहिया, उयो सवसि यसो पडिओ, नगरगोच्छिपुहिं दिओ  
 गहिओ रायाए चवणीओ, बन्सो पीणिज्जइ, वणमिथो सोऊण आगयो, रायाए पायवहिओ विसवयेइ, जहा एए मए  
 आणायिया, सो पुच्छिओ भणइ—अहमेय न थाणासि कोचि, एवं ते अवरोण्णरं भणंति, रायाए सवहसाविचा पुच्छिया,  
 अमओ दिण्णो, परिक्कहियं, पुएचा यिसज्जिया, एवं निरवलायेण होयव आवरिएणं । विसिओ—एणेण एगत्त इत्ये भायं  
 वा किंचि पणामियं, अंतरा पडियं, सय भाणिपव—मम दोसो इत्येणाधि ममंति । निरवलावेचि गय २ । इयणिं आइ-  
 ईसु दइधम्मसणं कायवं, एवं जोगा सगहिया भवति, ठाओ य आवइओ ज्जहारि, तं०—ववावई ४, वदाइरणगाह—  
 सज्जेणीए वणवसु अणगारे धम्मघोस भंपाए । अहदीए सत्थविज्जमम घोसिरणं सिज्जणा वेव ॥ १२८१ ॥

१ मयिअं अककक कइजावि च पुडिआज्जवी गता इत्था अजाः सुजाः कुता तेव पुण्णिणीयं मय्ये ज्जुअ अज्जं खुआज्जवीताः मयरे मयिअसना  
 मेसु इयमेव पुण्णिपक्काः इहा, उता पुमहिंति इत्था पडिठा, ज्जाणुकिमेईओ पुदीतल एज्ज इयवीता अओ विज्जासते अममिजा ज्जुआज्जमता एव  
 पाइयोः पडिठा सिइएवति—अजा मय्ये आगमिताः स पुडो मयति—अहमेवं य जावमि अ इति एवं तौ एतस्मिं मयता एव आजा अममज्जवी पुडो अमम इत्  
 पडिअपिठं, एवमिथा मियदो । एव मितपकायेव मयितथ आचार्येण । द्वितीया—एकेकेकर इते मयमं वा विज्जिएवं अमरा पडित एव मयितथ—मम  
 दोषा इतोकासि ममेति । मितपकायमिदि एतए २ । इयापीमाणसु एवमंता कर्तव्या एवं दोषाः संगुदीता मयन्ति ताजाएइमयका एतवता—मममए ४  
 इहाइत्तमाया—

अस्या व्याख्या—कथानकावसेया, तच्चेदं—दंठपुरे णयरे दंतवक्त्रो राया, सद्यवर्दे देयी, तीथे दोहलो—कहं दंतमए पासाए अभिरमिज्जइ १, रायाए पुच्छिय, दंतनिमित्तं पोसाधियं रण्णा १ जहा—अधियं मोहं देमि, ओ न देइ तस्स राया सरीरनिगह करेइ, तथेय णयरे धणमिच्चो धाणियओ, तस्स दो भारियाओ, धणसिरी महंती पवमसिरी हु द्दरिया पीययरी यच्चि, कण्णया सयसीणं भण्णं, धणसिरी भणइ—किं हुमं एव गविया १ किं सुज्ज मद्दाभो अदिय, जहा सद्य वर्इए तहा ते किं पासाओ कीरेज्जा १, सा भणइ—अइ न कीरइ तो अहं नेवच्चि चवगरए ( वरए ) पारं धंधिचा ठिया, धाणियओ आगओ पुच्छइ—कहिं पवमसिरी १, दासीहिं कहियं, तथेय अइयओ, पसाएइ, न पसीयइच्चि, जइ नरिअ न जीवामि, तस्स मिच्चो दह्ममिच्चो नाम, सो आगओ, तेण पुच्छियं, सर्वं कहेइ, भणइ—कीरव, मा इमाए मरंतीए हुमंवि मरिज्जासि, हुमंसि मरंते अहं, रायाए य पोसाधियं, सो पच्छन्नं काययं ताहे सो दहमिच्चो पुच्छिदगपादगगणि

१ इत्युपुरे मरंतरे इत्युच्यते राज्ञा सल्लवली देवी तस्मा दीहयः कथ इत्यस्येव प्रासादेभिरासे राज्ञा पुत्र इत्यभिप्रेतं पोषित राज्ञा यथा जीवतं मृत्युं इदमिति श्री न द्वाकालि तस्म रत्ना सटीरमिन्द्र करोति तस्मै अगरे यन्मिन्नो वणिक्, तस्म हे भार्ये यन्ममीहती यन्ममीह्यु कप्पौ प्रियवता यदि भवन्वा सस्यवोर्ध्ववत् यन्ममीर्ध्वसि—किं एवमेव गतिता १ किं तव माए अचिकी, यथा सस्यवसाह्वर किं प्रासादः कियते १ सा भवन्ति—वर्णि न कियते तदाभर्दं न इ यन्मवरेह द्वारं नृणा विज्जा कथिगगतः पुच्छति—क पयमीः १ दासीभिरा कथित तस्मैवमिगतः, प्रासादयति न यन्मीर्ध्वमि नदि गति न जीवामि तस्म मित्रं दहमिन्नो नाम स भवताः तेन पुत्रं सर्वं कथयति मन्ति—किन्तु मादन्तो प्रियमाणावौ एवमपि मृताः त्वदि प्रियमायेभर्दं राज्ञा न वारिव तदा मरन्तं कथय, तदा स दहमिन्ना पुच्छिदगपादगगणि



अह्येण कछिद्विषमहो भणिओ-कहेहि पुआ ! कं ते पुक्खविषं, सेण कहियं, मक्खिणाअस्सेयेणं पुण्यणीकयं, मक्खि-  
 एससिं रण्णा संभद्दगा पेसिया, भणइ-अहं ठस्स पित्तपि ण विसेमि, को सो पएओ !, विटियविषसे समज्जुत्ता, तविय  
 दिवसे अविषपट्टारो वइसाह ठिओ मच्छिओ, अह्येण भणिओ कछिद्विचि, तेण कछिद्विगाहेण गहिओ सीसे, सं कुंदि  
 यनाउगीपिष एगंते पट्टियं, सक्कारिओ गओ उज्जेणिं, पंचउक्खणाण भोगाण आभागी आओ, इयरो मयो, एवं जइहा  
 पट्टागा चइहा भारहणपट्टागा, अइहा अह्यो चइहा आयरिओ, अइहा माओ चइहा छाहु, पट्टारा कवरास, ओ ते पुत्तयो  
 भाओपइ सो तिरस्सहो निषाणपट्टागं सेओकर्त्तगममसे इरइ, एवं भाओपणं प्रति योगसद्धहो नवति । एए सीस गुणा,  
 तिरवठावस्स ओ भन्नस्स न कहेइ एरिसमेतेण पडिसेवियति, एस्स उवाहरणगाइहा—

इत्तपुरदन्तवक्के सखधवी दोइते य षणयरए । पणमिस्स षणसिरी य पवमसिरी ओव दइमिस्सो ॥ १९८० ॥

१ अहंतेव कर्त्तसमहो मक्खिणा-अपव पुअ ! कहे कुंदिच तेव कथियं, जइहिणा कहेयेव पुअवेदीवित मक्खिक्कावादि एआ संमंरकम मैकिणा  
 मक्खि-अहं ठस्स पित्तपि ण विसेमि, को स वटाकं, विटियविषसे समजुही लुटीवविषसे मइहाएयें मैक्काव विस्सो मारिक्का अह्येव मक्खि-अहं-  
 दीसि तेव कछिद्विपट्टेय पुट्टियाः सीसं एए कुंदिक्कावविषिकारते पठितं कक्कादीये एव कछिविणी पक्ककण्णवरी मोगावामाममयीवाठा इवते पट्टा  
 वर यथा एठाका समअहंताववायवाका यवाउडववाया आचार्यो यथा मल्लकण एआः महारा जपयाया वववाइ पुक्कममल्लोववमिं च निरक्कयो विव-  
 वरावाक ! मैओववववमये इरति, पुअमाओववां प्रति योगसंघहो लवति । एते विट्यगुणाः निरपकापव-ओअपवी न कववति-ईरवमेतेव मक्खिद्विचमिति  
 भयोइहाइममाया ।

निष्ठ योगो, यथा जातो यथाऽर्थकः । द्विष्टोऽपि तथा भूत, शुण्मिष्यभनानमकः ॥ ३५५ ॥ ततो निवेदितस्तेन, सर्वे रक्षमुपायुषाः ।  
 माद्विषम प्रयत्नेन, द्विष्टस्त्वमुपायार्त्तम् ॥ ३५६ ॥ तत्त्वभारुपदेशेन, द्वित्वा सर्वं कृत्स्नम् । काञ्चासिपरिहारेण, कुम्भम् सद्रक्षसङ्कम्  
 ॥ ३५७ ॥ ततः प्रवृत्ति संघातो, द्विष्टोऽपि विषयाः । सप्त परीक्षकस्तेषां, रक्षानामब्जने रतः ॥ ३५८ ॥ अथ चार्त्तायः पान्थे,  
 तत्र मूढस्य सारम् । सोऽप्युक्तोऽत्र प्रविश्यासि, मित्र ! किं वर्तते तत्र ? ॥ ३५९ ॥ मूढः प्राह ययस्य ! त्व, किं गतेन करिष्यसि ? ।  
 रत्नवीजसिद्धिं वीर्य, किं न परवसि सर्वथा ? ॥ ३६० ॥ पद्मसम्पदप्राप्तोऽथानसरोऽवनिभूयिषम् । सिद्धिरासाममुप्याह्व, वनपत्रिकिपयि  
 तम् ॥ ३६१ ॥ तत्र सुचिरे जावन्मानदित्वा परं सुखम् । पद्मात्सलानगमन, करिष्यामो ययेच्छया ॥ ३६२ ॥ भूत मयाऽपि यो-  
 दित्वा, रक्षानां मित्र ! वर्तते । तत्रकार्त्तित्वेन, चारोर्द्विस्त्वमवसा ॥ ३६३ ॥ अथाथपद्मकोन्मिषमकाचलपद्मानिभूयिषम् । तद्गुहा वि-  
 न्यवलेनं, स चारुभाषवेतनः ॥ ३६४ ॥ अहो यथाको मूढोऽयम्, मूढ एव न सद्यः । प्रकाः कुरुतेनोर्ध्ववर्तकोकेन बभ्रितः ॥ ३६५ ॥  
 यथासि शिष्यपालीनं, यथेय विभिवर्तते । एवं विधित्वा तेनोक्त, चारुपा शुद्धिचारुपा ॥ ३६६ ॥ न मुक्तं कोमुक्तं कतुमत्र मित्र ! वन-  
 सिधु । आत्मवचनमेवदिष्ट, रक्षवापिच्यवापकम् ॥ ३६७ ॥ बभ्रित्वा त्वं मित्र !, पूर्वकोकेन पारित्वा । अरक्षानि पृष्टीवानि, रक्षमुज्जा-  
 यतस्त्वया ॥ ३६८ ॥ इदं कथनं सर्वं, तच्छीघ्रं संपरित्यज । सुरक्षानि पृष्ट्वा त्व, तेषामेव च कथयम् ॥ ३६९ ॥ ततो यावत्किञ्चन-  
 चष्टे, स चारु रक्षकसम् । तद्गुह्येनितो मूढस्य प्रतीक्षमापय ॥ ३७० ॥ नाहं मात्स्यासि गच्छ त्व, प्रवृत्तो यत्र कुत्रचित् । ययस्य !  
 एवमेव त्वं, यत्स्वमेव प्रमापसे ॥ ३७१ ॥ मित्याकरोपि त्वं चात्रैक सुरक्षकचारिणम् । द्वितीय मासक रक्षसञ्चय दूषयस्यम् ॥ ३७२ ॥  
 प्रमात्स्यपि यदेवं, रक्षानि न भवन्ति ते । पर्याप्तमपरैश्चाव !, चात्रैर्मम रक्षकैः ॥ ३७३ ॥ तत्रभाक् : पुनर्यावन्मापये स्फुरिवापरः ।

प्रपृथकावधिररत्नं प्रतीक्षमणेव ॥ ३७४ ॥ कृतं कृत्त ममानेन, तावकीनेन मित्रक । शिष्येन निजस्थान, गच्छ क्षीप निरङ्कुलः  
 ॥ ३७५ ॥ तदाकर्म्यं तिवे चित्ते, जातया परिचिन्तितम् । नैवास सिद्धय कर्तुं, मूढस एव पार्यते ॥ ३७६ ॥ इवम्—उपर्युक्तं सदा  
 तस्य, जायेः कुर्वाणोर्मुखा । ते यूते रत्नोदिते, यथोर्थावधिषट्कयोः ॥ ३७७ ॥ एतन्मात्रः परित्यज्य, ए मूढ कृतमिष्टयः । सार्ध  
 योन्यधितव्याभ्यां, गतः स्वस्थानमुत्तरेः ॥ ३७८ ॥ यत्रानां विनियोगं च, कुर्वाणस्तत्र ते प्रथ । अनन्तानन्वसन्धोदपुरिवाः सुखमासवे  
 ॥ ३७९ ॥ मूढस्तु दुःखदायिभ्यः समसाधत । निष्कासितवतो हीपात्, केनचित्कुलभूमुखा ॥ ३८० ॥ प्रक्षिप्तः सागरे बोरे,  
 पारोभिः परिपूरिते । अट्टवत्तपर्यन्ते, दुरन्तावर्धनीये ॥ ३८१ ॥ तसि एव मयाऽऽख्यात, सूरिप्रोक्त कथानकम् । एतदा मनस  
 जात, मद्र । वैराग्यकारणम् ॥ ३८२ ॥ एवो धृष्टीवनागार्धः प्रोत्कुलमुत्तपङ्कजः । सोऽककङ्को मुनिं तस्या, मद्रोऽज्यमुनिं प्रसि ॥ ३८३ ॥  
 मयोक्त—आत्म्यादि मित्र ! आचार्य, पृष्ठे वैराग्यकारणे । अतएव किमाख्यात, मुनिनेव कथानकम् । ॥ ३८४ ॥ अककङ्कोक्त—  
 मद्र ! यतवाहन नेदसत्तवत्तमुदाहरण, आकर्ष्य स्वमस आचार्य मयोक्त, एव एवावधानोऽसि, अककङ्कोक्त—मसन्वपुरस्यानीयोऽ-  
 वासांभ्यद्वारिको धीवरासिः कापिककाः पुनर्यथार्थनामानसवो निर्वाण्यधुर्विधा धीवाः, समुद्रः पुनरत्र जन्मवराभरणसकिको मिष्ट्या  
 वर्धनसिदसिगन्मीरो महानीषककथनपाठाकः सुपुर्कथ्यतद्वाभोदावर्धोदो विधिप्रशुःशोषदुष्टजलचरपूरितो दगाद्रेषजवनपवनविशोमिवः  
 सयोगविमोनाधीनिषयचटुल प्रवृत्तमोदरवदेककुलोऽन्तवकोकिवपरापरारः ससाधिकाये विवेकः, रत्नहीपस्थानीयोऽय मनुष्यमनो  
 मन्वज्यः कानतासिदुष्टरुहं तु विषयाभिजापो इष्टज्यः अमृताङ्ककपर्ककायसकलाधिकस्याः सर्वज्ञप्रणीतवर्मविपरीताः कुचर्मो वोद्वज्याः  
 पूवलोकाः कुवीर्षिकवर्गो ज्ञातव्यः, बोधित्वकानीयानि पुनरत्र धीवस्तस्यापि वर्तन्ते, स्वस्थानगमन मोक्षावाप्तिर्मेवम्या आत्मकाभरूप

एवाचन्नाः, यस्तु मूढस्योपरि कुर्वो नरेन्द्रः स एवकर्मपरिणामो विद्येयः, समुद्रमग्न्यप्रक्षेपस्तु मूढस्यानन्तमवभममप इष्टम्यमिति । एव च  
 स्मियते यो यो यन्मयाहनं ।—सर्वः कथानकम्यास, आचार्यः सुपरिसुष्टः । एवापि ते प्रबोधाय, विक्षेपेणामिधीयते ॥ ३८५ ॥ यत्र यथा  
 तेन वादय्य निर्गल वसन्त्युपाङ्गमिच्छा समुद्रं समसाध रत्नदीप विज्ञातः कश्चिमाकश्चिमात्माविद्येयः न क्व काननासिपु कौतुक छ-  
 सिवा यूर्ध्वलोकाः न पृथीवानि कश्चिमात्मासि क्व विक्षिष्टरत्नप्रद्वयवाणिज्य वयासः सुन्दररत्ननिषयः आवाञ्छिता विक्षिष्टलोकाः पृथिव  
 बोद्धित्व सजायाः कार्यसाधक इति, यथा भद्र । मन्ववया सुन्दरवया पीथा निष्कन्धासांभ्यवद्धारिकपीठपयोदवीत्यानन्ध ससारविह्वारं  
 संपाप्य मनुष्यमात्रं कपुर्कर्मवया विज्ञानमिह देवोपादेयमिमांसा चिन्तयन्ति य ते—“यथाऽस्मिदुर्बलमिह मातुष्यमाकरो आचरमानो कान-  
 “एवं निर्वाणसुखस्य सम्राजसिहमनुचाऽप्यामिः सनात्कदा नव मद्रचरं कोटि तप्त शुद्धोऽप्याकमनुना विपादसि विषमवयो विपाकेषु विष  
 “ययनासिपु प्रसिक्तवः, समसावयन्ति य ते सर्वलोपद्र वर्ममार्ग, यतो न विप्रकम्यन्ते कुणीर्यैकैः न प्रवर्तन्ते कुप्रममद्वये कुर्वन्ति  
 “साधुवर्माङ्गीकरणाकस्य वागिज्य गृह्णन्ति सातिवमार्वावार्थमुच्छिद्यःसयमसत्तमशौचाकिञ्चनत्तममप्यवसन्तोपप्रसमादिकं प्रसिधयं गुण  
 “रत्ननिषयं आर्कवयन्ति सधुवसाधुसाधर्मिकजन पूरयन्ति सधुप्यानामात्मानं संज्ञायन्ते स्वकार्यनिष्पादका” इति १ । यथा य योनयन  
 तय रत्नदीपे विपाद गुणयोगमिचाराण कवं मिचिचयद्रूपार्थं वागिज्य केवल सत्तावयस्य काननासिहवर्तनम्यसत वत्तएवयत्नेन गमिषोऽन  
 र्वको यदुः काको यीसिद्यमि काठेन मूयसा विषमयापि रत्नकासि न विक्षिपो मिक्षिष्टरत्नसंयय इति, यथा भद्र ! यतवाहन मन्ववया  
 सुन्दररत्न पीथाः संपाप्य मनुष्यमन्म कपुर्कर्मवया ज्ञानमिह गुणगुणपरीक्षण कुर्वन्ति सर्वेक्षदर्शनमवाप्य आर्ककोचिवर्तं विषयसि सधुप-  
 प्यप्यवापिज्य केवल शुर्वयत्नेन बोभमस यदुच्छवयेन्द्रियमागस्य सत्तावये तेषां यतविषयासिपु ममत्तवम्यसत यत्तएवयत्ताय ये यमयन्ति

निरर्थकं भूयांस काळं यथापि गीतव्यमिह ते भूयसा कलेन भावकथमोषिणानि कियन्त्यापि गुणरत्नकानि न विदधसि साधुधर्मसाध्यं  
 विविष्टगुणरत्नसम्पत्तिरिति २ । यथा य तेन द्विद्येन प्राप्तेनापि रत्नादीये विज्ञाय सद्य रत्नपरीक्षणं पारिवा परोपदेष्टयोन्यथा क्व विद्या  
 यद्यमासिषु महर्षरं कौतुकं न विद्विष सुरजमदृष्य न कश्चिदास्ते वञ्चका धूर्तलोकाः शूरीयानि विकिकिञ्चयमानानि कायशकलादीनि  
 जनिवा देषु सुन्दरप्रीतिरिति शुद्धिः वञ्चिष्यस्त्वयैवात्सर्गमात्मैति, यथा भद्र वनवाहन ! मन्वयथा सुन्दर्य जीवाः समासाय मनुष्यभाष  
 मनारगुरुकर्मवया न विज्ञानमिह स्वय कर्तुं धर्मगुणदोषपरीक्षणं पारयन्ति परोपदेष्टयोन्यथां कुर्वन्ति विषयवचनासिषु महर्षरं प्रसिद्धं  
 न विदधसि सर्वप्रमणीयसत्त्वमोषार्जनं न कस्यचन्यि कुटीरिक्कञ्चकटां शुद्धिं प्रकमदयादमासिचाररद्विधानि दम्भप्रधानतया वद्विधि  
 कियिक्तयमानकविमरत्नमुत्थानि कथमार्जुनानानि जनयन्ति देषु सुन्दरप्रीतिरिति शुद्धिं वञ्चयन्ति य सद्गुरुपदेक्षात्सर्गमात्मानमिति ३ ।  
 यथा य तेन भूतेन रत्नद्वीपगतेनापि न विद्विष स्वय रत्नगुणदोषपरीक्षणं नापि प्रसिद्धं परोपदेष्टेन जनुषीकित्व वनदेवकुलासिगोचरम  
 तन्वकौतुक विविष्टानि सत्यरत्नानि शूरीयानि कायशकलादीनि क्वतलेषु सद्रत्नाभिमिवेष्टः मोषिवो धूर्तलोकेन वञ्चितो सिचान्त्सनात्मेति,  
 यथा भद्र ! वनवाहन कञ्चयापि मनुष्यमवममन्वयवा दूरमन्वयवा वाऽसिद्धितया जीवाः गुरुवरकर्मभराकास्तवया न विद्वन्त्येव स्वयं  
 कर्तुं धर्मगुणदोषपरीक्षणं नापि प्रसिद्धयन्ते परोपदेष्टेन जनुषीकयन्ति विषयवचनासिषु गाढकौत्स्य सिद्धिपन्ति प्रकमदयादीनि समूदाजुष्टा  
 नानि शुद्धिं धर्मगुणसा क्षानद्भोमयागादीनि जीवपावोपमर्दकापीणि कथनुष्ठानानि कुर्वन्ति देषु वरवाभिमिवेष्ट मोषयन्ति कुटीरिक्कैः  
 सर्वे वञ्चयन्ति ते सिचान्त्सनात्मानमिति ४ । यथा य स पादं पूरयित्वा बोद्धित्व क्वकलः स्वयं गन्तुकामः स्वस्थाने योग्य प्रत्याह  
 —यथाऽह गमिष्यामि मित्र ! किं कर्तव्यं वदसि, बोधेनोक्तं—न पूर्वमेव समाधापि बोद्धित्व स्त्रोकाभ्येव मयोपार्जितानि रत्नानि, पाद-

स्वात्मानाः, वस्तु मूढसोपदि कुर्वन् मरेन्द्रः स सकर्मपरिणामो विधेयः, समुद्रमप्यप्रवेपसु मूढस्मानन्वसमप्रमर्षं द्रष्टव्यमिति । एव च  
 क्लिते मो मो पन्वाहन् ।—सर्वः कलानकस्याह, भाषार्थः सुपरिस्तुटः । यथापि ते प्रबोधाय, विधेयेणाभिधीयते ॥ ३८५ ॥ यत्र यथा  
 तेन पादया निर्गतं वस्तुमुत्पद्यमानि सगुह्य संभासाय राज्ञीय विधातः कृत्रिमाकृत्रिमरामविधेयः न कृत काननासिषु कौण्डि  
 किला पूर्वबोकाः न पृथीयसि कृत्रिमरामानि कृत विधिद्वयप्रपद्यमानि च यथायः सुन्दररामनिषयः भाषार्थेन विधिद्वयोकाः पृथिव  
 बोधित्वं सजातः स्वार्थसाधक इति, यथा मद्र ! मध्यवशा सुन्दररामा जीवा निष्कन्थासांभ्यवहारिकजीवरायरीत्यानन्व ससायविचारं  
 सप्राप्य मनुष्यमात्रं कथुर्कर्मवशा निजानन्वि देवोपादेयविभागां चिन्तयन्ति च ते—“यथाऽसिद्धिर्कर्ममिदं मनुष्यमाकरो मादरज्जालां कन-  
 “एवं निर्वाणसुखस्य समानमिदमनुनाऽप्याभिः समारब्धा वय मादृत्य कोटिं वषट् शुद्धेऽप्याकमनुना विपारसि विषमवरो विपारकेषु विप  
 “ययनासिषु प्रसिदन्तः, समारब्धयन्ति च ते सर्वबोधक धर्ममार्गा, एवो न विप्रकथ्यन्ते कुटीरिर्कैः न प्रवर्तन्ते कुचर्ममद्वये कुर्वन्ति  
 “साधुधर्मार्थीकरव्यकथनं धार्मिक्य गृह्णति साधिवमार्धधार्मिकसुखिषयसयससद्व्योधाकिञ्चनलक्षणाधर्मसन्तोषप्रसमादिक प्रसिधये गुण-  
 “एकनिषय धामधर्मयन्ति सगुह्यसाधुसाधर्मिकजन पूरयन्ति सगुणानामात्मान सजायन्ते स्वकार्यनिष्पादका” इति १ । यथा च योग्यन  
 यत्र राज्ञीये विधात गुणरोगसिञ्चारण कृतं विधिद्वयप्रपद्यमानं धार्मिक्य केवलं संजातस्य काननासिधर्मन्यस्य सत्यपयत्नेन गमिषोऽन्त  
 र्बोको षडुः काको भीषिषानि काकेन मूयसा चिन्तयन्ति राज्ञानि न विधितो विधिद्वयसमप्य इति, यथा मद्र ! यतवाहन् मध्यवशा  
 सुन्दरराम जीवा समप्य मनुष्यजन्य कथुर्कर्मवशा जानन्ति गुणगुणपरीक्षण कुर्वन्ति सर्वप्रधानमवाप्य भावकोषिव चिन्तयन्ति सगुण  
 मद्रप्राप्यिष्यं केवलं शुर्वयत्नेन कोमल चतुष्टयेनिष्प्राप्तस्य संजायते तेषां यतविषयानिषु समस्तव्यसन सत्यपयत्नाय ते गमयन्ति

“आनां अनादिजीवनसमकालात्मसिद्धिं वधो वापक मिःसङ्गादिसन्तोद्धानामनागतकर्मकथपरनिवारकः सद्यसो भावको भवभक्षणमयान-  
 “आविष्टभूरिभावद्वर्पाणां, वदेवमसि आनतां भवतो मो भद्राः । केयमविद्या कोऽयं मोहः केयमात्मन्यनवा केयमात्मवैरिकाया केन यूय  
 “गुप्यथ विरभेयु मुह्यथ कन्द्रेयु छुप्यथ वनेयु विद्याथ स्वानेयु ह्यथ यौवनेयु मुप्यथ निखरुपेयु पुप्यथ भिषसङ्गवेयु दप्यथ द्विषोप  
 “देहेयु दूप्यथ गुणेषु नश्यथ सम्भागोस्तत्त्वप्यकारोषेयु सङ्गोषेयु प्रीयथ सांसारिकमुक्तेषु न पुनर्भूयमप्यत्यथ ज्ञान माद्रुशीत्यथ दर्शनं  
 “नानुसिद्धम चारिष नाचरथ वयः न कुरुष सधर्मं न सपावथथ समूहगुणसम्भारमाञ्जनमात्मानमिति, एव च सिद्धतां भवतां मो  
 “मद्रा ! निरर्थकोऽयं मनुष्यमनो निष्कलमकारसन्निधान निष्प्रयोजनो भवतां पश्चिन्नाभिमानोऽभिहितकर्मिव भगवद्दर्शनासाधन, एव  
 “हि स्वार्थभक्षः परमवशित्ववे, स च भवतामङ्गलनाकम्बयति, न पुनश्चिरायसि विषयासिषु सन्वीथः, तस्य मुक्तेभमासिषु भवाद्भवा,  
 “अतो मुञ्चत विषयमसिषयथ परित्तरत स्वजनकोद्दार्मिक विरहमथ वनमवनममस्तव्यसनं परित्तरत निःशेष सांसारिकमलजान्माक पु-  
 “ह्वीत भागवती भावतीर्षा विषय सङ्गानादिगुणगणसञ्चल पुरयत वेनात्मान भवत स्वार्थसाधका यावत्सन्निहिता भवतां चय । सत्य-  
 “वाऽक्यदुपदेशामावे सद्गुदितिकका मूय स्वार्थभद्रा एव सर्वथा भविष्यथेति” । एतदेव भगवता स मुनीनामुपदेशमभ्यनास्यमुपाकम्भगर्भ-  
 मुपकथ्य वे योग्यकल्पा देशचिरता निवरां कथन्ते सत्यसितेन न ध्वती ब्रह्मोद्ययि न कुर्वन्ति सतोदुष्यधिधान, किं यद्दि, प्रक्षिप  
 यन्ते द्विदमिषि वत्सागुणधन आचरन्ति पयोऽपिधानेन स्त्रीकुर्वन्ति पारमेधरं भद्राप्रथ सिधन्ति पूरयन्तो शुभरक्षोरात्मवानपात्रमिषि  
 र । यथा च स आशतो द्विदमाभ्यर्थं सिद्धिं स्वत्तानामनार्थं सदाभयथ वतो यथैव वतो द्विदमेन स्वयमुपाकीय वत्कायसककासिकं  
 निवेदित काननासिकोऽस्यसारमस्यावेष्टि, यथा भद्र धनवाहन ! भद्रकेभ्यो सक्यमिष्याद्विभ्यः संपूर्णगुणाः सुसाधवो यद्यत्र सद्यर्भक-

योऽहं—किं पुनरप्यकारणम्, एतौ योग्येन कश्चित् पशुपार्श्वेन विप्रपूषमात्मनः काननानि कुतूहलं, यथा भद्रम् । पनवाहन् चारुतुल्या मया  
 बभूवो मुनयो मृत्वाऽऽश्रमम् । यथासक्यमाश्रमसमस्तोपशान्तदर्शनादीनां आचरन्नानां निष्ठितार्थाः स्वस्य विगमिष्यदो मोक्षलक्षणे स्वस्थानयो  
 रवस्थापार्थं देवविरचानां मोक्षायमानार्थमाश्रयमिष्य कुर्वाणाः कुर्वन्ति धर्मक्षेत्रां, ते तु निवेदयन्त्यात्मनः स्तोत्रगुणस्य, यथाः साधयो  
 मुखते सो भद्रम् । मनुष्यभावे साधीन सर्वेपरे सगुणार्थेन तर्कितं न संपूर्णगुणा काला नूय यथा नयम्, यथाः कथयन्ति ते देवविरचाः सद्  
 र्शयुषोपार्श्वेन विप्रमूढमात्मनो पनविषयमिदं ममत्त्वमप्युच्यते, एतौ यथा चारुणा योर्न्यं प्रचुक्—यथा भद्रम् । न तुक्ते प्रामस्य रत्नदीप  
 कालानि कुतूहलं कर्तुं नानमिदमात्मनो मद्याविमः सुखभद्रस्य स्वजानासि च स्वसुखानां सुखहेतुतां यथाप्यनादरमव हेतु कुर्वाणः  
 किमात्मनो वैरिकावसे, न च विरेण्यासि ते कौमुदपरिपूर्विकादरं स्वार्थं यस्मिन्निवराया निरर्थकं रत्नदीपागमनं, यतो भद्रम् । सुखं नना  
 विवेकं तुल्यं मयि सन्निहितं सुखोपार्श्वेन मन्त्रया साधयामि, यतोऽत्यन्तलज्जितो योग्यः प्रसिद्धमचारवचनमनुष्ठितं विधा-  
 नेन सज्जातः सुरज्जानां बोधित्वमरपेन स्वार्थसाधक इति, यथा भद्रम् । पनवाहन् मुनयोऽपि देवविरचानेवमाचक्षते, यथा “मो भद्राः न  
 “तुक्ते पुण्यादभ्यासवासे मनुष्यभावे जानतां जिनवचनासूचरं लक्षयतां भवन्तैरुप्यसाकलयतां कायकस्त्रिकमलादिभिर्यथा देवयतां यौवनक  
 “सन्त्यागप्रयोगमनुत्तरां पश्यतां श्रीविषयं धर्मोपवस्यकुनिगल्यलक्ष्यं यथायथा स्वजनवर्गस्येव देवयतिरपुनितिकसिद्धदृष्टनष्टतां कर्तुमी  
 “एतां पनविषयानिममत्त्वमप्यसन् यन्ममिदमात्मनो मद्यान्तरायो ज्ञानाविद्यापनस्य जानन्ति च भद्राः यथा परिणामवाचया विषया  
 “कारणं विचक्षितुं ज्ञानं परकद्वयं योपि योऽनूयिः सद्भावास्तु ज्ञानां हेतुभूतभार्यपौरुष्यानां सुगतिमार्गप्रदीपो ज्ञानजनकमानसादा  
 “दानां कुपोनिगर्वास्तिपावद्यालक्ष्यो दर्शनं सम्भावनमनन्तमनन्तप्रयोगानां सुखेभावेपयोस्मिन्नेष्य चारित्र्यसमयक निरन्तरविद्योत्सव



“वानां वानातिजीववक्षसमकस्याकनसल्लिख तथो दायक निःसङ्गातिसन्धोद्धानासनागतकर्मकश्चरतिवारकः सयमो माधको मधममणमयान्  
 “माधिमभूरिमावर्ध्याणां, तदेवमपि आनतां भवतां भो मद्राः । केयमविधा कोऽयं भोहः केयमात्मवचनता केयमात्मवैरिक्ता कन मूर्ध  
 “गुण्यय विपयेषु गुण्यय कन्द्रेषु छुभ्यय वनेषु विह्वय सखनेषु ह्वयय यौवनेषु पुण्यय निजस्वेषु पुण्यय विजसङ्गेषु ह्वयय द्विषोप  
 “देष्टेषु वृष्यय गुणेषु नश्यय सन्मार्गास्तत्सत्यस्याटेषु सङ्गेषु प्रीयय सांसारिकसुखेषु न पुनर्नृसमग्रस्य म्भानं नातुसील्यय वृष्यनं  
 “नातुविष्ठम चारिष्य चाकरय तथा न कुरुष्य संयमं न सपादयष्य सङ्गुण्यसन्मारभाजनमात्मानमिति, एवं च विष्ठतां भवतां भो  
 “मद्रा ! निरर्थकोऽय मनुष्यमयो निष्कलमसादससन्निधान निष्पयोजनो भवतां परिह्वानाभिमानोऽर्कविक्कटमिष मगवर्धनासादन, एवं  
 “हि स्वार्थमसः परमवसिष्यते, स च भवतामवतन्माकम्बचसि, न पुनश्चिद्यदपि विषयासिदु सन्धोपः, तत्र मुक्तेवमासिदुं मवाद्वतां,  
 “भवो मुञ्चत विषयमसिष्य च परिहरत स्वजनखेदासिष्य विहरयत जनमवनममस्यव्यसनं परित्यजत निःशेष सांसारिकमलजान्माल नृ-  
 “हीत मागवतीं मावर्ध्याणां विषय सख्यात्वातिगुणायसञ्चय पूरयत देनात्मान भवत स्वार्थसाधका चावस्यसिद्धिं भवतां हव । अन्य-  
 “माऽस्तुप्रवेषामात्रे सद्गुद्विविक्ता मूर्ध स्वार्थमद्या एव सर्वथा भविष्यदेति” । तस्मिन् भगवता सन्मुनीनामुपदेशमवाप्तुवाकम्बमगमं  
 मुपलभ्य ते योगयकत्वा देशविरता निरयं सञ्चरते स्वचरितेन न हृदयी वष्टोचयणि न कुर्वन्ति सन्तोष्यभिमान, किं वार्द्धिः, मसिप  
 एते द्विषमिति वत्सागुभजनं भावयन्ति ययोऽविषयानेन स्त्रीकुर्वन्ति पारमेधरं मद्रावत सिद्धन्ति पूरयन्त्यो गुणरत्नैरत्यमानपात्रमिति  
 २ । यथा च स चार्वाको द्विष्याम्यर्थं सिद्धिं स्वस्यान्तामनार्थं तथाममण तथो वर्धित एवै द्विष्येन स्वयमुपाधिष्य तत्कायशकलाविक  
 निवेदित कान्तान्तिर्कोटुकसारमात्मवेष्टिष्य, तथा मद्र भनवाहन् । मद्रकेभ्यो भव्यसिष्याद्विष्यः सपूर्वगुणाः सुसाधवो यद्वय सद्रर्षक-

बलाबाधिरुसीरमन्त्रि पञ्चादया द्विच्छसमीपगमनमभिधीयते, यतः कुर्वन्ति ते साधवस्तेषां भद्रकर्मकर्मभिध्यादृष्टीनां कर्मदेशनया मोक्ष  
गमन प्रज्ञाप्रद्वयं देष्टुं च तेषां कर्ममन्त्रि यथा नयमपि कुर्म एव कर्म यतोऽनुविद्यामो नित्यकानं सुदुर्मोऽभिदोष द्वाभ्यस्तिस्रसमिधः  
प्रयच्छामो गोमूत्रमिदिरप्यप्रीति कारयामो धानीकूपवहागप्रमृतीति परिणयामः कर्मका इत्यादिकं कायसकलाविवर्धनं, अन्त्यध—ते  
सुसाधुभ्यो निवेद्यन्ति यथा—मो भद्राकाः । सुक्तेन नयमाक्यते यतो भययामो मांसं पिबामो मद्यं व्यासादयामो विधिभं सुरस भोजन  
रमयामो वरद्विधः परिदम्भः सुकुमारोऽब्जकनसनामि मानयामः पञ्चमुगन्धिकोन्मिषं दान्मूर्च्छं विद्वयामो विविधमात्यविठेयनैः मीढ-  
यामो घननिबधं विचरामो यथेष्टबेद्यया न सद्गमो रिपुगन्धं वज्रसयामो निजकीर्तिं दर्शयामः स्वस्य देवरूपतां अनुभवामो मनुष्यम  
वसारमितामि, वरिदं कान्तानिर्कौटुकसारसमन्त्रेष्टिकयनं, यतो यथा तेन आदया कथापरिगतद्वयेन द्विच्छ प्रत्यभिद्विच यदुव—  
वयस्य । वञ्चितोऽस्ति स पापिना पूर्वकोकेन सुगवयया न यानीये निषाणु रज्जुपथोपपटीषां, अन्त्यध न मुक्तं वद कटु रज्ज्वीपमन-  
यक कान्तानिर्कटुहर्षं निप्रकम्पकद्वैप परमार्थेन, यतो द्विच्छेन मिद्विक्त वधीयवत्सकतां कश्चिदः परिजानाद्विरेकं, यतो निवर्तिवं का  
नानासिकौटुकं, दृष्टम स आरु रज्ज्वस्य वरिधः सिध्यमावः, जादरसि रीज्यवस्तुभ्यैः निवेदित रज्ज्वस्यं प्राद्वितस्तुपायार्जोपाय द्वि  
पञ्चादया संज्ञातो निचक्षुषः पटीयको यजानां, यतः परिद्वय कश्चिन्मर्यादति सयमः सत्वरज्ज्वरलोपाय इति, यथा भद्र ! घनवाहन  
सन्मुनयोऽप्री करुणापरिगममनसाद्यानेव वयसो भद्रकर्मकर्मभिध्यादृष्टीमिरवमाचक्षते, यदुव—मो भद्राः स्वस्य कर्मशीला यूयं कुरुय  
कर्ममात्मसुखा केवलं सुगवयया न यानीय दद्विच्छेयं वञ्चिता यूयं कुरुमोऽपि कर्मसाधनानि भवन्ति, सव-  
मूढव्यापयानो द्वि भगवान् सिद्धिद्वयमैः, वञ्चितोऽमीनि च जागृतोऽप्रीति, यत्र मुक्तं कर्मसुखा भवतामयमार्गोऽस्ति, पत्युनर्मयं यूयं यथा

—सुरेन वयं विष्णो पठो ममयामो मांसमितासि, एवमि मुग्धतासिद्धिश्चिन्तयेव भवतां ह्यसप्राप्यं विवेकितां, यतः “समिद्धिवाक्षेपापाये  
 “जाये बलस्तु निविषयेगेयु र्वरागाभिन्नां चरतां मतः। छरीरसन्धापकारिषु रात्राणुपद्रवेषु मायावरे यौवने सर्वक्यसनकारिष्वीषु स  
 “म्वस्तु मनोवाहिनीवसियोगे चिन्तयेयुर्वाकारिषि विप्रियसम्प्रयेभे सवतमागाशुके मरणे सर्वबाधुषिनिधाने छरीरे पुद्गलपरिणाममात्र  
 “निःसारिषु विषयेषु कसक्यदुःकक्यपरिपूरिते जगति बर्तमानानाममुमतां कीदृशं नाम सुखं?, परमार्थेवो दुःखेऽपि सुखविपर्यय एव  
 “मवतां, कर्मचनितः कस्त्वेव विप्रमः कारणमनन्तमवप्रभवस्त, एते भो भद्राः! कर्ण्येव प्राप्ते मनुष्यमये सभिद्धिवायां धर्मसामग्र्यां  
 “सुलस्यदुपदेशे स्वाधीने गुणधाने प्रकटे ज्ञानासिद्धिमार्गे अनन्तानन्तवृत्तये जीवे तस्य कस्यकामकषये भोर्मे ज्ञानभक्तानुष्ठानमात्रापये  
 “वृत्तामे न शुक्लं ममवामीदृष्टमास्तव ज्ञानं कर्तुं” एविवं सन्मुनिवचनसाकष्यं दे हिंयद्गुत्स्या भद्रकमक्यमिच्छादृष्टयो जीवा निश्चिन्तयन्ति  
 देयां भगवतां स मुनीनां बलसत्त्वां कस्ययन्ति परिष्ठानाधिरैक, एते निवर्तयन्ति एवपदेष्टेनात्रासष्टमबासनाविशेषा सन्त्यो वनविषय-  
 गुद्विप्रसिद्धन्त्र पृच्छन्ति च विशेपयो मुनिजन दे धर्ममार्गं पृच्छन्ति शिक्ष्यमात्रं रक्षयन्ति गुरुतापि चिन्तयाविशुद्धैः, यतः प्रसन्नहृदया  
 गुरुवत्सेभ्यो गृहसाधसोचिव साधुवसायोग्यं च प्रसिपाययन्ति धर्ममार्गं प्राहयन्ति एवपार्जनोपाय मद्रायत्नेन यदुव—भो भद्राः! सद्धर्मं  
 साधनयोग्यत्वमात्मनोऽभिलषन्निर्मवन्निश्चायसिद्धमादौ कर्तव्यं भवसि यदुव “सेवनीया दयालुता न विधेयः परपरिमवः मोच्छया को  
 “पनता वर्जनीयो दुर्जनसंसर्गः विरहिषव्याऽलीकवासिता धर्मसनीयो गुणानुयागः न कार्या चौर्यवृद्धिः त्याजनीयो सिध्याभिमातः  
 “वारधीयः परदारमिच्छापः परिहर्तव्यो भलासिगर्भः शिषेया शुश्रितवुः। कत्राप्येच्छा पूजनीया गुरुवः बन्द्नीया देवसङ्गाः सन्माननीय  
 “परिजनः पूरणीयः प्रणयिलोक अनुवर्दनीयो मित्रवर्गः न भाषणीयः पपावर्णवादी प्रदीतक्याः परानुयाः कृद्धनीय निजगुणसिद्धमनेन

बलायामिदुर्दीप्तमिव दग्धाद्या दिग्दग्धसीपगमनमभिधीयते, यतः कुर्वन्ति ते साधवस्तेषां भद्रकथमप्यभिव्यादयीतां धर्मदेसनया मोक्ष-  
गमनं प्रस्तामन्नप, तेऽपि च तेभ्यो दध्यंयन्ति यथा वयमपि कुर्म एव धर्मं यथोऽनुविधायो निवसन्तानं जुहुमोऽभिदोष एवामिद्विषयमिष  
प्रपञ्चामो गोभूमिद्विरप्यादीनि कारयामो बापीक्षपचभागमधुदीनि परिषयामाः कन्यका इत्यादिक कायशकवाविरर्शनं, अन्यथा—ते  
सुसाधुभ्यो निवेदयन्ति यथा—भो भद्रारकाः ! सुरेन वयमाकाहे यतो मक्षयामो मांसं विद्यामो मद्य आसादयामो सिधिम सुरस भोजन  
रसकामो वदिकिवः परिरप्याः सुकुमारोऽज्जकवसनमि मानयामः पञ्चमुगन्धिचकोन्मिश्रं धान्यसूक्ष्मं विवसामो विविधमन्त्रादिभेदेनैः मीक-  
यामो यतनिबधं विचरामो यथेष्टचेष्टया न सङ्गमो विगुणश्च वृक्षासयामो निवकीर्तिं दध्यंयाम सस्य देवस्त्वया अनुभवामो मनुष्यम  
वसारमिवावि, वसिष्ठं ज्ञाननामिकौतुकसारमागमवेष्टितकवन्तं, यतो यथा तेन चारुणा कृपापरिगवद्भवेन दिवस्य प्रत्यभिद्विष सदुक्त—  
ववस्य ! वशिष्ठोऽस्ति त्वं पापिना भूर्वलोकेन मुगधवया न ज्ञानीये विद्यासु रक्षतुषदोपयदीयां, अन्यथा न शुक्तं त्वं कतु रक्षदीपमाग-  
वस्य ज्ञाननामिकुत्तरं निप्रकल्पयैव परमावर्त्तनं, यतो द्विद्येन निधिव्य वदीयवत्सकयां ज्ञेयः परिज्ञानातिरेकः, यतो निवर्तिवं ज्ञा-  
ननामिकौतुकं, दृष्टम स चारु रक्षकमप्य दक्षिणः सिध्यमावः, चारुरपि रक्षितकटुपैः निवेक्षित रक्षकमप्य भाद्वितकटुपावर्त्तनोपाय इि  
दृष्टमावया संभावो विचक्षमाः परीयको रक्षार्ता, यतः परिरक्ष्य कृत्रिमरक्षानि संपन्नाः सत्वरक्षपद्वयोपय इति, यथा भद्र ! यतवाहन  
सन्मुत्तयोऽपि कृत्यापरित्यागमानसाज्जानेव वयथो भद्रकथमप्यभिव्यादयीनिरपमाचयते, वदुक्त—भो भद्रा ! सत्य धर्मधीना यूपं कृत्य  
धर्ममात्मदुःखा केवलं श्लाघयथा न ज्ञानीय दक्षिणेव वशिष्ठा यूर्ध्वं कृत्यमैसावकाटैः, न यदसु द्विसकमोपि धर्मसाधनानि भवन्ति, सन्-  
भूदवयाप्रधानो हि भगवान् विमुक्तधर्मः, यद्विरोधीनि च भागवतोपादीनि, यत्र शुक्त धर्मगुह्या भवतामप्यर्थावेवम, यत्तुनर्ण्यं यूपं यथा

—सुखेन वयं सिधामो वदो मम भामो मांसमिलानि, यद्यपि गुणवतामिन्नमिदमेव भवतां ह्यसमायं विभेकितां, यतः “सन्निधिवामेवापावे  
 “काये बलात्सु विविधयोगेषु लभ्यमानिन्मां बलायां मनाःशरीरसन्वापकादिषु राजानुपद्वेषु साधारणे यौवने सर्वव्यसनकारिणीषु स  
 “म्यसु मनोवाहिनीद्विविधयोगे विषयेषुर्धकारिणि विविधसम्प्रयोगे सवदमागामुक्ते मरणे सर्वथाऽशुचिनिघाते शरीरे गुणकपरिणाममात्र  
 “निःसारेषु विषयेषु असम्भुः कलत्रपरिपूरिते ज्ञानसि कर्मभानानाभिसुमरां कीदृशं नाम सुखं !, परमार्थतो दुःखेऽपि सुखविपर्ययस एव  
 “ममत्वां, कर्मकनिघः कल्पेव विभयः कारणमनन्दमवभमप्यस्य, यतो म्यो भद्राः ! कृष्णाय प्राप्ते मनुष्यमये सन्निधिवामां धर्मसामान्या  
 “सत्त्वकादुपदेशे स्वाधीने गुणभावे प्रकटे ज्ञानाविमोक्षमार्गे अनन्तानन्तर्ये जीवे यस्य सत्त्वकामकल्पये मोक्षे ज्ञानमकादुष्टानमात्रापदे  
 “दृष्टान्ते न युक्त भवतामीदृशमात्मवच्चन कर्तुं” यन्निव सन्मुचिवचनमाकर्ण्य ते द्विवद्वदुत्था भद्रकमव्यसिध्यादृष्टमो जीवा सिधिरवन्ति  
 वेपां भगवतां स मुनीनां बल्लवतां लक्षयन्ति पट्टिद्वानातिरेकं, यतो निवर्तयन्ति एतुपदेशेनावाप्तमष्टमभासनामिधेया सन्तो वनविषय  
 एवमसिधन्व पृच्छन्ति च विषयेषो मुनिवन्त ते धर्ममार्गे धर्मयन्ति सिध्दमात्रं रजयन्ति गुरुन्ति विनयाविगुणैः, यत प्रसन्नहृदया  
 गुरुवस्तेभ्यो गृहस्थावस्थोक्तिर साधुवृत्तायोग्य च प्रसिपावयन्ति पर्याप्तार्त्ता प्राहयन्ति बहुपार्श्वतोपाय महाप्रबलेन यदुव—भो भद्रा ! सर्वमे  
 साधनयोग्यत्वमात्मनोऽमिलयन्निर्भरान्निष्ठावविद्वद्भ्यो कर्तव्य भवति यदुव “सेवनीया दयालुता न विषयेः परपरिमयः मोक्षक्या को-  
 “पनसा धर्मनीयो दुर्जनसंसर्गः विरहितव्याऽशीकवाविद्या क्षम्यसनीयो गुणानुरागः न कार्या न्यैर्धनुदिः सन्ननीयो सिध्याभिमानः  
 “कारणीय परदापभिक्षयः परिहर्तव्यो वनाविगर्भः निषेया दुःखिदुःखः क्षमापेक्षया पूजनीया गुरुवः वन्दनीया वैषम्याः सन्माननीयः  
 “परिषनः पूरणीयः प्रणयिलोक अनुवर्तनीयो मित्रवर्गः न मापणीयः परादर्शवापो प्रदीप्तव्या परगुणाः कृञ्जनीय निजगुणविकल्पनेन

“सर्वं कर्मसमीचीयेऽपि सुकृतं मस्तिवन्म परार्थे समापणीयः प्रथम विधिप्रवृत्तः अनुभोदनीयो मार्मिकजनः न विषयं परमसौन्दर्यदृष्टं मयि  
 “तन्म सुवेधापारैः”, तयो मस्तिवन्मि भवतां सर्वशोपमसमर्थांनुष्ठानयोग्यता, तत्र च “गृहस्ये सन्निः परित्वन्मोऽकल्पापमिप्रयोग  
 “सस्तिवन्ममि कल्पापमिप्रयोगि न कङ्कनीयोपिप्रवन्मिः अपेक्षितन्मो लोकाभ्याः माननीया गुरुसद्वन्मिः मस्तिवन्ममेवचक्षेः प्रवर्तितवन्म  
 “दानादौ कृतंम्योहारपूजा भगवतां निरूपणीयः साधुविशेषः शोचन्म विधिना धर्मशास्त्र भावनीय मद्रापन्नेन अनुष्ठेयकद्वयो विधानेन  
 “अवकल्पनीय क्षेत्रं पर्वशोषनीयाऽऽप्यमिः अवलोकनीयो सत्सुः मस्तिवन्म परलोकाप्रधानैः संस्तिवन्मो गुरुजनः कृतंम्य योगपद्वत्सर्न  
 “साधनीय द्रष्टव्यमि मानसे निरूपयितव्या भारण्या पद्विर्तन्मो विशेपमार्गः प्रवस्तिवन्म योगशुद्धौ कारयितव्य भगवदुत्पन्ननिष्ठासिद्धि  
 “केलनीय सुवनेष्ववचन कृतंम्यो मङ्गकमपः मस्तिपद्वन्म शत्रुःसारण गार्दितवन्मनि शुक्लवामि अनुभोदयितव्यं कृपाक पूजनीया मज्जदेवताः  
 “श्रोतव्यमि सवद्विवास्ति माधनीयसौहार्दं वार्तितवन्ममुचमकावेन” तयो मस्तिवन्मि भवतां साधुधर्मनुष्ठानयाजनता । ततः “कृतवद्विर  
 “म्वरुद्रसद्वत्सर्न” परद्वचनोच्चिमिर्माधनुनिभिः सन्निर्भन्निःपुल्लेवनीया मद्रप्राप्तिषा विधेया वस्तुवत्त्वदिक्कासा सुगभीयः स्वरवत्त्ववे  
 “हिना पद्विर्वनितेन पपुस्रमवेहिना यथार्थमिमानेन गुरुणा सन्मक् सन्मन्मः प्रयोक्तव्यो गुरुवितयाः अनुष्ठेया विधिपराता कृतंम्यो  
 “मप्यकवीनिपयासादौ वल्लः अनुपाकनीयो क्येष्ठक्यो मज्जनीयोपिप्रवास्तनदिक्का द्वयो विक्कवासिर्विधेयः शीवनीया मावसारमुपयोगप्रथा  
 “तथा विधेयमीचोऽयं मज्जपविधिः आचरणीया शोभपरिणमिः मस्तिवन्म सन्मपमानकिरवायां कार्य मनःस्थैर्यं न विधेयो क्कान्तर्मुत्सुकः  
 “तोपद्वसतीयाकद्वकाः परित्वाभ्यो विवाहः परिहर्त्यमपुद्वद्विमेवकृत्यं न विधेयः कृपाने द्वाकनिधोगः” तयो मस्तिवन्मि भवतां पात्रया  
 शत्रुभया गुप्यमानां विप्रद्ववदी क्षमभीः स्थाप्रयो भावसम्पदा, ततः सर्वनिष्पन्ने भवतामुपमि सप्रसादा गुरुभः संप्रदापयिष्यन्मि विद्या

मसत्तापि प्रबर्धित्वान्ते मरुतां द्रुक्षुषामपणमप्यभारणोद्गोहृत्स्वामिनिवेशाः प्रप्रागुणा इति । तथा “अनुशीलनीया भवन्निरासेवता  
 “क्षिप्ता समान्तरपीया प्रत्युपेक्षणा मन्त्रनीया प्रमार्जना सात्त्विकीमात्रमानोदध्या भिक्षाभ्यां प्रतिक्लमणीयेर्यापधिके वातव्याऽऽस्कोचता  
 “शिक्षणीया निर्वोपमोक्षता विधेया आज्ञानपरिकर्मणा अतुष्टेयाऽऽसिद्धी विचारार्थं निरीक्षणीयाः स्वपिच्छभूतभयः कर्तव्यं समस्तो  
 “पाणिभिर्द्वारमात्रदयक प्रबर्धितव्य पथागमं काकमण्ये आश्रावक्यः पञ्चभिधः स्वाभ्यायः श्वेदमभ्यसनीया प्रसिद्धिनाकिया पाकनीयः पञ्च  
 “विषोऽप्याधारः आसवनीये चरणकरणे अङ्गाङ्गीमात्रमानेयोऽप्रमादः स्वावभ्यमत्सुप्रविद्यारिरचा” सर्वो भविष्यसि मरुतां मोक्षगमनम  
 दप्यो गुणसन्धोदः, श्वेदं ते मगावन्तः सन्त्युतयो श्वेदंयन्ति तेभ्यः सद्रुणार्थेनोपाय, एतस्ते वज्रपदेसेन मद्रकमभ्यसिप्यादृष्टयः सञ्जा  
 यन्ते सिधमप्याः मरुन्ति परीक्षका आनन्दानां विप्रयन्ति कुप्रमर्त्तिवत रमन्ते सद्रुणोपादाने वयसि च—यथा भो भो मद्रारकाः ।—  
 अयापहेतुभिर्मागधूर्ताकारेभ्य तीर्थिकैः । एतावन्त वयं कालं, वक्षिता मोहदोषवतः ॥ ३८६ ॥ अमुता बोधिता धन्यैर्मवन्नि  
 रस्त्रितस्तथैः । यथाऽऽसिद्ध करिष्यामो, नाथाः । सर्वं पुरोविषम् ॥ ३८७ ॥ अयोपहृष्टिता वाक्यैः, साधुमिस्ते मनोहरैः । यथोपसिद्ध  
 कुर्वाणा, जायन्ते स्वार्थसाधकाः ॥ ३८८ ॥ ३। यथा च स आकर्षणे मूढसमीपं कृत् धमनार्थमाभजय, मूढेनोक्त—वयस्य ! किं गतेन  
 करिष्यसि ? रमणीमवमसिद्धं क्षीयं, वयाहि—पश्य पश्य मूषितमिदं पद्मस्यप्येर्विराजिव गृहोपानैर्मण्डितं सरोवरेः कमनीयं सिद्धार-  
 यमैः सहृदयीय सुगामिषुष्मभरत्पुण्यभिर्नयसिभिरेभिरुपणीयं सुन्दरलोकयोगेन वयं मानसिक्ता सुचिरं सुखं पश्चात्स्वस्थानगमन  
 करिष्यामो, न च मे गमन दोषते, भूत च मयाऽपि बोधित्य वर्तते, वयो वर्यिषं वत्कायस्यककाक्षिपूरीत चारोः, अनेन संभावा चारो  
 कृदप्या, वयस्यस्योपदेशो यथा—न शुक्तं ते कानतासिक्कौशुकं कुर्यान्नि च स्वया गृहीयानि रम्यशुद्धा वत्सरित्यत्र सिधामूनि गृहाप्य

“कर्तव्यमपीयोऽयि शुक्रं यद्विषयं परार्थं समापनीयः प्रथमं विधिब्रह्मः अनुमोदनीयो धार्मिकजनः न विषयं परममोक्षपटुं मयि  
 “उच्यते सुवेपाचारैः”, एवमयिष्यसि मन्त्रं सर्वप्रोपस्यस्यार्जुनानथोभवा, एव च “गृहसौ सन्निः परित्वैर्योऽकृत्यापमित्रयोगः  
 “संविद्यमानि कृत्यापमित्राणि न कर्तव्यानि विचिन्तितः अपेक्षितं चोक्तमार्गः माननीया गुरुवद्विः मयि विषयमेव चैः प्रवर्तितव्य  
 “दानादौ कर्तव्योत्तरपूजा मागवां निरूपणीय साधुविशेषः भोक्तव्य विधिना धर्मोदात्त भावनीय महायत्नेन अनुष्ठेयस्यार्थो विधानेन  
 “प्रकल्पनीय वैयं पर्यालोचनीयाऽयसिः अथकोकनीयो वसुः मयि विषयं परकोकप्रधानैः संविद्यमाने शुक्रजनः कर्तव्य योगपटुर्द्वयं  
 “आपनीय सद्रूपानि मानसे निरूपयितव्या धारणा परित्वैर्यो विद्येयमार्गः प्रवर्तितव्य योगपटुर्द्वयं कारयितव्य मगदनुदनीयव्याहिक  
 “केवलीय शुक्रनेष्टव्य कर्तव्यो मङ्गलमपः प्रविपद्यमानं अनुःकार्य धार्मिकमयि शुक्रमयि अनुमोदयितव्य कुसल पूजनीया मन्त्रवेदवाः  
 “भोक्तव्यानि सवेष्टिवाणि भावनीयमौदार्यं धर्तव्यमुच्यते” एवमयिष्यसि मन्त्रं साधुधर्मार्जुनानमात्मनवा । एवः “कुलवद्विर  
 “न्यप्यस्यस्यार्गो परवचनोक्तिमिर्मादनुनिभिः सन्निर्भन्निः परवचनीया मन्त्रविक्षिप्ता विधेया वसुवत्प्रविष्ठासा मृगणीयः सपरवचने  
 “विना परवचनित्वेन परवचनवेदिना वचनार्थमिमानेन गुरुया सन्त्यक् सन्त्यक् प्रयोक्तव्यो गुरुवित्तयः अनुष्ठेया विधिपरवा कर्तव्यो  
 “मन्त्रकीर्तिपाशादौ यत्नः अनुपाकनीयो व्येष्टक्यो मन्त्रनीयो विवासान्निध्या देवो विक्रयविविधेयः क्षीरनीया भावसाधुपयोगप्रभा  
 “भवा विषयनीयोऽयं मन्त्रमयिषिः भावरापीया बोधपमिषिः धर्तव्य सन्त्यक्वचनविरवायां कार्यं सन्त्यक् न विधेयो धानकर्तृस्तेषा  
 “मोक्षसनीयाकाश्याः परित्याग्यो विवाहः परित्याग्यमनुष्ठेयमेव कर्तव्यं न विधेयः कृपाने साधुवियोगः” एवमयिष्यसि मन्त्रं पात्रवा  
 वृत्तमवा गुण्यतां विमद्वदी क्षमणीः साधवो भावसाधुपरि सप्रसादा गुरुः संप्रदायविषयि विद्या



प्रसादादि प्रवर्धिष्यन्ते यवतां सुहृत्पाशवपुःप्रणयारण्योद्भवस्त्वामिनिवेशाः प्रज्ञानुष्ठा इति । तथा “अनुष्ठीकनीया भवन्निरासेधना  
 “सिद्धा समाश्रयीया प्रत्युपेक्षणा भवन्तीया प्रसार्तना सात्स्न्यभावमानोक्त्या भिक्षाचर्या प्रसिद्धमणीयेर्यापयिका शाठव्याऽऽज्योचनता  
 “सिद्धमीवा निर्योपभोजनता विधेया भाजनपरिकर्माणा अनुष्ठेयाऽऽगमिणी विचारचर्या निरीक्षणीयाः स्थण्डिकभूतयः कर्तव्य समको  
 “दादिभिष्टुक्तमाश्रयक प्रवर्धितक्यं यवानामं कालप्रदये आभावव्यः पञ्चविधः स्वाध्यायः धर्मसम्पत्सनीया प्रसिद्धिनाम्न्या पाकनीयः पञ्च  
 “विशेषोऽप्याचारः आसेवनीये चरमकरणे ब्रह्माहीमावसानयोऽप्रभावः स्वाध्यायसत्युपविहारिवया” एवो भविष्यसि भवतां भोजगमनप्र-  
 वयो गुणसम्प्लेहः, सर्वेषु ते सगन्तव्यं सन्त्युत्तयो वस्यन्ति तेभ्यः सहृणार्जोपायं, वसस्ते वदुपवेक्षेन भद्रकमज्यमिष्यादृष्टयः संजा  
 वन्ते विजम्बणाः भवन्ति परीक्षका मज्जराजानां विद्वद्वन्ति कुपमासेवन रसन्ते सहृणोपादाने बहन्ति च—यथा भो भो भद्रारकाः ।—  
 अपायहेतुभिर्भोगैर्पूर्वाकरैश्च दीर्घिकैः । एतायन्त यय कालं, यच्छिता मोहदोषताः ॥ ३८६ ॥ अनुना बोधिता पन्थैर्भक्तै  
 रस्वित्तल्लैः । यथाऽऽसिद्धं करिष्यामो, नाथाः । सर्वं पुरोविद्यम् ॥ ३८७ ॥ अथोपबृद्धिवा चार्यैः, साधुमिस्ते मनोहरैः । यथोपसिद्ध  
 कुर्यान्वा, आयन्ते स्वार्थसाधकाः ॥ ३८८ ॥ १। यथा च स चार्तावो मूढसमीपं कृत्वा गमनार्थमात्मन्त्रयं, मूढेनोक्तं—ययस्व । किं गतेन  
 करिष्यसि ? रत्नमीयवमसिद्धं दीपं, यथाहि—यय पश्य मूर्ध्निवसिद्धं पञ्चसप्तद्विंशत्यभिव दूहोपात्तैर्भण्डिव सरोवरैः कमनीयं विद्याया  
 यमैः स्पृष्टयोर्यं सुगान्धियुष्मत्तरङ्गपुराभिर्बनराभिभिरभिरुपणीय सुन्दरलोकोक्तयोगेन वदन् भानवित्वा सुषिरं मुखं पञ्चात्सल्लयानगमन  
 करिष्यामो, न च मे गमन दोषवे, सुखं च भयाऽपि बोधित्वं यवते, सवो दर्शित्वं वस्तुकापक्षकभाविपूरितं चारोः, अनेन सखात्वा चारोः  
 करणा, एवमस्योपवेष्टो यथा—न पुक्तं ये काननामिकौण्ड कुराणानि य एषया गृहीतानि रत्नयुक्ता वत्परित्यज्य सिन्धामूनि गृह्याप

“सर्वं व्यापणीयोऽपि सुकृतं भवितव्यं परार्थे संभाषणीयः प्रथमं विशिष्टलोकः अनुमोदनीयो भार्गवकथनः न विषयं परममोक्षपटुन भवि  
 “तव्यं सुदेवाचारैः”, यतो भविष्यसि भवतां सर्वलोपप्रसक्तमनुष्ठानयोग्यता, यत्र च “गुरुक्षेत्रैः सन्निः परित्वैर्योऽकस्मात्प्रसिद्धयोगः  
 “संविद्यमानि कस्याप्यभिप्रायि न कङ्कनीयोल्लिखितिभिः अपेक्षितव्यो लोकमार्गः माननीया गुरुसद्वृत्तिः भवितव्यमेव चक्षुः प्रवर्तितव्य  
 “दानादौ कर्तव्योदारपूजा भगवतां भिरुपणीयः साधुविशेषः भोतव्यं विधित्वा सर्वशार्ङ्गं भावनीयं महाप्रज्ञेन अनुष्ठेयञ्चत्वर्यो विधानेन  
 “प्रवक्तव्यनीयं वैयं पर्यालोचनीयाऽप्यसिः प्रवक्तोक्तनीयो सत्युः भवितव्यं परलोकप्रधानैः संविद्यमानो गुरुजनः कर्तव्यं योगपटुद्वयानं  
 “भाषनीयं यद्वापि मानसे निरुपयितव्यं आरणा परित्वैर्यो विद्येयमार्गः प्रवर्तितव्यं योगगुह्यं कारयितव्यं भगवद्गुणवर्तिन्यामिक  
 “वेद्यनीयं गुणवैद्यवचनं कर्तव्यं मङ्गलजपः प्रतिपद्यन् चतुःशरणं भर्तृव्यमिति शुक्लकानि अनुमोदयितव्यं कुसुमं पूजनीयां मन्त्रदेवता  
 “बोतव्यानि संवेष्टितानि भावनीयमोक्षार्थं वर्तितव्यमुपमन्त्रातेन” यतो भविष्यसि भवतां साधुपर्यानुष्ठानभाजनता । यतः “कृतवद्विर  
 “नृपराजसङ्गतमो” परद्वयमोक्षिभिर्मात्रमुत्तिभिः सन्निर्भवन्निरुपसेवनीयां प्रवर्णयित्वा विद्येया वसुधैवकुटुम्बकमासा सुगम्यं स्वपरवत्तवे  
 “हिना परद्विषनिरतेन पराशक्तवैहिना यथावर्तिमानेन गुरुणा सम्बन्धं सम्बन्धः प्रयोक्तव्यो गुरुविरतयः अनुष्ठेया विधिपरता कर्तव्यो  
 “सम्बन्धनिश्चयासादौ यत्रः अनुपाकनीयो वक्ष्येकमो मन्त्रनीयोल्लिखितान्त्रिया द्वयो विक्षयान्निविद्येयः स्वीकनीया भावसाधुपयोगप्रथा  
 “नवा विषयपीयोऽयं भवत्यभिधिः भाषरणीया बोधपरिणतिः भवितव्यं सन्त्यपानस्थिरसायां काय मनःक्षैर्यं न विद्येयो ध्यातव्युत्सुकः  
 “नोपरसवीयाच्छास्त्राः परिक्रान्त्यो विवाहः परित्वैर्यमगुरुद्विसेद्वकरणं न विद्येयः कुपाने क्षास्त्रनियोगः” यतो भविष्यसि भवतां पात्रता  
 श्रुतवा गुणमानो विप्रवर्ती कामभीः स्वाभयो भावसम्पदां, यतः सर्वनिष्यन्दे भवतामुपरि समसादा गुरुः समवापयिष्यन्ति सिद्धा

मत्सारादि प्रवर्धित्यन्ते मन्वरां ह्युभयाप्रवणप्रवृत्त्यामरपोहोहृत्वाभिविधेयाः प्रवृत्तुणा इति । तथा “अनुष्ठीकनीया मन्विरुपसेवना  
 “क्षिप्वा सुभाषरणीया मन्तुपेक्षया मन्वनीया प्रमार्जनां सात्त्विकीमाहमानोवक्ष्या भिक्षाचर्या प्रक्षिप्त्वापीदेर्वापयिष्या दातव्याऽऽज्योचना  
 “क्षिप्तशीका निर्वोपमोक्षनाया विधेया भाजनपरिष्कर्माणा अनुष्ठेयाऽऽसिद्धी विचारचर्या निरीक्षणीयाः कश्चिच्छभूतमयः कर्तव्यं समयो  
 “पादिषिष्टुक्तमात्रदयक प्रवर्धितव्य मन्वराणां काव्यार्थे भाङ्गावक्ष्यः पञ्चमिव स्वाध्याया तदेवमभ्यसनीया प्रसिद्धिनाम्निका पाठनीयाः पञ्च  
 “क्षिप्तोऽप्याचाराः आसेवनीये चरणकरणे जङ्घाहीयाहमानोऽप्यमायः स्थावकमस्तुपविहारिरवया” एवो मन्वित्यसि मन्वरां मोक्षगमनम  
 वयो गुणसन्तोहा, तदेव ते मन्वराः सन्तुतयो वर्ययन्ति तेभ्यः सहृणार्जोपाय, ववस्ते वहुपदेक्षेन मन्त्रकमभ्यसिष्यादृष्टयः सखा  
 दन्ते सिचक्षणाः मन्वन्ति पटीक्षका आचरन्तानां विषयान्ति कुपयसिचन रमन्ते सहृणोपादाने वदन्ति च—यथा सो मो भट्टारकाः ।—  
 कपाभ्येष्टुभिर्भोगीर्भूताकारैश्च वीर्यैः । पृठावन्त वर्यं काठं, वक्षिषा मोहदोषसः ॥ ३८६ ॥ अयुता बोधिषा वन्यैर्भेदभि  
 रसिचस्तथैः । यथाऽऽदिष्टं करिष्यामो, मायाः । सर्वं पुरोहितम् ॥ ३८७ ॥ अयोपहृदिषा चान्यैः, साधुमिस्ते मनोहरैः । यत्रोपदिष्ट  
 कुलांया, आचन्ते स्वार्थसाधकाः ॥ ३८८ ॥ ३। यथा च स चार्कावो मूढवसीय कृप गमनार्थसामक्षय, मूढेनोक्त—यत्स । किं गतेन  
 करिष्यासि ? रमणीयवमसिष्टं प्रीय, वषादि—पश्य पश्य मूयिषमिष्ट पद्मकण्ठीर्विराजिव गृहोद्यानैर्मण्डितं सरोवरैः कमनीयं विहार  
 यमैः सृष्टव्यैर्ब सुगन्धिपुष्पमरचन्तुयभिर्वनराजिमिरसिकपणीयं सुन्दरलोकयोतेन वषट्क भागवित्वा सुचिरं सुख पद्मात्सस्यानागमन  
 करिष्यामो, न च मे गमन रोचते, सुख च मयाऽपि बोद्धित्वं वर्तते, एवो वर्यैश्च वत्काचककलाभिपूरिव चारोः, वनेन सखाया चारोः  
 कवया, वत्सलसोपदेशो यथा—न पुच्छं ते काननानि कीदृशं कुराजानि च त्वया पृथीयानि रम्यमुखा वत्परितम मित्रामूनि गृहाण

सुखास्ति तेषां वेद कस्यच, सद्यः प्रष्टिष्टो मूढः प्राह च—नाह आत्मासि गच्छ त्व यत्र प्राच्योऽसि, मित्रमेव न भवसि त्व म यस्तत्र  
 मामकीनानि भस्मरत्नानि वृषयसि थक मे दावकट्यैः पुनः कृपयोपवेष्टानोपयो निरुक्तव्याकः, अनेन सप्ताष्टमापोऽप्यपानीयो-  
 ज्यसिखि निमग्नः, वद्या मद्र ! धनमाहृत वाककत्मा भगवन्मो मुनयो मूढस्यानीयभ्यो दूरमभ्येभ्योऽप्यभ्येभ्यो वा यदा धर्मोपदेशापम  
 निमुदगीभवन्ति तदा तेषां तृणसमीपगमनमभिधीयते, तद्यः कूर्धन्ति चे सदर्मवेष्टनया मोक्षगमन प्रप्ति वद्यामन्नप्य, तद्यस्ते मूढकत्मा  
 यन्तवः सत्येवमाश्चरीरम्—मदुत मो मोः भ्रमणकाः ! किं तेन यौष्माकीयेन मोक्षेण न प्रयोक्तृतं?, भवतामप्यसमेव तत्र गमनेन,  
 वयाहि—न तत्र व्याप नो देव, न विद्यासा न मूढयः । न विभ्यः प्रियसयोगो, न कान्ता कर्मकेभ्यः ॥ ३८९ ॥ न माप्य सति  
 भन्म, न गीव नापि नर्तनम् । न हाक हन्त बौष्माकः, स मोक्षो ननु यन्धनम् ॥ ३९० ॥ भद्रान्तरमर्पीयोऽप्यमत्साक प्रप्तिभासते ।  
 सदा संसारविद्याटिभिषाकाद्विषायकः ॥ ३९१ ॥ यथोऽत्र सन्ति सद्यरे, द्वाप देव विमूढयः । विद्यासा भूप्य नाप, कामदाः  
 पञ्चकोचनाः ॥ ३९२ ॥ यथेष्टवेष्टानास्ति, गीव नृत्त विलेपनम् । विद्यते सर्वमेवात्र, सपूर्वं सुकसाधनम् ॥ ३९३ ॥ भवो विमुच्य  
 संसारं, सुकसाध्मात्पूरितम् । मो मोः भ्रमणका ! मूढ, न मोक्षं गन्तुमर्हथ ॥ ३९४ ॥ तद्वत् मोक्षवादेन, संसारे मुन्त्य स्थिति ।  
 मानमिषा सुखं विभ्य, यस्यान्मोक्षे गमिष्यव ॥ ३९५ ॥ यद्य सदर्मवाचोऽयं, भवतां भनसि स्थितः । अस्याकमसि सोऽस्त्येव, किं  
 नृप धर्मगर्विषाः ? ॥ ३९६ ॥ वयाहि—गुरिमिर्मद्विप्रेच्छागो, धृष्टीष्ट निपातिथे । कुर्महे चरित्रकादीनां, वय कथिरवर्षणम् ॥ ३९७ ॥  
 गोमेधमभ्यसेषं च, नरमेधं वद्याऽऽन्धकैः । कुर्मो मार्ग चतुर्मेव, मूढसङ्घातमर्धनम् ॥ ३९८ ॥ कुयोनिवर्तितः सत्त्वात्, निःशेषात् शुःक  
 पीडितान् । हत्वा हत्वा भवं शुःकाभ्योपयामः कृपापयः ॥ ३९९ ॥ पापकर्मो धीवसङ्घात, मारयित्वा भिन्ने स्थिते । मांसावारिवत्तत्र प,

प्रपञ्चमो यथेच्छया ॥ ४०० ॥ इत्येवमाशिक्षिष्येभ्योः, कथञ्जतया वयम् । माधस्त्वस्मात्स सर्वस्य, न सति यत् कुर्महे ॥ ४०१ ॥ य  
 श्च मूढकस्तानाममभ्यानां प्रमायितम् । काकप्यं मुनयो वीर्य, ज्ञायन्ते करुणापराः ॥ ४०२ ॥ तवस्ते यत्प्रयोगार्थमित्यभाष्यते  
 सदा । सो मद्रा' नैव युज्योऽय, मद्रतां मद्रविभ्रमः ॥ ४०३ ॥ "एते हि योगा नागानां, योगा इव सुदारुभाः । पर्यन्तकटुकाः पन-  
 "पास्त्रिजसङ्ख्यवर्धनाः ॥ ४०४ ॥ तार्थोऽनार्थो कृताकार्योः, सर्वमायाकरणिकाः । शिखासन्तुल्यसङ्घीयविभ्योकाया विह्वलनाः ॥ ४०५ ॥  
 "मोक्षस्तु मद्राः सत्तवननत्थानभ्यसुन्तरः । जीवस्मात्सम्भवस्थान, शिशोषहेतुशब्दार्थिः ॥ ४०६ ॥ मनुष्यमवभासाय, तप्त मुक्त मवा-  
 "दशाम् । तार्थपेयविकासाशिक्षौक्येनास्मद्वचनम् ॥ ४०७ ॥ एतेषु सखा भोगेषु, कतिपयदिनमायिषु । मा मोक्षमर्गमुत्सृज्य, गच्छ-  
 "दानन्तके भवे ॥ ४०८ ॥ पर्यानुष्ठानमुच्छ्राज, यस्मिन् मारणान्निकम् । मूय कुरुय तस्याप, सर्व संसारवर्धनम् ॥ ४०९ ॥ कुक्ष्याक  
 "कारमोहेन, मा कुरुज्जमवेदसम् । अहिंसाद्यात्मक वर्म, कुरुष्व योगसूदनम् ॥ ४१० ॥" अथेदस्य मुनीनां चे, बाह्यमाकर्ष्य पेक्षकम् ।  
 मूढकस्या जनात्सुर्व, प्रवेष्टं यान्ति पापिनः ॥ ४११ ॥ यदन्ति च ततो यदा, सो मो क्षमपका ! वयम् । शिक्षणीया न शुष्मानिर्धाय  
 याव यथाऽऽप्तावाः ॥ ४१२ ॥ योगाभिन्त्यय पापिष्ठा, वर्म ज्ञात्मजियेवितम् । ततो तो वैरिका मूय, नेज्यामोऽन्तकमन्दिरम् ॥ ४१३ ॥  
 ईदृशोऽपीह सद्यर्भो, यद्ययं वो न रोषते । ततोऽह मुष्मदीयेन, वर्मेषु पुरज्जायमाः । ॥ ४१४ ॥ निवेदयत सद्यर्भ, निजेभ्य ज्ञमया  
 वमाः । आत्मीयजनकेभ्यो मो, न त्वस्माक प्रयोष्यन्तम् ॥ ४१५ ॥ यस्मिन् मूढजनपूर्ता, बाह्यमाकर्ष्य साधय । श्रुतुः करुणया याव  
 श्रूयो पर्यस्य लक्ष्यम् ॥ ४१६ ॥ तावते निवर्तं कुप्या, यद्योषा रक्तकोचनाः । गाढप्रहारदानादौ, प्रवर्तन्ते न संशय ॥ ४१७ ॥ धव-  
 स्यात्तप्त वीर्य, मुनयो मूढचेष्टितम् । निश्चिन्त्यन्ति निजे श्विते, नैवे साध्याः कथयन्त ॥ ४१८ ॥ सवस्ते साधयस्तेप्राप्तुपेक्षां कुर्महे

सुखाणि तेषां चैव समग्र, ततः प्रविष्टो मूढः प्राह च—नाह मास्मि गच्छ त्व यत्र प्रपृच्छोऽसि, मित्रमेव न भवसि त्व म यस्त्व  
 भामहीनामि मास्वरत्नानि दृश्यसि अत्र मे दातव्यतः पुनः कथयोपेक्षानोपलब्धो नित्यकृत्स्नाह, अनेन सम्भाष्यमातोऽप्रप्रापनीयो-  
 ऽयमिति निश्चय, तथा भद्र ! जनान्नान् पाठकत्वा भगवन्तो मुनयो मूढजानीयभ्यो दूरमन्वेष्योऽयमन्वेष्यो वा यदा धर्मोपवेगापय  
 भिमुक्तीभवन्ति सदा तेषां तद्वत्समीपगमनमभिधीयते, ततः कूर्बन्ति चे सद्यर्मवेक्षणया मोक्षगमन प्रप्ति त्वामकल्प, तदस्ते नूढकत्वा  
 जन्तवः दास्येवमावसीरन्—मदुह सो मोः भगवन्काः ! किं तेन योऽप्याकीर्त्तयेन मोक्षेण नः प्रयोजनं ?, भवतामप्यलम्बेव तत्र गमनेन,  
 यथाहि—न तत्र क्वाप नो पेशं, न विज्ञासा न मूढतः । न द्विष्यः प्रियसयोगो, न कान्ताः कर्मलक्षणा ॥ ३८९ ॥ न मायय सन्नि-  
 वन्तम्, न गीय नानि नर्वनम् । न दास्य हन्त योष्माकः, स मोक्षो मनु शयनम् ॥ ३९० ॥ अत्यन्तरसमीपोऽयमस्माक प्रप्तिमासते ।  
 सदा संसारनिकाटिप्रवक्तावविचारकः ॥ ३९१ ॥ यथोऽत्र सन्ति ससारं, दास्य पेश विमूढतः । विज्ञासा मूढय नाय, कान्ताः  
 पक्षलोचनाः ॥ ३९२ ॥ अवेष्टवेष्टानास्ति, गीय नृत्तं विछेदनम् । विषते सर्वमेवान्न, सपूर्णं सुखसाधनम् ॥ ३९३ ॥ अतो विमुष्य  
 संसारं, सुखसम्भारपरिवर्त्तम् । सो मोः भगवन्का ! मूढ, न मोक्षं गन्तुमर्ह्य ॥ ३९४ ॥ सर्वत्वं मोक्षवादेन, संसारे सुन्दरा स्थितिः ।  
 भानविज्ञा सुखं द्विष्य, पञ्चान्मोक्षे गमिष्यथ ॥ ३९५ ॥ यत्र सद्यर्मवाधोऽयं, भगवां मनसि स्थितः । अस्माकमपि सोऽप्येव, किं  
 मूढ धर्मगर्हिता ? ॥ ३९६ ॥ यथाहि—गूरिभिर्मोक्षिणैश्चङ्गागैः, धूर्जटेभ्य निपातिथैः । कुम्भे चण्डिकादीनां, यत्र दधिरवर्षयम् ॥ ३९७ ॥  
 गोमेघमन्त्रमेवं च, नरमेवं वक्ताऽऽत्मकैः । कुर्मो मार्गं चतुर्मेवं, मूढसद्भावमर्त्तनम् ॥ ३९८ ॥ कुपोतिवर्धितः सस्त्रान्, निःशेषान् दुःख  
 दीहिद्वान् । हस्ता हस्ता वयं तु पान्मोषपापः कथापयः ॥ ३९९ ॥ पापकर्मां पीपसद्भावा, मातयिज्ञा द्विने द्विने । मांसावारिवसत्र च,

प्रवच्छामो यथेच्छया ॥ ४०० ॥ इत्येवमादिभिर्धर्मैः, कृत्स्नवत्वा वयम् । भावत्कृत्स्नात्स धर्मस्य, न तस्मिं नव कुम्भे ॥ ४०१ ॥ य  
 सिद्धं मूढकृत्यानामसम्भारानां प्रभाषितम् । आकर्ष्य मुनयो धीरा, ज्ञायन्ते कथणापरयः ॥ ४०२ ॥ यत्तस्ते यत्प्रबोधानार्थमिष्टमाचक्षते  
 यदा । सो भद्रा' नैव मुक्तोऽयम्, यत्तदां यद्विप्रसः ॥ ४०३ ॥ "एते हि भोगा नागानां, भोगा एव सुधारणाः । पर्यन्तकटुकाः पा  
 "पास्तीप्रसंक्षेपवर्जिताः ॥ ४०४ ॥ नार्थोऽनार्थाः कृताकार्थाः, सर्वमायाकरिण्डिकाः । शिलासदृशसङ्गीतविष्णोकाया सिद्धमन्ताः ॥ ४०५ ॥  
 "मोक्षस्तु भद्राः सत्तमनन्तानन्तसुन्दराः । धीवत्कृत्स्नवत्त्वानां, निःशेषेष्टेष्ववर्जितः ॥ ४०६ ॥ मतुष्यमवमासाय, तत्र मुक्त भवा  
 "दृष्टाम् । द्वापयेवसिञ्जसात्तिकौतुकेनात्मवच्चनम् ॥ ४०७ ॥ एतेषु सस्य भोगेषु, कसिचिद्विनाभावेषु । मा मोक्षमार्गमुत्तमम्, तच्छु  
 "वानन्तके मने ॥ ४०८ ॥ धर्मादुष्ठाननुक्ता न, नसिद् भारणविक्रम् । मूय कुरुष तत्पाप, सर्वं ससारवर्जनम् ॥ ४०९ ॥ कुम्भाक  
 "कारमोहेन, सा कुरुष्वमनेदृष्टम् । अर्हिष्टायात्मक धर्म, कुरुष्व दोषसूदनम् ॥ ४१० ॥" यथेदृश मुनीनां ते, वाक्यमाकर्ष्य पेक्षकम् ।  
 मूढकृत्या जनात्सर्व, मध्ये यान्ति पापिनाः ॥ ४११ ॥ यद्वन्ति य यतो यथा, भो भोः प्रमथका ! वयम् । शिष्यपीया न शुष्माभिर्याव  
 याव यथाऽऽज्ञाताः ॥ ४१२ ॥ भोगाभिन्वय पापिष्ठा, धर्मं चात्मभिषेवितम् । यतो नो वैसिका मूर्ख, नेष्यामोऽन्तकमन्त्रिरम् ॥ ४१३ ॥  
 ईदृक्षोऽपीह सद्धर्मो, यथाय धो न रोचते । यतोऽस्त्रं मुष्मधीयेन, धर्मेषु पुत्रपापमाः । ॥ ४१४ ॥ निषेवयत सद्धर्म, निजेभ्यः प्रमथा  
 यमाः । आत्सीवजनकेभ्यो भो, न त्वस्याक प्रयोक्तव्यम् ॥ ४१५ ॥ यद्विद मूढजनसूता, वाक्यमाकर्ष्य साधवः । मूय कुरुषया याव  
 मूयो धर्मस्य समथम् ॥ ४१६ ॥ तावचे निवयं कुम्भा, यदीष्टा रक्तलोचनाः । गाढप्रहारयानादौ, प्रवर्तन्ते न सस्ययः ॥ ४१७ ॥ यत्  
 स्वाचारश्च धीरस्य, मुनयो मूढचेष्टितम् । निश्चिन्त्यन्ति सिद्धे सिद्धे, नैवे साध्याः कुरुष्वन्त ॥ ४१८ ॥ यत्तस्ते साधवस्तेषामुपेक्षा कुर्वते

यथा । न भवेद्गोहने चित्तं, यथाभावे विनिश्चिते ॥ ४१९ ॥ ४ । यद्यो यथा पारुषदस कुर्याद्यथोक्तोपायोपदिष्टप्रयोपुर्वे रत्नाना यो-  
 दित्वे वे यो च सुदीप्ता गद्यभावाः सत्त्वान आवाक्योऽपि रक्षयिन्योगेन सत्त्वमनन्यान्वभावन, मूढस्तु शुभ्ररिपुद्भेन भरपक्षिना निष्का-  
 सिवस्तथो हीपात् प्रक्षिप्तः सद्युर्वे सज्जार्थोऽनन्तपुःसमरभावनमिति, यथा मद्र ! यत्नवाहन शुनीनामुपदेष्टा पूर्वोक्त कुर्यात् सेषा पृथग्वि-  
 रत्नाना मद्रकमव्यभिचार्यीनां च क्रमेण कृते पारमेधरे प्रवपद्वये वर्तन्ते ज्ञानादयो गुणाः प्रियन्ते वेपामात्मानाः यथाः सर्वेऽपि ग-  
 द्भृन्ति परमपदे जायन्ते सत्त्वमनन्यान्वसन्त्योद्भावा ज्ञानवर्धनपाद्विभिन्योगेन, मूढमन्ववस्तु कुर्यान्ति पापमरपूर्य, यथाः कुदनेव  
 सकर्मपरिणाममनुवा निर्वासन्ते मनुष्यमवद्वहीपात् पावन्ते ससारसागरे भवन्ति निरन्तरुत्प्रसन्नभावनमिति । यद्यप्य—पूर्वं  
 कमानकलास, ज्ञात्वा भावार्थमीदृशम् । अर्थं प्रपञ्चितो जातः, साधुर्भो यत्नवाहन । ॥ ४२० ॥ एवमिषयिवेकस्य, कारण कर्मधारये ।  
 को वा कथानक ज्ञान, सुवे नो मुनिर्वा भवेत् ॥ ४२१ ॥ रक्षहीपसमे प्राप्त, साधुव्ये मद्र ! भाविकैः । रक्षेत्पुत्वाऽऽत्मबोधित्य, को न  
 गच्छेत्पुद्गलकम् ॥ ४२२ ॥ यद्यो मद्रेऽप्युदीयसङ्केते । एवमप्युदीयमकलङ्कयत्नमाकर्णयतो मे द्रुसिवा यद्वा कर्मकिसिः सज्जार्थो मद्र  
 कमावः मुक्तायेव सननपककङ्क यत्न यथापि शिवोऽर्धं मौनेनैव, प्राप्नोऽककङ्कः सक्षिरो मया पद्यमुनिसमीप बन्धितो मुसित्वः अर्थ-  
 ज्ञानिवोऽनेन कृता प्रवृत्तता पुष्ट सोऽपि वैराग्यकारण, मुनिकोक्त—नगरी संसृतिर्नाम, अस्त्यनातिरनन्तिकका । यदीयो द्रुमागो म,  
 जातो वैराग्यकारणम् ॥ ४२३ ॥ अककङ्केन स्थितिव—अरण्यः पुष्टा पादम्, मुनिना मे निवेक्षितः । मृत भो द्रुमागोऽपि, पादयो-  
 ज्य भवित्यसि ॥ ४२४ ॥ यथा प्रोक्तमककङ्केन—निवेद्य भवमाग !, माद्यमेनं स्फुटाधरैः । द्रुमागोः स संजातो, यस्मै वैराग्यकार-  
 णम् ॥ ४२५ ॥ मुनिराह महाभागो, योऽत्र व्यानस्थितो मुनि । अनेन ज्ञानमसत्त्वानः, स द्रुहो यम दर्शितः ॥ ४२६ ॥ विपश्चितः



सुदीर्घाभिर्मन्त्राद्यनपेक्षिताः । मूर्तिभिः सुतनुःकाभ्यः, स पन्थैः परिपूरितः ॥ ४२७ ॥ आकुटैः सन्त्रयोपुष्टैः, क्रयविक्रयवत्परैः ।  
 धीवर्णाविवर्जितैः, सार्धनिष्ठैरिति विद्यः ॥ ४२८ ॥ पुण्यापुण्याभिधानैश्च, लोकोत्कृष्टविमर्षभैः । मूर्त्यैः पण्यानि लभ्यन्ते, सानुर-  
 पाभिः सन्त्र भोः । ॥ ४२९ ॥ तिस्रः श्रवणद्वयैश्च, सर्वैर्बोधातिशयाप्यः । अपुण्यधीवरोरैश्च, मूर्तिभिः परिपूरितः ॥ ४३० ॥ महाभोगा  
 मिधानोऽयं, वक्राधिकृतः सत्पते । कामकोपाद्यस्यस्य, पुरुषाः परिभारकाः ॥ ४३१ ॥ वीर्यवीणावमर्षानां, कर्माभ्यैर्धनिकैः सदा ।  
 विप्रपदे परपञ्च सदा, दुर्नोक्तमसिद्धकथम् ॥ ४३२ ॥ सदा ककककथयन्ते, लोकोद्देशविधायिनः । मद्याः कथायनामानस्यश्च दुर्वान्त्वहि-  
 म्नकाः ॥ ४३३ ॥ अनेकाभ्यर्थनयिष्ठो, विविधः सत्तण्डुलः । नान्यो जगति पादभ्यो, हृत्सर्गा नरोत्तमः ॥ ४३४ ॥ केवलं ते मया  
 लोका, सात्त्वत्सन्त्यक् निर्द्विधाः । हृदे सर्वेऽपि विद्यावाक्यावलयन्त्युःसिताः ॥ ४३५ ॥ अथानेन महाभाग !, मुनिना मम लोचने ।  
 अचिदे कथया मद्र !, ज्ञानाखनस्रकाकया ॥ ४३६ ॥ ततो विमलदृष्टित्वाद्बुधो दूरे ज्यवसितः । मया हृत्सत्सुधीर्षो, मर्तो नाम  
 सिवाकथ्यः ॥ ४३७ ॥ यस्मानन्त्या मया दृष्टाः, सत्तण्डुलान्मुमुक्षुषाः । सद्बुद्धिदृष्टा भो लोका !, मुक्ताभ्या पापवर्जिताः ॥ ४३८ ॥ ततो  
 मे सदा सपन्नो, हृत्सर्गा बुद्धयमः । असतो मद्र ! निर्बोहो, मर्तोभ्यायक एव च ॥ ४३९ ॥ तत्रात्मा महामागो, मुनिः प्रोक्तव्यः  
 सदा । हृत्सर्गेन परिकल्प्य, मर्ते धामः शिवाख्ये ॥ ४४० ॥ यतः—नास्ति मे क्षणमप्यत्र, रत्तिर्नाथ ! सुधारणे । हृत्सर्गां प्रज्जामोऽयं  
 सत्तया सार्धं शिवाख्ये ॥ ४४१ ॥ मुनिनोक्तं यदीच्छा ते, मर्ते नन्दुं नरोत्तमः । गृह्णाण मासिर्धर्मं वीर्यं, ततोऽयं प्रापिकामरम् ॥ ४४२ ॥  
 मयोक्तं दीवर्ता नाथ !, मा शिखम्बो विधीयताम् । ततो दद्या ममानेन, वीर्येण पारमेष्ठ्ये ॥ ४४३ ॥ उपसिद्धं च कर्तव्यं, मठभाषण  
 कारणम् । अहं सर्वेषु कुर्माणो, मद्र ! विद्यासि साधनम् ॥ ४४४ ॥ अकलङ्गेनोक्त—कीदृशं नाथ ! कर्तव्यं, गुरुणा ते निवेदितम् ।

यद्वहेन मठे वन, मगावन्तानुमिच्छसि । ॥ ४४५ ॥ मुनिनोक—आकथ्य—अभिहितोऽहं भगवता ध्यादन्तेन गुरुणा यथा सौम्य । अस्ति  
 वाक्मूढवः परिमदे कायामिथानः पञ्चाशन्नाभगवाशो निवासार्थमपहरक , वन च कार्यमप्यरीरन्नामकमपहरकगवाशोभिमुखमथोपशमा  
 मिथानरन्ध्र गर्भगृहकं, वन च विद्यामिथानमस्तिवरक धानरलीवरूपः, मयोक्त—मार्तं समस्तमस्ति, गुरुनोक—मथेव वनो गृहीते  
 नैव तेन सर्वेण वाक्मूढवा प्रव्रजितव्य यतो न सक्त्यते वरकाण्ड एव विद्ययितु, मयोक्त—मद्यापयसि नाथ , वन प्रव्रजितोऽहं  
 गुरुनोक—भद्र ! स्वयं ज्ञानरलीवरूप सुरक्षितं कर्तव्य, मयोक्त—यद्यपि सति ध्यायः, केवलं वनो मयमिति कथयन्तु मगावन्तः,  
 वनोऽभिहितमनेन मुनिना—यथा “सौम्य ! विद्यन्ते वन गर्भगृहके वसतोऽस्य मूर्धासः सख्यप्रवकारिणो यतो भद्रस्यते वराकमिदं  
 “कथायनामकैः प्रदुर्कमूयकैः वरकवरीकियते नोकथायाक्यैर्बोधपटुमिदुष्टद्विजैः द्वापते सप्तान्याभिः कूत्मावापीभि विवृष्यते रागादस-  
 “नामकाभ्यां मीपवक्रकोन्मुपाभ्यां प्रस्यते मद्गमोदसंकेनास्ति यौद्रमाजारेण वपवाप्यते परीपरोपसर्गाहैः सवत द्रोतयद्विषसमशकैः विह  
 “कीकियते दुष्टाभिसाथिविवर्कन्मैर्बन्धुणैर्मन्थयन्मिर्मन्थुणैः वपद्रयतेऽस्त्रीकथित्वासंक्रामिगृहकोकिजिक्ताभिः अभिमनूयते वारव्याकारैः  
 “प्रमादककम्पसैः दुष्टयतेऽनवरवमस्तिरसिजान्वाढनामकेन पट्पक्षिकावहेन वनधीकियते मित्यादस्यनसंकेनास्तिधोरण वनसा” वदेवमते  
 भद्र ! वन गर्भगृहके सवतव्याधितोऽस्य वराकमोपद्रवविधेयाः, वसिदेवनासिभिरपद्रवैरपद्रव विद्याभिधानं ज्ञानरलीवरूपं वेदनायर  
 निःसहवया निपवसि यौद्रव्यानामिथाने सुम्बलितवज्जानिपद्रवाकुण्डे कथितुनः प्रविशत्यनेककृत्तिकाक्यव्यावन्तुआसावनतदयुक्ते मीपये  
 गाहसार्धव्यानामिथाने भद्राविके, वसिदेवमप्रमथेन भवता सवत रक्षणीय, मयोक्त—भद्रन्व ! कः पुनरस्य रक्षणीयायः, गुरुवाह—भद्र !  
 ये ते विद्यन्ते वनापहरके पञ्च गवाश्यासोपां द्योपु विपयनामानाः पञ्चैव विपद्रुषा विद्यन्ते, ते व्यातिवारावाः स्वरूपेण, यवस्ते नाभान-

ज्यां चानरलीवरूपं विद्वन्मयि गन्धेनापि पूर्णयन्ति इत्यनेनापि वरकथयित्वा अपर्येनापि मारयन्ति स्पर्शनेनास्वादनेन च पुनर्यमिदं  
 निपाठयन्ति यत्र किमाश्चर्यं ? , ते चास्याभीभिरुपग्रहैरपहृतस्य विद्वत्तया सङ्कारासक्त्या इति प्रसिधासन्ते, यतो निर्गच्छसि यद्यमिशुक्त  
 र्गैर्वाशुक्तेर्नाहामिजायेष रजयते मुन्यरणीति शुद्धा केयुषिचरत्वेयु विद्वेष्टि न मुन्यरणीति शुद्धा कानिचित्कथानि यथमीति को  
 त्यातिरेकेषान्नवरतं वच्छासान्तरेषु सुठसि चित्तमर्थमिचयसङ्गे वदथोवर्तिनि पत्रकञ्जमुनरजःकथरे, यवस्तेषु परिषममिदमु  
 हुयक्य कर्मपरमाणुनिचयसंज्ञेन वदीयकञ्जमुनरेणुना आर्द्राकियते मोगकोहनामकेन मकरन्वचिन्तुनित्यम्वसन्तोद्धार्येष, यतो मया पृथी  
 वरचनमावार्धेन चिन्तित—अथे ! वृक्षाद्यावर्धेते सामान्यरूपाः शास्वरूपरसगन्धस्पर्शा मविष्यन्ति कुमुमानि पुनरपस्तिष्टुटाकाद्विशेषाः  
 कथानि सु परस्तिष्टुटाकाद्विशेषा एष शास्त्रान्वयाणि पुनस्तथाधारवस्तुस्थानानि, तेषु च सञ्चरय चित्तवानरलीवरूपस्य लोकोपचारेणाभि  
 दिष्ट, यथाहर्षाद्विक्रियाः 'अमुत्र गतं मे चित्तमिति, एष च स्थिते बुद्ध मयेव तावत्समक्य मुनिना माधिय भोत्सते चेति विचिन्त्य मया-  
 दमिद्विष्ट—मदन्त ! यवस्तथा ? , गुरुतद्—यतो मद्र ! मोगकोहार्द्राभूते कर्मपरमाणुप्रचयरजोगुणिविष्टे यत्र चित्तवानरलीवरूपस्यरीरे विक्र-  
 क्तवया कैर्यस्य भेदकृतया विपरूपस्वाद्यस्य रजसः संज्ञायन्ते यवानि सपथते अर्जरीमाषः व्याप्यते समन्तान्मध्यवेष्टः वृक्षेते विपरूपेण  
 तेन रजसा, यतो भजते कृप्यरूपयां वच्छरीरं कचित्सपथते रकीमावः, यवस्तत्र गर्भगृहके वर्धमान वचेवां सर्वेषां पूर्वोक्तानामुपद्रव  
 विक्षेपाणां गन्ध भवसि यतो व्याप्यते नानाविधं वैरिति, यदेव मद्र ! यस्य चित्तवानरलीवरूपस्य सरस्यणोपायो यदुत—शुदीत्या स्ववी  
 र्यसंज्ञेनात्मइत्वेन इहमममादानामक चमदप्य वचिचवानरलीवरूपं वैरक्षनामकैर्वाधैर्विपयपृथक्कथमक्षयसद्दया निर्गच्छदास्फोट्य निवा  
 रणीयं यथापि षडुक्तवया निस्सरस्तुनः पुनरपकोष्ठनीय, यतो निषिद्धवर्तिर्गमनस्य निषुचसङ्कापासक्त्यामिच्छयस्य यस्य शोपमुपयास्यत्तसौ

यद्वहेन मठे वन्न, भगवन्तानुमिच्छसि । ॥ ४४५ ॥ मुनिनोक्त—आकण्य—अभिहितोऽहं भगवता वृथाऽनेन गुरुणा यथा सौम्य । अस्ति  
 वाक्कुरवः परिमद्वे कथाभिधानः पञ्चाशन्नामगाथासो निवासार्यमपवरक, वन्न व कार्मण्यपीरनामकमपवरकगाथासोभिमुखसम्प्राप्तमा  
 भिधानरूप गर्भगृहक, वन्न व विद्याभिधानमस्तिरक्त ज्ञानरहीवरूप, मयोक्त—आह समस्तमस्ति, गुरुनोक्त—यथेव वयो गुरोव  
 नैव तेन सर्वेण वाक्कुरवा प्रव्रजितव्य वयो न शक्यते वरकाण्ड एव सिद्ध्यितुं, मयोक्त—यथाप्रापयसि नाथ, वतः प्रव्रजितोऽहं  
 गुरुनोक्त—भद्र । त्वय्य ज्ञानरहीवरूपं सुस्पष्टं कर्तव्यं, मयोक्त—यथास्ति सति नाथ, केवलं कुर्या मयमिति कथयन्तु भगवन्त्य,  
 वदोऽमिहितमनेन मुनिना—यथा “सौम्य । विद्यन्ते वन्न गर्भगृहके वसतोऽस्य भूयांसः सत्पुत्रवकारिणो यतो भद्रस्य वराकस्मिन्  
 , कथायनामकैश्चतुर्भूयकै वरकवटीक्रियते नोक्तयाव्यवैषय्युत्तुमिर्गुह्युभिकै द्वापथे संज्ञाक्याभिः कूत्वाकाटीभिः विसृज्यते एगद्वेप  
 “नामकाभ्यां भीषणकोशेननुत्पन्नां प्रसवे भद्रानोहसंज्ञेनाविपीरभावात्तरेण वपवाप्यते पटीपदोपसर्गाद्वैः सवव द्रोतयन्निद्रसमशकै चिह्न  
 “कीक्रियते दुष्टासिधिविचित्रांस्वीर्भक्त्युपदेर्भक्त्यन्निर्गन्तुभिः वपुष्यतेऽङ्गीकृतिन्वासासमाभिगृहकोकलिकाभिः अग्निभूयते वाक्काकारैः  
 “प्रमादकक्यासैः दुष्टतेऽनवरतमस्तिरसिजान्माकनामकेन पट्पस्त्रिकाश्लेषेन अभीक्रियते सिध्याहर्षनसरोनाविपोरस्य वमसा” वदेवमते  
 भद्र । वन्न गर्भगृहके सववस्त्रासिनोऽस्य वराकस्त्रोपग्रथविशेषाः, वस्तिवनेवमाभिभिरपग्रथैरपगुह विद्याभिधान ज्ञानरहीवरूप वेदनाभर  
 सिःसहवया सिपवसि पीरभ्यानाभिधाने सुखलिवसाभिगृहगृहके कथितुनाः प्रविष्टतनेककुपिकस्याक्यवृथावन्नुजाजानतदुपदे भीषण्ये  
 गाहमार्तभ्यानाभिधाने मद्राश्लि, वस्तिवमप्रमत्तेन भवता सवव रक्षणीय, मयोक्त—अन्य । कः पुनरस्य रक्ष्योपायः, गुरुवाह—भद्र ।  
 ये ते विद्यन्ते वन्नपवरके पञ्च गणाशास्तेषां द्वापथे विपयनामानः पञ्चैव विपयवृक्षा विपयन्ते, ते व्यातिहारकाः स्वरूपेण, यवस्ते नाभा-

अङ्गाङ्गीभाषमाधत्ते, सा भोगकोट्यासना । वतः ससारसंस्काराः, सञ्जायन्ते क्षतोपमा ॥ ४५७ ॥ वतोऽत्र प्रभवन्त्येव,  
 सर्वे रागाद्युपद्रवा । मूयकाविसमाप्ते च, विषयन्ते प्रतिक्षणम् ॥ ४५८ ॥ भूयश्च पर्यमाण तैर्विषयेष्वेव धावति । पुनः  
 कर्म पुनः स्वदः, पुनः सर्वेऽप्युपद्रवाः ॥ ४५९ ॥ अष्टवलयपर्यन्ते, धर्मेवविषयकके । निमतं शुक्लकोटीभिस्त्रिषमेवमं शुभ्यते  
 ॥ ४६० ॥ वक्ष्यन्तः समाख्यातो, शुरुणाऽनेन रक्तकः । पृथीवो वीर्यहस्तेन, सोऽप्रमाणोऽस्य सत्तमः ॥ ४६१ ॥ वतमेव करिष्यामि,  
 सर्वं सुखमादितः । शुरुदिरष्टप्रभायस्य, वक्ष्यामनुशीलनम् ॥ ४६२ ॥ पशुव—“सप्रोऽप्रमिन्नआकृता, हरिश्चन्द्रपुरं वधा । क्षरीरं  
 “मूययो भोगा, पञ्चान्यस्तन्ननादिकम् ॥ ४६३ ॥ एव निश्चिन्तं समुज्झा, माभयिष्यामि वक्ष्यतः । वतः ससारज्वाभान्ते, विषयन्तो  
 “निवर्त्तन्ति ॥ ४६४ ॥ भनापय्यासयोगेन, नित्सरव पुनः पुनः । आत्मन्येवाऽऽद्विष विष, धारयिष्यामि यत्नतः ॥ ४६५ ॥ वयेव  
 “सिधयिष्यामि, विष किं निर्गतेन ते ? । बहिः स्वरूपे स्थितं त्व, येनानन्ते निधीयते ॥ ४६६ ॥ ससारसर्वे बहिःसारः, स च दुःखम  
 “एकतरः । भोगा स्वरूपेऽप्रस्थान, स ज्ञानन्मरारकरः ॥ ४६७ ॥ वतो बहिर्न जुक्तं ते, निर्गन्तुं सुकलिविषया । तुल्यमात्मन्यवस्थान,  
 “विष । हित्वा बहिर्भनम् ॥ ४६८ ॥ आत्मन्यवस्थितलोह, जन्मन्येव सुकलं वत । बहिर्निःसारतोऽत्रैव, दुःखं वयसि जुष्यते ॥ ४६९ ॥  
 “वयादि—सर्वं दुःखं परायत्तं, सर्वभासमवयं सुखम् । बहिष्य ते परायीन, स्वाधीनं सुखमात्मनि ॥ ४७० ॥ अन्यथा—य  
 “दारमनो बहिर्भूतं, वस्तुजातं सय प्रियम् । तत्सर्वं नन्वदं पुण्यं, निद्रसमायं मलाविष्टम् ॥ ४७१ ॥ अवस्थावर्षं दे विष, किं  
 “मुया परिधान्यसि । किं वाऽऽत्मानं विनुष्येत्य, पञ्चमीषि पुनः पुनः ॥ ४७२ ॥ यस्मिं स्वात्सुन्दरं किञ्चिद्बहिःस्थस्य निवारणम् । समवेष्टव  
 “शुःखा(सौख्या)म, वष विष । म विषते ॥ ४७३ ॥ वक्ष्यमानं पुनर्गौर्योगाद्भारैर्निवारितम् । आत्मन्यानन्त्यरूपे त्वं, मुपा धान्यसि धारि

मोगक्षेत्रस्यसिद्धः क्षरीरार्थीमात्रः, एतः सुखक्षरीरस्यसिद्धिर्दिव्यसिद्धिः प्रसिद्धा एतच्चो रोक्ष्यन्ति क्षत्रानि अप्रयाससि अत्राद्या न भवति  
व्यसि सुखक्षरा सिद्धिर्दिव्यसि रक्षीमात्रः आसिर्मसिद्व्यसि पक्ष्मक्षरा सप्तसत्ते क्षरीरस्यैव सप्तसिद्व्यते रक्षीनीयता, एतौ न प्रमसिद्व्यन्ति ते  
प्रागुपक्षिणः तन्नासि गर्भयुद्धके श्वर्तमानस्य तस्योपक्षिणसिद्धिः, किं न तेऽपि आर्मात्पक्ष्मकोक्षीन्तुयद्वयस्य क्षान्तीरूपस्योपक्षि  
क्षारिणः समक्षारोनेक्षमादनामकेन पक्ष्मक्षणेन भवता शूर्पनीयाः, तस्येत्यु सार्थसिद्धेयु एतन्मगृह्णन्मागतश्चरिष्यु क्षान्तीरूपस्य निष्ठाप  
मसिद्व्यसि, एतच्च मद्रः तस्य संक्ष्मपोषायाः, मयोक्त—मदन्तः। वरिक्त पुनस्ततोऽप्य संरक्षितेन मम सेत्स्यसि प्रयोजनं, भगवताऽपि सिद्धि  
—ननु मद्रः यद्वद्वोऽसिमेव सिद्धात्तस्यमठान्नान् तस्यैवैव सिद्धिमान्तीरूपं सुसयसिद्धिमुपायमूढं वरिते ॥ एतदिदं दक्षिणं सम्पदः,  
समक्षक्षेत्रं कारयन् । निर्वाप गमनकोक्षीः, पुरयस्य सिद्धात्तये ॥ ४४६ ॥ तस्यैवैव ते मद्रः, सिद्धिं गमने मसि । अस्य सप्तक्षेत्रेऽ-  
व्येव, एतौ यत्न समाचर ॥ ४४७ ॥ किं न—पक्ष्म वद्वकाक्षीन, वरिते मद्रः। सुखस्य । अस्य क्षान्तीरूपस्य, यसिद्ध ते मयोसिद्धम्  
॥ ४४८ ॥ तथापि—तत्तैवपक्ष्मक्षेत्रं, पीडित मूषकासिद्धिः । वेदनाविह्वलं मोक्षक्षेत्रंकेपु प्रवर्तते ॥ ४४९ ॥ तस्य—गुणक्षेत्रे रक्षसा  
मूषो, सिद्धिं सप्तक्षेत्रेऽसिद्धिः । एतः क्षत्रानि ज्ञायन्ते, क्षत्रयते मूषिकासिद्धिः ॥ ४५० ॥ तस्यक्षेत्रक्षेत्रासका, यदन्ते मूषिकाद्वय ।  
मूषाक्ष क्षत्रक्षेत्रेक्षेत्रं यद्वसि ॥ ४५१ ॥ पुनर्गुणक्षेत्रेक्षेत्रास, क्षेत्रेन पुनर्क्षेत्रा । पुनक्षेत्रक्षेत्रक्षेत्रासिद्धिः, पुन सप्तक्षेत्रक्षेत्र  
॥ ४५२ ॥ एतच्च पक्ष्मक्षेत्रे मद्रः, गतमेवसिद्धिः । न सुखस्य क्षत्रक्षेत्रे रक्षसा, सिद्धिं रक्षेत्रं ज्ञायते ॥ ४५३ ॥ एतौ योऽप्य मया प्रोक्तो,  
क्षेत्रः सप्तक्षेत्रे यत् । स एव भवता निजमनुष्ठेयो नरोक्ष्म ॥ ४५४ ॥ एतौ गृहीतमाध्यायक्षेत्राऽत्र पर्यक्षेत्रक्षेत्रम् । इदं मया भवन्तेन,  
प्रपञ्चेन निवेदितम् ॥ ४५५ ॥ यद्वद्व—रागापुण्ड्रत विषय, विषयेषु प्रवर्तते । तेषु क्षत्रास्य प्रवृत्तस्य, यद्वते कर्मक्षेत्रायः ॥ ४५६ ॥

॥ ४९० ॥ तच्च नियमस्वीयो, जीवस्त्रिंश न वा भवेत् । एतः केवलिनो जीवा, माध्विचक्षिर्ब्रिंशः ॥ ४९१ ॥ एतं च सिद्धे—  
 निष्प्राज्ञानविपर्ययाज्जीवो रागादिसंगतः । सततं शुद्धकपेण, सुखशुद्ध्या प्रवर्तते ॥ ४९२ ॥ एतः कर्माणुसङ्घातमावृते श्रेह  
 दन्तुभिः । एवो जन्मान्तरारम्भ, विषये वदशायम् ॥ ४९३ ॥ पुनस्तत्र विपर्ययः, पुनः रागादिसन्ततिः । पुनश्च विपर्ययाकांक्षा,  
 पुनस्ते श्रेहस्तन्त्राः ॥ ४९४ ॥ पुनश्च कर्ममार्गं, पुनर्कर्मसमुद्भवः । पुनस्तत्र विपर्ययः, पुनः रागादिकः क्लमः ॥ ४९५ ॥ एव चा-  
 वदविच्छिन्न, विपर्ययादिविचकम् । जीवस्य वर्तते रागद्विधा भयपदसिः ॥ ४९६ ॥ इदमभ्युदितं मायं, मया चककमचक्षता । शु-  
 क्तमेवमुक्तं वा, यूय विज्ञातुमर्ह्य ॥ ४९७ ॥ मुनिनोक्तं महाभाग !, शुक्तमेवम सशयः । कथं वाऽशुक्तवेद्यारो, भवन्तीह भवादृशाः ।  
 ॥ ४९८ ॥ मयाऽपीह एवो ज्ञात, शुद्धमिदं समर्पितम् । अनिष्ठितमवे हेतुर्विपर्ययादिविचकम् ॥ ४९९ ॥ अत एव परित्याज्यो, वि-  
 पर्यायो विवेकिता । शत्रुच्छेदे प्रकीर्यन्ते, निर्मुक्त्येन शेषकाः ॥ ५०० ॥ अयमेव विवेकोऽत्र, वत्सज्ञानमिव भवम् । अथ निरुक्तवो  
 वसो, यद्विपर्यासवर्तनम् ॥ ५०१ ॥ अविपर्ययविज्ञातुः, पुरुषस्याप्रभाविनः । मनोविकारज्वाल हि, स्वस्माद्भिन्न प्रकाश्यते  
 ॥ ५०२ ॥ एवो विविक्तमात्मान, सद्गानन् प्रपश्यतः । नास्य संजायते द्वेषो, युक्तो नापि सुखे स्पृहा ॥ ५०३ ॥ निरमिषश्च-  
 क्षिणोऽसौ, एतः कर्माणुसङ्घायम् । विषयश्रेष्ठशुद्धस्यास विषये कदाचन ॥ ५०४ ॥ एवोऽसौ बीजविद्वान्निःस्पृहत्वान्मृगान्तरम् । शु-  
 क्तमभारमेवावमकक विनिवर्तते ॥ ५०५ ॥ एव च सिद्धे—एतर्कमेव धनं प्रोक्त, यत्नेव भवचककम् । अनयोर्वो विजानासि, प्रवर्त-  
 तनिवर्तते ॥ ५०६ ॥ स किं क्षरति योगेण, वने वा भवभाविनि । अन्यत्र वा पदार्थे भो !, राग कुर्यात्कदाचन ? ॥ ५०७ ॥ पुनमम् ।  
 यत्र सांसारिके कुर्यात्पदार्थे विचनिर्बुद्धिम् । मायापि तत्त्वयो ज्ञात, तेनेव चककद्वयम् ॥ ५०८ ॥ एतः—फलं ज्ञानक्रियायोगे,

“वम् ॥ ४७४ ॥ अनन्तदर्शनज्ञानवीर्यानिन्म्यप्रपूरिते । विष्ट ! कृत्वाऽऽत्मनि स्थानं, भय स्वीप्तं निराकृतः ॥ ४७५ ॥ अत्र  
 ‘ये शिष्टयो निवृत्तं, भोगबोद्धस्य शोषणे । सत्कारे ज्ञापयेऽप्रत्यय, रजःपाथो न संशयः ॥ ४७६ ॥ तत्रम्—संक्षिप्तवासनाभ्यन्ता, प्रत्या  
 ‘रोहन्ति दाहयाः । तत्राद्यावन्निर्मुक्तं, न तत्र भोगेषु रज्यते ॥ ४७७ ॥ विष्ण्वीमाया सुधैः प्रोक्ता, भोगाभिषेधस्येतेषु ते । अथ एव नु  
 “हृदं ते, मासन्ते स्रस्तत्त्वकारिणः ॥ ४७८ ॥ मुद्गर्धसुखमाधाय, ते भुक्ताः सत्सर्वधनम् । संक्षिप्तवासनाभ्यानाज्जनयन्ति सुदा  
 “रुणाम् ॥ ४७९ ॥ इतरथा—संक्षिप्तवासनोन्मुक्ते, स्वदे एव सटीरके । निर्वाधे सत्त्वानन्दे, वद्विष्यतेषु न जायते ॥ ४८० ॥ तदेव  
 “सत्त्विते विष्ट !, द्वित्वा सर्वं वद्विष्यन्म् । सत्त्वये सत्त्व विष्ट, कीन इत्य निष्ठासुम् ॥ ४८१ ॥” एव च शिष्यादित्येव, विष्ट सत्त्वान्-  
 विधानतः । अस्मैव रज्यतेषुको, भविष्यामि समाद्विष्ट ॥ ४८२ ॥ तत्राऽऽश्लिष्टमन्त्रेवककोर ह्युत्सकम् । यन्नाभिराकरिष्यामि, वद्विष्ये-  
 कस्तुतः पुनः ॥ ४८३ ॥ कृपायनोकपायाया, ये योपद्रवकारिणः । अस्मा दानमि निःशेषान्, दन्तिष्यान्मप्रमादतः ॥ ४८४ ॥ विष्टोदयेन  
 ज्ञानेन, प्रतिपक्षनिषेधया । दास्यन्ति प्रकथ सर्वे, दूर्णं दागाशुपद्रवा ॥ ४८५ ॥ तत्रस्तेषु प्रकीर्तेषु, भविष्यन्ति न वाप्रकाः ।  
 पटीपद्मेपसर्गाया, वद्विक्तास्तुपद्रवाः ॥ ४८६ ॥ आत्माएव यतो मूला, सविद्यमवद्विष्यन्म् । दागाशुपद्रवैर्मुक्तं, मोक्षोदैव पटिष्यते  
 ॥ ४८७ ॥ एव परिकल्प्याह, इदमे सुविनिश्चितः । तदेव कुर्वाणसिधमेव विद्यामि सात्म्यम् ॥ ४८८ ॥ अककहेनोक्त—साधु न  
 दन्त । साधु सम्भाग् शुद्ध भद्रत्वेन गुरुवर्यनं सम्पाक् भारप्स तदाभ्यस्य मयाऽपीव पाकक भगावभिवेदितमाकष्यान्त्यदसि अककमभ्य-  
 द्विष्ट तद्युक्तमभ्युक्त वाऽऽकर्ष्यसाधु भगवान्, सुनिर्नोक्त—निषेधस्य भद्रः, अककहेनोक्त—विष्टमेव द्विष्टा दायाद्रव्ययो भावतत्त्वाया ।  
 आप पयोसिधुज्जालाऽऽशीर्षं मुद्रात्प्राप्तम् ॥ ४८९ ॥ तत्र प्रमुक्तो पीरस्तु, भावविष्ट निगायते । तत्कार्त्तणशरीरस्य, तेन भिन्न निषेधते



॥ ४९० ॥ वधिच निपमाब्धीषो, वीधधिच न वा भवेत् । यतः केवलिनो वीधा, भावधिविधिविधाः ॥ ४९१ ॥ एव च विधे—  
 निध्याज्ञानविपर्ययाब्धीषो रागाविसंगादा । सतत पुत्ररूपेण, सुखपुण्या प्रवर्तते ॥ ४९२ ॥ यतः कर्माणुसङ्गतभावधे केव  
 दन्तुभिः । यतो जन्मान्तरारम्भ, विषये यद्यभाष्यम् ॥ ४९३ ॥ पुनस्तत्र विपर्ययः, पुनरायासिसम्पत्तिः । पुनश्च विपयाब्धीषा,  
 पुनस्तत्तौ केवदन्तः ॥ ४९४ ॥ पुनस्तत्र कर्मापहण, पुनर्जन्मसमुद्भवः । पुनस्तत्र विपर्ययः, पुनरायासिकः कर्माः ॥ ४९५ ॥ एव वा  
 दवधिविधम्, विपर्ययाब्धीषकम् । वीधस्त यतरे तावद्विधा भवत्यद्विधिः ॥ ४९६ ॥ इत्यप्यद्विधं नाथ, सत्त्वा चक्रमवस्था । मु  
 क्तमेवमुक्तं वा, पूर्व विज्ञानमर्हम् ॥ ४९७ ॥ मुनिनोक्तं महात्माग, मुक्तमेवम सहायः । कर्म वाऽमुक्तमेवारा, भवन्तीह भवाद्विधाः ?  
 ॥ ४९८ ॥ सत्त्वाऽपीह यतो ज्ञात, गुह्यमिह समर्पितम् । अनिष्टिभवदे हेतुर्विपर्ययाब्धीषकम् ॥ ४९९ ॥ यत एव परित्याज्यो, वि  
 पर्यासो विवेकिना । यदुक्तमेव प्रहीयन्ते, निर्मुक्त्येन सेवकाः ॥ ५०० ॥ अयमेव विवेकोऽय, यत्प्रज्ञानमिह भवम् । अथ निरासर्गो  
 धर्मो, यद्विपर्ययसर्वजनम् ॥ ५०१ ॥ अविपर्ययविज्ञानात्, पुरुषस्याप्रमादिनाः । मनोविकारत्वात् हि, स्वस्माद्विभक्तं प्रकाश्यते  
 ॥ ५०२ ॥ यतो विविक्तमात्मानं, सत्त्वान्म प्रपश्यतः । नास्त्य संज्ञायते द्वयो, दुःखे नापि सुखे स्मृता ॥ ५०३ ॥ निरभिष्वङ्ग  
 विद्योऽसौ, यतः कर्माणुसङ्गतम् । विषयलोपुक्तस्यात्र विषये कदाचन ॥ ५०४ ॥ यतोऽसौ वीजविरहाभिः सद्ब्रह्मभूतान्तरम् । मु  
 क्तभारमेवाराज्यकं विमिवर्तते ॥ ५०५ ॥ एवं च विधे—यत्कर्मावन्मन मोक्त, यत्वेव भवचक्रम् । भनयोर्वो विज्ञानासि, प्रवर्त  
 ननिवर्तते ॥ ५०६ ॥ स किं सरीरे भोगेण, यतो वा भवमाविनि । भान्यत्र वा पर्याये भो, यता कुर्यात्कदाचन ? ॥ ५०७ ॥ युराम् ।  
 यत्र सांसारिके कुर्यात्पर्याये विधनिर्द्विधम् । नाथापि यत्प्रवर्तते ज्ञात, तेनेव चक्रकृत्यम् ॥ ५०८ ॥ यतः—फल ज्ञानक्रियायोगे,

“यम् ॥ ४७४ ॥ अनन्तदर्शनज्ञानवीर्यानिन्द्यप्रपूरिते । विच । कृत्वाऽऽत्मनि स्थानं, भय वीर्य निराशुत्सा ॥ ४७५ ॥ भय  
 “ये सिद्धो भिन्न, भोगक्षेत्रस्य सोपपे । सदाते जायतेऽवश्य, रज्ज्वागतो न संशयः ॥ ४७६ ॥ वरध—संछिद्यशासनाज्जन्मा, इत्य  
 “येरन्ति शरणाः । वरधद्वाराभिसुंछ, न त्व भोगेषु रम्यते ॥ ४७७ ॥ विष्णुप्राप्य सुपैः प्रोक्ता, भोगाभिषयसंवेतु ते । भव एव तु  
 “हर्ष ते, मासम्ये क्षारव्यकारिणः ॥ ४७८ ॥ मुहूर्तसुखमाभाप, ते मुक्ताः क्षयवर्धनम् । छद्मिदृशासनाध्यानाज्जनयन्ति सुदा  
 “क्याम् ॥ ४७९ ॥ इतरथा—संछिद्यशासनोन्मुक्ते, इत्येव वर धरीरके । निषाये सवधानन्ते, वरिचटैव न जायते ॥ ४८० ॥ वर  
 “सखिते विच ।, द्वित्वा सर्व धर्मिर्धनम् । करुये सवव सिद्ध, कीन इत्य निराशुत्सम् ॥ ४८१ ॥” एव च विधायित्वेन, विच सत्यग  
 विमानवः । भस्मैव रज्ज्मोपुच्छो, मन्त्रिप्यामि समद्विष्ट ॥ ४८२ ॥ सपाऽऽच्छिद्यमप्येववत्त्वमेव दुरात्मकम् । यन्मात्रिप्यकारिप्यामि, वरिध  
 कसुनः दुतः ॥ ४८३ ॥ कपायनोक्त्यायाया, ये योपद्रवकारिणः । भय वानरि निःक्षेपाम्, इतिप्याम्यप्रपादवः ॥ ४८४ ॥ विद्योदयेन  
 ध्यानेन, प्रतिपद्यन्तिवेधया । यास्यन्ति प्रलयं सर्वे, पूर्णं रागादुपद्रवाः ॥ ४८५ ॥ वरसेतु मकीनेतु, मन्त्रिप्यन्ति न नायका ।  
 वरीपरोपसर्गाया, वरिन्नाद्युपद्रवाः ॥ ४८६ ॥ आत्मायम वरो भूत्वा, मन्त्रिप्यमप्यभिभवात् । रागादुपद्रवैरुक्, मोक्षादैव पटिप्यते  
 ॥ ४८७ ॥ एवं परिकल्प्याह, इत्येव सुखिनिश्चितः । वरेव कुर्वन्मन्त्रिप्यमेव विद्यामि साभ्यवत् ॥ ४८८ ॥ भक्तजट्टेनोक्त—सातु न  
 इत्य । सातु सत्यग, दुतं मरुतेव गुरुवचन सत्यक् चारम्य वद्यायण मयाऽपीव भक्तं भगावभिधेद्वितमाहव्यान्यपरि पञ्चकमप्य  
 विच वपुष्मपुच्छ वाऽऽकर्णयतु भगवान्, सुनिनोक्त—निवेदयतु मद्रः, भक्तजट्टेनोक्त—विचमेव विद्या वाच्यव्यवो माववसया ।  
 भय पर्याप्रितुक्तत्वाऽऽहर्षितं मुद्रकालकम् ॥ ४८९ ॥ वर मयुको वीरसु, मावविच निगायते । वरकर्मवशाटीरसं, तेन विध निवेपते

कमलक्षयेयाः समस्ता अप्यसंक्षेपाः विषये वाच्यवसायस्थानाभिधानाः पक्षिकाः, तथा प्रथमया विरचिताद्यावत्संक्षेपाः प्रथमाः कृष्ण-  
 वर्णाः एवं द्वितीयया द्वितीया मीकावभासाः पृथीयया पृथीयाः कपोताभाः चतुर्थ्या च चतुर्थ्यस्तेजोभासरयाः पञ्चम्या पञ्चम्यो मयक-  
 पञ्चम्यायाः षष्ठया षष्ठ्यो विष्टुष्टकटिकनिर्मकासाः पक्षिका इति, यत्राप्योपविष्टव्यनिर्मितासु पक्षिकासु सर्वमानं यद्भानरलीवरूपमुष्टुल्यो  
 यस्तु यत्रात् प्रावसि गवाक्षकैस्तेज्ज्जकेषु छठसि तत्र रजःकवरे गुण्यते तेन रजसा भिद्यते तैः कोदसिच्यन्दविन्नुमिः, एतस्याया  
 एतच्छैर्बर्हीनूतं तेषां मूयकमार्जत्कोकोरुपरीनां सर्वेषामुपद्रवविशेषाणामभिमवनीय भवसि, एतः कश्चिन्नटमिव क्ख्यत कश्चिद् मू-  
 र्जितमवसिष्ठे कश्चित्कूटां प्रावसि सर्वथा एतवसंयस एवासा इति एवापि ज्ञानन्तुःक्षपरस्परकारण स्वपथे, यस्मान्नवता यद्भानर-  
 लीव साम्यः पक्षिकान्मो निःसारणीयमुपचर्योदधीय, एतश्चतुर्थयोपिभिर्मितासु चासु पक्षिकासु प्रसिद्धप्रमायोदवक्ष्यसा ज्ञानरलीवरूपस्य  
 लोकीमविष्यसि सन्त्यायः प्रवतुषां भासन्ति जापाकारिणस्ते मूयकावयः सुद्रोपद्रवाः मताद् सस्त्रीमविष्यलाज्जकामिकापः एव शोप  
 मीपदुपयाससि सा मकरत्वनिष्यन्तार्द्रां परिस्रष्टिष्यसि किञ्चिद्वजः एवो छप्यते मताक् मुक्तासिकां मविष्यसि वक्ष्यि वैजोमासर्  
 वर्धेत, एत पञ्चमाहनापटिवपक्षिकासु भवता वक्षोदधीय, चासु चारोदवक्ष्यसा लोकोवरीमविष्यसि सवायः प्रवतुवरा मसि  
 व्यस्तुपद्रवाः स्वस्ततरः संप्रस्ततेऽपव्याज्जकामिकापः सुष्कवर्त मविष्यसि क्षरीरकं निपसिष्यसि वसाद् चतुवरो रेणुनिचयः, एवो  
 मनासास रोस्वमिष्ट वक्षविशेषाः आसकनिष्यधीव माहाहाव चारिष्यसि मयक्यां वर्धियसि क्षरीरेण मविष्यसि विक्षाकवर्त, एतः षष्ठक-  
 क्काविष्टवपक्षिकासु भवता वक्षोदधीय, चासु चारोदवक्ष्यसा लोकोवरीमविष्यसि दुःकासिका प्रकृत्य चासन्तुपद्रवविशेषाः अतन्व-  
 स्तस्तवमीमविष्यलाज्जकामिकापः शुष्टिष्यसि रजःकवरेवलोठनेच्छा सर्वथा शोपमुपयाससि मकरन्वत्सार्वता, एतः सुष्कवरेक्षरीरवि-

सर्वमेवोपपद्यते । तथोत्थि च दम्भवा, परमार्थेन नाभ्यधा ॥ ५०९ ॥ साध्यमर्थं परिप्राय, यत्ति सभ्यम् प्रवर्तते । तत्तत्सत्साधनत्वम्,  
 तथा चाह महामतिः ॥ ५१० ॥ सभ्यकृत्प्रवृत्तिः साध्यस्त, प्राप्तुपायोऽभिधीयते । तद्व्यासादुपायत्व, न तस्य व्यपद्यते ॥ ५११ ॥  
 व्यसायान्मिथयत्तेन, सभ्यकृतं न जायते । साध्यानात्प्रमिथयत्तेति, द्वयमन्योऽन्यसमयम् ॥ ५१२ ॥ अथ एवागमप्रत्यक्ष, या क्रिया  
 सा क्रियोभ्यते । अगमप्रत्यक्षेति तत्त्वार्था, यथास्तथा प्रवर्तते ॥ ५१३ ॥ चिन्तामणिस्यकृत्प्रज्ञो, दीर्घत्योपहृतो न हि । तद्व्यास्तु  
 पायवैशिष्ट्ये, सत्त्वमय प्रवर्तते ॥ ५१४ ॥ न चासौ तत्त्वरूपप्रज्ञो, योऽन्यत्रापि प्रवर्तते । साकशीगन्धगुणविदर्मे न रमते वदति ॥ ५१५ ॥  
 तदेव स भवानात्मानमुक्तिमाप्नोति सत्त्वरः । अकृत्प्रज्ञेन, सभ्यगम्युद्धितं स्वया ॥ ५१६ ॥ तद्विदुः शुद्धिभिर्मदः, कृतव्य मे निवेदि  
 तम् । तत्तत्त्वात्कीदृश, सत्त्व परितस्तप्यम् ॥ ५१७ ॥ अकृत्प्रज्ञेनोक्त—केनोपायेन तत्त्वाय, चानर्त्तं नयनक्षमम् । सिद्धान्तवमते तत्र,  
 शुद्धया प्रतिपादितम् ॥ ५१८ ॥ मुनिनोक्त—आकर्षणं भद्रः, प्रोक्तोऽहं तदाऽनेन भगवता यथा—सौम्य । तत्र गर्भगृहके क्षेत्रया इति  
 गोत्रेण प्रसिद्धाः कृष्णनीलकण्ठोवैजसीपद्मकुन्तमानाः पद्मनाभाः परिप्रायिका विद्यन्ते, तास्य तत्रैव गर्भगृहके समुत्पन्नास्तस्यैव समुत्पन्ना  
 सर्वविधास्तस्यैव योपजयकस्तिष्ठन्ते वर्तन्ते, तासां च मध्ये प्रथमादिष्वो नावो यथाक्रमं कूटवमकूटवत्कूटाः स्वरूपेण कारणमनर्थपरम्परायां  
 समुत्पन्नास्तस्य चान्तरीवरूपकालमवधिरेतन्मूलास्तस्य गर्भगृहकस्य चारिकास्तथाप्यत्रैव शुक्रसमुत्पले हृद्मार्गो निवारिकाः मठागमनस्य,  
 व्यपिचिताः पुनर्मदः । तिस्रो नावो यथाक्रमं कूटवत्कूटवत्कूटाः स्वरूपेण कारणमाणात्परम्परायां च शुभमूलास्तस्य चान्तरीवरूपस्य सुकृद्  
 विदेतन्मूलास्तस्य गर्भगृहकस्य निःसारिकास्तथाप्यस्मात्सावसम्प्रतिपूरितास्तद्व्याप्तगार्वायुःकृत्कारिका मठागमनस्य, चाभिन्नं यद्विदुषि नापीमिदं  
 एवैतत्तत्र गर्भगृहके स्वसामर्थ्यादुपपुनर्यायेत्तन्मार्गं परिप्रायो नाम वर्तते, तत्र च चाभिरेव नापीमिदं यद्व्याप्तं व्यपुनरिति विदुषिणाः प्रत्ये

कमसम्बन्धेयाः समक्या मध्यसम्बन्धेया विद्यन्ते अल्पवसायस्थानाभिधाना परिकाः, तथा प्रथमया विरचिताद्यावत्सम्बन्धेयाः प्रथमाः कृष्ण-  
 धर्माः एवं द्वितीयया द्वितीया नीलाधर्माः। तृतीयया तृतीयाः कपोलाभाः चतुर्थया च चतुर्थसंज्ञोभास्तथाः पञ्चम्या पञ्चम्यो प्रथम-  
 पञ्चम्याः पष्ठया पष्ठयो विष्टुदरकटिकमिर्मलाकाः परिका इति, तथाचयोपि विष्टयनिर्मितासु परिकासु वर्तमानं यद्दानरलीवरूपमुष्टुतो  
 युल्ल भङ्गात् वावसि गवाधैस्तेष्वामकेषु छुठसि तत्र रजःकचवरे गुण्यते तेन रजसा सिधते यैः कोहनिष्पन्धिन्मुमिः, एतच्छया  
 एतश्चैवंचैरीमूवं तेषां मूलकमाज्यरंकोठोन्युपवीनां सर्वेषामुपद्रवसिधेयाणामभिवर्नीय भवसि, एतः कचिन्नमिदं कल्पय कचिद् नू  
 मिदमवसिष्ठं कचिद्वरुणं पारयसि सर्वथा सवतसंयस एतास इति तथापि ज्ञानम्युःक्षपरम्पराकारण सपथते, एताम्रवथा यद्दानर  
 लीव धाम्यः परिकाभ्यो निःसारणीयमुपयांरोहणीय, एतच्छुर्वयोपिभिर्मितासु तासु परिकासु प्रसिधेयमायोहवस्तस ज्ञानरलीवरूपस  
 कोकीमविष्यसि सन्धापः प्रवसुठां वासन्धि ज्ञानाकारिषस्ते मूलकावयः शुभ्रोपद्रवाः मनाद् सन्धीमविष्यत्तावकाभिजापः एतः क्षोप  
 मीपदुपयाससि सा मकरन्दनिष्पन्धावर्णा परिक्षटिष्यसि क्षिचिद्रजः एवो कल्पते मनाक् मुक्तासिकां मविष्यसि एवपि वैजोनासरं  
 वर्धेत, एतः पञ्चमाहनापटिदपरिकसु भवता एवरोहणीय, तासु चारोहवस्तस कोकवरीमविष्यसि सवापः प्रवसुवरा मवि  
 ष्यन्मुपद्रवाः सत्यवरः संपत्सर्वेऽप्यभ्याम्रकाभिजापः शुष्कवर्त मविष्यसि क्षरीरक निपसिष्यसि एताद् वसुवरो रेणुनिचयः, एवो  
 मनागास रोत्यसि सवविधेयाः आसकनिष्पयीव महाहात् भारविष्यसि मवज्जवां वर्धियसि क्षरीरेण मविष्यसि विष्ठाकवर्त, एतः पष्ठक  
 ज्ञाविटविष्टपरिकसु भवता एवरोहणीय, तासु चारोहवस्तस कोकवरीमविष्यसि शुभ्रासिका प्रथम यासन्मुपद्रवविधेयाः अत्यन्त  
 सत्यवमीमविष्यत्तावकाभिजापः शुटिष्यसि रजःकचवरकोठनेच्छा सर्वथा क्षोपमुपयाससि मकरन्दरसार्वदा, एतः शुष्कवरक्षरीयादि

मयेयमनुमक्षिष्यसि मूर्ध्नि यो रेणुमिक्षयः संजक्षिष्यते वसतवाम्नायं मक्षिष्यसि शुक्रस्फटिकनिमज्जता । अन्यथा—यत्र योषिधिवयसपामि  
 वयसि कामार्तेऽनुमक्षयमापोह्यस्य कणिष्यसि मय्यः सुखाकारितया शीतः सन्वापयारितया मुरभिः समूहगुण्यगणकमज्जनमकरन्तरेणु  
 पारितया धर्मप्यानमिधानः पवनः, वसन्मन्त्रे मक्षिष्यसि वसतव प्रमुक्षितं, इवमभीतमिव वेभ्योऽप्यसतेभ्यो मूषकमाधारकोभोन्यु  
 रश्मिकककलसादृकोक्षिकि कामिभ्यो नानाविधोपग्रहेभ्यः समुद्रिममिव तेन क्षितवेन बद्धकान्यकारेण आपनाटीप्रपरिचिव पक्षिकामा  
 र्गमपहाय यत्र पक्षिमयोपि बचक्षिमिति मयधिरष्टिवे सवयमकारे पक्षिकामार्गे निवीनमास्ते वस्य ज्ञानरक्षीवरूपस्य सन्मपि ज्ञानरूप्य,  
 यवज्ज्ञानपोह्यकस्य वक्षोपमविधिव प्रशमयसमन्वोपसंयमसद्गोषामिनामकजानरपरिधारेण विशुद्धधर्ममहाज्ञानरेण समन्वितं धृतिमज्जानु  
 क्तासि कामिमिषानिमिषमिस्त्वसि दुष्टिधारणामेवास्मान्निःस्पृहवासि सदाभिर्बेरज्ञानपीभिः सङ्कुच धैर्यदीर्घाद्यार्थगान्भीयदौघ्नीयमानदयान  
 यः सत्वदैवान्पाकि च्छन्मसार्थार्थकमज्जसौषाहिनोमर्कैरज्ञानरक्षीवरूपैरपि र्भमिष्यसि किंचित्स्वरश्चित्कक्षांचित्स्वक्षिकायां, यत्र वस्य भव  
 दीवज्ज्ञानरक्षीवरूपस्य क्षपेटं धीमिदं सवंस्य सहरमसिद्धितकरणशीक जयते, क्षिप—यज्ञानरूप्यमसि क्षिपेत् स्वरूपेण निनकरवास्तं न  
 र्भनकावहेतुर्वातो निरसिमकायुक ठेपु गवासद्यारुमिधेपु सहरकायमरूपतया कसियेपु क्षिपयद्दुधेपु क्षिणवत्सहं यजार्थमिषयसम्पत्कककुमु-  
 मरजः कञ्चरकोठने, ववस्तेनास्मीयधानरूपेण सहर भीमिव यथावक क्षिपयानरक्षीवमदानवप्रमुक्षितं शीम वासस्तुपर्णपरिपक्षिकासु  
 पावत्यर्धेनवापीक्षिरक्षितपक्षिकामार्गं, यत्र न करिष्यसि वस्य यज्ञानरूप्य शुद्धप्यानाभिधानेन गोक्षीर्येयमन्नरक्षेन सधनं, यवोऽस्तिभ्य-  
 म्तेऽर्धमार्गमात्रे गगानन्वनिर्भरे मक्षिष्यसि वभिः सहं, यवो मापोह्यस्तुपरिवनपक्षिकासु, यक्षिमास्ते भद्र ! स्वमप्यास्ते मक्षिरयसि  
 यवसे वीक्षितमन्त्रधर्मनासमभूदं न यज्ञानरक, यवो निःसदीगूढं यद्विष्य भवतोपरिवनपक्षिकासु स्वयमेवापोह्यपीय, यवः पयन्ते पक्षि

कामार्गमपि परित्यज्य स्वसामर्थ्येन क्षित्या पञ्चदशाधरोद्गिरक्षमात्रकाक निपाकमनतया गतान् एतौ सिद्धिभ्यापहरकमावयन्म गर्भगृहक  
 परित्यज्य बानरक विषाधोद्वहनं कङ्कयित्वा हृदमार्गं गन्तव्यमेककमोणोद्गीय तत्र मठे स्थावक्यमनन्वकार्क पूर्वागतलोकमभ्येऽनुभाष्योऽ-  
 नन्वानन् इति, मयोक्त—यथाज्ञापयसि नाबः, यदेवमनेनोपायेन भद्र ! छद्मानरक तत्र मठे तत्पनक्षम शुद्धिमर्मे निवेदितमिति—अथ  
 निश्चित मीनीन्द्र, समाचार्यमिदं बभूवः । एतौऽककङ्कळ नत्वा, मुमिसित्यमवोचत् ॥ ५१९ ॥ याव आरूपविष्टं वे, गुरुणा मुनिस  
 कम् । सुन्दरं भवताऽऽरम्भि, मुक्तमेवमभारक्षाम् ॥ ५२० ॥ एतौऽगृहीतसङ्केतः, सन्मार्गोवविधिरस्यवा । सोऽककङ्को महाभागो, मां  
 प्रतीक्षमापय ॥ ५२१ ॥ यत्र द्युक्तादरैः सर्व, यदनेन निवेदितम् । तस्यवा विधिव भद्र !, किं वा नो ? यत्नवाहन् । ॥ ५२२ ॥ अनेन  
 हि समाख्यात, हेतुनिर्मुक्तमवसा । विषमेषात्सन्तो मुख्यं, संसारोच्चारकारणम् ॥ ५२३ ॥ एतेनैवापदिणामेन, हेतुनिर्मुक्तमवसा ।  
 विदुषाम्प्रसाधेषु, गच्छदेवोपपद्यते ॥ ५२४ ॥ किञ्च—न केवलं शिवस्योद्भिन्नचित्तमेव कारणम् । भवस्यापि यदेवेति, मुनयः सम  
 यद्यते ॥ ५२५ ॥ यतोऽप्यरक्तो बोध्य, यदेव गर्भगोहकम् । यत्र बानरकं भद्र !, तस्मै प्राविर्ता समम् ॥ ५२६ ॥ तत्रैव—यावत्  
 मो वर्तित्वाः पूर्व, परिकालात्र द्दरे । छद्मानरं वदाम्, विविज्जभवकारणम् ॥ ५२७ ॥ यस्यां यस्यां वदाम्, करोत्युत्तुवनं किल ।  
 दीप्य तत्परिकालेषु, दृष्टे नयसि देहिताः ॥ ५२८ ॥ मयोक्त—यत्स्य ! कोऽस्य भायितव्यार्थः ?, अककङ्कोनोक्त—आकर्षय—यथेदं  
 प्यवसायेषु, श्रियन्ते किञ्च देहिताः । आरुदक्षिणाकारास्तु, ज्ञायन्ते वे भवान्तरे ॥ ५२९ ॥ अस्मात्प्राप्यवसायेषु, वक्षिष्व धर्ममानकम् ।  
 विविज्जयोनिरूपका, भवत्सास्य विषयानकम् ॥ ५३० ॥ सद्योय भवदेतुल्ये, भवान्येया च देहिताम् । निर्वोय भोगादेतुल्ये, विष्व मो  
 यत्नवाहन् । ॥ ५३१ ॥ तस्मैदं विजयसद्वत्, यथावन्त्यर्चनं परम् । यमोऽयमोः सुख शुभं, यत्र सर्वं प्रदतिष्ठितम् ॥ ५३२ ॥ वीधाव

साधयिष्यात्, नाथि मेधः परस्परम् । आत्माऽतो रक्षितत्वेन, धिषं येनह रक्षितम् ॥ ५३३ ॥ अर्थाय भोगलोत्त्वेन, यान्द्रावस्ति  
 सर्वथा । विष कुलस्त्रये वाक्स्सुखाग्नयोऽपि विषये । ॥ ५३४ ॥ “यदेव नि स्पृह मूला, परित्यज्य यदिभ्रमम् । भिरं संपप्सते विष,   
 “वशा ते परमं सुखम् ॥ ५३५ ॥ मर्के ळोवरि ळोपान्ते, निष्कार्करी योस्थिते । यदा सप्त भवेद्विष, वशा ते परम सुखम् ॥ ५३६ ॥   
 “स्वजने ळेहसन्धये, त्रिपुरोऽपकमिषि । साधुस्य ते यदा विष, वशा ते परम सुखम् ॥ ५३७ ॥ स्वप्नाद्विषिययमाने, सुन्दरेऽसु   
 “न्दरेऽपि च । एककारं वशा विष, वशा ते परम सुखम् ॥ ५३८ ॥ गोपीर्यचम्नालेषिवासीकुरकयोर्ददा । अभिषाविषयुवि   
 “साधवा ते परमं सुखम् ॥ ५३९ ॥ साधानिकपरायैषु, जलकरैषु ते यदा । अस्मिन् विषयथा साधवा ते परम सुखम् ॥ ५४० ॥   
 “एतेपूरासकलम्बवपुःशेषेणु योयिषाम् । निर्दिष्टां यदा विषं, वशा ते परम सुखम् ॥ ५४१ ॥ यदा सत्त्वैकसारत्वार्यकामपयसु   
 “कम् । कर्मे रय भवेद्विष, वशा ते परमं सुखम् ॥ ५४२ ॥ रजस्रमोषिनिर्मुक्त, स्थितिचोदयिषविमम् । निष्कलोक्त यदा विष, वशा   
 “ये परम सुखम् ॥ ५४३ ॥ मैत्रीकारण्यमाप्यरज्यप्रमोदोद्भवाभावनम् । यदा मोक्षैकवान सधवा ते परम सुखम् ॥ ५४४ ॥” इति   
 विष विहायभ्यो, नाथि मो यनममन । नरस्य सुखसन्धोहे, सिधो देवुर्जगत्त्रये ॥ ५४५ ॥ यथोऽप्रसक्तकल्लस, वाटयैर्वचनायुतैः ।   
 सिधोऽग्रीवसङ्केतैः, मनाङ् प्रकलभागाधः ॥ ५४६ ॥ यथा—निविद्याऽपि वाटयैर्मम दृष्टमयमुद्रेट । विदासिवाऽकल्लत्वेन, मूयवी   
 कर्मपदसिः ॥ ५४७ ॥ कर्मविश्रियवीलाह, मूयिषां पूर्ववर्तिनीम् । अज्यप्प सधियो मरे, कर्मसन्धेः सुदुर्मिदः ॥ ५४८ ॥ इत्यम—   
 यदाभवेवमजाने, मया पूर्वं निवेदितम् । सादसि एव सिखाजानि, शुभसुरिषयस्यथा ॥ ५४९ ॥ यथोऽग्रीवसङ्केता, य प्रवीरमम-   
 पय । न धादसि विधेयेष, स्यादथावसम्भवेव मे ॥ ५५० ॥ वराः ससासिजीवेन, धा मोक्षा वाटलोचना । इदं निवेदित मरे, सद्गुरुं



शुषदीरिषा ॥ ५५१ ॥ यथा मसुषकः पूर्वं, देशकालिकया गतः । आगतश्च बहोः कालाद्विचारो नाम वारकः ॥ ५५२ ॥ मार्गानु  
 सारिवायुको, मन्थपत्र निरीक्ष्य सा । समागतो यद्वसस्यो, महाभोक्तव्यवेद्यत ॥ ५५३ ॥ ययुव—आरिजघर्मरात्रेण, महाभोक्तरेभ्यः ।  
 सवको यवमुक्तेन, शुष्यतानो मयेष्वितः ॥ ५५४ ॥ यद्यन्नारिजघर्मीय, सैन्यं निर्विक्रयं वर्षितः । वेष्टयित्वा स्थिरव्याव ।, महाभोक्त-  
 राधिपः ॥ ५५५ ॥ अथ वचाटस्य वीर्य, निरुद्धं तेन वर्षिषा । एत आरिजघर्मीयमागतोऽहं यथास्थिके ॥ ५५६ ॥ अगृहीतसद्वेक-  
 बोक्त—सुखं त्वस्य मया वात । सर्वमेवमिवेष्टितम् । पूर्वमेव त्वया प्राणवोग्यवर्त्तनकान्यथा ॥ ५५७ ॥ अतः परं पुनर्वच, वात । किं-  
 चिद्विचक्षितम् । तन्मम त्वस्यपूर्ववै, सर्वमात्म्यानुमर्हसि ॥ ५५८ ॥ यतः ससारिजीवेन, सा प्रोक्ता सुगवीक्षणा । एयोऽहं क्वचि-  
 द्वासि, समाकर्ण्य सान्प्रवम् ॥ ५५९ ॥ चिचवृष्टिमहाटव्या, वमिरुद्ध समन्वयः । स्थित आरिजघर्मस्य, सैन्यं कालमनन्वकम् ॥ ५६० ॥  
 यतस्तदाऽकसद्भक्त, समीपे मम स्थितः । सैन्ये यत्तस्य वृत्तान्तः, सपन्नस्य निषेध मे ॥ ५६१ ॥ सर्वं शिष्यपन्नमात्रोक्त्य, सद्रक्त रिपुपी-  
 दितम् । आरिजघर्ममुद्दिश्य, सद्रोषः सममायत ॥ ५६२ ॥ न कर्तव्यो शिष्यावोऽत्र, देशकालमिच्छेद्योऽपुना । मन्मनोरञ्जकस्य, दृढयवे  
 क्रुमुनोद्गमः ॥ ५६३ ॥ यथाहि—यावत्ससारिजीवोऽस्मात्, न जानीते महाप्रभुः । शिष्यव्यापयेवैवा, देशकालं रिपुभ्याः ॥ ५६४ ॥  
 यथा ॥ स विजानीयात्कालं स्वमन्त्रसा । यथा सप्रीयितास्तेन, मवाभो रिपुयावकाः ॥ ५६५ ॥ इयं च दृढयवे देव ।, चिचवृष्टिम  
 दातवी । यथाऽपुना मनान् ह्युभा, गाढाभसस्यर्षिणा ॥ ५६६ ॥ यथाऽहं वर्कयामीह, देवोऽसौ सर्वनायकः । अस्माद्विषेयसिद्धान्तमपीये  
 ननु वर्तते ॥ ५६७ ॥ शुत्तम् । इयं हि वामसे मया, न दृष्टारतेन आणुचित । अपुना वर्कनस्यासिद्धि, यैमस्य तस्य कारणम् ॥ ५६८ ॥  
 एव च स्थिते—य कर्मपरिणामात्म्य, दृष्टा राजानुत्तमम् । पार्श्वे ससारिजीवस्य, मेधार्थं कोऽपि मानवः ॥ ५६९ ॥ यद्योऽनुकृतिव

मन्त्रिष्वपि, माहि मेधः परमस्यम् । आरमाडयो रश्मितकेन, चितं येनेह रश्मितम् ॥ ५३३ ॥ अर्थाथ मोक्षोत्पत्तेन, धारद्वयवसि  
 सर्वतः । चित्तं कृत्स्नस्ये धारद्वयस्योऽपि विधत्ते । ॥ ५३४ ॥ “यदेव निःस्पृहं भूत्वा, परित्यज्य ऋद्धिर्भनम् । सिर्तं संप्रकृत्ये चित्तं,  
 “तदा ते परमं सुखम् ॥ ५३५ ॥ मत्के व्योमरि कोपान्मे, निन्नाकर्तारि ज्योतिषते । यथा सुप्त मनेचित्तं, तदा ते परम सुखम् ॥ ५३६ ॥  
 “सकलमे क्लेशसन्मये, सिद्धयर्थोऽप्यकारिणि । व्यापुस्त्यं ते यथा चित्तं, तथा ते परमं सुखम् ॥ ५३७ ॥ शम्भुमहिषिचयमाने, सुन्दरेऽस्तु-  
 “मन्देऽपि न । एकाकारं तथा चित्तं, तथा ते परम सुखम् ॥ ५३८ ॥ गोक्षीपचन्द्रनाडिषिवासीच्योदकयोर्वदा । अभिमन्त्रिष्वपिः  
 “काचया ते परमं सुखम् ॥ ५३९ ॥ सांसारिकपदार्थेषु, क्लृप्तस्य तु ते यथा । क्लिप्तं चित्तपदं साचया ते परम सुखम् ॥ ५४० ॥  
 “एतेषु रत्नमालाभ्यननुपपन्नेषु योषिषाम् । निर्मिकारं यथा चित्तं, तथा ते परमं सुखम् ॥ ५४१ ॥ यथा सत्त्वैकसारत्नार्पकामपपपु-  
 “ष्पम् । धर्मे त्वं मनेचित्तं, तथा ते परमं सुखम् ॥ ५४२ ॥ रत्नसमोन्मिनिर्मुक्तं, छिन्मिचोदयिष्यसिधिमम् । निष्कलोढं यथा चित्तं, तथा  
 “ते परमं सुखम् ॥ ५४३ ॥ मैत्रीकारुण्यममाम्बरव्यप्रमोदोदाभमानम् । यथा मोक्षैक्यानं यथा ते परम सुखम् ॥ ५४४ ॥” इति  
 चित्तं विद्यायन्त्रो, माहि नो यन्त्रादयः । परम सुखसन्मोहे, सिद्धो देवर्ष्यामये ॥ ५४५ ॥ तयोऽद्रमककङ्कल, वाटसैर्वचनपदैः ।  
 सिद्धोऽप्युदीवसङ्केतः, मन्त्राद् मन्त्राभागाः ॥ ५४६ ॥ यतः—निश्चिन्नाऽपीह वाटसैर्मम दद्यान्ममुरैः । निश्चिन्नाऽककङ्केन, भूयसी  
 कर्मपदविः ॥ ५४७ ॥ कर्मोन्मिन्मयीत्वात्, भूयसी पूर्वावर्तिनीम् । अन्त्य सन्निधौ भवे, कर्ममन्त्रेः सुदुर्मिदः ॥ ५४८ ॥ इत्यम—  
 यद्वा मदेवमन्त्रात्, मन्त्रा पूर्व निवेदिष्यम् । सारसि च सिद्धाभावि, सुयसूरीनचकाया ॥ ५४९ ॥ तयोऽप्युदीवसङ्केता, व प्रतीदममा-  
 यत । न स्यामि निवेदिष्य, स्यादयावत्सम्भवे मे ॥ ५५० ॥ यतः ससारिणीनेन, सा प्रोक्ता धारद्वोचना । इह निवेदिष्यं भवे, सवृत्तं

सन्निधौ । गुरोस्त्वस्य मया सार्धं, विहितं पादबन्धनम् ॥ ५८८ ॥ समाप्तमभ्यासयोगेन, धर्मजनमपुनरुत्तरम् । सूरीषा कोविदाख्येन, तेन  
 सम्भाषणं कृतम् ॥ ५८९ ॥ अथाकलङ्कष्टस्य, कुर्वतो धर्मवेशनानाम् । तस्य पार्श्वे महात्मीयं, मया दृष्टः सदागमः ॥ ५९० ॥ आधिप  
 त्वाकलङ्घनेन, यथा भो धनबाहन । बाणवनीयः साधूनामेपामेव सदागमः ॥ ५९१ ॥ एते ह्यस्य सप्ताड्येषां, कुर्वन्ति नवमस्वकाः ।  
 एतौऽस्य सूरीर्जनीते, शुण्यसम्भारगौरवम् ॥ ५९२ ॥ तत्रेव ते द्वितो भद्रः, धर्माधर्मविशेषकः । अतः सशुभवेष्टार्धमेन विज्ञानुमर्दसि  
 ॥ ५९३ ॥ ममामीयां च साधूनां, सूरेभ्यस्त परिरुद्धम् । यच्चान्न भद्रः तज्जातस्यार्धेव सदागमात् ॥ ५९४ ॥ अतोऽयं कोविदा  
 न्यार्थः, सम्बन्धं ते करिष्यमि । सार्धं सदागमेनोद्देश्युना द्वितकारिणा ॥ ५९५ ॥ तत्तत्त्वमस्य सम्बन्धात्सर्वमात्मद्विधाद्विवम् । कस्मेप  
 दास्यसे दातुः, तदेन सीधमाभव ॥ ५९६ ॥ तत्तत्तुपरोधेन, मया भद्रे । सदागमः । प्रसिधमस्वदा किञ्चिदुद्वेनैवान्मस्यरत्नता ॥ ५९७ ॥  
 दासिषाश्च शुषाः केचिन्नेन कोविदसूरिणा । कथितं चास्य विज्ञानं, भजान मम मामदत् ॥ ५९८ ॥ केवलं—अकलङ्कोपरोधेन, विद्वदे  
 दैत्यबन्धनम् । ददासि दानं साधुभ्यो, भागद्वयमदत् वदा ॥ ५९९ ॥ एवं च भद्रकः किञ्चिदकलङ्कितुरोधतः । सज्जातोऽहं वदा भद्रे ।  
 ममस्कारविपाठकः ॥ ६०० ॥ अकलङ्कस्तु समाप्त्य, मावाधिनादिकं ज्ञानम् । प्रसिधमस्वदा दीक्षा, कोविदाचार्यसन्निधौ ॥ ६०१ ॥  
 तत्रश्च—सुसाधुपरिवारेण, तेन कोविदसूरिणा । सार्धं गतो विद्यायां, सोऽप्यत्र मुनिचर्यया ॥ ६०२ ॥ इतश्च—मावत्सदागमस्वद्व,  
 मत्समीपमुपगतः । महाभोग्द्वले साधव्याव यथाभिबोध मे ॥ ६०३ ॥ ज्ञानसवरूपं ज्ञात्वा, सदागममपावुरम् । ततः प्रोक्तो महाभोगो,  
 रागकेसरिभक्षिणा ॥ ६०४ ॥ एतावन्तं वयं कालं, निश्चित्वा देव । संसिद्धाः । यद्वलेन स विप्रको, ज्ञानसंवरणो नृपः ॥ ६०५ ॥  
 यतः—दृष्टः सदागमस्वद्व, गत्वाऽप्यर्थो व्ययस्थितः । देव । ससारिजीवस्य, विरहः स च भूपतेः ॥ ६०६ ॥ नोपेक्षणीयं देवेन, स

स्तेन, देव ! कालेन भूयसा । मन्त्रिप्यलोच निर्मिष्य, सोऽस्मदर्थनकात्मसाः ॥ ५७० ॥ त्वत्प्रारिजपर्मण, सद्रोच प्रति भाषितम् । सायु  
 सो गन्धिव सायु, शूद्रि कः प्रेषयोषितः । ॥ ५७१ ॥ त्वत्प्रारिजपर्मण, सद्रोचेन निवेष्टितम् । अथ सदागमकथ, देव ! प्रस्तापनोषितः  
 ॥ ५७२ ॥ शूद्राः परिचरयस्य सदाऽन्तेन मन्त्रिप्यसि । तदाऽस्मदर्थनाकाभा, तस्य संपत्सते शुभम् ॥ ५७३ ॥ स कमपरिज्यामा-  
 क्यस्योऽस्मात् कायसिष्यसि । तस्यै वय मन्त्रिप्यामकथः सद्रुषिपातुकाः ॥ ५७४ ॥ त्वत्प्रारिजपर्मण, प्रपन्न मन्त्रिभाषितम् । प्रवर्तिता  
 बवाहिष्ट, सः प्रलेप सदागमः ॥ ५७५ ॥ त्वत्प्रारिजपर्मण, किमेवोऽसि प्रदीयताम् । सत्यमर्थनसमागमा, तस्य पार्थे महत्तम ।  
 ॥ ५७६ ॥ सद्रोचेनोषित देव !, जाहरेय महत्तमः । तस्य संसारिजीवक, गतः पार्थे न संशयः ॥ ५७७ ॥ किं च—सदागमोऽसि  
 सज्जो, मुक्तोऽन्तेनोपपद्यते । कालेन सन्धिवः सोऽस्मात्, सर्वानप्यवमोरसते ॥ ५७८ ॥ किं तु भावयतेऽप्यसि, तेन नैव प्रदीयते ।  
 प्रस्तावरहितं कार्य, न पुनरिति विचक्षणः ॥ ५७९ ॥ नृपसिनोक्त—अथा पुनरहो मन्त्रिन् !, प्रस्तावोऽस्य मन्त्रिप्यसि । सद्रोचेनो  
 षित देव !, समाकर्षक कथ्यते ॥ ५८० ॥ यथा सदागमो नैव, तच्छिवोऽसौ मन्त्रिप्यसि । पार्थे तस्य ददा देव !, प्रेषणीयो महत्तमः  
 ॥ ५८१ ॥ भूयो भूयो मुक्तोऽन्तेन, दीर्घमासादयेयथा । संसारिजीवः प्रस्तावकदाऽस्मान्मुपपत्सते ॥ ५८२ ॥ सवोऽप्युपगतो जाह्ये,  
 मन्त्रिप्यस्तेन मुमुक्षा । समागतः कर्मण्यथ, मत्समीपे सदागमः ॥ ५८३ ॥ इत्यथ—प्रमुक्तः पूर्वमेवासीन्महामोहादिभिषठी । ज्ञानस  
 वरणो ब्रह्म, मत्समीपे नराधिपः ॥ ५८४ ॥ स हि प्रारिजपर्मण, शिरोपथे सदा ब्रह्म । महामोहमहानीक, सदा पापपल्लवम्  
 ॥ ५८५ ॥ एव च श्रिते—सद्रोचेनैव सिद्धिन्त्या, निर्द्वन्द्वमकराणाः । श्रिता रिपूभिरीकृत, महामोहादयः सदा ॥ ५८६ ॥ ततः  
 सदागमं दीर्य, प्रस्तावकं सदागमम् । ज्ञानसवरणः शीघ्र, कीनकीनो व्यवस्थितः ॥ ५८७ ॥ अथाकथयः सदागमो, प्यानारुहस

भूतया । न च पीतलिक किञ्चिद्विद्यान्यविधायकम् ॥ ६२५ ॥ सदागमकदाचष्टे, पथेव सृणमङ्कुरम् । दुःखात्मक मळच्छिन्न, निःक्षमाव  
 बद्धिभारम् ॥ ६२६ ॥ तद्वद मूर्च्छा मा कार्पीर्मा कार्पीर्मेनवाहन् । आत्मा से ज्ञानसपीर्यद्वर्शनानन्वपूरितः ॥ ६२७ ॥ ततस्तत्रैव मुच्यते,  
 विद्याबन्धो नरोद्यम । येन स्य निर्द्विषासि, सत्तत्ताकासुन्दरम् ॥ ६२८ ॥ अमुर्भिः कलापकम् । महाभोहस्तु मे सर्व, तद्वाक्यं वाग्य  
 सन्मयः । नात्र स्वप्नादिमोगात्र, यथान्यदपि वादसम् ॥ ६२९ ॥ स्थितं सुखात्मकं वाह, निर्मळं द्वितमुद्यमम् । इत्येव कथयत्युपैवपथेयं  
 च यच्छसि ॥ ६३० ॥ शुभम् । बहुवृत्त—नास्ति जीवो न वा देवो, न मोक्षो न पुनर्मयः । न पुण्यपापे सङ्गते, भूतमात्रमिव जगत्  
 ॥ ६३१ ॥ अतो यावदप्य देहो, सिध्यते यत्नवाहन् । यथेष्टचेष्टया चासत्पिब स्वाद विधानिधम् ॥ ६३२ ॥ सद्भोगीः प्रीणयाऽऽत्मानं,  
 ज्ञानयामलक्षणेयनाः । सुप्त सुत्तव यथाकाम, मा भूद्वचनं कथाः ॥ ६३३ ॥ परिग्रहस्तु मां भूते, यथा भो यत्नवाहन् । द्विरप्यभा  
 न्यद्व्यादिसन्मार्तं कुह यन्नतः ॥ ६३४ ॥ यः प्राप्त पाठयत्यर्थमप्राप्त दौक्यत्यलम् । न च सन्तोषमावृत्ते, तस्य सौख्यम  
 नारत्नम् ॥ ६३५ ॥ अहं तु त्रितयस्मासि, वाङ्मयमाकर्ण्य सादृशम् । इयद्देव्यायितस्मिन्ने, यावज्जातः सुखोचने । ॥ ६३६ ॥ महाभोह  
 वलेनासौ, ज्ञानसत्वरणो नृपः । वाङ्मयं परित्यज्य, मम पार्थे व्ययस्मिन्ने ॥ ६३७ ॥ ततः सदागमेनोक्त, यथावाक्य मनोहरम् ।  
 शक्वावो न मया ज्ञातस्तेन विद्य न रक्षितम् ॥ ६३८ ॥ यथाहं पुनर्मदे, महाभोहपरिग्रहौ । तन्नम मानके चित्ते, यथा रङ्ग  
 सुपासिते ॥ ६३९ ॥ यथोष्ट तत्परित्यज्य, देवदन्तनूतनम् । नमस्कारादिपाठ च, सत्वातो भोगमूर्च्छित ॥ ६४० ॥ दानं च साधु-  
 यर्गादेर्विनिवार्य सतः परम् । धनसङ्ग्रहणे रक्तः, पीडयामि कौर्त्तनम् ॥ ६४१ ॥ सर्वसासारिकाप्येष्टु, मूर्च्छां गाढ विधर्षते । स मह-  
 मोदवीर्येण, रोचते न सदागमः ॥ ६४२ ॥ यथाऽपि—परिग्रहस्य वीर्येण, सर्वथा न्यूनयेतसः । न ममेच्छा यथा पूर्णा, प्राप्तेः सर्वधनै

स्मादेकप्रयोगेनम् । कुटारक्येयतां कुर्यात्तत्क्येय न पठित्वा ॥ ६०७ ॥ अथामालवयः सुखा, महाभोही महासभा । सा स  
 द्वागमरोपेय, सर्वा द्योममुपागता ॥ ६०८ ॥ कवमुकटिदुह्याय, यद्येवा मूषिकादिनः । एककक महायोभाः, सर्वे भाषितुमुपावाः  
 ॥ ६०९ ॥ कव ।—मया स देव । इत्यन्वो, गत्वा पापः सद्वागमः । इत्येकैको महायोपो, महाभोहमभापय ॥ ६१० ॥ देवसि  
 गदित वत्साः, कुर्वन्वीर मवादकाः । किं तु स्वय स इत्यन्वो, मया गत्वा कुटालकः ॥ ६११ ॥ यत्नाभिमूढः पापेन, कानसवरपो  
 दूराः । मलयुक्तः क्वत्तेन, स मे धर्मेकमर्हसि ॥ ६१२ ॥ अन्यथ—समुदायात्मको वत्सा, कर्तेऽहं मो मवादकाम् । अतो मया इत्य  
 सर्वैर्मुष्माभिर्य एव स ॥ ६१३ ॥ तथा—गते भाषि गताः सर्वे, दूयं पाठार्थमर्थयः । अतो गच्छान्यह वत्सा, दूयमनैव सिष्ठव  
 ॥ ६१४ ॥ किं तु—मस्मिन्नारथीयोऽह, गवत्तन्वत्तन्वत्त ॥ सर्वैरेव यथायोग, मवन्निः क्वासिदत्तसत्तैः ॥ ६१५ ॥ अन्यथ—योऽय  
 पतिप्रदो वत्सा, वत्सो मे सिष्ठेयवः । रामकेसरिपुत्रका, धामारका वयसकाः ॥ ६१६ ॥ नाहमेतं परिक्रम्य, तत्र गन्तुं समुत्सहे ।  
 अयमेव महावीर्यः, सहायो मम सुन्दर ॥ ६१७ ॥ गुणम् । यवम्—महमेक गृहीत्येत, सत्सहायं परिमहम् । गच्छामि स्मरितं तत्र, सद्गम-  
 मस्मिन्पासना ॥ ६१८ ॥ ततो विज्ञाप निर्णय, सर्वैः प्रणयमस्तकैः । एव विधीयतां देव, तद्वयः परिपूर्तिवम् ॥ ६१९ ॥ ततः सन्ना  
 गवौ मदे, महाभोहयसिम्हौ । मत्समीपं कथोत्साही, मया जेसौ विजोकिवौ ॥ ६२० ॥ ततो मे शोहसन्धन्यव्याभ्यां सार्धं सुनिर्भरः ।  
 भवाधम्यासयोगेन, सन्नावकारलोचने ॥ ६२१ ॥ इत्यन्वोपरवत्सावः, स षीमूढो नरेभ्यः । क्व न स्यासिधो राम्ये, दन्तुमस्मिन्मह  
 वसैः ॥ ६२२ ॥ प्रणवाः सर्वसामन्ता, रिपवो भूतघां गताः । ततः परिषदं राम्य, भूदिमूषिमनोहरम् ॥ ६२३ ॥ स न गुण्योदय  
 काल, मम राम्यस्य क्वरपम् । महाभोहयुदेनासी, किं तु मो जडिधो मया ॥ ६२४ ॥ इत्यन्व—शरीरं विपया राम्य, विविधाम् वि

सुष्ठुः स बालिशः । तवम् चिन्तयन्नेव, महार्घ्येन गतः ॥ ६५१ ॥ वन्योऽहं कवक्योऽहं, यत्नेन मम सुन्दरी । मनोहरा मुनि  
 मीर्णा, सपत्ना पुण्यकर्मणा ॥ ६५२ ॥ तवका वाटया मत्पा, मुष्टौ श्लेषयत्तवम् । बालिशं मधुरैर्वाच्यैः, स सङ्गः समभाषत ॥ ६५३ ॥  
 बलन्वसुन्दरो देव', देवेन द्विककशिणा । देवेन सार्वं स्थासिन्त्याः, संयोगो पठितो ज्ञयम् ॥ ६५४ ॥ तवाहि—रूपं घयः कुञ्ज क्षीक,  
 छावण्यं च परस्परम् । दम्पत्योः प्रेमसहितमनुकूप सुपुर्लभम् ॥ ६५५ ॥ एतच्च शुभयोः सर्वं, सपत्न पुण्यकर्मणा । केवलं वर्ष  
 नीचोऽयं, प्रभावन्त्यो मनोहरः ॥ ६५६ ॥ ततः स बालिशेनोक्तः, शठरमा वात्सवारकः । यथा कथं स बर्धव', स प्राह प्रियसेव  
 नम् ॥ ६५७ ॥ बालिशः प्राह किं तस्याः, मियं ? सङ्ग' । निवेद्यताम् । सङ्गेनोक्तं यथा देव', प्रियोऽस्मा मधुरो व्यभिः ॥ ६५८ ॥  
 बालिशः प्राह वधेव, तवकास निवेद्यम् । ब्रह्मान्तः कारयान्येनां, साधु साधु निवेदियम् ॥ ६५९ ॥ महामत्साव दत्तेन, दुर्बाणः स  
 च वारकः । स्नेहाभिषेधितस्तेन, द्रव्ये बालिशेन भोः ! ॥ ६६० ॥ तवम् काकलीगीतवेणुपीषाककस्तनम् । तां मुनिं भावयन्नेव, ना  
 लिखो हवि मोदते ॥ ६६१ ॥ चिन्तयसि च—भद्रो सुखमद्रो स्वर्गकावाऽहो मम वन्यता । एतेदस्मीं मुनिमीर्णा, सवचानन्वयायिका  
 ॥ ६६२ ॥ तवम्—द्रव्ये वारक कृत्वा, तं सङ्गं श्लेषनिर्मट । मुने स कालन कुर्वासास्ते नित्यं कवक्यैः ॥ ६६३ ॥ अथ दैनान्य  
 कर्तव्यं, धर्मादूरेण स स्थितः । चिन्तयन्नेव वाचो, हास्यमासी निवेकिनाम् ॥ ६६४ ॥ इतश्च कोविदेनापि, प्रमिषोऽयं सदागमः ।  
 मन्त्रोपा हिता भार्या, किं वा नेति ? निवेद्यताम् ॥ ६६५ ॥ ततः सदागमेनोक्तं, न द्विवा से नरोत्तम ! । ससङ्गेय मुनिमीर्णा, तत्रा-  
 कर्ष्येन कारयम् ॥ ६६६ ॥ इयं हि प्रदिता पूर्व, रागकेसरिमभिषया । इह अगाधपीकुरु, पञ्चमानुषमभ्यगा ॥ ६६७ ॥ इतश्च—स  
 कर्मपरिणामस्य, भावयन्तो रागकेसरी । प्रसिद्धम्वरटो कोके, तस्मात्पालो निवेद्यतः ॥ ६६८ ॥ स कर्मपरिणामाभ्यः, सार्वभौमो मया-

एरि ॥ ६४१ ॥ यतो मां पाठ्यं मत्ता, दूरीयतः सदानामः । अन्धमालम्ब्योऽपि सुखे, अहमोदपरिमहो ॥ ६४२ ॥ अथान्धना सम-  
पाठः, सोऽन्धश्चन्द्रवः पुनः । सुसाधुभिः समाकीर्णः, सुरिः कोविदनामकः ॥ ६४५ ॥ यतोऽन्धश्चन्द्राभिष्याद्रयोर्ध्वं तस्य दन्तः ।  
यतोऽन्धश्चन्द्रः सुरिषः, वनितो मुनिविर्गुणः ॥ ६४६ ॥ इत्यम—शान्तोकेन विद्याय, तेन कोविदसुरिणा । मदीय वरित कोकाद  
कन्द्रेण जातिभ्यम् ॥ ६४७ ॥ यतः मोक्षोऽन्धश्चन्द्रेण, सुरिर्नाथ । निषेधसाम् । सदानामस्य माहात्म्य, एतन्नादनमनुजे ॥ ६४८ ॥  
यथा कुर्वन्तसङ्गे य, ये दोषाः सन्ति वेदितव्यम् । निषेधनीयस्तदेष्वप्यसौ, निषेध येन पुष्यते ॥ ६४९ ॥ नुरमम् । यतः सदानामे मध्ये, दुष्टस्य  
मर्कजर्जितः । इत्यमर य देनाथ, सुखसन्तोदममुते ॥ ६५० ॥ कोविदसुरिणाऽभिहित—एव क्रियते, समाकणयतु महापदः—यतो  
ऽन्धश्चन्द्रोपरोधेन मत्ताय भित्तोऽहं सुरेः मत्तवतः, सुरिणाऽभिहित—अस्मि समागतक नाम नगरं यत्र स्वमलनिषयो नाम एवम्  
तस्य यदनुभूतिर्नाम अहोदधी, यथोक्त कोविदवास्तुविधानो द्वौ जनपौ, इत्यमर अन्धान्तरे तस्य कोविदकासीदनेन सदानामेन सह  
परिचयः, यतो अन्धस्तुनर्दोऽयं वाक्कीर्णोऽभ्यागमनेष्वप्य कुर्वतः सन्नाथ तस्य आसिभरस्य मन्त्रद्विजानन्तः । गृहीतोऽयं द्विगुणपुङ्गवः  
निषेधित जातिभ्याम् अस्मिन् स्वरूपे न प्रविष्टः तेन पापात्मना, इत्यमर कर्मपरिणाममहापदमेतं प्रद्विष्टा यतोः कोविदवास्तुविधानोः स्वरूपेण  
मुक्तिर्नाम कन्धका, तन्नाम प्रद्विष्टोऽभ्यागी यतोऽस्ति यदुः । सन्धन्यपदनापदुः सङ्कोचं धाम दासद्वारकः, आगतं य दूरी द्वावसि दो  
यथा प्रावर्तते परिणीता सा वाम्ना, अस्मिन् य यथोः कोविदवास्तुविधानोः परिषदे निषेधो नाम पर्ययः सन्नाथि मूर्धाभिधानस्यपरि  
महाद्वे तस्मिन्मयपर्ययोर्द्विषते सपरिषदे मत्तवनामिके द्वे अपवर्तिक दृष्टे वे यथा अभिहितवत्तन्नाथयोर्निषातः यतः क्लिष्टा यथो-  
देव सा मर्त्यज्जाया सती, यत्र य क्लृप्तनिषासा सा सुखिद्याम्ना कोविदवास्तुविधान्यां चार्धं विचरतीति ।—इत्यमर यो समासाप, परि



पुष्टः स बालिशः । तवम् धिन्वत्यनेन, महाहर्षस्य गतः ॥ ६५१ ॥ धन्योऽहं कृष्णकृतोऽहं, यस्मैयं मम सुन्दरी । मनोहरा शुचि  
 मूर्त्या, सपत्ना पुण्यकर्मणाः ॥ ६५२ ॥ तवस्य तादृशं मत्ता, शुभौ स्नेहपरामर्शम् । बालिशं मधुरैर्वाक्यैः, स सङ्गः समभाषत ॥ ६५३ ॥  
 अलन्वसुन्दरो देव !, देवेन द्वितकारिणा । देवेन सार्वं स्मासिन्धाः, संयोगो षट्ठिो ह्ययम् ॥ ६५४ ॥ तयाहि—कर्मं धयः कुलं स्त्रीलं,  
 लावण्यं च परस्परम् । दम्पत्योः प्रेमसहितमनुकर्मं सुदुर्लभम् ॥ ६५५ ॥ एतच्च युवयोः सर्वं, सपत्नं पुण्यकर्मणा । केवलं वर्षं  
 नीचोऽयं, प्रभावन्मो मनोहरः ॥ ६५६ ॥ तवः स बालिशेनोक्तः, स्थात्मा वासदारुकः । यथा कर्म स वर्धेत ? , स प्राह प्रियसेव  
 नात् ॥ ६५७ ॥ बालिशः प्राह किं वत्साः, प्रियं ? सङ्ग ! निवेद्यताम् । सङ्गेनोक्तं यथा देव !, प्रियोऽस्मा मधुरो ध्वनिः ॥ ६५८ ॥  
 बालिशः प्राह यथेव, तवस्यस्य निवेद्यम् । अभावः कारयान्वेनां, साधु साधु निवेदितम् ॥ ६५९ ॥ महाप्रसाद इत्येव, ह्युवाचः स  
 च दारुकः । स्नेहाभिनेषितस्तेन, हृदये बालिशेन मोः ! ॥ ६६० ॥ तवम् काकलीगीवेषेणुवीणाककस्तनम् । तां ह्यर्तिं भावयन्नेव, वा  
 सिंसो हृदि मोदते ॥ ६६१ ॥ चिन्तयसि च—अहो सुखमहो स्वर्गस्यार्थो मम धन्यता । एतेहृषी ह्युतिर्मूर्त्या, सवदानन्दवायिका  
 ॥ ६६२ ॥ तवम्—हृदये दारुक कृत्वा, तं सङ्गं स्नेहनिर्भरः । श्रुते स काकलं कुर्वन्नास्ते नित्यं कलस्सर्गैः ॥ ६६३ ॥ स्यात् तेमान्य  
 कर्तव्यं, धर्मादुरेण स सिद्धः । पित्रप्रभावता साधो, द्वायन्मासौ विनेकिनाम् ॥ ६६४ ॥ इत्यम् कोविदेनापि, प्रमियोऽयं सदागमः ।  
 मङ्गमेवा द्विवा भार्या, किं वा नेति ? निवेद्यताम् ॥ ६६५ ॥ तवः सदागमेनोक्तं, न द्विवा ते नरोत्तम ! । ससङ्गेयं ह्युतिर्मूर्त्या, तन्ना  
 कर्मय कारणम् ॥ ६६६ ॥ इयं हि प्रद्विवा पूर्वं, रागकेसरिमधिषा । इह पागद्वसीकर्तुं, पञ्चमानुषमभ्यगा ॥ ६६७ ॥ इत्यम्—स  
 कर्मपरिणामस्य, भावभ्यो रागकेसरी । प्रसिद्धमरटो कोके, तस्मात्तादौ विवेद्यतः ॥ ६६८ ॥ स कर्मपरिणामात्म्यः, सार्वभौमो नरा

यपि ॥ ६४३ ॥ यद्ये मां पादसं मत्वा, दूरीभूतः सदागमः । सज्यात्मकामो सधुष्टौ, भद्रामोक्षपरिमहौ ॥ ६४४ ॥ अपान्यन्त सम-  
 नावः, सोऽकम्बुजुतः पुनः । सुखासुखिः समाकीर्णः, सूरिः कोविदनामकः ॥ ६४५ ॥ यद्येऽकम्बुजराशिष्याद्रवोऽयं तस्य शम्भुः ।  
 एवोऽकम्बुः सूरिभ्यः शशिष्यो मुनिमिर्गुतः ॥ ६४६ ॥ इत्यम्—मानाद्योकेन विधाय, तेन कोविदसूरिणा । मदीय शरित् छोकात्  
 कम्बुन शसिष्यम् ॥ ६४७ ॥ यतः प्रोक्तोऽकम्बुन, सूरिर्नाम । निरेषणम् । सदागमस्य माहात्म्यं, यतः सादनभुजुते ॥ ६४८ ॥  
 यथा कुर्वन्तसङ्गे च, ये शोभाः सन्धि देहिनाम् । निवेदनीयास्तोऽप्यसौ, निषेधेन पुष्यते ॥ ६४९ ॥ पुनमम् । यतः सदागमे मध्ये, दुष्टस्य  
 मर्कजर्जितः । इत्याद्य च येनाहं, सुखसन्तोदयमुते ॥ ६५० ॥ कोविदसूरिणाऽभिहित—एव क्रियते, समाकर्णयन्तु महापुत्रः—यद्यो  
 ऽकम्बुपरीक्षेन श्रवणाय क्रियतेऽहं सूरिः प्रह्वयः, सूरिणाऽभिहित—यद्यि क्षमासक्त न्याम नगरं यत्र स्वमल्लिख्यो नाम राजा  
 तस्य कम्बुसूचिर्नाम भद्रसेवी, यद्येव कोविदवालिस्थानिधानो द्वौ यतवौ, इत्यम् अन्मान्तरे तस्य कोविदकाशीरनेन सदागमेन सह  
 परिचयः, यद्यो पादस्तुनर्दोऽयं तावदीदृशोऽभार्गपणनेपथ्यं कुर्वतः सत्वात् तस्य जातिभयरथ प्रवृत्तिमिच्छानन्दः । गृहीतोऽयं द्विगुह्युह्यका  
 निवेदिष्य शालिधाम परस्य स्वरूपं न प्रविपन्न तेन पापसप्तना, इत्यम् कर्मपरिणाममहापुत्रमेतं प्रहिता यद्योः कोविदवालिषयोः स्वयंरथ  
 मुनिर्नाम कल्पका, तस्मात् प्रहितोऽभ्यामी यद्येऽसिष्युः सन्तः प्रपटन्तापटुः सङ्गो ज्ञान दासदाकाः, अगात्स च दूवौ द्वावपि यो  
 यथा भावतौ परिपीठा सा ताभ्यां, यद्यि च यद्योः कोविदवालिषयोः परिग्रहे निजदेहो भाग परतः तस्मादि मूर्ध्यादिधानमुपसि  
 महादृष्टं तस्मोमपयन्तर्बोर्दिषेते सपरिशेषे श्रवणमासिके द्वे अप्यवसिके दृष्टे ते यथा अभिदधिवत्तस्मात्तयोर्निवासः यतः स्थिता यद्यो  
 रेव सा मर्दुग्धावा सती, यत्र च कृतमिवासा सा दृशिक्तान्ता कोविदवालिस्थान्यां सार्धं शिष्यरतीति ।—इत्यम् तां समासाप, परितः

॥ ६८७ ॥ अथ धाम्नां समारम्भ, मधुरं कर्णप्रेषकम् । परस्परैर्ध्या गीतं, परिपाठ्या मनोरमम् ॥ ६८८ ॥ वरवीं शिखराख्यौ,  
 भूप । कोविदधासिधौ । रमसमिधुनोद्गीतमुत्ता गाढ प्रबोधिती ॥ ६८९ ॥ वरम्—इदमस्मिन्नसङ्गेन, बालिशेन नृपात्मना । सा  
 मुष्टिः स्थापिता, द्वारे वस्त्राकर्णनवत्परा ॥ ६९० ॥ वस्त्रमार्धिवसद्भाषः, सोऽपि धायात्म्यमागतः । रसेन निर्मरीभूषो, न वेचमसि कि-  
 नन ॥ ६९१ ॥ वर स सेन सङ्गेन, स्वधीरेण तथा कृतः । गण्डशैलसमो रभे, प्रादुक्त्य पसिवो यथा ॥ ६९२ ॥ इहवासकोटया  
 देन, तेन गाधर्वाकिमरा । गाधपाशावष्टम्भा, बालिधो रोयमागताः ॥ ६९३ ॥ वरौऽभिधिवमेतौः, परस्परं धरे रे—कस्कोऽयं लाव ल-  
 ठेति, वरौ बद्धम धालिषः । धूर्णितः समक सर्वैर्दुःखमारेण मारितः ॥ ६९४ ॥ इवम्—सदागमोपपक्षेन, लज्जसङ्गः स कोविदः ।  
 वर गीते वरा मूर्च्छा, मुक्ता मुक्तोऽपि नो गतः ॥ ६९५ ॥ वरव पसिव इहा, बालिष इत्यमानकम् । वस्त्राणूर्णनपकान्तो, गिरे  
 द्वाहात्स कोविदः ॥ ६९६ ॥ सद्धर्मोपनामान, सूरिमात्ताय मुन्दरम् । जातो बालिषहृद्यान्व, इहा साधुः प्रमुदधीः ॥ ६९७ ॥  
 क्रमाथ गुरुणा तेन निजस्थाने निवेशितः । स एषोऽष्ट महायज्ञ, शिष्यः कोविदस्तथा ॥ ६९८ ॥ वदेव स कुमित्रेण, तेन सङ्गेन  
 नासिव । महादुःखनराकान्तो, ज्ञाता मे भूप । धालिषा ॥ ६९९ ॥ अहं तु मोचितोऽनेन, सर्वथा द्विवकारिणा । सदागमेन निःशे-  
 पाचाटशायः सत्त्वकात् ॥ ७०० ॥ कावच सवताहाव, सांप्रव कृत्स्नसयमः । अत एवास्म निर्देशमधुनाऽपि करोम्यहम् ॥ ७०१ ॥  
 वरपोऽकिमभूताना, द्विवकारी सवागमः । मुष्टान्तरङ्गलोकेन, मैत्री पर्यन्तसदाकृणा ॥ ७०२ ॥ एव स्थिते महायज्ञ, पुरुषेण द्वि-  
 पिना । त्यक्तव्यो मुष्टसम्पर्को, न च त्याग्यः सदागमः ॥ ७०३ ॥ वरमेव नुरोर्वाक्यमाकर्ण्यतन्वपेयकम् । मरेऽगृहीतसङ्केते,  
 वरा मे हस्ति सस्मिठम् ॥ ७०४ ॥ अये ! मा त्याज्यतयेव, महाभोदपरिमहौ । वरैव कारयन्तुवैयारं च सदागमे ॥ ७०५ ॥ एव च

विषः । सुमाश्रुमकस्तेन, कोके विषासर्वा गता ॥ ६६९ ॥ एव च सिधे—एव परटकन्येति, भक्ता भागीकरिभ्यसि । अथ जनस  
 वस्तेन, रागकेधरिसिद्धिना ॥ ६७० ॥ दास वत्ताश्रयाः स्त्रीय, सङ्ग सम्बन्धकारिणम् । भद्राएवमुदात्तेन, कर्मातिरेय मुनिः दुरा  
 ॥ ६७१ ॥ गुणम् । स कर्मपरिणयोऽस्मा, जनकस्तेन भीमते । सुतेय परमार्थेन, रागकेसरिसिद्धिष ॥ ६७२ ॥ जगदी बन्धकस्तेन, या व  
 तेन दुरात्मना । प्रमुक्तेन कुण्डला, द्विष्य हन्य विषये ? ॥ ६७३ ॥ कथम्—एषपीय कृता भाषा, यवता भद्राभिज्ञा । मा कार्पा  
 भद्र । विषास वत्ताश्रया कर्मायन ॥ ६७४ ॥ न वेय कथयतेऽप्यापि, निद्रासु निवपद्विका । केवल वर्तनीयोऽय, सर्वपा दासदारका  
 ॥ ६७५ ॥ जनेन रष्ट्रियाश्रय, मुनिः सन्नेन पानिना । इव च विषयानापि, मद्र । ते दोषकारिणी ॥ ६७६ ॥ यव—अनिद्राशय  
 सिद्धिना, मद्राश्रयनिशोभना । कथातन्त्रावदे सङ्गाश्रुतिरेण न तु कथम् ॥ ६७७ ॥ यावत् प्रेरयत्नेना, एताद्रेयपरायणा । तयो सङ्गस  
 द्विजा एव !, कथये दुःखमात्मिका ॥ ६७८ ॥ अयोऽपिम् दर्शिते सङ्गे, कथम्भवत्कथरा । अवलपीय मय्यस्मा, न दे दाव । विपान  
 धिका ॥ ६७९ ॥ वदेय मद्रो दुष्टस्मा, सर्वपा दासदारका । दुःखकारणभूतस्ते, सङ्गसम्बन्धनमर्दसि ॥ ६८० ॥ यवः प्रपद्य नम्रेण,  
 परस्वदागममाधिगम् । कोविदेन परित्यज, स सङ्ग दुर्विचारका ॥ ६८१ ॥ तथा सुखा भुवोऽप्येव, कथ्योऽश्रुत्वसिद्धिर्दिवः । भावय  
 पति धाम कर्माधिके मय्योऽभवत्सुखी ॥ ६८२ ॥ एव च कथ्यानी वी, सुखा कोविदात्मिनी । सङ्गसमाप्तभावी, सुदुःखकथयपरिवी  
 ॥ ६८३ ॥ अवाधि दुःखसिद्धिरो वदितको मद्रासिद्धिः । कथमप्या ससाक्यी, मूय । कोविदात्मिनी ॥ ६८४ ॥ यमाधि सिद्धिरे  
 एव, सिधास देवसिर्गम् । अष्टमूढ मानुष्योऽस्मा मूयो प्रसिद्धिगम् ॥ ६८५ ॥ एवम्—एक गान्धर्वसिभुन, किमर्त च वत्तापरायम् ।  
 तेन परस्परसर्वा, यथा भावाऽन्योर्दयोः ॥ ६८६ ॥ तथा परीषर्कैर्मुके, ते रन्ने एव देविके । एकात्मसिद्धि विधाप, परीषार्कैर्मुपागते

कञ्जः कृपा, मरसमीपमुपगतः ॥ ७१९ ॥ एतः स मां मद्यागो, दृष्ट्वा श्लोकवसीकृतम् । विमुक्तोऽथैवसत्कृतं, दययेद्ममापव  
 ॥ ७२० ॥ किमिव भो समारब्ध, ममवा धनवाहन ! । किं मे विभारिव वाक्य, किं वा त्यक्तं सव्यागमः ? ॥ ७२१ ॥ किमेव शुद्ध-  
 शोकेन, ममानेव शिलीकृतः । कृतं च द्वापयत्त्वेन, किमिव बाक्येष्टिधम् ? ॥ ७२२ ॥ यो न ते सारथो निज, देवी मयनमुन्वरीम् ।  
 श्लोकोऽप्य द्वापते शिव, वक्तार्यं किं न जुभ्यसे ? ॥ ७२३ ॥ तयाहि—सर्वेऽमी जन्तवो निज, कथान्वयुक्तकोटरे । वर्तन्तेऽथ क्षण  
 मय, यज्जीवन्ति वदन्तुवम् ॥ ७२४ ॥ स हि नापेक्षतेऽप्यक्षां, प्रेमावन्धनमुन्वरम् । पृथयेव भूतानि, मयद्वन्द्ववारणः ॥ ७२५ ॥  
 यद्यस्तस्यज्जनसत्समा, जननेनमनोहरम् । तस्यक्षिपासयत्त्वेव, कृतान्तहिमशीकर ॥ ७२६ ॥ न मया न धन मूर्ति, न दैया न  
 य भेषजम् । न दानमा न देवेन्द्रा, यत्नो रक्षन्ति देहिनाम् ॥ ७२७ ॥ हस्तद्वन्द्ववीकरे, जाते मरयस्त्रिद्वरे । सिद्धोऽयं मार्ग ह्येव,  
 दात्वा को विद्वदो मनेत् ? ॥ ७२८ ॥ एवेव कुरुते नित्यमजान्तो धर्मदेयनाम् । सोऽप्यकञ्जो मद्यागो, मयः श्लोकामेच्छया ॥ ७२९ ॥  
 नह पुनर्नहमोहवक्ष्यन्तां न ह्यस्ये । नष्टयुधिः प्रकायेन, य श्लोकमनुवर्धयम् ॥ ७३० ॥ कथं—हा बाळे हा प्रिये मुनये, हा नान-  
 वंदि । वयनने । हा पयनेने हा सुभ, हा कान्ते यस्तुभापिणि । ॥ ७३१ ॥ हा मर्त्यस्तसले देवि, हा हा मयनमुन्वरि ! । क गताऽऽति  
 बिद्वाभेम, रुदन्त धनवाहनम् ? ॥ ७३२ ॥ धीयतां वर्धन पूर्ण, समाधो मे विधीयताम् । क्षीयतां मामके देहे, दैहिक्यमपनीयताम् ॥ ७३३ ॥  
 ह्येव प्रसपमुर्धैरकञ्जस्य धीमताः । मरे ! तयादृष्टा वाक्य, न जानामि विचेतनः ॥ ७३४ ॥ दयापरीवधिचोऽसौ, ववो मां धीमस्य  
 पादक्षम् । अकञ्जस्यदा मरे, पुनः प्राह मद्यामसिः ॥ ७३५ ॥ यया “मो भो मद्याय न वनवाहन । न मुक्तोऽस्य मद्यादृष्टो विनातुं  
 “पाञ्चपरिव रस्तस्मिन्म शीयतां वरटीकुरु धीरतां सस्यतां नथान्मः करण स्यात्मान विद्वत्त्वमेकान्त्येनादिव मद्यामोह मुञ्च श्लोक क्षि

किंते—मह किं करवाभीति, याद्विन्वाशुपापाः । तादन्ममाशयप्रानादकठहेन अस्तिवम् ॥ ७०६ ॥ यदुत—मुद मगपवो वाक्य,  
 किं वा नो वनवाहन । मयोक्त सुपु मो नुद, स प्राह किमवशिष्टम् ॥ ७०७ ॥ ववो गाढरुदवयाऽकठहेन साध प्रपयस्याधिन्त्य  
 प्रयावयया मगवत्कोविदसुरिसिधानस्य प्रलाघमवर्धिवया कर्मप्रतिपक्षानस्य प्रसुषरानसामप्यधिकवयया य प्रसिपम वयाऽकठहेन  
 वतं वाक्यार्थमूवो मूयः सदानामः अनुदीक्षित वैदवन्नासिक अनुगुपित पूर्वपठिवारिक प्रवर्धित पुनदानासिक इपर्यमूवो मदानो-  
 दपरिमदो इत्यवोऽकठहेनकवया न पुनर्मांससारवया, ववोऽह विगठमूय इव सांसारिकपदार्थेषु अनुपपिच इव विमवन्निववेपु वदा न  
 किवोऽकठहेन, ववो गवः सोऽप्यत्र विद्याय वर सुरिषा—सवस इरा मव्या, मदानोदपरिमदो । मूयोऽप्युक्तविवो मद्रे, इरीमूवः  
 सदानामः ॥ ७०८ ॥ ववः किमिच्छित इत्य, नित्यव मर्मवेचना । सन्वावोऽह पयोस्तुत्पकादीर्पासो पलादाका ॥ ७०९ ॥ ववो निव  
 पमूयार्थमो, वनसञ्चरत्परः । मूरिकन्वाहिरप्याय, पीडयामि मदीकनम् ॥ ७१० ॥ सन्वःपुरसहसाधि, मूरिमोगपिपासया । द्विरप्य  
 ववकृपालं, मीलितानि सवानि च ॥ ७११ ॥ अक्षिरप्यकिता पृथ्वी, मदानोदपसेन च । वत्याय न अगस्त्यसि, यवदा न कव मया  
 ॥ ७१२ ॥ स च पुण्योदवोऽमीष्ट, सर्व शोकयवे मम । मया तु वम विकाष्ट, ववोऽवो कुषितो मनाक् ॥ ७१३ ॥ ववस मे मदान-  
 देवी, नाका मदनसुन्दरी । अलसवक्त्रमाऽभूत्सा, मृदा धृतेन विह्वला ॥ ७१४ ॥ अत्रान्तरे सभापावः, स्यामिमूक विमीतकः । प्रसि-  
 यागरको मद्रे, कोकनामा मनुज्यकः ॥ ७१५ ॥ सा प्रवम्य महाभोह, स्यामिनं विद्विवायः । ववभाबसटं स्यात्सा, मामासिद्धिं नो-  
 यया ॥ ७१६ ॥ ववोऽह कवपूतकाये, वैत्याकननयोदनम् । स्यात्सा स्यात्सा करोन्मुषैर्वी मवनसुन्दरीम् ॥ ७१७ ॥ त्वकः शरीरसं-  
 स्कारो, यम्यकर्म प्रमादितम् । जवो प्रादयदीपाप्रसवोऽह शुद्धपुरितः ॥ ७१८ ॥ वाव मामकवृषान्तं, कर्षपिबननार्थया । सुत्वाऽ-

सागरः, पृष्टोऽनेन रागकेसरी, कृष्ण रीतागुष्ठा, बहुलिकयोक्त—रात ' यत्र सागरो गच्छत्यत्र भगवि पाठस्य, यतो विश्वमेवेह तावत्स  
 न सन्त्येव सागरः क्षणमपि मया विना वर्तते, रागकेसरिणोक्त—वत्से ! यथेव तवो गच्छतु भवती, किं न—इयमपि कृपणवा सागरस्य  
 क्षरीरमूला जीविवमूला च वर्तते तदेवाऽपि गच्छतु येनास्य धृति संपद्यते, सागरेणोक्त—सात ' महाप्रसादः, तवः समागतानि दानि म-  
 दस्यर्थे, दृष्टो वरक्षणेन महाभोगपरिमहो, समातिष्ठितोऽर्थं कृपणवत्ता, तवः प्रवृत्ता भोगेच्छा—यदुत किमनेन ममादृष्टपरलोकायने  
 कृपया दृष्टसुखहेतुता घनेन व्ययितेन प्रयोजनं, अथ चाकलङ्कः प्रतिभिन माप्नुस्तादृश्यति यथा यदि सावस्त्रकरणे नापापि त्वोत्साहः  
 सर्वो महापुत्र पवनवाहन् ! इत्यस्त्रकरणे तावतादरं कृत्येति, व्ययितं च तद्वारेण बहुवचनं वर्तनं वर्तते तद्वच किं करणापीति चिन्तयतो  
 मे विद्विष पटुलिकवाऽलङ्घित, तवः प्राप्नुमूणा मे कुमुदिः—यथा प्रेषयामीतः केन विद्वच्चनविन्यासेन तावदेतमकलङ्क, तवो न भविष्यति  
 मत्ताय पनक्यमः, तवोऽभिविधो मयाकलङ्क—यथा भवन्त ' मनुष्यकार्यमिहागता मृत, अत सप्राप्तिवो नमोपकारः संपूर्णो भवतां भास  
 कल्पः तवत्से मुष्मद्वर्धमुन्मनीभविष्यन्ति भगवन्तः कोविदाचार्याः सञ्चविष्यतेऽस्माकमुपाकम्पः तवो विहरत मृत वय न करिष्यामो  
 मुष्मदादेश, न भगवन्निश्चिन्ता कार्येति, तदाकर्म्य विहरोऽकलङ्क प्राप्तां गुरुसमीप—तवो मूयोऽपि वर्नार्थ, विनिवार्य पनक्यमम् ।  
 सजात सागरप्रेषादं रक्तः परिमह ॥ ७३३ ॥ तवः परिमहेणोक्तः, सागरो मित्रवत्सक । नीयमानः क्षय साक्षाद्व भो रक्षित-  
 स्त्वया ॥ ७३७ ॥ त्वत्तोऽपि मे विश्वेयेष, स्वयमा भ्रातृवत्सका । एषा कृपणता स्थि ' , मत्त जीवितदायिका ॥ ७३८ ॥ गाह पटु  
 लिङ्गयोपा, क्षया मनुष्यकारिणी । सोऽकलङ्को महाप्राप्तुर्गाह निर्वासितो मया ॥ ७३९ ॥ तस्मात् विश्विष ताव, यदागत नरोत्तम ।  
 सदाक्षिणाऽऽर्यके मक्तिः, पात्तिवोऽय त्वया जनः ॥ ७४० ॥ एव च मायमाफ त, महाभोगः परिमहम् । प्रत्युपाय यथा वत्स !, साधु

“विषय परिग्रह अनुवर्तय सदागता समाधर यदुपपन्न जनय मम विषयप्रभोद, किं विस्मृत भवद्योऽनुनीत वत्सायुनिवदित भवप्रदोषनक !,  
 “किं न स्मरसि वत्ससाधनक ! किं न चिन्तयसि व भवराध ! किं न व्यापसि व सक्रमकवीर्यवृद्धमठपुत्रान्ध ! किं न पयाजोष  
 “यसि वं मनुष्यजनमरुद्ग्रीपयुक्तयवो ! किं व निर्दिषसे वत्सलाद जनमसन्धानवृद्धभार्गो ! किं विस्मारायसि वं विषयानरहीवरूपवरकवा !  
 “किं नानुशील्यसि वल्लभ सख्य रक्षण ! किं व्रजसीपि तेषु विषयविषयवृद्धेषु ! किं सुठसि वकिमन्नपथिषयसम्बन्धे पञ्चकुसुमकलरज कपर्वरे किं  
 “विपाठयसि ज्ञानभवि भोषभार्गमात्मानं योरेषु महानरकेषु ! किं नायोदयसि तेनोपायेनात्मानं सत्र सखयानन्धे शिवालयमठे !, संसारं  
 द्वि निवसता महाराज ! देहिनां करवल्कलानि ज्यसन्तानि सुकथाः प्रियजननिप्रयोगाः अदुरता महाभ्यासय प्रत्यासन्नानि दुःस्थानि भव  
 “इयमाशीनि मरणानि, वयं पुरुषक विमलविशेषक एषात्र ज्ञाप्य नापरमिति” । वयोऽहं मरेऽगृहीतसङ्केते ! गार्हप्रभुस इव प्रसिधोषकम्ब  
 निपरम्परया विपवूर्णित इव सत्सुहृमन्नापमानजनया मन्त्रिराभव इव ग्रीधमयवर्त्मनवया मूर्च्छित इव सलिलग्रीकरम्बजनकिम्बया वनम्बक  
 इव सुवैषमयुक्तमेपञ्चमाकिम्बया वयाऽकलङ्कवचनपञ्चला सखायः प्रत्यागव्यवहनः ॥ वयः शोकेन प्रणय्यानिद्रितो महामोह —यथा देव !  
 प्रत्यान्वहं नायमकलङ्को सकलमिन्द्रासिष्ठ वृक्षानि, महामोहः प्राह —जसस ! विषमोऽप्यमकलङ्कः प्रचारयसि कप्रोऽयु पनवाहन, भावयोत्पि  
 पाकिमप्यत्र मन्त्रिष्यसि वभाषासि ज्ञानीमः वरुच्यु वावरव, केवल पुनः प्रक्षिज्जगत्तर्प विधेय केनासि भववाऽऽवयोरीरिति, शोकेनोक्त—  
 मरुप्रपापयसि देवः, वयो गतः शोकः प्रक्षिप्य मयाऽकलङ्कवचन वल्लभीकृतः सदागमः भवपीरित्यौ मनाङ् महामोहपरिमहौ लज्जल्लित  
 पूर्वपाठित विद्रिष्टोऽपूर्यधुरमहर्षावरः कारिणानि जिनमवनचिन्मावीरिति प्रवर्तितानि यात्राकाप्रपाञ्चान्धप्रभुदीरिति, वयः कृतो मया वावरेष  
 गुणमाजनमिति सधुष्टोऽकलङ्कः, भवान्धरे प्रियमिन्द्रपरिग्रहोन्मापकेन विधुमिषवर्धनः प्रभुयो मत्समीपगमनाय महामोहप्रवर्तिकागरक



सागरः, दृष्टोऽनेन रागकेसरी, कृषा येनात्रुषा, बहुलिकथोकं—राव ! यत्र सागरो गच्छति सत्र मयापि धातव्य, यतो विश्वमेवेव चावस-  
 न स्वप्नेष सागरः क्षणमपि मया विना वर्तते, रागकेसरीणोकं—यत्से ! यथेव तवो गच्छसु भवती, किं च—इयमपि कृपणा सागरस्स  
 षटीरभूवा जीविषमूवा च वर्तते वदेवाऽपि गच्छसु येनास्य वृत्तिः सपद्यते सागरेणोकं—राव ! महाप्रसाहः, यतः सभागानि दानि म-  
 दन्मये, इष्टो वदशनेन महाभोहपरिमहौ, समातिङ्गितोऽहं कृपणतया, यतः प्रवृत्ता मयेच्छा—यदुव किमनेन ममादृष्टपरलोकावधने  
 कृत्वा दृष्टसुखहेतुना धनेन व्ययितेन प्रयोजन !, अथ वाकजङ्घः प्रतिदिन मासुत्साहयति यथा यन्मि भावकावकरणे मायापि वदोत्साहः  
 तवो महात्मा धनवाहन ! इत्यस्यवकरणे दावदादरं कुर्व्येति, व्ययित च तदुरेण बहुधन धन वर्तते यदत्र किं करवाप्तीति चिन्तयतो  
 मे विश्वेय पद्मलिकयाऽऽल्लिङ्गन्त, यतः प्रादुर्भूवा मे कुमुदिः—मया प्रेययामीव केनश्चिन्ननचिन्तायेन दावदेनमकजङ्घ, तवो न मविध्यति  
 ममाय धनव्ययः, तवोऽनिह्वितो मयाकजङ्घः—मया भवन्त ! मनुष्यकार्थमिहागता मूय, अतः सपक्षितो ममोपकारः संपूर्णो भवतां मास  
 कल्पः तवत्से मुष्मद्वर्धमुन्मनीमसिष्यन्ति मगधन्वाः कोषिदाचार्याः संजनिष्यतेऽस्माकमुपालम्भ यतो विश्वरत मूय न च करिष्यामो  
 मुष्मदावेक्ष, न भगवन्निभित्वा कार्येति, तदाकर्ण्य पितृवोऽकजङ्घ प्राप्नो गुरुसमीप—तवो मूयोऽपि धर्मार्थ, विनिवार्य धनव्ययम् ।  
 सञ्जातः सागरादेशादहं रक्तः परिमह ॥ ७३६ ॥ यत परिग्रहेणोक, सागरो मिश्रवत्सक ! । नीयमान क्षत्र साक्षादहं भो रक्षित-  
 स्त्वया ॥ ७३७ ॥ स्वचोऽपि मे विशेपेण, सपमा प्रावृषत्सका । एषा कृपणा मित्र !, मम जीविषदायिका ॥ ७३८ ॥ गाढ धनु-  
 स्त्रिकाल्पेणा, मेया मनुष्यकारिणी । सोऽकजङ्घो महाशूर्याद निर्वासितो मया ॥ ७३९ ॥ यथाय विश्वेय चारु, यदागता नरोत्तम ! ।  
 सदाशिलाऽऽर्धके भक्तिः, पातितोऽय सया जनः ॥ ७४० ॥ एष च भापमाण य, महाभोहः परिमहम् । प्रत्युधाच यथा धत्त !, साधु

“विषय परिग्रहं अनुवर्तय सद्भासं समाचर तदुपदेक्ष जनय मय विषयप्रयोगः, किं विस्तृतं मयवोऽपुनीय तत्साधुनिवेदितं मयप्रदीपनम्”,  
 “किं न कारसि वस्तुसाधयानम् ? किं न चिन्तयसि यं मयारणम् ? किं न व्यायसि यं सक्रमकन्दीवपटुमठपुच्छान्तम् ? किं न पयाजोच  
 “यसि त्वं मनुष्यमभ्यरमदीपदुःखमता ? किं न निर्दिष्टसे वस्तुष्वत्र जगत्सन्धानादृष्टमार्गो ? किं विचारयसि त्वं विषयानादसीत्स्वपराकृत्या ?  
 किं नातुसीत्यसि वस्तौ च सवय यस्वय ? किं वज्रमीयि वेयु विषयविषयेषु ? किं सुठसि त्वस्मिन्ननभविषयसमये पञ्चदशसुमककलजः कृपार किं  
 ‘विषयवसि ज्ञानमपि मोक्षमार्गमात्मानं पोरेयु महानरकेयु ? किं नापोहयसि वेनोपायेनात्मानं यत्र सवयान्तरे क्षिबाक्यमठे ?’, सवारे  
 “क्षिं निवसतां महापानम् । वेदिनां करकलजानि व्यासनाति सुखमाः प्रियजनविषयमेगाः भर्तृणां महाव्याययः प्रत्यासमानि तु यानि जन  
 ‘इयमादीनि मर्यादाति, यद्यः पुत्रपुत्र विमलविवेक एवात्र आप्नायमिति” । ततोऽहं मदेऽपुदीवसहेतवे ! गाढप्रसुप्त इव प्रसिक्तोपकृष्य  
 निपरम्परया विषयवृत्तिव इव सुस्तुतमभापमार्जनया मयिरामव इव क्षीप्रमयवस्तनवया सूर्यिणव इव समिक्तशीकरम्बजनक्रियया वनमचक  
 इव सुदैवप्रमुखोपक्रमालिकया तयाऽकम्बुचक्षुष्यनपद्वला सज्जायः प्रत्यागतवेदनः ॥ तवः श्लोकेन प्रपन्न्याभिद्विषो महामोहः—यथा देव !  
 ब्रह्मान्महं नायमकम्बुतो मयमिहासि तु यदासि, महामोहः प्राह—वत्स ! विषयोऽयमकम्बुः प्रसारयसि त्वमोऽयं यनवाहन, आत्मवोटीरि  
 यतिकमन्त्रमयमिष्यसि तन्नायासि आनीमः यद्गच्छ यान्तर, केवलं पुनः प्रसिन्नागण्य विषये केनासि मयवाऽऽवयोरिति, श्लोकेनोक्त—  
 यथासापयसि देवः, ततो गतः श्लोकः प्रसिपथ मयाऽकम्बुचक्षुष्यन वज्रमीकृतः सदागमाः भवपीरिचो मनाहं महामोहपरिमहो वज्रम्लिव  
 दूर्ध्वपाठित विद्विषोऽपुर्बस्वमहपादः कारित्यासि जिनमयनविन्वादीनि मयवित्तामि यात्राभात्रपायदानप्रयुवीति, यद्यः कृतो मया धावयेय  
 गुणभाजनमिति सद्योऽकम्बुः, यत्रान्तरे विषयविषयपरिमहोनायकेन विपुतिवद्वयः प्रवृत्तो मरसमीपागमनाय महामोहप्रसिन्नागारकः

च सा कन्या, सद्योरात्मलीकया । ससायवीरकावन्वा, मुनीनामपि वदन्मा ॥ ७६० ॥ सा सर्वसम्पदां भूतं, सा सर्वदेवनाम्बनी ।  
 निरन्धानन्सन्तोद्धारयिका सा निगद्यते ॥ ७६१ ॥ अतस्ता कन्यकां विधां, यथाऽसौ पतनवाहन । कृत्स्नते भोक्तराऽमुष्मान्महाभोरो  
 विधोस्तथे ॥ ७६२ ॥ यत् — सा कन्या निजवीर्येण, निरुद्धाऽनेन पाणिना । न विद्यते सहायसा, मनयोस्तेन हेतुना ॥ ७६३ ॥ किं  
 व — यथा निरीहता नाम, कन्याऽस्या विद्यतेऽज्जया । चारित्रधर्मरूपस्य, पुर्विण सा मनोरमा ॥ ७६४ ॥ विरहेः कृत्तिसन्ध्या, आ-  
 नोद्यन्वपूजिता । चारित्रधर्मरूपीये, राज्ये सा सर्वसारिका ॥ ७६५ ॥ महत्त्वमस्य साऽमीष्टा, सद्बोधसाविबद्धमा । सन्तोषवत्प्रपाठेन,  
 स्वात्मिकेन वर्धिता ॥ ७६६ ॥ सभावसुन्दरा वाक्सा, सपूर्णेच्छा न वान्कसि । वक्ताकृत्स्नमात्मनिसपाद्य सा विभूषणम् ॥ ७६७ ॥  
 स्वर्गेन विविधभोगीर्विधिने रत्नयष्टिभिः । न सक्त्या कोमलातेतु, कन्यका सा निरीहता ॥ ७६८ ॥ सा निःशेषजगद्वन्धा, सा मुनीनां  
 मनोहरा । सा दुःखोन्मेषिका वन्धा, सा विद्यानन्वदायिका ॥ ७६९ ॥ तां कन्यां चावकावर्ण्या, यथाऽसौ पतनवाहनः । कृत्स्नते वि-  
 जय प्राप्ताश्च नूतं परिग्रहः ॥ ७७० ॥ विरोधोऽग्नि यथा सार्वं यथक्त्वस्य दुरात्मनः । अतस्तां वीर्य पापोऽसौ, गाढभीषो विकीर्यते  
 ॥ ७७१ ॥ अककङ्कतोक्तं — कथा पुनरसौ वक्ष्य, ते कन्ये परियेक्ष्यसि । वयोर्वलनकारिण्यौ, मदनः । पतनवाहनः ॥ ७७२ ॥ कोविद-  
 सूरिभोक्तं — भूषसाऽप्यापि कालेन, वयोर्धामो नरोत्तमः । कृत्स्नयोम्र नरोत्तमं, स वयोः परिणायकः ॥ ७७३ ॥ अयाककङ्कः प्रत्याह,  
 शुष्मश्च यमि रोचते । वरोऽह कर्ममगमीसि, ते कन्ये पतनवाहनम् ॥ ७७४ ॥ गुरुत्वाह महाभारतं, नाधिकारो मन्वाटयाम् । कन्ययोः  
 प्राप्येऽप्यापि, वयोरेतेन हेतुना ॥ ७७५ ॥ स कर्मपरिणामात्मसते कन्ये प्रापयिष्यसि । पतनवाहनरुक्माय, नोऽप्यरो दायककक्षयोः ॥ ७७६ ॥  
 दाय्यमाते पुनस्तेन, ते सार्धं कन्यके यथा । हेतुमाह भक्त्यन्तेन, सदा शुष्माटया व्यसि ॥ ७७७ ॥ एव च सिधे — स एव योत्तयो

साधुनिष्ठ तत्रा ॥ ७४१ ॥ अथ हि सागरो ब्रह्म !, सवस्र मम जीवितम् । मदीयदीय निष्ठेय, मावोऽत्र प्रसिद्धिम् ॥ ७४२ ॥  
 अथ निर्मिथ्वमच्छे मे, सागतो माग्नके बधे । मत्सुप्तो रात्र्ययोगोऽयमप्य वे रक्षम्यश्रमः ॥ ७४३ ॥ एव चोद्भासितस्तेन, महाभोर्देन  
 सागतः । सज्जातो मां मसीकृत्य, स सदागमभाषकः ॥ ७४४ ॥ तवो विद्वत्पिताकोशो, पृथीकृतसदागमः । संभावत्यच्छब्दोऽयम्, यथा  
 पूर्व तत्रा पुनः ॥ ७४५ ॥ तवो मदीयपुत्रान्त, समाकर्ष्य कृपापट । भूयः प्रवसितो मद्र !, सोऽञ्जलद्वो मदन्तिकम् ॥ ७४६ ॥ तवः  
 कृतप्रणामन, देन कोविदसूत्रयः । विद्याविद्या प्रजासीति, दीपयित्वा प्रयोजनम् ॥ ७४७ ॥ अथ निष्ठित सन्नाह, प्राहुः कोविदसूत्रयः ।  
 तिर्यक्कोऽयं वे ऋक्षकवो मा गच्छदन्तिकम् ॥ ७४८ ॥ स्याद्वि—गावस्रस समीपक्षी, महाभोदपरिमहौ । शानभाषासि कर्मण्यः, स  
 वाव । वनबाह्वः ॥ ७४९ ॥ यवः—आगच्छन्ति तयोः पार्श्वे, नियमात्सागपदय । देयमाभयभूवौ वौ, सर्वेषां मूकन्यायकौ ॥ ७५० ॥  
 अथे च वर्धमानस, वस्र देवां दुष्टस्मनाम् । कोपदेसाः क वा मर्माः, क सदागतसीतकः । ॥ ७५१ ॥ अथिरे कर्मवापोऽयमन्ये चूच  
 मरुर्जनम् । अयरे वीचनिर्देयकस्र मा वर्मदेवता ॥ ७५२ ॥ यवः—अस्रस्रस्रस्र सस्कारकावकीनेन व्यायवे । अयनेन वस्रितुर्वो,  
 सान्ध्यायस्र मवाहसाम् ॥ ७५३ ॥ अन्यथ—वोषितो वोषितो भूयः, स योवे भावनिद्रया । गावदेवो समीपक्षी, महाभोदपरिमहौ  
 ॥ ७५४ ॥ वरुच वे गतेनादं, वनवाहनसभिधौ । स्वकार्यहानिदे कृत्ये, न वर्धन्ते पिचक्षणाः ॥ ७५५ ॥ अकञ्चद्वेनोच—स  
 दन्वानर्धेष्टुभ्यां, शाभ्यां सार्धं लपञ्जिताः । कदा पुनर्दिशोः स्यात्, वनवाहनभूभुजः । ॥ ७५६ ॥ गुरुजोऽह विजानन्ति, व प्रायेण मवा  
 ददाः । आरित्रधर्मरुचस्र, प्रसिद्धो यो मद्रयसः ॥ ७५७ ॥ आरित्रधर्मपुञ्ज, स्वदीर्घेण विनिर्मिता । वेनास्त्रि मानसी कन्या, पिद्या  
 मम मनोहरा ॥ ७५८ ॥ सा सुरुरा विद्यालक्ष्मी, जगपाकापकारिणी । विद्यायविचभाषार्या, सर्वार्थव्यवहृन्वरी ॥ ७५९ ॥ विजसन्वी

धद्यसेन मया मैव, विद्याया भवदुष्टता ॥ ७९६ ॥ तथा द्वेषगजेन्द्रोऽपि, सनिमिषानिमिषकम् । कुर्वन्प्रतीक्षितमन्त्राय, निवर्तं मे विभु  
 निमग्नः ॥ ७९७ ॥ तथा—यस्माद्विदेकिता भार्या, कार्यकार्यविधारणम् । कुर्वन्व वारयसुबैद्यता मा वक्ष्यतिर्निम् ॥ ७९८ ॥ तथाहि—  
 द्रव्यं रूपे रसे गन्धे, स्पर्शे चालम्ब्योत्पत्तयः । वशीकरोऽह्म सपत्नी, रागकेसरिमभिषगा ॥ ७९९ ॥ प्राप्तेषु गारुडमूर्च्छान्योऽप्राप्ताकांक्षावि  
 दन्विताः । कृतो भोगेषु सत्सैव, भार्यया भोगवृत्त्याया ॥ ८०० ॥ तथा—निर्वाभिविशुद्धो हा हा, हासितोऽह्म निरर्थकम् । हासेन पशुशो  
 भवे, सद्गान्धीयवितोषिता ॥ ८०१ ॥ मूत्राच्छेदनात्कामकर्मपूर्वेषु योषिताम् । गात्रेषु रसितो भवे, रत्याऽह्म विषसक्तता ॥ ८०२ ॥  
 अरत्यापि महोद्देशावन्त्यापाकान्तमानसः । कृतोऽह्म भूरिषो भवे, कारणैरपरपरै ॥ ८०३ ॥ मरिष्यामीति विमान्यो, राग्यं वा मे  
 हरिष्यते । इत्यादि कारण प्राप्य, मयेनाह विनादितः ॥ ८०४ ॥ मरुष सिगमयूनामर्चनाशान्तिर्कं तथा । हेतु सप्राप्य धोकेन, मूत्रो  
 मूत्रो विदन्विताः ॥ ८०५ ॥ एतन्मार्गविशुद्धात्मा, मिथ्याशुद्धता सितोदितः । सिवेकिदास्त्वां नीयस्वदाऽह्म हि ज्ञुप्यता ॥ ८०६ ॥  
 तथा—एगकेसरिषा पुत्रा, वेऽष्टौ पूर्वं विवर्णिताः । सुता द्वेषगजेन्द्रस्य, वे चाष्टौ परिकीर्तिताः ॥ ८०७ ॥ वैद्यता मे कयापास्यैर्म  
 हासोद्विगतामहे । समीपसे क्व यस्तु, वयाक्याणु न पार्थवे ॥ ८०८ ॥ युगम् । ज्ञानप्रकाशलेखेन, रक्षितो माभवत्कदा । ज्ञानसम्पद  
 येनाह्म प्रवृत्तेन क्वः पुनः ॥ ८०९ ॥ तथा—कुर्वन् पुरुषुत्तराय, काष्ठवपद्वयेनः । वर्धनावरयेनाह्म स्वापितो गववर्धनः ॥ ८१० ॥  
 तथा—कश्चिद्वक्त्राक्षितोऽस्त्यन्व, कश्चित्सन्त्यापविद्धकः । कृतोऽह्म तेन चार्थकिं, वेवमीयेन यमुञ्जा ॥ ८११ ॥ तथा—आशुःकनामके  
 नापि, नरेन्द्रप सुखोपते । धनवाहनरूपेण, वदाह्म धारितश्चित् ॥ ८१२ ॥ तथा—येन भामाभिमानेन, यमुञ्जा वरवीक्षणे ।  
 क्षतीरे मामके शिव, निजवीर्यं निवर्धितम् ॥ ८१३ ॥ तथा गोत्रान्त्यप्राप्या, स्वमाहात्म्यं वयानते । कृतमेव ममात्म्यं, चरितार्थ

मत्ता, कविचे वारयिष्यसि । अन्ये सुखाग्रे पन्थे, मनषाहन्ममुद्धे ॥ ७७८ ॥ अथो विद्वद्य वचिन्वा, स्वाभ्यापभ्यानवत्परः । विमु  
च्छसुनिर्वन्धविद्यासंख्यं त्वं निपादुष्कः ॥ ७७९ ॥ तवस्ववेसि ओवेन, प्रक्षिपय गुणोर्ध्वपः । क्षिणोऽकलद्गो निधिन्यसदा भद्रे' निपादु-  
॥ ७८० ॥ चर्हं तु तौ समामित्त, महामोक्षपरिमहौ । आगत्यागत्य धर्मलैरेकेकेन कर्धर्षितः ॥ ७८१ ॥ वषाहि—एकं गच्छन्ति व-  
द्भूलाः, मत्तागच्छन्ति जापरे । अन्ये सिद्धिं नित्यं मत्तापरे, किञ्चिदासाय कारयन् ॥ ७८२ ॥ किं जात्र धनुनोकेन, समासाये निवेद्यते ।  
भूरिभाषितवा त्वं मां, वाचाञ्च माऽभ्यगीताः ॥ ७८३ ॥ चित्तवृत्तिमहाटम्यां, या नदी सा प्रमत्तता । वत्तद्विलसितं नाम, वक्षसाः  
पुच्छिनं पुरा ॥ ७८४ ॥ वर्णितं तत्र चोदित्विच्छाविशेषमप्युक्तयः । वृष्णा च वेदिका वसां, विषयांसाक्यसिद्धयम् ॥ ७८५ ॥ वसिष्ठभ्यो  
महामोक्षस्वाभिधा वपुर्कथा । विमर्शेन प्रकर्णय, या सा पूर्व निवेदिता ॥ ७८६ ॥ स्मरसि त्वं विद्याकाशि', विषे सर्वमिदं न वा ।  
वषोऽभूद्दीवसद्वेण, प्राह वाह कयसि मां ॥ ७८७ ॥ चतुर्भिः ककापकम् । ससारिन्दीवसां प्राह, वषेव पावकोचने । । वषस्ते मे  
विमर्शेन, प्रकर्णय विचारिणः ॥ ७८८ ॥ सिध्यावर्धनसहाया, मूयांसो वेदिकाक्षिता । अन्ये सेवापयच्छत्र, क्षिता हुत्ककनवहरे  
॥ ७८९ ॥ ते सर्वे मनुजो भद्रे', सकलज्जाः स्वान्मना । समुत्तपरिवाप्य, प्रलेक समुपागताः ॥ ७९० ॥ महामोहे समीपसे,  
वषा मे सर्वनायके । न सोऽस्ति कश्चित्तस्यैवमेव, वेनाह न निवेदिताः ॥ ७९१ ॥ तवम—गुह्यो विमूर्च्छितस्त्वेषु, भावेषु भवनाविषु ।  
हृषोऽहं नष्टसन्मार्गो, भद्रासूक्तवया वषा ॥ ७९२ ॥ सदागम परितन्मय, विषाय मसिभिन्नमम् । सिध्यावर्धनसर्वेन, मूयोऽहं पापिव  
वषा ॥ ७९३ ॥ वषा—पापसि सर्वभुक्ताऽहं, वाक्यानि पुनस्तथा । मूर्च्छाः कारिणो भद्रे', कृत्स्ना वन्महेकया ॥ ७९४ ॥ दास्यामि  
विषयप्रामे, निःसारे साधुमिन्द्वरे । विचारिणो मनःप्रीति, रागकेसरिणा पुनः ॥ ७९५ ॥ वस भार्या पुनवा सा, मूढता नाम विमुक्ता ।

उपशेन मया नैव, विद्याया मरुदुष्टया ॥ ७९६ ॥ यथा हेयगजेन्द्रोऽपि, सन्निविद्यामिषिचक्रम् । कुर्वन्मयीतिसन्ध्याप, निवयं मे विजु-  
 न्मिषतः ॥ ७९७ ॥ यथा—वस्त्राधिपेक्षिता भार्या, कार्यकार्यसिधारणम् । कुर्वन्व वारयस्सुखैसाया मां वल्लवर्तिनम् ॥ ७९८ ॥ यथाहि—  
 सख्यं रूपे रस्ये गन्धे, स्वर्गे चालस्यलोपः । वसीकरोऽहं सपन्नो, एगकेसरिमधिषा ॥ ७९९ ॥ प्राप्तेषु गाढमूर्च्छार्थोऽप्राप्ताकांक्षावि  
 दम्बितः । कृतो मोगेषु वस्येव, भार्यया भोगतृष्णाया ॥ ८०० ॥ यथा—निर्वासितशुक्लो दा दा, दासितोऽहं निरर्थकम् । शाघेन पशुलो  
 मरे, सन्नान्मीर्यवितोषिता ॥ ८०१ ॥ मूत्राज्जिह्वान्नाकमक्षपूर्ण्यु पोषिताम् । गात्रेषु रमिषो मरे, रक्षाऽहं विवशस्त्वया ॥ ८०२ ॥  
 अरक्षापि मरोद्देगसन्धापाक्रान्तमानसः । कृतोऽहं भूरिषो मरे, कारयैरपराधैः ॥ ८०३ ॥ मरिष्यामीसि विमान्यो, राज्य वा मे  
 हरिष्यते । इत्यादि कारय प्रान्त, मदेनाहं विनाटिवः ॥ ८०४ ॥ मरण विनाशवन्मूलामर्दनासाहिकं यथा । हेतु समाप्य शोकेन, मूयो  
 भूयो विदम्बितः ॥ ८०५ ॥ सत्त्वमार्गविजुष्ममा, सिष्याणुत्सा विरोहितः । विवेकितास्वर्गं नीवच्छयाऽहं हि जुगुप्सया ॥ ८०६ ॥  
 यथा—एगकेसरिष्यः पुत्रा, येऽष्टौ पूर्वं निवर्जिताः । सुखा हेयगजेन्द्रस्य, ये याष्टौ परिकीर्तिताः ॥ ८०७ ॥ वैक्लवा मे कपायाक्यैमे  
 दामोदविगामरे । समीपसे कृतं पशु, सदाकमातु न पार्थवे ॥ ८०८ ॥ शुभम् । ज्ञानप्रकाशलोपेन, रक्षितो माववच्छया । ज्ञानसवर  
 येनाह, प्रवसेन कृतः पुनः ॥ ८०९ ॥ यथा—कुर्वन् जुगुप्सुयत्नव, काष्ठममष्टयेवनः । वृक्षेनावरणेनाह, स्थापितो गववर्त्तनः ॥ ८१० ॥  
 यथा—कपिदाहासितोऽसन्त्य, कथिरसन्धापविह्वलः । कृतोऽहं सेन भार्दक्षि, वेदन्तीयेन मृमुञ्जा ॥ ८११ ॥ यथा—आतुरकृन्नासके  
 नापि, मरेन्नेषु सुभोषणे । धनपाहनरूपेण, यथाऽहं पारिवशिरम् ॥ ८१२ ॥ यथा—येन मामामिषधानेन, मृमुञ्जा परवीक्ष्यते ।  
 स्त्रीरे मामके पितृ, निजवीर्यं निवर्षितम् ॥ ८१३ ॥ यथा गोधान्त्यराधाभ्या, समालास्य वयन्ते । कृतमत्र समात्यर्थं, परितोषं

वदा पुनः ॥ ८१४ ॥ वधा—यैवार्थं ज्ञानसमुक्तः, पापात्मा पापवेष्टितः । विदितोऽहं विद्यासाधि<sup>१</sup>, तेन दुष्टाभिसन्धिना ॥ ८१५ ॥  
 वधाऽन्येऽपि वत्कांश्च, महाभोहे समीपयो । ममाविर्माषित मदे<sup>२</sup>, खं ख वीर्यं महाभट्टः ॥ ८१६ ॥ अकलङ्केन मुक्त्वाहनाय इव निमये ।  
 इत्थं स्वकीकरोऽस्त्य, वैरह मावशमुषिः ॥ ८१७ ॥ अयान्मया समावातो, मत्कर्तृमनकाभ्यवा । महाभोहनेनेन्द्रस्य, सर्माप महरन्मजः  
 ॥ ८१८ ॥ स च स्वीयां यद्विं मार्गा, रागकेसरिमणिजम् । पञ्चमागुपसमुक्त, सख वल्ल कुटुम्बकम् ॥ ८१९ ॥ एतां सदा समासाय,  
 समाप्ती कार्यसिद्धये । सनद्धवदकमखरा प्राप्नो मृगेष्वये । ॥ ८२० ॥ सखत्पुनो महाभोहो, मकरन्मज्जमार्तनाम् । सोऽप्यासाय मह-  
 मोह, परं हर्षमुपमातः ॥ ८२१ ॥ तवत्वेन मुक्तः साधना, संनद्यो गयभारणा । सपत्नीऽसौ महाभोहो, जातो मेऽस्त्यन्वबापकः ॥ ८२२ ॥  
 धाक्कपरससर्थागमवृत्तयोऽन्वसन्निभः । गाढं निर्दसद्वोषः, सञ्जातोऽहं सतत्सदा ॥ ८२३ ॥ गर्वाद्दूकरसङ्काशो, वि-  
 पयाभुविकर्त्तमे । रात्रिविधं निमज्जामा, स्थितोऽहं विगतवपः ॥ ८२४ ॥ सुनूयसाऽपि कालेन, म भोगैस्त्वन्निमागतः । पृथपा-  
 नेन किं जातः, पीनागण्डोऽत्र वानरा<sup>३</sup> ॥ ८२५ ॥ मुञ्जानस्य च मे भोगान्, शर्वदे भोगवृष्टिका । सुतरामुत्तसत्प्रेय, अक्षेन  
 वदवानतः ॥ ८२६ ॥ अकल्पोपवेद्यास्ते, सखाहकल्पीर्मखाः । वदा मे विसृष्टाः सर्वे, महाभोहपनायुवाः ॥ ८२७ ॥ तवो मां  
 धारयं दद्या, मातृशुभिवेष्टितम् । न मेऽप्यस्य स्त्रेव, गणो हूटं सदागमा ॥ ८२८ ॥ पयाभिमवक्त्रमाभ्य, सपादपति मे ददा । अतो  
 पुष्पोद्बोऽहं तु, सिन्धूरस्य न सखये ॥ ८२९ ॥ तवो विमुक्तनिर्गोपराज्यकार्यो विद्यामिष्टम् । अन्यः पुरातनः क्षेप, मुञ्चानोऽहमवसिद्धः  
 ॥ ८३० ॥ वधा—यां वां नाटी प्रपन्नमि, नगरे जातमिष्टम् । कुलजाममुक्त्वां वा, यां वा कश्चिन्निवेद्येत् ॥ ८३१ ॥ तां तां सदा  
 समाकृष्य, कनेभ्यो वक्त्रवपः । जन्तःपुरे प्रवेद्याह, क्योसि निजपक्षिकाम् ॥ ८३२ ॥ युष्मत् ॥ म जानामि महापापं, नापक्षे दुष्टका-



इच्छन्म् । गणयामि न ज्ञापन्यो, वारकं मधिमण्डकम् ॥ ८३३ ॥ तवो विरजः सामन्ताः, पुरं प्रोद्देगमागतम् । वारक्षावमक्षीठेन,  
 कश्चिदा मम पान्थवाः ॥ ८३४ ॥ पथावधोऽपि संपन्ना, मम निन्वाषिषायका । गुणाः सर्वथ पूरयन्ते, सम्भन्धो नाथ कारणम्  
 ॥ ८३५ ॥ अहं तु वारक्षी कोकाब्जानानोऽप्यास्यार्हणम् । महाभोहृषशीमूढो, निन्धकर्मरतः स्थितः ॥ ८३६ ॥ आ नीचकुलसजाथा,  
 याभ्यागन्त्याः क्षिप्रो वृणाम् । सर्वाः स्वेऽन्धःपुरे क्षिमास्ता मया पापकर्मणा ॥ ८३७ ॥ अयासीथ कनिष्ठो मे, आथा नीरदवाहनम् ।  
 कल्पापरो विनीतात्मा, प्रक्यासः सारथीवथः ॥ ८३८ ॥ तवम्—मयो विरक्तैः सामन्तैः, पीरमधिमहत्तमैः । एकवाक्यवतया सर्वैः,  
 स प्रोक्षे रक्षसि स्थितः ॥ ८३९ ॥ वदुव—अगन्धगमनासक्तो, निर्मोर्धो विमूढधी । नष्टधर्मो पक्षोस्तुल्यो, य एव कुञ्जवृषभः ॥ ८४० ॥  
 सोऽयं सिंहासनसेव, सारमेवो नराग्रमः । अस्मा योग्यो न रात्र्यस्य, कुमार' वनबाहनः ॥ ८४१ ॥ अनेन हारिव रात्र्य, वस्यानां  
 बाधश्च कृतम् । न नुरयदे तवोऽस्माक, भिनाथोऽग्रमुपेक्षितुम् ॥ ८४२ ॥ अतोऽयं प्रसिदान्येयु, वृचान्धो नावगन्धवे । यावत्तावत्कुमारोऽयं,  
 राजा भवितुमर्हसि ॥ ८४३ ॥ अन्धवा नैव ते भ्राता, न रात्र्यं न च भूवथः । न वयं न यथो नैव, नगरं भो भविष्यसि ॥ ८४४ ॥  
 एव चोक्तः स वैमुक्तिमुक्त नीरदवाहनः । वयैव दृष्टव्यदृष्टः, पर्याकोऽग्रमुपागतः ॥ ८४५ ॥ इदम् मासक्तो भद्रे!, वयस्यो दुष्टचेष्टितैः ।  
 गाहमुद्रावतिष्ठिते, पट्टः पुष्पोऽप्यलया ॥ ८४६ ॥ पाप चालार्गलीमूढ, प्रवृत्ता भावस्तन्नवः । प्राचीयसी च सजाथा, भूयः सा कर्मण  
 सिन्धिः ॥ ८४७ ॥ तवम् वचन तस्य, यतोऽर्थाश्रित पुर । वक्षिते मुक्तिमुक्त्याहम मे भ्रातुरवर्कै ॥ ८४८ ॥ तवम्—एव भवतु  
 तनाकेस्यैर्वाक्यैर्वसिरेव । आगत्याह दृष्ट वदो, मक्षिरामवविह्वलः ॥ ८४९ ॥ साधवः परिर्वास, मध्ये जातो न कश्चन । मत्पथे स  
 ज्ञानो भद्रे!, येन मा भेद्वि चस्तिष्ठम् ॥ ८५० ॥ तवो नरकपाकामेक्षैर्भूया नरकोपमे । क्षिप्तोऽहं वारके सुधु!, क्षास्तिमधिमहत्तमैः

तथा पुनः ॥ ८१३ ॥ यदा—तैर्गार्थव्यामर्धपुच्छः, पापात्मा पापमेष्टिव । विदितोऽहं विनाकारिः, तेन पुष्टानिषादिना ॥ ८१५ ॥  
 तथाऽप्येवमि लज्जाते, यदा मोहं धर्मीणो । भगविर्योषिव मरे, स खं धीर्यं मदाभट्टः ॥ ८१६ ॥ अकलङ्कनं शुद्धगारलाय इव निभदे ।  
 इव जलीकृतोऽप्यन्य, दीप्य माकप्रभुभिः ॥ ८१७ ॥ अथान्यदा समयावो, यत्तदप्यनकाप्यया । यदा मोहं नरेन्द्रस्य, सर्माच मकरान्यत्र  
 ॥ ८१८ ॥ स च क्षीणो यतं सार्था, रागादेषमिमाधिषण् । यथायातुपसपुच्छ, तत्र हस्य कुटुम्बम् ॥ ८१९ ॥ यदां सदा समासाय,  
 साम्नी कार्थसिद्धये । संनद्धवद्वक्त्रवद्वदा प्राप्नो युगेष्टये । ॥ ८२० ॥ वससुष्टो भद्रामोहो, यदाभ्यजमोहनार् । सोऽप्यसाय मद्र-  
 मोहं, परं हर्षमुपागतः ॥ ८२१ ॥ यदासेन युवः साक्षस, संनयो भग्नवाराणः । सपमोऽसौ मदाभट्टो, आतो मेऽप्यन्यवभाषकः ॥ ८२२ ॥  
 यदाभ्यजमरसलसर्गकप्यसुखसोऽप्यसहिषाः । गाढ निर्दयसहोषा, सजातोऽहं यवसादा ॥ ८२३ ॥ गर्वाशुकरसङ्क्रासो, यि-  
 नेन किं साता, पीनगणवोऽप्य दानरा । ॥ ८२४ ॥ सुभ्रूयसासि कोलेन, न भोगैस्त्वमिमागावः । युवसा-  
 वदवानलः ॥ ८२५ ॥ यकज्ज्वरोपदेक्षसत्वे, क्षकाङ्ककृत्तिर्ममा । यदा मे विस्मयाः सर्वे, मद्रामोहपलायनाः ॥ ८२६ ॥ यदा मे  
 दातव्यं हृष्ट, माससुखमिषोदिवम । न मेऽप्यसर हृष्टेयं, यतो मूर्तं सदागमाय ॥ ८२७ ॥ यथायिमावकामांभ, सपारयसि मे यदा । अथो  
 पुष्पोद्भवोऽहं ह, निमूढस्य न क्षमये ॥ ८२८ ॥ यतो विमुक्तमिषोपरायकयो विद्वानिषम् । भन्तःपुरगायः सैष, सुभ्रानोऽहं ममसिद्धयः  
 ॥ ८२९ ॥ यदा—मां पां नारी प्रथयामि, नगरे जातमिषदाय । कुञ्जजामकुञ्जमां वा, यां वा कलिप्रदेवयेत् ॥ ८३० ॥ यां यो सदा  
 सपान्धव, अनेभ्यो वज्रवपया । भन्तःपुरे प्रवेदवत्, कृत्येति निषण्णिकाय ॥ ८३१ ॥ युषम् ॥ य जात्यामि मदापायं, मायेयो कुञ्जका-

ब्रह्महायकम्, विहस्य नगरं परम् । प्रायः समस्तजानेषु, भसितोऽत्र महेजया ॥ ८७१ ॥ मुक्तः सपरिवारेण, महाभोदेन सुन्दरि ।  
 कुर्यापो निजभार्यया, क क्व न सिनाटिवाः । ॥ ८७२ ॥ यथा परिभोषार्हं, सक्षया निजभार्यया । मुक्तेन बहुसो भद्रे, मोनो धोनी  
 विहसिष्यथः ॥ ८७३ ॥ यतः—गृहकोटिकसर्पभुषिकाकारभारकः । हृष्टो निधानमासाद्य, वस्त्राणो विह्वलो घृथः ॥ ८७४ ॥ एवं  
 बानन्धकाक मे, भ्रमरो गङ्गाभिनी । धर्मणापूर्णनन्यायात्यसभा मसिचम्बवा ॥ ८७५ ॥ भ्रमरश्च—भ्रमरा इव मया सार्धं, भ्रमरो  
 जन्तवत्सर्पसि । किञ्चिदे शुर्वकीमूठा, महाभोहादयसदा ॥ ८७६ ॥ पाप च प्रसन्नमूतवीथत्कर्मसिखिवा । पुनर्मन्त्रिः समीपस्था, स  
 ज्ञावा मे वयन्ते । ॥ ८७७ ॥ वरो मनुजगत्यन्तः, पाठके भरतामिधे । साकेतोऽत्र पुरे तीरो, मसिचम्बवया घया ॥ ८७८ ॥ अपि  
 जह्य नन्दस्य, सार्थाडसि धनसुन्दरी । अनिवस्यत्सुवत्वेन, शुद्धिहातयोगवः ॥ ८७९ ॥ प्रसिधिव च मे नाम, ववाऽयमनृतोद्दरः ।  
 भव क्रमेण सप्तमो, यौवन काममन्त्रिरम् ॥ ८८० ॥ इष्टः सुवर्त्मनो नाम, सुसाधुः कान्ते मया । कथापरीवर्चिणेन, क्वा मे तेन  
 देक्षता ॥ ८८१ ॥ वरो नूवो मया भद्रे, महात्माऽय सवागमः । विबोकिवः समीपस्यस्य साधोर्महात्मनः ॥ ८८२ ॥ किञ्चिन्नद  
 कमावत्तामस्तकायसिपाठकः । ज्ञातोऽत्र भावकाकरभारको प्रस्यवकादा ॥ ८८३ ॥ वसस्यनुभावेन, पुरेऽत्र विबुवाकये । भवभक्तसिधे  
 तीरो, शुद्धिकायाः प्रभाववः ॥ ८८४ ॥ वद च—भावना व्यन्यत ज्योतिष्मादिषः कल्पवासिनः । पाठकेषु वसन्त्येव, विबुवाः कुञ्ज  
 पुत्रकाः ॥ ८८५ ॥ दसाष्टपञ्चमेवास्ते, यतः पूर्वं प्रपाकम् । कल्पसाक्षाद्वीचाश्च, द्विभेदासुर्येपाठके ॥ ८८६ ॥ कल्पसा द्वादसावा-  
 सससिवा समुदाहृताः । नक्षत्रनिवासत्तासाद्वीचाः प्रकीर्तिताः ॥ ८८७ ॥ घन्नाथे पाठके भद्रे, ज्ञातोऽत्र भावनसदा । धापमेव  
 स्थितेप्येव, विबुवाः कुञ्जपुत्रकाः ॥ ८८८ ॥ वदश्च—गसस्य वद प्रकाशि, विसृवो मे सवागमः । स्थितोऽयमपि मां हित्वा, कुर्याप्यः

॥ ८५१ ॥ स च सत्तापिबो रात्रये, यन्मा नीरवभाहता । मद्याकककेनोर्ध्वमुत्थिभ्रसोपनिर्भरे ॥ ८५२ ॥ इष्टा दुस्तामिनाशन, गुष्टा  
 सुखाभिनातो गुथैः । ते यौतसैनिका कोकास्तवा किं किं न कुर्वते ॥ ८५३ ॥ अहं तु पारके वन, गुटीयमसपिच्छिसे । मूत्राश्वहरेत्प्रान्ता-  
 ञ्छुगन्तवे गर्भसन्निभे ॥ ८५४ ॥ सुधा क्षामोषयो बद्धः, परिभूवो भिगाद्विहः । स्मृतगुप्तेष्टिदैः कुट्टेबाब्देरपि काद्विहः ॥ ८५५ ॥ अत  
 कथावनस्ताने, स्वर्गोपावधीरिहः । प्राप्त काटीरसधाप, नरकेष्मिन् नारकः ॥ ८५६ ॥ मद्रामोदवक्षीभूवे, रात्र्यभेष्टे तथा मयि । यः  
 सतावो सतस्त्राप, स त्वाक्काण्डे न पार्थवे ॥ ८५७ ॥ वधाधि—ममेव विपुल रात्र्य, मासकीना विभूतयः । अगुनाज्य प्रभोष्यर  
 इति कोकेन पीद्विहः ॥ ८५८ ॥ सुककातिवधोऽभ्यभुना स्वीरक्षी गतिः । सर्वस परिभूवोऽस्मिन्नरत्ना कर्षादिहः ॥ ८५९ ॥ हुम्भ  
 निव मासकमिह, रत्नसर्पादिक सनाः । एते ह्य ह्य ह्योऽस्मीसि, बाधिवो घतमूच्छया ॥ ८६० ॥ वदेव नरकाकारे, पारके दुःखपूरिहः ।  
 वज्राहं ससिखो अत्रे, सुष्टिरं पापकर्मणा ॥ ८६१ ॥ परिभारसमेवस, मद्रामोदस्य योपयः । वधाप्यहं स निर्दिष्यः, सखापबाहवो  
 घने ॥ ८६२ ॥ कोषान्पत्येपु कोकेपु, पिषककोल्मुपिहः । यौत्रभानागुणो भित्तं, भूरिकात्मसवकिहः ॥ ८६३ ॥ अथ वीर्या क्रम  
 वीर, गुहिक्रमे विरचनी । ववो विवीर्या सा मद्य, असिदम्बवयाज्यप ॥ ८६४ ॥ गवा पापिष्ठबासायां, पुरि सप्तमपाटके । अह  
 वस्ताः प्रभाषेय, जातः पापिष्ठरूपकः ॥ ८६५ ॥ एते वज्रापसिष्ठाने, निर्दिषो ब्रह्मकण्टकेः । सतापयां प्रयासिस्तसवत् कन्तुफलीजपा  
 ॥ ८६६ ॥ वदन्ते गुहिक्रादानमूत्रविषमवया तथा । पञ्चापपुससमानमानीय क्षफटीकृतः ॥ ८६७ ॥ पुनर्नीवोऽप्रसिष्ठाने, समानी-  
 वखोऽज्यहम् । कथम गुहिक्रादानाभ्यार्तुजाकारमारकः ॥ ८६८ ॥ भूयः पापिष्ठबासायां, भीवोऽहं दुर्यपाटके । ववोऽप्यानीय पिष्टिवो,  
 मार्जारपाकारमारकः ॥ ८६९ ॥ सर्वेवपिरुपाधि, अनयन्ता अहंभूहः । सुभक्षसापयिस्वार्, धर्षयन्ता क्षणे क्षणे ॥ ८७० ॥ वदस

प्रकाशो हन्त मादृशम् ॥ ९०८ ॥ सद्गोपेनोक्त—आह पातयित्वा ताव', सन्धक् सकृद्विषोऽप्यधिः । ततो विद्वाधिवस्तेन, सद्गोपेन  
 नरेभ्यः ॥ ९०९ ॥ तद्यद्—यारित्रधर्मरुधेन, वचनायस्य मध्विषः । प्रह्वितो मात्समीपेऽस्मी, सन्धमर्धनतामकः ॥ ९१० ॥ तेन  
 बोक्त—विद्येयं नीयतां देव', प्रागृष्ट कन्यकाऽनया । यस्य सद्यारिजीवस्य, येन गोत्रोऽस्य जायते ॥ ९११ ॥ सद्गोष प्राह नाद्याधि,  
 प्रकाशोऽस्मा महत्तम' । नयने हन्त विद्यायास्तन्नाकर्षय कारणम् ॥ ९१२ ॥ स हि सद्यारिजीवकां, मुग्धमुद्धिर्न मोत्स्यते । विशेषतस्त  
 वद्यावत्सामान्येन प्रपत्स्यते ॥ ९१३ ॥ एव च स्थिते—यावन्न दारिद्र्यक रूप, वदानेनावधारितम् । तावन्न मुक्त्यते दातुमेवा वस्यै मुक्  
 न्यका ॥ ९१४ ॥ अद्यावत्कुलसीको हि, कुर्यादस्याः परामर्शम् । ततः स्माधिवसतापो, मादृशां धर्मिणिचकः ॥ ९१५ ॥ ततो गच्छ  
 दिना विधां, त्व दावत्स्य सन्निधौ । कालेन मूयसा रूप, मोत्स्यते हि स दावकम् ॥ ९१६ ॥ तद्यद्—यदा स्यात्तेन विचार्य, रूप  
 तव परिरुद्धम् । तदाऽद्भुतागमिष्यामि, विद्यामाहाय वेऽन्तिके ॥ ९१७ ॥ सदागमस्य सानाप्य, महाभोहाविधानम् । यथा सद्यारि  
 जीवस्य, सुकलादाविदेवन्म् ॥ ९१८ ॥ देवे आभिमुखीभावस्तस्य दर्शनकान्धया । विद्याया रक्षितस्मरि, गच्छवत्तन्न वे गुणाः ॥ ९१९ ॥  
 मुत्तमम् ॥ ततो यदाविद्यतार्यो, यथाऽऽज्ञापयति प्रभु । इत्युक्त्या प्रस्थितत्पूर्व, मात्समीप महत्तम ॥ ९२० ॥ इत्यग्राह तदा मद्दे', नगरे  
 जनमन्दिरे । सुदुरानन्दनन्दिन्योर्जायो नामा विरोचनः ॥ ९२१ ॥ तव सप्राप्तवारुण्य, कानते विद्यननन्दने । गवस्तन्न मया दृष्टो,  
 धर्मयोपो मुनीश्वरः ॥ ९२२ ॥ इत्यत्र मे तदा दृष्ट्या, त्वते कर्मपद्धतिः । महाभोहादयो आवास्तान्तो मावशान्तवः ॥ ९२३ ॥ तद्यद्  
 —प्रथम्य व महाभगा, निषण्णः सुकभूषले । शायोऽह मद्रक्तेन, ज्ञानालोकेन धीमता ॥ ९२४ ॥ किं च—कुर्वता मानसानन्दमसु  
 वक्ष्यमाणमम् । ततो मे कर्तुमारब्धा, मुनीना धर्मविधाना ॥ ९२५ ॥ कथम् ?—“मनुजजन्य जगत्प्रसिद्धुर्लभ, अितमव पुनरत्र विशेषतः ।

काकवापनाम् ॥ ८८९ ॥ वरो मर्दिसंपन्नः, साध पन्थोपम मुदा । मुस पथ्य मुजानः निःशब्द पार्श्वदृष्टया ॥ ८९० ॥ इदं  
 गुहिकं वस्त्रा, मार्गया दुग्धविषया । पुटेष्ट भानवावासे, समानीतः पुनस्तथा ॥ ८९१ ॥ वत्रानि पपुरुष्टम बनिष्ठ दिपद्वयम् ।  
 मार्गं वस्त्राः सुकवेन, जालोष्ट वापनामकाः ॥ ८९२ ॥ समाप्तपुत्रभारन, सुन्दरास्त्रयो मुनीधराः । एता मया सर्वान्तरात्मन आस  
 सहस्रमाः ॥ ८९३ ॥ विविध पुनरप्यस्य, सम्बन्धि क्षानपस्यम् । जालभाद वदा मर्द', अमया भाववर्द्धितः ॥ ८९४ ॥ एतद्यत्न  
 मार्गेन सूक्ष्मेष्ट विबुधाकवे । मर्द्विर्द्विबुधस्तत्र, जालो व्यन्तराष्टक ॥ ८९५ ॥ न नीचा विस्मृत्यन, मया एत सदानम् । गदम  
 मानकवासे, पुनत्र प्रविशोक्ति ॥ ८९६ ॥ एव विचराजन्ते, मरुवके पुनः पुनः । तथाजन्तव काञ्चन, मया भायानिघातः ॥ ८९७ ॥  
 अथ सदागमो मर्द', मर्दासा प्रविशोक्तिः । अनन्तराष्टक एष्टोर्द्धि, विस्मयम पुनः पुनः ॥ ८९८ ॥ गुप्तम् ॥ निरपुष्ट प पुन  
 मर्द्व, मरुवक निरप्यम् । आसाविचः कवचिष्ट, पुनरप्य सदानम् ॥ ८९९ ॥ मया—अनन्तराष्टकः सप्तमः, भाववर्द्धित मुवाचन ।  
 प्रत्ययो मरिचपत्र, एत एष्टः सदानम् ॥ ९०० ॥ विबुधोपम मर्दाभागा, भूयो भूयोऽन्तराष्टक । भान्ताः समस्तान्तराष्टक, कृता नाना  
 विवस्वताः ॥ ९०१ ॥ कृतीर्द्विकवचिष्टा, सदानमविष्टकः । अनन्तराष्टकः सप्तमो, मरुवक निरप्यम् ॥ ९०२ ॥ अन्तराष्टक  
 मरुवके मयाकिते । कविदीर्घो कविभूषा, सजाला कर्मणः किष्टिः ॥ ९०३ ॥ कविष्ट प्रवका जाला, मर्दागोद्विद्वत्तमः । कविस्त  
 रालागो जाल', प्रवकाविष्टारकः ॥ ९०४ ॥ एतन्मानन्तराष्टकविष्टारकस्यासमागतः । अथ सदानमकाष्टकाव यद्यभिषेप म ॥ ९०५ ॥  
 सा विविधिमर्द्वीमूला, विचपुष्टिमर्द्वी । एतन्मावसर्त काला, प्रविष्टाः स मरुवकः ॥ ९०६ ॥ कव्यानेन सद्रोभो, मत्सर्मापागमे  
 क्कया । भार्ये । विष्टाप्यवां देवः, साव्यत गन्तव्यं मया ॥ ९०७ ॥ अष्टमया पूर्वविष्टो, देवस्याप्य परोक्षम् । सोऽपुना वधवे क्षमः,

प्रकाशो ह्यत्र मादृशाम् ॥ १०८ ॥ सद्रोषेनोक्त—आर भारुषिय याव । सन्मक् सकषिणोऽपधिः । वतो विष्ठापितस्तेन, सद्रोषेन  
 नरेभ्यः ॥ १०९ ॥ वरम्—आरिजधर्मरूपेण, वरनायस्य मभिष्टः । प्रक्षिणो मत्समीपेऽस्मी, सन्मग्वर्त्तननामकः ॥ ११० ॥ तेन  
 योक्त—विधेय नीयतां देव । प्राध्व कन्यकाऽनया । सस्य ससारिवीवस्य, येन वोषोऽस्य जायते ॥ १११ ॥ सद्रोषः प्राह नाथापि,  
 प्रकाशोऽस्या महत्तमः । नयते ह्यत्र विद्यायास्त्राकर्णय कारयम् ॥ ११२ ॥ स हि ससारिवीवसा, सुगन्धुद्विर्न मोत्सवते । विशेषवक्त  
 वक्तावत्सामान्येन प्रपत्सवते ॥ ११३ ॥ एव च स्थिते—यावत् आरिषिक रूप, वरानेतावधारितम् । तावत् तुभ्यते ह्यनुमेया तस्मै सुक-  
 न्यका ॥ ११४ ॥ अन्नावकुम्भीको हि, कुर्वायसाः पयमवम् । वतः स्याद्विचलतापो, मादृशो दक्षिणैश्चकः ॥ ११५ ॥ वतो गच्छ  
 विना विद्यां, स्व तावत्स्य सन्निधौ । कालेन नृपसा रूप, मोत्सवते हि स तावकम् ॥ ११६ ॥ वरम्—यदा स्यादेन विष्ठाव, रूप  
 वर परित्युज्यम् । वदाऽहभागमिव्यामि, विद्यामायाय देऽन्विके ॥ ११७ ॥ सदागमस्य सानाप्य, महामोहाद्विद्यानयम् । वया ससारि  
 जीवस्य, सुप्रकाशविशेषनम् ॥ ११८ ॥ देवे चामिमुक्तीमावकास्य वर्त्तनकान्यया । विषया रक्षितस्यापि, गच्छवत्तत्र वे गुणा ॥ ११९ ॥  
 गुणम् ॥ वतो वदामिषलार्थो, वदाऽऽप्यपवसि प्रभुः । ह्युक्त्या प्रस्तिवत्सूर्ण, मत्समीप महत्तमः ॥ १२० ॥ वरम्—वदा मदे । नगरे  
 जनमन्दिरे । सद्रुरानन्दनन्दिन्योर्जातो नामा विरोचनः ॥ १२१ ॥ वतः सप्राप्तवारुण्यः, कालने चित्तनन्दने । गवत्तत्र मया दृष्टो,  
 धर्मपोषो मुनीभ्यः ॥ १२२ ॥ वरम् मे वदा अस्मा, वर्त्तते कर्मपदधिः । माहामोहादप्यो व्याघास्तनवो भावस्तत्रवः ॥ १२३ ॥ वरम्  
 —प्रणम्य व महामता, निपण्णः सुखभूयते । वतोऽह मद्रक्त्येन, ज्ञानाद्विकेन भीमया ॥ १२४ ॥ किं च—कुर्वता मानसानन्दनम्  
 वदापोषमम् । वतो मे कर्तुमारब्धा, मुनिना धर्मवैश्रवता ॥ १२५ ॥ कथम् ?—‘‘मनुजभक्त्यः अयत्सद्विदुर्ध्वम्, भिन्नमव पुनरत्र विशेषतः ।

काकपापवाम् ॥ ८८९ ॥ यतो महर्दिसपत्रः, साध पत्न्योपम मुष्टा । मुष्ट पथ्य मुखान , भित्थोन्द् पारगाढया ॥ ८९० ॥ भरन्त  
 गुहिकां इच्छा, मार्गया ह्यष्टभियया । पुष्टेद् मानवावासे, सप्तानीयः पुनस्तथा ॥ ८९१ ॥ तत्रास्ति यत्पुष्टस्य धर्मिणः त्रिपद्वर्त्तनम् ।  
 मार्गो वक्राः सुवर्त्तेन, जातोऽयं पत्न्यनामकः ॥ ८९२ ॥ सप्तमपुत्रमावत, सुन्दरास्त्र्यो दुर्नाथः । दृष्टा मया गर्भोत्पन्नस्य जाय  
 सदागमः ॥ ८९३ ॥ भिक्षित पुनरप्यत्र, सम्बन्धि कान्तमस्तकम् । जातमाद यदा यद् , भयत्ना भारदर्शितः ॥ ८९४ ॥ तत्रास्ति  
 मावेत, मूर्खोऽयं विजुषाकम् । महर्दिविजुषकस्य, जातो व्यन्तराष्टक ॥ ८९५ ॥ न नीतो विस्मृतस्त्वन, मया त्व सदागम । मग्न  
 मानवावासे, पुनत्र पक्षिबोकिव ॥ ८९६ ॥ एव विचरताऽनन्ते, मय्येके पुनः पुनः । तृणाऽनन्तन कावत, मया भावनिपागतः ॥ ८९७ ॥  
 मय सदागमो मदे , महत्तमा पक्षिबोकिवः । अनन्तवाद्य द्योऽर्थे, विस्मृतस्य पुनः पुनः ॥ ८९८ ॥ गुणम् ॥ विस्मृत य पुन  
 भन्ति, मय्येक निरन्तरम् । आसाक्षितः कथञ्चिद्, पुनरेव सदागमः ॥ ८९९ ॥ यतः—अनन्तवाद्यः सप्तमः, भारकोऽयं सुवोचन ।  
 इत्यतो पक्षिरूपम्, तत्र दृष्टः सदागमः ॥ ९०० ॥ विमुच्येव महामाण, भूयो भूयोऽनन्तरवत् । भान्तः समस्तस्त्वानु, कृता नाना  
 विवन्तनाः ॥ ९०१ ॥ कुटीर्विकवसिमाह, सदागमविदूषकः । अनन्तवाद्यः सप्तमो, मय्येक निरन्तरके ॥ ९०२ ॥ अन्यथ भवत्यत्र,  
 मय्येके मनसिष्ठे । कश्चिदीर्घा कश्चिद्भूषा, संजाता कर्मणः शिष्टिः ॥ ९०३ ॥ कश्चिद् मयया जाता, महयोद्गारितयायवः । कश्चित्स  
 दानमो जाता, प्रयत्नयन्निवारकः ॥ ९०४ ॥ तत्त्वमानववाद्याभिर्षोढव्यासमागतः । अथ सदागमक्यादज्जार्त्तं पक्षिर्बोधेय म ॥ ९०५ ॥  
 सा किञ्चिन्निर्मलीमूला, विचरुचिर्महादधी । तत्त्वमानसर्द प्राप्ता, पक्षितः स महत्समः ॥ ९०६ ॥ उक्तमानेन सुद्वेषो, मत्समीपागमे  
 पृथगा । मार्गः सिद्धात्पथां देवः, सांप्रय गन्धर्वां मया ॥ ९०७ ॥ पक्ष्यया पूर्वनिर्दिष्टो, देवस्याम परोक्षम् । सोऽनुना वचने सप्तः,



नम्रानकरणम् । गुरवः केवलं वक्तां, भवन्ति सङ्कारिणः ॥ ९३३ ॥ तथाहि—अकलङ्के यथा छप्ते, बोधार्थं मे सकोविदे । न भवान्  
 मनोत्तम, यथा यत्नस्तदैरसि ॥ ९३४ ॥ यतः परं पुनर्भाषोऽन्यथाया वयान्ते । सव्यागमेन सम्बन्धः, भवाम्यन्यथाप्यभूत् ॥ ९३५ ॥  
 यतो यथा यथा पुस्तो, पाठवी योग्यता भवेत् । यथा यथा भवत्यस्य, तावानेव गुणोद्भूतः ॥ ९३६ ॥ यतः भवान्मात्र मे, सूक्ष्मज्ञा  
 नविबर्तितम् । धर्मभोगोपदेशैस्ते, सज्जव योग्यतातुल्यम् ॥ ९३७ ॥ अन्यथा—यत्नोपमपुण्यस्त्वे हि क्षीये कर्मस्त्वितेस्तथा । पृथिवर्भो  
 मया दृष्टः, सामान्याम विसेयतः ॥ ९३८ ॥ पाठिगानि यथावेक्षाप्रदानि नियमास्तथा । केचित् यथा मया भद्रे, भवाम्यनुदुर्दिना  
 ॥ ९३९ ॥ यतस्तदनुभावेन, सत्सुरे विदुषाभ्य । कल्पवासिषु नीचोऽह्, गुहिकादानपूर्वकम् ॥ ९४० ॥ अथ सौधर्मकत्वेऽह्, भास्व  
 राकारधारकः । समुत्थितः क्षणार्धेन, क्षयनाथश्च कीदृशम् ? ॥ ९४१ ॥—विषयस्य ह्यसत्पूरीरश्चित् स्वर्गप्रेक्षकम् । कोमलमलसत्वेकक  
 रित्वं चिन्तनन्तम् ॥ ९४२ ॥ सुमनोग यत्समूपाकसद्भावोऽसम्भरम् । विष्वास्तु कथयोद्योचदृष्टिगोचरवन्तुरम् ॥ ९४३ ॥ शुभम् । यत्र  
 बोद्धव्यमानेन, बाहुबुधनेन विक्रियतः । किरीटकटकनूरहाट्टकण्डकमूषिणः ॥ ९४४ ॥ भूषाहारागवान्मूकजनमाकाशिराजितः । वपस्विष्टः  
 क्षणान्तातो, योसिवास्त्रिकम्पयः ॥ ९४५ ॥ यतोऽह् अथ नन्देति, अथ भद्रेति भाषिणः । सकेक्षा कलतालोका, वोढव्योचनधार  
 ॥ ९४६ ॥ सुबन्धो मां सतोद्धारिरथ्यने कर्षयेद्यथैः । देवोऽसि स्वासिकोऽस्माकमसि किङ्करतां गताः ॥ ९४७ ॥ शुभम् ॥ यतोऽह् विक्रयो  
 ह्युद्धोचनः पर्यश्चिन्तयम् । तां समुद्रि विजोष्येह, किं मया सुकृतं कृतम् ? ॥ ९४८ ॥ यतः प्राधुरभूषणान्, विमल विमलेक्षणो ।  
 मया विरोधनायस्याऽनेन सर्वोऽप्यवशिष्टा ॥ ९४९ ॥ भवान्तरे समायतो, भव्यमसद्यमानो । यौ च दृष्ट्वा मया द्वाव, माहात्म्यमन  
 योरितम् ॥ ९५० ॥ यतस्तौ पूर्ववद्भूते, प्रसिपत्नी क्षणान्तरौ । क्व चोत्थाय निगद्येह, कर्तव्य विदुषोऽपि तम् ॥ ९५१ ॥ तथाहि—

“यद्विहमाप्य नरेण सुममसा, विहयनीयमवोऽपि परं पश्यम् ॥ ९२६ ॥ इतरथा पुनरेव विरन्तके, निषक्षितस्य सुभीममवाप्यके । कुञ्चक  
 “सम्पत्समुत्कृष्टकायन, मयु दिनाऽद्भुतकुःकारपरपरा ॥ ९२७ ॥ इत्यनेन अनेन विज्ञानवा, कुशलकर्म भवोद्दिष्टारकम् । इह विधेयमहो  
 “विकल्ब सुधा, न करणीयमिह तरलभक्तम् ॥ ९२८ ॥” अत्राखरे प्रलक्षीमूढो मे वस्य मुनेः समीपे भूयोऽपि भगवानय सदागामः,  
 सद्यो बुद्ध मया वस्य मुनेर्बलन, अमिहितं च—यन्मया कर्तव्यं ददासि यन्मु भगवान्त्वा, मुनिनोर्ध्व—अत्राकल्पय “अवधीरणीयो भवता  
 “अवमप्यञ्च आरुचनीयो विहीनपगोद्वेषमोहोऽनन्तज्ञानस्यनवीर्यान्तर्परिपूर्णः परमात्मा बन्धनीयास्तदुपदिष्टमागवर्तिनो भगवान्त्व  
 “साधवः प्रसिपयन्त्वानि जीवादीश्चपुष्पपापास्तत्संस्तरनिर्धराश्च यमोक्तकल्पानि नर वस्त्वानि सर्वथा पेष विनश्यन्तासुव नेय वदद्वा  
 “द्वीमादेन अतुष्टेयभारमद्विह वपयेय कुसकातुमपि कुसलं विधेय निष्कलङ्कमन्यःकरण इय कुविकल्पकल्पनास्त आदसेय भगवद्वचनसारं  
 “विशेष एगाविद्योपबन्ध केच सुगुहसदुपदेशमपय देय सख्य सदावरणे मानस अवगोय दुर्जनप्रणीतकुसलवचन निनेय महत्पुरुषवर्गा-  
 “मय्ये स्वरूप ज्ञेय सिध्यकम्पयिष्येने”सि एव ज्योपक्षिषति मयुरमायिषि अगावसि प्रसोपयवपक्षिनि सप्रामोऽसौ सम्पददर्शननामा मह  
 वमाः विवोकिवो दुर्नेष्टकर्मप्रतिपन्नैवद्वारेणासौ मया वतः सखाय मे वय्य मुनिवचने स्वरूपा अद्यान प्रतिपन्नोऽसौ द्विषय शुशुब्धता मह  
 वम, अमिहितो मुनिवरः—अवाकापयसि नायस्यदेवाह करिष्ये, वयोऽमिबन्ध च मुनिवर्त गवोऽह स्वमवने । वतः प्रभृति जातोऽह  
 सम्पत्पुर्जनसंयुतः । वस्त्वमद्यानपूषात्मा, विविधज्ञानवर्जितः ॥ ९२९ ॥ वदेव सदा निःशब्द, यज्जिनेन्द्रैः प्रवेक्षितम् । पदाबन्धमाश्रयुष्टो  
 ऽह वहा जातो मयन्ते । ॥ ९३० ॥ सदागामो हि विज्ञान, सप्तावेदपठे वदा । केवलं सूक्ष्ममावेपु, न मे ज्योपः प्रवर्तते ॥ ९३१ ॥  
 न सखायाकाया सूक्ष्मविषिच्छान्तरेवतः । गुरवः पदुजावोऽपि, दिना मे सिधयोऽवयाम् ॥ ९३२ ॥ वतः—सद्योऽवयदैव पार्श्वदि, अद्या

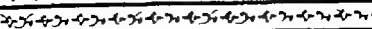
नम्रातकारणम् । गुरव केवलं वक्ता, मन्त्रिण सहकारिणः ॥ ९३३ ॥ यथाहि—अकल्हे तथा कमे, बोधार्थ मे सक्तेविदे । न भयान  
 मनोत्पन्न, तथा मन्त्रयवैरुषि ॥ ९३४ ॥ वरः परं पुनर्जयोऽन्तस्वाराय परानने । सदागमेन सम्बन्धः, भयान्तरम्यस्ययात्यभूत् ॥ ९३५ ॥  
 भवो यथा यथा पुंसो, यावती बोधवता भवेत् । यथा तथा भवत्यस्य, साधनेव गुणोद्भवः ॥ ९३६ ॥ भवतः भयान्तमार्थ मे, सूक्ष्मम्रा  
 नविबर्जितम् । परमर्थापवादोऽसौ, सञ्जात बोधवतागुणम् ॥ ९३७ ॥ कान्यक—परमोपमपूजकस्ते सु क्षीये कर्मस्थितेऽपि । गृहिधर्मो  
 मया दृष्टः, सामान्यात्त्र स्थितेयतः ॥ ९३८ ॥ पात्रिवाप्ति यथादेशाद्व्रतानि नियमाक्याया । केचिद्यथा मया भदे, भयान्तस्त्वुद्दिना  
 ॥ ९३९ ॥ वरवद्वत्तुभावेन, सत्तुरे विपुलाभवे । कल्पवासिषु नीयोऽस्तु, शुद्धिकादानपूर्वकम् ॥ ९४० ॥ भव सौधर्मकस्तेऽहम्, मास्व  
 राकारभारकः । समुत्तिमवः क्षणार्धेन, क्षयनायव कीदृशम् ? ॥ ९४१ ॥—विषयपत्त्यङ्कसपूरीरचित स्पर्धयेष्टकम् । कोमलानलसबलच्छा-  
 दिव चिच्छतन्त्रतम् ॥ ९४२ ॥ सुमनोमान्धसङ्गपञ्चदशानोऽसुखरम् । विष्णोःसुकवरोजोऽष्टदिगोऽवरम् ॥ ९४३ ॥ शुभम् । वर  
 योऽहम्भानेन, प्राप्नुयामेन विसिखः । किरीटकटकेषूपरारकुम्भकमूर्धयिखः ॥ ९४४ ॥ भूपाङ्गमरातन्त्रकनमाकाविराजिखः । उपविष्ट  
 क्षणान्धवातो, योसिवाक्किमिक्पुषः ॥ ९४५ ॥ वयोऽह्म त्वय नन्वेहि, त्वय भद्रेसि मारिणः । सलेका कलनाकोका, कोकलोऽनन्धारवः  
 ॥ ९४६ ॥ सुवन्तो मा भतोऽहस्त्रिचदौः कर्मयेष्टाहो । देवोऽसि स्वासिकोऽस्माकमिहि किङ्करतां गताः ॥ ९४७ ॥ शुभम् ॥ वयोऽह्म विस्मयो  
 स्तुभसोऽनतः पर्यधिभववम् । तां समुद्धि विधोऽन्येव, किं मया सुष्ठव कृतम् ? ॥ ९४८ ॥ वरः प्रादुरभूच्छान्त, विमल विमलोऽप्ये ।  
 मया विरोधनादस्याऽन्तेन सर्वोऽप्यारिवा ॥ ९४९ ॥ अथान्तरे समायावी, सहस्रमसद्वप्यायी । वी य दृष्ट्वा मया ज्ञात, साक्षात्तममन  
 योरिदम् ॥ ९५० ॥ वरवद्वो पूर्वजमुदे, मरिपणी स्वयम्भवौ । क्व वोरथाय निराधेय, कर्तव्यं विपुधोऽपिदम् ॥ ९५१ ॥ यथाहि—

“वद्विद्भाष्य नरेण सुमेधसा, विद्वदनीयमद्योऽपि परं पदम् ॥ ९२६ ॥ इतरथा मुनोरेव निरन्तरे, निषक्षितस्य सुभीममवधाम्बके । कुञ्जान-  
 “सम्भवमुत्कृष्टकञ्जावन, ननु विनाऽमुच्छु यत्परं पथा ॥ ९२७ ॥ इदमवेद्य जनेन विज्ञानया, कृत्तककम भवोदधिधारकम् । इदं विधेयमदो  
 “विच्छेद मृधा, न कटणीयमिदं नरकन्मकम् ॥ ९२८ ॥” अत्रान्तरे प्रत्यक्षीभूतो मे तस्य मुनेः समीपे भूयोऽपि भगवानय सदागम ,  
 ततो मुहं मया तस्य मुनेर्बन्धन, अमिद्विद न—यन्मया कर्तव्यं तद्वामिदन्तु भगवन्तः, मुनिनोक्त—भद्राकभय “अवधीरणीयो भवता  
 “महप्रपञ्चः आपावनीयो विधीनरागोद्वेषमोहोऽनन्तकालदर्शनवीर्यान्तर्पारिपूर्वः परमात्मा बन्धनीयास्तदुपनिष्टमागवर्तिनो भगवन्तः  
 “साधवः प्रक्षिपयन्मानि जीवाकीर्तुष्यपापासहसकरनिबटुबन्धनमोक्षज्जगानि नर वरुणानि सर्वथा वेय विनश्यन्तास्तव नेय वरुणा  
 “द्वीपान्तेन अमुतेयमात्मद्विद वपन्नेय कृत्तकानुबन्धि कृत्तक विधेय निष्ककङ्कमन्तःकरण इय कृदिकल्पबन्तजात अवसेय भगवद्वचनसारं  
 “विशेष रागादिदोषदुर्गन्धं केय सुगुरुसदुपदेशभेदार्थं वेय सख्य सदाचरणे मानस अवगोय दुर्जनप्रणीतकुमलवचन निनेय भद्रगुरुपदग-  
 “सन्धे स्वरूप स्नेय निष्पकमन्त्रिणेने”<sup>१</sup>सि एव शोषमिद्विद मसुरमायिणि अगावति धर्मशोषवपक्षिनि सप्ताप्तोऽसौ सन्ध्यादर्शननामा भद्र  
 चमः विद्योक्तितो दुर्मेवकर्मप्रान्निभेदद्वारेणासौ मया तवः सन्धाव मे तत्र मुनिवचने स्मरय्या भव्यान प्रक्षिपकोऽसौ द्विदपशुमुत्सा भद्र  
 चमः, अमिद्विदो मुनिवरः—मदाज्ञापमसि नाथखदेवाद् करिष्ये, तवोऽभिवन्द्य त मुनिवर्त गवोऽह स्वमयने । तवः प्रभृति जावोऽह  
 सन्ध्यादर्शनसमुदाः । तस्मिन्महानपूजाराया, विशिष्टज्ञानवर्जितः ॥ ९२९ ॥ तदेव सख्य निःसङ्ग, यद्विनेन्द्रेः प्रवेदितम् । एसावन्मात्रमुद्यो  
 ऽह तदा जावो भवन्ते । ॥ ९३० ॥ सदागमो द्वि विज्ञानं, स्वमावेदयते तदा । केवक सूक्ष्मभावेयु, न मे शोष प्रवर्तते ॥ ९३१ ॥  
 न संजावाख्या सूक्ष्मविशिष्टज्ञानदेवकः । गुरवः पटुकायोऽपि, विना मे विजयोभ्ययात् ॥ ९३२ ॥ यतः—स्वयोगयतैव पार्श्वद्वि, भवता

सत्साधि सपत्नी, ममेमौ स्मृतिगोचरो । मुक्त च सुभिरं विभ्य, सुखं यत्र मयाऽनुभूम् ॥ १७० ॥ एवो मनुजगतन्त्रः, पाटके काष्ठने  
 पुरे । आगतस्य महामोहदोषघो विस्मृताभिधौ ॥ १७१ ॥ इत्थं सङ्गाधिका धारा, दृष्टो दृष्टः पुनः पुनः । सदागममुखो मदे, नष्टो  
 उद्यो मे महत्तमः ॥ १७२ ॥ यत्रः—विना विरहिभावेन, सङ्गाधीतेषु धामसु । भवानभात्रसदृष्टो, जावोऽह्म भावकः पुरा ॥ १७३ ॥  
 तथा—अनुत्तारुपरोधाद्या, कश्चिच्छ्रद्धानसंयुतः । जातः भमणधेयोऽह्म, विरला रक्षितो हृदि ॥ १७४ ॥ अन्यथा—सङ्गाधीता मया  
 धारा, यत्र यत्र विजोकिव । महत्तमः पुनर्दृष्टवान् यत्र सदागमः ॥ १७५ ॥ गृहिधर्मोऽपि वभूले, दृष्टः सामान्यरूपवः । कश्चित्क-  
 शिप्त दृष्टोऽपि, स महत्तमपार्थगः ॥ १७६ ॥ सम्यगवर्त्तनमुखौ च, गृहिधर्मसदागमौ । सामान्यरूपौ यौ मदेऽस्तङ्गवाया विजोकिवौ  
 ॥ १७७ ॥ तदेव बहुस्रो दृष्टाकयोऽपि बरवान्यथाः । जातान् सुखदात्मन, विमुक्तान्तरान्तरा ॥ १७८ ॥ अन्यथा—दृष्टवान् केवलो  
 उद्योपोऽनन्तवायाः सदागमः । न तन्नेन विना दृष्टः, स सम्यगवर्त्तनः कश्चित् ॥ १७९ ॥ अन्यथा—यत्र यत्र समीपस्य, सजावो मे  
 महत्तमः । यत्र यत्र वयसो मे, जातः पुण्योदयः पुरा ॥ १८० ॥ तेन चोत्साहिताः सर्वा, यदेष्टा भोगसम्पदः । वसवो मानवावासे,  
 पुरे च विमुक्तास्तमे ॥ १८१ ॥ तथा—स्थिता कर्मस्थिर्निर्दम्बी, भीषमीवाह्य शत्रवः । अन्यत्कीर्त्ताः स्थिता मदे, महामोहावयवस्थया  
 ॥ १८२ ॥ यत्र यत्र पुनर्जाताः, प्रबला भावसश्रवः । मय पुण्योदयो नष्टस्तत्र यत्र वयानने । ॥ १८३ ॥ नष्टे च यत्र ज्ञाता मे,  
 सर्वा इत्यपरपरा । भमिचोऽनन्तकार्त्तं च, भवितव्यतया तथा ॥ १८४ ॥ तथा—स्थितिश्रौणीयसी जाता, कर्मणः छिद्रघां गतम् ।  
 मानस च पुनर्जात, वस्त्रप्रधानवर्जितम् ॥ १८५ ॥ अथ एवोत्कटा जाता, यत्र यत्र गह्वरमः । ये मयस्तत्र वदेवौ, दूरीभूतौ सुखा  
 नभवौ ॥ १८६ ॥ विधेयः पत्नीपोऽह्म, कष्टान्ते मे विनाशः । न विनाशः कष्टान्ते मे विनाशः ।



विविधरससुदीपिस्त्रिचिह्ने, शिकपनीरजजण्डमुमचिह्ने । गुरुनिवन्धपयोधरआकशिः, सह वपूभिरमाद्रि सरोनरे ॥ ९५२ ॥ वरत्रु  
 निर्मलदाटकनिर्मित, विमलरत्नविपश्चिह्नुमिम् । कपु सलीलमवाप्य क्षिणाकप्य, सुदृढभाकि कव विनवन्धनम् ॥ ९५३ ॥ अप सुनि  
 मंलपत्रकसञ्चयं, यविमव क्षितमाधिवह पुरम् । गुलककारि रसेन तु वाधिव, कपु विधाप्य मनोरमपुच्छकम् ॥ ९५४ ॥ वरो यथेष्ट  
 क्षम्यानितमेलुद्विवाञ्जयः । सागरद्विचय वज्र, किञ्चिन्न क्यवस्थितः ॥ ९५५ ॥ वरन्ते मानमावासमानांय विद्विचय । आर्भटोद्  
 कलभ्याकम्, सुदुर्मदनरेणयोः ॥ ९५६ ॥ इवम्—वन्नायावस्य चार्धद्वि, मम वो चारुपाथयो । नागतो वित्सूवत्सेन, मद्रवमसरा  
 गनौ ॥ ९५७ ॥ सुवरां वित्सूवो मदे, न दृष्टम तथा मया । गृध्रिपमो यवछाभ्या, स निमुक्ये न दृश्यते ॥ ९५८ ॥ मार्धानवास  
 नावन्त्यात्, केवल पापमीरकः । क्षिणो मद्रकभावेन, वन्नाह इक्षगामिनि । ॥ ९५९ ॥ पुनस्तदनुभावेन, सत्पुरे विमुपावये । ययोनि  
 मारिषु नीणोद्भ, गुहिकादानपूर्वकम् ॥ ९६० ॥ क्षिणस्तद्वारि सन्धोगसम्पत्तिधीषितेन्द्रियः । सुधिर कि तु वो दृष्टो, मद्रामोदपरिमदो  
 ॥ ९६१ ॥ सञ्जावम वयोर्मूयः, यक्षपाथो हृदयत् । निवरां वित्सूववैवो, मद्रवमसदागमौ ॥ ९६२ ॥ वरो यीज्यापसाने वां, पिर्वाय  
 गुहिकां पुनः । पञ्चाक्षपहुसक्ताने, मीणोद्भ कष्टया वया ॥ ९६३ ॥ विद्विरो हर्तुंराकारभारकः केसिरीक्षया । वरः परं पुनर्मूति,  
 भसिणोर्ध्वमिर्वर्कम् ॥ ९६४ ॥ नानाविधेषु ज्ञानेषु, भ्रमयित्वा क्षमायया । क्षानीय मानवावाप्त, पुरे क्वाप्तिव्यनानामके ॥ ९६५ ॥  
 पराया वसुधन्वोम, सुजुर्वसिधनामकः । कवोद्भ कवसत्कर्मा, राजपुत्रो मनोरमः ॥ ९६६ ॥ वर यासाय दानत्याप्य, सूरि स  
 वसेदक्षकम् । दृष्टाविमो पुनर्मदे, मद्रवमसदागमौ ॥ ९६७ ॥ वरः परिचयाद्याभ्यां, वन्द्युवाः पुनमम । सद्रवः सुद्रवाभासा, मद्रा-  
 मोदावसदा ॥ ९६८ ॥ क्षमाहमतयोः प्राप्य, माहात्म्य यावन्नाधिधि । द्वितीयकस्ते संप्राप्तः, सत्पुर विमुपावये ॥ ९६९ ॥ वर-



स्वस्मापि सपत्नी, ममेनी स्मृतिगोचरी । मुक्तं च सुभिरं विभ्य, सुखं च मयाऽनुभूम् ॥ ९७० ॥ ततो मनुजगलन्तः, पाटके क्वाञ्चने  
 पुरे । आगतस्य महामोहरोपघो विसृष्टाधिमौ ॥ ९७१ ॥ इत्थं सङ्गाधिका भारा, दृष्टो दृष्ट पुनः पुनः । सदागममुघो भद्रे !, नष्टो  
 उत्तौ मे महत्तमः ॥ ९७२ ॥ यतः—विना विरहिभावेन, सङ्गादीयेषु वामसु । ब्रह्मानन्तायसमुष्टो, जातोऽहं भावकः पुरा ॥ ९७३ ॥  
 तथा—अशुल्कादुपरोधाद्या, कश्चिच्छृङ्खलानसमुत् । जातः भ्रमणवेपोऽहं, विरला रक्षितो हसि ॥ ९७४ ॥ अन्यथा—सङ्गादीया मया  
 दत्ता, यत्र यत्र विजोकिवः । महत्तमः पुनर्दृष्टस्तत्र यत्र सदागमः ॥ ९७५ ॥ एहिचर्मोऽपि तन्मूले, दृष्टः सामान्यरूपवः । कश्चित्क-  
 चिन्न दृष्टोऽपि, स महत्तमपार्थगः ॥ ९७६ ॥ सामान्यवस्त्रनमुक्तौ च, एहिचर्मसदागमौ । सामान्यरूपौ यौ भद्रेऽसङ्गावादा विजोकिवौ  
 ॥ ९७७ ॥ तदेवे बहुभो दृष्टाक्षयोऽपि वरदान्यथा । जातस्य सुखदास्तत्र, सिमुक्ताभान्तरान्तरा ॥ ९७८ ॥ अन्यथा—दृष्टस्य केवलो  
 ज्योपोऽनन्तरादाः सदागम । न त्वनेन विना दृष्ट, स सामान्यवर्त्तनः कश्चित् ॥ ९७९ ॥ अन्यथा—यत्र यत्र समीपसः, सजातो मे  
 महत्तमः । सत्र तत्र वयस्यो मे, जातः पुण्योवयः पुरा ॥ ९८० ॥ तेन चोत्पत्तिताः सर्वा, यथेष्टा भोगसम्पदः । वस्तवो मानवाभासे,  
 पुरे च सिमुक्ताब्जमे ॥ ९८१ ॥ तथा—किंवा कर्मस्थितिकर्म्या, मीयमीवात्म शत्रव । अन्तर्धानाः स्थिता भद्रे !, महामोहादयस्तथा  
 ॥ ९८२ ॥ यत्र यत्र पुनर्जाताः, प्रवृत्ता भावस्तत्रवः । यतः पुण्योवयो नष्टस्तत्र यत्र वयन्ते ! ॥ ९८३ ॥ नष्टे च तत्र जाता मे,  
 सर्वा दुःखपरंपरा । भूमिरोऽनन्तरकास च, भविष्यन्मयथा तथा ॥ ९८४ ॥ तथा—स्थितिर्नापीयसी जाता, कर्मणः क्षिप्रतां गतम् ।  
 मानस च पुनर्जात, वरस्यभक्षान्तवर्त्तितम् ॥ ९८५ ॥ यत एवोक्तता जाता, यत्र यत्र महारसः । ते मयस्तत्र तदेवौ, दूरीभूतौ सुखा  
 न्वयौ ॥ ९८६ ॥ विशेषतः पुनरेवोऽत्र, कथ्यते ते निरुक्ततः । स सिध्यावर्षानाम्बेन, सामान्यवर्त्तनतामक ॥ ९८७ ॥ ज्ञानसंवरणेनापि,

पूरं नीतः सदागमः । कश्चिद्यावपि निर्दिव्य, ताभ्यामपि निराकृतौ ॥ ९८८ ॥ एव चानन्तकाले ते, जपमद्रपराधनाः । देवाकालवत्  
 प्राप्य, चावा भद्रे । परस्वयम् ॥ ९८९ ॥ अन्यथा—आमकः पक्षपातोऽभूद्यथोरेव विधेयतः । तथोरेव वरा जातो, जपो भद्रस्वरूपयोः  
 ॥ ९९० ॥ अन्यथा मानवात्मसम्पत्तिर्नि सुन्दरे । पुरे सोपारके पक्षमा, नीतोऽत्र नीरजेषु ॥ ९९१ ॥ शक्तिः स्वादिभद्रस्य,  
 चार्थोऽपि कनकप्रभा । आवस्यन्नाः सुतोऽस्मीसि, वन्न नामा विभूषणः ॥ ९९२ ॥ अप्यस्यै सुधाभूतभासाय शुभकानने । पुन  
 द्रष्टुं नया भद्रे, महत्तमसदागमौ ॥ ९९३ ॥ तव—तत्त्वमज्ञानसपन्नो, मावतो विरहितं विना । जातो गुरुपरोक्षेन, भक्त्योऽत्र व  
 दान्तये । ॥ ९९४ ॥ तवो गृहीतविद्वत्स्य, साधुमन्त्रेऽपि विप्रतः । आव मे कर्मदोषण, वैभाष्यनिरव मत ॥ ९९५ ॥ ततः प्रवततां  
 प्राप्ता, महामोहादयः पुनः । जातौ च मावतो वूरे, महत्तमसदागमौ ॥ ९९६ ॥ तवो निमिषमासाय, निमिषविरूप्य मा । स्वभावाद्  
 सत्यमसदाऽत्र परस्मिन्कः ॥ ९९७ ॥ वपस्विनां सुधीजानां, सद्गुणानवाप्तिनाम् । मन्ययामपि कुत्राप्यो, निम्नं नो दृष्टिवत्तदा ॥ ९९८ ॥  
 किं ब्रूनाः—वीर्यभराणां सङ्गत्य, सुवस्य गणधारिणाम् । आश्वातला दधानेन, मया पृष्ठं न र्थाधिक्यम् ॥ ९९९ ॥ एव  
 च—गृहीतवतिवेषोऽपि, पापात्मा गुणपूषकः । महामोहसंशयाज्जातो, निम्नगदृष्टिः सुदुरक्तः ॥ १००० ॥ तवोऽपिपोरु  
 मेदकर्मसङ्गावपूरितः । संजतोऽत्र पुनर्भद्रे, वादयमा पापवदया ॥ १००१ ॥ तवोऽनन्त पुनः कालं, दुःखसागरसम्पन्न । प्रायः  
 समस्तजानेषु, भविषोऽत्र स्वमार्थमा ॥ १००२ ॥ समस्तद्रव्यप्राप्तेषु, मुक्तोऽस्त्वपरिणः । वरा एष्ट मयोपार्थ, भ्रमवा वर्णपक्षपा  
 ॥ १००३ ॥ न सा विपन्न दुःखं, न सा ग्राह्यवन्मता । कोकेऽपि पक्षपात्राक्षि, मा न सोढा वरा मया ॥ १००४ ॥ एव वरति  
 ससारिणीये शिथिलभानसा । जावाऽगृहीतसङ्केता, किञ्चिन्नापार्थकोषिवा ॥ १००५ ॥ वया प्रज्ञाविद्याछादि, सुखा वचादयं वप ।



अन्नमन्नावसर्वाणां, विन्दयामास भानसे ॥ १००६ ॥ यदुत—महो ससारिजीवन्, महाभोहपरिमहौ । मन्त्रेऽर्चं सर्वपापेभ्यः, सक्त-  
 मास्त्रिधावप्यौ ॥ १००७ ॥ यथा—कोवाविभ्यो यदा व्यावमसान्तर्गकम्बकम् । यदा नातेन कथितः, सन्मयावर्जनमीडकः ॥ १००८ ॥  
 यदहंतिर्गुणकाल, यथाहं विज्जिभटम् । आलोच्यमान कर्मोऽथ, नाभ्यर्चं प्रतिमासते ॥ १००९ ॥ आभ्यां पुनरिष सर्वं, सन्मयावर्जं  
 नवीकते । सजातेऽपि ह्य वीर्यससारयवनामिकम् ॥ १०१० ॥ यदेवौ सगुणसासि, जावनर्भविषाभकी । जावेव दारुण्यौ नूतनं, महाभो  
 हपरिमहौ ॥ १०११ ॥ अथवा—ब्रह्मेवौ यत्र ते सर्वे, सन्निव कोवावयः सुकृत् । समुदायात्मकस्तेषां, महाभोहो हि बर्धितः ॥ १०१२ ॥  
 परिमहोऽपि सर्वेषां, वेदानामावराणं गणः । स हि कोनसहो काभरो, महाभोहव्यधिकः ॥ १०१३ ॥ यदेवौ गुणयावय, सर्वेषां मूक-  
 नायकौ । जावौ ससारिजीवन्, यथाभ्यर्च्यमीदृशम् ॥ १०१४ ॥ किं च—समूहगुणयावय, सन्निव कोवावयोऽप्यकम् । अनयोस्तु  
 विस्तेषां भवेनेत्यमुदाहृतम् ॥ १०१५ ॥ अन्मया—तेऽभ्याभ्यां इत्यन्तं मिर्गुण, न सन्त्येव कदाचन । किं तु प्रवर्तकादेवौ, वे तु द्वेधाः  
 पदावयः ॥ १०१६ ॥ अस्मैव च विस्तेषन्, सिद्धार्थममुना कृता । दोषसन्वर्षिकाऽमीषां, क्रमेणेत्यमुदाहृतिः ॥ १०१७ ॥ समकाल  
 भंसार्वकम्, वसिष्ठ अन्तकविनी । अन्त ससारिजीवन्, महाभोहपरिमहौ ॥ १०१८ ॥ यथापि कोकः पापात्मा, गुरुबाह्यसद्वैरपि ।  
 नाचरन्ननयोस्तां, यत्र किं नष्ट कुर्महे ? ॥ १०१९ ॥ यथापि गुहा व्याख्याता, भुविः कोविदसुरिणा । यथापि रत्नवतेऽर्थमन्त्राभेव  
 ब्रह्मो अन्तः ॥ १०२० ॥ अथ प्रज्ञापिषातां तां, गौड सजीवन् आविषाम् । स मध्यगुरुयोऽन्तर्धीवन् ॥ किं चिन्निव स्तया ? ॥ १०२१ ॥  
 यथोक्तं पुनः । ते सर्वे, कथयिष्ये नित्यकुला । यथाभधानस्तव धावस्तव बाह्य निष्ठाभव ॥ १०२२ ॥ किं च—यस्त । मोघालतां कार्पाः,  
 किञ्च न सम्भाष्यते । कथितप्रत्यभेदेन, सर्वगत्यविशेषिणम् ॥ १०२३ ॥ यतस्तुष्णी स्थिते यत्र, यज्युमे ससादरम् । ससारिजीवः

दूर नीयः सदागमः । कविष्यदसि निर्जित, वाय्वागमसि सितकवी ॥ ९८८ ॥ एव जगत्तकाले, जयमङ्गलरथाः । देवकालवस  
 प्राप्य, जगता मदे । परस्परम् ॥ ९८९ ॥ अन्ध—आमकः पक्षपातोऽभूद्यथोरेव निरायतः । यथोरेव वरा जातो, जयो मङ्गलरथयो  
 ॥ ९९० ॥ अन्धरा मातृभासमभ्यवर्तिभि सुन्दरे । पुरे सोपारके पत्न्या, नीलोऽह नीरजेधने । ॥ ९९१ ॥ अग्निः सावित्रमृत्स,  
 भार्वाङ्गि कृतकप्रभा । जातस्तथाः सुतोऽग्नीसि, तत्र नाम्ना विभूयणाः ॥ ९९२ ॥ अय सूरि सुधाभूतमासाय शुभकानने । पुन  
 द्यौ मया मदे । मङ्गलमसदागमौ ॥ ९९३ ॥ तत्रम—तस्मिन्कालसमये, मातरो वितर्धिता । जातो हरुपरोधेन, भगवोऽह व-  
 राजनये । ॥ ९९४ ॥ यतो गृहीतकिङ्कल, साधुमध्योऽपि सिधतः । जातं मे कमथोपेय, वैभाष्यनिरतं मत ॥ ९९५ ॥ यतः प्रमद्वतां  
 माता, महानोदाहराः पुन । जातौ च मातरो दूरे, मङ्गलमसदागमौ ॥ ९९६ ॥ यतो मिमिक्षमासाय, मिमिक्षविष्टव वा । स्वमासाय  
 सम्प्रमत्तदाऽह परनिन्दकः ॥ ९९७ ॥ यथस्त्रिणां सुधीजानां, सदनुष्ठानचारिणाम् । अन्धेयामसि कुर्वाणो, सिन्धुं नो द्यद्विद्वदरा ॥ ९९८ ॥  
 सि षड्गताः ।—तीर्थेभ्यराणां सङ्गस्य, सुवस्य गणधारिणाम् । आसातर्ता दधानेन, मया पुष्ट न दीक्षितम् ॥ ९९९ ॥ एव  
 च—गृहीतमस्तिवेषोऽपि, पापारमा शुण्डपुष्पकः । महामोहवशाज्जातो, मिष्यादष्टिः सुदारुणाः ॥ १००० ॥ यतोऽविषोऽतु  
 मेरुर्कर्मसङ्गावपूरितः । सज्जतोऽह पुनर्मदे । सादरा पापयेष्टया ॥ १००१ ॥ यतोऽनन्ध पुनः काक, हुतसागरमध्याः । प्रायः  
 समस्तस्त्रानेषु, अग्निषोऽह अमार्थया ॥ १००२ ॥ सामकारभ्यपयेष्ट, शुक्लनोदरचारिणः । वरा स्पृष्ट मयोपार्थ, अमला वर्णयेष्टया  
 ॥ १००३ ॥ न सा विषम यदुःखं, न सा शाद्विद्वन्मना । कोऽपि पक्षपातादि । वा न सोढा वरा मया ॥ १००४ ॥ एव नदति  
 ससारिणीवे सिमिक्षमानसा । जाताऽगृहीतसङ्केता, सिमिक्षमापकोषिणा ॥ १००५ ॥ यथा प्रज्ञासिद्धासापि, सुखा सचादरा वयः ।

## अथ अष्टमः प्रस्तावः ।

अथास्मिन् मानवावासे, सत्सुरं सवधोत्सवम् । सप्तमोदमिसि कथाव्यभिचयगुणभूषितम् ॥ १ ॥ दानवारिकृताकारो, महेभगवित्ति  
 भ्रमः । पुरंदरसमो यत्र, तरवर्गो वियुज्यते ॥ २ ॥ रूपकावप्यनेपथ्यनिर्दिष्टोऽपरीक्षनीः । विष्कासिनीजनो यत्र, नेत्रोन्मेषैर्विषिष्यते  
 ॥ ३ ॥ सन्नारिकरिसङ्गावनिपातितकटकः । निष्पांजपीरपक्यागो, यज्जाडकि मधुधारणः ॥ ४ ॥ सर्वसाधारण कृत्वा, वितीर्य धेन  
 नो घनम् । रूपरक्षितवदरेभ, सौख्यका न धारिताः ॥ ५ ॥ वस्त्रास्मि पद्मपद्माक्षी, रूपकावप्यशालिनी । प्रधानवससन्मूला, महावेणी  
 सुमास्तिनी ॥ ६ ॥ या हस्ति न्यकपाज्जाड्ये, यज्जो हृदयवर्तिनी । इत्य दक्षिणविभ्रासि, विविन्नगुणयोमिनी ॥ ७ ॥ अथ पुष्पोदये  
 नाह, संयुक्तो निजमार्गया । महेऽपरीयसङ्केते, वस्त्राः कुक्षौ प्रवेशिताः ॥ ८ ॥ निष्प्रन्यः काकपर्वायात्सर्वावयवसुन्दरः । छत्राः  
 सोऽपि मया सार्व, ज्ञातः पुष्पोदयोऽनये ॥ ९ ॥ ज्ञाते च ययि संज्ञासमानन्दरससिर्भरम् । तद्वात्मनूचसगीवं, मधुधारणमन्दिरम्  
 ॥ १० ॥ यथा—विद्विष च भरेन्नरगोपकृतं, वर्याससकासविकासपरम् । मधुवारणसादनगानपदं, मयिरामवधूर्ध्वध्यादनरम् ॥ ११ ॥  
 विजयाजनतर्जितमाननर्क, कटकककभुषिष्ठासनकम् । विद्विद्यार्जितनोरणपूरणक, कटकककभुषिष्ठासनकम् ॥ १२ ॥ यथाः समु  
 धिते कस्मि, माहानन्धपूरुसरम् । अनकेनैव मे नाम, स्मापिष शुणधारणः ॥ १३ ॥ पञ्चभिन्नाकभात्रीनिर्दलितोऽमरवदिवि । यथोऽह

प्रोवाच, शेषमात्मकवर्णिजम् ॥ १०२४ ॥ सर्वं च तेन—अन्यथा भार्यया मद्रः, नीतोऽप्र भद्रिते सुर । सुव स्फटिकपत्रस,  
 चातोऽप्रं सिद्धयदा ॥ १०२५ ॥ विमलानन्वन्मादद्यात्तस्ये वर्धमानकः । सुप्रमुच्यमुनिं दद्या, प्रमुद्यो विनयासन ॥ १०२६ ॥ अथो  
 भूयो यथा दष्टी, मद्रयमसदागमौ । गृक्षिभर्मनुषी मद्रे, पाप्मिषाम प्रदादयः ॥ १०२७ ॥ वरवभयानपुत्रात्मा, भित्तयार्द्रं धिर् वरा ।  
 किं पु सुस्मयार्थेण विविक्तकान्तवर्जितः ॥ १०२८ ॥ एवञ्चवन्मादेन, आवः पुण्योदयोऽन्यथः । नीलसृष्टीयकृत्येऽप्र, ससुरे विपुपा-  
 क्ये ॥ १०२९ ॥ वर्यामिमलसव्याविमोघान्मार्गमुच्यते । वारयित्वा सुरेनोबेद्यं सागरसप्तकम् ॥ १०३० ॥ वरोऽपि मानवावाते,  
 वयस विदुमकमे । इत्थं च कारितो मद्रे, नूदिवाद्य गमागमम् ॥ १०३१ ॥ किं बहून्वा?—वापदमयमुच्यते, दारयासि विरो  
 कित्वा । प्रलेक ते यथा कन्मा, कश्चिन्मुक्ताम वाच्यते ॥ १०३२ ॥ एव च किते—वरो दारयकृत्यसो, मानवावाससमुत्तमम् ।  
 प्रकानं कारितो मद्रे, मन्वितव्ययथा दया ॥ १०३३ ॥ इति ॥ विमलमसि गुरुणां मायिव नूदिभक्त्याः । प्रमलकलिकहेतुयो मद्रा-  
 नोदपचाः । कयवसि शुक्कीर्णोऽन्यससवारकाटी, मनुजमवमवासासस मा भूव वरयाः ॥ १०३४ ॥ सक्करोपमवाप्यकारय, कज्जव  
 कोमसकं च पमिप्रम् । इह परत्र च शुभकमपकते, सज्जत मा वत कर्मासुखे व्यती ॥ १०३५ ॥ एवमिबेदिवमसेयवयोभिरत्र, प्रख्यावने  
 वसिहनात्मविवता विविन्त । सर्वं द्विव च यमि वो वसिव कर्मापिपूर्णं वदस करणे मदनां कुरुष्वम् ॥ १०३६ ॥

॥ इत्युपमिसिभयप्रपञ्चकवार्ता मद्राभोदयदिप्रहमयणोन्मिद्यविधाकवर्णनो नाम सप्तमः प्रकाशः समाप्तः ॥

वस्त्र पुनः पुनः । अथशयनः परीक्षार्थं, वद्याऽन्वयं विभावये ॥ २३ ॥ अथ विज्ञातसूत्रायः, कलाकौशलकरोविदः । सिगई काकली  
 कला, मामाह स कुलधरः ॥ २४ ॥ कुमार ! किं विद्यतेनाम, गन्धवाममुना गृहे । अविद्यं हृदयीं वेदामपराहो हि वर्तये ॥ २५ ॥ मयोक्त  
 रोषते यत्, यदेव क्रिययामिति । ततो गृहे गताचार्या, कृतं च विदसोपितम् ॥ २६ ॥ अथ राज्ञो विविक्तार्था, धृष्ट्यार्था मम सिधयः ।  
 सा येवसि कुच्छापी, ज्ञातुं पुनरागता ॥ २७ ॥ नामविषयः नेसिद्यो, परितः पुण्योदयोऽन्वयः । तया मे पर्वमानस, यदा भवे ।  
 सदायकः ॥ २८ ॥ ततः—सा धृष्टभूता मे चित्ते, विजान्ती सुहृदुः । अकरिष्यद्वर्यां यां, साऽऽस्मात् नैव पार्यते ॥ २९ ॥ केवल  
 निकटस्वामी, यतः पुण्योदयोऽन्वयः । ममामृतेन सा ज्ञाता, नान्यं वदन्नापि ॥ ३० ॥ त्रिमिविधैवकम् । जनयः स करोत्येव, यत  
 पुनरोदयो सृज्यम् । सासारिकपदार्थेषु, विद्यावाचमिह मनः ॥ ३१ ॥ यथापि यामनुसृत्य, मनाह् विन्यामह गतः । यथा कस्य पुनः सा  
 स्वाधीकनीत्यजोयता । ॥ ३२ ॥ चिन्तयित्वा गतो निद्रा, विनाशा च विभावटी । प्रभाते च समतयावो, मत्समीपं कुलधरः ॥ ३३ ॥  
 ईश्वरसंनजोमेत, वस्याः सोऽभिहितो मया । वयस्य ! किं प्रकाशोऽयं, पुनराहन्मन्त्रिरे ? ॥ ३४ ॥ ततः कुलधरेणोक्त, क्तिंवचन्मुरया  
 गिरा । किसिद्धं गन्धते ? किं ते, विसृता यत्र कुञ्चिका ? ॥ ३५ ॥ अये ! ज्ञातो ममानेन, माह इत्यवधार्ये च । मया सोऽभिहितो सिद्ध ,  
 परित्रातो विमुच्यताम् ॥ ३६ ॥ गन्धतां पुनरुधाने, का कस्येति च धीरमवगम् । ध्वनिता कन्धका चेति, नेति वा सा परीक्ष्यताम् ॥ ३७ ॥  
 अन्धम्—परमार्था महीष्येष्ट, विदित्यमिति मां कथाः । कन्धका येन मुञ्चासि, यामिन्द्रस्यापि यावतः ॥ ३८ ॥ ततः कुलधरः प्राह  
 सिद्ध ! मोक्षाकर्ता ममः । गच्छाहः क्रियते सर्वं, पादयस्याय रोषते ॥ ३९ ॥ ततो गतौ पुनस्तत्र, कान्ते ध्वनिस्त्वपि वम् । स्वात यत्र  
 पुनः सट्, योपिरोर्विचय परम् ॥ ४० ॥ अथाह्ला पुनस्तत्र, यं कुच्छापीष्यताम् । अहं यद्विदयता किञ्चिच्चित्तोद्देशेन पीडितः ॥ ४१ ॥

इतिभाषावः, सुकसागरमन्मथः ॥ १४ ॥ इत्यम्—सगोत्रो मरिचधुर्मिथ, णीवितादधि बल्लभः । नेत्रोऽधिक विदातासुखस्य सन्तुः  
 कुञ्जवरः ॥ १५ ॥ स सममोदे वनेन, वातकोदेन सन्निवः । बहो ममापि संपन्नः, स बयसाः कुञ्जपट ॥ १६ ॥ स च सप्यादयो  
 यन्मः, सुरमः सुमयाः कवी । समच्छुण्णसपन्नाः, सक एव कुञ्जपट ॥ १७ ॥ एव सवर्धमानोऽह, देन साध सुमेधसा । सप्तावोऽ  
 पितृसन्नाथः, कोदनिर्भरमानसः ॥ १८ ॥ एवम्—सुख कुञ्जकथाप्यप्यसौ, श्रीवारसपरायणी । सप्तावो जाह्नवरुण्यपानां मदनमन्दिरम्  
 ॥ १९ ॥ इत्यम् नन्मनाकर्त, पुत्रपूरे मनोरमम् । आह्लादमन्दिरं नाम, सप्तावो धरकाननम् ॥ २० ॥ स च विषयमन्तरासि, कोष  
 नाम्नादयस्कम् । बलन्मनाबयोर्जाय, सेवितं च विने विने ॥ २१ ॥ अन्त्यरा गवयोस्तत्र, दूरवर्ति परिसुष्टम् । योविदोर्विदय किञ्चिद्  
 द्विगोचरमागतम् ॥ २२ ॥ वनेका रूपकमप्यवसिक्तसैः कामोद्दिनीम् । इत्यन्तीव सिञ्जान्नामी, द्वितीया मनु वादसी ॥ २३ ॥ अय सा  
 सुन्दरी दृष्टवस्तुगोचरकासिकम् । मां भूकणमनुर्मुहैर्द्विगोचरगावयत् ॥ २४ ॥ एवम्—दूतसादां समाकन्त्य, कीदृशोदासिवहनी ।  
 आदिदीपद्विजासेन, चार्द्धी भामर्क मनाः ॥ २५ ॥ एवम्—कश्चिद्वि सिमित्व सिमय, साह्वमसिञ्जवम् । बद्धिर्द्वैः स्याद्विच, एवम्  
 यत्नस्य मनेष्विचम् ॥ २६ ॥ एवम् वादसी कीन्त्य, मनोनयननन्नीम् । निमिष्यार्पितसन्नाथः, यचितं यम मानसम् ॥ २७ ॥ एवो  
 मया विनिवर्त—किमिदं सा एतैः साधारणैः पुरंदरकासिनी । किं वा कल्पसीत्युक्तेष्वं, बर्तते यदुपादिषी ॥ २८ ॥ एव च विन्यय  
 कीदृशमटीयतेरिषा । अन्तद्विकारकोदेन, शुद्धे जायाः शुभानते ॥ २९ ॥ एवम् विनिवर्त, साह्वं मावयेवसा । बलसेन मयाऽनु  
 देवकारवत्तं कृतम् ॥ ३० ॥ गुणम् । विनिवर्त च मया हन्त्य, कल्याणति विवेकिनाम् । इव सप्तामया एवम्, एवम् मयाऽनु  
 ॥ ३१ ॥ एवम् एवम् विनिवर्त मे, एवम् विनिवर्तवसा । एवम् कुञ्जपरेणाम्, म अन्ते किं विनिवर्तवम् ॥ ३२ ॥ एवो कल्याणोऽह, सुख

वस्य पुनः पुनः । अथययः परीक्षार्थं, यथाऽन्यं निमात्रे ॥ ३३ ॥ अथ विज्ञातसम्प्रायः, कलाकौशलकोषिणः । निगूह काकली  
 कृत्वा, मामाह स कुम्भपरः ॥ ३४ ॥ कुमार । किं स्थितेनान्न, गन्धधाममुन्ना गृहे । क्लीदिव दहतीं वेलाभयपादो हि बर्धते ॥ ३५ ॥ मयोक्त  
 रोचते यदे, यदेव क्षियवाप्तिस्ति । यतो गृहे गणाधार्मा, कृत्वा च विवसोषिष्ठम् ॥ ३६ ॥ अथ रात्रौ निविच्छर्मा, छत्रधार्या मम सिष्ठवः ।  
 सा वेवसि कुम्भाधी, सादृश्य पुनरागाता ॥ ३७ ॥ नामविष्यच्च नेषिष्ठो, यन्नि पुण्योदयोऽन्यः । यथा मे वर्धमानस्य, यथा भद्रे ।  
 सहावकः ॥ ३८ ॥ यतः—सा सत्समूहा मे चित्ते, विजान्ती मुहुर्मुहुः । अकस्मिन्परायणां यां, साऽऽत्म्याणु नैव पार्थते ॥ ३९ ॥ केवल  
 निकटकामी, यतः पुण्योदयोऽन्यः । मत्सामूचेन सा आता, नात्यर्थं यत्वा वाचिका ॥ ४० ॥ त्रिमिद्विषिष्ठम् । अतः स करोकेव, यत्  
 पुण्योदयो नृणाम् । सांसारिकपदार्थेषु, निष्ठायावन्निव मनः ॥ ४१ ॥ यथापि धामनुत्सुक्त, सत्ताह् चिन्तामह गावः । यथा कस्य पुनः सा  
 क्तामीकनीरजलोचना ? ॥ ४२ ॥ चिन्तयित्वा गतो निद्रां, विमाता च विमावरी । प्रभावे च समायातो, मत्समीप कुम्भपरः ॥ ४३ ॥  
 ईषदस्नतोभेन, यस्याः सोऽभिनिष्ठो मया । बयस्य । किं प्रजानोऽप्य, पुनराह्लादमन्त्रिरे ? ॥ ४४ ॥ यतः कुम्भपरेणोक्त, कितवन्न्युरवा  
 गिरा । किमिदं गन्धते ? किं ते, विस्तृता वन कुञ्चिका ? ॥ ४५ ॥ अये । द्वातो ममानेन, नाह इत्यवधार्य च । मया सोऽभिनिष्ठो भिन्न ,  
 परिरासो विमुच्यवाम् ॥ ४६ ॥ गन्धवा पुनरुचाने, का कस्येति च वीक्ष्यवाम् । वक्षित्वा कस्यका चेति, नेति वा सा परीक्ष्यवाम् ॥ ४७ ॥  
 अन्धव—परमार्थं प्रदीप्योऽर्थं, विकस्यमिति सा कृपाः । कुम्भका चेन्न मुञ्चामि, धामिन्नस्त्राप्तिं धावतः ॥ ४८ ॥ यतः कुम्भपरः प्राह  
 भिन्न । मोघावर्ता गमः । गन्धनाहः क्रियते सर्वं, यद्वयस्माय रोचते ॥ ४९ ॥ यतो गवी पुनस्तन्न, कानते पभिरुषिष्ठम् । स्नान यन्न  
 पुण दृष्टं, योपिणोर्द्विदय परम् ॥ ५० ॥ अवाहता पुनस्तन्न, तां कुम्भमभीक्ष्णाम् । अहं यद्विषया किञ्चिच्चित्तोद्वेगेन पीडितः ॥ ५१ ॥

पठाम—एते पर्यन्तं तां दूतं, श्रीशम्भोः शङ्करं । कुम्भरमुचो धावमिषम्वयस भूवते ॥ ५२ ॥ तावदूर्ध्वपर्याप्तं, धनममर्चितं  
 नम् । आकर्म्यं कर्मविरहं, वसिष्ठा मम कल्पत ॥ ५३ ॥ अथैका मध्यमावस्था, एता नाटी मुनिपट ॥ द्वितीया सा समाधत्ता, पाद-  
 सीपका द्वितीयिका ॥ ५४ ॥ यथाः सकुम्भरेण मया कवममुत्थान नाभिवमुत्थमाहं, यथाः सविषेवं विजोद्विषाद् यथा प्रोदनाया,  
 कवमान्महोदधिरिषुपरिमुचननमुत्थमं, अभिविव न—वत्स ! पिरं जीव मरीयदीवितेनाधि, कुलपटोऽमुच—मुद ! दीपागुभव त्,  
 कष्टि मयमां सह निविहकल्पं कथो पावमुत्परेषविवुर्हसि वत्सः, कुलपरणोऽ—यथाभिषमन्था, यथाः प्रमृष्टमनन भूवत इ-  
 विद्यानि वत्, यथाः माहुरिदम् यथाऽभिद्विह—वत्साकल्प—असि विद्यापण्डयो र्वादादयो नाव मदागिर्हि, यथा गन्धसमृद्धं नाव  
 त्तारं, यथाविमलिविद्यापरकर्मवर्गं कलकोदरो माव एता, यथाहं कामलता नाव मदादेर्वा, न पामूखसापत्वं गवां भूरिजातः  
 विपज्जोऽसौ विरपलवनाद् न य यथाऽप्यत्माहं प्रमुक्तानि मेपजानि विद्विवा मदाशमयः इत्यानुपयापिषयवानी प्रष्टा नैमिषिका वपयतिता  
 मज्जवाहितः निन्यासितानि यथावि पीवानि भूकजातानि कथानि कीदृकानि निःसारिवा भवमुत्थयः धाधिवानि जातजानि मदावतिताः  
 प्रभाः प्रार्थिताः प्रमदात्मनाः अन्मार्थिका योगिन्यः कव सर्वं यदुक्त निविहतेनापीति, यथाः मय्यम वयसि मादुभूवो मे गर्भः । मदाहो  
 एता कमेव न प्रसुताहं ज्ञाता देहप्रमना निष्कल्पाकाममुत्थासयन्ती वारिका निवेसिवा रामे परिजुष्टोऽसौ कारिव मदावपत्तकं प्रक्षि  
 ष्ठिं प्रमदाभिने नाम मदनमज्जरीति, वरिषा सा सुप्रसन्नोदेन सजादेयमलमममीया, जनकविषयवादिनरसनेनमदाविकागुद्विवा  
 यथाः प्रियसङ्गी उपल्लिका, माद्विवा सार्धमनया सा सकलाः कथाः प्राप्ता यौवन, यथाः कलावीयवेम रूपाश्लिष्येन न न ममोपिषयः  
 पुरोधोऽज्जीति मुक्ता सजाता पुरोपेक्षिणी सा वत्सा मदान्तवटी, यथा क्वालिक्वाचनेन विद्याय यथाह्वं विपज्जोऽहं निवेदितं मदाव-



आय संजातोऽसौ स्मिन्मयः कश्चिन्मिष करिष्यात् इति, यतः समुत्पन्नाऽस्म युधिः कारितोऽनेन स्मयत्पामप्ययः समाहृताः सर्वे विद्याभर  
 मरेन्द्राः समागता येनेन कृतास्तत्रापि यतः विरचिता भज्याः सिताः सर्वे यथास्मान् यप्यष्टिः स्मयत्पामप्ययमप्ये यप्यरिकरो राज्ञा  
 प्रसिद्धाऽष्ट विरचिताभरनेपय्याकट्टात्प्रागगमात्प्रापि विविधविचर्यनां गृहीत्वा यत्सां मयन्मयरी सप्त कथञ्चिन्मया, तां यप्यष्टिवासर-  
 मुत्परीक्षाभज्यां कथ्यामुपलभ्य प्रवक्ष्यिष्यकथोक्तेरकुमुदकमाना अपि यत्सां विनिमित्तपट्टिचित्रेभ्यः सिताभिन्नमया इव निम्नताः सर्वेऽन्वर  
 ययः, यर्षिता मया नामतो गोत्रयो विमयवो निवासवो रूपवो गुणवच्चिह्नरूप्य प्रत्येकमेवे, यथा—यत्से मयन्मयारि ।—यथोऽस्मिन्  
 प्रमो नाम, विद्युद्गन्तस्य तन्मनः । जगुर्द्धिमं वास्यभ्यः, पुरे गगनवल्लभे ॥ ५५ ॥ सुताकारयरोऽप्येककाकौसककोन्निवः । केवौ  
 चारुमयूरेभ्य, छसत्ताळं विराजते ॥ ५६ ॥ यथा—एष भानुप्रमो नाम, नागकेसरिनन्वत् । महर्द्धिको महावीर्यो, गानधर्वपूरना-  
 दकः ॥ ५७ ॥ कसनीयाकतिर्दत्ते', गुरुरिषियास्मिन्मयः । आकरो गुणरत्नात्, प्रसिद्धो गदकप्यजः ॥ ५८ ॥ यथा—अयमपि न  
 रतिविळासो रतिभिन्नसुवो महर्द्धिसंभवाः । यवविपथिरेय निवसति रयन्पूरचक्रवालपुरे ॥ ५९ ॥ कनकमवावयपुरेय निस्त्रिक-  
 विज्ञानगुण्यभ्योपेयः । ननु पश्य मयन्मयारि । यरवानरकेद्वयपट्टिभ्यः ॥ ६० ॥ यदेव यावदेकैक, यर्षयासि नरेवरम् । वावद्विपादमा  
 पन्ना, यत्सा मयन्मयारि ॥ ६१ ॥ यथाहि—एता सा यथा मया हुर्मनानाटीव तपनीगुणेभ्य विपन्नवसुमत् इव क्षत्रुवीर्येभ्य समत्सरमा  
 वीव प्रसिद्धानिस्त्रीष्वेभ्य सेव्यदेव इव प्रसिद्धानीष्वेभ्य सौतेकविद्यानिष्ठ इव प्रसिद्धानिष्कौपुणेभ्य केनचित्सादरमुपवर्ज्यमानेभ्य देभ्य वि  
 याभरनरेभ्येभ्य मया यथा स्थाप्यमानेभ्य एतौ यथायन्ती सजाता गाढ विद्राणवदना यत्सा मयन्मयारि, यवो वा किमेवसि सि विचिन्त्य  
 मयाऽस्मिद्विवा सा—यथा यत्से । मयन्मयारि किमिति विचिन्त्यः कश्चिदेतेषां मय्ये यत्सायै विद्याभरनरेन्द्रः<sup>१</sup>, ययोक्तं—अम्भ ! तूर्णमपक्क-

वरुष—एते पर्यन्त यं नृत्, श्रीशम्भो श्रुतं । कुलपरुषो यावन्मिषय्यलस भूते ॥ ५२ ॥ तावन्मरुतस्य  
 नम् । कावर्षं कल्पवितुषे, वसिष्ठा मम कल्पत ॥ ५३ ॥ अपेक्षा मय्यभाषसा, एषा नार्ह मुनिपरा । द्विर्वासा सा क्षमायाग, दा-  
 र्शिकसा द्विर्वासा ॥ ५४ ॥ वरः सकुर्वरेण मया कृतमभुत्पान भगिष्वनुत्तमार्हं, वरः सविद्यश्च निवर्तितवाङ् वया दौतव्या,  
 कृतमानन्वोदकविनुपरिप्लवत्तनुगुहं, भगिष्विष य—वत्स । शिरं दर्शय मरीचनीविदेनार्हं, कुलपर्योऽनुत्त—नुत्त । दीपागुभव स,  
 शिष्टानि बह, वरः मायुरिरव वयाऽभिद्विष—वत्साकल्पय—अस्ति शिषापपुत्रपा देवाऽप्यो नाय मदातिरं, वरः गन्धसन्तुर्दं मय  
 वारं, वरविषसिर्दिवावरयकल्पार्हं कनकोदरो नाम पुत्रा, वत्साह कामउता नाम मदारार्हो, न पाभूवत्सापय गवो नूरिकाशः  
 विषय्योऽसौ निरपलवयाङ् य वरऽप्यन्तार्थं मनुष्यनि भेषजानि विद्विषा मद्रसान्वयः दधान्युरयविषराजानि इहा मैम्विद्विषाः कनकरिवा  
 मन्त्राभिनः सिन्धुसिन्धुनि सन्नापि पीवानि मूढजातानि कृतानि दौघुकानि निःसारिवा भवभुवयः द्योधिवाभि जावकानि भववार्तिवाः  
 मन्नाः प्रार्थिवाः मसकल्पसाः कल्पमिषा योनिभ्यः कृत सर्वं मनुष्यं किञ्चित्केनापीति, वरः मय्यम वयसि मादुभूयो मे गर्भः मद्रुष्टो  
 राजा क्लेश य मसूराङ् वत्सा देहममया किञ्चकजाशमुद्रासयन्ती दारिका निवेदिता यद्ये परिणुष्टोऽसौ ध्याय मद्रावर्धनं प्रसि  
 ष्ठि मसकल्पिने नाम मद्रन्ममभूरीति, वरिष्ठा सा सुखसन्वोदेन सन्नायेयमलन्धमभीष्टा, जनकमिषय्यसिन्धुनरसेनवर्षारिकागुष्टिवा  
 वत्साः मिमसव्यी सधसिका, माद्विवा सार्धमनया सा सक्काः कन्नाः प्राप्ता पीबन, वरः कन्नाद्योदयेन रूपान्निधयेन य न ममोषिषः  
 पुरषोऽप्येति बुद्ध्या संज्ञाता पुरषोऽपिषी सा वत्सा भवन्मच्छरी, वरः कल्पिकावत्तनेन मित्राय वयाङ्कं विषय्याङ् निवेदिष मद्राव-

वसा, पठित काकमिवेदकेन—‘तद्गन्धेष भो लोकाः, आस्करः कथयत्युक्तम् । मा कुरुं चित्तसन्ताप, मा हर्षे मा च विह्व-  
 धम् ॥ ६२ ॥ पर्ववतामिदित्येवोऽयमभ्यासो भो क्षिणे क्षिणे । उद्यमशिक्षाः सर्वथाया बोऽसि भवे भवे ॥ ६३ ॥’ एवमाकर्ष्य चित्तित्वं  
 नरपक्षिना—अये मुक्तमुक्तमनेन समर्पितः स्वार्थः, वयादि—यथा वेदार्थः पूर्वनिर्दिष्ट एवास्माभिर्मर्दानमच्छीघर इत्युक्तं यथाऽनेनापि  
 पठता आस्करक प्रसिद्धिमुदयप्रसापास्तमयार्थान्पुनरुपादिष्वेदिनां जन्मनि जन्मनि सुखदुःखकामादिक सर्व चित्तमित्येवोपन-  
 मते एतत् यत्र विपादाक्षितेनापेक्षितमिति, भवतः सुवक्षितमेव सर्वमास्ते किं नष्टित्वेवाकम्प्य नियाकुलीमूर्तो राजा । इत्यस किन्-  
 पुता कर्तव्यमिति पृष्टा स्वस्तिकया भवनमच्छी, यथोक्त—यदि पावोऽन्वा च भागुत्सककयति यवोऽह स्वयमेव पर्यटय बहुल्यपमान-  
 स्माभिरपिठ वरं कुर्वोमीति, यतः कथित मे स्वस्तिकया वदन्त निवेष्टित मया राज्ञे, चित्तित्वमनेन—मुत्तरमेव भविष्य वस्तथा,  
 भवमेव वक्तुं शक्तिर्द्विदम् वरक क्षान्तोपाय इति निश्चितानुज्ञाया वत्सा भवनमच्छी, यवो पृथीत्येवमात्मसाहचरी स्वस्तिको निर्गो-  
 सा वयम् स्वकलभूतकलभोक्तमस गतामि कश्चिद्विदितानि क्षितो राजाऽह च वत्साश्वेन सोन्मायको विद्यो निमाकयन्तौ, अन्यथा  
 समानावेव सन्निपादा स्वस्तिका, दृष्ट्वा चेमां द्राष्टुं पठितमावयोर्द्वय इति क्षितिदीयमेकाकिनी सन्निपादा योपकम्प्य इति भावना,  
 क्वोऽन्वा प्रजातः, मयोक्त—अयि भवे ! क्वचित्ते कुशलं वत्सायाः, अतथोक्त—अन्व ! कुशलं, मयोक्त क पुनरिदानीं वर्तते वत्सा !,  
 अतथोक्त—आकर्षयत्यन्वा—अस्ति तावक्षितो निर्गो विद्योक्षितमावाभ्यामनेकप्रामनरादिदिनूषित विभिन्नवृत्तान्तमूरि भूमापक प्राप्ते  
 सप्रमोदपुरं दृष्ट यवो वदिराज्ञादभनित्तरमुत्थानं सजावभाषयोऽस्ति विद्योक्तकृत् इति यवो वक्तोपदिष्टाव दृष्टौ सुखरज्जुमापाकारवारको  
 यत्र द्वौ राजपुरुषौ ययोश्चैकमवलोकयन्ती प्राप्ताऽस्त्यन्वमक्षरीरुत्तरप्राप्तोऽनरं प्रियसखी यवस्तद्वदन्तान्तरनिःसर्वावदीर्घा मया सार्धं

मासो बहमिषः ज्ञानात् अकमेतेषां दृष्टेनेन शिरो दुष्यसि ममानेन गुप्तापुषर्षिवासीकठदुष्प्रभवेन, तथाह्यप्य विषय्याद् निर्धार्य एवं  
 गवोऽसौ चिन्तां अभिषिद्ययनेन नीयतां भवने वत्सा मा भूषिषुः आसिक्त्याऽस्याः घटीयपाटवमिति, ववस्थां पूर्वाज्ञा निगवाद् स्य  
 वरमण्डपात् प्रप्रा स्वमदनं विषयेयं उक्तमिक्का, अभिषिद्यमनया—यथाऽप्य ! कः पुनमवृथारिक्त्याः परिष्पयनायासो भविष्यति !, म  
 योक्त—वत्से क्वल्लिके ! वयमसि न ज्ञानीमः अग्निदुष्करोपिकेय एव प्रियसखी प्रहृष्येयमेव भवता वयं करणीय सप्तमोऽप्यक-  
 मिशानी मन्मन्तानां पर्याकोणोपर इति वदन्ती रथुक्कुप्यकककापकरीनयनसन्निधिविन्नुसन्तोर्दे रोर्मिषु मयुषाऽऽ क्वल्लिकयोक्त  
 —सामिति ! शुभ विपत्त प्रभाविष्यान्मह भर्तृहारिको, न अन्वेया चिन्तयसवत् सप्तमनीननकयोः सन्तापकारिणी भविष्यति कथं  
 विष्यसि यद्य करणीय, एतमेव सखीहिवाऽन्नतया उक्तमिक्का ॥ इत्यत्र ते विद्यापराः स्वपदमण्डपाद्गुववदामेव निगन्तुर्नामप  
 केन्य वं वत्सां मदनमजरी इवसर्वका इव नष्टप्रतिपाना इव मुद्ररवाहिवा इव सिगसिधविद्या इव सवया भद्ररुपाया विकर्षीभूताः  
 सकोपाः सन्धः क्लनकोदरनेन्द्रमसंभाष्य निर्गताः स्वपदमण्डपाद्गवा पूर्वास्वैक्यं सिध, ववो राधा प्राप्ताः शोकाविरक्त उद्धिव वयमिव  
 वरिनं सप्तमावा रजनी न इव च प्रादोपिकमाक्षान, सुप्तः केवलं वया गमिषयाया चिन्तया विनिर्मेय राधा विभादरी ववोऽविवरेय  
 उक्तोऽनेन शिवाकः आद्य वद स्वपदार्थेन, दृष्टानि आपदेव वत्सार्ति आनुयायि—हो गुरयो हे कवते, कैरभिद्धिव—महात्मा ! क्लनको  
 दर किं सुसत्त्वं उव जागर्ति !, वृपसिद्धा आगर्ति, कैकळ—यथेवं ववो शुभ विपत्त निरुधिवोऽप्यभिः पूवमेव करो मदनमज्याः स  
 एव मविष्यसि अहं मवतामन्मवदाम्नेयणेन अस्माभिरेव च द्वेष्ट्याः संपादिताः अस्वस्वास्ते विद्यापदमरेन्द्रा ववो न मयप्युमो वय  
 मेनामन्मयसी वरापेसि दुवाप्यासि धानि गवाणवर्धन, अमान्वरे सप्तावः प्रापासिद्धवर्धनिर्पोषः मयुवो राधा रसुवः स्वपार्थः प्रष्टष्टमे

द्युक्तमनवा—सखि ! क्वठिके नाह गणु पारयामि बसस्य मे क्षरीरे न च मोक्षस्य मयेवमुद्यान, यतो गच्छतु पूर्वं भवंती सपावधिषु  
 वागान्मयोर्वांमिति, यतो कश्चयित्वाऽपिर्वक्तव्यता निर्बन्ध आपयित्वा हां गुप्तावराहनामप्ये रययित्वा शिखिरपङ्कषपायनीयं कार  
 यित्वा न वसितव्यमिति; स्नातास विषेयमन्यदपि किञ्चिदसमञ्जसमित्यन्तर्बे शपथसयानि समागताऽह क्षणाभिर्नृणासिदशमार्गं गगनमुत्प  
 वन्ती वेगेन इत्येववाक्यं देवोऽप्यहं प्रभाष, यतो यत्कोक—देवि ! वाघाह त्वत्स्वराया गच्छ त्वत्समीप संघीरय वत्सं भवन्मच्छरी  
 बहः तु सासमी विषयागमिष्यामि यथा सासह मे मतः सकोपा निर्गतास्ते विषायाः प्रमुक्तम दृष्ट्वा चान्योपलब्धमाय मया च्छुल्लः यतः  
 कृतसाममीकसैव मे यत्र गन्तुं युक्त, नेवन्मं च यत्र गच्छन्निः किञ्चिद्यायुव भयच्छुद्धयो भविष्यसि मे काकविलम्ब वत्सर्पं गच्छतु  
 देवी, मयोक्त—यद्वापययत्तार्थमुत्रा, यतः पुरस्कृत्येमां लघालिङ्गं गृहीत्वा आत्मवक्त्रमां दासवारिकां ववलिङ्गां समागताऽह वेगेन, दृष्टा  
 यत्रैव शिखिरपङ्कषपायनीये निपण्या परमयोगिनीय निरुक्तमनं किञ्चिद्व्यापन्ती वत्सा भवन्मच्छरी, यथा तु न कश्चिदमलदागमन  
 यययिष्टा बह सिक्ते, क्वलिकयोक्त—मयुषारिके ! समागतयेमन्मन्वा किमेव सिधसि ?, यतो लब्धा वत्सया चेतना मोटिवमनवा क्षरीरक  
 व्यापारिते डोचने विजोकिताऽह, यतः ससम्भ्रममुत्थाय निपसिता सा मच्छरणयोः, मयोक्त—वत्से ! मवीचयीवितेनापि चिरं जीव  
 यूर्धमायुधि इदपवक्त्रं धविषया मत्र सुमगा सपथसेति, यतश्चोत्थाप्य समालिङ्गिता समाप्राया भूर्धवेधे स्नापिता निजोत्सङ्गे चुम्बिता  
 बहन्कमले, अभिहित्वा च—मत्से ! भवन्मच्छरि पीए मत्र मुञ्च विषाव सिद्धीव पश्य समीधितं भयममाव एव धर्तये वे अनक च  
 टिकाः दात्तत्र प्रयोचने वत्सन्तीति, यतः कुवो मयेयन्ति मागयेयानीति क्षनैर्वदन्ती स्थिताऽयोमुष्मी वत्सा, अत्रान्तरे गतोऽस्य विन-  
 कटः समुद्रसिध सिमितं विलुप्तिवद्यारकमिहः विपुकावकाकाः मुकुलितं कमलवन निधीनाः क्षुब्धनयः प्रसरिताः कौशिकाः प्रहृष्टा

मूढके सिखा वयोर्दृष्टिगोचरे मनागद्वरविनि वृत्तवने वसेव राजकुमारमभिधित्वाभी निटीक्षमाणा वतः पातिना वेनाति वदभिन्नुरा  
दृष्टिः—वता साऽमृतरसिक्तेन, धिमेव सुखसागरे । वक्षिममवसरे दृष्टा, मया धान्ती रसाभ्यरम् ॥ ६४ ॥ प्राशुन्ये मयाऽऽकम्प्य, मेव  
सम्भ्रमरिका । सिन्धुमये सखा बाला, व दृष्टाऽम्भ्र । सिन्धुभिन्वा ॥ ६५ ॥ विजासव्युतं वक्त्रं, सरसं च फटीरकम् । कथितकम्प  
पुण्यासं, वारयन्ती मयोषिवा ॥ ६६ ॥ सुखावीर रसाधोपाकम्पवीर मुदुर्मेष्टुः । हसवीर विदाकाशी, दृष्टिं वदसि वक्ष्य ॥ ६७ ॥ व-  
क्त्रा वादयी वीर्य, वद निक्षिप्तमानसम् । कहु मधुवा सङ्कल्पमद् दर्पमुपमाता ॥ ६८ ॥ यदुष्ट—अहो विदग्धा निर्भिष्यमहो दु-  
ष्करोषिका । ववासि वीरिवाऽनेन, सुनुता सर्वपारिका ॥ ६९ ॥ अहो अस्म सुल्पत्वमहो क्षाण्यपूणावा । अहो मुष्टोऽनयोर्योगा,  
रक्षिमन्मयवोरिव ॥ ७० ॥ अहो पटिवसेवेव, भिभुन ननु वेमवा । सन्नावसीकनादव, सपत्न न सर्मादिवम् ॥ ७१ ॥ अथ क्षणास्त  
केनासि, कायेन ससम्पन्नः । सार्धं तेन वयस्तेन, वतः क्षानाद्रवो युवा ॥ ७२ ॥ गते च वद सा बाला, धृन्वा वरकवारिका । स  
जाता सिङ्गकाऽस्मत्, यवा नष्टनिषामिका ॥ ७३ ॥ वतो मयोष—मद्वारिके ! यद्यमिदधिवत्सुभ्यमेव वरुणस्यवो गन्तव्यं वागान्ध-  
समीपे निधिवसेयोऽस्मैव सप्रमीदपुणधिवसेर्मधुवारणराजक सुनुर्मधिव्यसि कस्मान्मस्येदस्यो रूपासिद्यवः ? , वतो वाप्यवामकौ वावे  
नारमा किमभुना सिञ्चिध्वतेनेति, वयोष—अपि कवचिके ! वधिषोऽय मे जनः कवचं सायाह मम हृदय न वधिवता प्रायेन्नाहमस्मै  
कथमन्यथा दर्पमपकम्पम् ? , मयोष—स्यामिति ! मा मेव बोधः, यथाहि—किं न ते प्रदिष्टा दृष्टिः, किं न जायः सवोपक ? । स रात्र  
पुञ्जस्त्रां दृष्ट्वा, वेनेत्त्वमभिधीयते ॥ ७४ ॥ अत्यर्थं वधिवतासि स्व, सङ्गं मुञ्च वदाने । मयी मधुकृपायेव, सरसा वृत्तमच्छरी ॥ ७५ ॥  
वैदग्ध्यमिव वेनेव, इत्यापकम्प कणम् । वतोऽनुष्ठीयवामेवत्सामिन्या मम आयिषम् ॥ ७६ ॥ वतः सखीभूता किञ्चिद्रात्रमुद्विगा वपा-

पुच्छमतया—सदिति ! कश्चित्के मार्गं गन्तुं पारयामि अस्मत्सर्वं मे क्षरीरे न च मोक्षकर्म मयेवमुपायत, एवो गच्छतु पूर्णं सर्वंही सपादयिषु  
 वावाभ्ययोर्वाभिस्ति, एवो छद्मयित्वाऽऽनिर्वाकं कस्या निर्धं स्थापयित्वा एव गुप्तवद्वगद्वनमभ्ये रक्षयित्वा क्षिप्रिरपक्ष्मक्ष्मणीयं कार  
 यित्वा न क्षत्रियव्यभिच स्नानात्त विवेकमन्वयवि किञ्चिदसमञ्जसमित्यत्रार्थे क्षपयक्ष्मयामि ममागवाऽष्ट क्षपाभिर्पूर्वास्तिश्यामक गगनमुत्प  
 सन्ती वेगेन ह्येववाक्यार्थं वेवोऽभ्या च प्रमाय, एवो यद्योक्तं—वेवि । वावा त्वं स्वस्या गच्छ वत्समीय सखीरय वत्सां मदनमच्छरी  
 मद् दू साममी विधायागमित्यामि यतः साष्टाङ्ग मे मतः सकोपा निर्वाहस्ते विधावयाः प्रमुकम् सङ्गृह्यान्तोपकम्भाय मया चटुक्तः एवः  
 क्वत्सामपीकस्यैव मे वन्न गन्तुं शुच, नेवम् च एव गच्छन्निः किञ्चित्वासुव अवस्यद्द्वयो मवित्यसि मे काकविकम्ब वचुर्न गच्छतु  
 देवी, मयोक्त—मवाक्कापयत्सार्थपुत्रा, एवः पुरस्कृत्योर्मां क्वत्सिकर्म गृहीत्वा आस्त्रवक्त्रमां दासदारिकां घवस्त्रिका समागवाऽष्टं वेगेन, द्वा  
 वत्रैव क्षिप्रिरपक्ष्मक्ष्मणीये नियज्या परमयोगिनीय निराकम्बत किञ्चिद्व्यापन्ती वत्सा मदनमच्छरी, एवा दू न कश्चिदमकद्वागमत  
 वयविष्टा वयं निकटे, क्वत्सिकर्मोक्तं—मर्दयारिके ! समागवेयमन्वा किमेव सिधसि !, एवो कम्बा वत्सया वचना मोदितमतया क्षरीरक  
 व्यापारिते कोचने त्रिकोक्त्याष्टं, एवः ससम्भ्रममुत्थाय नियसिता सा मवरणयो, मयोक्त—वत्से ! मदीचजीवितेनापि चिरं जीव  
 पूर्णमाप्नुहि इवपवत्सम अभिवधा मव सुमगा सपयस्तेति, एवञ्चोत्थाप्य समाक्षिप्तिषा सयाभ्रावा मूर्धवेक्षे स्थापिवा निजोत्सन्ने चुम्बिवा  
 वदनकमले, अभिस्त्रिवा च—वत्से ! मदनमच्छरि वीर मव शुच विधाव सिद्धमेव पश्य समीक्षितं अयमागव एव वर्तते वे अनकः प  
 टिकाः रत्नान्न प्रयोचने अत्यन्तीति, एवः कृपो ममेयन्ति भागयेयानीति क्षनैर्वधन्ती स्त्रिवाऽप्योमुष्मी वत्सा, अन्नाम्वरे गवोऽव सिन  
 करः समुष्ठसिध सिमिर विसृष्टिरवकारकानिकरः विगुकाभ्यक्रवाकाः मुकुलितं कमलवनं मिकीनाः क्कुत्तयः प्रसरिताः कौक्षिकाः प्रद्वष्टा

मूवेवेवाकाः समुद्रवः स्रक्षपरः विजसिवा भन्निष्ठा, ववमिचममोदकारिणीयिः कथाभिर्विनोदयन्तीयिस्तां वत्सा मदनमच्छटीमस्त्रिवादि  
 वाऽस्माभिः क्वचिन्निरवनी समुद्रवो विनिरः, मयोच्छ—इत्ते क्वचिन्निहे । सिवा गगनमार्गे निरुपय निवसामिबवनीं किमघो चिरयसि ?  
 ववो मदाकापवसि स्तमिनीसि वदन्ती शिवेय नमस्तत्ते क्वचिन्निष्ठा शित्वा य क्षणमात्र समवदीप्ता सद्वा, मयोच्छ—इत्ते ! किं सद्वा  
 ऽसि किं समागतस्ते स्वामी !, वनयोच्छ—अन्व ! नाथापि समागतः स्वामी किं तु समागती वो रात्रकुम्भारौ निटीस्रिव य वाभ्यां मरु  
 दारिकाद्वर्तनार्थं समस्तमुपान केवकमसिगहनवाऽस्य प्रवेक्षस्य य दृष्टा मरुदारिका, ववोऽवो मरुदारिकाद्वयदयिविः सविपादः सन्नु  
 छस्तेव द्वितीयेन ववा—कुम्भार ! गुणधारण ! स्वीयतां वादवद्वैव वूववने वस्त्रैव य वूवस्वाधो मय दृष्टाऽऽसीकृत्वा सा पटुकपवनवस्त्रिद-  
 न्नुकवद्वकलोकमोचना द्वायवस्तकटी किमन्यत्र पर्यवितेन ? कदाचिदैवयोगासुनस्त्रैवोपकल्प्यव इति, वेनोच्छ—एव मरुतु, ववो गवो  
 वो वदभिमुत्तं, इवमन्व मे दूर्यकारणं, वस्तयोच्छ—मयतु मातः ! किमेवं मां प्रवारयसि ?, ववोऽनवा ववस्त्वायनाम क्वामि प्रापयस्त  
 द्यामि ववापि न प्रस्त्राविवा वत्सा मदनमच्छटी, मयोच्छ—इत्ते क्वचिन्निहे ! किमेनेन वदुना ?, वस्त्रय वावन्मे कुम्भारं येन व स्वयमेवेद्वा  
 नीय वत्सामाहावामि, वनयोच्छ—एषा सक्काऽसि प्रवर्तवामन्वा, ववो विमुच्य वत्सासमीपे वो ववस्त्रिक्वं प्रवृत्ताऽह, ववम्व नीवाऽह  
 मेवमन्वा क्वचिन्निष्ठा मरुतः समीपं, ववेपोऽत्र कुम्भार ! परमार्थः—वत्सा क्वच्छावामापां, तां मे शुष्करोपिक्काप् । वत्सापानुम्व  
 कृत्वा, कुम्भारो प्रमुमर्दसि ॥ ७७ ॥ ववो विजोक्ति मया कुलपरवर्तनं, वेनोच्छ—कुम्भार ! गन्धवां कोऽत्र विरोपः ?, ववः क्वमस्मा  
 भिस्त्रय गमन, दृष्टा मवानिर्विष्टा मदनमच्छटी, ववोऽहं निमग्न इव सुखाधुतमये मदाद्वै ववदीर्घ इव रक्षिरसमये मदासमुद्रे वर्तमान  
 इव सर्वानन्वसन्वेरे परिपूर्ण इव सर्वमनोरवमेरेण प्रीयिष्याद्येवेन्नियमाप्त इव सर्वोत्सवसमुदये सक्तावकादर्थेने सतीसि, वपा सापि



मामथस्नेह्य प्राप्तः स एवायमिति दृष्टा विद्यदृष्ट इत्युक्तमिति सवितर्का स्मरोऽत्र भवेदिति सविधाया स्मिरः प्र  
 सय इति यावन्निर्णया विद्येऽपि परिचितेति सकला कथं मांसेव प्रतिपद्यत इति सोऽवेगा निरीकृते मामथमिति सप्रमोदेति सपन्ना सङ्गी  
 र्णरसमिर्येष्टरथा, अत एव शाकलया पुत्रकलाकलेन विगुणिता स्वेवविन्नुभौक्तिकनिकरेण यद्गुरा समुषाज्जसितपद्मनेन इत्यवधारिणी  
 सुकलितकठेव कल्पमाना सर्वथा—मनास्मय रसं कथिद्वलन्मयीतिनिर्भय । मया सा क्षिपयकोकामी, भञ्जन्ती प्रसिकोकिता ॥ ७८ ॥  
 सर्वोऽभिहितः कामलतया—मत्से ! किं जातस्तेऽनुना कलिकावधने सप्रसयाः<sup>१</sup>, तवः स्मिन्तेन रज्ज्वन्ती मम इत्यमिव सुधाघबले  
 तापि विमलकपोली स्थिता साऽप्येदुक्ती, जातः सर्वथा प्रमोदः, अत्रान्तरे—असम्पन्नपरमौषधमात्रादौः समन्तवः । प्रकाशितनभोभा  
 शैर्दवाकायुकारिमिः ॥ ७९ ॥ भूरिविधाधरैः सार्व, कञ्जबाकलीकथा । यत्रैर्युक्ता विमानौचमगतः कनकोदरः ॥ ८० ॥ युग्मम् ।  
 सप्रमोदपुरं धीरस्य, सोऽजरीर्णः सक्नेधरः । आह्वात्मन्दिर प्राप्तो, दृष्टोऽस्माभिः सविस्मयम् ॥ ८१ ॥ तवः कृतमकामिरन्मुत्थान  
 नामिदमुत्तमाह विद्विदा प्रसिपयिः वयसिष्टा सर्वे वयास्तानं विजोकिरोऽत्र विराजदस्मा सुचिरं कनकोदरेण नूनं स एवायमिति निश्चित  
 हुष्टमेवता दृष्टा कामलता कथितोऽनया दृष्टान्तः, कनकोदरेणोक्त—वेदि । निर्वद्विषसेव वत्सलाया हुक्करोविक्रान्तनीदृष्टमुद्वरमे वयाऽ-  
 वया कृतो मनोनिर्भयः, न कस्य कधी पुरंदरादभ्यन्त सविषं निवेशयते, कामलवयोक्त—एवमेवमास्त्यत्र सन्नेहः ॥ अत्रान्तरे समा  
 यतो वेगेन चतुर्लङ्घः, तेन च निवेष्टित किमपि कनकोदराय कर्णाभ्यर्पे, ततोऽक्रमत्र काकविजम्ब्वेतेति कामलवर्षा प्रसिध्वा समाजोन्म  
 सद् हुक्कमधरेण सत्रैव स्थाने संशेषतः कारितोऽत्र पाणिप्रक्षालनं भवन्तमथर्थाः कनकोदरेण निर्वातवो विवाहानन्तः प्रकटितानि यानि यत्र  
 वैद्वयेन्द्रनीलमहानीलकर्कटनयस्यरागसरकटवृद्धासपिपुष्यरागचन्द्रकान्तवदभ्यकमेवकायान्तर्पयत्तयाधिपरिपूरितानि विमानानि, ततोऽभिहितः

मूढवेगवाणाः समुद्रवः क्षसावरः विवक्षिता अनिद्रका, एवमिच्छामोहकारिणीभिः कथाभिर्दिनोदयन्तीभिर्वा ब्रह्मा मदनमच्छरीमन्निवाहि  
वाऽज्जामिभिः कथश्चिद्रत्ननी समुद्रवो भिनकट, मयोक्त—इत्थे क्वल्लिङ्गे । शिवा गगनमार्गे निरुपय निब्रह्माभिवर्त्ती किमसौ चिरयसि ।  
एवो ब्रह्माक्षयसि स्मामिनीसि इदमयी शिवेय नमस्तुते क्वल्लिङ्का शिवा नृ क्षणमात्र समवदीप्ता सद्वा, मयोक्त—इत्थे । किं सद्वा  
ऽसि किं सममावृत्ते कस्मी ।, अनयोक्त—अन्व । नाथापि समागतः स्मासी किं तु समागती यौ रात्रकुमारौ निरीक्षित नृ वाभ्यां भव  
वास्तिक्वदर्थेनाथं समस्तुधानं केवल्मसिग्नतवयाऽस्य प्रसेसस म दद्या मद्वारिका, एवोऽसौ भर्तृवारिकाहृदयव्यवितः सविधादः सन्तु  
वृत्तेन विदीयेन ब्रह्मा—कुमार ! गुणपाराय । स्त्रीयथां यावद्यत्रैव पूववने वस्यैव नृ पूवस्माथो यत्र दद्याऽऽसीन्ब्रह्मा सा नृदुष्टपवनवल्लित  
कुलकपदकोकजोबना इदमवतकटी किमन्यत्र पर्यवितेन । क्वाश्चिदैवयोगास्तुवकात्रैवोपकथ्यत इति, तेनोक्त—एव मन्तु, एवो गवौ  
यौ वद्वभिमुक्तं, इदमन्व मे हर्षकारणं, ब्रह्मयोक्त—मन्तु भावः । किमेवं मां प्रवारायसि ।, एवोऽनया वल्लवायनाथं क्वानि क्षुपक्ष-  
वाप्ति दवापि न प्रकाशिता ब्रह्मा मदनमच्छरी, मयोक्त—इत्थे क्वल्लिङ्गे । किमनेन बहूना ।, इक्षय वाबन्धे कुमारं येन व क्षयमेवेद्वा  
नीय ब्रह्माभाक्वद्वामि, अनयोक्त—एवा सज्जाऽसि प्रवर्तयामन्वा, एवो सिनुष्व ब्रह्मासमीपे वां पवस्त्रिकां प्रवृत्ताऽह्, एवम् नीवाऽह्  
मेवमनया क्वल्लिङ्का मन्तवः समीप, एवोऽप्योऽत्र कुमार ! परमार्थः—ब्रह्मा क्वटगतवाभावां, वां मे दुष्करोपिक्वम् । कस्यापात्रुपद  
कृत्वा, कुमारो प्रभुमर्हसि ॥ ७७ ॥ एवो विवोक्त्रि मया कुलपरवर्त्तनं, तेनोक्त—कुमार ! गन्तवां कोऽत्र विरोपः ।, एवः क्वमका  
मिच्छा एमन, दद्या मयानिर्दिष्टा मदनमच्छरी, एवोऽहं निमग्न इव सुखायवमये मद्वाऽह्मे भवदीर्णं इव रक्षिरसमये मद्वाऽसुद्रे वर्तमान  
इव सर्वानन्दसन्तोहे परिपूर्ण इव सर्वमनोरथमरेण प्रीणिवासेपेन्निरयमास इव सर्वोत्सवसमुद्यये संभाषकादर्थेने सवीप्ति, एवा सापि

सामबलोच्य प्राप्तः स एवायमिति दृष्टा विद्यदृष्ट इत्युक्तमिदं सविद्यार्त्ता स्वप्नोऽयं भवेदिति सविद्यायां स्थिरः प्र  
 त्यय इति जायमिदं वा विद्येऽपि जीवितेति सकम्पा कथं मां मेव प्रतिपद्यत इति सोऽनेना निरीक्ष्यते सामयमिति सप्रमोदेति स्वप्ना संकी  
 र्णरसनिर्मयत्वात्, अत एव आत्मकया पुलकभावकेन विभूयिता क्षेत्रविन्नुमीतिकनिकरेण बन्धुप्यं समुपाश्रयस्तिष्ठपथनेन इदमद्वारिणी  
 सुखस्तिष्ठकदेव कम्पमाना सर्वथा—अनाम्येव रस कविद्वयम्यपीति निर्भयः । तथा सा शिवायलोकाधी, भजन्ती प्रविबोकिता ॥ ७८ ॥  
 वयोऽभिद्विधा कामलतया—वत्से । किं काठस्तेऽनुना सख्यस्तिष्ठावत्ने सप्रत्ययः ।, वतः स्मितेन रज्यन्ती नम इदमिति सुभाषवले  
 नापि विमलकमोली शिवा साऽप्येमुमी, जातः सर्वपा प्रमोदः, भवान्तरे—उत्सङ्गपपरमौषधप्रमाणाः समन्तवः । प्रकाशितनमोमा-  
 नैर्देवाकारुण्यकारिभिः ॥ ७९ ॥ गुरुरिति यावदः सार्धं, साक्यचारुकीकया । रत्नैर्गुत्वा विमानौषमागत कनकोदरः ॥ ८० ॥ शुभम् ।  
 सप्रमोदपुरं धीत्य, सोऽवतीर्णः सकाशः । आह्लादमन्दिरं प्राप्तो, दृष्टोऽस्माभिः सविद्ययम् ॥ ८१ ॥ वतः कृतमस्मान्मिरन्मुत्थानं  
 तामिवमुत्तमानं विद्विधा प्रविपयिः उपविष्टाः सर्वे यथास्मानं विबोकिवोऽहं शिवायदृष्टा सुखिन् कनकोदरेण नूनं स एवायमिति निश्चित  
 दृष्टमेव सा दृष्टा कामकवा कविषोऽनया हृद्यन्तः, कनकोदरेणोक्त—वेति । निर्वहियमेव वत्सायां पुष्करयोगिकात्ममीदृशगुरुपरमे यथाऽ-  
 नया कृतो मनोनिर्वन्धः, न कलुषाधी पुरं दृष्टान्त्यत्र सखि च निवेद्यमेव, कामलतयोक्त—एवमेव आत्मन्यत्र सन्नेहः ॥ अत्रान्तरे स्वमा  
 गतो वेगेन ऋदुः, तेन च निवेदित किमपि कनकोदराय कर्णोऽभ्यर्णो, वयोऽलमत्र काळमिदमन्वेनेति कामकवां प्रति पश्यतां समाश्लोच्य  
 सह दुःखधरेण यत्रैव स्थाने सक्षेपयः कारिवोऽहं पाणिपदं सदानमभ्यर्णः कनकोदरेण निर्मादवो विद्यादानन्तः प्रकटितानि यानि यत्र  
 वेदयेन्मनीषमाणीककर्केवनपथागमरकवपूढामपि पुष्परागाभन्तकान्तरुषकमेव काषाण्येयं रक्षयिपरिपूरयामि विमानानि, वयोऽभिद्विद्यः

कुम्भारः कनकोदरेण—मग्नः । राजगुप्त कोशाग्रमेवेवाभिहितवान्, ततो एषाऽप्याह दृष्टुमव स्रीकृता मदनमच्छटी मत्सा दपैवान्यनि  
 स्वीकर्तुमर्हसि राजगुप्तः, कुम्भारेषोक्त—मृगमेव प्रमाण किमत्र राजगुप्तस्य ? , न तस्य गुरवो यद्यपि कारयन्तो राजगुप्ताग्रपथन्तं फलुमर्दन्ति  
 ततः परिस्रुष्टः कनकोदरः कनकोदरोऽभिविदानी निमिषीयूषा मत्सा मदनमच्छटीति भावनया गवा परमपरिवीष कामवशा द्रष्टो समस्ति  
 काक्षिः परिजनः, दशार्द्धि—कन्या शोककरी आशा, चित्ताकुद्मर्मभानिका । विवर्ककारिणी दाने, दौगत्ये गाढबुधसदा ॥८३॥  
 साजुकपाय रुच्याय, धार्मिकाय धनैर्भुजा । किञ्च निमिषन्तवाहसुः, समर्द्धे प्रतिपादिता ॥ ८३ ॥ अतस्मां रत्नगुणान्यां, इत्या  
 मदनमच्छटीम् । मग्नः स ह्यः सपथः, सपथुः कनकोदरः ॥ ८४ ॥ अत्रान्वर—सप्रमोदपुरस्साये, मेघमालमियागुक्तम् । विद्यापरपद  
 दृष्टुमवदे स नमस्कृते ॥ ८५ ॥ तत्र अकासितूष्णीरकुन्तनाराजमीषणम् । शक्तिभासपत्रुणवर्णाशुक्रमयानकम् ॥ ८६ ॥ मेघदेविममात्रा  
 सकटाढं धूपनिर्मलम् । असाक्षमत्तादुरामयेयराधियसङ्कुम्भम् ॥ ८७ ॥ सिद्धान्तमर्दोत्कटिनिष्पन्नमृदधिक्रमम् । सततपदकवचकोपा  
 न्वनमदराकम् ॥ ८८ ॥ त्रिमिषिषेपकम् । अथ सङ्गमशीष्पीरं, स्पर्शान्नं वदुषकः । अवाद्यागतमभ्यर्च्ये, दृष्टमन्त्राभिरनुसैः ॥ ८९ ॥ ततः  
 कनकोदरेषोक्त—मो मो विद्यापयस्त्वर्ण, सखीममव सन्मुखाः । सोऽय चटुलमुचान्तः, साभय सुन्दरां गतः ॥ ९० ॥ दशार्द्धि—सकोपा  
 न् गवाः पूर्वं, मामसमाप्त मण्डपात् । किंवास्ते मीळकेनैव, मत्सराप्याववेतसः ॥ ९१ ॥ त एवे स्तेषुतः सर्वे, पयासोप्य परस्परम् ।  
 समागावाभ्यर्क्षास्ता, इवां मदनमच्छटीम् ॥ ९२ ॥ एतेषामिदमाहूय, किञ्चार्प गुणधारणाः । दीनो भूगोषटोऽम्बरो, नव विद्यापये  
 तमाः ॥ ९३ ॥ सर्वेते निपवन्त्यत्र, भाववाद्याहमन्त्रिरे । प्रेरयामः क्षणाद्यामरुका इव नायसान् ॥ ९४ ॥ अथसारयव नगन, भूमि  
 गोचरमुत्तमाः । सन्तो मृगमभीषा हि, सिद्ध्यामान क्षणोपरम् ॥ ९५ ॥ अथ वत्सामिनो नाक्यमाकृष्य रज्यशालिनः । समुत्ससितुमा

रण्यास्ते भूमिष्ठा नमःप्रदाः ॥ ९६ ॥ अत्रान्तरे मया भिभिषत्—अहो न सुमर्त जातमिषमेतेन हेतुना । एवो मरुकारयेऽस्मीर्षा, प्रक-  
 योऽय मविष्यसि ॥ ९७ ॥ अयोत्पठितुक्कामेपु, वेपु वसन्मुखं वया । नमःस्थिते पयनीके, यथाव दग्निबोष मे ॥ ९८ ॥ निर्वर्षापाद-  
 गवाटोयं, निःशब्द स्थिरलोचनम् । केनभिषेप्यतां नीय, कान्तिरत्ना दृढकदम्बम् ॥ ९९ ॥ एवो निष्पन्नमभ्यास, उत्तैन्यद्वितय वया ।  
 भूत्याकाशमन्योऽय, विषन्त्यसमिधेवते ॥ १०० ॥ अय वेपां नमःस्थानां, गवोऽर्द्धं दृष्टिगोषरम् । सम मदनमज्यर्षा, निविष्टो वरविष्टरे  
 ॥ १०१ ॥ एवोऽस्मदर्थानांवेपां, सर्वेषां मत्तसि स्थितम् । अहो रूपमहो मूर्तिरहो कान्तिरहो गुणाः ॥ १०२ ॥ अहो धैर्यमहो शैर्यं,  
 मरुत्पाल महात्मनः । अहो मदनमज्यर्षां, पर्यालोचिवकान्तिरा ॥ १०३ ॥ ययाऽयमीदृशो सर्वा, दृष्टीयः स्वपटीक्षणा । अमुनैव वय  
 नून, कान्तिरा निजवेमता ॥ १०४ ॥ तथार्द्धि—सम मदनमज्यर्षां, ददयते मुत्ककः स्वयम् । अय सह वयस्तेन, राजमुन्नो न शोषका  
 ॥ १०५ ॥ एवुष्ट कृतमकामिनैरत्य वहीदृशम् । जिघांसित मद्यापायैः, प्राप्तमेवहि वत्ककम् ॥ १०६ ॥ एवैव स्वासिकोऽस्माक, वय  
 मस पद्यायः । एव चिन्तयतां वेपां, प्रद्याम्यो मत्सयानक ॥ १०७ ॥ एवस्ते वक्ष्यन्मादेव, कनचिन्तुत्ककीकटाः । आगत पादयो  
 स्तूय, पतिता मे नमःप्रदाः ॥ १०८ ॥ अयानिषासुमारण्या, कृतादे कृत्कृत्मकाः । कान्त्यय मुत्ककं नाय ।, सुत्पास्ते कपुना वयम्  
 ॥ १०९ ॥ एवकृत्पटिव दृष्टा, सपयो गवमत्सरः । जावम् मुत्कको मद्र ।, ससैन्यः कनकोदरः ॥ ११० ॥ एवो नमःप्रदाः सर्वे,  
 क्षमयन्तः परस्परम् । भानम्योवकृत्पूर्णंशा, सजाता वाचवाधिकाः ॥ १११ ॥ य व दृष्टान्वमकाकर्म, स राज्ञा मधुवारणाः । जनको  
 मे ससापावकृदेषादमनिदरे ॥ ११२ ॥ एवम्—मयाऽम्बरपरै सर्वैः, कृत्वाऽमुत्पानमादरात् । सर्वे मदनमज्यर्षा, नव घापीद्विप  
 दृजम् ॥ ११३ ॥ एवोऽय्याऽय पुरैः सार्ध, शेषकोकाम दे मया । सेनैर्य प्रणामादिविधिना बहुमातिवाः ॥ ११४ ॥ एदनन्तरं च—

भानन्पुष्पकोम्लेहसुन्दरं वपुः । हयनीरुसाधेय, वाधेनाभिन्नं कवम् ॥ ११५ ॥ वधः शुभयेष्वाधै, पूषान्वो निरिचसदा । सुदो-  
 विनयनमेव, यथावृषो निवसिषः ॥ ११६ ॥ अथ ते श्वेचराः सर्वे, वाकस्याम प्रभाविताः । वेधोऽथ स्वाभिकोऽस्माक, रासुयो र्जीर  
 दासकः ॥ ११७ ॥ अथ मन्यः कृतायोऽर्थं, भूषिताऽनेन मेमिनी । अधिन्त्यवदधीर्योऽय, मासि खेदोऽप्यमूढराः ॥ ११८ ॥ वधो-  
 न्मरुदरेरेव, स्मूययाव विमोक्ष्य माम् । काशः प्रह्लावभाषणो, जननी च सुमातिनी ॥ ११९ ॥ यथादि—अन्तःपुरं पुरं सैन्य, वाक-  
 दृढैः समस्तुजम् । मन्त्रादि वादधी दृष्ट्वा, सखाय हयनिधयम् ॥ १२० ॥ वधः सर्वे प्रमोदेन, सप्रमोदे वधा पुरे । प्रवेष्टुनामाकोपणा,  
 सना किं किं न कुर्याते ॥ १२१ ॥ यथादि—गानधारिण्ये प्रियसि क्षिते, मयि च वावपुते अयदुच्छरे । करिबलान्तरावर्तितुषपरे,  
 करिभक्तानिदिते वयिवाजने ॥ १२२ ॥ विविधकासनिक्तसपरायणे, प्रमदनिर्मलगायनव पुर । वदस्मिन्पुष्पमादस्यमनोप्रदे, विपुषदुम्बसमे  
 निजिष्ठे जने ॥ १२३ ॥ ननु परित्युष्टमेव वधा नैव, प्रमुषिवाप्रयवोक्ताममरोदुरैः । अमरकोपसमानमिदं वन, पुरवर्तं च मुनेषि वि-  
 निधिवम् ॥ १२४ ॥ प्रमुषितव्यपयोपरवाशमिध, प्रमदवृषपैः प्रमदाजने । इति पिक्कासयवेर्बकोपने, प्रविशसि स स सखजनः पुरे  
 ॥ १२५ ॥ वधो विधायैः साय, सखन्तुः कनकोपरः । वाधेनाप्रमिषोऽन्तर्य, वानसन्मानपूजनैः ॥ १२६ ॥ किं यदुना—सख  
 रत्नमय किं वा, किं वाऽऽवृषविनिर्मितम् । किं वा सुकरसापूर्णं, किं वा शान्तोत्तरासिगम् ॥ १२७ ॥ गगनाकारकं पिपे, पूष्पसन्मनो-  
 रवम् । भवेऽऽदीवसद्वेदे, कश्चिद मम वदिनम् ॥ १२८ ॥ यथादि—समाप्तं कानसपत्न, कन्या मयममच्छटी । वामाव रमयसीनां, स  
 पूर्णोऽर्धमनोरवः ॥ १२९ ॥ यथा—तावाम्भाविजवोपेण, वपुष्योरसुसोऽव । रिपूणां प्रसिधातेन, आतथिचोरेसयो मद्रान्  
 ॥ १३० ॥ वपुष्माहासन्तोहपरिपूरितमानसाः । स्विता प्रवोषे वावाभिसद्विषोऽय ययेच्छया ॥ १३१ ॥ वधः सफलासमीपताये देव

मित्रं मया ॥ १३३ ॥ उभयनिर्वाहोऽप्यत्र, प्रभुत्वं सह कान्तया । क्व प्रमादकर्मण्य, वाताम्बावत्त्वनासिक्म् ॥ १३४ ॥ मया  
 वातः प्रमादोऽसौ, भस्मसीपं कुर्वन्तरः । स मां प्रज्वाल हृष्टोऽय, मया स्मृतः स कीदृशः ? ॥ १३५ ॥ माधुषाधि मया पञ्च, भो ह  
 दानि परिस्रुष्टम् । अथ पुमांसो द्वे भार्यौ, वैश्वेवं वर माधिवम् ॥ १३६ ॥ यदुव—य एव सुकसन्धोदसगरो गुणधारये । संजातोऽय  
 क्वोऽस्मादिः, स सर्वो नात्र सत्यः ॥ १३७ ॥ वचाऽप्यवति परिकथित्व पूर्वं परत्र च । सपथेव सवस्मानिच्छादिव भो कुम्भपर  
 ॥ १३८ ॥ एव दानि सुषाणानि, माधुषाधि ममाप्रवतः । गगन्यवर्णनं शुद्धकवोऽहं गुणधारण ॥ १३९ ॥ न जाने कानि वान्यत्र,  
 माधुषाधि विद्यतः । वक्ष्यन्ति सदा दानि, कार्याणि वर भावतः ॥ १४० ॥ मयोक्त कथ्यमानेषु, वातादिभ्यस्त्वयाऽनुना । स्मरो  
 विद्याय वै येन, माभार्योऽस्य परिस्रुष्टः ॥ १४१ ॥ वरो निवेदित्वस्तेन, विद्वत्सहावपुरिते । वाताऽऽस्माने निवसन्तो, नदयस्तेन भीमवा  
 ॥ १४२ ॥ वरवाणानिभिः सर्वैरेकवन्मया वरा । निबन्धुक्का विनिधित्व, स्मारायोऽय प्रमादितः ॥ १४३ ॥—अनुकूलानि वर्तन्ते,  
 देवतयाभिः कानिधित् । वैरीद्वौ कुमारस्य, कृष्ण कन्यापमादिका ॥ १४४ ॥ वैरेव प्रियसिन्धाय, कुमारस्य निवेदित्वम् । वीपात्समा  
 मरे सर्वं, यथाऽस्माभिरिह कृतम् ॥ १४५ ॥ एववाक्यं मे शिष्ये, पूर्वार्थविरोधतः । स्मृत्वा कामलसावाक्य, सत्येवः समजायव  
 ॥ १४६ ॥ वरो मया विनित्व—कनकोदरयजेत, किं चत्वाहि पुरा वया । किं वा कुलधरेणाय, पञ्च हृष्टादि दानि वै ? ॥ १४७ ॥  
 कानि वा देवतयाधि, ममेव कार्यधिभूतम् । अनुकूलानि कुर्वन्ति, किं वीरीकस्य कारणम् ? ॥ १४८ ॥ सर्वथा सर्वमेवेव, गहन प्रसि  
 भासव । ममाद्यानि न जानेऽहं, किमात्र वर कारणम् ? ॥ १४९ ॥ एव च शिष्ये—यथावीन्द्रियवेधारे, कथितप्रथमि सन्तुनिम् ।

सतः पृष्ठाऽऽत्मसन्नेहमेन कर्मा निनिर्वयम् ॥ १५० ॥ तदेवविषसद्गुत्पासन्मृदकसितोऽप्यम् । तदा चाचारिर्निर्दिष्ट, स्वप्नाय च न  
 दूयेय ॥ १५१ ॥ अथ ते क्षेत्रयाः सर्वे, शिनाभि कविषिचरा । कनकोदरसमुष्ण, ससिंथा मम नन्दि ॥ १५२ ॥ अथान्तराक्षुवत्ता  
 दधीक्रान्तस्ते यथेच्छता । स्रक्षानमन्यदा माता, भुलभाष प्रपथ मे ॥ १५३ ॥ ततो मदनमच्छया, साध भ र्दसिगार । निमग्नानाम  
 रक्षेव, कीचका नाभिश्च वासराः ॥ १५४ ॥ बर्धते च तया सार्धमाक्षारोऽमृतवरायकः । सम्राट्पदसिन्धुनासाट, प्रमादन्था मनोरट ॥ १५५ ॥  
 चावशित्वित्तकार्यक, प्रथवाकिंकमुज्ज्वलः । न मे तदा शिखाकाशि, शिन्वागपोऽर्ध विपत ॥ १५६ ॥ किं च—विषाधरोपनीर्दय,  
 मानसमूपासिनिर्मम । सधूर्णसर्वकामसाक्षात्ता पुनिसुखासिका ॥ १५७ ॥ तदेव कीर्त्यर्दानात्मा, प्रविष्टः सुखसागर । शिखोऽम् तद  
 चार्धद्वि, समार्धः सङ्कुचपरः ॥ १५८ ॥ अन्यदा मित्रगुञ्जत, गवेनादावमन्दिरे । समार्धेण मया दृष्ट, फट्नामा मुनीश्वर ॥ १५९ ॥  
 ततो शिनयनमोऽम्, मपिपस्य पटीश्वरम् । तस्मात्ते मूढेष्टे दृष्टे, निपण्णो धर्मकान्तया ॥ १६० ॥ अथ प्रह्लादभननी, भवसः कन्य  
 सता । सिद्धिदा मे यतीन्नेष, तेन सद्धर्मोपेयता ॥ १६१ ॥ ता पाकपयवा मरे, विदुद्वानन्वराजना । भाविभूतो मया दृष्टो, पुनद्यो  
 वरकान्तयौ ॥ १६२ ॥ ततश्च प्रकभिषावौ, यथाऽप्य स सदागमः । अथ यासौ मद्राभागा, सम्पदयमनामकः ॥ १६३ ॥ अथ द  
 यमौ मावेन, यौ मया वरकोचने । गुरुवाक्यप्रमुदत, द्विषकारिवया नरौ ॥ १६४ ॥ ततश्च—वेदनीयनन्त्रन्त्र, यदाश्रिः चरिणी  
 विवः । अः सत्सनामा यवेन्द्रा, सधुरे विगुणाक्षये ॥ १६५ ॥ सोऽस्तन्व मयि रक्तात्मा, मित्रभाषविधिरसया । धूमनेन मया साध,  
 सप्रमोदेऽज्जुपागतः ॥ १६६ ॥ माक् केचन सितेभूषः, सोऽकार्या मे सुखासिक्ताम् । भाविभूतवरा जावो, यदा चावौ सुपागययौ  
 ॥ १६७ ॥ ततश्च—या स्रकन्धवरमौपयोगवन्त्या सुखासिका । यदापी गुरुभूते मे, साऽन्यगुणवता गता ॥ १६८ ॥ अन्यच्च—यदा



शुक्लपरेष्वापि, महत्तमसदागमौ । तथा महत्तमचर्या, तौ प्रपन्नी यथा यथा ॥ १६९ ॥ ततोऽधिकवर्तं शुटकाद्याऽत्र स च मे मुनिः ।  
 विशेयवः कृतोत्प्रेष, भूयः सद्यर्मवेक्षनाम् ॥ १७० ॥ अत्राभ्यसे—विषयवृत्तिमहाटन्त्र्यां, कीनलीनाः प्रकम्पिषाः । मयेन रोषक हित्वा  
 महामोहादयः स्विताः ॥ १७१ ॥ तत्रम—आग्निप्रवर्गयमेन, मन्त्री सद्गोषनामकः । इदमुक्तकथा भद्रे, मनाक् संशुटपेक्षसा ॥ १७२ ॥  
 यदुव—सुन्दरोऽभ्यसरो गन्तुं, विद्याभाषाय देऽनुता । आर्ये । ससारिणीवत्स, पार्थ्ये गाढ कलप्रवः ॥ १७३ ॥ तथाहि—शुभीमूषाऽ  
 नुना किंविषयवृत्तिमहाटनी । निरुषो रोषकोऽप्याकमीचद्रे च साधवः ॥ १७४ ॥ त कर्मपरिणामाक्य, तवः पुष्पा नरेन्दरम् । गच्छ  
 स्व शीप्रमादाय, विद्यामेनो सुकल्पकाम् ॥ १७५ ॥ कल्पसाधुसमीपसः, सान्प्रव स चरैर्मया । विज्ञातस्यत्र आनन्दस्य, मयन्त प्रसिप  
 त्सवते ॥ १७६ ॥ सद्गोषेनोदित देव, शुक्लमेवम सधवः । किं तु कालविलम्बोऽत्र, शुकोऽप्यापि प्रयोजने ॥ १७७ ॥ स हि पुण्यो  
 दयस्वत्स, स च साधो दयस्वकः । किञ्चन्तमपि तत्काकमेवौ योगफलप्रवौ ॥ १७८ ॥ अतोऽप्यापि वलादेवौ, गृहे च गुणधारणम् ।  
 सध्यासिसुदसपूर्व, वात्सल्याकारविष्णव ॥ १७९ ॥ एव च स्थिते—अभ्यासे स गृह यावदनुवर्तनया चयोः । प्रख्यासिविषयप्राम,  
 सुदहेतु च मन्वते ॥ १८० ॥ साधन शुक्लते देव, मम गन्तु तवस्थिके । नयन न च विद्याया, जायटीसि कयचन ॥ १८१ ॥ शुभमम् ।  
 केवलं प्रेक्षयामेय, देवेन निजधारकः । तदन्तिकेऽनुना पूर्ण, गृहस्थिर्मः समार्थकः ॥ १८२ ॥ प्रसाधोऽस्यानुता देव, स्वस्वमीपेऽसिप्तु  
 भूतः । गन्तु सपरिचारस्य, वर्तते कार्यसाधक ॥ १८३ ॥ गवमात्रमिम देव, स मायेन प्रपत्सवते । मविष्यतीष्टा वत्सास्य, आर्यो  
 सद्रुणारकता ॥ १८४ ॥ किं च—यदा सदागमस्यावचस्य पार्थ्ये गवः पुरा । सदाऽप्य द्रव्यवस्तेन, भूरिभाराय विलोकिवः ॥ १८५ ॥  
 यदा तु वत्सार्थगतः, सन्ममर्शाननामकः । महत्तमोऽतिवात्सल्याभीवस्तेनाप्यव यदा ॥ १८६ ॥ पत्स्योपमापुषकस्त्वे च, कश्चित् तेन मा

वरः पद्माऽऽत्मसम्भवेनेन कुर्यां विनिर्णयम् ॥ १५० ॥ वरदधिपसङ्कल्पासम्भवेऽर्चिताऽप्यहम् । वरा कारार्तिनिर्दिष्ट, मन्त्राय स न  
 द्रुमे ॥ १५१ ॥ अथ ते देवराः सर्वे, विनामि कृतिविद्या । कनकोदरसमुद्राः, सन्निधौ मम मन्त्रिन् ॥ १५२ ॥ अथ नारायणः  
 वशीणिवासे यथेष्टभया । सत्कान्तमन्त्रा प्राप्ता, भुलभावा मप्य मे ॥ १५३ ॥ वरा मदनमन्त्रा, माय म र्छामन्त्र । निमज्ज्याम  
 रस्मेर, कीचया दानिवा वासराः ॥ १५४ ॥ वर्यते च तथा साधमाद्रोऽमृतवायवः । सद्भावर्यवनासारः, प्रमादन्था मनोहर ॥ १५५ ॥  
 दायवित्तिककार्त्तल, प्रणवास्त्रिजगद्भुज । न मे वरा विद्याकाशि, विन्यागभोर्ध्व विपरा ॥ १५६ ॥ किं च—विद्याभारतनीर्ध्व,  
 सान्तमूपाक्षिभिर्मम । सपूर्वसर्वकान्तवाज्याणा वसिष्ठुदासिका ॥ १५७ ॥ वरव र्छीत्यर्चनात्मा, प्रविष्ट सुखसागर । सिरोऽह नद  
 चर्माङ्गि, सन्मर्गः सङ्कल्परा ॥ १५८ ॥ अन्त्रया मिश्रयुक्तेन, गवेन्मादाहमन्त्रिन् । समार्थेष मया दृष्टः, कृन्द्न्ममा हुनीश्वर ॥ १५९ ॥  
 वरो विनयनमोऽहं प्रणिपत्य धर्मीश्वरम् । वरमाये मूलके हृदये, निषज्यो धनकान्तया ॥ १६० ॥ अथ प्रह्लादवर्त्तनी, अरस कृन्द्  
 सक्ता । सिद्धिदा मे धर्मीश्वर, तेव सद्धर्मोपेयता ॥ १६१ ॥ वां याक्ययथा मन्त्रे, विहृदेलान्तरालना । आदिभूतौ मया दृष्टौ, दुनयो  
 वरजान्तवौ ॥ १६२ ॥ वरव प्रलभिमित्रावौ, यथाऽय स सदागमः । अयं यासौ मद्राभागाः, सन्मयादधाननामकः ॥ १६३ ॥ अथ म  
 पमौ भावेन, यौ मया वरजोऽनेन । गुरवाक्यममुद्धन, द्विवकारिवया मयौ ॥ १६४ ॥ इत्यथ—वेदनीयनेन्द्रस्य, परास्मिः परिक्री  
 र्तिवः । सः सखनामा एवेन्द्र, सत्युरे सिमुधाख्ये ॥ १६५ ॥ सोऽस्तन्वं मयि रक्तात्मा, निषभाषविधिरसया । पूषमय मया साय,  
 सप्रमोदेऽमुपागारः ॥ १६६ ॥ प्राङ् कन्दर्प सिरोमूषः, सोऽकार्पात्मं सुष्मासिकाम् । आधिर्भूषकादा कावो, यदा कावौ सुपापवौ  
 ॥ १६७ ॥ वरव—पा सत्ककद्ररक्षोपयोगकन्त्रया मुद्रासिका । वरानी गुरुमुखे मे, साऽनन्त्यगुणार्ता गवा ॥ १६८ ॥ अथव—वरा

कुम्भपरत्नारि, महत्तमसद्भागमौ । तथा महत्तमधर्म्य, तौ प्रपन्नौ यथा मया ॥ १६९ ॥ एवोऽधिकवर्तं तुष्टकावाऽहं स च मे मुनिः ।  
 विशेषतः कृतोत्प्रेष, भूय सकर्मदेशनाम् ॥ १७० ॥ अत्रान्तरे—विषयवृत्तिमहाटन्त्र्यं, लीनलीनाः प्रकम्पिताः । मयेन रोषक हित्वा  
 महाभोगादयः स्थिताः ॥ १७१ ॥ एतच्च—आदिप्रपन्नोऽजेन, मन्त्री सद्बोधनामकः । इदमुक्तत्वा मदे, मनाक् सगुष्टप्रेषसा ॥ १७२ ॥  
 यदुच—सुन्दरोऽन्तरौ गन्तु, विद्याभावाय वेऽनुता । आर्त्तं । संसारिजीवस्य, पार्श्वे गाढ फलप्रद ॥ १७३ ॥ तथाहि—शुभीमूढाऽ  
 नुना किञ्चिच्चतुष्टिमहाटवी । सिद्धौ रोषकोऽस्माकमीषदरे च शत्रवाः ॥ १७४ ॥ स कर्मपरिणामात्म्य, तव दृष्ट्वा नरोत्तरम् । गच्छ  
 त्व शीघ्रमावाय, विद्यामेतां सुकृत्यकाम् ॥ १७५ ॥ कन्दसाधुसमीपस्य, सान्प्रत स चरैर्मया । विद्यावत्तत्र चावश्य, भवन्त प्रविप  
 त्सते ॥ १७६ ॥ सद्बोधेनोदितं देव, मुक्तमेवम सहायः । किं तु काळविलम्बोऽत्र, मुक्तोऽप्यापि प्रयोजने ॥ १७७ ॥ स हि पुण्यो  
 इयत्स्य, स च साधो वयस्यकः । कियन्ममपि वत्कालमेवौ भोगकर्मप्रदौ ॥ १७८ ॥ अथोऽप्यापि बलादेवौ, एवै स गुणधारणम् ।  
 सध्यासिसुखसपूर्व, वात्सल्याकारविषयतः ॥ १७९ ॥ एव च स्मिन्ने—अध्यासे स गृह यावदनुवर्तनया वयो । सध्यासिविषयमान,  
 सुखदेवं च मन्यते ॥ १८० ॥ वाक्त्र नुन्यते एव, मम गन्तु सवन्तिके । नयत न च विद्याया, आपटीति कथयन्त ॥ १८१ ॥ नुनमम् ।  
 केवल प्रेम्भवाभेय, देवेन निजद्वारक । सवन्तिकेऽनुना पूर्ण, गृहिष्यमः समार्थकः ॥ १८२ ॥ प्रकाशोऽस्माधुना देव, वत्तनीयेऽसिद्धि  
 न्तरः । गन्तु सपरिवारस्य, सर्वे कार्यसाधकः ॥ १८३ ॥ गतमात्रमिमं देव, स माधेन प्रपत्सते । भविष्यतीष्टा वत्सास्य, माया  
 सद्गुणारक्तता ॥ १८४ ॥ किं च—यथा सद्गुणमकावचस्य पार्श्वे भवाः पुरा । तथाऽय प्रपत्सतेन, मूर्ध्निवाय विजोकिचः ॥ १८५ ॥  
 यथा तु धर्माधर्मावः, सम्भवदर्शननामकः । महत्तमोऽविद्यात्सल्यामीवस्तेनाप्यय एवा ॥ १८६ ॥ पत्न्योपमपृथक्स्वे च, छद्मिन्ने तेन मा

वयः । प्रथमो गृहिषमोऽयम्, पूरमासीत्ततः परम् ॥ १८७ ॥ यदा यदा पुनर्दृष्टौ, मद्दयमसहागमौ । असद्वत्ता भावयो वायः, प्रथमोऽय  
 वदा वदा ॥ १८८ ॥ अमुना कञ्च वेव', यतोऽप्यर्थे सहागमः । तेनैव हन्त्य वत्पार्थे, विद्येयण प्रदीयत ॥ १८९ ॥ तत्पूर्वं यातु  
 वत्पार्थे, रत्नवत्तेषु व गुणैः । प्रकाशो भावयो वद, ततो यान भविष्यसि ॥ १९० ॥ अन्यथ—मद्भासोदादिसत्त्वासाधिवपुर्धर्विगुदवा ।  
 गृहिषमोऽपि वत्तत्वे, मदेदेव । विद्येयसः ॥ १९१ ॥ यथा—स स्यादभिमुतोऽस्माकमधेयेषु विदधया । अनेन गृहिषमेष, पाथसेन  
 प्रजोदितः ॥ १९२ ॥ चेतःसुखासिका गुर्वी, सन्नुदितः कर्मसत्तानवम् । भयभीतेरभायव, गृहिषमेषो वै गुणा ॥ १९३ ॥  
 वसात्पत्त्याप्यतामेव, गृहिषमेषवत्तिके । वासाभोऽप्यसर्द कात्या, यस्मात्सर्वे वय पुनः ॥ १९४ ॥ वसिद् मन्त्रिणो वाक्य, सुखा सर्मा  
 शिनिर्मकम् । वासिन्नमर्मपात्रेन, मन्त्रिणो मित्तवारकाः ॥ १९५ ॥ स कर्मपरिष्ठापस, गत्वा मूढ वदावया । समाराधो ममान्यथ, वद्रे  
 वाकावमन्त्रिरे ॥ १९६ ॥ अत्र कन्दमुनेर्मावी, शृण्वतो धर्मवेक्षनाम् । आसिभूयो ममापेऽसौ, मुनिता च प्रकाशितः ॥ १९७ ॥ गु  
 णारकतया मुच्छका वावृणमादुषैः । मयाऽयः प्रक्षिप्तोऽसौ, धनमुपुखा तरोचमः ॥ १९८ ॥ यथा कुन्धपरेणापि, कान्तया च समान  
 त्ववः । प्रथमो गृहिषमोऽयो, जाणोऽन्यत् सुयासिका ॥ १९९ ॥ अथ कन्दमुनिः पृष्टः, सन्नेह पूरयिन्वितम् । व मया कल्पसवद,  
 सद्भाषार्थमुत्तवा ॥ २०० ॥ ततः कल्पमुनिः प्राह, क्षमार्थस्य विनिर्भयः । अस्मादीन्निद्रयोवेयार, विना नैवेपकन्त्यवे ॥ २०१ ॥  
 सन्निधे मे केवलाकोकमात्करा वरसुरथः । गुरवो निर्मला नाम, पूरवेक्षसिद्धारिणः ॥ २०२ ॥ एव य—उरपादमूढ पासासि, वन्द  
 लार्थमह यदा । वदा यान् प्रथमिष्यामि, मद् । पादकर्मसपम् ॥ २०३ ॥ यतः—योऽय क्षमाद्वयाज्यावः, सन्नेहत्वे मनोगतः । विविक्त  
 वस मागार्थ, सिद्धासन्निध मद्भाषितः ॥ २०४ ॥ मयोक्त—अहन्त्य । यस्मि तेऽप्येव, गुरवसे कथयत । आगाप्येपुसवत्तत्सासुन्त्यपादपि

सुन्दरम् ॥ २०५ ॥ मुनिपाह महाभाग !, गणेश्च वचनेन वे । गुरुम् विद्याप्य वे नूनं, पूरयिष्ये सन्तारयम् ॥ २०६ ॥ अथवा कथं  
 छाद्योक्तोक्तिप्रवृत्तिव्यवहारः । विद्याप्य भवद्विषयभागमिष्यन्ति वे सप्तम् ॥ २०७ ॥ केवलं गृहिष्यतेऽथ, सन्त्यगदर्शनसमुत्ते । सदागमे  
 न कथय्यो, भवता दासदाहरः ॥ २०८ ॥ एतन्म—इह कन्मुनेषां कथमाकर्ष्यं मुनिपेक्षकम् । महाप्रसाद इत्येव, शुभाणोऽर्द्धं समार्थकः  
 ॥ २०९ ॥ समिन्धम ददा भद्रे !, विनयान्नमसकः । प्रणम्य य महाभाग, कान्तान्म्रवने गतः ॥ २१० ॥ मुगमम् । तदा सोऽपि  
 महाभागो, मुनिर्मुनिवरैर्गुणैः । गतो निर्मकद्वीपा, गुरुणा पादबन्धकः ॥ २११ ॥ अथ कालकृमाग्नद्वं, स एवा मनुष्यारणः । तदा  
 लोकान्तरमूढः, पिता मे कञ्चनमकः ॥ २१२ ॥ एतो राज्येऽभिषिक्तोऽहं, बन्धुमभिमतवचनैः । महानन्वविमर्शेन, हर्षनिर्मरमानसै  
 ॥ २१३ ॥ एतः परिभव राज्य, एत मे राज्यमण्डलम् । क्षत्रवः किङ्करीमूढा, वशीभूताश्च स्नेहयः ॥ २१४ ॥ किं बन्धुना ?—मरुतो  
 ऽपि समाज्ञायां, वचन्ते नरमसकः । वर्षेते कोलवृक्षौ च, जायन्ते सर्वसन्धवः ॥ २१५ ॥ किं य—नाम्नुभिर्दं कविब्राम, न कृता  
 कोपदाबध्ना । दृष्टिद्वयापि मे जात, राज्य कष्टकषर्षितम् ॥ २१६ ॥ तदाप्येवविधेऽन्यसमुत्ससन्त्योहकारणे । विषमानेऽपि नो जात,  
 मम औत्सङ्गिक मनः ॥ २१७ ॥ किं वरि ?—सदागमे सर्वोद्योगी, सन्त्यगदर्शनेन तत्परः । पुण्योदयेन सन्तुक्तो, गृहिष्यते कृता  
 दत्तः ॥ २१८ ॥ सातेनाकाशितो नित्य, शिवोऽहं सङ्कलपरः । सम भवतमथर्था, देववदिवि कीकया ॥ २१९ ॥ एव च सिष्ठवस्त्रध,  
 ममस्नानन्दसागरे । सास्त्राभ्ये मम पार्श्वेऽङ्गि, भूरिकालोऽविलिखितः ॥ २२० ॥ अथान्यथा समास्थाने, प्रविश्य प्रियदायक । कल्प्याणो  
 नाम मामेव, प्रविपत्य व्यञ्जिष्यत ॥ २२१ ॥ एतुत—आह्वायमन्दिरे देव !, देवदानवपूजिताः । समागता महाभागा, निर्मखा  
 नाम सूरयः ॥ २२२ ॥ वष्टुत्साहं ददा भद्रे !, कल्प्याणवचन मुदा । न मामि हरे नो गेहे, न पुरे न जगत्त्रये ॥ २२३ ॥ एतोऽ

प्रथमसमुक्त, वसै संतुष्टयेवसा । शीतारणा मया कथं, दक्षिण विषयाधिन ॥ २२४ ॥ वग नर एतादृ मरुतार मरु १  
 निर्वाको नगायकदे । सुदीर्घा पादवत्क ॥ २२५ ॥ अपामावृत्त द्विष्य, मास्तान्नपरमाभर । व गृध्रा मरुता हताः, क्वच सि र्  
 वंका ॥ २२६ ॥ दक्षिण सुनिवृत्तेन, वेवदानपरवदे । वेवसा मयापपाद्रव्य, इवात्मा भद्रमनान् ॥ २२७ ॥ वरुध—१११ १११  
 माभ्युपयिह सह रात्रये । अह मरुता विद्यादेव, मातन्त्र विपुलभक्तम् ॥ २२८ ॥ वरुपा—एव रात्रि हर्षित व वरुध भ मरु  
 मरम् । वरुः कवोचयसह, प्रसिद्ध सूर्यवमर ॥ २२९ ॥ वरुो मगवतः रात्रयन् हारणावतारनन । वरुता मय क्वच एवम्, न  
 भन्त्य मुनिमुद्रकान् ॥ २३० ॥ कव्याशीर्वाकृष्टात्मा, मूयो नत्सा मुनीभरम् । मीढाः सार्धिराष्टिर् निवन्त एवम्भूत ॥ २३१ ॥  
 वरु कर्मनिपोचाराकारिणी मन्त्रवेदिनाम् । अमृतभाविनामयन, गुरुत्वाऽऽरुपि वरुता ॥ २३२ ॥ क्वच—१११ १११ ॥ एताव भन्तो  
 “नास्तन्मत्स्यवत्प्रसे । क्वचुरत्सदुःखोपवृत्ते मरुचक्रके ॥ २३३ ॥ मरुताय भये ज्ञान, द्वायो रागनिष्यन्धनम् । तादृश  
 वरुसो हेतुर्विभोगाय समगमः ॥ २३४ ॥ निमिष विपदा घोरे, दक्षिणां सप्तसागरदः । सप्तान्नि ददा दुःखाय, परा  
 “सांसारिक क्वनाः । ॥ २३५ ॥ एवं च भित्ते—अमूर्ताः सर्वमाययास्तथावपरिचरितम् । भित्तलम् । मरुतामात्रः, क्वच मुल  
 “मासवे ॥ २३६ ॥ सर्वद्वन्द्वसिन्निर्मुक्ताः, सर्वान्नायाविबन्धिताः । सप्तसंक्षिप्तसाक्षात्पाः, सुख एवो हिमुचयद ॥ २३७ ॥ हि भ—  
 “अन्मात्रावे वरासुलोत्तमावो हस्तमायव । वरुभावे च निःशेषदुःखायावः सदैव हि ॥ २३८ ॥ वामानरमायम वरुभा न हि द्वा  
 “यवः । व्यावाभाभाबसंसिद्ध, सिद्धिर्मां मुक्तमिष्यते ॥ २३९ ॥ अपय—एवमाकाशवदपयमा निःशेषा मरुचक्र । संतुष्टा भ्यान्वो  
 “येन, प्रथमासुपयाधिनः ॥ २४० ॥ निःसङ्गा निरुपद्रवा, निर्मयीभूतयेवसा । मुदितः क्वचं कोऽ वदितोऽपि एतावत्प्रमः ॥ २४१ ॥

“सुकुलेन च गान्धर्वि, सर्वे जगति वन्द्यः । तत्र नास्तेषु संसारे, विहायैका सुसामुदात् ॥ २४२ ॥ तस्मिन् मो महासत्त्वा !, वि  
 “निश्चित विधीयताम् । विमुच्यासारससारं, मन्त्रिः सा सुसामुदा ॥ २४३ ॥” ततो अरे ! तदा महा, प्रजन्तून्वर्कर्मणः । इव मग  
 वतो वासव, विश्वेऽनन्त सुच्यापितम् ॥ २४४ ॥ विश्वित न मया—करोमीव अवापिष्ट, मन्त्रैः सुसकारणम् । ततः क्व मया  
 अरे !, प्रजन्त्यामिसुरा मनः ॥ २४५ ॥ अत्रान्तरे विरसववसि मगवसि वचनसुभासेकवर्षिणि निर्मकसुरिकेवल्लिनि कन्धमुनिना वदकर  
 कमलमुकुल विषाय दृष्टादपेडभिद्वितमनेन—मगवन्निह जगति कस्य दुःशकः काकविक्रमः कर्तुं !, मगवतोक्त—विहासोर्गुवमूले  
 ससन्नेहस्य, कन्धमुनिर्—एषेव ततो गुणधारणमहापञ्चसेवन्ती सस्यमपनेनुभर्द्भि मगवन्तः, मगवतोक्त—एव किञ्चि, मयोक्त—  
 महाप्रसादः, तदा कन्धमुनिं प्रकमिद्वितं—मगवन्तानुगृहीतोऽह मगवता मगवन्त प्रसयता सुवरात्मनेन वचनविन्यासेन, कन्धमुनितोक्त—  
 महापञ्चामहार्हा एव यूय, सान्प्रवं मगवद्वचनमाकर्ण्यतां, छिद्योऽह प्रह्वये नवोचमाह, ततो मगवतोक्त—महापञ्च ! गुणधारणाय  
 ते सन्नेह, यथा यानि कनकोवरपत्नेन सप्ते दृष्टानि चत्वारि सानुयापि यानि कुल्वरेण पञ्चोपकञ्चानि कवमानि यानि कस्य वा मही  
 यकार्परेपरनिर्वर्तकानि किमिति कैकेन चत्वारि अपरेण पञ्च यानि विजोकिजानि तथा किं देवरूपाणि यानि किं वाऽर्च्यभूत्य सप्तमान्न  
 चह्वनपीति संक्षयः, मयोक्त—मगवन्नेवमिव यदापिष्ट मगवता, मगवानाह—महापञ्च ! एषेव ततो महर्षीय कथा कस्य निवेद्यतां कथ  
 वा भूयते !, मयोक्त—तथापि ममानुपदेण कथयन्तु मगवन्त, ततः कथिता मगवताऽसक्यबह्वारनगरादारभ्य सर्वो सर्वसविधानकोपेता  
 सक्षेपेण महीवपकञ्चता, अभिहित च—तदेवमसि ते महापञ्च ! त्वविद्युद्यौ विविधनगराकटायाकुलमन्तरङ्गमहापञ्च, केवलमसि  
 यूय तान् शुष्मादिवकरमशीर्षाभारिजपर्मपाजानीन् पदिष्कल च भवन्त महाभोदाविभिसाविन्य काकुमुदात्तियमासीत्, असावापि कर्म

परिणामो भवतः प्रसिद्धवत्तथा तदेव महामोहाविषक पुण्याति क्क, सामभव पुनरसौ भवतोऽनुकूलो भवते, तनैव च भवम् प्रणि द्यु  
पीकृताऽऽप्सीयमहादेवी काकपरिपत्तिः प्रसादिता ये भार्या भवितव्यता प्रष्टीकृतो निजमहत्तमरतेऽन्नभूत सभाभ प्रोत्सादितवचन सर-  
वरः पुण्योदयः तथाऽवधीरिता किञ्चिन्महामोहादयः आयासिताभारिद्यभयपञ्चादयः पूर्णिता य पूर्यमस्तन्वसुखमात्मिका यत प्रभुति  
पुनस्तो ब्रह्मभूमूयः सदानामोऽमीदीनूयः सन्त्यगर्हनाक्यो महत्तमा यत आरभ्यानुकूलवरोऽसौ कमपरिणामो बतव ततो अनिता सव  
रिबारेष धेन विदुषाकये निवसतस्ते विशिष्टवरा सुखपदधिः भयुता भयुयारणायन्नमन्तिरमयामस्त ये सुखसम्बोद्धसिद्धये सुखं प्र-  
स्थाद्विषेऽसौ यव दयकाः पुण्योदयः ततस्तेन संपादितं यव बद्धिन्नभार्या मदनमञ्जरी तेनैव च महापुरुषवया किञ्चाह कोऽय  
कार्यसम्पन्नतस्य ! नूनमेवान्येव सकृच्छकार्वाणि षट्यन्वीति मन्यमानेन कामरूपिवया दर्शितानि स्यो कनकोदरराजस्त, तान्येन कमप  
रिणामकाकपरिपत्तिस्त्रयसमभविष्यताकम्पणानि, निरुपिषोऽस्माभिरेव यो महत्तमचर्याः ततोऽक भवतामन्यदपन्नेयमेनेति सुखापान्येव  
बलार्थसि मातुपुरुषवया, येन च विद्यायरेण वैशुक्त्यमसा महत्तमचर्यास्तेनैव यव दयसेन पुण्योदयेन अनिव, किं नु महानुभाववया  
यदपि कर्मपरिणामातिमिर्दिष्टमिति स्यो कन्मुक्तेनैवानेन प्रकाशितं, ततोऽभिष्टिताः कर्मपरिणामेन पुण्योदयः—यदुत्तार्य ! म सुन्दरत्वा-  
परिव भवता बदेवं कृत्वा स्वयमेव प्रयोजन वयापि रथाऽऽत्मा प्रकृष्टाद्विषो यव पुनरेव सत्कृतवया प्रकाशितानि, पुण्योदयः प्राह—  
देव ! मा मैवमात्रापयव दूय, आदेशकारी रत्नेष्वे किङ्करजनो दूयमेवाय परमाश्रयः कर्तुं वि तान्येव च मया कनकोदरराजाय प्रद-  
दितवानि यतः किमत्रानुचितं ?, कर्मपरिणामेनोक्त—भार्य ! सत्यमेवमिदं, वयापि स्वमेवाय परमो हेतुः यतो न सुखसाधनानि सुन्दर-  
वर्षाणि भवद्विरेष ययमपि कर्तुं पारयामः यतः प्रकाशनीयः रत्नरात्माऽपि भवता नान्यथा मे विचनित्वक्षिरिति, पुण्योदयेनोक्त—



यथाप्रापयसि देवः, एतः कुञ्जपटय स्फ्रे प्रकाशितानि पुनरात्मपञ्चमानि धान्येव पुण्योदयेन कृपापिवा च सकलकार्यसाधकवा, सर्वत्र  
 मेवानि महात्मा ! मानुषाणि धर्मैव तेषां शत्रुर्णां पञ्चानां च धर्मोने कारणमेवान्धेव वा ते सम्बन्धीनि निःशेषप्रयोजनानि तन्मन्त्रि मा  
 कार्याः सन्त्येहमिति, मयोक्त—भगवन्निषाणी योऽय मदनमधरीजामाधारसप्तमो मम निरुपमः सुखायुवसागरावगाहः किमेपेऽपि ते  
 नैव कर्मपरिणामाद्विभिरुत्सादिवेत पुण्योदयेन कसिचः, भगवानाह—आह, कसि च—महात्मा ! त केवलमेव एव अनिवार्यवानेन, किं  
 वार्हि, पूर्वमप्यमुना पुण्योदयेन विद्विधानि मयवो मूषांसि सुन्दरप्रयोजनानि, तथाहि—नन्दिवर्धनावस्थायां अनिवार्यवानेन कनक  
 मञ्जरीसम्बन्धः त्रिपुदारणकाले विद्विषो नरसुन्दरीभीकरो वामदेववशायां एटिवा सतृणमिमलेन निर्भिध्यवस्तलेन विमलेन सह  
 मैत्री धनमेखरावसरे सपानिवा मानाविषविभिन्ना रत्नपञ्चयो धनवाहनभावे समुत्पानिवो निर्व्याजविमुक्तकलङ्कस वर्योपर्यंकलङ्कस  
 वाटसः खेदभावः आदिर्मन्त्रिव वृत्ताटस महात्मा च या विरचिवाः सर्वकालेषु सुखपटवयः, केवलं त निजाव वयस्यपुण्योदयस्य एवा  
 मयवा माहात्म्य, मयवाऽऽप्येवो हिंसावैभानरसृपायावैजयन्तयेवबहुलिकर्मेभुनसागरपरिग्रहमहामोहादिषु निःशेषवेषु चैवपि गुण  
 सन्त्येहः, मयोक्त—महन्स ! कसि ममाय सुखपर्यटयहेतुः पुण्योदयो वयसः प्रागव्यासीव एतः किमिति मे तावन्त्रि दुःस्वकदम्पकानि  
 सत्वावानि किमिति वाऽनन्तकालमित्यमर्षविवर्कं परिग्रमर्षं मे सपन्नमिति, भगवानाह महात्मा ! अथेव एतः समूलमेव चैव कयविये  
 येन समकाले सन्त्येहो सिद्धवतीति, मयोक्त भगवन्नुपहो मे, भगवणोक्त—महात्मा ! कथिच तावमुप्यमिद एवा भसम्बन्धवारनगरे  
 ससारिजीवाभिधानो वासन्धः कुटुम्बिकस्तमसि, एव वेदमनादिरुद्धमन्तराध्व विषयुषो महात्माव्यमिद च चारित्र्यभर्मराज्यादिक महा  
 मोहान्तरादिक च, एव सैन्यद्वयं परस्परसिद्धमपि सकलकालमवशिष्यमेवाभूत्, स तु कर्मपरिणामो राजा तावकीन धीर्मनुपलब्धयमेव

परिष्कारो भवतः। प्रसिद्धस्तथा तदेव महामोहादिवत् पुण्याति स्म, साम्येण पुनरपि भवतोऽनुवृत्तो भवतः, तत्रैव च भवन्तः प्रति द्रु-  
षीकृशाऽऽत्मीयमहोदरी कालपरिपक्षिः। प्रसादिषा ते भार्या यथितन्मया प्रणीकृतो निजमद्वयमवद्वभूव स्वभावं प्रोत्सादितवत्तव सद-  
यतः पुण्योदयः। उवाऽप्यधीरिषाः। किञ्चिन्महाभोदादयः। आद्यासिवाभ्यादियभमपामादयः। वर्तिषा ते पूषभलन्तुसुरमातिषा। यव प्रभुर्नि-  
पुनस्त्ये वृद्धमीमूषः। सदाभामोऽपीधीमूष सन्मभर्त्सनाभ्यो महत्तमः। एव आरभ्यानुवृत्तयतोऽप्यौ वृमपरीष्णामो भवतः। उवा अन्विषा स-  
रिवारेण तेन विषुवाभवे निवसतस्ते सिधितवरा सुतपक्षिः। अनुना। मधुयारणायवमन्दिस्मयसस्य ते सुप्रमन्वोदस्तिद्वय सुवरा प्रो-  
त्सादितोऽप्यौ एव वमसः। पुण्योदयः। उवास्तेन सणादितेवं एव वदित्वाभाया भवन्मज्जरी। तेनैव च महापुत्रवदया पित्राह दोऽप-  
कार्यसम्पन्नसः। नूनमेवान्येव सकलकार्याणि वदयन्तीति मन्वभानेन कामत्यथिवया दर्शितानि स्यमे कनकोदरराजसः, दान्येव वम-  
सिषामकालपरिपक्षिषामभमभिवरन्मयाकलपानि, सितपितोऽभामिरेव वरो मदनमद्यर्थाः। उवाऽस्य भवतामन्मवपान्येपयेनेति सुवापान्येव  
वत्तार्थानि माधुपुरुषवदा, देव च मिषायरेण वैमुक्यमससा मदनमद्यर्थास्तेनैव एव वयस्तेन पुण्योदयेन अनिव, किं तु महानुभावरया  
वदसि कर्मपरिष्णामासिभिर्ब्रह्मिस्ति स्थे उवा उवास्तेनैवानेन प्रकाशिव, उवाऽस्मिद्विष कर्मपरिष्णामेन पुण्योदय —मदुवाय ! न मुन्दरम-  
यसिच यवता वदेवं वत्सा। सयमेव प्रबोद्धन यथापि एवाऽऽत्मा प्रवृत्तमिषो वदं पुनरेव वत्स्यवदा प्रकाशितानि, पुनयोदयः। प्राह—  
देव ! मा मैवमाप्तापयव दूष, आदेशकाटी सत्त्वय किद्वरज्जनो मूषमेवात्त परमार्थतः। कर्तुमि चाम्येव च मया कनकोदरराजत्वात् सक-  
टितानि वतः। किमत्रानुषिव !, कर्मपरिष्णामेनोक्त—मार्थ ! सकमेवमिदं, यथापि स्वमेवात्त परमो देवुः। ययो न सुतसाधनानि सुम्भ-  
कार्याणि यवद्विरे वममपि कर्तुं पारयामः। वतः प्रकाशनीयः। सत्त्वात्माऽपि भवता नान्यथा मे विवदन्तिवतिरिति, पुण्योदयेनोक्त—

हेऽन्तराऽन्तरा । सपथ च सुखं मूष', तन्माहात्म्येन किञ्चन ॥ २४७ ॥ कथितपापोदयो मूषसौरेव निकटीकृतः । ततस्त्व पुःश्लिषो  
 जातः, परित्यक्तः सद्गतामः ॥ २४८ ॥ एव च—आर्त्तोक्त्याऽऽम्बोदय मलकुलमेकवाक्यतया पुरा । अमीभिर्मूष' ! सिःक्षेपमवत्कार्यवि  
 चित्तकैः ॥ २४९ ॥ अतन्त्रवाद्य सत्सारे, पुण्योदयसमन्वितः । पापोदय शिरोधाव, मीलितस्ते सद्गतामः ॥ २५० ॥ यथा तु गृहि  
 र्मर्षेण, सन्त्यावर्धननामकः । शुक्तः पार्श्वे ध्वानीवोऽमीभिरेव सरोजसा ॥ २५१ ॥ यथा पुनरसौ स्वचोऽमीभिर्दूरवटीकृतः । पापोदयः  
 सैन्यपुत्रकव चोत्पासिव सुखम् ॥ २५२ ॥ शुभम् । यथाः पुण्योदयोवेधो, नीवस्त्व विधुवाक्ये । अानीवो मानवात्मासे, कृता कल्पा  
 प्रमादिका ॥ २५३ ॥ पुनत्र सर्वैः समूष, वैरेव निकटीकृतः । पापोदयः ससैन्यस्ते, त्याजिषाम् सुधाभवा ॥ २५४ ॥ एव चास  
 द्वावायस्ते, कृती विरहमीकृती । अमीभिर्वर्धनीवस्तन्मत्र मूषमन्त्रिरे ॥ २५५ ॥ ततोऽनुनाऽसि दूरस्यो, गाढ पापोदयकव । स  
 सैन्यो बर्धते वेन, सूप्तीमास्ते नरोत्तम' ॥ २५६ ॥ तैः कर्मपरिणामाधैरेवे तु निकटीकृतः । सात्त्वय वे महाभागाः, सावपुण्योदया  
 दयः ॥ २५७ ॥ किं च—न विद्यतेऽनुबन्धोऽस्य, तेन पापोदयेन मोः । तेनाय वेऽनुना मूष', आतः पुण्योदयोऽन्तरः ॥ २५८ ॥  
 अनेन वेऽनुना सस्या, औत्सर्गिमुक्तमानसा । ईदृशीयं महाप्राज्ञ', ननिष्ठा सुखमालिका ॥ २५९ ॥ किं वदुना?—वेष्टन्ते सर्वकार्येषु,  
 सुभ्यवसुभ्यरेषु वे । दान्येव स्मरद्विष्टानि, मानुषाधि न सशयः ॥ २६० ॥ यथा हि प्रसिद्धज्ञानि, वर्धन्ते वानि वे यथा । पापोदय पुर  
 रक्त, पुःपुस्तपादयन्त्यकम् ॥ २६१ ॥ अमुक्तज्ञानि दान्येव, कारयैरपरापरैः । पुण्योदयेन वे वाव', कारयन्ति सुखासिक्ताम् ॥ २६२ ॥  
 यथात माप्यते यथा, भवताऽन सुभाशुभम् । नित्य तत्रोपयुक्तानि, दान्येव वनु कारणम् ॥ २६३ ॥ मयोक्तं भगवन्मत्र, विधातव्ये  
 शुभाशुभे । किमकिञ्चित्करो बर्धे, सर्वथाऽह यथाऽऽत्मना ॥ २६४ ॥ सूरिपह महाप्राज्ञ', भैव मस्याः कदाचन । परिवारक्यवान्मनि,

निजगतं तथा महाभोगिनिवत्सङ्गोऽपि भवतोऽत्र बलवदे साधारणभासान्नं वर्धयति, अथत्वितापकः सत्त्वेव स्वरूपेण परा। परं तथो-  
 न्नसत्त्वेन्यनुपपन्नमर्थं तथा तद्वेगोपबृहत्तमि, तस्य च कर्मपरिणामस्य द्वौ सेनापती—एकः पापोदयो द्वितीयोऽयमथ पुण्योदय इति, स च  
 पापोदयस्ते गाढं प्रसिद्धः स्वरूपेण, अत एव कर्मपरिणामस्य सम्बन्धि यद्यत्र वैरिभूतमेकान्तेनामुन्मूलं सैन्यं दध्यासाधयिष्येति, पुण्यो-  
 दयस्तु क्वाण्डिष्ठः अत एव कर्मपरिणामस्य सत्त्वं यत्ते च पुनर्भूतं मुन्मूलनीकं तद्वेगोपमपिबुद्धते, स च पापोदयकृत्तान्तिरुत्तोऽत्र म्य  
 महात्मागच्छात्तन्नामिष्यकृत्तया सकाऽमुनेव, ततः सुप्रसिद्धत्वात् वर्धितस्ते कश्चिदप्यसौ विद्यापतो भवितव्यमवया, सवत्सत्सेव महा-  
 एव । गुणधारण समस्त माहृत्य यत्ते सप्तभजनन्यकात्ममेव परिभजन्य समूहा भूतिरुत्पत्तयस्तथाः परिकल्पितव दिसासिनु द्वितत्त्व न  
 कश्चिदोऽयं द्वितकल्पनीकः पुण्योदयः, अन्त्य—तेनैव पापोदयेन बहिष्कृतस्तत्र वस्त्राधिष्ठयिष्यतिर्तनः स्वकीयादन्तच्छयद्वापारयान्  
 तेनैव यामिनूत प्रकृतास्तिव तत्र स्थाति कर्मोक्तवद्विव पारित्र्यमर्गत्वात्किमन्तच्छयद्व तेनैव ज्ञानवरण पारिवोपिकर्मोक्तान्ताद्विवमपि पानु  
 मूलं च वर्धितं महाभोगिनिवत्तय बलवत्तया च प्रकृतिवस्ते पुरतो बलसकमित्ररूपवयाऽऽत्मा, यथाऽयमपि पुण्योदयकृत्ता तेन पापोदयेनाहु  
 बल्यो यथापि वै सुबलकारणममूर्तं यथापि न कस्याप्यपर्ययहेतुतां प्रसिध्ना इति, यस्मात्क वयस्कस्य दोषोऽसौ, किं तर्हि ? तस्मैव हुतात्मनः  
 सर्वोऽप्यत्र दोष इति, सर्वोक्त—भगवन्निजानी किमिलसौ पापोदयस्तूष्णीमाते ?, भगवदोक्त—महाएव । न स्यवद्यः सत्त्वसौ, किं  
 तर्हि ?, सौऽप्यमीषा कर्मपरिणामकाष्ठपरिणतिक्रमापमविवेक्यवाहीनामायसो वर्धते, ततोऽमीभिरेव सान्प्रव भवतः सकाशाद्दीप्तवोऽसौ।  
 हुतात्मा, यथास्ति—यतः प्रभृति भवत्समीपममीभिरेनुष्ठाताः सन्नाताः सद्भागमकृत्य पश्चादभ्य निवर्तिता वस्यामीभिः प्रकृता, ततः—  
 ईषदूरमिव तस्तेऽसौ, न ज्ञातो हुताकारणम् । पापोदयोऽयकसस्तु, कस्यः पुण्योदयेन च ॥ २४६ ॥ ततः सद्भागमे प्रीतिः, सद्भावा।

वेऽन्तराऽन्तरा । सपथ च सुख मूय', वन्माहात्म्येन किञ्चन ॥ २४७ ॥ कश्चित्पापोदयो मूयस्यैरेव निष्कटीकृतः । वदस्त्वं दुःखिणी  
 मातः, परित्यक्तः सदागमः ॥ २४८ ॥ एव च—आर्क्षोऽप्याऽऽक्रोध्य धम्बुलमेकवाक्यमवयागुरा । अमीभिर्भूय । निःशेषमवतत्कार्येवि  
 चिन्तयैः ॥ २४९ ॥ अनन्तरातः ससारे, पुण्योदयसमन्विताः । पापोदय विरोधात्, मीलितस्ते सदागमः ॥ २५० ॥ यदा तु धृष्टि  
 धर्मैव, सन्मयवर्द्धननामकः । शुक्रः पार्श्वे ववावीवोऽग्नीभिरेव सत्वेजसा ॥ २५१ ॥ यदा पुनरसौ त्वयोऽग्नीभिर्दूरवरीकृतः । पापोदयः  
 सैन्यवुवक्ताव चोत्पत्तिर सुप्रम ॥ २५२ ॥ युगम् । यदा पुण्योदयोपेवो, नीतस्त्व विजुवाकये । आनीवो मानवावासे, कृता कस्मा  
 यमास्तिका ॥ २५३ ॥ पुनश्च सर्वैः समूय, वैरेव निष्कटीकृतः । पापोदय ससैन्यस्ते, ज्ञानिवाच सुपाचवा ॥ २५४ ॥ एव चास  
 द्मवापस्ते, कृता विद्वत्मीकृतौ । अमीभिर्वर्गवर्गानीतस्त्वमत्र सुपमन्त्रिरे ॥ २५५ ॥ यद्येऽनुनाऽपि दूरस्थो, गाढ पापोदयस्यैव । स  
 सैन्यो वर्धते तेन, सूर्यमीमास्ते नरोत्तम ॥ २५६ ॥ वैः कर्मपरिणामाद्यैरेवे तु निष्कटीकृताः । सपथव वे महाभागः, सावपुण्योदया  
 दयाः ॥ २५७ ॥ किं च—न विद्यतेऽनुबन्धोऽस्म, तेन पापोदयेन मोः । तेनाय वेऽनुना मूय', चातः पुण्योदयोऽन्तराः ॥ २५८ ॥  
 अनेन वेऽनुना सत्ता, कौत्सनिर्मुक्तमानसा । ईदृशीयं मद्यापन्न', जनिता सुखमास्तिका ॥ २५९ ॥ किं यदुना?—वेष्टन्ते सर्वकार्येषु,  
 सुन्तरासुन्तरेषु वे । वान्येव क्षमदृष्टानि, भातुषाणि च सक्षयः ॥ २६० ॥ यदा हि प्रसिद्धास्मिन्, वर्तन्ते चानि वे यदा । पापोदयं पुर  
 स्कृत्य, दुःपदसुखाश्चन्यसकम् ॥ २६१ ॥ अमुककानि वान्येव, कारणैरपरत्परीः । पुण्योदयेन वे पात', कारणानि सुखासिक्ताम् ॥ २६२ ॥  
 यत्नात् प्राप्सते यच्च, भवताऽत्र शुभाशुभम् । नित्य वन्नोपयुक्तानि, वान्येव ननु कारणम् ॥ २६३ ॥ मयोक्तं मगवन्नम, विधावन्मे  
 शुभाशुभे । किमकिञ्चित्करो वर्धे, सर्वथाऽत्र यथाऽऽत्मना ॥ २६४ ॥ सूरिपद महापन्न', भैव मत्साः कथाचन । परिवारकथामूनि,

निजवर्गवधा महाभोगाद्विषसत्त्वोऽपि मयवोऽत्र बलवत्ते साधारणमात्मानं वर्धयति, ज्वलद्दिवापक्वः खल्वप्यस्वरूपेण यथा यत्र तयो-  
 र्बलस्यैव्युत्पन्नमते यदा यदेवोपहृयति, तस्मै च कर्मपरिणामक इति सेनापती—एकः पापोदयो द्विर्वापोऽयमेव पुण्योदय इति, स च  
 पापोदयस्ते गात्र प्रसिद्धः स्वरूपेण, अत एव कर्मपरिणामक सम्बन्धि यत्तत्र वैरिभूतमेकान्तेनामुत्तरं सैन्यं यदेवासावधिगुह्यत, पुण्यो-  
 दयस्तु तदागुह्यः अत एव कर्मपरिणामक अस्मिन्नयमेव कन्तुभूतं सुन्दरमनीकं यदेवायमधिगुह्यते, स च पापोदयस्तदागानाद्विस्तृतोऽसम्भ-  
 वद्वारतागद्वारभ्यामिष्यककपः सत्ताऽभूदेव, तदाः सुप्रसिद्धत्वात् वर्धयस्ते कथिदप्यसौ विद्येयवो भवितव्यवधा, तत्तत्तत्स्यैव मद्र-  
 पात्रं गुणभारण समस्त माह्वस्य यत्ते संप्रभमन्तवकालमेव परिभ्रमण समूहा भूरिदुःखसन्तवधः परिकल्पित विंशतिषु द्वित्व म-  
 क्तिवोऽयं द्वित्वरूपसीतः पुण्योदयः, अन्त्यव—तेनैव पापोदयेन यद्विष्कवत्त्व तस्मादिषष्टिष्वर्धितैः सत्कीयादन्तवत्त्वमद्रापाभ्याम्  
 तेनैव यामिकूल प्रकटारितं तत्र स्वाधिक्रमेकान्तवर्धित पारिषमर्भयानाद्विष्कवन्तवत्त्व तेनैव याननवरत पारिवोषिकमेकान्तवर्धितमर्भ-  
 सुव च वर्धितं महाभोगाद्विस्तेन्य बलवत्ता च प्रकटितस्ते पुरतो बलवत्त्वमिन्नरूपवधाऽऽत्मा, यथाऽयमपि पुण्योदयस्तदा तेन पापोदयेनातु  
 यद्यो ययसि ते सुककारणममूर्त तदापि न कल्याणपरंपराहेतुतां प्रसिप्य इति, तस्मात्तदवयवस्य योयोऽसौ, किं वार्हिः, तत्सैव दुरात्मनः  
 सर्वोऽप्यय योय इति, ययोर्ध—मगद्विभिरानी किमिदमसौ पापोदयस्तुपाभास्तेः, भगवदोक्त—मद्रापात्र ! न स्ववत्तः एतन्वसौ, किं  
 वार्हिः, सोऽप्यमीषां कर्मपरिणामककपपरिणतिवत्तमात्रमसिद्वयवादीनामाययो वर्धते, यवोऽमीभिरेव सान्प्रवर्धं भवतः सत्तागद्विष्टवोऽसौ  
 दुरात्मा, यथाहि—मयः प्रमुसि भवत्समीपममीभिर्युद्धातः समागतः सदागमस्तव एवमारभ्य निवर्तिता तस्मातीभिः प्रवक्तव्यं, तदाः—  
 ईषद्विष्टवस्तेऽसौ, न आतो दुःखकारणम् । पापोदयोऽत्रकाणस्तु, कल्पः पुण्योदयेन च ॥ २४६ ॥ यदाः सदागमे प्रीतिः, संजाता

“सर्वलोकसमाभया । धर्तरे नृपतेऽप्यग्रा, विधातुर्विचारिणी ॥ २८४ ॥ संपूजनेन ध्यानेन, कथेन प्रवर्णयथा । इयमेव विधातव्या,  
 “वयाद्या वस्य सेवकैः ॥ २८५ ॥ निविद्याचरणे सर्वसिन्धोव विराज्यते । पशुकप्रायशाह्वार्यः, सर्वोऽप्यस्मां भयसिन्धवः ॥ २८६ ॥ यो  
 “य यो यावर्गी लोक, विद्ययासि नराः सदा । भजानमपि यत्न, वस्य दासमूलेऽसुखम् ॥ २८७ ॥ केवलं—मस्तु यं लङ्घयमाणां,  
 “विपरीतं विचेष्टते । ज्ञानमपि यत्न, स भवेदुःखमाजनम् ॥ २८८ ॥ यो यावत्कुर्वते मोहायवाहाकलनं जनः । वस्य दासमूले  
 “दुःख, यथा वत्करणे सुखम् ॥ २८९ ॥ एव यं स्थिते—यदाशालङ्घनादुःख, तदाश्लोककरणेऽसुखम् । यतः सपद्यते सर्वं, सर्वं  
 “यामसि वेदितान् ॥ २९० ॥ भगुमात्रमपि वभासि, मुचनेऽत्र ह्युभासुभम् । वयाद्यानिरपेक्ष हि, यज्जायेव कदाचन ॥ २९१ ॥ तेने  
 “क्यादागविदेपरद्विगोऽपि स नृपतिः । निर्दुस्त्रिगोऽपि कार्यार्थां, केयः परमकारणम् ॥ २९२ ॥ स एव परमो हेतुरवस्तु गुणधारणम् ।  
 “सुन्दरेतरकार्पाणां, सर्वेषां नात्र सस्यः ॥ २९३ ॥ यदाशालङ्घनात्पूर्वं, जाया ते दुःखमालिका । अमुना वत्करत्वेन, मुचनेऽत्रोऽप्यमी  
 “दृष्टाः ॥ २९४ ॥ यदा तु सस्य सपूर्वाभासिं यं करिष्यसि । यदा यः सुखसन्तोदस्यस्य विज्ञास्यसे रसम् ॥ २९५ ॥” तदेव पर  
 मार्जन, सर्वेऽस्मीं यत्न देवतः । भजानगुणभावेन, सिद्धेयाः सर्वकर्मसु ॥ २९६ ॥ एकेनापि विना भूयः, कार्यसिद्धिर्न विद्यते । अमीयां  
 प्रोक्तेषूनां, समाजः कार्यकारकः ॥ २९७ ॥ मयोक्त कारणमात्रः, किं पूर्णोऽत्र निवेदितः । एतावानेव किंवाऽस्ति, नाथान्यदपि  
 कारणम् । ॥ २९८ ॥ स्मरिह मष्टाजः, प्रायशः प्रक्षिपान्विधः । एतावानेव देवतां, मीलकः कार्यसाधकः ॥ २९९ ॥ अथैव क्षेत्रे  
 पूनामन्त्रमार्गो हि विद्यते । यथा पदभ्यामिषयी, प्रक्षिपे भवितव्यताम् ॥ ३०० ॥ यतो निर्दोषसन्तोदस्यवाऽत्र वत्कलने । । प्रक्षिपय  
 गुरोर्वाक्य, वक्ष्येति कथाप्यस्तिः ॥ ३०१ ॥ पृष्ठवानपटं स्मरि, सन्तोद भानसे स्थितम् । गाढमभ्युपेक्षुस्त्यात्पूर्वकाले विचर्कितम् ॥ ३०२ ॥

मन्त्रोवाच तावकः ॥ २६५ ॥ तत्रादि—मन्त्रो योग्यवाऽपेक्ष, वेष्टन्ते सर्वकमस्तु । ते कमपरिणामाद्यास्तदनुभाशुभदेवताः ॥ २६६ ॥ तत्रास्ते निजयोग्यत्वं, प्रपन्न मूय । कारणम् । सुन्दरेवराजसूनां, ते पुनः सहकारिणः ॥ २६७ ॥ याममनाभिरुद्धा सा, विषयं तत्र योग्यता । यथा सपत्निवः सर्वे, प्रपन्नोऽयमममूदताः ॥ २६८ ॥ यथा विना पुनः सर्वे, सुन्दरेवराजसुप्तु । ते कर्मपरिणामायाः, किं कुर्वन्तु यत्तत्कलाः । ॥ २६९ ॥ एतत्त्वमत्र प्राधान्यात्कारणत्वेन गीयते । सुन्दरेवराजवाण्यां, सर्वेषामात्मभावविनाम् ॥ २७० ॥ मयोक्त ताव । यथेवं, मम कार्यप्रसाधनम् । तत्र किमियदेवात्र, कारणात् कदाचिदपि विधेयं, मम कायप्रसाधकम् । । सुन्दरेवराजम्, समाकर्षय साम्प्रतम् ॥ २७२ ॥ “याऽस्तसौ निर्दुस्तिर्नाम, मगरी सुमनोहरा । निरन्ध्रानन्धसन्धोदपरिपूर्णा निरन्ध्रमथा ॥ २७३ ॥ तस्मान्नन्धवीर्यकम्, सर्वेभ्यः सर्वदेहेभ्यः । अन्धानन्धसम्पूर्णं, सुस्थितः परमेष्ठिनः ॥ २७४ ॥ यो विद्यते महा ‘एव’, सर्वत्र सावः प्रभुः । सुन्दरेवराजकार्णां, स ते परमकारणम् ॥ २७५ ॥ अनेकोऽप्येकस्त्वोऽसौ, गीयते वरसूरिभिः । अदि ‘नन्धवीर्यकुम्भस्य, परमात्मा स गच्छते ॥ २७६ ॥ स शुद्धः स विरिञ्चात्म्यः, स विष्णुः स महेश्वरः । निष्कलः स जितः प्रोक्तो, एतत्त्वमेवैकस्त्वमिभिः ॥ २७७ ॥ न केचन करोत्येव, तत्र कार्यपरम्परा । वीर्ययोगो गच्छेत्तो, निरिच्छोऽयं यतो मत ॥ २७८ ॥ ‘यथा तु कुर्वते ताव’, तत्राथ सुन्दरेवराजम् । कार्यमात्रं तत्रा अस्मि, साम्प्रतं विज्ञेयमाश्रितः ॥ २७९ ॥ सिद्धा मगदवत्सस्य, निजवता ‘सुप्रसिद्धिः । अस्मात्मा सर्वोक्तानामाकाशं करणो विद्या ॥ २८० ॥ प्रभुः—निरन्ध्रकायं कर्तव्या, विद्ययुधिः प्रमास्यता । गोप्ती ‘एवराजोवाच कुर्वन्तु विद्यया सदा ॥ २८१ ॥ शुद्धीत्या रिपुशुद्धा य, महाभोगादधिकं यत्नम् । अनुशयं निरन्ध्रकम्, योतसंसारकारणम् ॥ २८२ ॥ अन्धशुद्धाऽन्धमाश्रितः, योपणीय य सर्वथा । आदिप्रवर्तमानाया, सैन्यं कर्तव्यान्कारणम् ॥ २८३ ॥ इयमेवावर्ता वत्स,



परं दत्तनकान्महाभ्यातिमकवस्तुप्रबोधनमुद्येवैव स्थापयन्ति, येषां 'सामग्री अनिका न पुनरेक किञ्चित्कस्यचिज्जनकमस्ती'ति,  
 केवलं पदाभिट भगवन्निर्देवाऽयं दत्तामुना पुण्योद्बोधेनोदानीमीदृशः सुखलेशः स्यादित इत्यनेन वाक्येन अनिवो मे कुतूहलातिरेकः, यत्र  
 चिन्तित मया—अथे पश्चिमाहसि मया कृपया भवन्मच्छरी तथाऽप्यप्रा अनर्थेया मूरिरत्नराशयः प्रथमिव चिन्तितमात्रेण क्षेत्राणां  
 रणविह्वरं समुत्पन्नस्तेषां परस्परं जगुभाषः गताः सर्वेऽपि मम सुखां अनित्यतावाभ्यामिषरिवोऽः प्रादुर्भूतो महोत्सवः समुत्पत्तिरिवो  
 नागरकानन्दः प्राप्ता मङ्गलनेऽन्तराचराः विहित तातेन वस्तुमानादिकं स्थापितोऽह सर्वैः वक्रास्तिवो यक्षः पटहः पटहर्मम सुखनिर्मयस  
 वाऽसुखमयमिव प्रसिमासिदमासीत्, तथा वर्धमाने भवन्मच्छर्यां सह प्रेमावन्द्ये जाते कन्दमुनिवर्धने सिन्नवसुपगादेयु सावसदागमस  
 न्यावर्धनगृह्णितेषु परिष्वेते महराज्ये सिद्धयतो यक्षेभ्यः सुखसन्त्योहपरिपूर्वयया सजाया मम देवलोकमुत्सेऽप्यवक्रा, तथाऽप्युना दृष्टे  
 भगवसि बन्धिते सहित्य नष्टे सन्त्येहे पश्यतो भगवद्भक्तकमलमाकर्षयतो बबतासुव मम सुखातिरेको धामोचरावीवो वर्धते वक्तव्यं  
 भगवन्निरुपस्थितं यथाऽप्युना स्यादित्यवधानेन पुण्योद्बोधेनाय सुखलेश इति, यथाहि—अथयमपि सुखकवसाहिं कीदृशं पुनस्तत्सपूर्णं सुखं  
 स्यादिति सत्त्वतो मे मनसि विवर्कः, यत्रः कथयन्तु भगवन्तः कीदृशं पुनः शरीरिणस्तत्सपूर्णं सुखमिति, निर्मकसुरिणोक्त—महराज !  
 गुणधारण स्यानुमवेनैव विज्ञास्यसि त्वं वस्तुस्वयं किं वस्तु कथनेन, मयोक्त—भवन्त ! क्व, भगवानाह—महराज ! यदा परिष्वे  
 द्यसि त्वं पुत्र कल्पकाः मसिष्यसि ताभिः सह समूहवसारस्ते प्रेमावन्द्यः वतकावोदात्मकीकया विहसतस्ते वन्द्यये पत्सुखं संजमिष्यते  
 वक्ष्येभ्यः सुखलेश एवावभानुनायतो वर्धते, मयोक्त—भगवन्महारिचमिदानीं मया यथाऽहमेतामपि भवन्मच्छरी परित्यज्य भगवत्पाद  
 मूले प्रप्रक्षितको मविष्यामि वक्तव्यमह कल्पकापुत्रक परिष्वेये, भगवोक्त—अथय त्वया परिष्वेतव्यायाः कल्पकाः, किं—मुक्तयेव

यदुत भगवन्—एक भूमी वशाऽऽकाले, वर्तमान द्वितीयकम् । यदाऽऽभरपरं सैन्यं, कश्मिन् वने दृष्टुम् । ॥ १०१ ॥ सूर्यरात्रं न-  
 हात् । वज्राणि पराभरणम् । सैव पुण्योवशो देवः, सोऽकारण्योऽसिद्धिः ॥ १०४ ॥ केवलं दण्डं धीमेतं, प्रसन्ना मनस्यता । वशान्तर-  
 यथा सत्, कश्मिन् यदाऽऽकालम् ॥ १०५ ॥ यथैव मरणं तेषां, यथाऽप्यां वदयुया । विमुक्तास्त्वयिमेव, अनिता पापवशेषमाः ॥ १०६ ॥  
 यथाऽसि न ह्य कर्तव्यं, कठ वनाभिधीयते । यथाऽप्रयोदककलाः, सैव पुण्योवशोऽन्यः ॥ १०७ ॥ अथ हि काय नृपानः, सुन्दरं व-  
 सत्येवम् । समेवं कारयन्त्यैर्दुर्भितं पुनः स्वयम् ॥ १०८ ॥ पापोवशोऽसि कुवायस्य कायमनुत्तरम् । प्रथेय कारयन्त्यैर्दुर्भित-  
 पुनः स्वयम् ॥ १०९ ॥ वदन्त्यैर्दुर्भितं मूषः, सुन्दरवत्सु । अथयानास्त्वया प्रेषाकावैव परमो यव ॥ ११० ॥ यथा हि—पुन-  
 यथाऽवैवैव, कारयत्परपट । कारिणानि विविज्जानि, दुर्यानि बहुवत्सव ॥ १११ ॥ इदानीं कारयत्य, स्वसामर्थ्येन वे मुद्यम् ।  
 निमित्तमात्रं वाहानि, वस्तूनि शुभयारम् ॥ ११२ ॥ अथोक्त—मगदभयो मेऽनुता समस्तसन्तः, अथयारिवन्ति मया यमव-  
 वनेन बहुवत्—मगदभयानां विद्यानि निर्दिष्टानां परमेश्वरस्य सुविद्यामाह्वने कथमि मायान्यकारमन्त्रिणां चित्तवृत्तिं योषयामि  
 मगदभयानि वदं यथा वशादव मदीयस्वरूपमाहोवय मदिह्मकां गवानि कथपरिणामकाकपरिवर्तिताभावावमदिवन्त्यवशीनि तेन कथपरि-  
 वासतेनायस्मिन्ना पापोवैवैव मद्यस्मिन्मन्त्रिणां कस्यचित्तेन मम विविधदुःखपर्यटं वस्तुभ्यामप्यपरयाप्राप्त्यन्तरवस्तुमेतत्प्रायेण नन  
 यन्ति, यथा पुनरप्य स्ववोभयवामपेरव वशैव मगदव सुविद्यमगदवृत्तः प्रसोदनायामसामानो भवामि वदकाप्रायां वर्ते यिषयामि माव  
 वस्यमावनेन निर्दयं विचरति धीययामि चारित्र्यमर्थाभाविर्क सैन्यं यथा वशादव मदीयपरिवर्तमाकलव्यादुद्वृत्तं गवानि कथपरि-  
 वासकाकपरिणामिकमावमदिवन्त्यवशीनि वनेन विधीयेन कथपरिणामसेनापक्षिना पुण्योवैवैव मगदभयानां सैन्यसन्निधेन मम सुवत्पर-

पयः पञ्चतकान्यथाभाष्यास्तिककसुप्रबोधनशुक्लेनैव सपावयन्ति, तेषां 'सामग्री अनिका न पुनरेक किञ्चित्कस्यश्चिज्जनकमस्ती'ति,  
 केवलं यदास्ति भगवन्निर्गन्धोऽथ यदाशुना पुण्योदयेनेषानीमीदृशः सुकलेषः सपावित इत्यनेन बाधयेन अनियो मे कुतूहलातिरेकः, एव  
 द्विन्वित मया—अथे यत्किमस्ति मया कथं सदानमच्छटी यथाऽप्राप्ता अनर्घ्या मूरिरक्षराश्रयः प्रसन्निव चिन्वितमात्रेण क्षेत्राणां  
 रणविह्वलं समुत्पन्नस्तेषां परस्परं बाधुभावः गताः सर्वेऽपि मम मृदायां अनित्यत्वात्तान्त्राक्षिपरियोषः प्रादुर्भूतो महोरसवः समुत्पाक्षियो  
 नागरकानन्तः प्राप्ता मङ्गवनेऽम्बरारण्यः विहितं जातेन वस्तुत्मानादिक म्प्रविधोऽर्थं सर्वैः कृत्वासिचो यशःपटवः वरहर्मम सुकलिनैरव  
 द्योऽमुदमयमिह प्रक्षिमासितमालीव, यथा वर्धमाने भवन्मज्जयां सह प्रेमावधे जाते कल्पद्रुनिवर्धने मित्रवस्तुपगवेषु सावसदागमस  
 न्यदार्शनपृष्ठिधर्मेषु परिपठे महाराज्ये विक्रमयो यथेच्छया सुकलसन्धोऽपरिपूर्वया सजाता मम देवकोकमुखेऽम्बरबाहू, यदाऽशुना दृष्टे  
 भगवसि धन्विसे सन्निनय नष्टे सन्नेहे परमयो भगवद्भवनकमकमाकर्षणयो वचनासुख मम सुस्नातिरेको बामोऽवरादीयो वर्धते वत्कम  
 भगवन्निपातिट यथाऽशुना सपावितकृत्वातेन पुण्योदयेनाथ सुकलेष इति, यथास्ति—यथायमपि सुकलकवसार्द्धि कीदृशं पुनस्तत्सपूर्णं सुक  
 स्वासिचि सजातो म मनसि विवर्कः, तवः कवयन्तु भगवन्तः कीदृश पुनः क्षीरिणस्तत्सपूर्णं सुकलमिति, निर्मकूरिणोक्त—महाराज !  
 गुणधारण स्वाशुभवनेनैव विज्ञास्यसि त्वं वत्कस्य किं वत्स कथनेन, मयोक्त—भवन्त ! कव !, भगवानाह—महाराज ! यदा परिपे  
 व्यसि तव दश कल्पकाः भविष्यसि धामिभिः सह सम्प्रावसारस्ते प्रेमावन्मयः वत्सदोदामालीकया विक्रमवस्ते वन्मये यत्सुख सञ्चनिष्यवे  
 वदपेक्षया सुकलव एवामभुनावतो वर्धते, मयोक्त—भगवन्मयाधिरयमिष्यामी मया यथाऽश्वेनेनामपि भवन्मज्जटी परित्यज्य भगवत्पाद  
 मूले प्रप्राप्तिवको भविष्यासि वत्कममह कल्पकादृशक परिणेष्ये, भगवतोक्त—अथय एवया परिणेतव्यास्याः कल्पकाः, किं च—मुक्तमेव

यदुव मागम् । एतं मूमी वपाऽऽकाले, बर्तमान द्वितीयम् । वपाऽऽवरपरं सैन्य, स्वामिन् जन हजुता । ॥ ३०३ ॥ मूर्धपर म  
हाराज !, स्वामिन् परकारणम् । सैव पुण्योदयो हव, शेषकारण्योदिवः ॥ ३०४ ॥ देवस हव्य र्दिव्य, दसभा जनरवता । बभार्य  
वपा सव, स्वामिन् यद्वज्रवम् ॥ ३०५ ॥ यथितं मरणं वेपां, एवराणां ववपुपा । विमुखासत्रभिप्रता, अनिता धनप्रपापमाः ॥ ३०६ ॥  
वपाऽऽरि व हव जव, हव वेनाभिपीयते । वव प्रयोक्कससा, सैव पुण्योदयोऽनयः ॥ ३०७ ॥ अय हि काय नृपानः, सुन्त व  
मयेवम । संधेवं कारवन्नर्थेदुमिन् पुनः स्वयम् ॥ ३०८ ॥ पापोदयोऽपि नृगण्यव वायममुन्वम् । प्रयोप कारवन्नर्थेदुमिन्  
पुनः स्वयम् ॥ ३०९ ॥ वदन् देवतो भूय, सुन्तरेवरवस्तु । अमवानासवपा शेषासावेव परमो यवः ॥ ३१० ॥ वपाहि—पुं  
पयोदेनैव, कारवन्नर्थेदुमिन् । करिवामि निविजामि, दुःखानि वदुसव ॥ ३११ ॥ इदानी कारवत्य, स्वसामर्थ्येन वे मुयन् ।  
निमिचमात्र बाह्यानि, वस्तूनि गुणवारण ॥ ३१२ ॥ मयोह—मगावमष्टो देऽनुना समस्तान्दः, अयपारिवमिह मया मगापद  
जनैव यदुव—मयाऽऽमजानाचिष्टामि निर्मुखिवाटीपरनेभारवपासुकिवाद्यावने करोमि यावान्यकारवसिन्तां विचगुर्वि शेषयानि  
महामोहादिबलं वपा वपाहव मदीयस्वरूपमाढीव्य मसिहृष्यं गवामि कमपरिणामकावपरिणसिक्तमावमविवज्यवादीनि तेन कमपरि  
णामसेनायसिना पयोदेन मयसि हृष्यस्तीयानीकसद्विदेन मय निमिचगुःपदपरपदं वस्तान्यवपरापरावाद्याम्यनवरवस्तुमेरववादेव जन-  
पदिच, वपा पुनरव स्वोन्मथामपेरव वदीव मगावद मुक्तिवमदानुपदेः प्रसोदभावात्संक्रान्तो भवामि वववपाद्यायां बर्वे विदपामि याव  
वमप्रसाधनेन निमेषं विचगुर्वि मीययामि पारिजयमेवावादिह सैन्यं वपा वपाहव मदीयपरिवभाकवप्यानुहृष्यं गवामि कर्मपरि  
पामबाधकपरिपदिक्तमावमविवज्यवादीनि जनैव द्वितीयेन कर्मपरिणामसेनापसिना पुण्योदेन यदुवहृष्यवादीयसैन्यसद्विदेन मय मुक्कपर

पयं वज्रनकान्मवाप्ताभ्यामितिकथसुप्रबोहनमुक्तेनैव सपावयन्ति, येषां 'सामग्री अनिका न पुनरेक किञ्चित्कस्यचिज्जनकमसी' भि,  
 केवल एवास्ति भगवद्विर्ययाऽय एवाधुना पुण्योदयेनेवावीमीदृशः सुखलेशः सपाविव ह्यनेन वाक्येन कतिवो मे कुतूहलातिरेकः, यव-  
 च्छित्तिव मया—अये एसिअस्मि मया कथ्मा मदनमच्छरी एवाऽवभाता जनार्णया भूरिरत्राष्टमः प्रथमिव च्छित्तिवमात्रेण क्षेत्राणां  
 रथविहटं समुत्सन्नस्तेषां परस्परं वन्तुयावः गताः सर्वेऽपि वस भुलया अनियत्ताद्यान्माभिरपिरीयोः प्रादुर्भूतो महोत्सवः समुत्पान्तिवो  
 नागरकानन्तः प्राप्ता मङ्गवनेऽप्यवत्ताः सिद्धिं यातेन कस्तन्मानाभिक क्वाचितोऽह सर्वैः वृत्तासिरो वधःपटवः वद्वर्त्मन सुखनिर्मरव  
 वाऽसुवमयमिव प्रविभासिवमासीत्, तथा वर्धमाने मदनमच्छयां सह प्रेमावन्द्ये जाते कन्दमुनिवर्धने मित्रवाधुपगतेषु सावसदानमस  
 न्यवर्धनपृष्ठिधर्मेषु परिपठे महाराज्ये विकसयो यथेच्छया सुखसन्तोहपरिपूर्णवया सजाया मम देवलोकासुखेऽप्यवभाता, ववाऽधुना दृष्टे  
 भगवसि वन्ति सविनय नष्टे सन्नेहे पयवयो भगवद्वदनकमलमाकर्षवयो वचनासुव मम सुखातिरेको बालोवपवीवो वर्धते वल्क्य  
 भगवन्किरासिष्ट यथाऽधुना सपाविवस्यवानेन पुण्योदयेनाय सुखलेश इति, एवाहि—यथयमपि सुखलवकाहिं कीदृश पुनकात्सपूर्णं सुख  
 स्वासिस्ति सजावो मे मनसि सिधर्कः, वतः कथयन्तु भगवन्तः कीदृश पुनः क्षरीरिषकात्सपूर्णं सुखमिति, निर्मकसूरिपोक—महाएव !  
 गुणधारण स्वाधुमनेनैव सिद्धास्यसि त्व वल्क्यत्वं किं वल्क्य कथनेन, मयोक्त—मदन्त ! कथं, भगवानाह—महाएव ! यथा परिपे  
 व्यसि त्वं वल्क्य कथकाः मविष्यसि चाभिः सह सम्राजसारस्ते प्रेमावयः सवकावोदामलीलया विकसवस्ते सन्मये पत्सुख सज्जनिष्यते  
 वदपेक्षया सुखलव एवायमधुनावनो वर्धते, मयोक्त—भगवन्नवधारिवसिधानी मया यथाऽहमेनामपि मदनमच्छरी परित्यज्य भगवत्पाप  
 मूढे प्रप्रभितको मविष्यामि वल्क्यमहा कथकावृष्टक परिपेक्ष्ये, भगवतोक्त—मदन्त त्वया परिणेषव्याकाः कथकाः, किं य—मुक्तमेव

दाभिः प्रभाषयिष्यामो मदन्य, न विदम्यते छाभि सार्धं प्रभस्या किं वा सद्रक्षितस्य ते प्रपञ्चितेन ।, न वक्तव्ये हि प्रपञ्चितो विरदि  
 वसादसकुटुम्बिनीभिः, वक्तव्यः परिणीय निषमान्प्रवृत्ता प्रपञ्चिष्यमिति, एतथाकृत्य क्रिमेव भगवान् मापद्यति विमर्शेन सितोऽत्र  
 निश्चितः, कन्दमुनिनोक्त—मदन्य ! कथमाद्याः कन्यकाः याः परिषेवम्या मद्रायेन ।, भगवानाह—याद्याः पूरु निवेदिता मयाऽ-  
 त्वैव विरज्यन्तुद्यान्तं कथयता या एव साः कन्यका भान्या, कन्यमुनिपद—मदन्य ! विसृताद्या मेऽमुना भवो ममानुमदेव यत्र  
 वा वर्यन्ते मया वा सन्नाथिन्यो यथासिद्धा वा सर्वमिव विवेदयितुमर्हन्ति भगवन्तः, भगवतोक्त—आकर्षणं, अथि विषयसौन्दर्ये  
 नाम नगरं वत्र शुभपरिणामो यथा वक्तु निष्प्रकम्पताचार्यते हे भार्ये वयोर्वेवाक्रम सान्तिदये कन्यके विधेते, वयाऽपरमसिद्धि शु-  
 क्तमानस्य नाम नगरं वत्र शुभानिषाधिनरेन्द्रः वक्तु वरतावर्धते देव्यो वयोर्मूर्तुतासत्यते कन्यक सज्जाते इति, वयाऽप्यवसिद्धि  
 विषयमानसं नगरं वत्र शुद्धानिषाधिनरेन्द्रः वक्तु शुद्धतापापमीरते एविव्यो वयोम ऋजुताऽर्च्यते नाम हे कन्यके समूते इति,  
 वया शुक्लविषयपुरेऽपि सदाशयो नरपतिः वक्तु वरेण्यता देवी वक्तु हे कन्यके, वया—मक्षरतिर्मुक्तता येति, वयाऽप्यऽपि  
 तेनैव सन्मन्त्रेणैव स्वकीर्णेन निर्दिष्टा मानसीविद्या नाम कन्यका, वयाऽप्यऽपि वारिष्यमर्षावक्तु विरतेमर्षादेव्याः कुर्वे समूताऽपि  
 निरीहता नाम कन्येति, वदेवनि वान्यार्थ ! कन्यमुने वासां वृष्टानामपि कन्यकातां वासाभिन्ननामासि ते निवेदिताभिः, कन्दमुनि  
 नोक्त—नाथ ! मद्राप्रसादः, केवळ कथ पुनरेताः कन्यकाः प्राप्ताया मद्रायेन ।, भगवतोक्त—आलोच्य सह कालपरिपत्तासिभिर्पू-  
 र्तिना वदमुमर्षि कन्या पुरतः पुण्योदय भक्त्या देवु पुरेण भक्तुस्तु वक्तुननीयनकान् स एव कर्मपरिणामो वृत्तयिष्यति समस्ता अपि  
 याः कन्यका मद्रायाभावेति, केवळमनेनाप्यभ्यसनीयाः सद्गुणाः कर्षणीयाऽऽत्मयोगवता येनानुक्तवते मयत्वेन प्रसिद्धा कर्मपरिणामः सदा-

नाभिमुत्था यापन्ते श्वमेव घासां पितर णाम सव एषानुरथम्येऽस्य तयो मयसि निष्कविमः प्रेमाधन्मः, न सखु राजाक्रान्त्या  
प्रेमाधन्मो घटित सुघटितो मयसि, न य घटयिषु श्वमय इति, कन्वमुनिराह—मधन्म ! किमत्र श्वम्यमनुनैषामं मगावद्वन्त-  
करयेन यथासौ भविष्यसि गुणधारण , तत्करोत्येव यथाप्रापयन्ति मगावन्तः, केवलमाधियन्तु विधेयेषु नायाः के पुनरनेन घासां  
कन्वकानां कामाय सङ्गमाः सवतमनुशीलनीयाः ? , मगावथेक—“आर्ये ! क्षान्तिमाधियाकृत्वा तावदेन माधनीया समस्तजन्तुषु भैत्री  
“सहनीयः परविद्विः परिमयः भद्रुमोवनीयकृत्परेण पदमीसियोगः चिन्तनीयस्तसन्मादनेनास्मानुमहः सिन्धनीयः परिमावकदुर्गसिद्धे  
“सुवयाऽऽस्मा श्माधनीयाः परकोपकारणमावद्विवा मन्मथया मगावन्मो मुक्तास्मानः महीतव्याः कर्मनिर्वरणार्हेषुतया न्यक्कारकर्तारो द्वि  
“बुद्ध्या प्रसिपयन्माः ससायसारत्पर्यसिधया य एव गुरुभावेन सर्वथा विधेय निष्पकम्पमन्तःकरणसिद्धि ॥ यथा पुनः परिणिनीयता  
“उनेन सर्वथा वर्धनीयः कोकोऽपि परोपवायः वर्धनीय सर्वदेहिनां य बुभायः प्रवर्धित्वम् परोपकारकरणे नोदासित्वम् परव्यसनेषु  
“सर्वथा भवितव्यं समस्तजगदाकाशकृत्पुताश्वमधारिणेति ॥ सुवर्णा पुनरायं ! विवाद्यियता मद्यान्नेन मोकम्प्यो ज्ञासिमहः परित्माव्य  
“कुलामिमानः वर्जनीयो बलार्थेकः दक्षविवधः रूपोत्सेकः परिहर्तव्यस्तयोऽव्यष्टम्भः सिरकरलीयो वनगर्भः निर्वासनीयः भुवाहङ्कारः  
“सपक्षेमेक्यो काममहः क्षिपिजयितव्यो बाह्व्यकानुष्ठायः सेवनीया नम्रता व्यसनीयो चित्तव सर्वथा कर्तव्य नवनीयविष्णोपमं हृद  
“यमिसि ॥ तथा परिहरतः परेषां भर्मोहपटन वज्रपठः पैशुन्य विमुञ्चतोऽवर्णवाय क्षिपिलयथो वाक्यावप्य गर्हयथो यक्कोष्ठि भनापरव  
“परिहास मवदतोऽलीकवचनं त्यजथो बाजाटवो विवधयो मूलायोन्नायन प्रगुणीमविव्यसि गुणानुरक्ता मद्यायस्य स्वयमेव सा सत्य  
“वेक्षि । यथा निर्मत्सर्वया क्रीडित्वां पृथ्वया सर्वत्र सरलभाज परित्तमता परपञ्चन विमकयता मानस समनुक्षीकयता मकटाधारता

“अनुवर्तयता सद्भाषममानतां सर्वथा कुर्वता प्रशुभदण्डोपमभासान्धःकरण महापञ्चन सा ऋजुता वदीकृतमप्यसि । तथा धारयन्ति पर-  
 “पीडयमीदृशं निराकुर्मसि पछोदुर्गतिं बर्धयसि परधनहरण समयसि वक्ष्यायेदुर्गतां पृथ्विं दुर्गतिमय महापञ्च सज्जातनुपगाऽगमि-  
 “व्यसि सयस्य सा नूनमभीरतेसि । शुक्लां पुनरपि कथयाऽऽर्च्य । महापद्मेन सार्त्ताभाषमानतम्यो विषकः द्रष्टव्यो वामाभ्यन्तरदन्त्या  
 “मृज्जः कन्धरस्मा वधनीया मन्थरिपासा धारणीय भावतो वदिरन्ध्रमाकममन्धःकरण सधया वहुञ्जकारयानिवापकामाभ्यामभिष्टुः  
 “अस्यवज्जनविशम्यो निजमात्र इति । ऋण्यति पुनः पापी विपुलता कन्धमुनं । महापञ्चन मसिपथम्याः समक्या भवि भावर इव सुरमरुतिरम्यो  
 “तापो न बलम्य षडसरी न क्षयां दत्तया न भवनीया वभिषया न विवोक्नीयानि वदिरन्ध्रियाणि न स्वावम्य रस्तिभन्निपुनकुम्भ्या  
 “अर्धे न सारणीय पूर्वकसिध नाहरणीयः प्रणीताहारः रक्षणीया वद्विमाया न करणीया दार्तरपाता सवधोरकनीया रक्षानिष्पावतेति ।  
 “तथा सर्वपुद्गलकम्भापां देहवननिपयार्थीनां भावयते सवधमनितयां चिन्त्ययते गाढमगुधिरूपतां व्यापते दुःखारमकतां सञ्चयते चारम  
 “मिस्रस्रमावतां विरूयते सकल कुनिरकंकाक विमुद्यते समकलसुखरत्नमसौ महापात्राय गुणधारणाय स सद्गोपः समानीय दास्यति  
 “तां सन्मन्वर्त्तनरत्नतां विद्याकन्धकामिति । तथा चित्तसन्वापायेकता मनोदुःखाय भोगाभिजापो मरण्याप जन्म रियोगाय प्रियसङ्गमः  
 “कोशकारकीटकोष दन्तुसन्वातरक्षता निदिशालमन्थनाय वीरक्य सङ्गद्वयता कैसापात्राय सकल सङ्गजाते प्रवृत्तिदुःख निवृत्तिः  
 “मुक्तमिलोबमनदरय भावयतो महापञ्चसा भविष्यसि गाढमगुरूप्य सा निटीवृतेति ॥” वदेते सद्गुणाद्यासां ददानामपि कन्धकानामरा  
 मये महापद्मेनाभ्यसनीयाः, कन्धक—एव कुर्वतोऽस्मानुद्भवयैवापसर्त विद्याय द्वाधिव्यसि समक्य पारिषयभरताञ्जरिकं निद्रकल स  
 कर्षपरिणामः, एवः प्रत्येकमदुरुपसुणान्धासेनैवात्मभ्यनुपगमानेवभ्यासे महापद्मेन सुभटाः, एवः सान्यगुरूप्यासे निराकटिव्यसि



एतन्महाभोदक्षितैरन्य, एवोऽप्यमन्त्राभावात्तन्मः स्ववृत्तकलितो विनिर्जितभावाद्युक्ताभिः प्रियकामिनीभिः सार्धं कृतमानोऽप्यन्यमुक्त्वो  
 मन्त्रिष्वसि महाराजः, वरिदमेवानेन वाचद्विधेयमिति । कन्वमुनिराह—अहन्व । किमथा पुनः कालेन महाराजस्यैव सेत्स्यसि प्रयोष्यन् ।  
 मन्त्रयोक्तं—आर्ये ! एष्यासमाधेय, एवो मन्त्रोक्तं—नाथ । त्वरायसि मामतीव प्रहस्याप्रहृष्टायास्तः करण मूयांश्चैप कालविलम्बः वरु-  
 दमिह !, मन्त्रावाताह—एतन्मन्त्रमन्त्र त्वराया इत्यनेन हि परमार्थतः प्रहस्या अहस्य मनुपदिष्टस्यानुष्ठान, इत्यन्तिकं हि भवता गृहीत पूर्व  
 मन्त्रान्तर्वाताः न वैवदमसि कृत्यसिरेकेण मन्त्रवत्सेन इत्यन्तिकेन कश्चिद्विस्मितवः सन्त्यासितो गुणः, एवञ्च वाच्ये एवमर्मुस्त्वसिरेनेदमेव  
 मनुपदिष्ट कुर्यान्निष्ठेति, कन्वमुनितोक्तं—अहन्व । केन पुनः क्मेण महाराजेन वा । कन्वकाः परितेवक्याः !, मन्त्रवोक्तं—आर्ये ।  
 मनुपदेक्षमनुसिष्ठतोऽस्म सनीपमागमिष्यत्यसौ शिष्यामावाय सद्गोषो मन्त्री विवाहयिष्यत्यनेन तां कन्वकां स्वास्त्यस्य सनीपस्यः, एवः  
 किमनेन वदुना !, एवसौ किमपि श्रुते एवमेवानुष्ठेय, जानात्येवासौ प्राप्तकाल सर्व कारयितु, तस्यागमने हि समाप्यतेऽस्मादशाशुप-  
 देकावकाशः, तस्यात्त एव सद्गोषः सर्वत्र महाराजेन प्रसाणीकृत्य इति, मन्त्रोक्तं—नाथ । महामन्त्राह इत्यन्तिकेन इत्यन्तिकेन, एवोऽपि  
 वन्द्य सपरिहारः सपरिकर मन्त्रान्त प्रविष्टोऽह् नगरे प्रात्योऽनुष्ठाय मन्त्रवदुपदेश गच्छन्ति शिनामि मन्त्रवत्पुण्यास्तमा ॥ अन्त्यदा  
 मन्त्रमन्त्रो मन्त्रदुपदिष्टाया मन्त्रना एतौ समागतौ मे निद्रा प्रभुद्वयैव वास्तव्या एवः प्रभुका गाढवरे भावनाः, एवो एतन्निशेच संजातो  
 मे प्रमोदासिरेकः, एवः किमेवसि विस्मयोऽह् वापत्समागतो मत्समीप सद्गोषो मन्त्री विजोकिवोऽसौ मया, एवमर्थो ॥—आनन्द  
 पाविका इष्टः, सर्वत्रमन्त्रमुत्तरा । आसिन्मन्त्राववदना, एवकामकलोचना ॥ ३१३ ॥ एतन्वागमसन्नेगनामक स्तनमण्डलम् । पारयन्ती  
 निवर्त्तन् ॥, प्रक्षमास्य मन्त्रोत्तरम् ॥ ३१४ ॥ सर्वथा—स्वद्वीपगुणोपेवा, चित्तनिर्वाणकारिका । सा धिरे किमितिवाक्षेप, मया विद्या

“मनुवर्तयता सम्राज्यमानतां सधया कुत्रता मनुष्यपण्डोपममात्मन्तःकरा मद्राष्टमन सा जगुग्य वर्धाहवर्षाभि । तथा पार्ष्णी वर  
 “पीढामीरुतां शिराध्वंसि पयोहृष्टिं बन्धयति परमनदरुण प्रसयति तदपायंयुतां पृथ्विं दुर्गाभिषय मद्राष्टम सञ्जागनुगतां अग्निं  
 “प्यसि कस्यप सा मूनयवीरतेति । मुकतां पुनरभिधयताऽऽय । मद्राष्टमन सार्त्ताभाषमानतव्या विद्वः इदम्यो जगतामन्मरुतभा  
 “द्विजः दन्तस्तथा धनवीरा मन्त्रसिपसा पारणीय आबतो यद्विरभ्यभाषप्रयन्तःकरा सधया वदुजकान्यान्विषाभकामाभ्यामभिभूतः  
 “पशवज्जलसिधक्यो निजभाष इति । प्रसयति पुनः पायो विप्रुषता क्यमुने । मद्राष्टमन मन्त्रिचरण्याः सधया अर्धे मातर इव सुनर्दर्शयः  
 “दावैः न बलम्य वदस्यो न कार्यो वरुषा न भयनीया यन्निपया न विजार्जनायानि कश्चिन्निपात्रि न स्यावप्य रत्नभूमिपुनःकुर्यान्  
 “ययै न सारणीय पूर्वकसिध तद्वरणीयः प्रवीणाद्याः रक्षणीया वद्विमात्रा न करोषीया दाटीरराता सधर्पोरुजनीया रक्षाभिधकाचिधमि ।  
 “तथा सर्वपुत्रकुर्यापायां देहवन्विपयादीनां आबयते सवधमनिजतां धिन्वयते गादमगुधिरुषतां व्यायव दुःशानमरुतां कञ्चयव भगव  
 “मिमस्तमरावतां विप्रुषते सकृद कुर्वितर्कमात्र विप्रुषते समस्तवस्तुवरुषमसौ मद्राष्टमाय गुज्यारण्याय स सद्रोषः सामानीय दास्तमि  
 “यै सन्ममसैनसमर्थां शिष्टाकन्यकासिधिति । तथा विप्रसन्मपायेव्या मनोदुःप्राय योगाधिकारो मरुजाय सन्म वियोगाय शिधयद्वयः  
 “कोष्ठकारकीदृशेव मनुसन्मानरक्षता निविज्जासमन्मनाय जीवस सद्रक्षरता कथायायाय सकृदं सद्रज्जालं मधुविदुःसं निवृष्टिः  
 “सुजमिलोवमनवरत भावयतो मद्राष्टमन्न मविष्यति गादमनुरक्षा सा शिटीहतेति ॥” यदेते सद्रुजाख्यातां दधानावर्धिर कन्यकानामवा  
 मये मद्राष्टान्मन्मसनीयाः, सम्यक्—एवं कुर्वतोऽस्मानुद्वयवैवावधरे विद्याय द्ययिष्यति समस्त पारिषयर्धपमादिर्कं निमज्ज स  
 कर्मपरिचामाः, तथा प्रत्येकमनुस्वरुपाभ्यासेनैवात्मन्यनुपगमान्तरव्यासे मद्राष्टान्म सुभटाः, तथा सान्यनुरुप्यसे शिष्टादिरिष्यन्ति

रिणा १ ॥ ३३३ ॥ मूय हि याव मा याव, मयेन ऋषसन्धयः । मया यावन्ममेवास्मि, प्रसिद्धकनकान्धया ॥ ३३४ ॥ बलिचे न-  
 मिबायेरथ, दानसदये नृपे । कनया बलिवास्तेऽपि, सर्वे पापेभ्यःपराः ॥ ३३५ ॥ रुद्रभगवत दैर्घ्येण सद्गोपमधिपः । सा  
 दङ्गाः केवल सर्वे, मोः किमत्र भविष्यति १ ॥ ३३६ ॥ इत्यत्र—भारित्रयर्मराजीय, सैन्य सद्गोपमधिपः । यदाऽनुग्रजनं कुर्वद्वागव  
 यावती मुधम् ॥ ३३७ ॥ यदा परस्परान्नान्दण्डनियोपमीपणम् । आयोधन दृढस्पर्धमात्मनं बलमोक्षयोः ॥ ३३८ ॥ अपि य—  
 विषयसङ्गसमममेकयो, मनुकरभुविषयिषमन्धयः । त्रिपथायमुनाजलबधवाऽभिषेकं प्रविभाति बलद्वयम् ॥ ३३९ ॥ रत्नसिद्धमस  
 योपमद्वारथ, गजपटापविवापरवारणम् । इयनिरुद्धकसद्वारिषावन, वरपदातिनिपातिवपचिकम् ॥ ३४० ॥ अथ त्रिपाटिवयोपसर्वोत्कट,  
 प्रकटविक्रमकार्षिणि योगिनाम् । अमरदुन्दुपयोरपथाभिन्नोक्तसिद्धिमुद्रमनीकयोः ॥ ३४१ ॥ यद्यथा तादृश धीन्म, लक्ष्यमास्तु  
 वकै । स कर्मपरिणामाभ्योऽभिनवपथवोचनम् ॥ ३४२ ॥ अये—अथा यावन् कर्तव्यमिदमेवविधापकः । प्रकटः पक्षपातोऽत्र,  
 सर्व्वसाधारणो ह्ययम् ॥ ३४३ ॥ यदा—कृत मन्त्रो विरच्यन्ते, पक्षपादे स्थापयन्ताः । महासोदाहयोऽत्रो मे, पुच्छ ताकाण्डविबुरम्  
 ॥ ३४४ ॥ यदाहि—अथ नारिकेलमपि, पञ्चम मे महाबलम् । गुणाः ससारिलीबस्य, सुन्दरं प्रसिमासवे ॥ ३४५ ॥ अथ योरेषु वर्तेत,  
 मूयोऽन्वेषु यथा पुन । तवमिरंरन्मिलिता, गतिर्मे निजबान्धवाः ॥ ३४६ ॥ यस्मात् प्रकृतमस्त्येव, वस्तेर्व द्वितकारकम् । बलं नारिक  
 धर्मात्मन इत्युपमासि साम्प्रथम् ॥ ३४७ ॥ येनेवं वीरवतेनेन, बल पापोदयाचिकम् । न च मन्त्रो विरच्यन्ते, महासोदाह्रितान्धवाः ॥ ३४८ ॥  
 यदाः सन्ध्यां विनिश्चित, वेनोपायं महत्तमना । यथा मनुपविष्टास्ते, बर्हिता वरमाधनाः ॥ ३४९ ॥ यावन् भावनास्तु, शिवस्त्वं गुण-  
 धाराय । । दावस्तुवकीमूर्धं, सद्गोपसद्विव बलम् ॥ ३५० ॥ यदा—मणिमन्त्रीपथाधीनो, भावनातां विसेवदा । अचिन्त्यमिह सिद्धेयं,

उपलोकिता ॥ ३१५ ॥ तत्र—सा सद्बोधेन मे वृत्ता, परिणीता मयाऽनया । आतः सद्याभाषीनामान्त्यो सद्बुद्धिर्वा निदा ॥ ३१६ ॥  
 प्रसाधे ह्य समुत्थाय, परिभारविशेषेऽपि । गणोऽह मगधमूलं, वन्निवृत्ताः सर्वसाधवः ॥ ३१७ ॥ यद्यो विनयनमप्य, चिद्विद्याच्छतिना  
 मया । समस्त यन्निवृत्तान्य, पुष्टा निर्मलसूरयः ॥ ३१८ ॥ षडुह—सा किं मे वादयी नाथ<sup>१</sup>, प्रवृत्ता वरभाषना । किं वा वादस्त  
 मुञ्चते, हर्षोक्त्वोऽस्मिन्तरः ॥ ३१९ ॥ सूरिगृह महासख<sup>१</sup>, समकार्णव कथ्यते । स कमपरिष्ठाभाक्यरुणस्त साधुकमया ॥ ३२० ॥  
 वदस्तेन स्वय गत्वा, सद्बोधोऽयं सविद्यकः । प्रोत्साहिषो भवा गच्छ, भवस्त गुणभारयम् ॥ ३२१ ॥ भय वारिद्र्यपर्मण, साधमालोभ्य  
 पश्चिद्वः । वदः प्रवृत्तिवोऽयं ते, समीपनामनोक्त्वया ॥ ३२२ ॥ विद्यायामु च वृत्तान्य, महाभोद्वाहिसम्भवः । पायोदय पुरदल्य, पयान-  
 कोचमुपागताः ॥ ३२३ ॥ विपयानिक्तापेणोक्त—विनम्राः सान्द्रव मूल, सद्बोधो ह्यवको यन्नि । तस्य ससारिजीवत्य, पार्थे यायान्  
 सुवदकः ॥ ३२४ ॥ वत्सान्मदं यथासत्तथा, कुर्वन् यत्नमुद्यमम् । मार्गो विद्यव सर्वेऽपि, तस्य स्तब्धनवत्तराः ॥ ३२५ ॥ वद पायो-  
 द्यनोक्तमार्गः । किं क्रियतेऽधुना<sup>१</sup> । भवा वेवोऽपि नः स्वामी, तेषां पक्षे स्ववसिष्ठवः ॥ ३२६ ॥ वयादि—स कर्मपरिष्ठाभाक्यो, देवो  
 उक्तस्तस्यपूरकः । पथाऽऽस्मिन्नोः पुराऽभूत्, कलकलच्छाया वयम् ॥ ३२७ ॥ वयासीनोऽपि यथेय, स्यादेवोऽय दलद्वये । वयासि युययव  
 उक्ताः, योऽहं तैः सार्धमवसा ॥ ३२८ ॥ वयासीं देवनिर्विष्टो, नः पुनर्वासि सत्वरम् । सोऽय सद्बोधसन्निवो, नैव स्तब्धनमहसि ॥ ३२९ ॥  
 न वायुना नभावेष्टो, देवकीवोऽय विद्यते । योऽहमे सर्वथा भव्यापेन दूरीकृता वयम् ॥ ३३० ॥ वदेव सन्निवता एव, प्रत्याय कथ्युप  
 ईय । पादु भावदय वक्ष, पार्थे सद्बोधनामकः ॥ ३३१ ॥ एववाक्यम वचन, रोयेण स्युरिवापरः । रथाय पल्लिवः क्षीप, ज्ञानसब  
 रथो नृपः ॥ ३३२ ॥ वच्छ न केन—यद्यप्य प्रतिपक्षो मे, वत्सान्मदं यासि लीलया । मया किं जीवितेनेह, जननीहेतुका

रिणा १ ॥ ३३३ ॥ मूय द्वि पाठ मा पाठ, मयेन रूपस भयः । मया पाठक्यमेवास्म, प्रतिस्वकनकान्मया ॥ ३३४ ॥ अल्लिखे चान-  
 मिभायेत्वं, ज्ञानसवरूपे नृपे । कलया अलिवास्तेऽपि, सर्वे पाथोदवायः ॥ ३३५ ॥ यत्कथागत वैमार्गिकाया सद्गोपमभिषाः । सा  
 कदाः केवलं सर्वे, मोः किमत्र मधिप्यसि १ ॥ ३३६ ॥ इत्यत्र—चारित्र्यपर्मरूपीय, सैन्य सद्गोपमभिषाः । यदाऽस्तुप्रजनं कुर्मदागाव  
 वावरी सुवम् ॥ ३३७ ॥ यतः परस्परानुनाथपण्डनिर्घोषमीधम् । आयोषन इत्यपर्ममात्रम जल्योपयोः ॥ ३३८ ॥ अपि च—  
 विद्यावृक्षसमप्रमयेकयो, मनुकरज्जुविद्यभिभयन्यतः । प्रिययागयमुनाज्जवत्वाऽसिद्धं प्रविभासि यत्कथम् ॥ ३३९ ॥ रयविक्रमस  
 योपमहारस, गजप्रतापसिवापरकारणम् । इयनिरुद्धसद्वरिसाधनं, वरपदासिनिपासिचयधिकम् ॥ ३४० ॥ अथ विपाटितयोपपद्योत्कट,  
 प्रकटविक्रमकार्येणि योगिनाम् । अमवदुनूतपौरयसासिचोस्यविसिचङ्कुचमुद्रमनीकयोः ॥ ३४१ ॥ यतस्तथादृष्टं वीर्य, ससपास्त्रमु  
 वकैः । स कर्मपरिणामाक्योऽचिन्तयत्तज्जबोवनम् ॥ ३४२ ॥ अये—मया साधन कर्तव्यम्विषयमेवविभायकः । प्रकटः पक्षपातोऽत्र,  
 सर्वसाधारणो हयम् ॥ ३४३ ॥ यतः—कठ मयो विरभ्यन्ते, पक्षपाते स्वर्थाववाः । महाभोदावयोऽत्रो मे, शुक्र नाकाण्डनिर्गुरम्  
 ॥ ३४४ ॥ सदाद्वि—मय चारित्र्यपर्मवै, यत्कथ मे महाप्रलम् । गुणाः संसारिजीवस, सुदर प्रसिमासते ॥ ३४५ ॥ अय द्योयेषु बर्वेव,  
 मूयोऽप्येषु भया पुष्ट । तवाच्चिरंनलिता, मस्तिर्मे निजगान्धवाः ॥ ३४६ ॥ वस्त्रात् प्रच्छन्नरूपेण, वस्त्रेव द्वितकारकम् । यत् चारित्र्य  
 पर्मपमद पुष्पासि साम्प्रतम् ॥ ३४७ ॥ येनेवं वीर्यतेऽनेन, यत्क पाथोदवासिकम् । न च मयो विरभ्यन्ते, महाभोदासिगान्धवाः ॥ ३४८ ॥  
 यतः सन्मय विनिधित्स, देनोपाय महात्मना । यथा मनुयसिवास्ते, यद्विद्या वरमावनाः ॥ ३४९ ॥ यावच्च भावनास्त्रः, स्त्रितस्त्रं गुण  
 धारण । । वावत्तयवलीनूर्व, सद्गोपसद्विष्ट यत्कम् ॥ ३५० ॥ यतः—मपिमयोपपापीनो, भावनानो सिधेयतः । अचिन्त्यमिद विधेयं,

उज्जकोत्थिता ॥ ३१५ ॥ एतच्च—सा सद्बोधेन मे दत्ता, परिष्पीया मयाऽनया । आद्यः सद्बोधमाहीनामानन्वो अहिंसा निष्ठा ॥ ३१६ ॥  
 प्रभाते तु समुत्थाय, परिवारविधेयिष्ठः । गतोऽत्र भगवन्मूढ, शनित्वाः सप्तसाधवः ॥ ३१७ ॥ तत्रो विनयनमप्य, निर्दिष्टाद्यतिना  
 मया । अधस्त एभिर्बुधान्, प्रष्टा निर्मलसूरयः ॥ ३१८ ॥ भद्रव—सा किं मे वाटसी नाथ', प्रष्टुवा श्रुत्यावना । किं वा वाटसस  
 मुद्बो, इयोक्तासोऽसिमुत्त ॥ ३१९ ॥ सूरिणश्च भद्राणक', सभाकर्तव्यं कथ्यते । स कमपरिणामात्मस्तुष्टस्य साधुक्रमणा ॥ ३२० ॥  
 सवस्येन स्वय मन्त्रा, सद्बोधोऽत्र सविद्यकः । प्रोत्साहिषो यथा गच्छ, मज्जस गुणभारणम् ॥ ३२१ ॥ अथ चारित्र्यमर्पेण, साधमाकोप्य  
 प्रविष्टा । तव प्रवृत्तिचोऽत्र वे, मयीपागमनेच्छया ॥ ३२२ ॥ शिष्टायास्तु च बुधान्, महामोहाविराजय । पायोदय पुरस्कृत्य, मया  
 बोधमुपागताः ॥ ३२३ ॥ विपश्चामिकापयोक्त—विनाद्याः सान्मय मूढ, सद्बोधो दृढको वर्त्ति । यस्य सकारिजीवस्त, पार्थ यायान्  
 सुबुद्धः ॥ ३२४ ॥ यत्सांमय यथाशक्या, कुरव्य यत्तमुद्यमम् । मार्गे शिष्टव सर्वेऽपि, तस्य सस्मन्नवसरः ॥ ३२५ ॥ तत्रा पाप्मो  
 यवेनोक्तमर्थ । किं क्रियतेऽमुना । यथा वेधोऽपि नः स्यामी, तयो यवे ज्ञयशिवतः ॥ ३२६ ॥ अथादि—स कमपरिणामात्मको, देवो  
 उज्जसम्भूरकः । यथाऽऽसीनोः मुत्तऽमुत्त, शब्दजन्यस्यवा ययम् ॥ ३२७ ॥ प्रयासीनोऽपि यथेय, स्यादेवोऽत्र बलद्वये । यथापि मुन्यते  
 उज्जस्य, योऽमु वै सार्धमज्जसा ॥ ३२८ ॥ इष्टानीं यत्निर्विष्टो, वा पुनर्यासि सत्तयम् । सोऽत्र सद्बोधसविभो, नैव स्तब्धनमद्वि ॥ ३२९ ॥  
 न चाशुना समारोहो, देवकीयोऽत्र शिष्यते । योऽहम्ये सर्वथा यस्यायेन दूरीकृता ययम् ॥ ३३० ॥ सर्वेव सविधा एव, प्रत्यर्थं सच्युत  
 ईय । यस्तु पावदय तस्य, पार्थ सद्बोधेनममकः ॥ ३३१ ॥ पृष्ठवाक्यं ययन, रोषेण पृष्ठुमिवापरः । रक्षाप यलितः शीघ्रं, प्रानसंभ  
 रयो भूयः ॥ ३३२ ॥ अत्र च तेन—यद्यप्य प्रतिपद्यो मे, तस्याभ्यं याति सीकृता । मया किं जीविषेनेह, जननीकुशका

धरेवास्तु सम्मगधर्वितन्म देवेन, न बर्तेत सत्त्वासात्ममाधे एव परमोपकारिणामिहो पुत्रवौ, अन्तयोम बलेन भवता दद्यान्ममासादनीयं  
 तवः सम्यक् पोषणीया देवेनेसा मायं इति, मयोक्त—एव करिष्ये, एवः प्रवृत्तोऽहं यदुपदेसकरणे प्रविशामि पुनः पुनश्चिच्छृणौ वि  
 स्रष्टामि सह विद्यया मन्त्रयामि शुद्धं शुद्धः सद्योपेत सार्धं सम्मानयामि सदागमसम्पत्पुष्पैर्नष्टिभर्माप्, एव च कुर्वतो मे गते भगवसि  
 कश्चित् किञ्चिद्भूत पञ्चमासमात्रं सन्नातो मद्रूपैः सन्नाधर्वितवद्वयः कर्मपरिणामः एवो गतस्तथैव वेदु नगरेषु गमिवास्ते राजानः कृताः  
 सर्वे मे निजनिजकन्यकाद्यानामिदुक्ताः एवः समागतो मन्मूढ प्रवेशितोऽहं तेन गुरस्तदुपुण्योदयेन काष्ठपरिजलाभिपरिवारोपेतेन कर्म  
 परिणामेन तासां कन्यकानां विवाहार्थं उपरिहरिष्येष्टृणौ, एतस्मास्मिन् सास्त्रिकमानसवर्तिसिधेकगिरिस्त्रिकरनिषिद्धे जैनसत्पुरे समाहू  
 दास्ते समष्टाः शुभपरिणामादयः समागताः उपरिवाराः कवस्तेषां समुपिषोपचारः गणितं विवाहविन । अत्रान्तरे सन्नातो महान्  
 मोहाविबले सर्वसमाहः प्रवृत्तः पर्यालोचः अभिप्रैव विषयानिष्ठावेण—देव ! वयनेन ससारिणीदेनेमाः क्षान्त्यासिकाः कन्यकाः प-  
 रिणीताः सुखतः प्रलीना एव वयमिति मन्त्रव्यं अतो नास्मानिकेषाऽत्र शिषेया कर्तव्याः सर्वथा अज्ञोऽवकम्बनीयं साहस मोक्यो  
 विप्राः—भयं हि साधत्कर्तव्यं, यावदन्तो न हृदयते । प्रयोजनस्त तदासी, प्रहर्तव्यं सुनिर्भयैः ॥६६॥ एवोऽनुनव रन्म  
 शिष्यो वचन महामोहेन समर्पित क्षेपमुपटैः विदिता सामग्री संतत बल समागावास्ते समूय रणोत्साहेन केवल दृष्टमयवया कर्मप  
 रिणामप्रसिद्धवामीवयवा च पर्यालोकाश्रितेन, एवः पृष्टाऽमीमि सविनय मशितव्यथा—यथा मगधसि ! किमस्माकमधुना प्राप्तकाष्ठ-  
 मिति !, यथोक्त—भद्रा ! न पुकस्तावद्गणार्थं रणारम्भः यतः समाह्वोऽयमधुनाऽऽर्यपुत्रः कर्मपरिणामेन सिद्धिदा शिषेयवः शुभपरिणाम-  
 मादयः समागतमार्गपुत्रसाधुना विशेषतो शिष्यवत्पुष्पैर्नोत्सुभ्य दृष्टोपिष्यसि एवपि कर्मपरिणामः करिष्यत्यार्थपुत्रस्तस्य पोषण एवोऽधुना

श्रीरामाष्टकप्रारम्भम् ॥ ३५१ ॥ यतो यथा जया भूयः, प्रकृष्टास्तव भावनाः । यथा यथा परिधीया, मद्रामोदादयः स्वयम् ॥ ३५२ ॥  
 यतः प्रवक्तव्यं प्राक्त, धृषणैव विनिर्दिष्टम् । तेन सद्गोपसैन्येन, पञ्च पापोधपासिकम् ॥ ३५३ ॥ सर्वे प्रदादिता प्रायो, मद्रामोदाभिप  
 नयः । धूर्तिवः स विधेयेषु, ज्ञानसंशरणो मूयः ॥ ३५४ ॥ क्षिपता मित्सन्मन्मन्दास्ते, सर्वे पापोदयादयः । निषादिव स्वर्धेन्यन, स-  
 द्रोचाः सह विधया ॥ ३५५ ॥ गते चाम्यर्पणं भूयः, यत्र सद्गोपमक्षिपि । स तारयस्तथा जातो, दूर्घोद्धासोऽर्द्धमुन्मत् ॥ ३५६ ॥  
 सद्गोपसचिवो दृष्टः, परिधीया च कल्पका । याम्भ ! पुनस्तथा सर्वं, ज्ञातवैव यतः परम् ॥ ३५७ ॥ वरिद्व कारण भूयः, भावनायां  
 सिद्धये । दूर्घोद्धासवान् योत्सव, यत्रो वे नात्र साधयः ॥ ३५८ ॥ मयोक्त—अपुना किं प्रकुरुष्विति, से समान्तरशायनम् । । सूरिराह मद्रा-  
 याम्भ !, कुर्वते कल्पयापनम् ॥ ३५९ ॥ वरीणोस्ते गता नाथमुपमान्वास्तथा परे । सर्वेऽपि पिचदृष्टो वे, सर्वाननीनतया क्षिपताः  
 ॥ ३६० ॥ पुनः प्रस्तावमावाप, कल्पा वे सर्वभीडकम् । संभामाप कतिप्यन्ति, मत्सरापमावधेवसः ॥ ३६१ ॥ तत्कल्मसा मद्रायाम्भ !,  
 सद्गोपवचनापरा । चारित्र्यमर्मसुमर्दवोरपीयाः दृष्टवृत् ॥ ३६२ ॥ मयोक्त—यदाकापयति नायः, इत्यत्र संपूर्णो मासकल्पः  
 यतो गवास्तेऽन्वय मगावन्तो निर्मलसूरयः । विधेययोऽनुष्ठिता मया यदुपदेशाः प्रसाक्षितमन्त्रः करण परिकर्मिव शरीरं विद्विष्यिष्यपुष्टो  
 मे सद्गोपेन प्रवेशः दूर्ध्वो सामान्यतः सम्यग्भिनामानी द्वी पुष्टो यत्रयो वर्णेन चारु वस्त्रेण सुपादौ स्वरूपेण, यतोऽप्यद्विष्य सद्गोपेन  
 —देव ! विधेययो धर्ममुद्धामिषानाविमो पुष्टो प्रवेशकौ यत्रयोऽन्वयः यत्रयोर्मदानादयो विधेयः, मयोक्त—यदाभिधानार्थः, यतो  
 दक्षिणः सद्गोपेन विपुलप्रसफटिकवर्णः सुम्भराकारपासिप्यः सुसस्करुपा केवला इति गोत्रेण धीवपपपपुष्टा इति नाभा मसिद्धाचिद्यो  
 नार्थः, धमिद्विष्य य तेन—यदा देव !—मन्मथ नरलोभादिद्योऽपि परिचारिकाः । सुष्ठ्वैका द्वितीयस्त, जायते परिपोषिका ॥ ३६३ ॥



दक्षिणामारिचमर्मराभादयः सिद्धिवा वैर्म प्रसिपथिः सन्मानिवाः प्रलोक मया गताः पदासिमाव निमुज्ज रिपुनिराकरणे सह चतुरज्जसे  
 नया ॥ यवसेषां समुद्रासमाजोक्त्वा रणशान्तिनाम् । प्रलोक प्रमुणा रम्भा, कर्तव्यं सन्मानवोपणम् ॥ ३६५ ॥ दूरयोश्च भयोद्भवा, माहा  
 मोहाययकाः । पापोऽय पुरस्कृत्य, नद्यास्ते मृत्युमीरयः ॥ ३६६ ॥ धैर्यसु भद्रास्त्रयाभासाः, क्षोधिवा सा महाटवी । रिपुनाशेन उज्ज्वा  
 य, क्षोके जयपटाकिंका ॥ ३६७ ॥ केवलं ते हुतास्मानः, किंपितृभयमुपागताः । किंपितृभयान्त्वयां वृत्ता, सस्त्रिवा वकथयमा ॥ ३६८ ॥  
 यतो महाविमर्दन, विवाहोऽस्मिनोरागः । प्रारब्धो मे यदा कर्तुं, मुनिवान्तरणान्तरैः ॥ ३६९ ॥ स्वाधिवाः प्रवर्तं वाचयन्नाष्टौ चार  
 मावरः । दासां च सिद्धिवा पूजा, प्रयत्नेन यथोचिता ॥ ३७० ॥ निवेदितं च मे वीर्यं, सद्रोधेन पुणक् पुणक् । मातृणां यथवा वासां,  
 यदे मदे ! निवेदये ॥ ३७१ ॥ “माया हि कुर्वते मावा, पुनमात्रप्रकोचिनाम् । मुनिकोक पुरे वीने, मर्तो क्वापेयवर्जितम् ॥ ३७२ ॥  
 “समुद्रिपूववाक्नेन, यत्न्य भयम् सिवास्वरम् । द्वितीया भावयत्येवं, मावा यतिजन सदा ॥ ३७३ ॥ पृथीयमावा निःशेषवोपनिर्मुक्तम्  
 “जसा । आहारमेवयत्येव, यतिकोकेन कारण ॥ ३७४ ॥ यमुर्भमावा मुनिभिः, सुदृढं सुप्रमार्जितम् । पात्रायादानविधेयं, कारणन्ती  
 “विजृम्भते ॥ ३७५ ॥ यत्किञ्चित्स्वासरिकाभ्य, देहाहारमकामिक्म् । सपिण्डे पञ्चमी मावा, सप्तमीत्या त्याज्यमत्यक्तम् ॥ ३७६ ॥ यष्टी  
 “मावा पुनर्विक्त, साधुधिचमनाकुका । रक्षन्ती क्षपयत्यत्र, वोपसङ्गावमजसा ॥ ३७७ ॥ सप्तमी कारणभावे, मावा मौनविवायिका ।  
 “साधूनां कारणे वाक्चवोपरक्षपयत्यत्र ॥ ३७८ ॥ यष्टमी कूर्मवह्नीन, मुनिवोक्तमकारणे । चारयेत्कारणे कायवोपविप्लवभारिकम् ॥ ३७९ ॥  
 यष्टिमा मावरत्यत्र, स्वासिवाः प्रयमे भिने । पूजिषाम विधानेन, वीनसत्पुरसारिकाः ॥ ३८० ॥ यथस्त्रिचसमाधाने, सद्रोध वरमप्यवे ।  
 यैव निःस्पृहता वेदिविशिषेय सकारिवा ॥ ३८१ ॥ विनिर्गितं च धर्मेष, प्रवीत निजवेजसा । यन्नामिदुपव विदीर्षं, कृत सर्व यथो-

रयेन उगाढां भवतां सर्वप्रकृत्यः संप्रत्यये वस्मात्काकभापनां कुर्वन्सखावदृष्टसेवया विप्रव नूर्यं, यथा तु भवतां प्रस्तावो भविष्यसि तदा-  
 ऽप्येव निवेदयिष्ये, दृष्टान्तानां हि भवत्ययोजने सकलकाकमाह वर्ये, का भवतां चिन्ता?, तवसह्युपेधेनोपसह्यवहीः प्रकृतसङ्गामा-  
 वरयः, केवलं वयासि वदतः प्रमुखा एव हैः प्रकृतमक्षितैरपि निजनिष्ठा योगसाध्यः, तवसन्मादात्म्येन सखाया मम वेवसि कङ्कोला  
 —यथेदमादिष्ट भगवता बहुव परिणीतास्तु तास्तु कन्धकास्तु भवन्तमह प्रमादयिष्ये “मसिदुष्कृत एव प्रमदया हुत्वा बाहुभ्यां स्वयमूर-  
 ‘ममवदयेव दैष्टिकं चलतुंघान सुललाजितं मे कपीरं समसितो योगवङ्गाः तत्र क्षमिष्यते मायो दीर्घकाक मे रम्भदुषिता कावच्छ्रया  
 “एव दृष्टकी महत्तमकपी बाधिष्यते प्राचीनता बाह्वक्षीदिकमपीववियोगेन इत्यादि चिन्तयतव मे सखायो मनाह मनोमङ्गः, तवदि-  
 “मिवं मया—यत् किं न परिषयासि तावदेवाः सिधामि यथासुखासिक्तया गमयामि यौवन सखातीनाम् मनैवाः तवः पद्मात्काके परि-  
 ‘वीर प्रव्रजिष्यामीसि,” कथं न सर्वोऽपि दूरवर्तिनि सद्रोधे मम सखातः पर्यालोचः, अत्रान्तरे समगत सद्रोधः निवेदितो मयाऽप्ये-  
 निजान्निप्रदायः, सद्रोधः प्राह—देव ! न सुन्दरमिह मणिवं देवेन क्षुण्णस्मिन्नात्मद्विषस्य निरधकं मुपसन्नोद्धानां चिह्नमेवद्वयवत्या  
 न न स्यामादिकमेकमज्जवं देवस्य, किं वरिं?, निजसिधमिह तेषां पापात्मनां महामोहादीनां, ते हि निधिमहत्पकाळ इव वेवाकाः पशु-  
 पक्षिवाः सान्मव कृतान्त्वर्चना विमकरणाव देवस्य तत्र नञ्जनीपक्षीयत्वात्ता देवेन, ततो कथं सद्रोधमापिव मणिवे, अयिद्विष एव मया  
 —आर्य ! कथं पुनरसी निपाकर्वन्माः, सद्रोधेनोक्त—देव ! निजवलेन, मयोक्त—दूर्यय मे निजवतं, सद्रोधेनोक्त—एव सखोऽस्मि  
 केवलं ददसेने कर्मपरिणामकाधिकारः, कर्मपरिणामेनोक्त—आर्य ! मयाऽऽदिष्टेन त्वयाऽप्यी वर्तिताः परमार्थवो मयैव ते वसिंता म-  
 वसिन् तन्मा कपोतु सिकम्पं दूर्ययत्तार्ये, सद्रोधेनोक्त—यदासिस्मि मद्यात्मः, ततः प्रवेक्षितोऽहं सद्रोधेन चित्तसमाधानमण्वये

सुखितो मम । मगधमिर्मया हृत्य, साधार्थेनाजुभूयते ॥ ३९५ ॥ मावर्षीयं प्रमोदाक्याः, सप्रमोदे तथा पुरे । शिवोऽहं तत्र संप्राप्तास्थान-  
 धर्मिर्मलसूरयः ॥ ३९६ ॥ सिखाः सपरिभास्यते, वीरबाह्वात्मन्युरे । गत्वा समस्तसागम्या, धनित्वाः साधरं मया ॥ ३९७ ॥ यतो  
 विनाश नमेय, कलशे कलुष्यधम् । भद्रे ! मगधसामये, मयेव भाषितं तथा ॥ ३९८ ॥ सर्वो मगधवाग्धेयः, संपन्नः साम्प्रत यस्मि ।  
 नाय । वदीयतां वीर्या, प्रसादः क्रियतामिति ॥ ३९९ ॥ सूरिरहं महाराज !, सपत्ना तव भावतः । यतो मगधवर्ती वीर्या, तस्याः किं  
 दीयतेऽजुना ? ॥ ४०० ॥ यथाहि—यदेतत् सपत्न, गुह्येऽपि वसतोऽजुना । इवमेव विभावय्य, यस्मिन्नेऽपि विशेषतः ॥ ४०१ ॥ स-  
 धारि क्यवहारोऽहं, कलुषनीयो न पण्डितैः । अतस्ते साम्प्रत भूप !, इत्यलिङ्गं विधीयते ॥ ४०२ ॥ किं च—मावर्षिह्वयस्मिन्निह  
 हेतुरपीक्यते । वदीयते महाराज !, किञ्च ते इत्यथोऽजुना ॥ ४०३ ॥ मयोक्त—नाथ ! महाप्रसादः, यतो “विवायाष्ट विनानि जिन  
 “मुनिपूजां समुत्पाद्य नागरकानन्तं संभात्य वरजुष्यं पूरयित्वाऽर्पित्वाऽहं विजसुव ज्वनतारणाभिधानं राज्यं समाप्य यत्का  
 “जोषितं नि शेषं कृत्यमिदं सह अयनमध्वर्यां युक्तं कुलं चरेण प्रधानपरिजनेन च निष्कान्तो निर्मलसूरिपादमूले विधानेनाहमिति,  
 “ततोऽन्यथा समस्तः साधुक्रियाकलापं यत्कभीमूढो गाढवर्तं सवर्गममः शिविद्यानि बहुपदिष्टान्येकाग्रशान्तिनि काङ्क्षितानि कमुवानि च  
 “सुखाऽभीष्टवरीभूतः सन्मन्मर्षनः सज्जाध्वारिन्द्रधर्मो विद्यावन्तः शिवाय शिरोऽवस्यसीत्यं पाठितो निवर्तं संवत्सवर्षयोगी ममास्ति सुवर्तं  
 “प्रमत्तवानवाधीनि रिपुकीर्वासास्मान्नि निर्मलीकृता विद्ययुतिः, यदेवं गुरुवर्यमुभूत्प्राप्तो विद्वतोऽहं मूर्धिकाढ मुनिधर्मदे”ति, यदन्ते वि-  
 श्वा संसेस्यता कृतमनश्नविधानं सर्वर्षेणाष्टा मे भवितव्यता दद्यादप्यगुहिका तथेजसा नीतोऽहं विभुवाक्ये कस्मातीतेषु विभुवेषु  
 श्वापितः प्रथममेवैवके, तत्र च—गनोद्धारिणि पर्यङ्के, शिष्ये शिष्याशुकावृते । शुभातिनिर्मलाकारः, शिवोऽहं मन्त्रवोपमे ॥ ४०४ ॥ य

विष्णु ॥ ३८२ ॥ वैवस्वीपथमुक्ताभिर्जननीमिषम सादयत् । कानाहृत्तामृषाभि, अपूज्य विनिर्दिशत् ॥ ३८३ ॥ कश्चित्पठ वपाञ्चरे,  
 सर्वैः सामन्तपार्थिवैः । कश्चिदोद्भूतमिष्टिप्रभ, भूषितो वासितोऽग्नौः ॥ ३८४ ॥ ततः प्रपृषा विषादमन्त्यं स्थितः मृदाय एव द्रुप  
 द्विषः दृक्पन्ते कर्मनामिकाः समिधः शिष्यन्ते सङ्ग्राहनादुत्थः । विधीयन्ते कुशासनाभिधाना कथाच्छ्रवणः, ततः कश्चिदोद्भूतं सारणमदेव  
 सार्गस्तत्तत्तत्तं मन्त्रादग्निमुत्तरे दृक्कर्मणो पाप्मिषाण्य आचिन्तारिकायाः, अग्रान्तरेऽसिद्धयेण विजृम्भिताः शुभसार्गानामारयः । निवृत्तिता  
 निष्कल्पवाराधयः प्रहृष्टो महाप्रमोदः भग्नानि मण्डलानि, एव य क्रमेण वसिष्ठमेव दृक्कर्म परित्यजितः । देवा अग्निं मयाऽष्टौ स्वर्गार्क-  
 न्यकाः, उपसिष्टः सविष्टकाभिस्त्यजिभिर्य वीरवीर्यनामके विधीयं वयसने, ततः समानन्विवाभार्तिदयमपुत्रारयः । प्रहृष्टा विस्तिपाद्य-  
 द्विजाताः, इवम—यदेव विद्या सा कन्या, परिष्कीता मया द्रुप । यदेवाद्यो महाप्रमोदः, प्रकीर्तः परमायतः ॥ ३८५ ॥ किं तु—स  
 नैषां ससुखायत्ता, सादमूढः स वर्तते । एतदनुसमाकारत्वेन पार्थे स मे स्थितः ॥ ३८६ ॥ यदा तु परित्यजिताः, भग्नान्सारिद्वरक  
 न्यकाः । सर्वान् वैभानतपरीनां, प्रसिप्तवयसां स्मृताः ॥ ३८७ ॥ तदा सोऽजीकृतद्विषः, पापोऽयसमन्वितः । आदिप्रथमपुत्राभिर्नमस्त्रिवो-  
 ऽग्निं ववा द्रुप ॥ ३८८ ॥ कीनोऽग्निं कीनतरतां, द्विषानेभानतपस्त्रिभिः । सार्धं दैनर्धमिक्कासाहृत्पूरुषं गतः ॥ ३८९ ॥ त्रिविधितेवकम् ।  
 ववास्त्रिवेदु वेदुर्ध्वैः, साज्वाणाय प्रमोदितः । कश्चिदोद्भूतमिषमिष्टिप्रभः । सार्धं दैनर्धमिक्कासाहृत्पूरुषं गतः ॥ ३८९ ॥ त्रिविधितेवकम् ।  
 सत्तवेदतयो वेद, ववा सत्तं मुनेर्ध्वः ॥ ३९० ॥ अन्तराद्विषासेन, वसमुद्रामदीक्षया ।  
 विवाद्विषाः ॥ ३९१ ॥ यदा शुभपरिणामसा, मयाऽप्या अग्निं कन्तकाः । वसिष्ठकल्पवाराधनाकारा बह्वयो  
 र्वायां, इत्येन सह कीकया । अन्तर्ध्व निर्धेयीभूता, वसवो मे सुखाधिकः ॥ ३९२ ॥ त्रिविधं य मया—स एव सुप्रसन्नोऽहो, यः पूर्व

सुखितो मम । मगधनिर्मया इत्य, साधवेवाजुभूयते ॥ ३९५ ॥ यावदेव प्रमोदात्म्यः, सप्रमोदे यथा गुरे । शिष्योऽथ यत्र संप्राप्तास्त-  
 न्निर्मलसूर्यः ॥ ३९६ ॥ शिष्याः सपरिचारास्ते, यन्मैवाह्वायमभिरिरे । गत्वा समस्तसामान्या, ननिवृत्ताः साधरं मया ॥ ३९७ ॥ यतो  
 विधाय नम्रेष, कळोटं कटुकमलम् । मदे । मगधसामये, मदेव माधितं यथा ॥ ३९८ ॥ सर्वो भगवत्पावेक्षः, संपन्नः साम्प्रत यक्षि ।  
 नाय । वरीयतां वीक्षा, प्रसाहः क्रियवामिति ॥ ३९९ ॥ सूरिराह महात्मा, संपन्ना यत्र भावयः । स्वतो भागवती वीक्षा, वत्साः किं  
 वीयतेऽजुना ? ॥ ४०० ॥ यथाहि—यदेवयत्र संपन्न, गृहेऽपि वसतोऽजुना । इत्येव विचारय, यद्विलेपेऽपि विधेयवः ॥ ४०१ ॥ य  
 नापि व्ययवहारोऽय, लङ्घनीयो न पण्डितैः । अवस्ते साम्प्रत भूय, इत्यलिङ्ग विधीयते ॥ ४०२ ॥ किं च—मागलिङ्गवद्विभिन्नमिव  
 हेतुरपीक्यते । वरीयते महात्मा, किञ्च ते इत्यतोऽजुना ॥ ४०३ ॥ मयोक्त—नाय । महाप्रसाहः, यतो “विभाषाट् विनामि क्षिप्त-  
 ” मुनिपूजां समुत्साह नगरकालन्व संभास्य वनजुर्वा पूरयित्वाऽर्पित्वात् स्थापयित्वा निजसुख जनसारणाभिधान राक्ष्ये समान्य एतका  
 “लोचिव निशेय कृत्यविधिं सह भवनमज्यर्वा युक्तः कुलपरेण प्रधानपरिजनेन च सिन्धन्वो निर्मलसूरिपादभूते शिषानेनाहमिति,  
 “यतोऽयमस्तः समस्तः साधुकिमाकृत्य वक्ष्यमीभूतो गाढवरे सदागमः शिष्यिणामि यदुपदिष्टान्येकाग्रसाधनानि कालिकेत्कालिकमनुयानि च  
 “यथाऽमीष्टवटीभूयः सन्मयवर्धनः सज्जायमानिश्चयमे विद्यायन्तः विज्ञाव विशेषतस्तत्सैन्य पालितो भित्तं संपन्नवपयोगी मप्रानि सुधरां  
 “प्रमत्तवानायापीनि रिपुभीषाकालानि निर्मलीकृता शिष्यवृत्तिः, यदेव गुरुपरणामभूपायतो विद्वतोऽथ मूरिकाळं मुनिचर्ये”ति, यदन्त्ये वि  
 द्विवा सतिरना कृतमनशनविधान एदर्शनामुष्टा मे मनिवज्यता यथाऽपरा गुहिका यवेजसा भीषोऽर्धं विभुपाक्ये कस्तपाटीवेतु विजुषेपु  
 श्मापिचः प्रथममैवेवके, यत्र च—मनोहारिणि पर्वके, शिष्ये शिष्यांशुकागुरे । शुभातिनिर्मलाकारः, शिष्योऽथमसुखोपमे ॥ ४०४ ॥ स-

सगगोपमाशुबैद्योर्विद्विमुक्तमम् । सान्ताप्ता विगताबाधमनुभूय मुद्यासुखम् ॥ ४०५ ॥ यथो मनुजगलमन्धःपागुरु वरपादम् । स-  
 रैरववमायातो, यद्रे । मार्यानिधोगतः ॥ ४०६ ॥ यत्र सिंहपुरे आतः, सुषो घीणामहेद्रयोः । मद् गद्गापरो माम, भुवित्रयः  
 क्माथयोदयः ॥ ४०७ ॥ जातिक्लृप्तसपथो, वीर्याभावाय मुन्दरम् । कृत्वा च पूर्ववत्कृतं, सुषोपापापसन्निधौ ॥ ४०८ ॥ वदन्ते च  
 विधातेन, पूर्ववत्परिषदकमात् । प्रेयेयके द्वितीयेऽर्धे, गवो मार्यानिधोगतः ॥ ४०९ ॥ परिपाट्याऽनया मद्र, कृताः पञ्च गमनागमाः ।  
 मावदीक्षां समन्ताव, प्रेयेयकनिधासिषु ॥ ४१० ॥ एकैकपुष्पा सञ्जाता, स्थितिद्वय ममानये । सगगोपमवो द्वावत्तञ्चम सन्निधयतिः  
 ॥ ४११ ॥ कटीरविचनिर्वायी, धर्मसन्तोद्वाविका । इह यत्र च आता मे, वार्दी कस्याप्यमास्त्रिका ॥ ४१२ ॥ वरश्च वरुषारुषां,  
 भरते सङ्गनमके । पुरे मनुजगलमन्धर्वासकीकण्डमण्डले ॥ ४१३ ॥ पुत्रो मद्गामहृगिर्योयावोऽर्धे सिंहनामकः । नेरुद्रवदो सन्नेगः,  
 सुनरुक्मरवारकः ॥ ४१४ ॥ यय यौवनसंकेत, धर्मवन्पुनरामुनिम् । प्राप्य भागवती वीर्या, मयाऽऽप्ता वरकोचन । ॥ ४१५ ॥ वरः  
 किमाकलयेन, साधूनां जादगमिनि । विद्वतोऽत्र ससन्नाथः, सूर्यार्थप्रणोषयः ॥ ४१६ ॥ भय सस्तेन कोठेन, द्वावसाहस्रः सदा-  
 गतः । सपूर्वः सावित्रेयो मे, सर्वथा वन्तुतां गतः ॥ ४१७ ॥ पुण्ड्रपय मया प्राय, विद्वानं बहुसो बहु । किं तु संपूर्णपूजायि, न  
 दमामानि कदाचन ॥ ४१८ ॥ यथा तु कोककज्जेन, विद्वान् कोकया मया । निःशेषमय विद्वानं, सर्व पूर्वः समन्वितम् ॥ ४१९ ॥  
 यथोऽभिगतसूर्यार्थो, गुरुषा धर्मवन्पुना । स्याथिवोऽर्धे निवस्यते, स्रु(पु)रिसहस्र पश्यतः ॥ ४२० ॥ कवय वृद्धानन्वो, देवदानव  
 मानवैः । व्यापार्यस्यापनाथं मे, सद्यस्तकारकारकः ॥ ४२१ ॥ गुरुणा शेषकोकेश, अयथिवोऽत्र सुदुर्गुणः । पन्थत्वं कवद्व्योऽस्ति,  
 देव द्वायः सदागमः ॥ ४२२ ॥ यथा—वसाकङ्कारमात्मेय, पृथिव्या कोकया मया । विद्विवा सङ्गपूजा च, विधिना वसनासनैः ॥ ४२३ ॥

किं च—ये देवास्ते महाभागा, अनुपस्ये च सञ्जनाः । सभाकृष्टा गुणैः सर्वैर्नद्याः किङ्कर्या गताः ॥ ४२४ ॥ एषाऽन्वेवासिनोऽन्वेके,  
 पण्डित्वा दिनबोधताः । सीया गच्छान्तरेऽन्यथा, सम पार्थमुपागताः ॥ ४२५ ॥ तथो विश्वरथश्चित्रमासाकटुरासिपु । कुर्वन्म प्रबन्धेन,  
 व्याख्यानमस्मिमुत्तरम् ॥ ४२६ ॥ अनेकवापसङ्गटभ्यां वापसङ्गयष्टिना । कुटीरिमत्तमावन्नकुम्भमिर्भेदकासिपुः ॥ ४२७ ॥ स्वसाक्षपर  
 साक्षात्तां, सुदृग्गर्भाभेदक्षिन्तः । पूजितस्त महाराजसामन्त्रपरमेश्वरैः ॥ ४२८ ॥ उद्गमवर्षसत्कीर्तिश्चक्ष्माणापुरःसरः । कृष्णसितो यक्षो  
 रूपो, जनेर्मै पटहोऽनघ ॥ ४२९ ॥ अमुभिः कथाकम् ॥ तथा—यन्योऽसि कथक्योऽसि, भूषिता नाय । नेतिनी । स्वपाऽज्वरवा सर्वे,  
 परमममलरुषिणा ॥ ४३० ॥ निर्मिष्य सत्तासिहस्तमिलेव नयमममलाः । तीर्थिका अपि मां सर्वे, सुवन्तः पदुंयासते ॥ ४३१ ॥ शुगमम् ।  
 एषमाचार्यके जाते, सर्वत्रोक्तमनोदरे । भेदऽगृहीतसङ्केते, यज्जात यमिवोष मे ॥ ४३२ ॥ तां वादयी समुदीर्य, सद्यर्द्ध शुभनाम्नु  
 वाम् । ईर्ष्ययेव महापापा, कृष्टा मे मखिवम्यता ॥ ४३३ ॥ चिन्तितं च तथा हन्त, प्रसिपलाः पुरा मया । योऽस्मान्नवसरस्तेषां, महाभो  
 हानिभूमुजाम् ॥ ४३४ ॥ स एव वर्तते कथः, सान्मदं कार्यसाधकः । आद्याभूतो वराकस्ते, पुरा महाकृतवः स्त्रियाः ॥ ४३५ ॥ सर्वेषां  
 कस्यवान्त्वेन, प्रस्थापमपुनावनम् । येन ते कस्यमाहान्या, आगन्ते सुखमाजन्तम् ॥ ४३६ ॥ त्रिमिविक्षिपकम् । एवं निश्चितं ते सर्वे, भद्रे ।  
 पापोद्वापसः । साविताः कार्यगर्भाभे, मखिवम्यतया तथा ॥ ४३७ ॥ किं च—ते कर्मपरिणामाद्यास्ते च मे बन्धवोऽन्वाभाः । विमूढा नष्ट  
 वेष्टाकाः, स्वसक्त्या विक्षिपाक्षया ॥ ४३८ ॥ तवम—यापोष्य पुरस्कृत्य, महाभोद्वापयक्षया । पुनः सस्यापनां कृत्वा, प्रष्टुवा मम सु-  
 म्बुद्धम् ॥ ४३९ ॥ केवलं ज्ञातसङ्केतोऽहान्यमयैः पुरा । कः साभो विजयोपाय, इति प्रारम्भि मन्त्रणम् ॥ ४४० ॥ “विषयाभिक्ता  
 “देवोक्त—इदमत्र प्राप्तकालं—अन्यर्थाभिष्टु तावत्स्य समिध्यावर्धनो ज्ञानसवरूपः निकटीभक्त्यु शैल्यजसद्विधानि गौरवाभिधानानि

स्तान्नायधमाऽनुब्रूयन्मन्त्रमुत्तमम् । सन्निवास्ता विगतावापमनुभूय मुद्यामृतम् ॥ ४०६ ॥ ततो मनुजगलन्तव पातुक वरपातकम् । व-  
 रैरवमात्राणो, मन्त्रे । मार्गान्वियोगाः ॥ ४०६ ॥ सद्यः सिद्धपुरे जातः, सुतो वीणामहेन्द्रयोः । अहं गङ्गाधरो माम्, भविष्यः  
 कथावर्षाः ॥ ४०७ ॥ आश्विनरक्षसपथो, वीषाभावाय मुन्दयाम् । कृत्वा च पूर्ववत्कृत्य, सुपोषापायसन्निधयो ॥ ४०८ ॥ तदन्व च  
 विधानेन, पूर्वकथावर्षिककमात् । प्रेक्षके द्वितीयेऽह्, गतो भाषान्वियोगाः ॥ ४०९ ॥ परिपान्याऽनया मद्र', कृताः पञ्च गमागमाः ।  
 मावशीर्षा समस्तान्, प्रेक्षकनिवासिषु ॥ ४१० ॥ एकेकहस्ता सजाता, त्रिस्त्रिंशच्च ममानय' । सागरोपमवो दातव्यमस्य समर्पितशक्तिः  
 ॥ ४११ ॥ सटीयिष्वनिर्वाप्ती, सर्वसन्तोषदायिका । इह तत्र च जाता मे, मार्गा कृत्यापमाश्रिका ॥ ४१२ ॥ तत्रैव पशुवायव्यं,  
 मरुतं सङ्गतामके । पुरे मनुजगलन्तवर्षावकीटान्कमण्डले ॥ ४१३ ॥ पुत्रो मद्रासहानियोर्यो जातोऽहं सिद्धन्तामकः । नरेन्द्रवत्सं सन्नेगाः,  
 सुन्दरकाराकारकाः ॥ ४१४ ॥ अथ यौवनवसेन, धर्मवन्पुमहमुत्तिम् । प्राप्य भागवती वीषा, मयाऽप्या वरकोचने । ॥ ४१५ ॥ ततः  
 किमन्यकमेन, साधूनां जातगामिसि । विद्वतोऽहं सद्यःप्रथमः, सूत्रार्थमह्वोषावः ॥ ४१६ ॥ अथ सत्येन कालेन, द्वादशाङ्गः सदा-  
 गतः । सपूर्वः सावित्रेण मे, सर्वथा कञ्चुकां गतः ॥ ४१७ ॥ पुराऽप्यस्य मया कार्यं, विद्वान् पशुसो बहु । किं तु सपूर्णपूजाभिः, न  
 प्रप्ताभिः कञ्चुकात् ॥ ४१८ ॥ सदा तु कोककलेन, विद्वान् कीकया मया । निःशेषमस्य विचार्य, सर्व पूर्वैः समन्वितम् ॥ ४१९ ॥  
 ततोऽपि गवसूत्रार्थो, शुभया धर्मवन्पुनः । सावित्रोऽहं निजकालेन, स(न्)पुसिसङ्गस्य पश्यतः ॥ ४२० ॥ कृतम्य हृदयानन्वो, देवदानय  
 मानवैः । अथार्थक्यापनार्था मे, सर्वभक्ताकारकाः ॥ ४२१ ॥ शुभया श्रेयकोकस्य, स्पष्टिषोऽहं सद्गुरुः । अन्मस्य कृतकृत्योऽसि,  
 देवः श्रवः सदागतः ॥ ४२२ ॥ तथा—वसाकङ्कारकास्त्रीम्, पूजिता कोककान्मया । विदिता सङ्गमूला च, विदिता वसन्ताद्यनीः ॥ ४२३ ॥



“पात्रादयस्तथा । अहं पूज्यो ज्ञाने मां हि, बन्धन्ते देवदानवाः ॥ ४५५ ॥ भगणिमाह्वयः सर्वा, विद्यन्ते भावभूतयः । हस्तुत्सेकपरो  
 “भूला, मार्धमाभि व मादिनीः ॥ ४५६ ॥ शुभम् । तथा—आस्थाहितेषु कम्पेषु, रसेषु परमा रसिः । भाविर्भूषाऽसि लील्यात्मे, मार्धनाऽ-  
 “नागतेषु च ॥ ४५७ ॥ सध्यासनादिसंपाद्ये, वस्त्राहारादिगोचरे । सुखे क्षारीरिके योषः, प्राप्ते क्षीर्त्यं च भाविमि ॥ ४५८ ॥ आद्य मे  
 “त्रिवयस्यापि, दद्याती वक्ष्यति तः । शिष्टाद्योपशिवारं च, ज्ञातोऽहं क्षिप्रिजस्तथा ॥ ४५९ ॥ गौरवत्रिवयेनापि, दद्यो मे ह्रस्वचेतसः ।  
 “आर्वाक्षयोऽपि सपन्नो, दुष्टसङ्कल्पकारकः ॥ ४६० ॥ ॥ च यौघाभिसिचिर्मो, न ज्ञातो वापकस्तथा । आर्वाक्षयसमीपस्थः, केवलं सोऽ-  
 “व्यवहितवः ॥ ४६१ ॥ दद्यता अपि संपन्नाक्षिप्तकल्पारिचारिकाः । वस्यैव धर्मनोयुक्ता, मम दौःक्षीत्यकारिकाः ॥ ४६२ ॥ दद्यन्म  
 “चिदाविर्भूयो, मध्ययो वेशिका च सा । चिदावृषी कृता सन्ना, विष्टरं च समारितम् ॥ ४६३ ॥ चारित्रधर्मलभायाश्चिच्छृणौ स्थिते  
 ‘द्विता । आद्यः असम्पद्वेयोऽपि, सिध्यादद्विष्टरं दद्या ॥ ४६४ ॥ दद्यो कम्पावकाक्षैस्तेष्व सर्वैरयस्तिभिः । आधुर्नामा च संविष्टः, स राज्या  
 “मम मार्धमा ॥ ४६५ ॥ यदुत—निरुपयाऽर्घ्यपुत्रस्य, भद्र ! स्वानं मनोहरम् । सान्प्रव चाकवासार्य, योग्यमीदृशकर्मणाम् ॥ ४६६ ॥  
 “तेनोक्त—भगवति । निरुपयेत्तेनास्य निवासस्नानं, दद्यो मित्तिवः सान्प्रव महामोहबलेऽमुष्य चरितेन विरिञ्चिवद्भवयः कर्मपरिणामः  
 “पुरस्कृतस्तेन पापोदयः प्रस्थापितोऽहमेकव्यनिवासनगरे आकारितौ च वक्ष्यदीप्तिमोहोदयात्सन्वापोषौ महद्यमपकायिकृतौ कष्टस्य केनचित्  
 “त्कारणेन वेदनीयस्योपरि कर्मपरिणामः सद्यः सर्वस्वमपहृत्य कृतोऽसावर्गकिञ्चित्करः दद्यत्साभ्यां दीप्तिमोहोदयात्सन्वापोषाभ्यां सद्दानेन स  
 “परिचारेण मया भगवता च दक्षिणैर्देकाक्षनिवासनगरेऽधुना निवस्तव्यः,” किमत्र निरुपणीय ?, ज्ञानासि चेद् सर्वं स्वयमेव भगवती,  
 केवलं मयि दयां कुर्वती भगोबन्मुखापयसि, भवितव्यवयोक्तं—भद्राणुक्त ! सत्यमेवमिदं, एषाहि—नियोगो यत्र ते आसक्तभावद्वयं वया

“अथि मातृपाणि वदतु महेष्टम्यत्रांछयपीत्राभिसन्निभतामानो ह्ये पुरयो तयोप परिपारिष्ठा मास्यन्ति एव एव इत्यर्थात्कथोर्त्तम  
 “याना केष्टया इति गोत्रेण प्रसिद्धास्त्रियो नार्ये नय शु वावपमवतानदी पुनः सस्याप्य प्रवार्याभ्यो मण्डवार्थिनि य भूयः समारप्यन्तः,  
 ‘एव य इत्येतां भविष्यकालेसेनेवासाकं प्रयाग इति,” एताः प्रसिध्वास्त वनमन्त्रियो नयनं सर्वेषामपि मद्राभोर्दार्तिभ्यनुन्नां, एतथैव साम्भिरन  
 वान्तेन प्रारब्धं क्रिया—एतो मे निकटत्वेषु, तेषु जातेषु सुम्भरि । । पूर्वोक्तिषु सर्वेषु, यन्नात कथिरागमय ॥ ४४१ ॥ साम्भारकपया  
 गुदी, वसस्तन्मन्मन्नात् । आत्मनश्चित्तकलोकाः, समुत्पन्ना मनेष्टयाः ॥ ४४२ ॥ यदुक्त—“अहो ममानुक्त वेदवत्तायाद्रो मम गौरवम् ।  
 “अहो जगति पाण्डित्यमन्यासाधारणं मम ॥ ४४३ ॥ अहो गुणप्रधानोऽहम्, यथाऽहं विद्वान्त्वभाविनोः । कालयोरेति माटभ्यो, म नूनो न  
 “ममिच्छति ॥ ४४४ ॥ सर्वो विद्या कलाः सर्वोः, सर्वे चास्त्रिषयाः परम् । अहो विमुच्य भुवन, मय्यय न्तु सन्निताः ॥ ४४५ ॥  
 “नरेन्द्रः पूर्वपर्याये, सुकृतो भोगजालिहः । अनुना स्वीटः स्वरिहो नार कपु पुमात् ॥ ४४६ ॥ महत्कुल महर्षेभ्यो, महर्षी भ्याम  
 “इत्यतः । महर्षी य मम प्रजा, सर्वे हि महर्षा महत् ॥ ४४७ ॥ एवमिषमिच्छत्येव, साहज्यारका म वता । सम वेनानुवर्तनेन, वीर्य-  
 “यको विद्वन्मिताः ॥ ४४८ ॥ यथा—यत्रासौ वद निवमान्मिष्यावर्धनवदयता । ज्ञानसंवरमप्यस्यापि, विज्ञासो विषये भुनः ॥ ४४९ ॥  
 “यान्तां वशीकृत्यमहम्, मन्त्रिनीभूतवेतनः । ज्ञानमपि म ज्ञानामि, क्षास्त्रागार्थोपवचसा ॥ ४५० ॥ पठामि पाठयाम्यन्यं, व्यापये शा-  
 “नसहसिम् । मातार्यं न य जुष्येऽहम्, वदधीभूतमातसाः ॥ ४५१ ॥ केवलं मे परिभष्ट, सार्धं पूर्वजगुष्टयम् । पात्रालं इत्य वत्काठे,  
 “क्षेपमानं न विसृज्यम् ॥ ४५२ ॥ अत्रान्तरे प्रपन्नान्, विचष्टुष्यो ममानये । । प्रवादितान् नदी पूषा, रिपुभिः सा प्रमदता ॥ ४५३ ॥  
 “यतो विद्वन्मित्राभ्युदयैर्निजदीर्घेण सुम्भरि । । तानि गौरवसम्प्राप्ति, मातृपाणि विक्षेपयः ॥ ४५४ ॥ कर्म ?—ईदृशः सिष्यवर्गो मे, वरक

“पान्नाद्यस्यपा । अहं दूक्यो जने मां हि, वन्द्यते देवदानवाः ॥ ४५५ ॥ ममाग्निमावयः सर्वो, विधन्ते भावभूतय । इत्युत्सेकपरे  
 “भूला, मार्बनामि च माविनी ॥ ४५६ ॥ गुगमम् । एषा—भास्वसिधेयु उन्धेयु, रसेयु परमा रसिः । आग्निर्भूषाऽसिधौत्यान्मे, मार्बनाऽ-  
 “नागायेयु च ॥ ४५७ ॥ सप्त्यासनासिधपाथे, वस्त्राद्याग्निगोपरे । मुखे स्यादिरिके वोषा, प्राप्ते वीत्स च माविनि ॥ ४५८ ॥ आठ मे  
 “त्रिवयस्यासि, वदानी वसवर्विनाः । शिवायोप्रशिष्टारं च, आवोऽर्द्धं शिधिलक्षणा ॥ ४५९ ॥ गौरवत्रिवेनानासि, वदो मे व्रववेवसः ।  
 “आर्वांस्योऽपि सपन्नो, दुष्टसङ्कल्पकारकः ॥ ४६० ॥ स च रीद्राभिधन्विर्मे, न आवो वायककवा । आर्वास्यवसमीपस्यः, केवलं सोऽ-  
 “व्यवस्थितः ॥ ४६१ ॥ एतस्या अग्निं संपन्नासिधस्यपरिधारिकाः । एतैव धर्वनोयुज्य, मम दौग्धीत्यकारिकाः ॥ ४६२ ॥ इतश्च  
 “विजविसेपो, मन्त्रपो वेसिका च सा । विजवृषौ कृषा सज्या, शिष्टं च समारिवम् ॥ ४६३ ॥ नारिजधर्मपञ्चायाध्विचवृषौ स्थिते  
 “हिवाः । अस्तः समववेपोऽपि, सिध्याद्विष्ट एषा ॥ ४६४ ॥ एतौ लम्बावकाक्षैश्चैरेवं सर्वैरस्यसिधिः । आनुर्नामा च सविष्टः, स राज्ञा  
 “मम मार्गया ॥ ४६५ ॥ यदुव—निरुपयाऽऽर्जुनस्य, मद्र ! स्नान मनोहरम् । सान्प्रव चानवासार्यं, योग्यमीदृशकर्मणाम् ॥ ४६६ ॥  
 “तेनोक्त—मगावसि । निरुपिदमेवास्य निवासस्थानं, यतो सिद्धिः साम्प्रव मद्रामोद्वल्लेऽप्युप्य चरितेन विरिचिवद्वयः कर्मपरिणामः  
 “पुरस्कृष्टत्वेन पागोवयः प्रत्यापिचोऽन्मेकावनिवासनगरे व्याकारिचौ च एतस्मीप्रमोदोद्वयात्सन्वाबोवौ मद्रचमनक्षयिकृषौ दृष्टश्च केनापि  
 “स्कारभेन वेदनीचकोपरि कर्मपरिणामः एतः सर्वसमपहृत्य कृषोऽसावकिंचित्करः एतस्याभ्यां वीप्रमोदोद्वयात्सन्वाबोभाभ्यां सहानेन स  
 “परिवारेण ममा भगावत्या च एकिभेदेकावनिवासनगरेऽप्युना सिधस्यम्,” किमत्र निरुपणीय ?, आनाति चैव सर्वं स्वयमेव भगावती,  
 केवलं मयि एतां कुर्वती मानेवमुक्तापयसि, भविवध्यवयोक्तं—मद्रामुक्त ! सत्यमेवमिदं, एषाहि—नियोगो यत्र ये जातस्तत्रावश्यवया

“भीषि मातृपाणि वदतु प्रदेवन्मायास्यैकमयीप्राप्तिमधन्विनामानौ द्वौ पुरुषौ तथोभ परिधारिका वासन्ति स्तव एव दृज्जनीकव्ययोगाभि  
 “पाता केन्मया इति गोत्रेष प्रसिद्धास्त्रियो नार्यः त्वय तु पाण्डवमवतानदी पुनः सस्याप्य प्रकाद्यामो मण्डपादीनि च भूयः समारयामः,  
 “एव च कुर्वतां भविष्यत्वज्ञेयेनैवाक्याहं प्रभावा इति,” तवः प्रसिमाव तन्मधिषो बभूव सर्वेषामपि माद्रामोद्गतिभूतुमां, तवत्सदासमर्पित  
 बालनेत प्रारब्धं क्रियया—अतो मे निवृत्तयेषु, तेषु आयेषु सुन्दरि । पुरोहितेषु सर्वेषु, यन्माव वसिस्तामय ॥ ४४१ ॥ तामावोदयतो  
 शुर्वी, बलसक्तमानतूजनाम् । आत्मतपिचक्रकोका, सञ्जलमा मनोरथाः ॥ ४४२ ॥ यदुच—“अहो ममागुलं तेनैवकायाद्गो मम गौरवम् ।  
 “अहो अगति पाण्डवमन्वासाधारणं मम ॥ ४४३ ॥ अहो गुणप्रधानोऽहं, यथाऽसिक्कन्तमाशिनोः । कासयोयि मादधो, न भूतो न  
 “मसिष्यसि ॥ ४४४ ॥ सर्वां विद्याः कलाः सर्वाः, सर्वे चासिषयाः परम् । अहो विमुच्य भुवन्तं, मय्येव नतु ससिषयाः ॥ ४४५ ॥  
 “नेत्रैः पूर्णपयोधे, सुरुरो भोगकालिदाः । अमुना स्वीरका सुरिरहो माह कपुः पुमान् ॥ ४४६ ॥ महत्कुलं महत्तेजो, महती भीम  
 “दृक्पः । महती च मम प्रका, सर्वं हि महतां महत् ॥ ४४७ ॥ एवमिषसिक्कन्तैश्च, साहद्वारका मे तदा । सम तेनानुपमयेन, सैक-  
 “यवो विवृन्मिवः ॥ ४४८ ॥ तवा—यत्रासौ एव निवसन्मिध्याहर्षेनवदयता । ज्ञानसरण्यसापि, विकारां विपदे भुवः ॥ ४४९ ॥  
 “ताम्यां वसीकृतमाह, मञ्जिनीमूषवेतनः । ज्ञानमपि न ज्ञानमि, क्षाकागमार्थमवसा ॥ ४५० ॥ जठामि धाठवान्यन्य, व्याचक्षे क्षा-  
 “कसहसिम् । मायार्थं न च दुष्मेऽहं, पाण्डीपूवमानसः ॥ ४५१ ॥ केवले मे परिभ्रष्ट, सार्धं पूर्णजगुष्टयम् । पाप्मातं हन्त तस्मात्ते,  
 “क्षेपकानं न नित्यवम् ॥ ४५२ ॥ व्याजन्तरे प्रबलेन, विचद्वतो ममानवे । प्रसादित्वा मयी सूर्यं, रिपुभिः सा प्रमथता ॥ ४५३ ॥  
 “तवो विवृन्मिवानुवैर्निबधीर्येष सुन्दरि । धामि गौरवसंज्ञासि, मातृपाणि विधेयवः ॥ ४५४ ॥ कर्म—देवसः क्षिप्यवर्गो मे, तव

“पात्रावयवस्य । अहं पूज्यो अने मां हि, वन्दन्ते देवदानवाः ॥ ४५५ ॥ ममाग्निमादयः सर्वा, विद्यन्ते भावभूतयः । इत्युत्सेकपरी  
 “मूला, प्रार्थयामि न मादिनीः ॥ ४५६ ॥ शुभम् । तथा—आसाक्षितेषु सन्ध्येषु, रसेषु परमा रसिः । भाविर्भूताऽस्ति नीत्याग्ने, प्रार्थनाऽ-  
 “नागेषु च ॥ ४५७ ॥ इत्यासनाक्षितं पाथे, वक्राहाराक्षिगोचरे । सुप्ते षाटीरिके घोषः, प्राप्ते षीस्य च भाविनि ॥ ४५८ ॥ आव मे  
 “त्रिवयस्त्रासि, सर्वानी वक्षवर्तिनः । विद्यायोप्रसिद्धां च, ज्ञातोऽहं क्षिबिकस्य ॥ ४५९ ॥ गौरवत्रिवयेनापि, सर्वो मे हवनेवसः ।  
 “आर्वाक्षयोऽपि सपन्नो, शुद्धसङ्कल्पकारक ॥ ४६० ॥ स च यौगमिसन्निभो, न ज्ञातो वाचकस्य ॥ आर्वाक्षयसमीपस्य, केवल सोऽ-  
 “व्यवस्थितः ॥ ४६१ ॥ तवद्या भवि सपन्नासिकास्यारिषारिकाः । तस्यैव वर्धनोपुष्प, मम दौर्गन्ध्यकारिकाः ॥ ४६२ ॥ इत्यह  
 “क्षितविक्षेपो, मण्डपो वेनिका च सा । क्षिप्तवृक्षौ कृता सन्ना, विष्टं च समारिचम् ॥ ४६३ ॥ नारिचमर्तज्जायाक्षिप्तवृक्षौ स्तिरो  
 “क्षिवाः । ज्ञातः ममपर्वयोऽपि, सिध्माट्टिष्टिष्ट तथा ॥ ४६४ ॥ सर्वो स्रग्धवाकाक्षैष्टैरेव सर्वैररासिभिः । ज्ञानुर्नामा च सन्निष्टः, स राका  
 “मम भार्यया ॥ ४६५ ॥ यदुव—सिरुपयाऽऽर्पुनस्य, भद्र ! स्यात् मनोहरम् । सान्द्रव चारुवासार्य, योग्यनीदृशकर्मणम् ॥ ४६६ ॥  
 “तेनोक्त—भगवसि । निरुपिचमेवाह निवासस्यार्तं, सर्वो मिष्टिः सान्द्रव महामोहवलेऽमुष्य चरितेन क्षिरक्षिप्तवृक्षः कर्मपरिणामः  
 “पुरस्कृतस्तेन पापोदयः प्रस्थापितोऽद्वयेकस्य निवासनगरे आकारिणौ च तवसीप्रमोहोदयात्पान्थाणोषी मह्यमनस्यविह्वली कष्टस्य केनापि  
 “त्कारणेन वेदनीयस्योपरि कर्मपरिणामः तवः सर्वसम्पत्कृत कृत्रोऽसावकिचित्करः तवस्याभ्यां दीप्रमोहोदयात्पान्थाणोषीभ्याम् सद्धानेन स  
 “परिचारेण मया भगवत्या च छलिभेदैकस्य निवासनगरेऽपुना निवस्यन्म, ” किमत्र निरुपणीयं ? , ज्ञानासि चेद् सर्वं स्वयमेव भगवती,  
 केवलं मयि दयां कुर्वती मामेवमुच्छापयसि, अनिवन्मययोक्त—मद्रागुष्क ! सत्यमेवसिद्, तथाहि—नियोगो यत्र ते आवच्छात्रावदयवया

मया । काने सार्धंयुग्मेव, यद्यप्य श्रेयकैरपि ॥ ४६७ ॥ केवलं—विभागमात्रमप्यापि, क्वावध्यसोह सिद्धसि । ततोऽप्रतिबद्धिते तत्र,  
 वाक्यामो मद्र' कीदृश ॥ ४६८ ॥ तेनोक्त मगवतोव, कानीवे केऽत्र मादृशाः ? । किं च—सपूर्णा कामयां सिद्धः, सामयी गमनोपि  
 याम् ॥ ४६९ ॥ यद्यसौः प्रवर्णीयसुतैः, सर्वेषु वयनते । अत्यन्तशिविषो मार्गे, कथोऽत्र सुखाकम्पतः ॥ ४७० ॥ योप्य मे मा च शीतं मे, मा  
 सन्त्यन्ते पटीकः । एव सुवासिकासीकस्यज्जमार्गोऽप्यत्र ॥ ४७१ ॥ यद्यस्यन्ते रक्षिषो शिवानेन समूहया चेतनया प्रवर्द्धे दा  
 रीरयोपैरकम्पमात्मान जीर्णार्थां प्रवीनसुहिकायाभावाप यामपयं नीवोऽत्र यत्रैकमन्त्रिवासनगरे स्थापितो वनसन्निपातके तेन पूर्वो  
 शिवेन प्रासादापवरकन्यानेन, शिवः कियन्त्यसि काळ भक्षयप्रपरागुहिकं, ततोऽन्यथा नीवोऽत्र क्षेत्रपाटकेषु वदन्यनगरेषु च,  
 कदाचिदानीयः पञ्चासपुत्रसंज्ञाने—ततो विदुषमावत्प्राप्तीयोऽत्र विदुषाकये । कुशल बह्वक्षसाम्पुषस्य रामागमाः ॥ ४७२ ॥ यथादि  
 —पञ्चासपुत्रसंज्ञानेनैवो व्यन्ययसि । अकामनिर्णयं प्राप्य, ततोऽत्रं ह्यमभासतः ॥ ४७३ ॥ यथा—विशिष्टपरिष्कारेण, कश्चि  
 त्कस्योपपादितु । सौमर्मायेषु संपन्नो, विदुषाकारमारकः ॥ ४७४ ॥ किं यदुना?—गृह्यमर्मसमेवेन, सन्त्यन्त्यसंयुक्ता । कुरुतवस्तवः  
 स्थापयस्यै कस्या मनेष्विवाः ॥ ४७५ ॥ यथा—बहुषो मानवायासमभासोऽत्रं सुकोचने । । कर्मोक्तान्यवर्णीयसुमित्रेषु चतु शिव ॥ ४७६ ॥  
 यत्र—मर्ममूषिवातोऽत्रमेक इ शेषि वा सुता । शिवः पत्योपमानुषैः, कस्यपादपकाशितः ॥ ४७७ ॥ यथा—व्यावृत्तमानस्य, सत्का  
 म्याभोगमोक्षितः । सुकाशरसिद्धात्स्य, विदुषास्यवन्तुः ॥ ४७८ ॥ यद्यन्ते भार्यया युज्ये, ततोऽत्रं विदुषाकये । आकाश गुहिकं चार्दी,  
 पूर्वोक्तविदित्य यथा ॥ ४७९ ॥ भूषिकायाः प्रजातोऽत्रमन्त्यवर्णीयसिद्धि । अत्यन्तवर्णोपुको (प्रेषु), गायत्र विदुषाकये ॥ ४८० ॥ यथा  
 —कर्ममूषिषु जातेन, यद्यनान्तमया कृषम् । अत्यन्तसौकर्यसिपतत शिवमक्षयम् ॥ ४८१ ॥ पञ्चादितवनाप वा, रज्यागुद्र पनासि

वा । कर्ममुद्येत भावेन, धर्ममुद्येताऽप्यपि वा ॥ ४८२ ॥ प्राप्तं तदपि वन्द्रे, ससुरं विप्रपाक्यम् । किं तु किञ्चिद्विकाशासे, जातो  
 बन्धवत्पाटके ॥ ४८३ ॥ विभिर्विशेषकम् ॥ तथा—कृत्वा बालवधो योः, सरोयो वैरतत्परः । तपोगौरवमुकोऽर्थं, गतो मधनवासिपु  
 ॥ ४८४ ॥ तथा—सापसप्तवभासाय, तदनुष्ठानमाधत्वा । ज्योतिष्मासिपु जीवोऽह, ऋष्यो निजमार्थया ॥ ४८५ ॥ तथा—प्राप्त्य भि-  
 रावर्तो दीर्घां, तपोनिष्ठमदेहकः । युक्तः क्रियाकलापेन, ज्ञानाभ्यासपरायणः ॥ ४८६ ॥ केचन—सर्वज्ञमाधिव किञ्चित्पदं धाम्न्यमयाधरम् ।  
 क्षमप्रधानो मूढस्तत्तन्मयसर्वज्ञत्वविशेषः ॥ ४८७ ॥ गतोऽह मूरिशो भवे, सर्वप्रवेयकेष्वपि । आगतो मानवावास, मूयो मूयोऽन्तराऽन्तर  
 ॥ ४८८ ॥ शुभम् । भस्त्रं च भस्मपक्षौव, भद्रे । आनीद्वि कारणम् । घटिस्त्रिहार्चार्थपाकाले, शैथिल्यं यन्मया कृतम् ॥ ४८९ ॥ इतरथा  
 —वदेव निर्मलीकृत्य, विचरुषि निरालं च । सिुर्गमं जितो राज्ये, गताः सां निर्गुणवद्गम् ॥ ४९० ॥ तसिद्धमधिकं जात, मूयो भस्म  
 पक्षस्यम् । निजानां दुष्टवेषाणां, कलं मानसं कलविष्टम् ॥ ४९१ ॥ अगृहीतसङ्केतयोक्तं—न केवलमिव पाठः, समस्तं यन्निवेदि  
 तम् । स्वयेव नर तत्सर्वं, सिद्धं वेष्टाविनृन्मिष्टम् ॥ ४९२ ॥ तथाहि—यद्यप्यर्थिष्ययाकाशः, सर्वथा स्व निरापदि । वस्तु सुस्थितराजस्य,  
 सदाकामां स्थिरास्तथाः ॥ ४९३ ॥ आत्मविष्यणो दीर्घां, पश्यमविद्याकणा । भीषणा भूयमाप्ताऽपि, दीप्ताऽनर्थपरंपरा ॥ ४९४ ॥ शुभम् ।  
 संसारिजीवेनोक्तं—भारं कारुष्विव सुधु, समसि स्व हि नर्वसे । नाम्नाऽगृहीतसङ्केता, मायवस्तु विषमज्जा ॥ ४९५ ॥ तथाकर्णव  
 चार्थिभिः, साम्भव मेव हेतुना । जातोऽहमीदृशावस्तस्यकारणारकः ॥ ४९६ ॥ अगृहीतसङ्केतयोक्तं—निवेद्यपुं भद्रः, ससारिजी  
 वेनोक्तं—यथाद्वैतेवकादन्त्यादानीवोऽह भवेत्तथा । पुरी मनुजगतस्तन्वापासिनी क्षेमनामिकाम् ॥ ४९७ ॥ इतम आनात्येव भवती यथा  
 धनोकापपमाकाश्ये, भूरिदिद्यास्तुन्वरे । सदाविदेवकस्येऽह, दृष्टमर्तोऽसिधूरो ॥ ४९८ ॥ यत्तन्निधं विप्ररूपाधि, ससुराप्यन्तराऽन्तरा ।

मवा । काने धर्धार्यपुत्रेण, वल्लभं शेषकैरसि ॥ ४६७ ॥ केवल—दिभानामात्रमयापि, आवल्यभिर विष्ठसि । वयोऽस्तिवह्निरे वय,  
वल्ग्वभ्यो भद्र ! क्षीयन्ता ॥ ४६८ ॥ तेनोक्तं भगवतोव, जनीते केऽत्र माह्वसाः ? । किं च—सपूर्णा कार्यतां विद्मः, सामग्री गमनोवि  
वाम् ॥ ४६९ ॥ वयस्यैः प्रवर्तीभूयैः, सर्वैरेव वयनवे । । अवल्यभिसिद्धिभ्यो भर्गो, कथोऽत्र सुपाठभ्यटा ॥ ४७० ॥ मोष्य मे मा च क्षीय मे, मा  
सत्त्वन्त्ये वटीपद्यः । एव सुकासिकाक्षीयल्लभ्यकमार्गवर्धाऽभ्यम् ॥ ४७१ ॥ वयस्यवन्त्ये यद्विद्यो विधानेन समूहया चदनया प्रवर्धे दान-  
टीरदोपैरलस्यवभात्यान जीर्णवा प्राचीनगुहिकप्रामाण्याय वामपयं मीथोऽत्र वनैकाग्रनिवासनगरे स्थापितो वनस्पतिपाटके तेन पूर्वो  
हितेव प्रासादापवरकन्याभेन, स्त्रियः कियन्त्वभयि कार्यं भव्यभयपापगुहिकां, वयोऽन्यथा मीथोऽत्र शेषपाटकेषु वदन्वनगरेषु च,  
कदाचिदानीयः पञ्चाक्षपञ्चसत्त्वाने—वयो विद्वदभाषत्वाभीथोऽत्र विजुपाक्ये । कृत्वाभ एववसत्त्वान्द्रव्यव्यय गमनगमाः ॥ ४७२ ॥ वयाद्वि-  
—पञ्चाक्षपञ्चसत्त्वानाद्भूरिभ्यो व्यन्त्वयसिषु । अकामनिर्जयं प्राप्य, गवोऽत्र ह्रस्वभाषता ॥ ४७३ ॥ वया—विश्विद्वपरिष्यभेन, कवि  
त्वस्योपपादिसु । सौधर्माथेषु स्वयभ्यो, विद्वज्जकारकारकः ॥ ४७४ ॥ किं बहुना ?—एद्विधर्मसमेवेन, सन्मार्गार्धनसमुक्ता । वक्तव्यव्यव-  
स्वात्वव्यव्ये कस्या नवेक्षितः ॥ ४७५ ॥ वया—बहुशो मानवावासमवातोऽत्र सुलोचने । । कर्माकर्मात्स्वद्वीपभूमिभेसु मृषु स्त्रियः ॥ ४७६ ॥  
यत्र—अकर्मभूमिवातोऽत्रमेक इव शीघ्रि वा मुक्ता । स्त्रियः पत्न्योपमान्युयैः, कन्याप्रापकादिव ॥ ४७७ ॥ वावद्रभ्युत्तमान्तम, सत्का  
न्याभोगमोस्त्रियः । सुसाधारविदारम, विद्वज्जकारम मुप ॥ ४७८ ॥ वदन्ते भार्यया मुक्ते, गवोऽत्र विजुपाक्ये । आख्याय गुहिकां पार्थी,  
पूर्वोक्तविधिन्य वया ॥ ४७९ ॥ भूरिवायः प्रजाथोऽत्रमन्वद्वीपयासिषु । व्यस्यवर्णार्पुष्को (व्येषु), गवम विजुपाक्ये ॥ ४८० ॥ वया  
—कर्मभूमिषु जातेन, वयस्कानन्तमया कृतम् । अकर्मवर्तनस्यैकमपिपवन विपमशुष्कम् ॥ ४८१ ॥ पञ्चाक्षिवचनाय वा, रक्त्यापुद्रन्यनारि-



धनसौ भास्कराकारखातोऽद्य समुपागतः । नलिनी च गता तेल, सार्धं माता ममानया ॥ ५१८ ॥ एवो भास्कररिष्यन्ति, किं  
 रान्येऽभिप्रेयन्तम् । सामन्यास्वावतुरसर्धं, चक्ररत्न ममाद्युक्तम् ॥ ५१९ ॥ तथा—आतांति क्षेत्ररक्षाणि, सुन्दर्याणि प्रयोषस । निषयस्य  
 समायाता, नव यथैः सुरक्षिताः ॥ ५२० ॥ एवोऽय चक्रवर्तीसि, भक्त्या सर्वे नरधिपाः । गताः किङ्कर्यां मेऽय, सुकृच्छविषये एवा  
 ॥ ५२१ ॥ एवो निर्बल मिःक्षेप, पटञ्जणं भूमिमण्डलम् । क्षेमपुर्या स्थितेनैव, प्रवायेन मज्जार्जितम् ॥ ५२२ ॥ एवो द्वादश न  
 पाणि, द्वात्रिंशन्निर्महीमुजाम् । सख्यैरभिषेको मे, किरीटाटोपराचिनाम् ॥ ५२३ ॥ एवो देवीसहस्रार्णा, अदुःपक्ता सहासिकाम् । कु-  
 ष्ठीकाकल्पनेत्राणां, मुञ्चानो भोगसहस्रिम् ॥ ५२४ ॥ कुर्वाणो जनवानन्व, वधानम्राकृष्टविरामम् । महामूर्तिविभर्त्तन, भूरिकाकमह स्थितः  
 ॥ ५२५ ॥ युगम् । किं वहुना ?—अदुर्मिराविकासीति पूर्वकथाणि कीकया । एवामराज्यसन्भोग, कल्पाद्धं चारुलोचने । ॥ ५२६ ॥  
 निर्गवः पश्चिमे काले, स्वपुर्यां राजसीकया । पटञ्जणविजयस्त्रापि, स्वस्य वर्धनकान्तया ॥ ५२७ ॥ गुराकराविसकीर्णा, तां पर्यन्त्य बभूव  
 राम् । अहमत्र समायाता, सत्पुरे कङ्कनामके ॥ ५२८ ॥ एवम—गङ्गातुल्या एक क्षेत्र, राजबलभवेष्टितः । प्रानक्षिस्तरम वेदमुद्यान  
 नन्दनोपमम् ॥ ५२९ ॥ इवम—यानि गुणवारणावस्थापाममूर्ध्वं यथाः प्रथमो मे धर्मवेष्टकः कन्दमुनिः तथा पयसः कुलं चरौ भार्या  
 च मदनमञ्जरी, तान्मप्यास्तेष्टितानि भवितव्यवया भसितानि भवचक्रे वृक्षितानि सुन्दरासुन्दररूपेण, एवः स कन्दमुनिः कपित्थवज्र  
 त्तिकासम्पर्के समानीतोऽस्यैव सुकृच्छविषयस्थान्तर्गते हरिपुरे एव च भीमरथो राजा यस्य च सुभद्रा नाम महादेवी पयोध्यासि  
 समन्त्वभद्रो नाम वनधः एवः प्रवेशितोऽसौ कन्दः सुभद्राकुसो निर्गवः क्रमेण आया दारिका प्रविष्टिवं वसता नाम महाभद्रेति ।  
 इवम समन्त्वमद्रा संप्राप्य सुषोपमापार्य सजातवैराग्यः संभास्य पितरौ निष्कान्तः सपत्नः संपूर्णद्वारस्त्राङ्गवरः स्थापितो गुरुभिः सुरि

यतः श्वेत्पुटी साऽम्, हृत्पार्श्व मध्यागा ॥ ४९९ ॥ सुकच्छदित्यस्यानभिर्दं भद्र ! निगद्यते । यत्र स्थिता नृप यूय, पुटी सा च  
 मनोहरा ॥ ५०० ॥ तस्मां च श्वेत्पुर्ण—अभूत्पुष्पसिंहासिचर्दप्यस्येवसां निधिः । रात्रा युर्गपरो नाम, भास्कराकारपादकः ॥ ५०१ ॥  
 तस्मां चर्कनमात्रेण, प्रोत्सुक्कमुत्पन्नम् । आसीद्विद्या मद्योदधी, नळिनी नाम विमुक्ता ॥ ५०२ ॥ अपागृहीतसङ्केते, भविष्यत्तया  
 यथा । तस्माः प्रवेष्टितः कुम्भाबद्ं पुष्पोदध्यान्विताः ॥ ५०३ ॥ इत्यम्—तस्मां रात्रौ सुखाध्यायां, सा मुष्मा कमलक्षणा । चतुर्दश मद्रा  
 समानावकोन्य समुत्थिता ॥ ५०४ ॥ यतः मद्रस्याऽऽत्म्यावास्ते शुगावरमुमुञ्चे । तया कञ्चोपसन्नमाप, मद्रासद्रा गजार्द्रय ॥ ५०५ ॥  
 देनामुक्तं यथा वेत्ति, वेत्तवान्मपूजितः । कुलमदीपस्ते पुत्रमन्त्रवर्धं भविष्यति ॥ ५०६ ॥ यतः प्रोत्सुक्कनेया सा, भद्रुवान्मनोदरैः ।  
 कानिन्तन्य दृष्टुवापैर्गमं पारयतेऽन्त्या ॥ ५०७ ॥ यतः सपूर्णकलेन, सुन्वराकारपादकः । पुष्पोदधयुक्तो जावत्कोपादृष्टोऽस्मभ्यया ॥ ५०८ ॥  
 भद्र गत्वा प्रियङ्गुर्वा, हर्षगद्गद्या गिरा । प्रोत्सुक्कनेत्रयाऽऽस्माने, धावायाद् विवेक्षितः ॥ ५०९ ॥ यतः पुलकपावद्भः, स इववा पारि  
 द्योकिक्म् । हान तस्मै यथाकाममात्रिवेष्ट महोत्सवम् ॥ ५१० ॥ अथ विद्यासन्निभूयज्ययन्तुरा, सरसजर्जनवाहनमुन्वराः । मद्यपिपूषित  
 कोक्कमनोहरा, मन्वते मम अन्नममहोत्सवः ॥ ५११ ॥ गानपाननरत्नावनयन्यो, मानवानमदनादरयन्तः । वाववाक्यवरावो मितसन्त  
 स्यान् गार्हपत्यिवा तनु सन्तः ॥ ५१२ ॥ यदैकं सदिनं अत्रे, तयाऽन्यद्दिनपञ्चकम् । गवमुद्रामलीकाभिहृद्दुस्सहमुन्वराम् ॥ ५१३ ॥  
 यतः प्रयत्नतः सर्वेष्टावाग्नावाग्म्यवाग्निभिः । पथिकावागरो रम्यः, कृषो मे नाकविभ्रमः ॥ ५१४ ॥ यतो मद्राप्रमोदन, सङ्घिते मास  
 मानके । प्रशिष्ठि च मे मास, यथाऽयमनुसुन्दरः ॥ ५१५ ॥ अथ सर्वर्षमाप्नोऽद्, प्रायी पञ्चकलास्त्रियः । शुभारमाप्रमापमो, पु  
 ष्पिवाः सकम्पा कलाः ॥ ५१६ ॥ यद्यप्य यौवनसोऽद्, यौवराज्येऽभिवेष्टितः । यातेन मद्रावा अत्रे, विमर्देन मनोरमे ॥ ५१७ ॥

धर्मं ददात्तुपयाचितथागमि पिबत्तौपयभूक्तवाधानि, ततो भवितव्यवथा स कुलधरो भूतिभवेण कृत्तुशक्ताभ्यासः प्रवेक्षितव्यः। कर्मो,  
 दृष्टोऽनया क्षमो यथा सुन्दरकारघटं पुरुषो बहनेन मे प्रथित्य शरीरे दृश्येन निर्वास पाठः केनचित्परेण सार्धं, ततः कथितोऽनया भर्षे  
 स क्षमः, तेनोक्त—भवितव्यसि ते पुत्रः केवळमधिरेण कथनं गुरुं प्राप्य प्रप्रक्षितव्यसि, यथाकर्म्यं पुत्रा कर्मक्षिणी, तवस्तुदीये भासि सञ्जा  
 वोऽन्याः। कुलकर्मकराप्यमतोरथाः सप्राप्तिवः। भीर्गर्मपात्रेण सपूर्णकाले च ज्ञातो दारकः परितुष्टो यथा कारितव्यव्यन्तमानन्तः, इत्यत्र  
 समुत्पन्नविमलकेवलाशोकः समागतोऽसौ समन्वयप्राचार्यः स्त्रियोऽत्रैव चित्तरसे कानने निर्वाचा वदन्त्यनार्थं महामद्रा कथञ्चिन्न वि  
 प्रातः सुकलितवथा, सञ्जातः कर्षञ्चिद्राजदारकजन्तः, भगवतोक्त—एष बहुष्टोऽभ्यस्तुक्तकर्मार्थं यत्तुष्टो न स्यात्तसि भवने प्रक्षीप्यसि  
 प्रजन्यां भवितव्यसि सर्वप्रागमधारकः, यथाकर्मयोगा निजोपासये महामद्रा, इत्यत्र तस्य नरेन्द्रवतयस्य पौण्डरीक इति प्रसिधितमभि  
 पान विहितो सामकराप्यप्रयोगः, इत्यत्र या सुकलितया कृत्तुद्वयपरवथा विवरन्ती प्राप्ता यत्र चित्तरसे कानने दृष्टः सङ्गमव्यस्योऽनया।  
 समन्वयमद्रसूरिर्नृपसि सुवृणसन्तवोद्द वर्ययमानः, तच्छ य भगवथा—यतोऽयं सुमेन कर्मपरिणासेन कृतद्विमीभूतया काळपरिणत्या अस्यां  
 मनुजगादी अतिवक्तव्यादेवविचगुण एवाय भवितव्यसि, मध्यपुरुषो हि सुमसिः सन्निक्षिर्नृपैर्नृप्यव एव कोऽत्र सन्नेहः<sup>१</sup>, तवस्तवकर्म्यं  
 दृष्टाः सर्वे लोकाः, सुकलितवथा चित्तिव—कथं काळपरिणतिकर्मपरिणामयोर्जनकत्वं कथं यैव भाविगुणजावं ज्ञानासि<sup>१</sup>, ततो गत्वा न-  
 सतिं दृष्टोऽनया महामद्रा, यथा चित्तिव—भक्त्यन्तुगमेयं सुकलितया, ततोऽयमेवास्याः प्रसिधेयनोपाय इति सचिन्त्यं मुक्तिवः समर्पित  
 महामद्रया काळपरिणतिकर्मपरिणामयोर्जनकत्वं, तस्यादभासि च सदागमगोचरामस्याः प्रीतिमिति चिन्त्यवन्त्याऽभिधितमनया—मद्रे<sup>१</sup>। स  
 यदा लोकमभ्ये व्यपचक्षणः सदागमस्ययाऽवबोक्तिवः स हि भगवान् भूतसमन्वयवित्पन्नावाप्तिः शोयानाधिमोदयत्येव नास्त्यत्र सन्नेहः

पदे, सासि च महाभद्रा सप्रभाता यौवन परिणीता गणघपुराधिपतिना पद्मावतीरधिप्रभमुपेय विधाक्रेण गवोऽसौ फासप्रदानास्य प्रसि  
 बोधिषा समन्वभद्रसूरिषा महाभद्रा पृथ्वीयाऽनया भगवती वीर्या सज्जयैकादस्यान्धारिणी शीतार्वा स्थापिषा गुरुभिः प्रवर्तिनीपव वतः  
 सा सुसाध्वीभिः परिधारिता विहरन्ती सभासा रक्षापुरे, वष च मगधसेनो राज्ञा वस्य च सुमङ्गला नाम महादेवी, इत्यत्र सा भद्र  
 नमङ्गरी वसतिषा वस्तुवास्तेन भविष्यवया तथा कृत वस्याः सुललितेक्षि नाम प्राप्ताः क्रमेण यौवन संपन्ना पुरुषद्वेषिणी कङ्कितो भूरि  
 काकः नेष्टो वरगन्धोऽन्यनया वतः कथमित्य वरिष्यत इति सज्जाता अननीजनकयोश्चिन्ता एवो महाभद्रां सभागतायाकथ्य पृथ्वीया तां  
 सुकलित्वा प्रियुषिकम् गवी वदुपामये वन्दनार्थं देवीनेत्रौ वन्तिषा उपरिकट भगवती दृषोऽनया परमपदकल्पयादपन्निरुपहृववीज  
 नूतो धर्मकामः विद्वितसुवप्रवाहकस्या सन्नर्गेरेयना एतः सा सुकलित्वा परितुष्टममुष्यमानासि भगवतीवचनमावापमत्सन्मुगधवया  
 पूर्वपरिषयादुत्तमकोहरणा भगवतीवचनकमकमकोकनाभिजकोवने कविद्वन्द्व नैतुमपादयन्ती पितरं प्रत्याह—वाव ! मया भगवत्या  
 वरपुगाढं पुरुपासिषक्य वदनुजानाहु मां दासो येनाहमनदीव सार्धं सर्वत्र विचरामीसि, सदाकथ्यं प्रवर्तिता सुमङ्गला, वृषसिपह—  
 देसि ! वरममत्र वसितेन करोतु वत्सा समीक्षित वचमेवास्या विनोदोपायो भविष्यति, केवल भगवतीपार्थस्वयाऽनया साममीपुकया  
 एतलनैव सत्ता पर्वदिवस्यं न आकादपुकुष्ठयाऽनया प्रप्रववाक्यतोऽपि विधेय, सुकलितयोक्तं—वाव ! मद्युप्रसाहः, वतः सा सुकलि  
 ता तथा महाभद्रा प्रवर्तिन्या सह वयैव नानावेष्टेयु विचरितुं प्रवृत्ता, केवल कर्माद्व्याप्त प्रवर्तते वस्याः पाठः न क्वासि सामाधारी  
 क्रमाः न मुष्यते च सा परितुष्टमपि कष्टमानमानमार्ग, वरपद्मा सभायावा भगवती महाभद्राऽत्र वस्तुपुरे शिवा नन्दस्य भेषिणो पप  
 साकावा, इत्यत्रात्र वस्तुपुरे मम मातुलः श्रीगर्भो नाम एता वस्य च महाभद्रमावृत्नया कमलिनी नाम महादेवी सा च निरपत्या

श्रीगर्मरुद्राय न सदायस्त्रयोः प्रभोः। एतौ गत्वा महानन्वेन समर्पितकाम्या भगवतो निजवनयः। एतः कुरते स प्रतिशितभागमाप्ति  
 गम पौण्डरीकः, एतौऽत्रैव चित्तरसे कान्तेऽत्रैव न वैलभयते सदासमुद्रमग्नसिधे भगवति समन्तभद्रसूरौ वर्म व्याघ्रक्षणे  
 स्थितायां महाभद्रायां निजदशतिनि पौण्डरीके सप्तागवाणां सुखलितार्थां वर्मकथाऽऽक्षिप्तद्वये मग्नकोके समुक्षसिधौ मदीयबलकक-  
 कडा, एच्छ्रमप्राप्तुर्कर्मिणा परितप्त, एतः सुखलितया महाभद्रां प्रप्तुम्—भगवति। किमेतत्?, सा प्राह—नाह जाने, एतौ भगवता  
 दयोः सुखलितपौण्डरीकयोः प्रसिद्धोपायेभ्युक्तं—यथा महाभद्रे! किं न जानीये त्व प्रसिद्धैव तावन्निर्ध मनुजगतिर्नगरी प्रख्यातोऽय  
 महाविदेहरूपो हृदमार्गो यत्रापुना सर्वेऽपि वयमास्महे, एतौऽय सत्सारित्रीयो नाम वस्तुते गृहीतः सखोऽन्त्रको हुप्रक्षयाभिनिर्वृण्वपाधिकैः  
 दर्शितः कर्मपरिणाममहापञ्चाय, एतस्तेन धृष्टा काष्ठपरिणति क्षमावादीप्राज्ञाविरोऽसौ वक्ष्यथा, एतः सोऽय सत्सारित्रीवः कल्पेव वे  
 दिवसै एवगुरुधर्मैर्हलककेन हृदमार्गमभ्येन नगर्या निःसार्य नीत्वा न पापिचरनामके वक्ष्यस्यते दुःखमारेण मारयिष्यते, एतेप  
 धकिमीयमाने कोलाहलः भूयते, सुखलितयोक्त—भगवति! ननु सङ्गपुरमिदं न मनुजगतिः चित्तरस चेद् कान्त न हृदमार्गः श्रीगर्म  
 द्वात्र राजा न कर्मपरिणामः। एतस्मिन्नेव भगवन्तो वक्ष्यन्ति!, भगवानाह—वर्मशीलेऽगृहीतसङ्केता स्वमसि न जानीये परमार्थं,  
 सुखलितया चिन्तित—दी ममाप्यपरं नाम कृतं भगवता, एतः सिद्धा त्रिकिधवदना, महाभद्रया बुद्धौ भगवद्वाक्यार्थः, चिन्तितम  
 नवा—कश्चिदेव कृतभूरिपायो नरकगामी भगवता जीवो निर्विष्टः, एतः संवाता साधामात्राया कुरुषा, क्षमिद्विदमन्तया—भगवत्!  
 किमेव कर्मचिन्तोचयिषु पार्यते वस्तुते न वेति, भगवानाह—आर्ये! एव दर्शनेनास्मत्समीपायमनेन न भविष्यत्तस्म मोक्षः, महाभद्र  
 योक्त—भवन्त! गच्छान्त्यहमस्माभिमुख, भगवतोक्तं—गच्छ, एतः कुरुणापरिगतद्वयाऽऽगता महाभद्रा मदन्त्यर्थं, क्षमिद्विदोऽह—

वत्ससाधारैव मन्वाऽपीव समस्य विद्याव शिरपरिधिष्वः स मे भगवान्महाप्रभाबमेत्यादि परिधेयं सद्भागममादात्म्य कथितं च सत्यं तथा  
 परितोपकारणं, सुखस्तिव्याऽमिद्विदं—भगवति । ममापि निधेदि वेत मगवता सह परिष्वय, महाभद्राऽऽह—नाह, वयो मीनाऽनया  
 समन्वभद्रसुरिसमीये सुखस्तिवा, वदयंताब्जातः सुखस्तिवायाः प्रभोव संपन्नाः कथितगुणेषु समस्तयः, अभिहितमनया—भगवति । वरि  
 वाऽस्मिन्वच कालं भगवता वक्ष्ये न वरिषो मे महाभागाः सद्भागः भद्रो ये स्वाथपरता वद्वः परं भगवति । दयनीयो मे दिन दिन  
 मगनात् वेनह्ममपि भगवता सहस्री पण्डिता भगति, भद्राभद्रयोक्त—एवं करिष्ये, वतः प्रारब्धा ताभ्यां प्रसिद्धिन भगवत्पुपासना  
 कश्चिदो मासकस्तः, वयो मगवानाह—महानद्रे । क्षीपयद्वाकाऽसि स्वमपुना न द्यक्तोपि निवर्तुं भवस्तिव स्वमधैव दादपुर नय तु  
 निहृपवकावत् पुनरुगमिष्यामः, शुभस्यप्रतिज्ञागरणमेवेदमप्यक्त मस्तकस्तकरणे कारण, अन्यथा हि न कृत्यते साप्तीसमभ्यासिव श्रम  
 साधूनां कस्य मास्तकस्तः, स्थानप्रतिज्ञागरणं तु पुष्पमाकम्बन, प्रसिधरणीयम् भवता पौण्डरीकोऽय रात्रदारकः भविष्यत्तेव रूपमनो मे  
 स्थितः, वदवनेति प्रतिपन्न सुरिष्वचनं महाभद्रया सिद्धता भगवत्तः, प्राप्ताः क्लमेण पौण्डरीकः कुमारमात्र प्राप्नुभूतोऽस्य यथानिर्दिष्टो  
 शुभकलाय जातोऽयं क्लेमस्तिवकावद्वयो महाभद्राया, सभागाया भूयो भगवत्तः समन्वभद्रसूर्यः मीवस्तदप्यर्थं महाभद्रया पौण्डरीक,  
 स च भातिभद्रवता ह्यस्तन्मूर्तिर्वर्धनेन रश्मिस्तदुपकलायेन प्रीक्षितस्तद्वचनाकर्णनेन, शुद्धगुणयुष्टिवया च महाभद्रां प्रसाद—भग-  
 वति । किनामार्थं महाभागाः, वया शिशिव—सरलभद्रवोऽय रात्रभद्रो रश्मिस्तव भगवदुप्येति स्तव्यते, वदस्तापि जनयान्येवद्वार  
 दीव सर्वप्रदानाविषयां मकिमिति सविन्याभिहितमनया—भद्र । सद्भागोऽयमभिधीयते, पौण्डरीकेयोक्त—भगवति । यद्यन्वावावयोः  
 प्रसिद्धादि वतोऽस्मदीव सगावतः सकाये पुद्गान्यागमार्थं, महाभद्रयोक्त—शुक्लमिदं, वयो निधेस्तिवस्तवभिमायो महाभद्रया कमस्तिन्ये

पूषात्समाव आनासि मन्वात् ? इत्येतत्सर्वं निवेदयिषुमर्हसि मद्रः, अन्तुमुत्परेणोक्त—अथि धावद्वागयोऽहमन्त्यमैवेयकात् सञ्जुत्समोऽत्र  
 सुकच्छविजये क्षेमगुर्मा दृगन्धस्तरनल्लिनीपुत्रवधाऽनुसुन्दर्यभिधानः, आत्रान्तरे मोत्साहिवास्ते भविष्यतया मद्राभोद्वाहयः, क्वम् ?—स  
 म्यावर्धनदूरलो, यावदेपोऽनुसुन्दरः । यवष्ये पावदेवान्, मूय मोः कर्मासिद्धये ॥ ५३० ॥ इतरथा—कथञ्चित्त समासाद्य, परिपोष्य  
 निज बलम् । मन्वां प्रावदेवायं, यावाकरी मसिष्यसि ॥ ५३१ ॥ अन्त्यब—अश्वेनैव वरां यासि, सान्त्व भववानयम् । सद्रोभाये-  
 र्वेषो मूयो, दुर्महोऽय मसिष्यसि ॥ ५३२ ॥ तवोऽनुता यथाशक्त्या, कृत्स्न वसवर्विजम् । शिञ्जुत्तिमद्वायस्य, काव दूयं निराकुलाः  
 ॥ ५३३ ॥ तवस्यवोसिर्वैमदे, वल्लामानैर्निरुक्षैः । आककाकात्समात्स्य, वैद्य परिप्रोष्ठिः ॥ ५३४ ॥ अह ह वेपां मन्वलो, म्या  
 न्म्यान्मयीमूवचेवतः । सित्स्ववासेपसद्गन्तुः, पुनस्तान्मयां गतः ॥ ५३५ ॥ तवः समवीक्षैः पारैः, संप्रयुज्य निज निजम् । दीर्य कृतो  
 ऽह मूवोऽपि, पापावतपयजः ॥ ५३६ ॥ क्व ?—कौमारे वर्तमानोऽहं, मद्रयो मांसमद्यये । मद्यपाने रवो पूरे, अन्तुसङ्गावपीवने  
 ॥ ५३७ ॥ यौवने वर्तमानेन, पातर्थावयज्या । लोके प्रत्यवणाऽत्यर्थं, प्रसह विहिता मया ॥ ५३८ ॥ तवा—स्तिवनेन वक्त्वर्वित्तं,  
 महारन्मपरिमद्रः । पापवैवोऽन्त्यवोपाज्ज निरयेणेन सेविताः ॥ ५३९ ॥ सर्वत्र मूर्च्छितो युक्तो, विमूवो विपयेयु च । यथावत्त्वमह  
 काव, क्षिप्तोऽत्यन्तसुखी किञ्च ॥ ५४० ॥ एव च वर्तमानेन, मया दे भावसाधनः । सित्स्वत् पूर्वपूजान्तं, वन्तुपुच्छाऽवधारिताः ॥ ५४१ ॥  
 तववीर्यवप्रसरेर्मे मस्तिनयरीकृता शिचयुधिः शिवयमभिभूत आस्तिप्रमैर्यज्जक धारिव (हरे) शिवदमभ्यन्तरे विरोद्धिच वत्कान्ताधिकं  
 सुखयमन्त्यमन्तःपुरं वृद्धिर्माविचोऽहं प्रमुभावात् प्रकाशित कर्मपरिणामराज्य मज्जलीभूतः पापोद्वयः वृत्तिायमुद्रामवया मद्राभोद्वासेन्य सं  
 स्थापितानि निजानगादीनि प्रयुजा वीजु मद्रापुरेण प्रमथयानवी विष्णीर्णीभूत दक्षिणसिच प्रत्यभीकृताश्चिचविषेपमण्डपः समादिता पुष्पा-

यथा भद्र ! मागदन्तं सङ्गमाय सरथ प्रसिपयसेति, तथा समानीषोऽग्रमर्थं वदन्त्या भगवत्समीप, दृष्टोऽग्रमथ वध्यवस्थाकारधारकः स  
 मन्त्रपरिपद्य, मन्त्राग्नि भगवन्मन्त्रमन्त्रोक्तयतोऽन्तर्धेयमुत्तरसन्निभरथया समालावा मूक्या कथया पथना प्रविचमः दारकावया भगवान् मा  
 भीर्त्तनेन समानासितोऽग्र भगवता दृष्टीभूया भगवद्भयेन किञ्चित् रात्र्यगुण्याः ततो विमर्षीभूतोऽग्र गृहस्थया न्यतिकर्त कथितव्य मये  
 यमात्सङ्गान्तो विहारेण, अथ च भद्रे ! भगवतः सप्तमवप्रसूरेर्धर्माभद्रायाः पौण्डरीकस्य भवत्याभ्य सम्बन्धी भूचान्तः प्रतीचाऽपि  
 एव सप्तसिन्धुवर्धं यथा सिधेसिः येन ते मदीयकथिते सुनिर्णीतमवाय कथयतीसि सद्य सप्तमत्यो भवति, सञ्जावस्तेऽपुना सप्तप्रसयः !,  
 सा माह—माहमस्तमगोचरः संवापा, केवलं यन्नि त्वमद्यमुत्तरनामा वक्रवर्ती तथा किमित्त्व वत्स्याकारधारको द्रव्यत !, भय मेऽपुना  
 सन्तेह, स माह—भद्रे ! पुत्रयो प्रसिधोयनार्थं मयेह वदितुं वत्सरूप विरचित एवोऽग्रमन्त्ररत्न चौपमुद्रिय मवतां पुरतो भगवता  
 सत्तासिधोको नामाथ वत्सरः ककक्रोनेत्त वक्रा नीयते कप्त इत्याक्याहः, ततो गवायां मम सप्तमुक्त मद्दामद्रायां वदन्तानुनागतसंजावे  
 प्रयोधे यथा चित्तिव—यद्यन्धेया प्रकाशिताका मद्दामद्रा आमात्सेवेवं भगवदासिद्ध मदीयमन्त्ररत्न चौपं ततो लभ्यमति भावतो मम व  
 त्सरकां यमात्सङ्गद्वीकसङ्केताऽप्यासि सा मुकसिवा म आनीते गन्धमप्यक्त न्यतिकरन्त, तद्यन्त्रकवर्तिरूपधारिणं माद्रुपकम्प मनेदक्याः  
 सद्गागमवचने सिमसयो म आनीते क्रिभिदय सद्गागमो पद्यन्त्रकवर्त्यप्यनेन वत्सङ्गेऽभिहित इति भावतया, किं च—असावसि पौण्डरी  
 कोऽनेनैव दृष्टेय प्रसिधोयितो अभिप्यसि, मन्त्रपुरतो हसो सुमसिध्म वर्तते शिवास्तसि भागकीनदृष्टान्त्रमवपोषरकात्मकस्य सर्वस्य परि  
 स्फुटमैदम्पं अभिप्यक्तव्य प्रयोप इत्येवं विचिन्त्या विरचितमिदमन्त्ररत्नात्मास्तपसूयकं वैश्विकरणककम्पा यथा वदितुं सार्धमेवसिप रूप  
 सिधि, मुकसितयोक्त—कीदृश पुनस्तदन्त्ररत्न चौपं पद्मवता सिद्धि व क्वं वा यथेदमी विद्वन्मना कथं माऽग्रमातं परगाव य निःपाव



पात् । आलोच्य काननं स्थित्य, सखित्वादिदृश्या ॥ ५४६ ॥ राजपुत्राश्च मे यावद्वितीयाभ्यादुत्कारिणः । ब्रह्मन्तो देव देवेति, पक्षेयन्ति  
 बन्तिभयम् ॥ ५४७ ॥ सावर्देया महाभागा, सुसाध्वीपरिचारिता । आगच्छन्ती महामद्रे, महाभद्रा विकीर्णिता ॥ ५४८ ॥ चतुर्मिः  
 कलापकम् । अथ निःशेषरूपेभ्यो व्याधुषा कीलितेव मे । अस्मां निपतिता दृष्टिः, सभाषाऽत्यन्तसिम्पला ॥ ५४९ ॥ एषापि मां प्रप  
 श्यन्ती, सपत्ना श्लेषचुष्ट । निःस्पृहापि महाभागा, पूर्वोभ्यासेन मुन्वति । ॥ ५५० ॥ अथ प्राप्ता समाम्भर्षे, चिन्मयन्ती गुरोर्बचः ।  
 अथ नरकगामीति, कठणाऽऽगतचेतना ॥ ५५१ ॥ तवः कन्वमुनिकाके गुणधारणेन सता मया विहरामेवद्रोषरसाम्यकावया बहुमान  
 स्यादुशीलितवया चिनयस्य प्रसिपन्नवया इत्यस्य भावितवया गौरवस्यानुष्ठितवया वत्सकमावस्य प्रादुर्भूतमेवसि मे विमर्षः पशुव—  
 कैषा पुनर्मंगवती वा दृष्टमात्रापि मे इत्यमेवमाकावयसि नयने कीटकयति क्षरीरं निर्वापयसि अमृतकुण्ड इव मां विपदीति, तवः कथो  
 मया भगवताः शिरःप्रणासः दृष्टोऽज्ञया धर्मकामाशीर्वादः, अभिहितं च—मो मो महापुत्र—मोक्षसम्प्रापके प्राप्तं, मातुष्ये दे नरो  
 जम । । कन्मार्गगतनामैवं, गन्तुमन्यत्र गुरुयते ॥ ५५२ ॥ निवृत्तकर्मापराधेन, वस्त्रयकारधारिणः । अव्यस्य मीयमानस्य, कृत्वा भाववि  
 ब्रह्मनाम् ॥ ५५३ ॥ किं रात्र्य सुर्विजासाः के, के भोगाः का विभूयः । किं वा क्षारय्य ? महापुत्र, चिन्तयेदं स्वधेवता ॥ ५५४ ॥  
 शुभम् । किं च—मर्क्षेनाद्यया समुत्पन्नमिर्मर्क्षायाः सजातमस्या भगवत्या महाभद्राया आसिस्वरणं स्ववस्त्रेन कन्वमुनिकाकाधारमथ  
 समस्तो हृष्टान्तः प्रादुर्भूतं सद्गुसारेण सुभाभ्यधसायावधिज्ञानं दृष्टं तेन मदीयमपि विचरणं, तवोऽभिहितमनया—किं न कपसि ए-  
 नेन्द्र, यद्यथा गुणधारण । भवजुष्टमलीकामिर्कलितस्त्व मत्प्रमथः ॥ ५५५ ॥ क्षान्त्याद्यन्तःपुरं प्राप्य, सुस्रसन्मारपूरितः । स्थितो  
 यद्भावरभ्ये त्व, सर्कि ते विसृष्ट छिन्न ? ॥ ५५६ ॥ किं न निर्मलसूरीणा, वषट्कानि क्षरन्ति ते । अथप्रपञ्चो दैस्तुम्यमनन्तोऽपि

वेदिका संकष्ट विपर्यसन्निहर् परिपोषिषा महाभोक्तेन निजाऽविधागात्रयष्टिः सर्वथा पुनन्तदीनूला समस्ता सामर्मी, तवः प्रदुषाऽर्मापां  
 पर्वांलोषः—अभिहित विपवाभिन्नापेण—भो भो सर्वे महीपाशाः, सन्धिवयव मह्यः । दृष्टादाः पुण यूय, किं वा भः परिकथ्यते ?  
 ॥ ५४२ ॥ मन्वाहरेण निर्वाहं, तादस वीर्य पूर्वकम् । मन्वाहरो भ मुक्तो भः, साग्नय कर्तुमग्र भोः । ॥ ५४३ ॥ तथा यतश्चम  
 पुना, यूयं निष्कथ्यकं हि भः । यथा संपद्यते राज्यमाकाङ्क्षुप्रतिष्ठितम् ॥ ५४४ ॥ तवः प्रक्षिमाव तवर्षां मधिरथन, अभिहितमर्तैः  
 —किं पुनरत्र कियत् इति ?, मधिरथोक्तं—इहमिव च कुर्वतेति, तवस्तुपुत्रेण मोत्सादितोऽहं प्राद्वित्त्य स्वयमेव यैः क्षेमास्थित कर्म  
 परिणामस्तत् कर्त्तव्यादिरचितं प्रमूढमकुसुमनामर्कं ब्रह्मचार, प्राद्वित्त्वा य वैरेव साधिवभौरवयाऽहं कमपरिणामदास्य, तवस्तेनानिष्ट  
 —यथा विद्वन्वनानुदसर् पापिपञ्चरे मीत्वेन शुभकमारेण मारयत, तवाकर्ष्य दृष्टास्ते दुरात्मानः, तवो विन्निमोऽहं कममलमकमना  
 पर्वतो राजसैर्गिरिभ्यस्तैः क्षयितव्यमसैरुपमयीपुण्ड्रैर्निनादितः प्रप्रजपागकटोत्तरपर्ययानामिकया खलमानया कपदीरमुवहमाजया  
 विदन्निवतो इहरे पूर्वमानया कुनिकम्पसन्तवतिरुपया स्यात्तमाजया भिममाणेनोपरि पापाविरेकनामकेन जटितकस्यवनं पद्योऽकुसुमना  
 मकटोत्तरसरुपाककेन धाटोपिषो मह्यसवायायाभिधाने राजभे वेदितः क्वान्तसन्निभैर्बुधासायासिभिः समन्वाद्रात्रमुदयेर्निन्यमानो  
 विरेकिञ्चोकेन सनुवतवा कपायाभिधानिदन्मकटकेन भूयमायेन दान्वासिसन्मोगनामकेन शिरसधियमद्विभिमन्प्यनिना विद्वन्मन्प्यन  
 वद्विरज्जकोकसमुपविशस्यारुपेण पुष्पान्तनादृष्टासेन निःसारितोऽहमेवं ध्वप्यभूमेरभिमुल वैर्मदाभोदाशिमिर्मदाविदेदरूपद्वुमागे निज  
 वस्यर्शनशीलाभ्यामेनेति, तवसैरानीवोऽहमसु प्रवेश सुतो गुण्याभिर्मरीपपलककठकठः गता भय सन्मुल तथा महामश्रा, इवभाह तदा  
 —निःशेष दृष्टवस्त्यक्त्या, ससैन्य राजसीक्या । समाप्तमेवमुपान, राजभक्षमवेदितः ॥ ५४५ ॥ रकाणोक्तवते यावदुत्पीय परमार

पात् । माघोत्पन्नं कान्तं रिन्मं, सखिवल्लिरिदमपा ॥ ५४६ ॥ राजपुत्राश्च मे पाण्डुनिवाभाटुकारिणः । वदन्तो देव देवेति, धर्षयन्ति  
 वनप्रियम् ॥ ५४७ ॥ तावदेव महामागा, सुसाष्पीपरिवारिण । आगच्छन्ती महामदे', महामद्रा विजोकिता ॥ ५४८ ॥ चतुर्भिः  
 कटापकम् । अथ निःशेषरूपेभ्यो, व्यावृत्ता कीर्तिवैभ मे । अस्यां निपस्त्रिषा दष्टिः, सञ्जावाप्यन्तवनिमलता ॥ ५४९ ॥ एषापि मां प्रप-  
 दयन्ती, सपत्ना स्नेहवन्तुरा । निःस्पृहापि महामागा, पूर्वोप्यासेन सुन्दरि । ॥ ५५० ॥ अथ प्राप्ता ममाभ्यर्षे, चिन्तयन्ती गुरोर्वचः ।  
 भयं नरकगामीति, कृपागुड्यावबेचना ॥ ५५१ ॥ एतः कन्वमुनिकाले गुणवारणेन सदा भया विहरामेव ह्येवरास्याभ्यक्तवया बहुमान  
 स्वातुशीलिवतया विनयस्य प्रसिपसवया इत्यस्य मासिवतया गौरवस्वानुष्ठितवया वत्सलभावस्य प्रादुर्भूतश्लेषवसि मे विमर्शः पडुत—  
 कैपा पुनर्मनावती वा दृष्टमात्रापि मे इत्यमेवमाह्वायसि नयने स्वीकृत्यसि क्षीरे निर्वापयसि अत्युत्कृष्ट इव मां क्षिपतीसि, तवः कृपो  
 भया भगवत्याः सिराप्रणामः दण्डोऽनया धर्मलाभाशीर्वावः, अभिप्रिय च—भो भो महाराज—भोअसम्प्रापके प्राप्ते, मातुष्ये ते नरो  
 वन । । वस्मार्गममनामैव, गन्तुमन्यत्र नुच्यते ॥ ५५२ ॥ निजकर्मपर्ययेन, वत्कटाकारधारिणः । वन्यस्य नीयमानस्य, कृत्वा माधवि  
 वन्दनान् ॥ ५५३ ॥ किं रुक्मं स्तुर्विखासाः के, के योगाः का विभूतयः । किं वा स्वात्पर्यं ? महाराज', चिन्तयेव स्त्रवैवता ॥ ५५४ ॥  
 पुनसम् । किं च—सर्वदानासदा समुत्पन्नविमर्शायाः संज्ञायमस्ता भगवत्या महामद्राया कासिसरण स्तुतस्तेन कन्वमुनिकालादारभ्य  
 समस्तो वृत्तान्तः प्रादुर्भूतं वदतुसारेण शुभाभ्यवसायावधिष्ठानं दृष्ट वेन मयीयमसि विचरण, एवोऽभिहितमनया—किं न करसि रु-  
 केन्द्र', यद्यदा गुणधारणः । भवदुष्टमलीकाभिर्ललितस्त्व ममाग्रतः ॥ ५५५ ॥ क्षान्त्यापन्नः पुरं प्राप्य, सुकसन्मारपरिवः । स्त्रिवो  
 पन्नावरये स्व, वटिकं ते विस्मृत किञ्च ? ॥ ५५६ ॥ किं न निर्मलसूरीणां, वचनानि शरन्ति ते । भवप्रपञ्चो वैस्तुभ्यमनन्तोऽपि

निवेदितः ॥ ५५७ ॥ यत्प्रसादात्प्रजापति, तथा प्रीत्यकाशितु । सुदानि धारणं वेत्स्यी, केवलं हि सदागमाः ॥ ५५८ ॥ वृक्षप्लव मद्ग-  
 रज्ज, पूर्वं मा शुक्ल साम्यम् । अहं हि ते समापत्ता, योषार्थं कुरुणापय ॥ ५५९ ॥ अजान्तरे च विधाय, प्रसादात्तम सन्मुखम् ।  
 पुनः प्रवृत्तः सद्गोपः, सन्ध्याभ्यर्चनसमुत्तः ॥ ५६० ॥ स ज्ञान्यराशिर्गोप, वदस्तेन श्रुतात्मना । न दाह्योसि ममाभ्यर्थमागन्तु समसा-  
 पयि ॥ ५६१ ॥ ततो भगवतीवत्त्वं, सूर्याशुनिकेरितम् । सूर्यकन्धसम दीप्त, वीरवीर्यं वरासनम् ॥ १६२ ॥ तवकल मकाशेन,  
 तवतः प्रकथ गतम् । कर्मनाशोचन रन्ध्रं, विजह्यो न सैन्ययोः ॥ ५६३ ॥ ततो यत्नेन निर्मिष, त्रिपुरा विपथकम् । समागतौ च  
 मे पार्थ, तौ सद्गोपमहत्तमौ ॥ ५६४ ॥ ततः प्रवृत्तौ मे विमर्शः यदुत्त—किमेवा भगवती अत्यर्थासि, तवज्योदापोद्भार्गवभाषणम् शुद्धता  
 मे संमुख्य ज्ञानिकारणं, स्मृता गुणधारणावकाः, तवकादनुसारेण धर्ममानशुभाप्यवसायस्य मे समागतः सद्गोपवत्सो विनिर्जित्वात्मप्र-  
 तिपक्षमवाधिः, यद्गतेन दृष्टा मयाऽसङ्क्षेपोऽपीयसमुद्राः विजोकिदोऽसङ्क्षेप एव भवप्रपञ्चः प्रादुर्भूत सिद्धार्थार्थकाकाभ्यस्य पूरयन्त-  
 सद्गोपिभ्यः समस्तं भुव ज्ञानकविः परितुष्ट इव निर्मकसूरिनिवेदितः समकोऽप्यात्मससारविकारः वदापत् पुनरसद्गोपवत्ता दृष्टः सा-  
 क्षादेव निवः परितमपट्टयान्तः, ततः पूर्वेक्षितेन कारयेन विरचयत्येव तत्करकपवत्ता यद्विपश्चि विद्वन्भवमानमात्मानं समागतोऽद्भुतिह सम-  
 न्दामनत्रया, वदापत्तर्तव एव ते मदीयक्यसिद्धिः, ततो भद्रे ! सुखसिद्धे भवन्तमवपीयसिषि प्रसार्पितयेव तन्मुक्ता अत्यन्तमुपमेयमदृष्टपरत्वाया  
 वराकीसि सज्जसकृष्णविरिरेव सर्वज्ञागमगोचरवद्भुतानेन छिद्रकमधिकयतो भवत्प्रसादापसिन्ध्याः प्रक्षिपोप इति भगवतोऽस्य सदागमस्य  
 पारमसादावच्छिन्नं भवेत्तमवपारितमिसि सदागमे च्छुमानश्रुत्यादयत्ता समोपेणाप्यनन्तवत्ता यथ्यासक्यनीचो भगवन्मादात्मनादेव प्रद्वज्ये  
 देव निवेदितोऽयमगुणविसङ्केते द्रष्टुमपत्ता मया वद्वद्वत्तपरयो भवत्यै कथयसि सीदेगायमेतं समकोऽप्यात्ममप्यप्रमप्यप्रपञ्चः, तदीदृशं भद्र !

धृन्वत्तर्कं चौर्यं यन्मयाऽनुना विदितं ईदृशी च तत्र निवृत्तना एवं पाह स्वार्थ परार्थं च पृथान्वयाव जानामीति, १/ एवञ्चार्कपर्यं वि  
 श्रिता सुसञ्चिता भाषिता इत्ये, पौण्डरीकेष्वपि गृहीतो मनान्माचार्यः, ततोऽभिहितमनेन—आर्य ! किं पुनरनुना वे विच्छन्तो वर्तते ?,  
 अग्निसुन्दरेणोक्त—आर्कण्य—यावत्सर्वेणमापन्नाः, प्रारब्धो निजचेष्टितम् । निवेद्यिषुमित्य मोः, पुरतो भवतामहम् ॥ ५६५ ॥ पात्रा  
 रिजवर्मोऽद्यौ, स्वसैन्यपरिराजितः । प्रत्याग इति विज्ञाय, चक्षितो मम सन्मुखम् ॥ ५६६ ॥ तेन आगाच्छ्रुता—आनन्विष स्वमीर्षेण,  
 पुरं सात्त्विकमानसम् । अत्यस्तुप्रचां मीरो, विवेकवरपर्वतः ॥ ५६७ ॥ शिखरं चाप्रमत्तम्, कृतमुर्ध्वैक्यं वरम् । वज्रासिधं च भूयो  
 ऽपि, पुरं जैन प्रसिद्धिम् ॥ ५६८ ॥ स च विजयमाधानो, गण्योऽपि समाजितः । सा च निःस्पृहावेतिः, पुनः सञ्जा विनिर्जिता  
 ॥ ५६९ ॥ शबोक्तप्रभाञ्चक, जीवनीर्यं वरासनम् । क्व तेन स्वसैन्यं च, सर्वथा परितोषितम् ॥ ५७० ॥ वयमागच्छतकस, परि  
 पूर्णवयाऽभवन्नि । सर्वप्राणेन वक्त्रम्, महाभोहमहावक्त्रम् ॥ ५७१ ॥ दृष्ट प्रत्यक्षः सर्व, वयं मुदं मयाऽस्तुलम् । तवः परिसरे रन्ये, वि  
 सङ्ख्येतरकीकयोः ॥ ५७२ ॥ तवः सद्रोषमुक्तेन, सन्मगधर्शनसमुज्जा । मयाऽज्जितमयो जात, स राजा जयमाञ्जनम् ॥ ५७३ ॥ तवो  
 विषट्ठिवाक्षेपरपक्षः सङ्कीक्या । जगत्प्रपञ्चस्मीकः, क्षत्रपञ्चं निपीक्या च ॥ ५७४ ॥ गृहीत्वाऽन्वःपुरं सर्व, मामकीन विरन्वतम् ।  
 यथा आरिजवर्मोऽद्यौ, सत्समीपमुपागतः ॥ ५७५ ॥ युत्तम् । वे च निर्दहसर्वसाः, किञ्चिच्छेदस्वस्त्रीविद्या । क्षीप्वा दृढ कीन,  
 महाभोहायः स्त्रियाः ॥ ५७६ ॥ चिचवृथाविह मद्र !, वर्तते मम सान्प्रतम् । यच्छ्रवणः प्रकीर्णास्ते, प्रहृष्टा वरवान्यथाः ॥ ५७७ ॥ युत्तम् ।  
 सन्मगध—अपद्य विजगाहन्त्या, तिष्ठ सर्वकभाषितम् । यानुना पोषणीयोऽसौ, चानुर्गो मयाऽऽन्तरः ॥ ५७८ ॥ एव च वदता देनाडु  
 सुन्दरराजोपसह्य वदिकृतं वरकरूप आधिसीविद्य सागाविक चक्षुर्विस्वरूप कृतसङ्केतवया निष्ठया वरकरविहन्मनासामभी समायावा

निवेदिषः ॥ ५५७ ॥ यत्प्रसादात्प्रसाप्तिः, तथा प्रियेयकादिषु । सुतासि धराण देउसी, केवलं हि सदागमाः ॥ ५५८ ॥ दधुभ्यस्व माहा-  
 राव !, पूर्व मा शुभ साम्प्रतम् । बह्वं हि ते समाधावा, बोधार्थं करुणापरा ॥ ५५९ ॥ अत्रान्तरे च सिद्धाप, प्रस्थाप मम सन्मुखम् ।  
 पुनः प्रवृत्ताः सद्योयः, सन्मन्त्र्यनसमुत्तः ॥ ५६० ॥ स ज्ञानस्वरिचर्येण, कृत्स्नेन शुचालना । म शुक्रोसि ममाभ्यर्थभागन्तु दमसा  
 पादि ॥ ५६१ ॥ क्वतो मागवतीभाक्त्वं, सूर्याशुनिकेरितम् । सूर्यकान्तसम दीप्त, वीरवीर्यं जगत्सन् ॥ १६२ ॥ तवच्छन्न प्रकाशेन,  
 तवतः प्रकटं गतम् । कसमायोधनं रन्ध्र, विजयवृत्तौ च सैन्ययोः ॥ ५६३ ॥ तवो वठेन निर्भिष, सिधुपग विजन्मकम् । समागती च  
 मे पार्थ, वी सद्योवनहृत्समी ॥ ५६४ ॥ तवः प्रवृत्तौ मे विसर्गः यदुत्त—किमप्य भागवती अस्पर्धादि, तवच्छोद्वापोद्गमार्गमावप्य कुर्वता  
 मे सन्तुल्य जालिकार्यं, रसुता शुभधारणावत्ता, तवच्छादनुसारेण वर्धमानशुभाप्यवसायस म समागतः सद्योयवयक्तो विनिर्जितात्मम  
 सिपन्नमवधिः, दधुत्तेन दद्या मयाऽसङ्क्षोभा दीपसमुद्राः विजोकिरोऽसङ्क्षेप एव भवप्रपञ्चः प्रादुर्भूत सिद्धाचार्यकावाभ्यस्त पूषपर्वन्त  
 सदासिधदैः समस्तं शुभ भाकन्तिष्ठः परित्युक्त इव निर्भक्तसिधिवेदिष्ठः समच्छोऽप्यात्मसर्वधारिविधाराः तदाएव पुनरसङ्क्षेपतया दृष्टः क्षा-  
 सादेश निजः परिश्रममहृत्तान्तः, तवः पूर्वोक्तं कारणेन विरचन्मत्तव तस्करतुल्यतया बहिर्गुणे विद्वन्ममानमात्मान समागतोऽहमिह स्वम  
 माहामद्वया, तदाएवकीय एव ते मदीयव्यष्टिकट, तवो भद्रे ! सुकन्तिवे भदत्तमच्छटीयमिति प्रसर्पितदेहतनुना भदत्तसमुपदेवमष्टपरमाधो  
 जगदीसि सज्जत्करुणातिरेकेण सर्वज्ञात्मगोचरबहुमानेन शिष्टकर्माधिकयतो भवत्सत्साक्षात्पञ्चिन्थाः प्रसिद्धोप इति नगवतोऽस्य सदागमस्य  
 पादमसाहादक्षिक मनेदमवधारितमिति सदागमे बहुमानशुल्कावयवा संक्षेपेणावतन्तसवया पण्यासकयनीयो भगावन्माहात्म्यादेव प्रहरत्रये  
 वैव निवेदिषीऽममगदीतसङ्क्षेपे इत्युक्त्या मया कृतवृत्तपराये भवत्यै सपमसि सदिगापमेन समच्छोऽप्यात्ममवयमप्यप्रपञ्चः, तदीदृश भद्रे !

यद्व प्रविहन्निवः ॥ ५९३ ॥ तदप्याकर्म्यं ते शुभे !, मदि नो प्रविह मनः । काकद्वयं यतो मन्ये, इत्य एवमनिर्मितम् ॥ ५९४ ॥  
 गुणम् । तथा—अनर्थसार्धदेव यो, महाभोदपरिमहौ । मया निवेदितो हस्ता, सर्वदेवसमाभयो ॥ ५९५ ॥ यद्यदेव न बुद्ध्याऽसि,  
 स्थिता स्व विस्मयेष्वपि । तेनादृष्टितसङ्केषा, मया प्रोक्ता पुनः पुनः ॥ ५९६ ॥ गुणम् । किं न—बलि बदे तथा मन्ये, अथमे नाकि  
 सेऽपि न । नः प्रोक्ता सर्वेनाद्रीचामिन्द्रियाणां सुखादयः ॥ ५९७ ॥ शिपाकाः सोऽपि वेदत्र, मयस्या नावधारितः । अवैधिका यतो  
 मन्ये, काष्ठमूलाऽसि सुन्दरि ! ॥ ५९८ ॥ गुणम् । यथा—अथमनीयिषो पुत्र, यत्र वैषम्यं यत्र । या वैकुन्ता बुधस्योर्वेषोऽयमभि  
 वेष्टितम् ॥ ५९९ ॥ यत्र कोसिद्विज्ञानमिन्द्रियाणां शिषार्थेण । यथाकल्प्य को नाम, संसारात्त विरक्त्यते ॥ ६०० ॥ गुणम् । अ  
 न्यत्र—अस्मिन्मूर्धनं यत्ते, मया शुभे ! निवेदितम् । विष्टमृष्टिचितं साक्षादन्तरात्तकद्वयम् ॥ ६०१ ॥ यस्याप्याकर्म्यं बुद्धान्तं, यदि न  
 मस्तिबुद्ध्यसे । तत्र बोधे विभावये, आस्तुपायकवोऽपरः ॥ ६०२ ॥ यथा—यथाकल्प्य तादर्थं, इव कानकसेकरम् । तत्र तादृशमान-  
 जोक्य, सौमन्यं नाराणात्वनम् ॥ ६०३ ॥ विमलं मकदीनका, विमलका न वेष्टितम् । सागा हरितरेन्द्रका, संविमल कवविमलम् ॥ ६०४ ॥  
 निवेकमकककका, समानकर्म्यं न तादृशम् । मुनीनां मूरिरूप न, मुखा वैराग्यकारणम् ॥ ६०५ ॥ यथापि यदि ते चित्तं, नाकि के । न  
 सिरिष्टितम् । इत्य कीकदुक्ताभा, यतस्त्वं नात्र संक्षयः ॥ ६०६ ॥ अतुर्दिःककापकम् । यतोऽदृष्टीवसङ्केतेस्तुभ्यमनता मुह्येष्टुः । पाद  
 द्वाऽप्येन वा शुभे !, न रोप मन्तुमर्हसि ॥ ६०७ ॥ तथा—किं न स्मरसि यद्वाकिं, यत्त्वं मदनसञ्जरी । सवी सवी समानीया, तथा  
 गुण्येभ्यामिति ॥ ६०८ ॥ तत्सुखं तादृशः कोहस्ते भिक्तासा मनोहराः । यत्राकर्म्यं ते न बुद्धान्ताः, सर्व किं विसृष्टं यव ! ॥ ६०९ ॥  
 कन्वसाधु समासाध, मनुष्या विमलासने । सप्त मुह्येष्टुर्देवोर्देवता यत्र बुद्ध्यसे ॥ ६१० ॥ यस्यास्मिन्निर्लकाचार्यः, केवललोकेमास्तरः ।

मन्त्रिभारतमसमन्ताः शिवेतिष्ठतेत्यो मित्रोऽभिप्रायः प्राप्तकालतया च प्रतिपाद्योऽपीयं, एतः पुरन्दराय निमगुवाय समर्पितान्यनुमुन्दरेण  
राज्यविहासि अयं भद्रतां एवेति जायिषा राजसमूहाः स्वनिनय प्रतिपन्नयेतैः मिर्षतिव भगवदभियेकपूजाधिक नि शेषकरणीयं निर्गतः  
सयैरात्ताः पुत्र कीर्तयत्तमाः कदाचित् सर्वेषामुचिषा यतिपतिः गुनमीक्षिता परित् प्रपद्यो भवामन्दः, —तवः स्वप्नेन सादृशं, 'दृष्टादस्य  
हृद्युत्तमम् । शुभा सुकल्पिष्याद्व्यस्यते, जगता शिवे' अमलकता ३। ५७९ ॥ यन्माता पीण्ढरीकोऽपि, कसोयो मित्रियेक्षणाः । दृष्टा तस्या-  
दयं साक्षात्पुत्रमुत्तरवेष्टिम् ॥ ५८० ॥ अथ निष्ठापनापूर्वमनुमन्तरत्यनुजा । उत्सादिते वरा सूर्यैः प्रमन्या दानुमुपदे ॥ ५८१ ॥  
द्योऽनुमन्तरत्येनम्, कदाचित् सचेतनः । यो रात्र्युप्री भूयोऽपि, प्रत्युवाच ससाधनम् ॥ ५८२ ॥ कथम् ! —भद्र सुकल्पिते । योयकथायाति  
न भानते । स्वजातो वरते सुप्ते, तेनैव भविकोऽप्या ॥ ५८३ ॥ दोषापमात्यपिषा स्वपीण्ढरावार्ककोदिरा ५ संजाता सप्तमव किं नु,  
वेसिन् नो प्रत्यभिर्षम् ॥ ५८४ ॥ कदाचित् सवा केव, गणनिर्देकरकः । अथप्रत्यो मित्रोऽपि, स्वकीयः परिकीर्तितः ॥ ५८५ ॥  
वदनेन कृतनेत्रं, किं ते सायाति जायते । अनन्तदुःखविहारे, शिवेदो भद्रकारके ॥ ५८६ ॥ किं च —वते पुत्रोऽसमन्त्रे, कदाचित्  
विद्वन्मन्त्र । समान्त्रं स्याद्वारेण, योरेण प्रतिपादितम् ॥ ५८७ ॥ वरिक्तो यो वरिक्तं सुप्ते, किं वा सो जातिव इति । भद्रता केव विवर्ध्या,  
संवारे कथं रक्षिम् ॥ ५८८ ॥ सुसम् । श्वकेन्द्रियातिभेदेण, यव शिवेण शिष्टता । अनुभूतं यथा शुभं, द्रष्टुं च वर कीर्तितम् ॥ ५८९ ॥  
न ह्यवकास सावार्थः, किं स्वनाश्याति जायते । एवं सिरज्ज्वा सुप्ते, देवायाति विरज्ज्वसे ॥ ५९० ॥ गुणम् । मोक्षलाभनयो-  
न्वेऽपि, कथं बाहुभवेऽप्युते ॥ सिंहायोपायते वा'च, प्राप्तोऽयं दुःखमाशिकापम् ॥ ५९१ ॥ अथा किं सिंहाशिका चक्रे, सधनाया  
इति ज्ञया । किं वा कदाचित्कामार्थं, भद्रता परित्पिषितम् ॥ ५९२ ॥ गुणम् । यथा क्षामहृपायत्तवेदनावापरायतः । कोनमैमुदरोऽप्यन्त्रो,



बह्वर्हं प्रविहन्निष्ठः ॥ ५९३ ॥ यद्यप्याकर्ण्यं ते शुभमे, यन्नि नो प्राप्तिव मनः । काकपृष्ठं यतो मन्ये, इत्थं यद्वज्रनिर्मितम् ॥ ५९४ ॥  
 शुभम् । तथा—मनर्थसार्थदेहू षो, मद्भासोऽप्यदिभद्वी । मया निवेदिषी सुखा, सर्वदेवसमाभयी ॥ ५९५ ॥ यद्यदेव न बुद्धाऽसि,  
 सिद्धा स्व विस्मिरोक्षणा । येनापुद्गीतसङ्केता, मया प्रोक्ष्य पुनः पुनः ॥ ५९६ ॥ शुभम् । किं य—बाळे अहे तथा मन्ये, भयमे वासि-  
 षेऽपि य । यः प्रोक्ता स्वर्धनादीनामिन्द्रियाणां सुधारणः ॥ ५९७ ॥ विपाका सोऽपि ज्येष्ठ, मयसा नायभासिष्ठः । अद्वैथिका यतो  
 मन्ये, काष्ठमूलाऽसि सुन्दरि । ॥ ५९८ ॥ शुभम् । यथा—यद्यन्मनीषिणो ब्रूय, यच्च वैषम्यं यच्चः । या देशता शुभकोर्धैर्यथोचनवि-  
 वेष्टितम् ॥ ५९९ ॥ यच्च कोविद्विद्वानमिन्द्रियाणां निबर्हणे । यथाकथ्य को नात, ससाराप्त सिरज्यते । ॥ ६०० ॥ शुभम् । अ-  
 न्यथ—अरिबन्धूस्मं यत्ते, मया शुभमे । निवेदिष्यम् । निरुहचिह्नितं साक्षादन्तरङ्गबद्धयम् ॥ ६०१ ॥ यस्मात्प्याकर्ण्यं वृत्तान्तं, यन्नि न  
 प्रविशुष्यसे । तव बोधे विधातव्ये, नास्त्युपायकावोऽपरः ॥ ६०२ ॥ यथा—यथाकथ्य पादसं, ब्रूय कानकसेकरम् । यच्च पादसमान-  
 कोष्य, सौमन्यं नाट्याहृतम् ॥ ६०३ ॥ निमलं मच्छीनक, निमलस्य च वेष्टितम् । साता हरितरेन्रज्य, संचिन्त्य कवचिकथम् ॥ ६०४ ॥  
 विवेकमकञ्जकस, समानकथ्यं च पादसम् । जुनीनां भूरिरूप च, सुखा वैपान्यकारणम् ॥ ६०५ ॥ यथापि यन्नि ते चिन्त, वास्तिके । न  
 विरिषितम् । इत्थं कर्कटुकमावा, यद्यस्तं नात्र संशयः ॥ ६०६ ॥ जगुर्गिःककापकम् । यथोऽपुद्गीतसङ्केतेत्युच्यमाना सुदुर्मुहुः । नाट-  
 याऽन्येन वा शुभमे, न रोषं गन्तुमर्हसि ॥ ६०७ ॥ यथा—किं न अरसि यद्वासे, यत्तं महानाचरी । सती सती ममानीया, यथा  
 पुण्यमेवाभिभिः ॥ ६०८ ॥ यत्सुखं पादसः कोहस्ते विधासा मनोहराः । यद्वाक्यं ते च वृत्तान्ताः, सर्वं किं विस्तृतं यच्च । ॥ ६०९ ॥  
 कन्वसाधुं समासाय, भद्रया जितसासने । समं कुलधरेणोर्ध्वेयथा तप्त शुष्यसे ॥ ६१० ॥ यमास्त्वभिर्मज्जापार्थः, केवकाढोकमास्करा ।

मन्त्रिमाह्वयमसामन्ताः निवेदितस्तेभ्यो निबोऽभिप्रायः प्राप्तकाकवधा च प्रतिभातोऽभीर्षा, यतः पुरन्द्वाय निजमुवाय समर्पिषान्ममुन्न्दरेण  
 एवमभिप्राति बह्व भवतां यत्नेषि क्षातिवा एवमसदृशाः स्वतिनय प्रतिपन्नयेधैः निर्वर्तिष्य भगवदभिषेकपूजार्थिकं नि शेषकरणीयं निर्णयः  
 सधौएवगानुष्ट श्रीमार्गएवः कृताऽनेन सर्वेषामुपिवा वसिष्ठिः पुनर्भीक्ष्णिका वसिष्ठः प्रष्टवो प्रादामन्दः, ---सवः स्वर्गेन वाटस, 'एवाऽप्य  
 सुष्टुष्टमम् । मुनया मुकक्षिवाऽस्तनवे, जगता विषे नमस्कृता ॥ ५७९ ॥ संजगताः पीण्डरीकोऽसि, सवोभो निक्षिपेवज्जवाः । दृष्टा कृता-  
 एव मन्त्रादृष्टमुन्मरयेक्षिवम् ॥ ५८० ॥ अथ कीक्षापत्नपूर्वसमुन्मरयन्मुज्वा । जलसिद्धे वरा सूर्ये, प्रथम्या दानुमुचते ॥ ५८१ ॥  
 सोऽष्टुष्टुन्मरयन्मेन्मः, कृतापगतवेचता । द्यौं दृष्टपुत्री अयोऽसि, अष्टुवाच ससन्नमम् ॥ ५८२ ॥ कन्नम् । ---अष्ट मुकक्षिवे । द्यौयसवापाति  
 त भानवे । संजातो वर्तते मुनये, सेनेन नक्षिपेवज्जवा ॥ ५८३ ॥ द्यौकापवावपिवा स्वमीचक्रावार्धकोदिवरा ५ संजाता सन्नमव किं मु-  
 वसिष नो मन्त्रनिर्णयम् ॥ ५८४ ॥ अष्टोवाचं भवा द्वेवं, गणनिर्देवकारकः । अथमपन्मो भिद्योपः, स्वकीयः परिकीर्तितः ॥ ५८५ ॥  
 वदतेन ऋतेनेत्य, किं ते नाम्नासि न्यावते ॥ ५८६ ॥ अनन्तगुणनिष्कारे, शिर्वेदो भवज्जारके ॥ ५८७ ॥ किं य-यते पुरोयमन्वेद, कर्मावका  
 निवन्मन्त्रम् । मन्त्राऽऽर्च्यवदन्ते, धीरेषु प्रतिपादितम् ॥ ५८८ ॥ धर्तिको कश्चिदं मुनये, किं वा नो भावितं द्रुति ॥ ५८९ ॥ भवसा वेद निर्वन्मा,  
 संघारे कृषवे रक्षिम् ॥ ५९० ॥ शुभम् । मन्त्रेन्द्रियाभिनेषु, एव शिर्वेसु नैवरा । अनुभूय कथा शुभम्, द्रुष्टं च एव कीर्तितम् ॥ ५९१ ॥  
 त द्वावकास सावार्थो, किं स्वपाऽप्यासि भगवसे ॥ ५९२ ॥ एवं किराऽप्युक्ता मुनये, वेनाप्यासि दिवन्मन्त्रे ॥ ५९३ ॥ शुभम् । मोक्षवातवो-  
 न्मेऽसि, उभये मन्त्राऽप्येष्टुते । मन्त्राऽप्युक्ता मुनये, मन्त्राऽप्युक्ता मुनये, मन्त्राऽप्युक्ता मुनये, मन्त्राऽप्युक्ता मुनये, मन्त्राऽप्युक्ता मुनये, मन्त्राऽप्युक्ता मुनये,  
 द्रुति एवम् ॥ ५९४ ॥ किं वा कर्माभिर्कम्पम्, मन्त्राऽप्युक्ता मुनये, मन्त्राऽप्युक्ता मुनये, मन्त्राऽप्युक्ता मुनये, मन्त्राऽप्युक्ता मुनये, मन्त्राऽप्युक्ता मुनये, मन्त्राऽप्युक्ता मुनये,

पदं प्रतिबन्धितः ॥ ५९३ ॥ अथवाक्यं ते सुगमे, अस्मि नो ब्राम्हिण मनाः । काकवृष्टं यतो मन्ये, इत्य यद्व्यभिर्निर्मणम् ॥ ५९४ ॥  
 गुणम् । अथा—अनर्थकार्यदेव ही, मद्या निवेदिनी सुखा, सर्वज्ञोपसमागमो ॥ ५९५ ॥ यद्येव न बुद्ध्याऽसि,  
 शिवा स्वं विस्मिदेक्षणा । तेनागृहीतसङ्केता, मया मोक्षा पुनः पुनः ॥ ५९६ ॥ गुणम् । किं य—बाधि लोके तथा मन्ये, अपमने बाधि  
 सेऽसि च । यः प्रोक्ता सर्वज्ञादीनामिन्द्रियाणां सुबाधणः ॥ ५९७ ॥ विपाकाः सोऽपि चेदत्र, मयसा नावधारिताः । अर्थाधिका यतो  
 मन्ये, काष्ठसूत्राऽसि सुनस्ति । ॥ ५९८ ॥ गुणम् । यथा—यद्यप्यनीषिणो ब्रूय, यत्र वैयस्य बन्धः । या वैसना शुषकोर्ध्वोऽप्यनवि  
 वेदितम् ॥ ५९९ ॥ यत्र कोविद्विज्ञानमिन्द्रियाणां निबर्हणे । अथाकथ्य को ज्ञान, संसारान् विरक्तये ॥ ६०० ॥ गुणम् । अ  
 नन्व—अस्मिन्वृण्यं यदे, मया सुगमे । निवेदितम् । विपाकविहितं साक्षात्पत्यप्यत्रापम् ॥ ६०१ ॥ यस्याप्याकथ्यं बुधान्तं, अस्मि न  
 प्रसिधुष्यसे । एव बोधे विपाकयमे, आसुगुणमयतोऽपरः ॥ ६०२ ॥ यथा—यथाकथ्यं यादव, इव जानकसेकरम् । यत्र पादसमा-  
 धोष्य, सौमन्यं कारवाहन्म् ॥ ६०३ ॥ विमल मन्दोदीनस, विमलस्य च वेदितम् । साग हरिनेत्रस्य, रविचिन्ता कठमिच्छाम् ॥ ६०४ ॥  
 विवेकमकङ्कल, समाकथ्यं च पादम् । सुनीनां सूरिकर्षं च, सुखा वैराग्यकारणम् ॥ ६०५ ॥ यवानि अस्मि ते विच, बाहिके । न  
 विरचितम् । इत्य शक्तिदुष्प्रभाया, एतत्सं नात्र संस्रवः ॥ ६०६ ॥ अगुर्भिः ककापकम् । यतोऽगृहीतसङ्केतोऽप्यनमाना मृदुर्मुहुः । पाद  
 धाऽप्येव वा सुगमे, अ रोषं मभ्युमर्हसि ॥ ६०७ ॥ यथा—किं न अस्मि यद्वाहि, अर्थं यद्वान्तम्, सर्वं किं विस्मृत एव ! ॥ ६०८ ॥  
 गुणोदयविभिः ॥ ६०८ ॥ वत्सुर्गं पादकाः कोऽसौ विजासा मनोहराः । यत्रार्थं ते च बुधान्ताः, सर्वं किं विस्मृत एव ! ॥ ६०९ ॥  
 अन्वसाधु समासाय, मनुका चिन्तासने । सर्वं कुर्वरेणोर्ध्वोऽप्यत्र एव गुण्यसे ॥ ६१० ॥ यथाकथ्यमिर्नन्वाप्यर्थः, केवललोकात्मकमास्तरः ।

भवप्रपञ्च मेऽनन्त, समक्षं ते दृष्टव्यमस्मै ॥ ६११ ॥ किं न भुवस्तन्वा सोऽय, किं वा नैवावधारितः । यनैव कील्यमानेऽस्मि, तत्र ह्य-  
 न्येव स्थितिः ॥ ६१२ ॥ विन्मासेनामुना बाधेऽ, यत्र बोधवित्तिसया । मया संसारविक्षारः, स एव प्रसिधायिवः ॥ ६१३ ॥ यथा  
 मे पवित्रक्षेत्र, सर्वेऽस्मी वासकोपमाः । एकरूपस्य मूर्त्यांशः, सपत्ना विविधा भवाः ॥ ६१४ ॥ तत्र ससारिजीवोऽहमेकरूपोऽपि भावः ।  
 संसारे नादृक्कारे, नाताकरीर्धनादिषः ॥ ६१५ ॥ घरेनमपि चोष्णता, विवेकस्ये न जायते । ससारचारकाचकाचवः किं करवाभद्वै ?  
 ॥ ६१६ ॥ किं च—नागएभ्यन्तच्छाभि, यानि ते देवेषु सूचिताः । यत्नान्तरान्तरादेभ्यश्चासां भावस्य कल्पकाः ॥ ६१७ ॥ प्रत्येकं त-  
 द्रुपा विन्मा, विवाहः स च घाटयः । यन्मासी मातरो याम्, मृत्युरन्यथं विवेचिताः ॥ ६१८ ॥ वसिष्ठ सर्वमाकर्ष्य, न भुव्या यद्वि बालिके ! ।  
 इत्तं पापाभ्यमूषावस्तवे किं विवेचयाम् ? ॥ ६१९ ॥ प्रियविशेषकम् । यथा—किं न स्यसि वन्मुषे !, वन्मपि कोद्वत्सय । प्रव्रज्यां  
 प्रसिपनाऽसि, निर्मलाचारं सन्निधौ ॥ ६२० ॥ कृत्वा वपस्वतः सर्वे, प्राप्ताऽसि सुखमालिकाम् । भवचक्रे पुनर्भान्तिता, पुनरत्र समनावा  
 ॥ ६२१ ॥ किं च—सुवेगार्थं ब्रह्मकाष्ठ, सन्मन्मर्सेनवृषभमिम् । आस्यतानां यथा कृत्वा, जितरातीनां सुदुःखितयः ॥ ६२२ ॥ उपार्थपुत्र  
 कनर्व, यथाऽहमदिगो ममे । एतावन्त्य पुनः काष्ठं, किं त्वया वत्त वीक्षितम् ? ॥ ६२३ ॥ भुवम् । यथा—चतुर्दशापि विक्वाय, पूर्वोपि यद्वं  
 गव । भूयोऽभ्यन्तकथावौ, भवगोचरगोपयः ॥ ६२४ ॥ सर्वपाकर्म्यं संजाता, किं न चित्ते ज्ञमस्तस्मिन् ? । तावदेऽप्यापि येनेत्य,  
 निःसंवेगोऽहं कस्यस्ये ॥ ६२५ ॥ भुवम् । भवेद्वि सुखमवोदेन, पूर्वं वन्मामकं बधः । विचारस्य निज चित्ते, समाचार्यं पुनः पुनः ॥ ६२६ ॥  
 मा मुञ्च सारं भुव्यस्य, मा विजम्बस्य बालिके ! । येन संपद्यते सर्वः, सफलो मे परिभवाः ॥ ६२७ ॥ एष च ब्रह्मि वद्वानुमुत्तरयात्रे स  
 मागवमूर्च्छोऽसौ विपश्चिषः पौण्डरीका, किमेवमिति संयाता सर्वभ्रमा परिपत्, समाकुलीभूतः भीगर्मयन्त्रः, हा पुत्र किमिव किमिवमिति

बन्धी वरस्त्रिणा कमस्त्रिनी समान्यासितोऽसौ बाभुधानेन, यतः प्रोक्तुञ्जलोचनः । स पितरं प्रत्याह—तावानेनाजुमुन्वरराशेन वैश्विकं सस्क-  
 ररूप धारयताऽत्यन्तविरहमिवात्मभग्नगमास्मात् वद्वानमनारपूर्वमासीत्, यतो ममाशुभ्यमानस्य संजातस्यैव विकल्पः यथाऽनया प्रज्ञा  
 विशालया महाभद्रया मगावत् । सार्धं विशार्यैव सुभाषार्धं मोक्षे, पावताऽपुनेमा मुकलितामनुश्लिष्यमाणासाकर्षयतो मे संजातः कश्चिद्  
 नाकमेवः प्रसोदः वद्वधेन संप्रमेय वैतन्धनिःसह्यता यतः प्रादुर्भूत मे व्यासिधरण अूषपूर्वोऽहमस्य कुकभरो नाम वयस्यकः भुवो मया  
 वरा निर्मलधूरिणा निदेषमानोऽस्य भवप्रपञ्चः यतः स एवायमनेनेत्यमास्यात् इति श्रुतिवो मेऽपुना सन्नेह इति, विरक्त च मे भवजन-  
 रकाश्चिच्च वतोऽपुजानीव यूय येनाहमनेनेव सह शीघ्रां गृह्णामीति, यथाकर्ष्यं प्रकसिवा कमलिनी, श्रीगर्भराजेनोक्त—वैशि ! मा रोधीः,  
 यतः—सप्तसूरिषु पद्माय, पौण्डरीको मरोचमः । जातस्ते भावुकोऽप्यहय, सुदयर्मप्रसाधकः ॥ ६९८ ॥ वस्त्रास्य धारणं मुक्तमावयोः  
 किं तु मुक्त्यते । अतुमन्ननमेवास्य, निर्मिथ्यशेहसूचकम् ॥ ६९९ ॥ यथाहि—नाकमेतत्कुरुते यर्ममेव भोगमुक्तोचितः । यतः किं मुक्त्यते  
 स्यादुभावयोर्मैवचारके ? ॥ ६९० ॥ यतः कमलिनी प्राह, हर्षगद्गदया गिरा । नाथ नाथ महाराज !, प्रसिमावसिधं मम ॥ ६९१ ॥ य-  
 तोऽपुजाय य पुत्र, यावद्यौ कृतनिश्चयो । प्रजन्याप्रहणे आवी, सत्य देवीनरेभरी ॥ ६९२ ॥ तावद्यौविवात्यर्थमनुमुन्वरमाविवैः । सप्तं  
 भना च वद्विष्य, पौण्डरीकाक्षिचेष्टिणम् ॥ ६९३ ॥ तासुद्विष्य महाभद्रां, प्रवद्याञ्जलिषुपुरा । सा रामपुत्री संवेगास्तज्जुकोशमवोषव  
 ॥ ६९४ ॥ प्रितिशिर्षिषेपक । निवेद्य महाभागो !, किं मया पापया कृतम् । पुरा शुद्धरिषं येन, आवाऽहमियमीदृशी ? ॥ ६९५ ॥ विश्वावसर्वं  
 माभार्यो, भन्योऽय राजधारकः । सज्जातः क्षणमाघेन, प्रसन्नमवपादपि ॥ ६९६ ॥ मया पुनरय साधान्मानेवोद्विष्य सावदम् । एव  
 निवेद्यतनुर्देमोभामातः सविस्तरम् ॥ ६९७ ॥ यथापि मन्त्रभाषायाऽहं, बोद्धुकामापि चेतसा । सृष्टं पचनमाचार्य, न शुभ्ये पशुसन्निभा

ममप्रपञ्च मेऽनन्त, समस्त ते सुकृताभिर्ये ॥ ६११ ॥ किं न शुद्धस्त्वया सोऽय, किं ना नैवावधारितः । अनेन कीर्त्यमानेऽपि, यत्र ह्य-  
न्येष सिधसि ॥ ६१२ ॥ विन्मासेचाशुना धातेः, यत्र नोपविधितस्या । मया संसारविद्यारः, स एव प्रतिपादित ॥ ६१३ ॥ यथा  
मे पञ्चिकस्त्रे, सर्वेऽप्यी वासकोपमाः । पञ्चरूपस्य भूषांसाः, सपन्ना विविधा मयाः ॥ ६१४ ॥ यथाः ससारित्रीषोऽष्टमेऽङ्गसोऽपि भावत ।  
संसारो नाटकाकारे, मानाकारिर्निनादितः ॥ ६१५ ॥ यदेनमपि चेष्टुरसा, निर्देहस्ते न जायते । ससारचारकावकावतः किं कृतवान्दे ॥  
॥ ६१६ ॥ किं न—नारायणन्तरङ्गाणि, यानि ये देवु सृष्टिवाः । एवमानस्त्वमहादेव्यस्मात्तां या वृथा कृत्यकाः ॥ ६१७ ॥ प्रत्येकं य-  
दुवा विद्या, विद्यया स न चारमः । यथाही भावरो व्याप्त, स्फुल्लस्पर्धं निवेदिताः ॥ ६१८ ॥ वसिदं सर्वमाकर्ष्य, न शुद्धा यस्मिं धात्तिके ।  
इत्य पापायमूलायान्वयस्ते किं निवेद्यताम् ॥ ६१९ ॥ विमिर्षिषेपकम् । यथा—किं न सप्तसि यन्मुनेः, यन्ममि स्नेहवत्परा । प्रमत्त्या  
प्रतिपन्नाऽसि, निर्मकाचार्यसन्निधौ ॥ ६२० ॥ कृत्वा यपकतः स्वर्गो, प्राप्ताऽसि सुखमाश्रितकाम् । मन्थके पुनर्भान्त्वा, पुनरत्र समनतावा  
॥ ६२१ ॥ किं न—संदेगार्थं यथाक्याव, सन्मन्थकैर्नृपणीम् । आकाशनां यथा कृत्वा, विनावीनां सुदुःखितः ॥ ६२२ ॥ अपार्थमुद्र-  
कान्तं, क्वाऽऽनदितो मये । एतावन्तं पुनः काकं, किं त्वया वक्ष्य वीक्षितम् ॥ ६२३ ॥ शुभम् । यथा—बहुर्वयापि विमया, पूर्वोक्ति यद्व-  
राव । नृपोऽप्यनन्तकामनी, मन्थगेयरूपोपत ॥ ६२४ ॥ यद्व्याकृत्यं सन्नावा, किं न विद्ये जलकृतिः ॥ ६२५ ॥ वाक्केऽद्यापि येनेत्य,  
विःसंशेषेऽप्यस्ते ॥ ६२६ ॥ शुभम् । अनेनैव सार्वभौमेन, पूर्वं यथासकं वक्ष्यः । विचारय सिद्धे पितृ, सभाचार्य पुनः पुनः ॥ ६२६ ॥  
मा शुभ सारं शुभस्य, मा विस्मयस्य धात्तिके । येन संपद्यते सर्वः, सप्तको मे परिश्रमः ॥ ६२७ ॥ एव न ब्रह्मि वृत्तामुन्तरायमे स  
यागावमूर्च्छोऽप्यौ निपतितः पीडयतीकः, किमेवमिति संज्ञाया ससाधना परिपत, सभाशुकीभूतः भीमार्थपात्रः, हा पुन किमिदं किमिवमिति

बहन्ती पटसिवा कमलिनी समाम्नासिधोऽपी वायुर्वातेन, यतः प्रोत्सृज्यते जनः स पितरं प्रत्याह—वातानेनानुसृत्वरया येन वीक्य पस्क-  
 ररूप पारमठाऽस्मत्सन्निवृत्तिविरामभङ्गणमाक्यात वनागमनात्पूर्वमासीत्, यतो ममायुभ्यमानस्य संजातकदा विकल्पः यथाऽनया प्रकान-  
 विज्ञाक्या महाभद्रया भगवत्या सार्षं शिष्यार्थेन समानार्थं मोक्ष्ये, भावताऽयुनेमां सुलसिधामनुशिष्यमाणाभ्यर्क्ययतो मे संजातः कश्चिद्  
 नाक्येभ्यः प्रमोहः वद्वयेन संयमेयं शैल्यभिः सह सा यतः प्रादुर्भूतं मे जातिकरणं गृहपूर्वोऽहमस्य कुलधरो नाम जयसकः सुतो मया  
 वदा निर्मकसूरिणा निवेद्यमानोऽस्य भवप्रपञ्चः यतः स एवाक्यमनेनेत्यमाक्यात इति श्रुतियो मेऽयुना सन्नेह इति, विरक्त च मे भवजा  
 रकाच्चिच यतोऽयुजानीत दूरं देनाहमनेनेव सह दीर्घां गृह्णामीति, यदाकर्ण्य प्रवसिवा कमलिनी, भीगर्मराब्धेनोक्त—देवि । मा रोदीः,  
 यतः—स्वप्रसूचित द्वाचं, पीण्डटीको नरोचमः । जातस्ते मातुकोऽग्रदय, सुदयमर्मप्रसाधकः ॥ ६२८ ॥ वज्रास्य धारणं मुक्तमावयोः  
 किं तु पुन्यते । अनुप्रजननेवास्त्य, निर्मिष्यज्जेहसूचकम् ॥ ६२९ ॥ सयाहि—माक्येच्छुरते धर्मेमेव मोगसुकोच्चिचः । यतः किं पुन्यते  
 स्माद्युभावयोर्महत्कारके ? ॥ ६३० ॥ यतः कमलिनी प्राह, इयं गद्वया गिया । नाह चाह महाराज !, प्रसिमावसिद्धं मम ॥ ६३१ ॥ स  
 योऽनुक्याय स पुत्रं, यावयौ कुचसिखयो । प्रवक्ष्यामह्ये जातौ, स्त्रयं देवीनरेभ्यो ॥ ६३२ ॥ तावद्यैर्द्राविवात्यर्थमनुसृत्वरमापिदैः । सर्व  
 भ्रमा च वद्विष्य, पीण्डटीकासिचोष्ठियम् ॥ ६३३ ॥ वायुद्विरय महाभद्रा, प्रवक्ष्यामहसिच पुत्र । सा राजपुत्री संवेगात्सायुज्योयमबोधव  
 ॥ ६३४ ॥ त्रिमिर्विशेषक । निवेद्य महाभयो !, किं मया पापया कृतम् । पुरा दुष्परिच येन, जाताऽहमित्यमीदृशी ? ॥ ६३५ ॥ विज्ञातसर्व  
 माकार्यो, धन्योऽयं राजपारकः । सजातः सुणसाधेय, प्रसन्नभयपावपि ॥ ६३६ ॥ मया पुनरयं साक्षान्माभेवोद्विष्य साहसम् । एवं  
 निवेद्यत्पुन्यैर्महाभागाः सविस्तरम् ॥ ६३७ ॥ यथापि सन्दृग्मात्साऽह, वोत्सुकामापि येवसा । स्फुटं षचनमाचार्यं, न पुन्ये पद्मसन्निभमा

मयप्रपञ्चं भेदनाय, समस्त ये दृष्टान्तैः ॥ ६११ ॥ किं न शुद्धस्त्वया सोऽय, किं वा नैवावधारितः । येनैव कीदृशमानेऽपि, तत्र द्रु-  
 ष्येव स्थितसि । ॥ ६१२ ॥ विन्नासेनाशुभा बाधे, तत्र बोधवित्तितसया । मया संसारविधाय, स एव प्रक्षिपामिह ॥ ६१३ ॥ यथा  
 मे पथिकश्रेष्ठ, सर्वेऽस्मीं वासकोपमाः । एकरूपका भूत्वांसः, सपत्ना विविधा भयाः ॥ ६१४ ॥ तत्रः ससारिजीवोऽभेकरूपोऽपि भावतः ।  
 ससारो नाटककारे, नाताकारैर्विनादितः ॥ ६१५ ॥ सर्वेनमसि येष्टुत्वा, निर्वेदस्ते न जायते । ससारचारकावकावकावतः किं करवामदे ?  
 ॥ ६१६ ॥ किं च—नागराण्यस्तच्छाणि, यानि ये सेषु सुस्थिताः । राजानस्तन्महारेण्यधार्सा भावस कल्पकाः ॥ ६१७ ॥ प्रत्येक व-  
 द्दुषा विष्वा, विवाहः स च दाहसः । वजाघौ मातये पात्र, क्लृप्तत्वं निवेष्टिताः ॥ ६१८ ॥ वसिष्ठं सवमाकर्ण्य, न शुद्धा यन्नि वास्तिके ।  
 इत्य पापापमूलाभासवत्सं किं निवेद्यताम् ? ॥ ६१९ ॥ त्रिमूर्तिर्विषेयकम् । तत्रा—किं न स्मरसि वन्मुग्धे, यन्मयि स्नेहवत्परा । प्रव्रज्यां  
 प्रक्षिपभाऽसि, निर्मलाचार्यसन्निधौ ॥ ६२० ॥ कृत्वा वपस्वतः सर्वे, प्राप्ताऽसि सुखमास्तिकाम् । मन्त्रके पुनर्भास्वा, पुनरत्र समागता  
 ॥ ६२१ ॥ किं च—संवेगार्थं यथाकामार्थं, सन्मन्त्रार्थं न रूपपीम् । आश्रयता तया कृत्वा, विनाशनीनां सुदुःखितः ॥ ६२२ ॥ अपार्थमुद्र-  
 कावर्त, यथाऽस्मदिवो मय । एतावन्त पुनः काक, किं त्वया सप्त वीक्षितम् ? ॥ ६२३ ॥ युगम् । तत्रा—चतुर्वर्षाणि विद्याय, पूर्वोपि पद्व-  
 रात । मूषोऽप्यन्तश्चकावर्त, मङ्गोचरवोपयः ॥ ६२४ ॥ तदप्याकर्ण्य संजाता, किं न स्थिते यमकृत्तिः ? । तावकेऽप्यापि येनेत्सं,  
 सिःसंवेगेव कल्पसे ॥ ६२५ ॥ युगम् । अवेदि सस्मरणेन, पूर्वं सन्मासक भयः । विचारय त्रिमे स्थिते, सभाचार्य पुनः पुनः ॥ ६२६ ॥  
 मा शुभ सारं शुष्मस्य, मा विह्वलस्य वाञ्छिके । येन संपद्यते सर्वे, सक्त्वो मे परिभ्रमः ॥ ६२७ ॥ एवं च नवसि तत्रासुसुन्दररागे स  
 भागतमूर्च्छोऽसौ निपठितः पौण्डरीकः, किमेतद्विदिति सभाया ससंभ्रमा परिपद्य, समालुलीनूयः भीष्मार्मराजः, हा पुन किमिदं किमिदमिति



वदन्ती वरस्त्रिणा कमलिनी समाध्यासिषोऽसी वायुवानेन, यतः प्रोत्पन्नलोचनः स पित्रं प्रकाह—सावानेनानुसुन्दरराजेन वैकिमं वरक-  
 ररूप भारयदाऽत्यन्तविषदमिषारमभयप्रमाक्याव यथागमनात्पूर्वमासीत्, यतो ममाणुभ्यमानस्य संक्रावक्ष्वा विक्रस्यः मयाऽनया प्रमा-  
 त्रिषाक्या महाभद्रया भयवत्या सार्षं शिष्यार्थं समार्षार्थं मोक्ष्ये, यावदाऽणुनेमां सुखविद्यामनुशिष्यमाणाभ्यामार्कण्ययो मे संजयः कश्चिद्  
 नास्मेयः प्रमोदः वदथेन संपन्नं येनन्यमिःसहृदा यतः प्रादुर्भूत मे जासिस्वरूपं भूतपूर्वोऽस्मस्य कुलपते नाम वयस्कः श्रुतो मया  
 यदा निर्मलसूरिणा निवेद्यमानोऽस्य भयप्रपञ्चः यतः स एवायमनेनेत्यभ्याक्याव इति श्रुतिवो मेऽणुना सन्नेह इति, निरक्त च मे भयथा  
 रकाचिच्च यतोऽनुवातीव मूर्धं वेनाहमनेनेव सह दीक्षां यादामीहि, यदाकर्ण्यं प्रकशिषा कमलिनी, भीगर्मपद्मेनोक्त—वेदि ! मा रोषीः,  
 मयः—स्वप्रसूचिव एवाह, पौण्डरीको नरोत्तमः । जायस्ते आयुकोऽवश्यं, छुद्रधर्मप्रसाधकः ॥ ६३८ ॥ यन्नास्य दारपं जुक्तभावयोः  
 किं तु पुन्यते । भानुप्रजननेवाह्य, निर्मिष्यकोहसूचकम् ॥ ६३९ ॥ यथाहि—नाक्येच्छुरते धर्ममेव भोगसुकोचिवः । यतः किं पुन्यते  
 स्वाणुभावयोर्मेवभारके ? ॥ ६३० ॥ यतः कमलिनी प्राह, हर्षागद्वया गिरा । चार चार मद्यान्त !, प्रसिमावसिधं मम ॥ ६३१ ॥ य  
 दोऽनुक्ताव च पुनः यावयौ क्वचमिष्ययौ । प्रप्रक्यामहये जायौ, स्मर्यं देवीनरेचरौ ॥ ६३२ ॥ सावयैर्द्राविषतत्त्वधर्मसुसुन्दरमायिदैः । ससं  
 भमा च वदीर्य, पौण्डरीकामिषेष्टिषम् ॥ ६३३ ॥ दाशुदिर्य महाभद्रा, प्रवदाचक्षिष्यपुण । सा राअपुत्री संवेगात्सानुकोधमबोचव  
 ॥ ६३४ ॥ त्रिमिषिषेयक । निवेद्य महाभानो !, किं मया पापया कृतम् । पुरा पुनरित येन, जायाऽहमियमीदृसी ? ॥ ६३५ ॥ विस्त्रावसर्व  
 भाषार्थो, धनयोऽय राजदारकः । सखायः क्षणमात्रेण, प्रसन्नभवत्पावपि ॥ ६३६ ॥ मया पुनरय साधान्नामेवोदिर्य सादरम् । एव  
 निवेद्यत्पुनैर्महाभागः सखिस्वरम् ॥ ६३७ ॥ यथापि मन्दमान्याऽह, बोधुक्तमापि येवसा । सुष्ठं वचनभारार्थं, न पुन्ये पल्लसकिमा

॥ ६३८ ॥ अन्वह—एवादेव परिच्छेदः, संज्ञातो ज्ञानपूर्वकः । अथाणामपि यन्मानामनुसुम्भरवत्प्रवृत्तः ॥ ६३९ ॥ अहं पुनर्न ज्ञाने  
 उन्न, किं कटोन्मस्पर्शविराट् । अस्या मामेवमजाप, स्पष्टसद्बोधवर्जिता ॥ ६४० ॥ वसिष्ठं मे माहात्म्ये, स्वयं शुक्ला सदागताम् ।  
 यद्वा क्वचर निमोहं, कस्या पापकर्म क्षुत्त्रिभयम् । ॥ ६४१ ॥ एतस्यां तादृशी बीजम्, बाष्पमुपविशोचनाम् । एतमुन्मी कृपावेक्षारप्रवीण्य  
 सुम्भृतः ॥ ६४२ ॥ एतच्च न तेन एवा—मुनादे । मुकटिरेव वसिष्ठव्याक्तिः स्वशुद्ध्यतिवर्जिताया एवोद्भवेव एते निवेद्यमानि अहं भगवत्काण्ड  
 प्रबोक्तानि प्रभासितया, मुकटिचबोध—अनुमहो मे, निवेद्यत्कार्यः, अमुमुम्भरेणोक्त—अपि तावद्बुधवारयेन सता मया स्वार्थं मदन्त  
 एतौ सती सत्तावदेष्टव्या मन्त्रविद्याऽसि त्वं अन्वहः किंवाक्यप्रः कृतानि भूतिवत्प्रवृत्तानि, केवलं प्रवृत्ता एता ये दुर्बुद्धिः—यदुत्त यद्द  
 कर्तव्य एवेव किमर्था किमनेन बहुला योहेन, एतो न मुक्तापि वसेत् क्षाप्यायकोकादृकः न क्षितिवा वाचना न प्रक्षिप्ताया प्रच्छन्ता मा  
 निवत्ता यथावर्तना नादुतिवा स्वबाह्युपेक्षा मायुक्तीक्ष्णिता सर्वदेक्षता, किं वदि, प्रक्षिप्तासिवा ये प्रत्यक्ता अमीहा क्षान्त्यायोहेनोन्न मौनत्र  
 वचनसिवा न च संज्ञावच्छेद यीप्रोद्भिन्निवेष्टा एतो न सिद्धिवा ज्ञानवर्ता प्रत्यक्तीक्ष्णा न कृतमान्यरायिक न अनिवक्तुप्रपातः मावसित-  
 कृतद्वेषा नावेतिवच्छाभिन्नः न संप्राप्तिवा माहात्म्यता, किं नु तथा कुरुक्ष्मा देन क्षाप्योचितमेव तथा च प्रमादपरवता कृता मन्त्रता  
 एतावती सुवाक्षातना, एताः समुपार्श्वमिवमीदृश कर्म यथाभावात्सङ्क्षोभकाल अन्वयाऽसि अथवाक्ये यथावाऽसि वैश्वसिवा त्व एतदुपदि-  
 शसि, किं च—मुकटिरेव । पूर्वमन्वाभ्यासादेव प्रापन्ताः, प्राणिनां भूयांसोऽनुपर्वन्त्ये आयाः, एयादि—मया एता त्व मदन्तमच्छती  
 सती पुनरप्येतिपी संज्ञाया एवेष्टानि, अथ एव सक्तीभिर्नान्यार्थमिव एतया माहात्म्या त्वमाकारिवा, वारिक सिक्त्येव ते प्रत्ययाः, मुकटि-  
 वयोक्त—मार्तः । किं ज्ञान मन्त्रवत्त्वे न भिन्नसि, केवलमाहमत्र अन्वमानया वैश्वमपि कट्यमाते आसक्त्येवमेव बीजिकवत्तमप्युत्तिरेव सि

धामीसि बन्धी सङ्कमुष्णकलिकरमिष तपनसलिलविन्दुवर्ष मोक्ष प्रवृत्ता, यतोऽभिहितं साऽनुसुन्दररत्नेन—एकपुत्रि । मुञ्च विपार्थं  
 कृष्णप्राप्य वेऽनुना वत्कर्म कृष्य सदागमे भगवसि भक्तिं गच्छेत्तमं सारथ, एतद्वाराधनमूक हि देहिनां वत्सलान्, भयमेव भजानतमोदकने  
 मारकरभूषो भगवान्, बन्धासि एव पाऽस्य पादमूल भासा, यतोऽमीभिर्बन्धनैः पवनीरिव सप्तुक्षिपयीप्रसंगेगानका सा मुकल्लिषा सदागमोऽ-  
 यमिष्ठिबुद्ध्या पल्लिषा भगवत्समन्वमप्रसूरिचरणयोः, अभिहितं च—अज्ञानपङ्कमभाषा, अगमिष सदागमः । त्वमेव मन्त्रभाषाया,  
 समोच्चारकवत्सकाः ॥ ६४३ ॥ सारथे त्वं यद्वासात्, त्वं स्वामी त्वं च मे पिता । सद्येय विमको नाब, किमसां किङ्करो वनः ॥ ६४४ ॥  
 यतो मद्वाप्रभावतया सदागममनुमानका गुरुतया सवेगस्य सारकथया हृदयस्य कल्याणहेतुतया भगवत्सन्निधानतया प्रत्यासन्नतया मोक्षस्य  
 विचष्टिव भूरि कर्मकाङ्क्षं, पादपल्लिषाया एव सत्ताव आसिचरण, दृष्टः साध्यासिब भवतमज्जर्वाधिको वृत्तान्तः, यतः समुच्छसिषः प्रमोदः,  
 समुत्थानाय च निपल्लिषासुसुन्दरचरणयोः, सेनोक्त—मुकल्लिते । किमेतत्, सा प्राह—मङ्गावतः प्रसादान्भवसि वत्संपन्नमनुना मे, यतः  
 सत्ताव आविस्तरण सपञ्चकावकवचनमिर्षया विरत ससारचारकाविष, यदनुगृहीताऽह मन्त्रभाषाया भगवता भवता च, अनुसुन्दरे  
 पोक्त—भार्ये । सप्तकमनुगृह्णातोवाय भगवान् । नास्मिन्न सन्नेहः, यथाहि—आह भगवताऽनेन, नरक प्रसिं गामुकः । भावचौर्ध्वेण बन्धो  
 ऽसि, साध्यादेवं विमोक्षितः ॥ ६४५ ॥ पालिषा अपि दे सत्ताव, समासाद्य सदागमम् । एन मर्छि प्रकुर्वन्ति, मुञ्चन्ते वे न सदायः  
 ॥ ६४६ ॥ अन्त्यध—कृष्येण किञ्च नुवृत्ताऽह, मन्त्रभाषेसि चिन्तया । न जायमानता कार्या, स्वया भवे । स्वगोचरे ॥ ६४७ ॥ यतो  
 ऽहमसि वैः पूर्वमकलङ्क्यामिभिषदा । न बोधितो यदाऽऽसीन्मे, प्रवृत्त भूरिपाठकम् ॥ ६४८ ॥ स्वयोगपर्व पुनः प्राप्य, विहीने पापक  
 र्मणि । त्वया कृष्यवरेणाह, प्रवृत्तो वीनकासने ॥ ६४९ ॥ यदा वत्स विहीयेत, पाप कालासिहेतुभिः । धीवक्त्रा प्रमुष्येत, पुरवः

॥ ६१८ ॥ अन्तर—यथादेव परिच्छेदा, संज्ञायां ब्रह्मपूर्वकः । अथात्रात्मसि सत्यानामनुसुम्भरब्रह्मवतः ॥ ६१९ ॥ अहं पुनर्न जाने  
 उत्र, किं करोम्यन्महत्किञ्च । इत्या भासयकामरा, सप्तसद्विषयवर्जिता ॥ ६२० ॥ एषिह मे महाभागे, स्वयं शुद्धं सदागमम् ।  
 यथा कवच निरोधं, कवच पापकम दूषितमम् ॥ ६२१ ॥ एतस्यां घाटसी बीह्व, वाप्युपविजोषमाम् । एतदुपवी कथावेद्यादधीत्य  
 सुम्भत् ॥ ६२२ ॥ इच्छ न तेन यथा—गुणदे । सुकलिते एहि यथाहि स्वयुष्मरितविक्रियाया एवोद्भवेन एते निरोधयामि अत्र अगदलाऽत्र  
 मयोक्ते प्रकाशितया, सुकलितयोक्त—अनुभवे मे, निरोधयत्तार्थः, अमुमुम्भरेणोक्त—अथि एतदुपव्यथारमेन सदा मया सार्धं मदनम  
 करो सती संज्ञावैद्यन्या मप्रसिद्धाऽसि स अन्तरका क्रियाकल्पयः कृतानि भूतिवप्यभारयामि, केवल प्रयुजा एता ये दुष्टुदिः—यदुष्ट परम  
 कर्तव्यं एतेव किञ्चता किमनेन बहुला ऐकेन ?, एते न सुखायितरते स्वान्वापकोकाद्वतः न एषिया वाचता ए मसिभावा प्रकृतना न-  
 सिमता परमवैवा नादुष्टिया स्वनाऽनुप्रेया मसुसीष्टिया मयैवेचना, किं एहि ?, प्रसिमासिता ये मयका अमीष्टा स्वाम्यायोद्गोनेन मौनम  
 एवार्तिवा न न सन्नायकान् पीप्रोऽभिनिषेधा एते न विष्टिया स्नाववर्ता मलमीकता न कृतमान्तराधिक न अनितकदुपपावः माजरित-  
 स्वावदेवः तमैवितवकाभिन्नः न सधामिवा मद्रासावता, किं नु एता कुतुम्भा तेन ब्रावक्षैवित्तेन एता न प्रमादपरवता कृता मवदना  
 कपीवपी कृतकालता, एताः ससुधामिषमिषमीहसं कर्म एतमभारसङ्क्षेपकाळ भान्ताऽसि मवचकके व्यावाऽसि वैवविषा त्वं अहदुष्टि  
 सिष्टि, किं न—सुकलिते । पूर्वमवान्यासादेव मायकाः, माणिनां भूयांसोऽनुवर्तन्ते आयाः, एतादि—यथा एता स मदनमखरी  
 सती दुश्चरदेषिपी संज्ञाया एवेष्टासि, अत्र पर स्वकीभिर्ब्रह्मचर्यनिरासया ब्राह्मणी स्वमाकारिता, एहि किञ्चिद्वेव ये मदनया ?, सुकलित  
 एयोक्त—मार्त । किं नान् मवद्वचने न मिकष्टि ?, केवकमाहमत्र मन्मथाया वैवमसि कल्पममाने आसकरोपे कोसिकवचमः एहिदैव सि

सुमन्त्रकामगवसेनयोऽयं भुत्वा योपातिरेकः प्राप्नुर्वो मावतोऽपि चरणपरिणामः याचिष्यः सूरिः प्रप्रभ्यां, वपवृद्धिषौ गुरुषा, —वतः समु-  
 हसतोपहृद्गुत्सवसुम्बरम् । निपतरेववहापशुपोतिघमिगमरम् ॥ ६५८ ॥ विहसपूर्वमिषोवससुम्भ्यमुवलोवरम् । वनन्वभूरिविचारम्  
 व्यासस्कारवन्तुम् ॥ ६५९ ॥ दानसन्मानसद्गानमिषानकरणोपायैः । भूरिमन्त्रैः समपूर्णं, सुनिवृन्तैश्च जाचमिः ॥ ६६० ॥ यथाऽसुसु-  
 न्तरदीनां, सदीनामद्वयपथे । क्षणमात्रेण संघातं, सनोतन्वतकान्तम् ॥ ६६१ ॥ अमुर्मिः कञ्चपकम् । वतो मगवसेन, श्रीगर्भेण  
 व भुम्भुका । स्वीय पुरंदरायैव, रात्र्य पात्यववाप्यैवम् ॥ ६६२ ॥ वतो निर्दलं मिःशेषकर्मक्यं सूरिनिष्ठा । दीक्षितानि क्षणेनैव,  
 सर्वोपि विधिपूर्वकम् ॥ ६६३ ॥ अत्र संवेगमुद्धर्तमसुतास्त्वसस्मिन्मा । सद्यर्मवेक्षताऽकारि, गुणमिः कञ्चया त्रिण ॥ ६६४ ॥ वदन्ते दे-  
 वस्योपाः, क्षेपकोजाः कवचन । वयावर्षं गताः स्नानं, देवाश्च इति भाविताः ॥ ६६५ ॥ प्रक्षिपाम्य महाभद्रासहिवा शुचिमिक्षया ।  
 साध्यः सर्वो निजस्नानमुपनिदय पयोषितम् ॥ ६६६ ॥ अयास्मिन्नोऽपि वपुष्ठा, गुणैः भुत्वा च देवताम् । सकोऽहं नेति मत्तेव, गतो  
 दीपान्तरे वहा ॥ ६६७ ॥ कृतावदयककर्तव्ये, साध्यावध्यान्तरि । वतः साधुगणे आवे, प्रयोधे चासिद्धिद्वये ॥ ६६८ ॥ भवन्त्वपरि-  
 सुष्टात्मा, कृत्स्नवत्वाऽऽत्मना । विविधे ध्यानमापन्नो, रात्रिर्पितुसुन्दरः ॥ ६६९ ॥ गुणम् ॥ वतो विष्णुध्यानानिमित्तैरवामिः संप्राप्त्योपक्रम-  
 नेषी सपन्नः क्रमेणासाधुपक्रान्तमोहः, मगवदुपदेसाच्च विद्वत्प सस्मिन्नेव क्षणे वधिर्योपकाक स्थिताः समाधिकारिणस्त्वद्व्यप्ये सुतयः,  
 अत्रान्तरे समाप्तमागुष्क, वतो विमुक्ष्य देहपथरं गतः सर्वार्थसिद्धिस्थितान्, सत्कारकमर्थस्यस्तमारोपमो महर्द्धिर्देवः, प्रभाते विज्जाय वस-  
 नुमुन्मत्तनिष्पत्तिर्देवं मीढितवद्गुणविषोऽपि श्रीभगवत्सङ्गः विधिना परित्यक्तं सुमिभिक्षाच्छरीरं कृत्वा नयामरैस्तद्वेषैः । —अथ सद्यर्मव-  
 योषि ममासाविति चिन्तया । पूर्वाभ्यस्यद्वयोदयन्मुपवद्वयमेन च ॥ ६७० ॥ अमुमुन्दरद्वयान्ते, सपथे स्वरया वया । चित्ते सुकल्लिषा

सङ्कारिणाः ॥ ६५० ॥ सुकलितचोक्त—आर्थे ! सत्यमवसिधे, विनाष्टा भेदुना मनस्यभाजना, केवल प्रतिपन्नं मया निमज्जननीजन-  
 कथोर्ध्ववाऽनुप्रायथा प्रप्रभ्यमाभाषि न प्राहं, यत्कथ मविष्यसि !, अनुसुन्दरेषोक्त—आर्थे ! मा भैषीः सभागाद्येव हे जननीजनकी,  
 भगवतरे समुत्तियो बह्वो बलककलः, कोक्तेकायां च प्रतिपद्यैव मनोतन्वने जिनमवने सपरिकटे भगवसेनराजः सह सुमङ्ग  
 छया, एवः प्रथिपक जितेभरमभिवन्ध सूरि साधुवर्ग च कृतामुत्थातप्रथामः सुकलितया प्रथम्य पातुसुन्दरराजमुपविष्टस्तर्मापे,  
 सुमङ्गलारि विद्वित्तिः शेषप्रतिपत्तिर्धिपाय सुकलितालिङ्गनाप्राय मूर्ध्वेक्षे उपविष्टा वदन्तिके, आनन्दमयद् गद्गदगाह—यत्स ! समु  
 स्सुकन्तेन, एव वसंतकालौ । आर्षो राज्यं परिकल्प, तत्समीपमुपागौ ॥ ६५१ ॥ जनकस्ते यत्ति बत्से ! न प्राप्नोति त्वया जिना ।  
 सत्यमतमद्यथा कोद्दोप दन्वद्यते जनः ॥ ६५२ ॥ कठोरद्वयत्वेन, निर्दयत्वेन वा पुनः । त्वया निरन्तरं बत्से !, इया बार्ताऽपि ना-  
 बयोः ॥ ६५३ ॥ सुकलितचोक्त—अन्व ! किं बहुनोक्तेन, मां प्रत्यय मयाक्षिपः । युवयोः स्नेहसद्भावो, नून व्यकीर्तविष्यसि ॥ ६५४ ॥  
 बतः—अहं पुष्पपुष्पावा, प्रप्रभ्यां पारमेयटीम् । अमुनेव प्रदीप्यामि, संसारोच्चारकारिणीम् ॥ ६५५ ॥ एवो यस्मिं युवां भेदय, ब्राह्म  
 नं करिष्यमः । प्रप्रभ्यां च मया सार्व, निर्दिक्तं प्रदीप्यामः ॥ ६५६ ॥ एवो मम सयामीपां, जनातामुपरि द्युटम् । प्रदीवः स्नेहस  
 म्भावो, दीप्यामिप्रो मविष्यसि ॥ ६५७ ॥ त्रिभिर्विधेषुकम् । एतथाकथं भगवसेनतरेन्द्रः सुमङ्गलां प्रकाह—देवि ! इवो बल्लवाऽप्ययो-  
 मुंलान्तः सिद्धिवाऽऽपि एव निकरता सुदृष्टपरमार्थममुना बर्षे कथमन्वद्यदसो बध्नन्विन्यासः !, एवो न भवत्वेपममुककारिणी,  
 साधु चोक्तमतया मुक्तमेवमयोमया सह प्रप्रभ्यं निर्दिष्यकोद्धारसूचकसिद्धि विक्षेपः प्रासकालमावयोः, सुमङ्गलयोक्तं—यथाप्रापयसि  
 देवः, एवो इष्टा सुकलितया पक्षिवा मद्याप्रसाह इति बह्वन्ती प्रयोदधि चरन्त्योः, कथिवमानया संक्षेपसक्योरेतुसुन्दरसिद्धिदान्तः संजातः

सुम्भरेणरडोकनां, वेपायकाकभासिताम् । शिषहृत्तौ पुनकाक, को हृत्तान्तो भविष्यसि ? ॥ ६९० ॥ शुद्धमिच्छ, आकर्म्य—शुद्धीयमा-  
 वदीयस, नकसङ्गस वस भोः । साधोरयुवसारस, सतकात्र मने पुनः ॥ ६९१ ॥ क्षान्तिर्वया न ते मार्गे, समुवासत्यते न ते ।  
 नमुवापीरते वे न, ते प्रकटसिमुक्तते ॥ ६९२ ॥ तव—विद्यानिटीहते यव, स्थितं कीमवया पुरा । सैन्यं नारिजयर्माय, सर्वभाविर्मे  
 सिष्यसि ॥ ६९३ ॥ तवाऽन्याय धृतिनकाभेवाविशिष्यामुक्ताः । मैत्रीप्रमुखितोषेधाविश्रान्तिकठणादयः ॥ ६९४ ॥ पञ्चान्वरद्वसन्मार्थाभिर-  
 हृत्तौ महात्मनः । मुक्तसन्तोहदावित्तो, भविष्यन्ति यथा पुरा ॥ ६९५ ॥ पञ्चसिः कुक्कुम् ॥ ततकावाटस एवमनन्ताभिरमुत्तरम् । पाकयमि  
 किकलुहै, रिपुमुत्तमूकविष्यसि ॥ ६९६ ॥ आरुहः शयकमेध्या, पुनरेव महावकः । नगुरो पालिसंकांतात्, सर्वथा नूर्पविष्यसि ॥ ६९७ ॥  
 संभ्रान्त केवकाकोक, कृत्वा जगद्युमहम् । विषाय न समुद्पात, सर्वयोगाभिरव्य न ॥ ६९८ ॥ अथ पर्यन्तकालेऽस्तौ, क्षेत्रेक्षी भान्य  
 सारिक्यम् । निःशेषं रिपुसङ्गतं, सर्वथा वकविष्यसि ॥ ६९९ ॥ शुभम् । ततो विश्विकन्तोऽस्तौ, संपूर्णो निजवाग्यवैः । संभ्रातो निर्द्वौ पुर्वा,  
 मोक्षयते एवमसत्कम् ॥ ७०० ॥ भक्तान्वाग्यसंज्ञानवीर्यवर्तनपुरिषः । निर्द्वसककावाया, सर्वकालं भविष्यसि ॥ ७०१ ॥ इतश्च तेन  
 सा सज्ज, कुम्भायां भवितव्यता । महातोहवले क्षीणे, तवा शोकं करिष्यसि ॥ ७०२ ॥ कव—शुर्बुद्ध्या वत आदैवमह भक्तननोरधु-  
 महातोहविसैन्ये या, संज्ञाया पक्षपासिनी ॥ ७०३ ॥ समस्तमसि ज्ञानता, न विज्ञावसिद्धं मत्वा । प्रसिद्धं निश्चिते शोके, पद्माक्षैरपि  
 गीयते ॥ ७०४ ॥ किं तव—शुवाभि यथा परित्यज्य, अशुवाणि मियेवते । शुवाणि सस्य नश्यन्ति, अशुर्वं नष्टमेव वा ॥ ७०५ ॥  
 यथा ममासि को दोषो, ह्येवमसि वर्तसी । शुद्धास्येव अन्नो ह्येष, समस्तः स्वप्रयोजने ॥ ७०६ ॥ एवं भिक्षित्वा सा क्षेत्रजनक-  
 र्थेयरावया । द्वित्याऽवभावानो दूष्णी, संक्षिप्य भवितव्यता ॥ ७०७ ॥ तसिद्धं ते समासेन, पौण्डरीकमुने । मया । भानुसुन्दरमास्मान-

साध्वी, क्षितिच्छोकन पीडिता ॥ ६७१ ॥ यथा शोकपानोद्यमं, यथासौ वरसूरा । सर्वथापेक्षं पुरतस्तेषामित्थं प्रमापिता ॥ ६७२ ॥  
 “आर्ये ! न शोचनीयोऽसौ, भगवता वरसूरा । पेक्षेकक्षितमात्रेण, साधिव सत्ययोगतनम् ॥ ६७३ ॥ यथा पापमर्त इत्या, मनुष्यो न  
 “एकं प्रसि । यद्वि गच्छेयमेवात्र, यथा शोच्यो भवोऽप्यौ ॥ ६७४ ॥ या पुमा प्राप्य सर्वम, निर्णय निजकल्पसम् । सद्योर्धसिद्धिं सं  
 “प्राप्ते, मासौ शोककम गोचरा ॥ ६७५ ॥ शोचनीयाः सतामिष्टो, नराः सर्वमनुर्धता । स हि सर्वत्र सद्यो, धर्मोदुःसमरोदिवः ॥ ६७६ ॥  
 “न शोचनीयाः क्षितयेत, यथाः सर्वप्रसात् नरा । स हि संसारकेश्वरि, शिरोरत्नान्धपुरिषः ॥ ६७७ ॥ स एव च पिभेत्सुधैर्मरुणो स-  
 “मुपसिषते । येन नाचरितो धर्मः, परलोकास्तुखावहः ॥ ६७८ ॥ सर्वमप्यप्यधर्मं, यस्तथाप्य प्रतीक्षते । मरत्य वत्स यथासौ, न  
 “मो नि नृ भवेत्सर्वः ॥ ६७९ ॥ ज्ञानवर्धनधारिष्वतपोकपाऽपनाधिनी । आराधना नतुत्कन्धा, यत्स स्वाद्यस्य किं  
 “युतम् ॥ ६८० ॥ ज्ञानव्योत्पादकसेऽत्र, भगवन्तो मुनीवरा । ये क्षात्रविद्या पापीय, यथाः पण्डितसत्सुभा ॥ ६८१ ॥ इत्या  
 “इत्यर्ककर्तव्यो, निबुधो बोद्धुमुन्मत् । यथा स शोचनीयस्य, कर्म सिद्धयवोक्तनः ॥ ६८२ ॥ नि नृ—शिक्षितवाचयवभुत्वा, मु-  
 क्यधर्मस्य भवते । धर्मोपपादां स गान्धारपञ्चमुर्धमिष्यति ॥ ६८३ ॥ नात्रा धाम्नुवसापोऽसौ, पदिनीपीडिततन्वता । भविष्यसि  
 कसद्विदेवदरिद्रि क्षात्रियः ॥ ६८४ ॥ कर्मेश्वरौ नमः प्राप्ता, कलाकौसलकोविदः । विपुलाग्रजनामानमाचार्यं प्राप्य सुन्दरम् ॥ ६८५ ॥  
 संभास्य निवर्तुं पुत्रता, स दीक्षां धारयेद्यदीम् । भविष्यसि विपुलप्राप्ता, चरित्यसि चिरं वरा ॥ ६८६ ॥ यत्रो निर्णय निर्णय, कर्मजातं  
 समाधिना । यत्रप्रपञ्च निर्णय, याकलोच विवाहये ॥ ६८७ ॥ एव च क्षिते—सर्वथा स प्रमोदक, कारणं भव्यदेहिनाम् । आर्ये !  
 न शोचस्तथाप्यकारणं स मर्येयता ॥ ६८८ ॥ यथाज्योते भव्यत्वाद्, पौण्डरीकमहासुनिः । इदं निवेदितं धार्मिकं जाति भव्यत्वात् ॥ ६८९ ॥



पुनरेतद्विज्ञानं, वेदामाकाशमाग्निमा। विष्णुर्वायुः सत्यः, को ब्रह्मन्तो मरिच्यसि ? ॥ ६९० ॥ शुक्रमिन्द्रः, वाक्यं च—गृहीतमान-  
 वदीयस्य, जलसङ्घात एव सोः । सायोरपृथक्सत्तमः, सततान्न भवे तुतः ॥ ६९१ ॥ आनिर्वर्धना च ते भार्ये, सुधुवास्तवते च ते ।  
 जलुवाप्येते वे च, ते जलरसिमुज्ज्वले ॥ ६९२ ॥ एषा—विद्यानिर्दिष्टे यच्च, स्थितं कीमत्तया पुनः । सैव्यं पारिप्रयमार्थं, सर्वमाग्निर्मे-  
 विष्यसि ॥ ६९३ ॥ एषाऽप्याह वृत्तिजज्ञाभेदाविशिष्टासुखाः । मैत्रीमयुर्विद्योपेक्षाविज्ञानिकतयादयः ॥ ६९४ ॥ यत्नान्तराहस्यमन्त्रार्थोभिर-  
 वृत्तौ महत्तमः । सुकसन्तोद्देशादिन्यो, मरिच्यन्ति यथा पुनः ॥ ६९५ ॥ पञ्चमिः कुक्कुम् ॥ एतत्तयाह सत्यमन्त्राहस्यमन्त्रम् । पाकयमि-  
 जिज्ञानुद्देशे, सिद्धुन्मूढविष्यसि ॥ ६९६ ॥ आहवः क्षयकर्मणा, पुनरेव महावजः । बहुते यत्सिद्धिर्वाङ्मात्रं, सर्वथा पूर्वविष्यसि ॥ ६९७ ॥  
 संभाव्य केवलाङ्गोक्तं, कृत्वा जगद्गुणम् । विद्याय च समुद्देश्य, सर्वयोगाधिकृत्य च ॥ ६९८ ॥ यच्च पर्यन्तकावेऽसौ, सैवेष्टी प्राप्य  
 सत्किमाह । निश्चयेन सिद्धवद्वाच्य, सर्वथा वृत्तिविष्यसि ॥ ६९९ ॥ गुणम् । एते विद्विष्यन्तोऽसौ, संपूर्णो निश्चयान्तर्देव । संभावो निर्द्वयो पुनः,  
 मेषमते यत्नसत्तकम् ॥ ७०० ॥ अतन्वातन्वसंज्ञातवीर्यसंपूरितः । निर्द्वयसत्तकाभावा, सर्वकाक मरिच्यसि ॥ ७०१ ॥ इत्यत्र तेन  
 सा तज्जग, कुमार्या मरिच्यन्ता । महासोद्देशे क्षीणे, एषा शोकं करिष्यसि ॥ ७०२ ॥ कथं ?—सुदुर्लभा यत् ज्ञातव्यमहं भग्नमनोरथ ।  
 महासोद्देशिसैव्यं वा, संज्ञाया पञ्चपाणिनी ॥ ७०३ ॥ समस्तस्यपि ज्ञातत्वा, न विज्ञासमिद्धं मया । मरिच्यं निश्चिद्ये योक्ते, यद्वाक्येऽपि  
 गीयते ॥ ७०४ ॥ निं एत—धुवाणि यः परित्यज्य, अमुवाणि निधेयते । धुवाणि सत्यं माययन्ति, अमुर्धं नष्टमेव ज्ञा॥ ७०५ ॥  
 यथा समानि को दोषो ? इत्येकमपि वसिमी । मुखात्येव अन्तो द्वेव, समस्तः स्वप्रयोजने ॥ ७०६ ॥ एवं निश्चिद्य सा शेषमनका-  
 र्थमप्यथा । विद्याऽप्यभावनो दूष्णी, सविद्या मरिच्यन्ता ॥ ७०७ ॥ एषिव ते समासेन, यौज्जटीकमुने । मया । आनुमुन्तरमास्या-

वसन्तवर्षं विवेक्षितम् ॥ ७०८ ॥ पुरुषाण्यर्धं दे इष्टाः, पौण्डरीकाक्षिसाधवः । विधे सुभक्षिवा आवा, सुवपा धोकवर्धिता ॥ ७०९ ॥  
 वतः सा निरुपमास, गार्ह संक्षिप्तमातसा । पूर्वोद्योपसमुत्सृज्य, पपाङ्गं शुकर्मिका ॥ ७१० ॥ धर्मिर्धं भासकं नून, वीवरत्न न शु-  
 व्यसि । संयोगादिकस्योद्यो, क्षिप्ता दीप्तवयोऽभिता ॥ ७११ ॥ एवं विधित्वा सा धन्या, सद्गुरुणामनुग्रया । कष्टैः सपोभिपल्लान, निरु-  
 धाय करोयता ॥ ७१२ ॥ कर्वा—शुभुर्धपसुसमाह्वयानि विधियथा । रयान्न रगनिर्मुक्ता, रत्नावत्या विर्यामिता ॥ ७१३ ॥ विप्र-  
 र्वास्तुवर्धेन, निर्निर्वाङ्मात्युर्ध्वता । क्षरीरे संक्षिप्ता रन्या, सुष्ठुमे कल्पावती ॥ ७१४ ॥ श्रुपादितपःकमसन्तौष्ठिकविशुद्धया । रु-  
 द्धं सा महासमा, सुष्ठुवत्या निमूयिता ॥ ७१५ ॥ कजुमिन्न महद्विन्न, सिद्धसिद्धीर्धैर्यया । कीदृगतिपृथुद्वयापि, कीदृगिद सिद्ध-  
 कीक्या ॥ ७१६ ॥ वक्ता महत्समाह्वये, सर्वलोमवत्या सह । महोद्यो न प्रसिन्ना, नकार वज्रमुपयम् ॥ ७१७ ॥ आयातन्व्यधमानेन,  
 वर्यमाना प्रसिद्धवम् । क्रियमायेन सा व्यये, ज्ञानेन गतकस्याया ॥ ७१८ ॥ ज्ञान्नायप यरन्या न, निरु कृन्तनमस्तवम् । वर्योद्योसिद्ध-  
 सन्त्ये, वन्द्यकेकासमानया ॥ ७१९ ॥ भासेन्य यनमभ्यासि, वन्द्यमभ्यासि ज्ञानया । साऽत्र सुकक्षिता आवा, सिंघुहा भवधारके ॥ ७२० ॥  
 वर्यकमालिमिर्धन्या, वयोभिर्निर्धनकस्यायम् । सा वया कम्पसद्यीर्घो, शाकपन्थी व्यवसिंया ॥ ७२१ ॥ इत्यत्र पौण्डरीकोऽपि, ज्ञानानया  
 सपरायवः । काकज्जमेव संपन्नो, गीतार्थो विधितेन्द्रियः ॥ ७२२ ॥ वयोऽसावागमार्थस्य, सर्वसारं सुनिर्धनम् । भिक्षाशुर्धनयेनेत्यं, शुभ-  
 पत्रञ्च साधया ॥ ७२३ ॥ महन्वः ज्ञाद्वयावस्य, विधीर्धनोद्योवसिद्ध । भगवद्भ्रायितस्यास्य, किं सारमसि कथ्यताम् ॥ ७२४ ॥ सम-  
 स्तमद्रुषमिच्छावः प्रोक्तमिदं वचः । गार्ह ! सारोऽत्र विधेयो, प्यातयोगाः सुनिर्धनः ॥ ७२५ ॥ यतः—मूढोद्योद्युः सव्ये, सवा-  
 वेत्यं वद्विच्छिन्ना । सुनीनां ज्ञानकानां न, प्यातयोगार्धमीरिता ॥ ७२६ ॥ यथाहि—मनप्रसाहः साध्याऽत्र, सुव्यर्थं ज्ञानसिद्धये ।

भादिसानि विष्टयेत, सोऽनुष्ठानेन साध्यते ॥ ७२७ ॥ अथः सर्वमनुष्ठानं, वेदः शुद्धसर्वमिष्यते । विशुद्ध च यदेकामं, शिवं तन्मानसमुप  
 माय ॥ ७२८ ॥ यस्मात्सर्वस्य साधेऽस्म, ज्ञानात्मकं सुन्दर । व्यानयोगः परं शुद्धः, स हि साध्यो मुमुक्षुणा ॥ ७२९ ॥ येष्वनुष्ठा  
 नमन्येव, यद्यद्वत्तथा सिध्यम् । मूढोऽनुष्ठानात्तथा तत्सर्वं साधुवाहवम् ॥ ७३० ॥ अथाकर्ण्य गुरोर्बर्हिष्यं, यौष्मटीकमष्टाश्रुतिः । पुनः  
 प्रोक्ता च ज्ञानात्मा, क्क्याते क्वचकुर्वसकः ॥ ७३१ ॥ मन्त्र ! वाक्यकालेऽपि, समासीदृशिकौशुकम् । मोक्षमार्गो यतः पृष्टा, मया भूरि  
 कुशीर्षिकाः ॥ ७३२ ॥ यथा नो मो महात्मनाः, किं तत्तत्त्वं परं मतम् । शिःशेषसकटं सारं, यत्सर्वं परमाद्यम् ॥ ७३३ ॥ ततो  
 यथायथं सर्वैर्मतमान्निव तैर्मत । शिवेशिवं परं तत्त्वं, तीर्थिकेभ्यः कीदृशम् ॥ ७३४ ॥ “एके प्रादुर्भवा सर्व, द्विसानि क्रियवामिति ।  
 “केचन शुद्धिरेषोऽत्र, एषपीचो मुमुक्षुणा ॥ ७३५ ॥ अथः—यस्य शुद्धिर्न स्थित्येव, इत्या सर्वमिदं ज्ञात् । आकाशमिदं पठेन, मासी  
 “पापेन स्थित्यते ॥ ७३६ ॥ अन्त्ये प्रादुर्भवा सर्व, पापं कृत्वा हि मानवाः । मुष्यन्त्ये क्षणमात्रेण, वे सप्तन्त्रि सर्वेभ्यम् ॥ ७३७ ॥  
 “अथः—अस्मिन्ना मित्वा च भूयानि, कृत्वा पापक्षयानि च । स्मरन् देवं स्मरन्नामं, सर्वपापैः प्रमुष्यते ॥ ७३८ ॥ अन्त्येस्तु पापमुत्सर्व,  
 “स्मिन्नुप्यान्मुद्राहवम् । तस्मिन्नेषमकमालि, अथः प्रोक्तमिदं त्वम् ॥ ७३९ ॥ अपसिन्नः पवित्रो वा, सर्वान्तरां गतोऽपि वा । यः स्मरे  
 “सुष्मटीकां, स वासाभ्यन्तरः शुद्धिः ॥ ७४० ॥ अन्त्ये पापाशानं मम, प्राहुः वापनिर्वाणम् । अन्त्ये वागुत्तरं प्राक्का, प्राहुर्मोक्षक  
 “साधनम् ॥ ७४१ ॥ व्यानयोगवर्ते अत्यौष्मटीक इति स्थितम् । निपातिवत्त्वं त्वम्, मनोऽतिक्रियार्थं परम् ॥ ७४२ ॥ यद्वारेण निकी-  
 “वेत, मनोऽस्तिः परसं पदे । तस्य यो छद्म्यते नावकायस्त्वमापरे जगुः ॥ ७४३ ॥ मुमम् । तवाऽप्ये पूरकं प्राहुः, कुम्भकं देवकं यथा ।  
 “तस्मैव पुष्मटीकस्य, पवनं मविचलकम् ॥ ७४४ ॥ अन्त्ये प्राहुः पुनर्निर्गु, कुन्तेनुरूपकटिकपदम् । शिर्वगुर्भमपमौन, सर्वन्तं ज्ञान-

“कारणम् ॥ ७४५ ॥ अन्ते परं शिखां प्राङ्मुख्यार्थो न्यायिकं किञ्च । परमाण्वरमात्रा सा, सैवासुखकञ्चोच्यते ॥ ७४६ ॥ नागार्थे भूट-  
 “नामधे, शिखुं देवमथापरे । द्रुपाद्याराधकत्वं, व्येयमाहुःप्रथमकिरम् ॥ ७४७ ॥ आग्नेयमण्डलं स खान्मीक्षिते रज्ज्वर्णकः । आर्द्रम्  
 “पीतकः कृष्णो, वासव्ये वाशये सिता ॥ ७४८ ॥ वज्र—मीका सुन्दरचित्तं, रज्ज्वायेषु चिन्तये । कृष्णोऽभिभारिके कार्ये, पुष्टिर्वा  
 “यवलो मसः ॥ ७४९ ॥ अन्तेऽप्राङ्मुख्येवा शोष्यो, नादीमर्गो मुमुक्षुणा । इहार्थिन्नकर्मोर्ध्वं, नाक्योः सञ्चारकम च ॥ ७५० ॥ ना-  
 “दीपकस्य शिखेयः, प्रचार्यो दक्षिणेतरः । वट्टारेण च मन्त्रव्यं, वक्षिः काकवलासिकम् ॥ ७५१ ॥ यथासमं शिवायोर्बैर्धन्तानादायवं क-  
 “म् । छक्रतोवरत्वं प्राङ्मुख्ये साधिव्यायम् ॥ ७५२ ॥ तथाऽर्धे प्राङ्मुख्यं—आ नागैः सरत्वं प्राण, विसरन्नुत्सवं शर्मैः । मूर्ध्नि-  
 “न्यलासुरन्ध्रेय, शिर्षकृन्वं विविच्ययेत् ॥ ७५३ ॥ आर्चितमण्डकम् वा, वयोर्वाजीवसीसिवम् । आर्षं पुनोसमपरे, तथा व्येयववा  
 “विष्णु ॥ ७५४ ॥ इत्योमि सत्सिधं शिखं, पुनार्सं परमं तथा । सप्तर्ष्यसुखवाकीर्णं, व्येयमाहुर्मनीरिषिः ॥ ७५५ ॥ आकाशमात्रमपरे,  
 “शिवमन्त्रे चराचरम् । आत्मत्वं चिन्मसिताङ्गुरपरं प्रह्व क्षाप्रवम् ॥ ७५६ ॥ एवं च सिधे—यथा नागैर्ममाख्यायै, द्वावकाङ्कस्य सा  
 रकः । व्यानचोरोक्तावा पीयूषं, स एव प्रणिपारिषा ॥ ७५७ ॥ वसिष्ठ सर्वेऽपि वै पीयूषा, भवेयुर्वोऽसुखायकाः । १ । व्यानयोगावधेनैव,  
 साये चयेव वधेते ॥ ७५८ ॥ किं चेदं व्येयनागतमपरापरयोर्गिनाम् । एकत्र मोक्षे ससाधये, पञ्चबान्मम संक्षयः ॥ ७५९ ॥ तद्वत्  
 मनुना नावा, स्वैः समवेद्यायम् । क्षात्रकमदन्तिसामाध्याहुःप्रभुष्यपिपुमर्षेय ॥ ७६० ॥ धूर्तिणोऽह—आयै । सामान्यगीवापस्तबमेव तेन  
 मायसं । शिष्येयवो न शिखावमैरुत्पद्यं चिन्तामर्षो ॥ ७६१ ॥ “एते हि पीयूषाः सर्वेऽपि, दृष्ट्येषामागतकाः । शिनसद्वैपक्षाकस्य, पञ्चमपान-  
 “क्षिपो मवा ॥ ७६२ ॥ तथा आत्र कवानक—एकसिन्धुगरे मूर्तिरोगपस्तसमकावोके शिखये कश्चिदेक एव महादेवः, स चोत्पन्नसिद्धि-

“ज्ञानः सद्यः समस्तयोगसंविधानां” मोक्षकोटिः किं सेवयोगाणामुपकारस्मिन्निर्वाणो कोकानां वयापि ते कोका अपश्यन्वा न प्रसिपयन्ते तस्मै कथने के-  
 “ञ्चिद् भन्मद्यथाः प्रसिपयन्ते, ए” नानवरतं विषये साक्षिभ्योऽयौ व्याकथयन्, तयोपश्रुताप्रसङ्गात्तैरवधारितं सप्रश्रुता क्रियद्भन्मद्यपूर्वैः,  
 “यद्यसं पश्यन्मात्रमुष्टाः सप्रश्रुतार्थं वैपक्याचसिंघुमारभ्याः, तेषां तु कोकासामभन्मद्यवर्षे ते निवर्तं प्रसिमासन्ते, तद्यदी पवित्रतमन्मद्यया  
 “क्षितिविद्या निवन्निवसंक्षिताः प्रसिपयन्ति केक्षित्यानुपश्रुताऽवधारितासिं सदैवपञ्चान्मद्युत्तरमिन्द्रा कथानिश्चिदासां मय्ये कथनानि भन्त्यौ  
 “पुनरेकान्तविषयीतयदैवपञ्चानान्तसिपानिक्त्वानिमित्तानेन संक्षिता विक्षिता, सिर्जितपञ्चयाम्यं ते योगिणो नागरकाः, तत्तत्तैरभ्यर्त्तयन् दृष्टवैधानां  
 “मय्ये कथितेव केवचित्क्षिते प्रसिमासिं मापय, तदा प्रसिद्धिं गताः सर्वेर्ष सन्मन्त्रिभ्यो वैपक्याकारः, व्याकथयन् सर्वविनिर्देशयो निवन्नि  
 “असंक्षिताः सावस्तवया प्रसिद्धास्तेऽयं मार्गवैपयथा जगदीसिंख इव मूर्तिर्कोटिरसौ मौलमहावैषा । एवं च क्षिते—मे ते मौलमहावैषयस  
 “क्षित्यां सिद्धिपूर्वकम् । कुर्वन्ति योगिणकायते भक्त्येव नीकता ॥ ७६३ ॥ किं च—एव जीवसि सदैवे, रोगैर्मुक्ता यथा जनाः । तस्मां  
 “सुवैपसाक्षात्, मूलासौ विक्षितक्रियाः ॥ ७६४ ॥ तथा सुवैपसि सा साक्षा, सविनेया ससंक्षिता । संजाता सर्वकोकानां, योग्यमेवैषि-  
 “विनी ॥ ७६५ ॥ गुणम् । ये पुनः दृष्टवैधानां, योगिणो गोचरं गताः । तेषां ते योग्यमेवैष, निवर्तं पारिषीदिवारः ॥ ७६६ ॥ किं च  
 “—यथा जीवतुं सच्छात्रा, कोकनामपञ्चारिकाः । सुतेभ्यसि तथा आसाः, सविनेयाः ससंक्षिता ॥ ७६७ ॥ एतुं तास्यसि इत्येव,  
 “वैपसाक्ष्यसु कथन । विषेयो रोगिणो भन्त्य, रोगानवकथयन् ॥ ७६८ ॥ सर्वयोगसिन्धोर्षो वा, कर्मादिदैवयोगता । धातुं क्षितयानां सा  
 “धातु, पक्षिं कार्येव वैक्षितान् ॥ ७६९ ॥ सौन्दर्ये तेषां गुणो नूतनं, सर्वक्यायिनितर्हिणम् । एतसि सर्वैपसाक्ष्यसु, पृथीवानि पयानि वैः  
 “॥ ७७० ॥ शिनिर्षिसेपकम् । तथासि—वैषासि न गृहीयासि, सर्वेणां मुद्रसुक्ष्मिभिः । एकान्त्येनैव ते आसा, व्यापितुद्वैविधापकाः ॥ ७७१ ॥

“आराधम् ॥ ७४५ ॥ अन्ते परं विद्यां प्राप्नुवन्मार्गो व्यापिको विद्य । परमाधरमात्रा सा, सैवाधरकञ्जोद्यमे ॥ ७४६ ॥ नाद्यो मे भू-  
 “वामये, विष्णुं देवमाधारे । दृष्टात्प्राप्तपथं, व्येवमाधुममस्ति ॥ ७४७ ॥ व्यापेयमण्डलं स आत्मीसिद्धि रक्षार्थकः । मार्गेन्द्रे  
 “वीरकः कृष्णो, वासये वासये सिद्धा ॥ ७४८ ॥ तत्र—पीठा सुखरक्षितं, रक्षकापेयु विन्त्यते । कृष्णोऽभिचारिके कार्ये, पुष्टिरो  
 “वचसे मठा ॥ ७४९ ॥ अन्तेऽप्याधुमं वा सोप्यो, वाहीमार्गो मुमुक्षुणा । इदानीं कथ्यते, नाद्योः साधारकर्म ज ॥ ७५० ॥ ना-  
 “दीनकर्म विद्येव, प्रचारो विद्येव । तद्वारेण च संख्यं, वरिः काककर्मिकम् ॥ ७५१ ॥ पद्यासर्गं विद्यायोर्बोधयन्नाद्याव क-  
 “कम् । कृत्वायेवार्थं प्राप्नुयते साविद्यायकम् ॥ ७५२ ॥ तथाऽर्थे प्राप्नुयन्—आ भार्यो सरक्ष माण, विद्यवन्नुत्तमं सर्वः । मूर्धा-  
 “व्यवस्तुत्येव, विरिञ्चन् विरिञ्चयेत् ॥ ७५३ ॥ आर्विजमण्डकं वा, वयोपवीतसंविद्यम् । आर्धं पुमांसमपरे, तथा व्येवतया  
 “विष्णु ॥ ७५४ ॥ इत्योमि सन्निधे निधे, पुमांस परमं वया । कस्यं सुखवाक्यं, व्येवमाधुमनीविद्यः ॥ ७५५ ॥ आकाशमात्रमपरे,  
 “विद्यमन्त्रे जगत्तम् । आत्मकं विन्ममिन्नाधुमपरे प्रकाशावयम् ॥ ७५६ ॥ एवं च विद्ये—एवा नोभेर्मेमाक्यार्थे, द्वावसाक्ष्य सा-  
 “रका । आत्मयोगस्य वा दीर्घा, स एव प्रविष्टाविद्यः ॥ ७५७ ॥ एतस्मिन् सर्वेऽपि ते दीर्घा, सर्वेऽपि सुखायकाः १ ॥ आनयोनादकेनैव,  
 “साधे वचसे वरिणे ॥ ७५८ ॥ किं चेदं व्येवनामात्रमपराधो गिनाम् । एकत्र गोपे संसाध्ये १, वचनान्मसं संस्था ॥ ७५९ ॥ तदन  
 “मनुना नागा १, सर्वं सर्वेऽप्यावयम् । काकाकर्मविद्येवमाधुमं विद्युमार्थं ॥ ७६० ॥ सूरिणोऽह—आयं ! सामान्यगीतार्थस्त्वमेवं तेन  
 “मत्सरे १ विद्येवतो न विद्यावमैवमर्थं विद्यामो ॥ ७६१ ॥ “एते हि दीर्घाः सर्वेऽपि, कृतवैयसमायकाः । जिनसदीपशास्त्रस्य, पञ्चम-  
 “विर्गो मठाः ॥ ७६२ ॥ तथा वात्र कथानर्क—एकविंशतारे भूविद्योनाप्रसक्तसमायकमे विद्यते कविप्रक एव महावैद्यः, स ज्योत्स्नाविद्य

“यानां सद्यः समस्तयोगसंक्षिप्तानां नास्तको सिःशेषटीगाद्यामुपकारमिरयौशोकानां वशादि ते शोका अप्यन्वया न प्रक्षिपयन्ते एवम् कल्पने के-  
 “चित्तु कल्पयमाः प्रक्षिपयन्ते, स चापवरा विषये अक्षिप्येभ्यो व्याख्यातं, एवंपण्डितानां प्रसङ्गागतेरपचासिदं स्पृष्ट्वा निवृत्त्यन्वयैः,  
 “वत्सरो यत्कल्पमात्रमुद्याः संपूर्णार्थं वैषयकाचरितुगारब्धाः, तेषां तु शोकानामप्यप्यवेषं ते निवरां प्रक्षिपयन्ते, एवमेव पञ्चदशमन्यवपा  
 “विरचिता निवृत्तिवत्संक्षिप्ताः प्रक्षिपयामि केचित्पण्डितानामुपपद्यतां प्रसङ्गागतां सदैवपञ्चनान्वयवृत्तिः ज्ञानिचिन्तायां मध्ये कल्पनाभिः कल्पैः  
 “पुनरेकान्वयविपर्ययसदैवपञ्चनानामसिंयाभिव्यक्त्याभिलानेन संक्षिप्ता विक्षिप्ता, विक्षिपयन्वयवत् ते योगिनो नानाकाः, एवमेवैयमासीं वृत्तवैधानां  
 “मन्वे कश्चिदेव केषांचिचित्ते प्रक्षिपयामि नापरः, एताः प्रक्षिप्ति गताः सर्वेषां सम्प्रतिपन्नयो वैषयाकारः, व्याख्यायाः सर्वोदनेयेभ्यो निवृत्ति-  
 “जसंक्षिप्ताः बाधान्तरा प्रक्षिपयन्तेऽपि महावैषयकाः कल्पयामि एव मूर्तिवैदित्यौ शौकमाद्यवैषयाः । एवं च सिद्धे—ये ते शौकमाद्यवैषय-  
 “क्षिप्ता निवृत्तिपूर्वकम् । कुर्वन्ति योगिपञ्चाशत्ते मन्वेभ्यो नोदनाः ॥ ७६६ ॥ किं च—एव परितस्ति सर्वेषां, योगैर्मुक्त एव ज्ञाना । एकां  
 “सुवैषयकाकारं, मूर्त्यासौ विक्षिपयिष्याः ॥ ७६७ ॥ एताः सर्वेऽपि सा क्षात्रा, सविनेवा सर्वक्षिप्ता । संज्ञाया सर्वशोकानां, योग्येभ्यो विषय-  
 “क्षिप्ता ॥ ७६८ ॥ इयमम् । ये पुनः वृत्तवैषयानां, योगिषां गोचरं गताः । तेषां ते योगजाकेन, निवरां परिपरीक्षिताः ॥ ७६९ ॥ किं च  
 “—एवा जीवतसु वच्छाया, शोकानामपकारिकाः । यदेवमपि एवा ज्ञाया, सविनेवा सर्वक्षिप्ता ॥ ७७० ॥ नस्तु तासवि द्रव्येव,  
 “वैषयाज्ञासु कल्पना । विषयेषु योगिषां दृष्ट, योगानन्वयवच्छाया ॥ ७७१ ॥ सर्वयोगविमोक्षो वा, कल्पयामि योगगता । तासु विवसानां स्था  
 “ज्ञासु, वसि आयेव वैदिनाम् ॥ ७७२ ॥ सर्वेऽपि तेषां गुणो नूनं, सर्वव्याधिमिवादिष्याम् । ज्ञानि सदैवपञ्चाकार, पृथग्वानि पदानि वैः  
 “॥ ७७३ ॥ विभिनिर्वैषयकम् । एवादि—वैषयानि न पृथग्वानि, सर्वेषां वृत्तवैषयिभिः । एकान्तेनैव ते ज्ञाया, व्याधिवृत्तवैषयायकाः ॥ ७७४ ॥

“कारणम् ॥ ७४५ ॥ अन्ते परं शिवां प्रागुत्कर्षाद्यो व्यापिकां किञ्च । परमाशरमात्रा सा, सैवामुक्तकोच्यते ॥ ७४६ ॥ नासामे भू-  
 “तमप्ये, शिबुं देवमवापरे । गुणायारपयत्, व्येषमागुभक्तशिरम् ॥ ७४७ ॥ आमेवमण्डलं स सान्नीहिते रज्ज्वर्षक- । मारुन्द्रे  
 “पीठका इष्यो, तमप्ये वाद्ये सिता ॥ ७४८ ॥ तत्र—पीठाः सुन्दरचित्तम, रज्ज्वापेयु चिन्त्यते । कृष्योऽभिचारिके कर्त्तुं, पुष्टिरो  
 “यवतो मयः ॥ ७४९ ॥ अन्तेऽप्यगुर्वेषा कोष्यो, चाहीममो मुमुक्षुषा । इहाभिन्नकोर्ध्वं, माष्योः सञ्चारकम च ॥ ७५० ॥ न-  
 “दीपकम विवेच्य, मन्त्राद्यैरसिक्केयत् । वटोपेय च मन्त्रप्ये, वक्षिः काकवज्जसिकम् ॥ ७५१ ॥ यथासत विषयोर्ध्वप्यनारायणं क-  
 “म् । ईकरोवायं प्रागुत्परे क्षान्तिरागम् ॥ ७५२ ॥ यथाऽर्धे प्रागुर्वेषा—आ तामो सरत्तं प्राप, विसवन्मुसमं हानैः । सूर्यो-  
 “न्यत्वागुत्परे, शिबिक्कन्तं विचिन्त्येत् ॥ ७५३ ॥ आर्त्तियमण्डकमं वा, यथोपदीवससिषत् । आपं पुमांसमपरे, यथा व्येयवया  
 “शिष्टा ॥ ७५४ ॥ इत्योमि ससिषं शिबं, पुमांसं परमं ववा । सवर्तुससार्द्धार्थं, व्येषमागुर्मनीसिषः ॥ ७५५ ॥ आकाजमात्रमपर,  
 “विषममन्त्रे वयवत् । आत्मकं विषमसिवागुत्परे मन्त्राकाशम् ॥ ७५६ ॥ एव च स्थिते—यथा माधेर्ममात्मवो, इत्यकाङ्क्ष सा  
 “रका । आत्मवोमन्त्रादीर्घ्यं, स एव मधिपानिषः ॥ ७५७ ॥ वारि सार्द्धेऽपि तं दीर्घ्यं, भवेपुमांससापकाः । । व्यानयोगवहेनैव,  
 साद्ये यवोय वसेते ॥ ७५८ ॥ किं चेदं व्येयनागल्मयपरापरयोगिनाम् । एवम मोक्षे ससाप्ये, वक्तव्यमम वंसाप ॥ ७५९ ॥ एतेन  
 मनुना नापाः, इत्थं समवेत्पापम् । अवापवन्तिषामाध्यागुभूक्तविगुसार्ध ॥ ७६० ॥ सूर्योक्त—आर्ध । सामान्यगीतार्थस्तवमेवं तेन  
 माप्यं । ‘विशेषवो न विज्ञास्येत्पदं विभागो ॥ ७६१ ॥ ‘एते हि दीर्घ्यः सार्द्धेऽपि, इत्येषासमानकाः । विनसद्येषासम्भ, पञ्चम-  
 “विषो मया ॥ ७६२ ॥ एव चान्द्र कपालक—एकशिरापरं गुरीयोमन्त्रासमवाद्योके विषये कश्चिदेक एव मन्त्रोक्तः, स चोत्पन्नसिष्य



“दीर्घ्याः, केचिदेव न जायते ॥ ७९० ॥ अन्त्य—कणमन्त्राक्षपाद्याया, ये दीर्घ्याः शास्त्रकारिणः । वैद्यासि निमशास्त्रादि, सिष्येभ्यः  
 “कथितानि भोः । ॥ ७९१ ॥ प्रवर्तिष्यन्ति दीर्घानि, शिष्टाष्टानामाशिका । धर्मिर्द्वैषाक्षालानामुत्थानमभिधीयते ॥ ७९२ ॥ एवं च सिधे  
 “—ये सर्वद्वयद्वैषाक्षालायां कर्मयोगिणः । चिक्षिस्तां कुर्वते धन्यास्ते भवन्त्येव नीरुकाः ॥ ७९३ ॥ आशिक्षेणु च दीर्घ्येणु, कर्मयोगस  
 “तान्त्वम् । मृदुपयते तथा सर्वमोक्षो वा मूयते कथित ॥ ७९४ ॥ सोऽपि सर्वद्वयभक्त्यानां, योगमेव गुणो मयु । यासि वैर्निष्ठायास्तेषु,  
 “प्रविशानि कर्मयन्त ॥ ७९५ ॥ शुभम् । यथा यासिस्मरद्दीनां, तेषां सर्वद्वयभक्तिम् । इति स्थित भवत्येव, कर्मयोगनिर्द्वयम् ॥ ७९६ ॥  
 “यथा योगद्वयं द्वैषः, साटीत्यभिचिक्षसि । रागद्वेषमद्वैषाक्षया सर्वद्वय एव हि ॥ ७९७ ॥ एकान्तास्त्येव सर्वद्वैषाक्षान्वहिःसिवा ।  
 “चिक्षिस्ता कर्मयोगिणां, मूलमेवेन हेतुना ॥ ७९८ ॥ तथाहि—एकान्तविपरीता ये, त्रैमशास्त्रस्य नाशिकाः । एकान्त्येनैव ते प्रापा, धी  
 “र्ध्वसंसारकारकाः ॥ ७९९ ॥ तथापि विद्वज्जनूनां, शुद्धानामर्थकामयोः । ए एव प्रतिभान्मुनैर्नाशिकाः साप्सवोक्षिणाम् ॥ ८०० ॥ तदे  
 “वमार्थं । सेषादि, दीर्घानि क्लिप्तमापिवात् । विनिर्गणानि तेनेदं, व्यापकं क्लिप्तार्थानम् ॥ ८०१ ॥ एवं च स्थिते—मद्भागवतप्रयोगानां, प्र  
 “तिपक्षतया स्थितम् । सत्यं मूढद्वया भव, औपसिन्निरवतिष्ठः ॥ ८०२ ॥ औपार्थं सुन्दरं दीर्घमाक्षिभ्यश्चममजोमवा । शुभमक्षिभ्यो  
 “ज्ञान, भ्यान्मन्त्रव्य वाटशम् ॥ ८०३ ॥ आशिक्षेष्वापि दीर्घेणु, वस्तुसत्येव सुन्दरम् । किमु नो राजते तेषु, यथा याचितमूषणम् ? ॥ ८०४ ॥  
 “त्रिभिर्विषयकम् । तद्वि सकल्पितैः क्षेत्रैः, सर्वद्वयप्रवनासितैः । भागद्वैमासिभिः सार्धं, मीक्षितं न विराजते ॥ ८०५ ॥ समकोपाधिषु  
 “दानां, गुणानां प्रसिपादकम् । तदेवं सर्वदीर्घेणु, स्थित सर्वद्वयार्थानम् ॥ ८०६ ॥ एव सद्भाविकं जैन, दीर्घं सर्वगुणात्मकम् । सर्वत्र  
 “संस्थित इव, न तिष्ठं धर्मकारणम् ॥ ८०७ ॥ अतो मनुजभार्गव, यथा ते दीर्घिकाक्षया । व्यानयोगवत्तेनैव, किं सुसोषस्य साधकाः ?

“किं बहुना ?—सा महर्षेयछाटिका, देवा योगनिर्दयी । वत्संहितानुसारेण, शेषा अपि कदाचन ॥ ७७२ ॥ यतः—यातः सिच कष्ट-  
 “मेसि, सर्वयोगविपाकम् । योगप्रथ विजानीये, सुवैयक्यस्य भेषजम् ॥ ७७३ ॥ इन्द्रवैद्या न जानन्ति, सत्यं वत्सविरोधतः । तेभ्यो  
 “बोद्धीं सिद्धेयः स्वाकृत्यादां योगिणो कथित् ॥ ७७४ ॥ सोऽयं पुण्याक्षरम्यायः, स्मारोपप्रवहानिवः । वत्सास एव सदैयक्यत्र योगधिदि-  
 “रसकः ॥ ७७५ ॥ शुभम् । वसिष्ठ दे सभाधेन, मया वैयक्यवानकम् । पौण्डरीक ! समान्याय, सन्द्देहकर्म परम् ॥ ७७६ ॥ मयोऽत्र  
 “नम्रं देवाः, सर्वयोगप्रतीदिवः । एकक्यात्र महावैद्यः, सर्वज्ञः परमेष्ठर ॥ ७७७ ॥ संकाशकेवककानतः, सिद्धसिद्धान्तसंहिवः । सवकोको  
 “यकटी च, कर्मयोगनिर्दयः ॥ ७७८ ॥ यथापि शुक्कर्मणः, संकाशेररचारिवः । भूषांसो म प्रपद्यन्ते, वीनासं परमेष्ठरम् ॥ ७७९ ॥  
 “दे मत्मा कुरुकर्माणो, वीना मय्यवभाः परम् । य एव तं प्रपद्यन्ते, सदैवं परमेष्ठरम् ॥ ७८० ॥ सर्वैरमनुजायां च, स सभायो यदा  
 “ऽनुकम् । सिध्येभ्यो वैषयस्तुदैर्नोषमार्गं जगद्गुरुः ॥ ७८१ ॥ यदा देवा मनुष्याश्च, केचिदां कष्टुपासकाः । प्रसन्नैर्नागम्याक्यत्र, दूष्यन्ति  
 “सिन्धोसनाम् ॥ ७८२ ॥ भनोक्तव्यात्ममीरं, तां सुखा मन्तुमुदयः । भन्तया कष्टप्रयन्त्येवे, सिध्यन्त्याम्नाथवेवसः ॥ ७८३ ॥ ववस्ते  
 “नितसदैवाद्युपमुल नदिरांताः । क्षमाक्षाणि मङ्गुर्बन्धि, इन्द्रवैयसमानकाः ॥ ७८४ ॥ यत्र च—ये यावदासिकाः केचिदीर्ष्याः सांक्ष्यादयो  
 “मया । किन्नामन्मामुसारेण, धैर्मन्त्रेण किमन्मसि ॥ ७८५ ॥ कृषानि जावदात्म्यानि, शेषमभ्युद्धिच सत्रम् । क्षयाधिकत्याभिमानेन, इन्द्र  
 “वैधेरिनासिक्कम् ॥ ७८६ ॥ शुभम् । यतः सर्वकसङ्गात्मभूषिणानि मदीयसे । वञ्छाक्षाण्यपि राजन्ते, प्रसिद्धिं प्रगवानि च ॥ ७८७ ॥  
 “ये पुनर्नासिकाः पापा, इहससिसुवाचकाः । सर्व धैर्दिलसाक्षका, विपरीतं सिद्धसिचम् ॥ ७८८ ॥ तेऽपि जावाक्यासायसपापविषजने  
 “यवाः । प्रसिद्धिं वत्सकस्तेह, प्रागल्भ्यं हि महत्तरम् ॥ ७८९ ॥ यवा—नानावर्षिणाओकानां, प्रसिमान्ति यपासयम् । केवाविश्वेव ते

॥ ८२६ ॥ विषयवाचीपदार्थादि, मयुनम्यानिगीत्यम् । भीषासीर्ध्व सर्वं तदिह, निर्धयमात्रकारणम् ॥ ८२७ ॥ वदप तदितरोद्धर्म्य, विष  
 'आत्तं द्युमुमुषा । वद नाताविषयोभार्ये, रागादेषासित्परीः ॥ ८२८ ॥ वर्यो मखीरिधैः प्रोक्त्य, यः प्रोक्त्य विनशासने । मावतीर्ये स्थितः  
 'सोऽर्थ, ध्येयमात्रो न दुष्यति ॥ ८२९ ॥ मया—महिर्निर्मुक्तकर्तव्याः, सामयनिव मुमुषावः । मोक्षं नाताविष्येभ्योमोष्यस्व्यं एव कार  
 'कम् ॥ ८३० ॥ किं तु—परमात्मावयो ध्येया, मया संवेगकारिणः । धीमस्य वेवसोऽत्यर्थ, न हि चिन्तावयवका ॥ ८३१ ॥ आक-  
 'म्यनविषयेष, वेवसः सुन्दरेवत् । स्वरूपं व्यापरे सिद्धं, स्वसंवेदनार्थं क्वय ॥ ८३२ ॥ किं तु—मानावचित्वावर्तिवानां, कल्पचित्त्वा-  
 'स्वरूपवत् । वेवः सुदितरयमित्रा, मौनीन्त्री मार्गप्रसन्ना ॥ ८३३ ॥ वर्यो विमुक्तविचानां, मुक्तमाप्सरप्यसातिनाम् । केषांश्चित्तेऽपि वि  
 'म्यायाः, सुविमुक्तविषयकाः ॥ ८३४ ॥ इतरया—वत्स्यं विज्ञाय ये मूढाः, प्रवर्तन्तेऽर्थकामयोर । वद्वेनेव निश्चिन्ता, योगिचोऽत्र  
 'दयं किञ्च ॥ ८३५ ॥ वेर्यां ज्ञानमुद्धकानां, वाट्क् सूर्योदयेऽपले । क्रीटयन्तःप्रविष्टानां, वाट्क् वेवं महात्माभिर ॥ ८३६ ॥ पुन्यम् । वे ज्ञानान  
 'वमोहिताः, सुदृष्टिप्रसदं विना । क्रीडिका इव कीदृशे, सिचर्यं मयकीदरे ॥ ८३७ ॥ योगे ज्ञानांशुसीमान्ने, परित्युत्सहि मात्स्न्ये । इदमे  
 'हि कुवत्सिधैर्यकामसुहावतः । ॥ ८३८ ॥ वयागिर्मकविचानां, वैयायान्यासकासितान् । विज्रमाकम्बर्नं प्राप्य, माप्सरप्यं संप्रवर्तते  
 '॥ ८३९ ॥ अवोऽमी वे पुण प्रोक्ता, ध्येयमेवाः कुलीरिधैः । विष्यन्त्वमिन्दुमूषास्ते, सुवर्त्तनमवधारिणो ॥ ८४० ॥ वद्वद्वैषयाकावद  
 'म्यवर्त्तनमातिक्ता । स्वरूपेण सदा ज्ञेया, कर्मयोगविषयनी ॥ ८४१ ॥ वद्वसानां पुनर्यः स्वारकर्मयोगवया कश्चित् । विषेयो वा स वि  
 'ज्ञेयः, सर्वप्रवचनाशुषः ॥ ८४२ ॥ इयं सर्वेषाकावयाकाळ वन्मवास्मिका । कर्मयोगवृष्टी ज्ञेया, ज्ञावकाव्री सुसंक्षिप्ता ॥ ८४३ ॥ यदो  
 'योग्येष्ट्यनं मोक्षं, स्थितित्वात्सुन्दरं धमः । वद्वुणाकररूपायां, सर्वमस्यां प्रसिधितम् ॥ ८४४ ॥ मयुनर्मुक्षिठेवेन, विना हिंसासि सुन्दरम् ।

"५॥ ८०८ ॥ वय—शुद्धानुष्ठानविकल्पं, ध्यानं यणुष्टयीलिनः । ध्यायन्ति तद्वचोभार्त्तं, नास्याकारि विवेकिनाम् ॥ ८०९ ॥  
 "यतोऽत्र वणुकर्मण, धीवका ह्युपसमिमे । हृदे मर्त्तं सवाचारध्यानाच्छोभ्यत्येवमेतः ॥ ८१० ॥ यः पुनर्मसिन्नारम्भी, मद्विध्यानिपरो  
 "मयेत् । नासौ ध्यानामर्थवशुद्धः, समुपसृणुष्वर्त्तं यथा ॥ ८११ ॥ शुभम् । सर्वोपाधिविशुद्धेन, एवो धीवत साध्यते । ध्यान-  
 "योगः पठ भोगो, वा कान्तोवका साधकाः ॥ ८१२ ॥ यत्र साक्षात्सो धीवो, निर्मकाल्पा कथयत । स धीर्विकोऽपि भावेन, वतते  
 "भिनिसासते ॥ ८१३ ॥ वयन्मर्त्तन्मर्त्तवैक, सासन भवनासनम् । धीर्विक कसि वयका, भवन्त्येव भवच्छिष्टः ॥ ८१४ ॥ किं बहुना ।  
 "—वायविकथनार्त्तं मर्त्तं, निर्वेयमावकारिणाम् । समाधारोपयजनं, यथा कर्त्तुं सुभेयजम् ॥ ८१५ ॥ वत्कृत्त्रिपञ्चाऽपीह, प्रयुक्तं पर  
 "मार्त्तः । कश्चिद् शुभावरत्नावयथा सदैवसम्भवम् ॥ ८१६ ॥ वया सर्वमनुष्ठानं, यन्मर्त्तमासकारणम् । सततद्वेपमोहानां, विद्याविक्रम-  
 "कालनाम् ॥ ८१७ ॥ वयोक्तै सर्वार्त्तवैद्य, साध्यादीनेऽपि वा मते । यथा तथा कृतं हन्व, वेद्यं सर्ववसम्भवम् ॥ ८१८ ॥ यतुर्म्मोः कृत्वा  
 "यकम् । यतुनक्षिपमास्तिन्यकारणं मोक्षवारकम् । यतिगारकहर्षण, कुर्त्तुः कर्म प्रवर्त्तिता ॥ ८१९ ॥ वयोक्तेनमवाह् वाह, वरिर्म्मूढ न  
 "संसाधः । किं पुनर्मर्त्तकीर्त्तव्यां, कर्त्तव्यं बहुर्त्तवकम् ॥ ८२० ॥ शुभम् । वरिर्त्तं भावसर्त्तव्यमर्त्तव्यं वरन्ति योः । संसारसागरे  
 "धीवता, पर्वार्त्तं वेवविश्वया ॥ ८२१ ॥ वयं ते व्ययनातास्त्वमत्र सन्नेहकारणम् । समाकर्त्तव्यं वजापि, परमाप्यो विवेकते ॥ ८२२ ॥  
 "यार्त्तं हि शुद्धव्योर्त्तः, पुष्पं पृष्टासि सुन्दरैः । विवेकयत्ता द्रव्योपायमोपासीत्येन सुच्यते ॥ ८२३ ॥ समाव पर धीवका, पञ्चवापरि  
 "युग्ममागम् । यन्मर्त्तं पुष्पपापार्त्तं, मायकायु विमुच्यते ॥ ८२४ ॥ ते व विद्यापुन्यनाम्, भवकायुप्यकारकात् । यापयते विषयक-  
 "हैक, वयाऽप्यप्यद्वाराहनी ॥ ८२५ ॥ वयाऽपि साधुनुष्ठानम्, वेवर्त्तव्यमप्यकारकात् । यावन्ते ह्युपव्योकाः, यस्यापि सुकासिकाः

“परमात्मात्मः, ह्युद्योचप्रसाधक । अक्षरीत्युच्यन्तेन, धीर्येष भवयोगकः ॥ ८६४ ॥ विज्ञातो वैर्महाभगैः, प्रसिधममम भावतः । तेषां  
 “निर्णायकत्वात्, विचारः कुत्र कारणे ? ॥ ८६५ ॥ केचन—ये कल्पयन्ति तं गूढा, रागाद्रेषमकाशिकम् । ते ज्ञातव्यस्वरूपैस्त्वैर्धर्मैरेव कठ  
 “कायैः ॥ ८६६ ॥ तदेवं दारिद्र्यकटाक्षदेवसुख्यं निवेष्टितः । यः प्रमाणप्रसिद्धत्वादेकः सर्वप्रवादिनाम् ॥ ८६७ ॥ धर्मोऽप्येको जगत्त्रय,  
 “सिद्धेयः पारमार्थिकः । कल्याणसाधिकहेतुः, ह्युद्यः ह्युद्युत्पात्मकः ॥ ८६८ ॥ भवभार्यवसञ्चोत्थयः संयममुक्तयः । सत्यमकार्जवत्कागा,  
 “एते धर्मगुणा दस ॥ ८६९ ॥ दसकथयकं धर्ममेतं विज्ञात पण्डिताः । स्वर्गायर्वाचारं, विद्वन्ते न केनचित् ॥ ८७० ॥ परस्वस  
 “धैर्यदीलेन, कल्प्यते मूढमानवैः । धर्मस्य पारमर्त्यमे, कृपाऽऽकल्पयुद्ययः ॥ ८७१ ॥ तदेव धर्मः सर्वत्र, यः प्रमाणप्रसिद्धिः । एकः  
 “स धर्मवस्तुभ्यं, यौण्ढीकमुने । तथा ॥ ८७२ ॥ तथाऽत्र भोगमार्गो यः, संगीयस्वरूपसङ्गः । सोऽप्येक एव विज्ञातः, पण्डितैः पर  
 “मार्थतः ॥ ८७३ ॥ तथाहि—सर्वत्र कैश्चित्तवाक्याव, हेरयाशुद्धिद्वयाऽपरैः । दारिद्र्यत्वाऽऽप्तमनो धीर्यं, यज्जम् योगिभिः परम् ॥ ८७४ ॥  
 “तस्मिन् सञ्जनेन, निषते नार्थो भुवम् । तथाऽस्मात्पर्येऽप्यत्र, प्लवर्गो भेषितः परम् ॥ ८७५ ॥ यतः—मरुटकर्मसदकाय, पुण्या  
 “पुण्ये ह्युमाह्वये । धर्माधर्मौ तथा पाशाः, पर्वायास्तस्य कीर्तिताः ॥ ८७६ ॥ एतच्च सत्त्ववीर्यासिद्धयव्यक्त्यं पविष्यते । इदं स्मृत्तानिद  
 “दिभ्यः, कारणं सन्नमोद्योः ॥ ८७७ ॥ दीपमाने भवत्यसिद्धिः, मये स्वर्गं विपश्यतः । धर्ममाने पुनः स्वर्गः, समवन्ति विभूतयः  
 “॥ ८७८ ॥ इदमेव धनुष्कोटिभिर्बुद्धमपरे विदुः । ऐश्वर्यज्ञानवैराग्यधर्मरूपास्तु कोटयः ॥ ८७९ ॥ रत्नसमोऽप्यां वत्सस्वभाव्यं न प्रक-  
 “क्षते । विपरीताश्च जायन्ते, सत्यैश्चर्यावयो गुणाः ॥ ८८० ॥ यत्र—स्वोपज्ञाववैराग्यधर्मधर्म समोचसात् । समसन्धेय भादास्त्यादृशानाम  
 “धर्मसम्भवः ॥ ८८१ ॥ यत्रैकं तत्र निष्साहिवीयमापि विषये । रत्नसमोऽप्यमोच हि, यस्मिन् सदा सत् ॥ ८८२ ॥ सर्वथा भस्तिन

“समस्तपापनाशक, स्वस्तिमात्रेण देवयोः ॥ ८४५ ॥ प्रोक्तमित्थादिकं पूर्वं, धीर्धर्मस्तरवद्विभर्ते । निगुच्छिकं बधोमात्र, वयु दास्य निरव  
 “किन्नाम् ॥ ८४६ ॥ शुभम् । ठक्मेवं गुरोर्धोक्त्वासाकर्म पुनरुत्थीत् । पीणहरीकमुनिकारवतिसप्तकरोच्छया ॥ ८४७ ॥ यथा नाय  
 “बन्ध शूनो, बन्धकं कितवधुनम् । वन्ध धीर्धर्मो यन्नि कीर्त्य, श्रुगुह्यत्र किमुत्तरम् । ॥ ८४८ ॥ यथाहि निजया मुह्यता, सर्वे सन्नन्नान्निन ।  
 “पुनरधीर्धरितस्तत्राः, कीर्त्यवधुनार्थिनाः ॥ ८४९ ॥ देवे धर्मो निजो वस्तु, मोक्षे चाधिपुत्रयः । तेऽप्यवदानमकीर्ति, स्मरान्तेऽपि न जा-  
 “नते ॥ ८५० ॥ एवं च क्विदे—यथा ते वार्तिवाकीर्त्या, वर्यतेन यथाययम् । यथा भाव । बन्ध क्षेत्र, को विद्येयः परस्तरम् । ॥ ८५१ ॥  
 “तयो विविधं नाभाः, सुन्दरं कर्तुनर्दय । मन्त्रिष्य जायते येन, सुमेरुधिरुत्तरमम् ॥ ८५२ ॥ वयो विमलसरन्वरीपिभिष्कुर्विद्यापरः ।  
 “वन्निर्वयमिधानात्, गुह्यस्तिन्नममायत् ॥ ८५३ ॥ एतन्निर्वयितं व्यापि, मया वस्तुविमिश्रितम् । यत्सन्त्यगट्टिभिर्द्वय, भाविक औनरदानम्  
 “॥ ८५४ ॥ वन्निर्वयितं धीवानां, सन्नमेव भवोद्गताः । एता हि विमिश्रितं, मोक्षिन्यो भेदपुत्रयः ॥ ८५५ ॥ एकः प्रजासर्वे देवः,  
 “सर्वेभ्यः सर्वदेवता । वीर्यगो मन्त्रेणो, मन्त्रावेष्टाद्विस्तृतः ॥ ८५६ ॥ सकलो मुन्ननमर्चाऽसौ, सद्योऽपि निगद्यते । निष्कलो मोक्षमा-  
 “यन्तः, स एव मुन्ननमर्चा ॥ ८५७ ॥ इदं सन्नमं मिश्रित, यैः स देवोऽप्यवारिषः । देवां मानाविषाः दान्ता, भेदपुत्रि न कुर्वते ॥ ८५८ ॥  
 “यथाहि—स शुद्धा मोक्षार्थां कोके, प्रका विज्युर्भवेत्तर । विनेयरोऽपि वा इत्य, नार्थभेदव्यापि च ॥ ८५९ ॥ य एव तं परिज्ज्ञाय,  
 “मन्त्रेयस्तेव स मनु । मन्त्रादि तत्र भाव्यीति, सर्वो मत्सरविषमाः ॥ ८६० ॥ एतदेव भावतोऽभीष्टस्तस्यासौ कुरुते क्षिपम् । न  
 “पुनर्भवे पानीयं, यद्व्याजस्यापि वार्यते ॥ ८६१ ॥ निःशेषोऽसमिर्मुक्ता, स समः सर्वदेविनाम् । विज्ञातः कुरुते मोक्ष, तादीया  
 “कस्य ज्ञाह्वी ॥ ८६२ ॥ संसारिणां हि नानास्वमात्मनां कर्मविभिन्नम् । कर्मोपपन्ननिर्मुक्ता, परमात्मा न पिपद्यते ॥ ८६३ ॥ स देवः

“वस्त्रापाये पुनः पुंसां, सद्युदेत्योर्ध्वं गते । अथ सद्यस्ते नूनं, मेघदुष्टिर्निवर्तते ॥ ९०२ ॥ आत्मा साधारणो ह्येष, सर्वेषामपि बाधितान् ।  
 “समलो म विजानीते, मोक्षमार्गं यथास्थितम् ॥ ९०३ ॥ मध्यमे पुनस्तस्य, मोक्षमार्गो यथास्थितः । परं यत्र स्थितस्मापि, हठादेष म-  
 “कलयते ॥ ९०४ ॥ एतन्मेदं विनिश्चितं, दृष्टेन पारमार्थिकम् । स मुञ्चेदापह् स्वीयं, यथा योक्त मनीषिभिः ॥ ९०५ ॥ रिक्तस्य ज्ञानो  
 “जोवस्य, गुणदोषान्तरयवः । स्थितव्या एव केनासी, सिद्धान्तविषमप्रज्ञाः ॥ ९०६ ॥ अहं जातरजावत्स्य, मदीय जात दृष्टेनम् । न  
 “स्वदीप्यमिदं सद्यं, मत्सरस्य विवृत्तित्वम् ॥ ९०७ ॥ किं बहुना !—यावन्तो वेदितो लोके, यथावस्थितवद्वयः । ते सर्वेऽप्यत्र वर्तन्ते,  
 “वाञ्छिके ह्युद्वर्धते ॥ ९०८ ॥ निर्दममज्जगत्से, विनाश कैव कुर्वते । अथ कुर्मुकावत्सोऽप्यो, दातव्यैरेकवाक्यवता ॥ ९०९ ॥ ये स्वकी  
 “जानकस्तेन, विपरीतचिन्तितः । स्वकीयं व्यापकस्तेन, सगिरन्ते समस्तदाः ॥ ९१० ॥ तेषां ज्ञातव्यकल्पानामपकर्षनमुत्तरम् । कथमा  
 “तस्त्वमार्गं ते, बोधनीयाः प्रथमतः ॥ ९११ ॥ शुभम् । न मोहदलनावन्त्यो, ह्युपकारो महत्तमः । अतो बहुलं भवता यदुव—  
 “स्वदीप्यं व्यापि वेदीप्यो, बहुलाय किमुत्तरम् । एतदं ते मयाऽऽख्यातं, प्रथिमावविबर्जितम् ॥ ९१२ ॥ यावदुष्टिर्निवादाज्ञे, निःशेष-  
 “नवसागरे । कुट्टितरितः सर्वो, पठन्तीर्द्रव्यसि स्फुटम् ॥ ९१३ ॥ एतदे सर्वसन्नेहा, शास्त्रनि प्रलयं यदा । ज्ञास्यसि त्वं यथा  
 “नास्ति, सर्वज्ञवचनात्परम् ॥ ९१४ ॥ शुभम् ।” एतो निर्दमस्त्वेदं, प्रथमं गुरुमाधितम् । संज्ञातः दीप्यतीकोऽसौ, विशेषागमवत्परः  
 ॥ ९१५ ॥ काश्चकमेव सपन्नो, द्वावशास्त्रस्य पारगः । समन्वयमद्रसूरीणामसौ पावप्रसादवः ॥ ९१६ ॥ अनन्तगमपर्यायः, साक्षिशेषः  
 सविस्तरः । सर्वज्ञागमसम्पन्नः, सर्वोऽस्य मनसि स्थितः ॥ ९१७ ॥ एतोऽनुयोगोऽनुज्ञातः, सगच्छस्वस्य सृष्टिभिः । दृष्टमाचार्यकं स्वीय,  
 कृतमानुष्यमात्मनः ॥ ९१८ ॥ आचार्यज्ञापनायां च, वक्ष्यामरत्नेर्युगा । कथा विधानयो वेदसाङ्गपूजा शिनाष्टकम् ॥ ९१९ ॥ एतः स

“सत्त्वं, हेतुः सर्वकारुणिकयोः । तदेव विमलं नीचं, कारणमुज्ज्वलमोक्षयोः ॥ ८८३ ॥ यद्वाभार्यभिमे सर्वे, तपोभ्यान्प्रवाहयः । निश्चिन्ना  
“ब्रह्मणे कोष्ठे, तत्सर्वं पारमेधयम् ॥ ८८४ ॥ दानं धर्मोपरं तस्माच्छ्रुत्वा न च तदाश्रयम् । क्रिया च कर्मभी तस्य, मोक्षमार्गः स की  
“र्तितः ॥ ८८५ ॥ एतच्च तत्त्वं वैरं धर्म्मपरिहारात् ह्यवशुसिद्धिमा । मेवमिच्छन्प्राविशान्तां, तेषां प्राप्तिः श्रुत्यस्तिष्ठा ॥ ८८६ ॥ केचन  
“अपकलीने, मूढकोष्ठं कृपायतः । तत्त्वमार्गात्प्राप्तिप्रदं, वास्तवार्थविवर्धकम् ॥ ८८७ ॥ एतदेवैवै सप्रसासेन, तत्त्वं साध्यामिह भवतः ।  
“आत्मार्थं वीक्षिमिद्विजलं, पठन्ते कारयोगिताः ॥ ८८८ ॥ इदं चादिचरुं कोष्ठे, एवैव मानवः स्थितम् । यथा बौद्धोऽप्यनेनैव, साध्या  
“महाप्रसन्नतः ॥ ८८९ ॥ आत्मनोऽन्तस्त्वसम्यग्दर्शनान्तमवधीविषयः । समूर्ध्वस्याधिकृत्य, स्वरूपस्थितिस्थपः ॥ ८९० ॥ एतदिदं निरुद्धिः  
“सात्त्विकं, निश्चिन्नात्मनश्चयम् । अयत्तं मया निर्वाणं, पानयत्तकं वाचकाः ॥ ८९१ ॥ समकामिनिश्चिद्वचनं, केचनानुज्ज्वलनीरितम् । केचन-  
“मुदितस्तु नोभावा, स धर्मविरक्तमप्या ॥ ८९२ ॥ एतुमिदं पारमेधेन, बरेवमनुज्ज्वलितु । अमुपश्रान्तुस्तं तप्तु, हेचपथे प्रसिद्धितम् ॥ ८९३ ॥  
“वदेवसिपद्यदेवचर्यं तत्त्वनिर्देशकम् । सत्यकाशमीदृशकोष्ठे, मोक्षस्य प्रसिपादकम् ॥ ८९४ ॥ एतेष्टान्प्राप्तुं सार्धं, प्रसासेन प्रसिद्धितम् । एतेक-  
“सिद्धिं धर्मं, अत्यन्तं परिकीर्तितम् ॥ ८९५ ॥ गुणम् । अमुं च-तस्य मार्गार्थं, परित्यागं सिद्धेयता । धर्मैरभिहितैः सर्वैर्यथेष्टमभिधीयते  
“॥ ८९६ ॥ ईश्वरं वा एतुभवेत्, अत्यन्तं वा निगणयाम् । मार्गैर्यदं वा गीयेत्, कीदं वाऽप्यभिधीयताम् ॥ ८९७ ॥ केनेन वा निवे  
“देयं, आचार्यसिद्धिं मानवीः । अविनाष्टे हि भावार्थं, शब्दमेवो न पुप्यति ॥ ८९८ ॥ अर्थेन हि प्रसीदन्ति, शब्दमप्यत्रेव नो गुणाः ।  
“संशुभेदेव द्रष्टुजो, सुखं एव निर्यमकम् ॥ ८९९ ॥ एव च स्थिते—त्यदिचार्थं वेत्तेऽपि, बरेतुद्योगिर्दकाः सत्यम् । एतानं व्यापकत्वेन,  
“न विवाद्योऽसिद्धिं वैः एव ॥ ९०० ॥ आत्मसाधितानां मोक्षेन, वीजवटीकमदासुप्ते । अमुमि-वर्तमानादीनि, मोक्षोऽयं संभवति ॥ ९०१ ॥









भाषार्थ इस अत्रका इस प्रकार है कि समस्त लोक अपर नीचे इधर उधर सब ओर भुद्रर्त्नोक्तिरि भावा गण मराडुआ है । ते भुद्रल अनेक प्रकार परिणामन की योग्यता को मात्र हो रहे हैं । तिनमें अनन्तानन्त भुद्रलपरमाणु कम होने योग्य भी समस्त लोक में फरे है वहां आत्माके प्रवेश हैं, वहां भी विधमान हैं अथवा छिपे हुए हैं । सब यह आत्मा। मन पवन, काय योगी द्वारा सकल्प होकर कलाय सखि होता है, वह सब ओरसे समस्त आत्माके प्रवेशोक्तिरि कर्म के उत्पन्न होने योग्य भुद्रलस्तन्त्रों का प्रमाण बताता है सोही बन्ध है अथवा यदि कहिये कि कर्म के हेतुसे (—कर्मण १॥११) यह आत्मा कयाय सहित होता है । मन पवन काय योगी द्वारा सकल्प होता है, वह सब ओरसे समस्त आत्म प्रवेशोक्तिरि उचित ( योग्य ) भुद्रल-

बोनों में जाता है । प्रथम पुरुष (—अथ पुरुष सित पुरुष) एक पञ्चल वतमात्र कातकी विद्या का विद्वत् परस्मैपद में ति और आत्मनयदमें भव है । अथवा आत्माके प्रथम अन्तर्गत हो तो उस आत्मा के प्रथम स्वर को उद्गार कर देते हैं । जैसे हृद् आत्मासे हृदो कोहरा कर देनसे हृद् ही जाता है इभा कीय स्वर हृदोको जाता है हृदस्त्रिये वाया का वया होयया । परस्मैपदी पूर्वोक्त क्रिया का 'ति' किम्ब लगानसे 'वयाति' बन्नाया है यदाति = वह होता है परन्तु आत्मव्यति = वह वगैरे वह प्रवृत्त करता है । अथ माय यह है कि आत्मव्यति को सूत्रमें न लगाकर आत्मसे क्यों लाये ? पर किन्ना का क्या होता है । जैसे पञ्चति = बंध पञ्चतावे परस्मैपद में यह क्रिया है और क्या यह है कि वह रत्नाई करता है जिसको अन्य पुरुष इसी प्रकार आत्मसे का प्रथ है कि और कर्म के योग्य पुरुषोंको प्रवृत्त करता है और उन का पुन प्रपुन कर्म या कुछ भी होगा उसका मोका बढा और होगा अथवात् अस्मै ही जाते अथ करता है । इस क्रिये आत्मव्यति न आकर आत्मसे लाये हैं । आत्मसे आत्म आत्मव्यति से सब भी है परन्तु हमारी बातमें प्रथ की पञ्चार्थता प्रकट करता ही वहां पर आत्मो आत्म का विवेक कराय जान पड़ता है । आत्मसे आत्म और आत्म कतिपय 'यत्ने' आत्म (देखा) अं० सर्वार्थसिद्धि अत्राय २ सूत्र २ पृष्ठ ४६० मयमादित 'यत्ने स्थाने यत्ने दृष्टि यत्ने' इस प्रकार बात है कि वा और या के अथ का आ यत्ने सब कर्मसे हृद से में आत्मा (—आ) आत्मसे आत्मसे (हृदा) होता है । वा के आत्म यत्ने में प्रथम पुरुष एक न बन नमामय काय क्रियाक रूप [अ] वा, हृदसे अस्मै विवृत्त अस्मै होता है । ति पूर्वोक्त क्रिया का किन्ना लगान से दाति । —वह करता है । दो जाता है ।

[ब] वा, हृदसे अस्मै विवृत्त अस्मै होता है । ति पूर्वोक्त क्रिया का किन्ना लगान से दाति । —वह करता है । दो जाता है ।

[ग] यदाति (परस्मैपदमें होता है) —इस वा का अर्थति और यत्ने यत्ने के अर्थसे विवृत्त कराय न जुके हैं । इस अर्थसे इस सीधे पात्र में सब आत्मन [घ] वा (अनुप पञ्च परस्मैपदमें) इस आत्मसे आत्मसे (हृदा) होता है । वा के और भी कई अर्थ हैं परन्तु

सह कथायुग वर्तत इति सकथायः । सकथायस्य भावः सकथायत्वम् । तस्मात्सकथायत्वाद्वा त  
पुनर्द्विनिर्देश किमर्थम् । जठरानन्धाशायानुरूपहारग्रहणवरीत्रमन्दमध्यमकथायाशायानुरूपस्थि  
त्यनुभवविशेष

वि

१९

स्वप्नो का प्रण कृता है वही बन्व है । यह ही एक बन्व है । मन्मथकार के बन्वसे यहाँ प्रमाण नहीं है । द्विसे गुण और  
गणीके भी बन्व है सो बन्व यहाँ न जानना । कर्मके नियतसे आत्मा में कथाय उत्पन्न होती है इस वाक्यका स्रापक है कि आत्मा  
और कर्मका सम्बन्ध बनाना ही कथ्यसे है ॥ पुरुषत्वके लेख्य मन्त्र है । अणुवर्णना, संख्यावाणुवर्णना, असंख्यावाणुवर्णना,  
बलान्ताणुवर्णना आहारवर्णना, अमाह्नवर्णना, तैलवर्णना, अमाह्नवर्णना, भागवर्णना, अमाह्नवर्णना, मनोवर्णना, अमाह्न  
वर्णना कर्मवर्णना, प्रवर्णना, सांकेतिकतरवर्णना, शून्यवर्णना, मत्तेकशरीरवर्णना, ध्रुवशून्यवर्णना, वादरनिगोदवर्णना,  
शून्यवर्णना, दूरसन्निधोदवर्णना, नमोवर्णना, महारक्तवर्णना । सेईस प्रकारकी कर्माणांमते अणुवर्णना में अवश्य उत्कृष्ट भेद  
नहीं है । शेष कार्यसे जातिरूपवर्णनाओं में बन्वत्वं उत्कृष्ट भेद है । तथा इन कार्यसे जातिरूपवर्णनाओं में भी आहारवर्णना, भागवर्णना  
(= बलान्ताणुवर्णना) मनोवर्णना, तैलवर्णना, कर्मवर्णना ये पाँच प्रवर्णना हैं अर्थात् येही आत्मा, बन्व, संवर, निर्जरा विषय में  
बीच के साध सम्बन्ध रखती हैं और बलान्ताणुवर्णना कर्मरूप में परिवर्तित होती रहती हैं । आहार वर्णनाओं के द्वारा आहारिक  
वैकृतिक आहारक ये जान शरीर और इवासेच्छास होते हैं । तथा ज्योतिर्योक्ता रूप स्कन्धके द्वारा तैलस शरीर बनता है ॥

प्रत्यनुवाद—सह \* कथायस्य \* वक्ष्ये ॥ इति \* सकथाय \* ॥—कथायकार संहित (=सह) वर्तता है ऐसा सहाय्य है ।

सकथायस्य \* भाव \* सकथायत्वम् ॥, कथायत्वं ॥

सकथायत्वात् ॥ इति \* ॥ पुनः \* हेतुनिर्देशः ॥

किम् ॥ ॥ अर्थम् ॥ ॥

सह-मभि-आशय-प्रत्युक्त-

आहार-पुरुषत्व-दीप्त-मन्-मध्यम-कथाय-

आशय-प्रत्युक्त-स्थिति-अनुभव-विशेष-

=सकथायका सत्ता वा होना सा सकथायपत्ता है जिस  
=कथाय सहितपत्ता (के हेतु) से यत्ता (सकथायत्वात्) है (प्रत्य) धृति दृष्टकानिर्देश  
=कर्मों किया अर्थात् धृतिसे सकथायत्व शब्दकी पञ्चमी विभक्ति (सकथायत्वस्य) कति  
हेतु क्या सो इस हेतु के करने का क्या अभिप्राय है ? ।

व्यवहार सत्ता वा पेट में (=सह) अभि के आशय अथवा पचने के स्थानके अनुसार  
=आहार पुरुष क्रियेमाने के सहाय्य दीप्त, मन्द, मध्यम कथायके

=स्थानके प्रत्युक्त (कर्मों की) स्थिति (बन्व) की और अनुरूप बन्व की विशेषता

प्रतिपत्त्यर्थम् ॥ अमूर्तिरहस्त आत्मा कथं कर्मादत्त इति चोदितः सन् जीव इत्याह ॥  
जीवनाज्जीवः प्राणधारणादायुः सम्बन्धानामुर्विरहोदिति ॥

प्रतिपत्ति-मर्मसूत्रम् ॥

—मत्तत्त्वनेके विधे ( हेतुका निदेश पक्षमी विधितिकरि क्रिया ) है अर्थात्  
अग्निप एवमे प्रकृतिविषय स्थितिबन्ध अमुष्मन्धम और मधेशधन्य कहेंगे । उनमें  
प्रकृतिबन्ध और मधेशधन्य तो धाव द्वाता होते हैं ॥ सो पक्ष फर कहते हैं  
कि वेवे उतर पक्षके स्थानकी सीध, मन्द, मध्यम अग्नि के मनु तार अक्षरका  
रव, शक्ति, मांस, पेदा, अस्ति (—हृष्टी) मधमा, शुक्र ( दीर्घ ) और लव  
(—वृद्धि) भाव भावि रूप परिणमन होता है । तेसे ही कथायके आक्षेप वा  
स्थानों की सीध, मन्द, मध्यम अवस्था के मनुक्त कर्मोंकी स्थितिबन्धकी  
तथा मनुभाषनकसे विशेषता होती है ।

(१) अमूर्ति है ॥ अहस्त है आत्मा है ॥ कथं कर्मादत्त ॥ आदत्त ॥  
इति चोदित है सदा है इति आह ॥

वीर्यनाद है ॥ वीर्य है प्राणधारणार्थ है आयुस सम्बन्धादि है

न आयुस्-मिराद है

इति

—आत्मा अमूर्तिक है, हाथ रहित है कैसे कर्मको (—कर्मादत्त) प्रणतता है  
—आत्मा मरत (—वादि) होनेपर (—मृत) जीव ऐसे कहते हैं अर्थात् इस एव में  
वर्णित म कहते परिभाषा आचार्य माने कहते हैं ।  
—वीर्यसे वीर्य है प्राणके पारणसे आयु ( नामप्राण के) सम्बन्धसे ( वीर्य ) है  
—न कि आयु (नामा प्राणके) विकल दत्त अक्षर एवकासे (सीध) है ।  
—वेदा ( वीर्य कर्मको प्राण करता ) है

( २ ) मूर्ति मय जीविना होता है पक्ष पर अमूर्ति मय आत्मा मयका जो सदा परिणत होता है विशेषण है । इस विधे अमूर्ति मय मी पुक्तिना  
है मय पक्ष है आत्मा मय है मूर्ति विस्तकी सो अमूर्ति है । ( २ ) प्राणके मूल सेव वाद है आर विधेय और निवृत्तिवित्त न विचयमें एव  
है तथा परिभाषा से मयवादा तथा विधय वीर्यकी वस्तु सेव वृत्तकीसा ( मयवादा ) से है —

इसी पक्ष मय जीव मयस आह रस मय मूल वाद इन्ही मय मयस आह मायिने ।  
एव वीर्य वा मय वीर्य आने न वैदिका ऐसी मय सेवी विवादा वीर्य जानिये ।  
सुख सदा बोध और वेदान विधे है प्राण सारवत् स्वमाध वात फालमें नवजायिने ।  
विवादा विधे रसकय मात सारमात सेव वीर्य रसु कलसे सुवी विवायिने ॥ १ ॥ ( प्राणवादा मी अद्वैतान्तरिक मय मय )

कर्म योन्यानिति लघुनिर्देशात्सिद्धे । कर्मणो योन्यानिति । पृथग्विभक्त्युच्चारणं वाक्यान्तररूपाप-  
नार्थम् ॥ किं पुनस्तद्वक्त्यान्तरम् । कर्मणो जीवः सकषायो भवतीत्येकं वाक्यम् । एतदुक्तं भवति-  
कर्मण इति हेतुनिर्देशः कर्मणो हेतोर्जीवः सकषायो भवति नाकर्मकस्य कषायलेपोऽस्ति ततो जीव  
कर्मणोरनादिसम्बन्ध इत्युक्तं भवति ॥ तेनामूर्तो जीवो मूर्तेन कर्मणा कथं बध्यते इति चोद्यमपाकृत  
भवति ॥ इतरथा हि

कर्मपापान् हरिः क्खुनिवेष्टात् । सिद्धः ॥

कर्मणः १॥ पाप्मानं १॥ वि० पुत्रकृत्स्निकं नृत्वारणम् १॥

नामपञ्चमस्तथापि अर्थः । " किम् पुनः त्वम् ।

नामः-सुमनाम् ।।।।। कर्मणः ।।।।। श्रीव १ । सकलभाषः ।।

॥ कर्म-फल-पत्र ॥

॥ इति श्रीनन्दसु ॥

६ "जिना ॥" इति ३ सकृदायः॥ मन्त्रि ८

अथ चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥

अथवा न । कदापि न । अथवा न ।

[illegible]

कौ० अपठ ॥ तन ॥ भवन ॥ काल ॥ काल ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

न (परान) कर्मयोग्यात् एसी सिद्धि पोष करन (कर्मयोग्यात्) से हो नातो अर्थात्  
दुष्टमें कर्मयोग्यात् वाक्यके स्थानमें कर्मयोग्यात् दुष्टनाकम दीक होण ।

इत्यथोक्त्या धौर योग्यान् ऐसे (दो) न्यारे कारकोका वर्णन वा कथन

नदर/प्रमाण और नदर/प्रमाण

अथवा तत्र ३ । अर्थमे श्रीम लखाना सति

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

वर्गा ६ एसा एक बालूना कय बा

=रात्रादिकामाणाः (कामास) एव (कामासु) कथं

नमस्ते निमित्तस्य ज्ञानं साधनं वा ।

१० • नमो राशि (गौरी) के कलाप का उगाव नही है, तब (हनुमदक्ष) के

एवमपि कर्मणा अनादि संयोगे हेतुसा अथ वा आशय वा कथन इति वा

=विष (श्रीव कर्मके जलादि सम्बन्धनादि) से प्रामाणिक जीव भूतक कर्मो

व्याप्य भाव है ऐसी वर्णना या प्रत्य (व्योय) निराकृत होता है

अर्थात् (अ) अन्त्येष्टि नदी कर्मका अनादि सम्यक् न मान करि अन्त्येष्टि





तेन आत्मगुणोद्भूतो निराकृतो भवति तस्य संसारहेतुत्वानुपपत्तेः॥ आदौ च प्रति हेतुहेतुमन्वाय  
व्यापनार्थम् । अतो मिथ्यादर्शनाद्यादर्थिकतस्यात्मन सर्वतो योगविशेषाः । षासुक्ष्मकक्षे  
वरागहिनामनन्तान्तप्रदेशां पुद्गलानां कमभावयोजनाम ॥

तेन १॥

आत्म-गुण १ अष्ट १ निराकृतः १ मति १  
सम्पद १ ससार-हेतुल-  
अनुपपत्ते १ ॥

निरव (कर्मके पुद्गल स्वरूप मय होने अथवा कर्मको पुद्गल परमाणु का स्वरूप होने) से

आत्मिका अष्ट गुण (कर्मको माननेका सिद्धान्त) अपाकृत अथवा दूर होता है ।

कार्यिक विषय (कर्म) के (यदि कर्म आत्माका गुण होय तो) ससारके कारणपनका

साधन (अपवधि) नहीं (अन्त) हो सकता है भावार्थ अक्षरमें पुद्गलशब्द इसलिये लाये हैं कि

कर्म पुद्गल स्वरूप हो वा पुद्गल परमाणुका स्वरूप हो । कर्मको पुद्गलका स्वरूप होनेसे

वैशेषिक मता आदिकके इस सिद्धान्तका निराकरण होता है कि कर्म आत्माका अष्टगुण

है और कर्मको यदि आत्माका अष्टगुण माने तो कर्म ससारका हेतु नहीं होता है । कर्म

पुद्गलमयी है आत्मिका गुण नहीं है इसलिये इस सिद्धान्तकी पुष्टि होता है कि कर्म ससारका कारण है

आत्मके ऐसा (भाव) हेतुके और हेतुमानके

भाव (कार्यके) प्रपट करनेके लिये है क्योंकि मिथ्याकर्म-अतिरति-प्रभाव-कलाय-चाग

ये हेतु हैं और हेतुमान अथवा कार्य (पुद्गल कर्मका) कन्व है ।

निराश्रये (ऐसा कार्य बिना होता है कि) मिथ्यादर्शन आदि के आत्मसे

नीलाभया (आशीर्कृत) वा सीले हुए (अशीर्कृत) आत्मके

सब ओरसे अथवा सब कर्मसे योगके विशेषसे तिन स्वरूप

एक क्षेत्रमें स्थिति करनेवाले (प्रमाणानिनाय) अथवा रत्नोत्पत्ति (प्रमाणानिनाय) अन्तान्त

प्रदेशानाम् पुद्गलानाम् कर्मभावयोजनाम् कर्म होने [अथवा] योग पुद्गलके प्रदेशोंका

[१] आत्म (वस्तु) १ "इति हेतु-हेतुमत्  
भाव-रूपायन-वर्ग १ ॥"

अठ १ निराकृत १ मति १

आत्म-गुण १ अष्ट १ निराकृतः १ मति १

सम्पद १ ससार-हेतुल-  
अनुपपत्ते १ ॥

आत्म-गुण १ अष्ट १ निराकृतः १ मति १

सम्पद १ ससार-हेतुल-  
अनुपपत्ते १ ॥

आत्म-गुण १ अष्ट १ निराकृतः १ मति १



आह किमयं वध एकरूप एव, आहोस्त्रियप्रकारा अप्यय सन्तीत्यत इदमुच्यते—

॥ प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥

सर्वार्थ

सिद्धि

11

[स] आत्मा बन्धरूप आगती परिसर्गो है तिससे बन्धको कर्षा कहिये । यहाँ कर्षसाधन है ।  
 [ग] पाहिजे बन्धकी अपेक्षासे आत्मानन्दकीर नवीन बन्ध करने है तिससे बन्ध फलसाधन है ।  
 [घ] यदुरि बन्धन रूप क्रिया सोही भाव ऐसे क्रिया रूपमी बन्ध है यहाँ भाव साधन है ।  
 [च] न्यह प्रलन करता है कि यह बन्ध एकस्वरूपी है । १। अथवा [=आहोसिच]।  
 आहोसिच=अथसौमन्त्र १। एकस्वः १। अथ=आहोसिच ० न्यह प्रलन करता है कि यह बन्ध एकस्वरूपी है । १। अथवा [=आहोसिच]।  
 प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधय = प्रकृति स्थिति अनुभव-प्रदेशाः तद् (बन्ध य) विधय ॥ ३ ॥  
 = प्रकृतिस्थित्यनुभव-प्रदेशास्तद्विधय = प्रकृति स्थिति अनुभव-प्रदेशाः तद् (बन्ध य) विधय ॥ ३ ॥

प्रकृष्टित्व-स्थितिबन्ध-अनुभवबन्ध-भेदिकत्व-कष्ट(बन्धस्य) विषय भवन्ति ॥

सुवार्थ-प्रकीर्णः ॥ स्थापितः ॥ अनुभवः ॥

प्रदेयावन्तः॥ हृदयवन्तः॥ मेदाः॥ भवति॥

प्रक्राविक्रम स्थितिक्रम, प्रानुभवप्रभव

प्रदेशवन्ध-उत्सव चके भेद है अर्थात् कर्माणि वर्तनाओंमें भाठ प्रकार (ज्ञानके ढकने वाले, दर्शनके आच्छादन करने वाले, सुख दुःखका अनुभव करने वाले, मोह उत्पन्न करनेवाले, शरीरमें कलकी मर्यादा किन्ने हुये आत्माके अटकानेके आत्माके स्थिय नाना प्रकारके शरीर धारणोपांग आदि रचनेके, जीवके ऊच नीच कुलमें उत्पन्न करनेके आत्माकेन्द्रान, ज्ञान, योग उपयोग, वीर्यमेषाद्या बहने के स्वभावका रसक पढना से प्रकृति बध है। कर्म (अपने स्वभाव को छोड़कर) विकर्ते कालक आत्मासे मिस्र न हो सो स्थिति बन्ध है। कर्मों में तीक्ष्ण, मध्यम, मूढ़, रस (कल) देने की शक्ति होनेको अनुभव बन्ध अथवा अनुभाव बध या अनुभाग बन्ध कहते हैं। भाठ प्रकारके कर्मों का आत्माके सर्व प्रवेशोंमें एक प्रवेशमें आत्मा के साथ अथवा हर स्थिर रूपसे रहते हुए नीर भीरवत् संबन्धका होना से प्रवेश बन्ध है।

(१) ह्यारो ब्रह्मनाथं सूक्तका करो भद्रुसव श्रीर कर्त्री भद्रुभाव पाठ है । एवं गेमभर आत्मनाथके उभाप्रात्तवापाधिविनामसुत्रमें तथा साध्यानुष्ठाराणी गन्तापर्यङ्काने भद्रुभाव पाठ है श्रीर नन्दयोगे साध्योमे विष्णकोविषाकोद्भव भद्रुभाव क्रमसे (हमार परार्द्धि २९वां सूक्तका पाठ है प्रत्ये एक ॥

## अवस्था

^

924

२३

सिद्धि

सर्वार्थी

प्रकृतिः स्वभाव । निबस्य का प्रकृतिः<sup>१</sup> तिकता । गुडस्य का प्रकृति<sup>१</sup> मधुरता । तथा ज्ञाना-रणस्य का प्रकृतिः<sup>१</sup> । अर्थानवगमः । दर्शनावरणस्य का प्रकृति<sup>१</sup> अर्थानालोच (क) नम् ॥ वेद्यस्य सदसल्लक्षणस्य सुखदुःखसवेदनम् ॥ दर्शनमोहस्य तत्त्वार्थाश्रद्धानम् ॥ चारिव मोहभ्यासं यमः ॥ आयुषो भवधारणम् ॥ नाप्नो नारकादिनामकरणम् ॥ गोत्रस्योच्चैर्नीचै स्थान सञ्चदनम् ॥ अन्तरायस्य दानादि विधनकरणम् ॥ तदेवं लक्षण कार्यम्—प्रक्रियते प्रभवत्यस्य ॥ इति प्रकृति ॥ तत्स्वभावादप्रच्यति स्थितिः ।

इत्यादिवाद् — प्रकृति ई 'स्वभावः' निमित्तस्य ।

कदा 'महोत्ति' ? विकारा ? गुह्यार्थं कदा ?

महर्षिः१॥ मनुवा१॥ क्वा० ज्ञान आशरणम्॥

का०१११ प्रकृति ११११ अर्थ-अनन्त-अनन्त ११११

धर्मनाशरणस्य ॥१॥ का ॥१॥ प्रहृदि ॥१॥? अर्ध-अन

आर्षेय ( क ) नमः॥

वेदव्यासः॥ सत्-असत्-सकलव्यासः॥

संस्कृत-शब्दावली

दर्शन-मोहस्पृह ॥॥॥ कर्त्तार्य-अपराधनिम ॥॥॥

वादिभ्योऽप्युक्तं वाच्यम् ॥॥ वाच्यम् ॥॥ वाच्यम् ॥॥

नाम्नः ॥ नाक-आदि-नाम-रक्षणम् ॥ गोत्रम् ॥

राक्षसी गीर्वाणस्य भ्रातृपुत्रः ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

दानं च ॥ इति वचनात् ॥ १॥ इति वचनात् ॥ १॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अप्रकृति है सो ज्ञान वा शील वा लक्षण [अस्वभाव] है, नीमका

मन्त्रा भगवाव हे ! कन्दान्न वा कुरुका, गुदका कया

व्यथावहै, मीठापन, मिठास, मिष्टता, वैसे ही ज्ञानाधरण ( कर्म ) का

स्वभावात् । पदार्थानां वस्तुत्वा न जानने हेतात् ।

वर्तुणाराण (कर्म) को क्या धान है अथवा क्या अक्षण है । पदार्थ का न

संस्कृतभाषायां अर्थात् कर्मके सामान्यश्रवणान्न भयं नश्येति भाष्येन प्रत्यक्षम् ।

मन्त्रीपक्ष प्रभार (सूत=साहोदेनाम) अथवा (अमरा=देवोम) इत्यादि (३३७)

एषां ह्येव अत्र भोगो (समवेत) है ।

८३ दर्शनमोक्ष (समाधान) सत्यार्थिनां शक्तिव्यापारे भक्त्या यथाकार्यं विज्ञायते ।  
मुखा मुक्ता रत्न वस्तुभूषणानि । (=सम्पदन) इति ।

॥ अथाग्निं मोहकं (सिक्काम्) मयान्वा न वेने वेनेम् । अथाग्निं कल्लं वेनेम् । ॥

॥ अथ भाषा (प्रकरण) सप्तमं रूपं नान्नं वृत्तात् । आधुना (प्रकरण) प्रथमं रूपं नान्नं वृत्तात् ॥

नामका (प्रकृत) नारकादिक नामका कारण। = कारण। इ म

एक नवीन स्थानक कथन का है। अनुरागका (संज्ञा)

इदंन काह्म वावा कनका है, उस प्रकृति का इस प्रकार वाद्यय हुआ कि

नन्वसत्ता।=मरणाः<sup>(१)</sup> कथं मकराकारे किंवा भावा इ,<sup>(२)</sup> विसत्ता।=मरणा<sup>(३)</sup> ] कथं प्रागट शब्दा ।

मादिस्वभावादप्रच्युति स्थितिः। तद्वत्प्रविशेषोऽनुभवः। यथा-अजालोमहिष्यादिक्षीराणां तीव्रमन्दादिभावेनरसविशेषः। तथा कर्मपुद्गलानां स्वगतसामर्थ्यविशेषोऽनुभवः॥ इयत्तावधारणं प्रदर्शः।

यथा-अजा-गो-महिषी-आदि-क्षीराद्यर्थः॥

मायुर्य-स्वभाववत् अत्रच्युतिः। स्थितिः॥ तथा-व्योते स्वभावतः बीज न होना (अप्रच्युति, स्थिति है ऐसे बालावरबादनामर्थ अर्थ-अन्त अरुणमादि-स्वभाववत्-बालावरबादिकानिके परावका न ब नने देना आदिक स्वभावसे [अव तक] अप्रच्युतिः॥ स्थितिः॥

आत्मसे भूदा न हों वह स्थिति धम्मा है।

सद्व-स-विशेषः। अतुभ्यः॥ यथा-अजा-गो-महिषी-वित्तिक (कर्म) केरावका (तीम-मन्द प्रथम) विभेयसे अतुभास है जैसे बकरीगाय बैस (अमहिषी) आदि क्षीराणाद्यः॥ ज्ञीय-मन्दविमलनः रस-विशेषः॥ ज्ञातिक गुरुका सीला धीमादिक स्वरूप करि (अभावेन) रस (स्वाद का विशेष है) तथा कर्मपुद्गलानां स्वगत-सामर्थ्य-विशेषः। अतुभ्यः॥ (इयत्ता-अन्वधारणम्) प्रदेयः॥

अतुभ्यः वा अनुभास है। गितली (इयत्ता) वा सक्या (इयत्ता) का निरवयवतना सो अतुभ्यः है कि इतने दोषपर्याप्त परमाणुओं की गिनतीकर अवधारण वा निरवयवता प्रदेय है।

(१) इयत्ता इयत्ताप्रदेशः॥ ॥ ॥ ॥ 'कम मात्र परिचित गुरुगण रक्तधनां परमाणु परिच्छेदोन्नायकार प्रदेय इति व्यपविरयते। तस्यापराज

वार्तिक पृष्ठ २६६। पुरुषाव स्यामीक उपयुक्त शब्दों कायोंमें से पहिलेको तस्यापराजवार्तिक के कर्तासे सार्वर्थापत्तिक कथन माना है आर दसरेको सार्वर्थापत्तिक स एकर व्यापका के कर्तासे यथापत्ति दिया है। इति व्यपविरयते (अर्थात् विवेचनसे अवश्य दिया गया है) अर्थात् बाज्य है। तस्यापराजवार्तिकको 'इयत्तावधारण प्रदेय है' एक शीलोपर्योक्त पञ्चपञ्चमीन अथवा जवकिर्तामिस्म प्रकाशकसे अतुयाव विद्याही इयत्तावधारण प्रदेय (इयत्ता-अन्वधारणम्) प्रदेय।

'अतुति परमाणु किन्ता पञ्चविक्रय अवधारण को पद है सा प्रदेय है,

अतो गुरुगण परमाणु के स्वरूप कम मात्रा परिच्छेद

= तिनका गणनाकर परिमाण पाते करिये है साप्रदेय है। तिनका = परिमाणु किन्ता

कर्मभावपरिणतपुद्गलस्कन्धानां परमाणुपरिच्छेदेनावधारणं प्रदेश ॥ विधिश्चोद प्रकारवचनः । त एते प्रकृत्यादयश्चत्वारस्तस्य बन्धस्य प्रकाराः ॥ तत्र योगनिमित्तौ प्रकृतिप्रदेशौ कषाय निमित्तौ स्थित्यनुभवौ । तत्प्रकारप्रकर्षभेदात्तद्बन्धविचित्रभावः । तथा चोक्तम्-जोरा पचडि पएसा ठिदिअणुभावा कसायदो कुणदि । अपरिणदुच्छिण्णोसुय वंधठिदिक्कारण णरिया ॥ १ ॥

कर्मभावपरिणतपुद्गलस्कन्धानां परमाणु-  
परिच्छेदेनैव कषायारण्यम् ॥ १ ॥

कर्मस्वरूपको परिच्छेदोद्भवस्तत्प्रकारको परमाणुप्रोक्षे  
माणनाम्नि (परिच्छेद) निरूप्य कर्तना (प्रवर्तण) सो प्रदेश है ।  
अर्थात् परमाणुप्रोक्षे के स्वरूप को गानातरणादि कर्म स्वरूप में परिणमन वा परिवर्तन  
करणों हैं उत्तरमाणुप्रोक्षे स्वरूपको गणना विसर्गे की जावे वह प्रदेश है ॥

विचित्रत्वम् ॥ प्रकारवचनम् ॥ हेतुः एवम् प्रकृति-अस्वभावः ॥ १ ॥ तस्य चत्वारः ॥ १ ॥ कषाय-  
वत्तारः ॥ कषायः ॥ प्रकर्षः ॥ तत्र योग-  
निमित्तौ प्रकृति-प्रदेशौ कषाय-निमित्तौ स्थिति-  
अनुभवौ ॥ प्रकृति-प्रदेश-प्रकर्ष-भेदात् तद्बन्ध-  
विचित्रभावः ॥ प्रमाणवत्तारः ॥ १ ॥  
नोपायः पचडिपराह ॥ (नोपायः प्रकृतिप्रदेशौ )  
ठिदिअणुभावाः कषायप्रोक्षेणदिग  
(स्थित्यनुभव गौः कषायः कषायः)  
अपरिणदुच्छिण्णोसुय ॥ (अपरिणतदुच्छिण्णः ॥ १ ॥)

प्रकारवचनम् ॥ प्रमाणवत्तारः ॥  
प्रकारवचनम् ॥ प्रमाणवत्तारः ॥  
प्रकारवचनम् ॥ प्रमाणवत्तारः ॥

प्रकारवचनम् ॥ प्रमाणवत्तारः ॥  
प्रकारवचनम् ॥ प्रमाणवत्तारः ॥  
प्रकारवचनम् ॥ प्रमाणवत्तारः ॥

(१) प्रकृत्यादयश्चत्वारस्तस्य बन्धस्य प्रकाराः ॥ तत्र योगनिमित्तौ प्रकृतिप्रदेशौ कषाय निमित्तौ स्थित्यनुभवौ । तत्प्रकारप्रकर्षभेदात्तद्बन्धविचित्रभावः । तथा चोक्तम्-जोरा पचडि पएसा ठिदिअणुभावा कसायदो कुणदि । अपरिणदुच्छिण्णोसुय वंधठिदिक्कारण णरिया ॥ १ ॥

॥ आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनियमोहनियाधुनाभिगोत्रान्तरायाः॥ ८॥

नहीं ऐसे उपस्थान्त कथाय, कथाप्रस्थान जिमके शीण होगये हैं ऐसे शीणकथाय, सम्पोगकेबकीके एक समयका वन्य, स्थितिका कारण नहैं अर्थात् विसममय वन्य है उसी समय सङ्गनाई और “यन्त्र” भापोगकेबकीके चारों वन्य (प्रकृति-भयसे स्थिति-अनुभाग) के कारण योग और कथाय ये दोनों ही नहीं हैं ।

पान+आपसनी प्रकृतिकल्पना है। भेद-अवर्तन-अर्थवाद। "आह।" "आह।" आदि के प्रकृतियान्व के भेद प्रागट्यने के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहेते हैं।

आद्यो हानदशनावरणवदनायमादिनायापुन।मगाजान्तराया ॥ ४ ॥

८ प्राय (प्रकृतिषत्स) सानावण-वैदनीय-मोनीय-आयु-नाम-मोक्ष-भत्ताया ( भट्टविद्यय )

सुधार्थः-भाषा, प्रकृतिबन्धः, ज्ञानमरण-दर्शनमरण-  
= प्रादिष्ट प्रकृतिबन्धः ज्ञानमरण-दर्शनमरण-

देदनीप-मोदनीप-मामु-नाम-नाम-बल्लभा ॥

प्रातिपदिकः

पञ्चदनीय-भोदनीय-भायु-नाम-गात्र-अन्तराय

अथ प्रकरणे षष्ठ्या—(१) ज्ञानको व्याख्यात करनेवाला वा इच्छेवाला सो

ज्ञानावधौ है (१) परार्थके सामान्य प्रबोधनको भाष्यरूपान् वेदना व। सुख  
दुःख रूप भुग्मन् करानेवात्मी वेदनीय है (२) सो माहित करनेही है प्रत्यक्ष। अत्रिकरि ज्ञात्मा माहका प्राप्त होता  
है सो माहनीय है। (३) अत्रिकरि (नारकादिक के) कल्प को प्राप्त होता है वह व्यापु है (४) अनेक प्रकार  
वर्तकियोगानोंमें नाराकादिक पर्यायोंको ज्ञात्मान्ने नाम करावे है वा परिसद्ध करावे सो नाम है (५) ऊ वापन  
वया। नीचापन प्राप्त कराव वह गोत्र है (६) वातावरैनेयोग वस्तु, पावनके मध्य विन शाले वाचाकरे मोक्षन्ताय है

स है । गोमयद्वारा सं जुड़ने के स्थान में होती । सबजित ] वे दोनों पाठ सोंक हैं क्योंकि पचास पचास और सिद्धप्रयुक्ताना के रूप माऊल में मंद । प्रथमा श्री ठीकीया दिमाकियों के एक है इसलिये एक दोनों वाक्य जब विद्येया निमाकि में है तब करोखि के साथ प्रत्यय होजाता है और जब प्रथमा विमाकि स । तब सबजित के साथ प्रत्यय हो जाता है । तो इस सिद्धि प्रथिमों कुछदि प्रत्य है पर कीचरी इस सिद्धि प्रथिमों होती प्रत्य है । गोमयद्वारा में पचास प्रत्य के स्थानों परेसा प्रत्य है । दोनों को खतर न जाया प्रयेया है

पुस्तकभर समुच्चयक सभापत्यरक्षायासामुद्रम तथा भाव्यानुसारव्यवस्थाय दीकाम "कायु" के स्थापनमें कायुक्त ग्रन्थ है। कायु और कायुक्त मध्य भेद नहीं है। कार्यार्थ स्व काय म। -कायनेकाय में कायुस्, यन्त्रों। अन्, [-क] प्रासय कलाकर कायुक्त ग्रन्थ बनाया है सूत्रका योग पाठ दोनों आचार्यों एकसा है और काय भी एक है। कर्त्तव्यस्य न साकर सूत्र समुद्दिष्टा ही प्रक्या है ॥







एत्यनेन नारकादिभवमित्याद्य ॥ नमयत्यात्मान नम्यतेऽनेनेति वा नात्र ॥ उक्त्वैर्नीचैश्च गूयते  
 शब्धत इति वा गोत्रम् ॥ दातृदेयादीनामन्तर मध्यमेतीरयन्तरायः ॥ एकैनात्मपरिणामे  
 नादीयमानाः पृदृगाला ज्ञानावरणापनेकभेदं प्रतिपद्यन्ते

एति १ अनेनै' नारकादि-अप्य' इति भाष्युर्; नमिषकृति नारक आदि अफो वा नम्यको जाता है, प्रायः करता है ऐसी आशु है ।  
 (२) नमयति १ आत्मानम्  
 नम्यते १ अनेनै' वा

इति आत्मनः' उक्त्वैर्नीचै' वा (१) गूयते १

अप्यते १ इति भाष्योपपन्नम् १ नारदेव-आदीनाम

नम्यते १ मध्यमे' एति १

इति नम्यतामः' एकैने' आत्म-परिणामेनै'

आदीयमाना' १ पृदृगाला' १ अनेक-भेदयै

ज्ञानावरणदि १ प्रतिपद्यते १

करि सूक्ष्मे जाते हे [ आर १ ] अर्थात् पर कमक्षिप्त ब्रह्म हूँ । मोक्षयति-नर शब्द मुह्यं भिन्नादि अगुण पापके उसय [परस्मैपदा और आत्मनपर्याय]

पापके आगे किन्तु [अस्य] ममय हेतु ब्रह्म में जानेसे और मुह्यं के स्वच्छन्दे गुरु करतासे और प्रथम मुख्य एक व न कर प्रथम सद् ब्रह्म मानक ज

योगक विद्याका 'ति' किन्तु आगतेसे इस प्रकार कहा है कि मुह्यं + भिन्ना + ति = मुह्यं + भय + ति = सोह्य + भय + ति = साहयति । ॥ ५ ॥ एह-मुह्यते

एतौकं चतुष पापके आगते व क्षमासे और मयगुणय एकवचना कम विप्रपात सद् ब्रह्म मानकाल दातक क्रियाका से बिना रूपात्म इस प्रकार

कहा है कि मुह्यं + य + ते मुह्यते [विश्वकरि आत्मा मुह्यते जाती है वा मुह्यते जाती है] परन्तु व्याप्त रहे कि मुह्यं पातु वा य विवरद्वय क्षमाच ब्रह्म

पापमें मुह्यति जाते है ब्रह्म - हेतुय होना दे भविष्य होता है । पाद मी भ्याम यदे कि मोक्षयते सो आत्मनपर्याय होता है, भेदो स्वमममं मोक्षयति

है इतीहमे य आचार्य में पदा पर चर्चा, सिद्धिपरिचित मोक्षयति जाते हैं और जो आत्म को भयद उपजाये वा मुह्यते सो माहयति कहा जाता

यदि ब्रह्म परहे पर उपकर्ता जाते सो परिमोक्षयति और परिमोक्षयत एतं ब्रह्म जेतो । परिकर भाव ब्रह्म वा आदिष्ट का है ।

[१] नते गु पदा पर] अर्थात् प्रथम पाद का भाव गी पातु है । अर्थात् प्रथम में उपकर्ता के दो आत्मा है जैसे गु + य + ते = गूयते = ब्रह्मजाना है

[२] नममि-ममयति अयं अर्थात् प्रथमपाद परस्मैपद आगु अर्थात् करत और उपकर्ता [अहं मे करणं] अर्थात् य जाता है अयं पातु में अयं मयकय क्षमापने

۱۳۳۳



# मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ॥ ६ ॥

७

पदिभानावापम् १ " क्व मेयम् १ " क्व = यो ज्ञानमरण [कर्म] पाप प्रकाश है वो उस [ज्ञानमरण] का

मतिपदि १ ' (१) उच्यताम् १ इतिभ्यः १ आह १ = निरूपण वा कथन किया जाय अथवा परिभाषण किया जाय इसविधे देसा कहते हैं कि

(२) मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ॥ ६ ॥

(१) यह ग्रन्थ ब्रह्म-सूत्र-प्रस्तावक कृष्ण आदि प्रतीत्यन्तका तिमिर परस्परव्यापुते इस प्रकार बता है कि व इसका व में पक्ष कह उक्त वा ज्ञाना है परन्तु व कर्मवि प्रयोगका प्रत्यय ज्ञानसे उच्य हो गया। परन्तु अन्य पुरुष एककत्व आत्मतत्त्वा आभाषितक (= ज्ञात) कियाका विना वाम् ज्ञानसे उच्य + तात् हुवा। पुनः उच्यताम् = कहा जाय देसा हुवा।

(२) समाधत्तत्वादिभ्योऽन्त्ये दवा मा-आनुवादिहीनत्वाय दीक्षार्थे च सूत्र कर्त्ता है अतः इस सूत्रके अन्त्यार्थे 'मायादीनाम् देसाह्व है और इस सूत्र का कार्यन कथन प्रतीका कर्त्ता सूत्र प्रथम अथापने (मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानाम् आह) का सम्बन्ध केन्द्र देसा कथन किया है कि "ज्ञानावरणम् परब्रह्मविषयम् भवति ॥ अन्त्यार्थे ज्ञानाभावावरणवि परब्रह्मविषयार्थक्या इति समाधत्तत्वावधिप्रामाण्यम् पृष्ठ १ अ० ज्ञानावरणम् परब्रह्मविषयम् भवति ॥"

एक्य "मर्यादीनाम् ज्ञानाभावावरणवि परब्रह्मविषयम् इति ॥ अन्त्ये वा एक २ (= एक्य) मति आधिक ज्ञानार्थके आवरण अथवा कथन पर्ययकावर्त्त

५ केवलज्ञानावरण अर्थात् कथने चला 'मायादीनाम्' में ज्ञानीनाम् अर्थको श्रुत-आवधि मन कथन और केवलज्ञानार्थका यतिक माना है। इसल मति मी प्रथम अथापका कथना सूत्र कही है आ उक्तो चर्चा है। मन पर्यय व कथन के अन्त्यार्थे इत्ये चर्चा मन पर्यय देसा कथन है। इसल मति मी इस सूत्र का चर्चा कथन है वा कथने चला अर्थात् देसा कथन किया है कि मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरण अवधिज्ञानावरण मन पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण में पर्यय मति ज्ञानावरण मतिविषय है है परन्तु ज्ञानार्थ राजवातिक और ज्ञानार्थ राजवातिक में इस मर्यादीनाम् सूत्रको इस कारण अवधीकार किया है कि इन पात्र ज्ञानार्थ मर्यादीनाम् सूत्रको निर्यय में पर्यय आवरण अर्थ इत्ये। केवल एक आवरण पात्रों मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, और केवलज्ञानों का चर्चाणा।

मन्त्रि-शुद्ध-अभिमान पर्यय-स्त्रेयनाश शानावराणि (= शाननेन भावराणां) एतेः शानावरणप्रकृतिवन्त्यस्य पंचमेदा<sup>१</sup> भवन्ति

सुत्रार्थ-मति-शुद्ध-मन्त्रि-मन पर्यय-स्त्रेयनाश<sup>२</sup> "शाननाशः"<sup>३</sup> मति शुद्ध अस्ति मन पर्यय केवल शान्तोके

आवरणानि<sup>४</sup> एते<sup>५</sup> शानान्तरणप्रकृतिवन्त्यस्य पंचमेदा<sup>६</sup> भवन्ति ॥ = आवरण अस्या इदं यो शानावराण प्रकृतिवचके पाचमेद इति है

पर्याय मस्तिनावरण (मस्तिनाशके इकनेवला) शुक्लानावराणां यो शुक्लानका आच्छादक है अथविज्ञानावराणां अथविज्ञानका मानरक ) मनः पर्ययशानावरण (मन पर्ययशानका आवरण करने वाला) केवलशानावरण, केवलशानका आवरण करने काज) ये सा शानान्तरणप्रकृतिवचके मेद है मावर्ष आवरण नाम आहका अस्या इदने कहे है जेने किसी मूर्तिपर कयवसे आहकरी साथ वो उसका आकार नहीं दीवता है उसी प्रकार आत्माने केवलशान रूप इदने को शक्ति है परन्तु इस

माध्यामीनामिति पाठः सपुनराविति च प्रत्येकमस्ति संवर्धनार्थात् । तेन पर्यय शानावरणाभि विवर्तितमवस्थि । तस्याय स्वेकवातिके सुदृष्ट पृष्ठः ४७७ सपराधीनाय इति पाठः सपुनराव इति चत् न प्रत्येकम्

= सपराधीनाय पंसा पाठ छोटा होता देखा प्रथम वा उत्तर (= चेत ) है (उत्तर) नहीं होता (= क्योंकि) प्रत्येक (मस्तिनाश प्रकृतिवचके, अथविज्ञान, मन पर्यय पाठान केवलशानका) के = सपराधके किये = सपराध पंसा सुदृष्ट है । तिस मस्तिपुनरावस्थिमतः पर्ययकेवलता(विश्व)कति = पर्यय शान्तोके इकने वा आवरण चित्त होत है (तस्याय प्रतीकवातिके पृष्ठ ४७७) तस्याय शानवातिके में इसी "माध्यामीनामिति पाठः सपुनराव इति च" प्रत्येकमस्ति संवर्धन-  
= भावार्थात् वातिके को सुदृष्ट वातिके नियतकर विधेय बह्वन वा भाव्य इत्यप्रकार कियार्थ है

स्याभवत् सत्याशीने शानानि इत्यादि तेषामिहाधिकरणोपपत्तिना पाठोक्तोक्तो सपुनराविति । तस्य किं क रण । प्रत्येकमस्ति संवर्धनाय इह

प्रतिपक्ष पाठ क्रियते । सतपावरणं भूतसावरणं सिद्धादि । इतरथा हि सपराधीनामिदं सुखमाने देवामेकमावरणमिति संत पर्यय भाव्य पृष्ठ ३०१ ३०२

स्यात् सतप स पाणीनि कामानि उक्तानि तेषाम् इह आदिरामन्-अपराधितानाम् पाठ अस्ति उक्त = शिवशान्तोका सत्यात्मार्थे (= इह) माध्यामीनामिति वचनविशेष पाठ टीका भवती है क्या कारण आवाय सपुनराव इति चत् न किम् कारणम्

प्रत्येकम् शानिवावरण-अपराध इह प्रतिपक्ष पाठ क्रियते । मनो आवरणम् अवस्थ आवरणम् इत्यादि इतरथा हि

मन्त्रि-शुद्ध-अभिमान पर्यय-स्त्रेयनाश शानावराणि (= शाननेन भावराणां) एतेः शानावरणप्रकृतिवन्त्यस्य पंचमेदा<sup>१</sup> भवन्ति

सुत्रार्थ-मति-शुद्ध-मन्त्रि-मन पर्यय-स्त्रेयनाश<sup>२</sup> "शाननाशः"<sup>३</sup> मति शुद्ध अस्ति मन पर्यय केवल शान्तोके आवरणानि<sup>४</sup> एते<sup>५</sup> शानान्तरणप्रकृतिवन्त्यस्य पंचमेदा<sup>६</sup> भवन्ति ॥ = आवरण अस्या इदं यो शानावराण प्रकृतिवचके पाचमेद इति है



उभयत्र तच्छिक्षिन्नावात् ॥ न शक्तिभावाभावापेक्षया भव्याभव्यविकल्प इत्युच्यते ॥ कृतरत्तर्हि ?  
व्यक्षिन्नावात्तद्व्यापेक्षया ॥ सम्भ्यदर्शनादिभिरव्यक्षिन्स्य भविष्यति स भव्यः । यस्य तु न  
भविष्यति सोऽभव्यः । कनकेतरपाषाणवत् ॥

आह, उक्तो ज्ञानावरणोत्तरप्रकृतिविकल्प । इदानीं दर्शनावरणस्य वक्तव्य इत्यत आह—

सम्भ्यः भव-शक्ति-सद्भावः ॥  
न शक्तिमान्-अभावा-वक्ष्यते ॥ सम्भ्य-भयव्य-  
विकल्पः ॥ शक्तिव्यवहारोऽन्तर-शक्ति-व्यक्ति-सद्भाव-  
वक्ष्यमान-भवेति ॥

सम्भ्यदर्शनविधिः ॥ १ ॥ व्यक्तिकः ॥ कर्मरूपे भविष्यति ॥  
सोऽऽ भव्यः ॥ २ ॥ कर्मरूपे ॥ सुभ्यः भविष्यति ॥ ३ ॥ सम्भ्यः ॥ ४ ॥  
कनक-इतर-पाषाणवत्

कनकापाषाण भव्या सुवर्णपाषाणयोः द्वयोः कालमर्थेन भव्यं कालं इत्यादि परिपूर्व साधनी भिन्नोपर चसमे  
से तत्त्व सुवर्णपाषाणो दो काला दो और भिदिका तथा मेक एक दो काला दो तैसे भिन्न न करे गुरु शास्त्र इत्या  
दिकला समोप भिन्नोपर भव्या और प्रकार से सम्भ्यदर्शने सम्भ्यमान, सम्भ्यव्यवहारिणी प्रगटवा होनविनी सो  
भव्य दो और तैसे भव्य पाषाणमेसे भविन भव्य जोकर इत्यादिक स मयी भिन्नो पर मी सुवर्ण नही निकलवा  
दो तैसे ही गुरु भाषार्थ मुनि शास्त्र इत्यादिकले उपदेश्य भव्या भिन्न प्रकारसे भिन्न बीहसे सम्भ्यदर्शन, सम्भ्य-  
ज्ञान सम्भ्यव्यवहारिणी व्यक्तिके भाग न हो सो भव्य है ।

आह ॥ उक्त ॥ ज्ञानावरण-उत्तरप्रकृति-विकल्पः ॥  
इदानीं दर्शनावरणस्य ॥ तत्त्वः ॥ शक्ति-भाव-भाव-  
सोपगतो विधिः वे प्रथम गुरु एक भव्य भावनापर कर्म-वक्ष्यमान-पाषाणवत् विकल्पात् ॥ शक्ति-भावाभावापेक्षया भव्याभव्यविकल्प इत्युच्यते ॥ कृतरत्तर्हि ?  
(१) सम्भ्यव्यवहार-उत्तरप्रकृति-विकल्पः ॥ तत्त्वः ॥ शक्ति-भाव-भाव-  
सोपगतो विधिः वे प्रथम गुरु एक भव्य भावनापर कर्म-वक्ष्यमान-पाषाणवत् विकल्पात् ॥ शक्ति-भावाभावापेक्षया भव्याभव्यविकल्प इत्युच्यते ॥ कृतरत्तर्हि ?





सुत्रार्थ—चक्षुषः १ ॥ दृशनावराणम् १ ॥ ॐ श्रे के भव भोक्तका आच्छादन करे भाषार्थ जिसके तदपस्य आत्मा चक्षु इन्द्रिय रहित हो

अवचक्षुषः १ ॥ दर्शनावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [इन्द्रिय] के अतिरिक्त अन्य इन्द्रिय [स्पर्शान-रसन-गोष्ठिका-कान के विषयो] के दर्शन

अवचक्षुषः १ ॥ दर्शनावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [सामान्यज्ञान-सामान्य मरण] को ठीके वा भाषाण करे अर्थात् जो चक्षु भिना अन्य इन्द्रिय द्वारा अर्थ के सामान्य मरणको नहीं होने दे सो अवचक्षुर्दर्शनावराण प्रकृति है

अवचक्षुषः १ ॥ दर्शनावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन वा सामान्यमरण जो रोके वा आच्छादन करे अर्थात् अवधि दर्शनमें आ वायु का सामान्य मरण वा अन्य भोक्त होत। है उसका आच्छादन करे सो अवधि दृशनावराण प्रकृति है

देवदत्तम् १ ॥ दर्शनावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

चोनिद्रा-दर्शनावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

निद्रा-निद्रा-दर्शनावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

प्रच्छादप्रदानावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

निद्रा-निद्रा-दर्शनावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

प्रच्छादप्रदानावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

निद्रा-निद्रा-दर्शनावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

प्रच्छादप्रदानावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

निद्रा-निद्रा-दर्शनावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

प्रच्छादप्रदानावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

निद्रा-निद्रा-दर्शनावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

प्रच्छादप्रदानावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

निद्रा-निद्रा-दर्शनावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

प्रच्छादप्रदानावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

निद्रा-निद्रा-दर्शनावराणम् १ ॥ ॐ श्रे [अवधि दर्शन करे रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावराण प्रकृति है

मवाधिदर्शनावरणं केवलदर्शनावरणमिति ॥ मदत्वेदं क्रमविनोदकार्यं स्वार्थो निद्रा । तस्या उपयुपरे वृत्तिर्निद्रानिद्रा । या क्रियाऽऽत्मानं प्रचल्यति सा प्रचला शोकश्चममदादि प्रभवा आसीनस्यापि नेत्रगानाविक्रियासुचिका ।

प्रचलाप्रचलादर्शनावरणम् ॥

स्थानादुद्दिदर्शनावरणम् ॥

सो प्रचलादीं किं प्रसवे सो प्रचला प्रचला है मातार्यं प्रचलाप्रचलादर्शनावरणम् प्रकृतिहेतुदयसे अत्यन्त प्रयत्नाहे अत्यन्त उत्पत्ता है मुंहसे क्षार बहने लगती है अन्न वर्णान वस्त्रापमान होतरे कोई शरीरमें झुलझुल आदि जुगावे वो सो चेतना नहीं होती है जिसकी ओवनेमें विशेष बल वा सामर्थ्यका प्रकटयना सो स्थानादुद्दि है मातार्यं जिस निद्राके आने पर चेतन्यता होकर अनेक शौचकर्म फलन लगता है बहुत पराक्रमकर रहेता है और फिर प्रचल हो जाता है फिर निद्रा घुटने पर वह नहीं जानता है कि मैने क्या क्या काम कर डाले उस निद्राको स्थानादुद्दिदशनावरण कर्मप्रकृति कहते है

एतेऽर्शनावरणप्रकृतिवत्पदं नवमदा ॥ अर्शनि व्यो दर्शनावरण प्रकृतिहे नवमेद होत है

तत्पदं - चक्षुर्-प्रचक्षुर्-प्रवक्षि-हेतुजानाप्रचक्षुका, प्रचक्षुका-अधिकता, केवलका

दर्शन-आवरण-प्रवक्ष्या ॥ अर्शनिर्देशः ॥ दर्शनावरणकी प्रवेषाते अर्श निर्देश है ।

चक्षुर्दर्शनावरणम् ॥ प्रचक्षुर्दर्शनावरणम् ॥ अर्शनिचक्षुर्दर्शनावरणम् प्रचक्षुर्दर्शनावरणम्-अर्शनि दर्शनावरणम् ॥ केवलदर्शनावरणम् ॥ इति प्रमद-दर्शनावरण और केवलदर्शनावरण ऐसे हुये । प्रचला (प्रमद) चित्तकी उद्रेकता (प्रमद)

क्षेद-कर्म-विनोद-अर्थ ॥ स्वार्थ ॥ निद्रा ॥ दुःख वा शोक (व्योद) यथावदव्यस्यारुह्यन (व्यनोदना) केलिये शयन वा सोवना सोनिद्रा है

वत्पदाः ॥ उपर्युपरि-पुनः ॥ निद्रानिद्रा ॥ ॥ अथ निद्राकी पुनः पुनः (उपपर्युपरि) सो निद्रानिद्रा है (नी दर्शनी द है )

याः क्रियाः ॥ आत्मनः प्रचल्यति सा ॥ प्रचला ॥ ॥ अथ क्रिया चीनका प्रचला है वा चलानेमान करनेही सो प्रचला है

शोक-शम-मदादि-प्रभवाः ॥ शोक-क्षेद-मद आदिकर्म उत्यादश्च अथवा उपमाने वाला है (प्रमसा ॥)

मासीनस्य है अपि अनेप्र-अ-विक्रिया-सुचिका ॥ व्योद हुये के भी नेत्रमें शरीरमें विकार (व्यक्रिया) की छेदनेवाली है

(१) प्रचल्यति-चल जानप-चक्षु-प्रवक्षि प्रथम पाण परस्मैपेरी प्रकर्मक पाणुसे चतुर्गुण सकर्मकपाणु परसे बनाना गया है कि प्रचला (प्रचलना)मिथ्या



पञ्चधाऽप्यादिनासिषु कारारमानससु लब्धासस्तत्सद्वयं मद्रस्तस्य बल्यं सद्रूपानसत्तिः ।  
मनेकविधं तदसद्वयमप्रशस्तं वेधमसद्वयमिति ॥ चतुर्थ्याः प्रकृतेरुत्तरप्रकृतिविकल्पनिर्दर्शनायमाह  
॥ दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडश-  
भेदाः सम्यक्त्वा मिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशो-  
कमयज्जुगप्सास्त्रीपुत्रपुंसकवद्वा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्या-  
ख्यानसंज्वलनविकल्पाधिकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥

सुत्रार्थ-सद्वेधः ॥ असद्वेधः ॥ व-वेदनीयः ॥ द्विवेधः ॥ अस्थस्त्वेतरे योम्य और (च) अप्रशस्त वेदनेयोम्य दो भेद वेदनीय (कम्प) के

मार्गः १

हृत्पुनवाद्-यद्-उद्भावः देवादिगतिषु ॥ कारार-मानस-नित्यके उद्भावे देवादि गतिषां सै कारारिक और मन सम्बन्धी वा मानसिक  
सुखमाप्ति १ ॥ कर्तृ १ ॥ सद्वेधः १ ॥ प्रकृत्यधः १ ॥  
= सुखकी प्राप्ति वा लब्धि होलाई वर सातवेदनीय, सातभेदोप (अस्थस्त)

वेदः १ ॥ सद्वेधः १ ॥ इति १ ॥ अस्थस्त्यधः १ ॥ अवेदनीय है सो सद्वेध है । जिसका फल नाना प्रकार का है ।

सद्वेधः १ ॥ असद्वेधः १ ॥ वेधः १ ॥ असद्वेधः १ ॥ इति अन्त्य-असत्त्वा नदनीय है अस्तराने योम्य वेदनीय है, ऐसा असद्वेध है ॥

सद्वेधः १ ॥ अस्थस्त्यधः १ ॥ वेधः १ ॥ असद्वेधः १ ॥ इति अन्त्य-असत्त्वा नदनीय है अस्तराने योम्य वेदनीय है, ऐसा असद्वेध है ॥

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वा मिथ्यात्वतदुभ-

यान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकमयज्जुगप्सास्त्रीपुत्रपुंसकवद्वा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-

प्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाधिकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥



[illegible]

दुर्निहन्ता यही अन्धराय के मंत्र मंत्र द्वारा रत्नपति हत्यादि करके अन्तर्गतानुबन्ध हत्यादि साहस मेरे कहकर सुल पूज किया है समाप्य ० में ( बू कि प्रथम कराय भाव है उत्तरी के अन्तरा ) प्रथम अन्तर्गतानुबन्ध समझ मेरे करे किन्तु हास्यरसपति शोक मय सुगुप्ता को पूं खुलक वाराचाल्य कहा कर्णिक भेषा मन्त्र अन्तर्मे हस्तिभेदे विस्तरांका साता समाप्य ० में आह्वयक हूँ आ समाप्यवरावाय विमानसुद्ध में प्रत्यक्षपाल प्रत्याप्याभावरय है मन्त्रे यहाँ कक्षस प्रत्याप्याभावरयअन्धराय है अपार्थ समाप्य ० में आह्वयक हूँ यहाँ भावी है हमारे यहाँ सुद्ध मन्त्र १०० सी अन्तर है समाप्य ० में १०६ अन्तर है अर्थ में मेरे यहाँ सत्य शायते स किस्मिं यहाँ है सब अर्थ मेरे नहीं है और कह अन्तर मी खुल हौर्त वा सुद्धका पाठ मन्त्र द्वारा अर्थसे समाप्य ० का पाठ इस बीजे लिखते है जिसको हमारे यहाँ के पाठ से अन्तरय निभाता पाहिये । यहाँ अर्थिमादीनयकयाभोक्तयाभेदीपाठ्यादिहियेकयमन्त्रभा अन्तरकर्मिभ्यान्तरयुग्मयापि कराय बीजयाभाभावानुबन्ध प्रत्याप्याभावरयअन्तरसमस्तनैविकप्रयादेक्य कोषामाभावाभोभावाः परयपतिशोक, मय खुगुप्यतापु खुगु सन्धेदाः ॥ १० ॥ समाप्य ० में यह द्ययः सन्धे केर्णिक प्रथम सुद्ध भिन्दा द्ययानैविक आ हमारे यहाँ एक सुद्ध है समाप्य ० में वा है हस्तिभेदे हमन मी इस १० यहाँ लिखा है यहाँ पर किंविद् करायको दैयकयाय भोक्तयाय तथा अन्तराय देवलाय कर्ते है आताको कर्तव्यलिकय करे उनका कराय कर्ते है यहाँ अन्तराय द्यय का अर्थ कराय पटित यहाँ है किन्तु दैयकयाय है ॥

अकषायवेदनीयं नवविधा, कषायवेदनीयं षोडशविधमिति ॥ तत्र दर्शनमोहनीयं त्रिभेदं  
सम्पक्त्वं, मिथ्यात्वं, तदुभयमिति । तद्वन्द्यप्रत्येकं भूत्वा सत्कर्मोपेक्षया त्रिधा व्यवतिष्ठते॥  
तत्र यत्प्रोदयात्सर्वज्ञप्रणीतमार्गपरब्रह्मुखतत्त्वाय श्रद्धाननिरस्तुको हितहितविचारसमर्थो  
मिथ्याहृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वम् । तदेव सम्पक्त्वं

प्रकाशवन्दनीयम् १॥ नवीनम् १॥ प्रभावकनीयम् १॥ अकार वेदनीय नौ प्रकार, काय वेदनीय  
प्राच्यविषयम् १॥ इति० सन्दर्भान्मोहनीयम् २॥ विवेकम् १॥ असोह प्रकाश ऐसे हैं वहां दर्शनमोहनीय सीत प्रकाश है,





सर्वाथ

सिद्धि

५२

प्रत्यारूपानावरणाः क्रोधामानमायालोभाः । समेकीभावे वर्तते । संयमेन सहवस्थानादेकीभूया  
ज्वलन्ति संयमो वा ज्वलद्वेषु सत्स्वपीति संज्वलना क्रोधमानमायालोभा । त एतेसमुदिताः सन्त  
बौद्धशक्याया भवन्ति ॥ मोहनीयानन्तरोद्देशभाज आयुष उत्तरप्रकृति-निर्ज्ञापनार्थमाह—

नारकर्तृययोनमानुषदैवानि ॥ १० ॥

प्रत्याख्यानावरणः क्रोध-म-म-माया-लोभाः ॥ सप्त  
एकैमाः ॥ चर्तते ॥ सयमेन सह वस्थानादेः ॥  
समीप्य • समन्वित ॥ वा येयुः सप्त ॥ अथ •  
सप्ताः षड्विंशः ॥ इति च शब्दाः ॥ क्रोधमानमायालोभाः ॥ अयमपि दैवीप्यमान इति ॥ अस्मिन् ॥  
व ॥ एते ॥ समुत्तिष्ठः ॥ सन्तः ॥ बोद्धा-काम्याः ॥ अस्मिन् ॥ एते सत्त्विक क्रोध-मान-माया-लोभे ॥  
माहनीय-अमन्तर-चर-म-मायाः ॥ १० ॥ आयुषः ॥ १० ॥  
उपर-महोद-निर्ज्ञापन-अर्थः ॥ आह ॥  
नारकर्तृययोनमानुषदैवानि = नारकर्तृययोनमानुषदैवानि ता एता आयुष चतुरन्तर प्रकृतय  
नारकर्तृयोनमायुषदेशानि ॥ ता ॥ एता ॥ आयुषः ॥ १० ॥  
चतुर-उपर-महोदयः ॥

ये षाण्युक्तार्थे वा उत्तर प्रकृतिर्भवे मादार्थ्य(क) क्रियते सत्त्विके आत्मा नारकर्तृययोनं बीजे चौर क्रियते अमादार्थे  
मरणको प्राप्त इति वाच्यं तत्र नारक षाण्युक्तं कथ्यते है (ख) क्रियती भियमानताते तिर्यच्यगतिर्भवे आत्मा बीजा है  
और क्रियते अन्तरोपेय प्रत्यु को प्राप्त होता है नर तिर्यच्योति आयुर्कर्म है ॥ (ग) क्रियते सत्त्विके मनुष्यगतिर्भवे  
बीज बीजा है और क्रियते अमादार्थे होति पर मरणात्ता है नर मनुष्य षाण्युक्तं है और (घ) क्रियते इति पर  
बीज देवगतिर्भवे बीजा है क्रियते अमादार्थे होति पर बीज प्रत्यु को प्राप्त होता है नर देव षाण्युक्तं है—



इति प्रमहे ॥ कृत यत — ॥ स यथानाम ॥ २२ ॥

ज्ञानावरणस्य फलं ज्ञानाभावाद् दशानावरणस्य फलं दर्शनादवस्यपरोध इत्येवमाद्यन्वयं सर्वज्ञानिर्देशात्सर्वासा कर्मप्रकृतीनां सविकल्पानामनुभवसम्भृत्यो जायते ॥

सिद्धि

८८

रतिं (१) हम्मे । (२) कुत्राः १ यत् • व्येसा (न्यति) इय स्यते ई (अन) केसे ? (अनु) (उचर) कर्माणि (न्यत) स यथानाम ॥ २२ ॥ = सोऽनुभवो ज्ञानावरणदीनां यथानाम विपश्यते ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—(३) वः वदुस्मः १ ज्ञानावगणादीनाम् ॥ न्य (अनुभव, विपाक उदय अथवा परिपाक) ज्ञानावरणादिक आठ कर्मों के यथानाम • निष्पद्यते ॥ न्यामके अनामक (न्यैसा नाम केसे) विपाकको प्राप्य होता है । अर्थात् वैया कर्मके प्रकृतिका नाम है वैया ही शाखा विपाक अथवा उदय है

चतुर्यनवाद्—क्षान आभर्ष्यम् १ कस्मै १ क्षान नञानावरण (कर्मसे प्रकृति) का परिणाम (न्यत) ज्ञानका

प्रयत्नः १ दर्शनकर्त्तव्यम् १ कर्म १ दर्शन-अति-उपरोधः १ न हो पा है दर्शनावरण (कर्म प्रकृति) का फल दर्शनेकी सामर्थ्यका अन्तरोध वा रुकावट है इत्येवमादि १ अनुप्रद-संज्ञा-निर्देशात् १ नृत्येव भादि सार्वक संज्ञाके कथनसे वा नामके अनुकूल अर्थवाली संज्ञाके उपदेशसे अर्थात् वैया निवसकर्म प्रकृतिका नाम है वैयाही उद्य प्रकृति का विपर्यय रूप कथनसे

सर्वज्ञानम् १ कर्मप्रकृतीनाम् १ सविकल्पानाम् १ अनुभव-न्यत कर्म प्रकृतिकों के भेद सारिव अनुभवकी सम्प्रत्ययः १ (४) जायते १ न्यतीति उत्पन्न होती है ।

(१) प्रमहे-प्र अर्थात् वृत्तरे पाशका समय (परतरी और आगमने) परी पातु विकर्म करकेसे भाग्यवर्त्त यम प्र ते-प्रोक्तों को वह यम को बहता है कथना अथ में जाता है । इस गणने विकल्प कर्म नहीं लगाया जाता है । यदि उद्यम पुरत अनुभवत आत्मनेपदी उद्यमान कालकी क्रियाका योगिक विवर प्र में जानेसे प्रमहे (—इय कहते हैं) अन्त्या है ।

(२) वृत्तत् (—वृत्त) (५) अर्थात् (४) अर्थात् कर्मी (५) केसे (५) वृत्त अर्थिक, अनुव भूत अर्थों में जाता है, प्रदी परकैस अथ में जाया है (६) दर्शन (—दर्शन अथवा दर्शना) यह विचारि अनुव गण का आत्मनेपदी कर्म प्रकृतिका है इस ज्ञान के कथना में आ आदेश हो जाता है और कर्मीक पाद अनुव गण का पातु है इस का विकल्प 'य' है इस विवर का + य —अथ अथ इत्य आदेश अ यमें अत्यनुव पक्ष अथ, अथ नि

प्रमाण अर्थमान विज्ञा का योगिक आदेश परी विकल्प 'ये' अन्त्या का अर्थ अन्त्या केसे है जिस का अर्थ अन्त्या केसे है ।

प्रच्यवते<sup>१</sup> इत्यत्रोच्यते—

ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥

पीडानुग्रहावातमने प्रदयाभ्यवहतीदनादिविकारवत्पूर्वस्थितिव्यादवस्थानाभावात्

आह यदि कथियाका<sup>१</sup> भवुभव<sup>१</sup> प्रविश्याये<sup>१</sup>, अथन करवा है कि वो "विपाकोऽनुभवः" (देखो सूत्र २१) पहिले कथाया है (=प्रविश्याये)

वत्कर्म भवुभवम्<sup>१</sup> ॥ किञ्च<sup>१</sup> आभरणवत्कर्मो (=वत्) कर्म कथा दीयते (=सूत्र) भीषे (=भवु) मर्याद भोने पीडे, आशेषण के सहरा

मर्याद<sup>१</sup>, आहारिस्त्वं निष्पतिवसारम्<sup>१</sup> ॥ अथवते<sup>१</sup> अणा रहता है अथवा (=आहारिस्त्वं) सार रहित होकर तिर्यकवा है वा कफभावा है

हृदिकप्रवक्तव्यते १—  
=देसा [ परन रोतपर ] यता [ अग्निव स्रव ] करा जाता है कि

(३) ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥ = (१) ततश्चानुभवान्कर्मनिर्जरा भवति ॥ २३ ॥

सूत्रार्थः— वत्क(२) कर्म भवुभवम्<sup>१</sup> कर्मनिर्जरा<sup>१</sup> ॥ तिस विपाक भवुभव दय-परिपाक वा कर्मके कृष्ण मार्गके पीडे भी कर्मकी निर्जरा

मर्याद १

= शोषार्थसंश्लेषणः । दयकूपरथात् कर्मकफवाते<sup>१</sup> अर्थात् किसी और कारणसे निर्जराशोधी और

भवुभव वा दयसे निर्जरा होती है । आचार्य नवमे अध्यायका बीसरा सूत्र किंचयसा

निजरा च<sup>१</sup> दय से निर्जरा भी होती है, और विपाक वा दयसे भी निर्जरा होती है ।

इत्यनुवादः— भीषा-भवुभवो<sup>१</sup> आत्मना<sup>१</sup> प्रदाय — आत्मना<sup>१</sup> विषये दुःख [ पीडा ] सुख भदानकर वा देकर  
अथवद<sup>१</sup>— ओदन-आदि—  
=सायेदुष वा मरित [ =अन्यवद ] अनाम (=ओदन ) आदिके [ पचकर ]

विपाकवदभूतस्थितिचयादौ<sup>१</sup> अथस्यान अनामादौ<sup>१</sup>—परिणामपदे सहाय पराधी स्थितिके नाशसे दहराव (=अवस्थान) के न रहनेसे

(१) निष्पतिवसारम्— जिसका सार पीशियमाया हो सार रहित अथ है (२) प्रच्यवते—भुग् अविश्यायका आत्मनेपदी पातु मनुजाना अथ में है

अथ का वा अ करण से न्योदुषा वा विपाक कालसे व्यो + अ = दय म ओर से अनामसे प्रच्यवत हुआ (३) सूत्रका पाठ वया अथ दोनो समप्रपायो

में एक है (४) सूत्रमें 'व' यद् है का अर्थमें अथापदे तीसरे सूत्र (वयासा निज रा व = दयसे भी निर्जरा होती है ) के अथ को समप्र करने के

लिए है । (५) विपाकसे सुभयो वसे विषय सको<sup>१</sup> "कथियाकात् अथया च निज रा भवति" = तिस विपाकसे और अथ प्रकारसे भी (=व) निज रा होता है अर्थात् विपाकसे और दयसे (दोनो से) निज रा होती है । "कलप निज रा" सूत्र २३ ' वयासा निज राव " ( अथया २, सूत्र ३)

रस दानो सुपाके भेद कात्यायन में रक्ता आदिसे वस ( विपाक ) से भी निज रा होती है अर्थात् किसी अन्य हेतुसे भी निज रा होती है । दय से निज रा भी होती है—अथात् दयसे निज रा होती है और दुःख औरभी होता है (संभव भी होता है) अथव दय है कि निज रा होने के दो कारण हैं

कर्मणो नित्यतिर्जरा ॥ सा द्विप्रकाराविपाकजा इतरा च ॥ तत्र चतुर्गतावनेकजानिविशेषो  
पावधूणिते संसारमहाणवे चिर परिधमन शुभाशुभस्य कर्मण क्रमेण परिपाककालप्राप्त  
स्थानुभवोदयावलिखितोऽनुप्रविष्टस्यारब्धफलस्य या नित्यतिः सा विपाकजा निर्जरा ॥ यत्कर्मा  
प्राप्तविपाककालमौपक्रमिकक्रियाविशेषसामर्थ्यादनदीर्घं बलादुदीर्योदयावलि

कर्मणः ॥ 'नित्यतिः' ॥ निर्जरा ॥ 'सा' ॥ द्वि-प्रकारा ॥

विपाकजा ॥

इतरा ॥ 'च' ॥

तत्र चतुर्गता ॥ 'अनेकजाति-विशेष-स्वावधारितः'

ससार-भूत-भेद-भेद-भेद-परिधमन ॥

शुभ-आशुभस्य कर्मणः ॥ 'कर्मणः' ॥ परिपाककालप्राप्तस्य ॥

अनुभव-उदय-भावलि स्तोता ॥

अनुप्रविष्टस्य ॥ 'आरब्ध-फलस्य' ॥

या ॥ 'नित्यतिः' ॥ 'सा' ॥ 'विपाकजा' ॥ 'निर्जरा' ॥

रूप-भूतगति मय ससार समुद्रमे विरक्तपक्षे भवते इय वीर्यके अनेक प्रकारके शुभाशुभ कर्मोका उदयफल प्राप्य  
होते पर दिव प्रकाशके परिधामोते दीर्घ मय कर कल्प क्रिया या उसी प्रकार भोगते हुये वीर्यक उदयफल प्राप्य  
रूप नासी प्राप्ता वो कर्म रस फल देकर मूढ जाते हैं उसे सविपाक निर्जरा कहते हैं संक्षेपतः —  
कर्मोत्पत्त उदयफल प्राप्ते पर रस देकर भवते भाग मूढ जाना सो सविपाक निर्जरा है । यह सविपाक निर्जरा  
प्राप्ते गतिमें रहने वाले सर्व ससारी वीर्यो के शुभा करता है

यत् ॥ 'कर्म-प्रमाण-नियम-का-प्रमाण' ॥

श्रीपरमेश्वर-क्रिया-विशेष-सामर्थ्यात् ॥

शुभ-उदीर्य-यत् ॥ 'शुभ-आशुभ-प्रत्यक्ष-प्रमाण' ॥

विपाकजा ॥ 'विपाकजा' ॥

निर्जरा ॥ 'निर्जरा' ॥

सा ॥ 'सा' ॥

द्वि-प्रकारा ॥ 'द्वि-प्रकारा' ॥

कर्मोका मनुजाना निर्जरा है । यह (निजरा) दो प्रकार है

वैपाककालित या विपाकसे उपवी (अर्थात् फल देकर जो निर्जरा उत्पन्न हो)

स्मर (अर्थात् अर्थात् अधिपाक कालित) । (दोनों का स्वरूप निम्न लेख में है)

प्राप्त या गतिमें मय प्रवृत्त जातिके विशेषकर मनुज या मनुष्यकाले इष्ट (जीव) निकट (अभिमतः)

संसारके दीर्घ समुद्रमें सदा फल बार बार भूमयकाले इष्ट (जीव) निकट (अभिमतः)

मते भूते कर्मके कर्मकर परिपाक समयको प्राप्त हुआ

मयोगनेके उदया वलिरूप (नालासे उदय-भावलि-स्मर)

वेदक या प्रवेश होकर (अविष्टस्य) फलको देय (आरब्ध-फलस्य)

वो मनुज है सो विपाकजा निर्जरा है अर्थात् एष्टद्विप्रादिक जाति विशेषसे निम्न

होते पर दिव प्रकाशके परिधामोते दीर्घ मय कर कल्प क्रिया या उसी प्रकार भोगते हुये वीर्यक उदयफल प्राप्य

रूप नासी प्राप्ता वो कर्म रस फल देकर मूढ जाते हैं उसे सविपाक निर्जरा कहते हैं संक्षेपतः —

कर्मोत्पत्त उदयफल प्राप्ते पर रस देकर भवते भाग मूढ जाना सो सविपाक निर्जरा है । यह सविपाक निर्जरा

प्राप्ते गतिमें रहने वाले सर्व ससारी वीर्यो के शुभा करता है

यत् कर्म (अपनी स्थिति पूर्ण कर) उदय (अधिपाक) काल को प्राप्त होते हुए

उदयवार क्रिया (होते उत्पन्नप्राप्ति) श्री विशेष करिते

विना उदय अवधि [कर्म] बलात् जाती है उत्पन्नकाले [कर्म] की उत्पन्नकाले

विना उदय अवधि [कर्म] बलात् जाती है उत्पन्नकाले [कर्म] की उत्पन्नकाले

प्रत्येक वक्ष्यते आत्मनस्तादृशकवत् सा आधिपाकजा निर्जरा ॥ चक्षुर्वे निमित्तान्तरसम्  
 व्याप्यः । तपसा निर्जरेति वक्ष्यते ततरच भवति अन्यतरचेति ॥ किमर्थमिह निर्जरा निर्देश  
 क्रियते संवरात्म्या निर्देश्य ॥ उद्देशवच्छवर्थमिह वचनम्

प्रस-आप्त-पुनस-आदि-

पाशद्वयेयते ८

सा ॥ अविपाकमा १ ॥ निर्जरा १ ॥

वशब्द निमित्त-अन्तर-समुच्चय-अर्थः १ ;

वशाद १ निर्जरा १ । इति

वक्ष्यतेऽतएव । च १ प्रसति ८

अन्तर ० च १ इति १ ; किमर्थ १ ॥ अर्थ १ ॥

ए ० निर्जरा-निर्जरा १

क्रियते स वशाद १ पाद १ निर्देश्य १ ॥

तरेय-वद ० वदु-मर्थद १  
 ए ० वचनम् १ ॥

अपेक्ष किमा नाकर आत्मके फल तथा कदाच आधिक्ये ( भूसा आदिभि रसम्पत् )

अपेक्ष्य लेनेके सुख वेदा आता है वा उदयमें जाया जाता है,

न्यो अविपाक निर्जरा है ( अर्थात् ) कर्मोंका उदयकाळ तो जाया नहीं और वस्तुधराणादि

कारके अनुदय अदस्तामों ही कर्मों को सुखा देना सो अविपाक निर्जरा है ॥

अप्रस वक्ष्यते ( निवराके ) अन्यस्तुके सम्पत्के क्रिये है,

अपेक्ष्य निर्जरा होती है ( अर्थात् ) निर्जरा । ऐसा ( नवम अध्यायके सोमरे वक्ष्यमें )

अपेक्ष्य मे, किम ( विपाक-अनुष्ण-वक्ष्य ) से भी ( अर्थात् ) निर्जरा होती है

अपेक्ष्य ( अर्थात् ) अन्य ( अर्थात् ) करि ( निर्जरा ) होती है किमपि

अपेक्ष्य ( अर्थात् ) अन्य ( अर्थात् ) करि ( निर्जरा ) होता है किमपि

अपेक्ष्य ( अर्थात् ) अन्य ( अर्थात् ) करि ( निर्जरा ) होता है किमपि

अपेक्ष्य ( अर्थात् ) अन्य ( अर्थात् ) करि ( निर्जरा ) होता है किमपि

अपेक्ष्य ( अर्थात् ) अन्य ( अर्थात् ) करि ( निर्जरा ) होता है किमपि

अपेक्ष्य ( अर्थात् ) अन्य ( अर्थात् ) करि ( निर्जरा ) होता है किमपि

अपेक्ष्य ( अर्थात् ) अन्य ( अर्थात् ) करि ( निर्जरा ) होता है किमपि

अपेक्ष्य ( अर्थात् ) अन्य ( अर्थात् ) करि ( निर्जरा ) होता है किमपि

अपेक्ष्य ( अर्थात् ) अन्य ( अर्थात् ) करि ( निर्जरा ) होता है किमपि

अपेक्ष्य ( अर्थात् ) अन्य ( अर्थात् ) करि ( निर्जरा ) होता है किमपि

अपेक्ष्य ( अर्थात् ) अन्य ( अर्थात् ) करि ( निर्जरा ) होता है किमपि

तत्र हि पाठविपाकोऽनुभव इति पुनरनुवादः कर्तव्यः स्यात् ॥ आह अभिहितोऽनुभवबन्धः । इदानीं प्रदेष्टव्योक्तव्यः । तस्मिंश्च वक्तव्ये सति, इमे निर्देष्टव्याः, किं हेतवः ? कदा ? कुत ? किं स्वभावा ? कस्मिन् ? किं परिमाणश्चेति ॥ तदर्थमिदं क्रमेण परिगृहीतप्रश्नापेक्षभेदः सूत्रं प्रणीयते—

॥ नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सुक्ष्मैकज्ञेयाव-

गाहस्थिताः सर्वस्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥२४॥

सप्तमः हिमपातः विपाकोऽनुमदः ॥

शिवोक्तं भगवत्पुत्रः ॥ कर्मणः ॥ सात् १  
= एसा (सुख) निर व्याकरण, कथन द्विजे माने योग्य होता ॥

आरम्भोत्तराः प्रत्युपपन्नान् कथागणान् भवेदेषां = पूजा है कि (१) प्रत्युपपन्न कथागणा न्न भवेदेषां

सकल ॥ चक्रात्मन् सकल ॥ साधनं ॥ इति ॥ (२) = द्वात्रिंशत्वारिंशत् (च) त्रिंशत् (प्रदेशान्तर) के कथन (अक्षरार्थे) शक्तिर्देवैः (= देवि)

[illegible]

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां अष्टमोऽध्यायः ॥

परिपूर्णाव प्रश्न करोत-भेदः॥ सुप्रसू॥॥प्राणीयते॥

नामप्रत्यया सर्वतोयोगविशेषात्सम्भूयन्तेति वाच्यम् । सर्वतोऽप्येते

॥ सत्त्वानन्दः ॥ सत्त्वानन्दः ॥ सत्त्वानन्दः ॥ ५४

[illegible]

शान्ता में मिलीया जाता है। विचार प्रकाश साक्षात् एकीकरण [२] द्वारा प्रकृति रूप प्रथमा निर्मिक बहुचरण पुनरिष्ट में इसे करता है। इस प्रकार प्रथमी प्रकृतियों को एक ही रूप में लाया जाता है।

[illegible]







नामेति सर्वाः कर्मप्रकृतयोऽभिधीयन्ते, स यथानामति वचनात् । अनन द्रुतभाव उक्तः । सवधु  
मवेधु सर्वतो दृश्यते अन्यतोऽप्येति तसि कृते सर्वत । अनेन कालोपादानं कृतम् । एक  
कस्य हि जीवरथातिक्रान्ता अनन्तानन्ता भवा ।

स' इ' यथानाम'

इतिवचनात्' नाम' इति०

सर्वा' कर्मप्रकृतयः' (१) अभिधीयन्ते' अनेन'

(२) दृश्यते' इ' उक्तः' सर्वेभ्यः' सर्वतम्'

(३) इत्यने-अन्यत' अपि० इति० (४) तसि' इत्ये' सर्व' इत्' ।

=स यथानाम (स्ती विपाक कर्मक्री प्रकृतिके नामके अनुकूल होता है)

व्येते (इति) सूत्र (के हेतु) से "नाम" इस प्रकार (के कृत्य) से (इति)

=सम्पूर्ण कर्म प्रकृतियां प्राणकी गई है (अभिधीयन्ते) हेतु (नामप्रत्ययघन) करि

=प्रदत्त वस्तुका कारणना कहा गया । सकल वा सम्पूर्ण भूमे में ही सो सर्वतः है ॥

=इहा जाता है कि कस्य अथवा भिन्न (विभक्ति अर्थात् सवामी विभक्ति) से भी 'वत्' (प्रत्यय)

=कस्मे' 'सर्व' (कस्य) होता है अर्थात् 'कस' प्रत्यय प कमी अथवा न

विशक्ति से जोर से इत्यादि अर्थों में से एकवत् एक ओर से, सर्ववत् = सप्तम ओर से) बहुधा

आया जाता है । इस सूत्र में विशेष प्रकार से सप्तमो विभक्ति वा अधिकरण विभक्ति में

भी 'भूमे' ऐसे कर्मों 'दृश्यते' कृत्योप' ऐसे व्याकरण के सूत्र भरि (वत् प्रत्यय) आया है

अनेन' (१) काल-व्यवधान' कृतम्' एकैकस्मिन्' दृश (सर्वेषु) भवेधु शास्त्रादिर समस्यका प्रमाण किमाया है। यहाँ क्वा' 'पुष्टे' भूमेन का उत्तर हुआ  
हिन्दी क्वा' अक्रान्ताः' अन्तान्ता' भवा' एकैकस्मिन् ओर के अनन्तानन्त कर्म (= सवा) 'ओर' होने से वा पौर गये

को गाना होने के बाद से विहित है कि आत्मा योग सहित इन्द्र सब मोर से कस वर्तमान का लोक या वर्तमान को प्रत्येक समय प्रवेष्ट करता है ।

(१) 'अभिधीयन्ते' - यद्वा वाक्य 'वा' (= पाठ्य करण - प्रकृतना प्रवेष्ट करण) जुहोत्यादि पुरीषावके समय पत्नी सुकर्मक पात्रु से वेत्ते बना है

किन्वा का क्वादि प्रयात्तों 'वत्' हो जाती है भीमार्जुन उपसर्ग तथा क्वादि प्रयात्तों का चिह्न लगाकर अभिधीय वेत्ता अ ग बना बैठे हैं । परन्तु

कस्य पुरत बहु बहव आत्मनेपदी वर्तमान कावली किमायोक्तका भवत चित्त लगाकर अभिधीय + कस्मे' देखा बना बैठे हैं । किमा प्रत्यय के

पवि आत्मनेपद हो करि किमा प्रत्यय के पहले जाने पत्त अर्थात् अङ्गुले कस्मे' अकार हा वो यह अकार निर जाता है । अतः अभिधीय + कस्मे

= अभिधीय + कस्मे = अभिधीयन्ते बन गया (२) भवेधु अथवा संवत्सरादि सूत्र प्रयोग से पाला प्रत्य कि प्रवेष्टक 'कि' हेतव 'का' उत्तर हुआ ।

(३) सूत्र दृश्यते उपसर्ग' - दृश्यते अन्तर्गतार्थ (= समस्यार्थ) तसि कस्मे = देखा जाता है कि भिन्न ( विभक्ति) से भी वत् प्रत्यय

किमा जाता है (सप्तमी कर्मादत्त विभक्ति) से सवा । 'सवा' में सवाप्रात्ययार्थ विभक्ति प्रत्यय के अनुसार 'वत्' प्रत्यय प कमी

अथवा न विभक्ति में प्रयोग हुआ है देखा कि भिन्न अनुवाच से प्रगत है 'सर्वतो' - सर्वतस्मिन् पदार्थ अथवा = सर्वत अर्थात् निष्क  
एतत् एतत् आत्मा ओर से कर्ममाग से तथा अपने माग से सब ओर से दृश्यमान को प्राप्त होने है गुण १८८, १८९ व सुक्तों 'दृश्यते' प्राप्ति इसवाव  
का कारण है कि वत् (= तसि) प्रत्यय के सम्बन्ध में अथ सूत्र आगे है और पद २१ देखा गया है (= दृश्यते) ।

(२) सर्वेषां गोप-सिद्धेरात् ।

असुप्रस्त भवति (मन वचन कथने) गोर्णके निमित्तते (निर्वाणितात्)

सुत्तम-एकधेय-

अवगाह-सिद्धाः सर्वआत्मभेदेभ्यः

अनन्तानन्त-प्रदेशाः ॥

सर्वार्थ  
सिद्धि

२४

अध्याय

८

सूत्र

२४

२४

वृत्त्यनुवाद् नाम्नाः ॥ प्रत्ययाः ॥ नामाभे (हीनेको) कारण हो अथवा नाम निमित्तक नाम हेतुक हो नामप्रत्ययाः ॥

—सो नामप्रत्ययाः हे अर्थात् कर्मप्रकृति (नाम) होनेको कारणमूत्र (वृत्ते शुद्ध्यल्लके स्वरूप) वा कर्म प्रकृति के रूप परिणामने योग्य(शुद्ध्यल्लके स्वरूप) होने नाम प्रत्ययाः नामार्थ-कर्मकसम होनेको कारण हैं ॥

नामाभिनिष्ठा नामाहेतुका नामाकारणाः एति वाच्य

(२) वाच्य - इस शब्दका अर्थ इसारे पदों 'सब मायोंमें वा सब जगत्में' वसा किया है यह शब्द 'सब' और 'मय' प्रत्यय से बना है सर्वार्थ सिद्धि के कारण इस पद प्रत्यय को सप्तमी वाच्य (अधिकारक) म किया है परन्तु सप्तम्यवस्थायाँ विनामसमर्थ इस 'मय' प्रत्यय को एकमात्र निमित्तके केकर 'सर्वार्थ रसे' कारण सिद्ध (इस पद पर कार्य कोनेस) कार्य मागते आधानसे वाच्य वा प्राप्त होते हैं, इसारे अनुसार प्रत्ययान्वय शुद्ध्यल्ल प्रवेश कोनेस सब म मायों कर्मका प्राप्त होते हैं दोनों ही वाच्य वा एकल्ल है और हीन है क्योंकि 'मे मयवसार कर्म का' है

असुप्रस्त भवति (मन वचन कथने) गोर्णके निमित्तते (निर्वाणितात्) अस्मा (गोर्णिनेय गोघर म हीं) प्रित से श्रेय आत्मा ठहरा हो उसी से श्रेय (नीरसीरवत्) अन्वगाह करि वा व्याप्य होकर स्थितिरूप रहनेवाले आत्माके समूण प्रदेशोंमें = (ऐसे गुणों वले) अनन्तानन्त शुद्ध्यल्लके प्रदेश हैं ॥ भावार्थ-अनन्तानन्त शुद्ध्यल्लके प्रदेश को आत्मार्थ साय कर्मको प्राप्त होते हैं किन्तु किन्तु गुणोंकरि स शुक्र हैं ? सो कहते हैं (क) सर्व ज्ञानाधारणादिबन्ध प्रकृतिरूप उत्तरप्रकृतिरूप उत्तरासुप्रकृतिरूप होनेके कारण हैं, [स्व] समस्तप्रकाशवर्ती भवोंमें वा जगत्में मन-वचन-वाच्ये योगोंके निमित्तते आते हैं, [ग] वरुण हैं-इन्द्रियगोचर नहीं हैं, [व] आत्माके सम्पूर्ण प्रदेशोंके साथ दृष्ट-गानीके समान एक क्षेत्रमें व्याप्य होनेते हैं अथवा दृष्ट पानीके समान एकमेक होने आत्माके प्रदेशोंमें ही व्याप्त हो आते हैं ये शुद्ध्यल्ल प्रदेश एक से श्रेय अथवा रूपसे विच्छेद हैं न कि एक से श्रेय भिन्न भिन्न रूपसे अर्थात् एकमेक होकर विद्यते हैं, [क] आत्माके सकल प्रदेशोंमें सकलअनन्तानन्त शुद्ध्यल्ल प्रदेश विच्छेद हैं अर्थात् आत्माके सर्व प्रदेशोंको प्रसिद्ध किन्तु प्रसिद्ध करने करते हैं, [घ] एक आत्माके अनेक्य प्रदेश हैं सो प्रत्येक प्रदेशमें अथवा एक एक प्रदेश में अनन्तानन्त शुद्ध्यल्लके स्वरूप विद्यमान हैं ॥ सारांश-ज्ञानाधारणादि कर्मरूप होनेको कारण, वरुण कर्मरूप अनन्तानन्त शुद्ध्यल्ल प्रदेशोंका और आत्माके सर्व प्रदेशों का सब भवोंमें योगोंके प्रसिद्धि दृष्ट पानीके सम समूह होने वा सो 'प्रदेशकर्म' है

—सो नामप्रत्ययाः हे अर्थात् कर्मप्रकृति (नाम) होनेको कारणमूत्र (वृत्ते शुद्ध्यल्लके स्वरूप) वा कर्म प्रकृति के रूप परिणामने योग्य(शुद्ध्यल्लके स्वरूप) होने नाम प्रत्ययाः नामार्थ-कर्मकसम होनेको कारण हैं ॥

—नाम वा कर्म प्रकृति होने का निमित्त है प्रकृति होनेको हेतु है

—कर्म रूप होने का कारण है देखा अथ (नाम प्रत्ययका) है ॥

नामति सर्वाः कर्म प्रकृतयोऽभिधीयन्ते, स यथानामति वचनात् । अनन हतुभावे उक्तः । सवेषु भवेषु सर्वतो दृश्यते अन्यतोऽप्यिति तसि कृते सर्वत । अनेन कालोपादान कृतम् । एकं कस्य हि जीवरूपान्तिफान्ता अनन्तानन्ता भवा ।

सर्गः यथानामः

इति प्रकृत्यादि । नामः इति ।

सर्गः । कर्मप्रकृत्यादिः । अभिधीयन्ते । अनेन ।

(२) दृश्यते । उक्तः । सर्वेषु । भवेषु । सर्वतम् ।

(३) दृश्यते-अन्यतः । अपि । इति । (४) यस्मिन् ।

कृतम् । सर्वतम् ।

= स यथानाम (सो विपाक कर्म की प्रकृतिके नामके अनुकूल होता है)

न्यते (नति) दृश्य (के हेतु) से "नाम" इस प्रकार (के रूप) से (= इति)

न्यस्य पूर्ण कर्म प्रकृतियां प्रणयन्ती गर्ह्य है (= अभिधीयन्ते) प्रसङ्गात्प्रत्ययवचनम् । अनेन

न्यस्यस्य कर्मकाकारणपणा करा गया । सकल वा सम्पूर्ण भवे में ही तो सर्वत है ॥

= सेवा नाता है कि कर्म प्रथवा भिन्न (विभक्ति अर्थात् सामां विभक्तियों) में 'सम्' (प्रत्यय)

= कृत्यम् 'सर्व' (प्रत्यय) होता है अर्थात् 'सम्' प्रत्यय प क्षमी अपादान

विभक्ति से-ओरसे इत्यादि अर्थों में ही प्रकृतम्-एक ओरसे, सर्वतम्-समस्त ओरसे) बहुधा

आधा काटा है । इस दृष्टि में विशेष प्रकारसे सम्प्रसा विभक्ति वा अधिकरण विभक्ति में

भी 'भवे' (हेतु) अर्थ में 'दृश्यते' (अन्वय) से प्रथम प्रकाशित होता है । अतः प्रत्यय आधा है

मि-भवे' (हेतु) अर्थ में 'दृश्यते' (अन्वय) से प्रथम प्रकाशित होता है । अतः प्रत्यय आधा है

मि-भवे' (हेतु) अर्थ में 'दृश्यते' (अन्वय) से प्रथम प्रकाशित होता है । अतः प्रत्यय आधा है

मि-भवे' (हेतु) अर्थ में 'दृश्यते' (अन्वय) से प्रथम प्रकाशित होता है । अतः प्रत्यय आधा है

मि-भवे' (हेतु) अर्थ में 'दृश्यते' (अन्वय) से प्रथम प्रकाशित होता है । अतः प्रत्यय आधा है

मि-भवे' (हेतु) अर्थ में 'दृश्यते' (अन्वय) से प्रथम प्रकाशित होता है । अतः प्रत्यय आधा है

मि-भवे' (हेतु) अर्थ में 'दृश्यते' (अन्वय) से प्रथम प्रकाशित होता है । अतः प्रत्यय आधा है

मि-भवे' (हेतु) अर्थ में 'दृश्यते' (अन्वय) से प्रथम प्रकाशित होता है । अतः प्रत्यय आधा है

मि-भवे' (हेतु) अर्थ में 'दृश्यते' (अन्वय) से प्रथम प्रकाशित होता है । अतः प्रत्यय आधा है

मि-भवे' (हेतु) अर्थ में 'दृश्यते' (अन्वय) से प्रथम प्रकाशित होता है । अतः प्रत्यय आधा है

मि-भवे' (हेतु) अर्थ में 'दृश्यते' (अन्वय) से प्रथम प्रकाशित होता है । अतः प्रत्यय आधा है

मि-भवे' (हेतु) अर्थ में 'दृश्यते' (अन्वय) से प्रथम प्रकाशित होता है । अतः प्रत्यय आधा है



न चान्तरानलत्पथ स्थिता न भच्छन्त इति । सवात्मप्रदेशाध्यात  
वचनमाधारनिर्देशार्थं नैकप्रदेशादिषु कर्मप्रदेशा वर्तन्ते, क तर्हि<sup>१</sup> ऊर्ध्वमथ स्तित्यर्थ सर्वेष्वत्म  
प्रदेशेषु व्याप्य स्थिता इति ॥ अनन्तान्तप्रदेशवचन परिमाणान्तरव्यपेक्षार्थं न संशयेया  
न चासंशयेया नाप्यनन्ता इति ॥ ते खलु पुद्गलस्कन्धा अभव्यानन्त भाणा

स्थिताः<sup>२</sup> इति<sup>३</sup> यथ इति<sup>४</sup> क्रिया-प्रकार-निवृत्ति-पर्याय<sup>५</sup> ।  
स्थिताः<sup>६</sup> न<sup>७</sup> (१) गच्छन्त्या इति ।

(२) सर्वे आत्म-भेदेषु इति<sup>८</sup> वचनम् ।  
आधार-निर्देश-पर्याय<sup>९</sup> ।

न<sup>१०</sup> एकप्रदेशादिषु । कर्मप्रदेशाः<sup>११</sup> कर्तव्ये<sup>१२</sup> ऽपार्थि<sup>१३</sup>  
कर्म<sup>१४</sup> ऊर्ध्वम्<sup>१५</sup> अपरम्<sup>१६</sup> तिर्यक्<sup>१७</sup> च<sup>१८</sup>  
सर्वेषु<sup>१९</sup> आत्म-भेदेषु<sup>२०</sup> व्याप्य-  
स्थिताः<sup>२१</sup> इति । (३) प्रान्तानन्त-भेद-वचनम् ।<sup>२२</sup>

परिमाण-प्रकार-व्यापे-पर्याय<sup>२३</sup> । न<sup>२४</sup> संसत्त्वेषा<sup>२५</sup> ।  
न<sup>२६</sup> च<sup>२७</sup> असत्त्वेषा<sup>२८</sup> । न<sup>२९</sup> अपि<sup>३०</sup> अनन्ता<sup>३१</sup> इति<sup>३२</sup> । वे<sup>३३</sup>  
खलु<sup>३४</sup> पुद्गल-स्कन्धाः<sup>३५</sup> । अमप्य-अनलसुखाः<sup>३६</sup>

(१) "सुखादि प्रादुर्भूत कर्म प्रादुर्भावात्प्रादुर्भावाच्चिद्वचनार्थं यद्वचनोपायः पुद्गलाः सूक्ष्मा न स्पृशा इति । एतस्य भावागाधवचनं यो आत्मा

निर्गुणः स्थिता इति वचनं क्रिया-वर्तिभिरुपर्य स्थिता न गच्छन्त्य इति 'वचनात्' । यथा एवमात्रं अत्र प्रदेशोका इति नो य एवमेव प्राप्तं योते हि  
एव योते प्रसक्तः इतरं दिया इति चे अन्तान्तं पुद्गलके प्रदेशे वा स्थित्यं नो य एवमेव प्राप्तं योते हि यो न गुणोके चारुतः हि किं (क) यत्नः हि, एतद्विषय  
गोचरः न्ही है (क) एतः से नमं व्याप्तः हि (ग) और आत्म प्रदेशोके चाप्य एकमेक होकर गुणवत्तके समान स्थितियोगी है ।  
(२) इसी गुष्ठम 'चन्द्रमसं'  
व्याप्यस्थिता इति धर्माः एकैकस्थितः<sup>३</sup> किं विषय (प्रदेश वन्य) होता है । इस पांचवें प्रसक्ता इतर  
सम्बन्ध इत्यादि (३) कर्मगतान्त प्रदेश वचन से-योपाय एक एव पुद्गल और पुद्गल इत्येवं अत्रा प्रसक्त किं परिमाणपर्योते<sup>४</sup> । और (च) प्रदेशपर्योते

न, परिमाण (पर्यायार्थो का) है पुन इत्यादि ।

सिद्धान्तभागप्रमितप्रदेशा धनांगुलस्यारंभयेयभागक्षेत्रावाहिन एकद्वित्रिचतु संख्येया-  
सख्येयसमयस्थितिका पञ्चवर्णपञ्चरसद्विगन्धवतुंस्पर्शस्वभावा अष्टविधकर्मप्रकृतियोग्या ।  
योगवशादात्मसात्तिकयन्त इति प्रदेशवन्धः समासतो वेदितव्यः ॥ आह बन्धपदार्थानन्तरं  
पुण्यपापोपसंख्यान चोदितं तद्वन्धोऽन्तर्भुतमिति प्रत्याख्यात तत्रोदं वक्तव्यं कोऽत्र  
पुण्यबन्धः कः पापबन्ध इति ॥ तत्र पुण्यबन्धप्रकृतिपरिगणनायं सिद्धमारम्यते—

सिद्ध भगन्तमगमप्रियप्रदेशाः ॥ पत्र-भृगुस्यस्य ॥  
भासकभेद-भाषावेध-अवसाहिनः ॥ एकद्वि-त्रि-चतु-  
संख्येय-प्रसंख्येय-सप्तप-स्थितिकाः ॥  
पञ्चवर्ण-पञ्चरस-द्वि-पञ्च-चतुः स्पर्शस्वभावाः ॥

अथ सैषि-रुद्ध-भृगुदि-योग्याः ॥ । योगवशात् ॥  
(१) आत्मसात् ॥ किमन्ते ॥

इति भवेद्यन्त्र ॥ समासः ॥ द्वेदिकः ॥ ॥ आह ॥  
बन्ध-स्पर्श-बन्ध-र ॥ पुण्यपाप-वर्णसंख्यान ॥ ॥ चोदितं ॥  
चतु-बन्धः ॥ बन्ध-वर्णः ॥ इति ॥

प्रत्याख्यातम् ॥ ॥ तत्रादयः ॥ ॥ वक्तव्यम् ॥ ॥

क ॥ ॥ पञ्च-पुण्यबन्ध-वर्णः ॥ ॥ ॥ पापबन्ध-वर्णः ॥ इति ॥

वन्ध-पुण्यबन्ध-भृगुदि-परिगणन-वर्णमर्थः ॥ इत्यर्थः ॥ ॥ आरम्यते-स्पर्शः ॥ पुण्यबन्ध-प्रकृतिवर्णके संख्या करनेके क्रिये आह पञ्च भारतम् किया जाता है

(१) आत्मसात्-स्वभाव है पञ्चकर्म आह पुण्य पाप में आरम्य कायेन कितीका जगता भेदा करने दिया है ॥





पंच शरीराणि त्रीण्यङ्गोपाङ्गानि समचतुरक्षसंस्थानं वज्रूर्ध्वमनाराक्षसंहननं प्रशस्तवर्णरस  
गन्धस्पर्शाः, मनज्यदेवगत्यानपुत्रं ध्रुवमगुरुलघुपरधातोच्छ्वासगतपोषोत्तप्रशस्तविहायो  
गतयत्नसवादरपर्याप्तिप्रपेकशरीरस्थिरशुभसुभगसुखरादेययश कीर्तयो निर्माण तीर्थ करनाम  
चेति । श भमेकमुच्चैर्गोत्रं सद्देवमिति ॥ एता द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतयः पुण्यसंज्ञाः ॥

पञ्च ॥ शरीराणि ॥

श्रीङ् ॥ भद्रोपाप्मोति ॥

समचतुरक्षसंस्थानम् ॥ नवर्धमानाऽप्यसहनमम् ॥

मगुरुलघु-रस-मन्त्र-स्पर्शाः ॥

मनुष्यदेव-गत्यानु-पुत्र्य-द्वयम् ॥ अमलघु-परधात-  
उच्छ्वास-भावाय-उपाय-मयास्त्वविहायोगव ॥

यस-नादर-पर्याप्ति-मन्त्रेक-शरीर-स्थिर-  
शुभ-सुभग-सुख-आरय-यश-कीर्तय ॥

निर्माणम् ॥ तीर्थ-कृतानाम् ॥ यः इति ॥

हस्तम् ॥ एकम् ॥ उच्छैः गोत्रम् ॥ सद्देवम् ॥ इति ॥

एताः ॥ द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतयः ॥ पुण्यसंज्ञाः ॥

(१) यदा पर पुरय प्र तिर्ये व्यापीय कही गर्त है, उचर खूबमें पाप प्रकृतिसे व्यापी कहीए इस प्रकार सब मिलकर एकही बीबीस (२५)

हरे सो पाद कपाय बग्याही कपोला आभावा आदिसे । कपाय प्रकृतिसे एकही बीस (२०) कही है वहाँ पर्याप्त मोक्षकी बीज प्रकृतियोंमें कपाय एक

मन्दर ही में परितः की गर्त है । इसलिये क्या पाद पसी है बहुत बरबादिक बीस है मिळो छयेप करि आदी कही विचसे सात्व दे पसी है

इस प्रकार एकही भावनासीस प्रकृतियोंमें से कपाय २५ प्रकृतियों के पड़ने से एकही बीस (२०) गेर रही सो कपाय २५ कपाय, और पाद

इसलिये ५२ पुण्य प्रकृतियें आर ८० पाप प्रकृतिये सब मिलकर हरे है बहुत आर कर्म प्रकृतियोंका सजाही कपोला कपाय करनेसे १४८के स्थान

में १५८ हो जाती है क्योंकि कपाय = २५ + १०० पाप प्रकृति से ही और कपायकर्म की होती है किसी बीबीस के बीबीस गुप्त की होवे है

किसी किसी बीबीस अगुप्त की होवे है इसलिये २५८ प्रकृति का सजामाना है हममें से १०० प्रकृतियें पाप कर्म के बीबीस के ५८ पुण्यकर्म है ।

पञ्च (मौदारिक, वैदिक, आहार, वैश्व और कर्मिक) शरीर

व्दीन (भौदारिक शरीर, वैदिकशरीर और आहार शरीर) अंगोपाग

(८) समचतुरक्षसंस्थान (८) नवर्धमानाऽप्यसहनन,

(९) मगुरुलघु (१०) शुभरास (११) शुभगन्ध (१२) शुभस्पर्श

(१३) मनुष्यगत्यानुपूर्वी (१४) देवगत्यानुपूर्वी (ये दोनों) (१५) अगुल्लघु (१६) परधात

(१७) उच्छ्वास (१८) भावाय (१९) उपाय (२०) मयास्त्वविहायोगाति

(२१) यस (२२) नादर (२३) पर्याप्ति (२४) मन्त्रेक शरीर (२५) स्थिर

(२६) शुभ (२७) सुभग (२८) सुखर (२९) आरय (३०) यशःकीर्ति

(३१) निर्माण और (३२) तीर्थकृत नाम कर्मकी प्रकृति ऐसे हैं

(३३) इति एक हस्त (प्रकृति) केवल गोत्र है (३४) साता वेदनीय ऐसे

द्वे व्यापीय प्रकृतियें पुण्य समूह है आगु ३ + नाम ७ + गोत्र १ + वेदनीय १ = १४२

अतोऽन्यत्पापम् ॥ २६ ॥

सर्वार्थ  
सिद्धि

१०१

अस्मात्पुण्यसंज्ञककर्मप्रवृत्तिसमूहादन्यत्कर्म पापमित्युच्यते। तत् इत्यशीतिविधं तद्यथा  
ज्ञानावरणरूपप्रवृत्तयः पञ्च, दर्शनावरणरूपं नव, मोहिनीयरूपं षड्विंशति, पञ्चान्तरायरूपं,  
नरकप्रवृत्तिर्योगाती,

सूत्रम्-अतोऽन्यथापम् = अस्मादप्यत्कर्मपाप भवति = अस्मात् अ यत् कर्म पाप भवति । २६।  
सूत्राय-अस्माद् कर्म १॥ पापम् १॥ भवति ।  
=सप्त(पुन्यकर्म)सि मित्र कर्म पाप हे अर्थात् पञ्चीकृतं सूत्रमे वर्णित

इस (पुन्यकर्म) से भिन्न कर्म पाप है अथवा पञ्चासवां सूत्रमें बताया  
 जाती है पुन्य प्रकृतियों में दोष रही तो कर्म प्रकृतियों में पाप रूप है ॥  
 इस पुन्य नामा (न्यास) कर्म प्रकृतिके समूह से शून्य-

**वृत्त्यनुवादः** अस्मादे<sup>१</sup> "पुष्प-संज्ञक-भक्ति-सम्राट्"<sup>२</sup> बन्तु<sup>३</sup>=इय पुन्य नामा (=संज्ञक) कम् मङ्गलक समूहस श्रन्तु-

कर्म<sup>११</sup> पाप्म<sup>१२</sup> इति च्छयते । उद्ध-द्विषतीति विधु<sup>१३</sup> ।

उपस्था-शान्तप्रपण्य १११ प्रकृत्य १११ पदय १११

दुर्मुखावराणस्य ॥१॥ नव॥ मोहनीधस्य॥१॥ ॥१॥ विद्यावि॥१॥

पञ्च-धन्वाः । पञ्च-धन्वाः । पञ्च-धन्वाः । पञ्च-धन्वाः । पञ्च-धन्वाः ।

—कर्म पाप है ऐसा कहा जाता है वह ( पापकर्म ) घषासी भाँति है  
 जैसे भान्धारणकी मकृति पाँच  
 पदार्थोंनावण की ( मकृति ) नौ, मोहानोपकी ( मकृति ) छन्धीस  
 नाँव भक्षायकी ( मकृति ) नरक गति, तिर्यक्जगति

पुण्य प्रकृति ६८ व्याख्यान पूर्वार्ध प्रकृतिसे 'गोब्र शरीर'के स्थाने २ पांच जगद्वार और फंख ही मिलि मिलि सपायाभव ३३ + १० = ४३

हमारा भी फाट प्रकटियोंमें से ५२ को गजनामों केवल एक आई है। इसलिये व्यवहार अधिक

एव के गुणो न भूँ भूँ भूँ को गणना केवल एक प्रमाण है इसलिये कलापित कायक

[illegible]

२३. वेणी पकटिये कि आबापोसबे सङ्गमें काशी

पाप प्रकृति १००=

दृष्टं चेद्वा प्रकृतियं हि आ क्षणोत्सवं सुप्रमं कर्तव्यं

१६ ४५१-रस-गात्र-वज्रके २ + ५ + २ + ५ = १० अक्षरों से भेद मानने पर, उक्त व्यासमें २० हो जाती है १६ अक्षरों है २, सप्तमस्य विषयस्य सम्पत्, प्रकृति विषयाय साह क्रम की चीज प्रकृतिमें से एक विषया स्वीयी = २२ + १६ + २ = १०० (१) रसैवात्म्यर आत्मनस्यैव समात्म्यतया परिधिगमद्वयम् इसकी धृष्ट प्रती माना है । अत्र धृष्ट २५ के अक्षरों 'आतोऽप्यप् पाणम्' आत्मरूपमें लिखा है ॥

## આધ્યા

^

सु

三

सर्वाथ

सिद्धि

१०२

चतस्रो जातय, पंच संस्थानानि, पंच सहननान्यप्रशस्तवर्णरससर्वशा नरकगतिविर्यग्ना  
रथानपुण्ड्रयमुपधाताप्रशस्तविद्वान्गतिस्थित्यवरसूक्ष्मपर्याप्तिमाधारणशरीरास्थिराशा भद्रुर्भग-  
दुस्वरानादेयापदा कीर्तयश्चेति नामप्रकृतयश्चतुर्लिंशात् । असद्वेष नरकायुर्निर्चिन्नामिति  
एव व्याख्यातो बन्धपदाय सप्रपंच ॥ अवधिमन पर्ययकेवलज्ञानप्रत्यक्षप्रमाणगम्यरतदुपदि-  
ष्टारामानुमेय ॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसहििकायामष्टमोऽध्यायः ॥

चतस्रः ॥ आतय ॥

पंच ॥ संस्थानानि ॥  
पंच ॥ प्ररनानि ॥

अप्रयस्त-वर्ष-गम-रस-स्यर्थाः ॥

नरकाति-विर्यगत्याजुर्भ्यर्हस्य ॥ उपपात-अप्रयस्त-  
विद्वान्गति-स्थित्यवर-सूक्ष्म-अपर्याप्ति-साधारणशरीर

अस्थिर-अशुभ-दुर्भग-दुस्वर-अनादेय-अपराधी-कीर्तय ॥  
इति नाम प्रकृतयः ॥ अतुल्यशक्तिः ॥ असद्वेषः ॥

नरकमायुः ॥ नीचै-गोत्रसंघ-वृत्ति-पदम् ॥  
आचार्य ॥ क्षम्य-पदार्थ ॥ सप्रपंचः ॥

अवधि मनापर्यय-केवलज्ञान-  
प्रत्यक्ष-अपराध-गम्य ॥ ॥ वर-उपरिष्ट-

आगम-अनुमेय ॥

इति भूतत्वाथ वृत्तौ, सर्वाथ सिद्धि-  
सहििकायाम्, अष्टमः अध्यायः ॥ ॥ ॥ ॥

= चार (एकत्रिंश-दीर्घान्तर-मीट्रिय-चतुर्दश) आति,

व्याप (न्यग्रोपपरिमित-स्वाति-कुञ्जक-वामन और बुद्धक) संस्थान,

व्याप (वज्रानाच, नाराच, अर्धनाराच, कीलक, असम्भार्यासुपाटिका) सहनन

= अप्राप्त वर्ध, शुभ गंध, अशुभ रस, अशुभ स्पर्श

= नरकास्याजुर्हो, विर्यवत्तानुवर्हो दो, उपपात, अप्रयस्त

= विद्वान्गति, स्वात, सूक्ष्म, अपर्याप्ति साधारण शरीर,

= अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय आर (अप्राप्तयश्च कीर्ति

= वर प्रकृत नाम अस्मदी प्रकृतिये चोर्तिय बुद्ध ॥ असाता प्रेदनीय

= नरकमायु नीच गोत्र बुद्ध ॥ इस प्रकार

= अप पदाय विचार साहित वर्धन किया गया

= अनविधान, मन पर्ययमान, और केवल ज्ञानकर (से सब कार्य)

= अत्यन्त बला जाता है । (उस प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा) उपरेश (किसे बुद्ध)

= व्यासकर अन्तः प्रतिष्ठान, शुक्लान् अर्थके (पदवत्तय रूप कर्म) जाना जाता है ॥

= इस प्रकार तत्त्वाथ के विवरणमें तत्वाथ सिद्धि

= नामा मन्यमें आठवा अध्याय हुआ ॥ ८

अध्याय

८

सूत्र

२६

१०२

